बुद्ध-चर्य्या

(भगवान् बुद्धकी जीवनी और उपदेश)

लेखक

राहुल सांकृत्यायन

महाबोधि सभा

सारनाथ, बनारस

द्वितीय संस्करण]   बुद्धाब्द २४९५ / ई० सन् १९५२   [मूल्य ८)

प्रकाशक
ब्रह्मचारी देवप्रिय, बी० ए०
प्रधान-मन्त्री
महाबोधि सभा, सारनाथ, बनारस

लेखक के इस विषय के अन्य ग्रन्थ

1. बौद्ध संस्कृति
2. बौद्ध दर्शन
3. दीघ निकाय (हिन्दी)
4. मज्झिम निकाय (हिन्दी)
5. विनय पिटक (हिन्दी)
6. धम्मपद (हिन्दी)
7. अभिधर्म कोश (संस्कृत)

मुद्रक
ओम् प्रकाश कपूर
ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, काशी ३७५२-०७

मेरे गृह-त्यागसे जिनके अ-वार्धक्य जीवनके अंतिम वर्ष दुःखमय बन गये; उन्हीं सांकृत्य-सगोत्र, मलाँव-पांडेय, स्वर्गीय-पिता

श्री गोवर्धनकी स्मृतिमें।

॥ नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्स ॥

प्राक्-कथन ।

भगवान् बुद्धकी जीवनी और उपदेश दोनोंही इस ग्रन्थमें सन्निविष्ट हैं। बुद्धकी जीवन-घटनाएँ पालि त्रिपिटकमें जहाँ-तहाँ बिखरी हुई हैं, मैंने उन्हें यहाँ संग्रह किया है, साथही रिक्त स्थानको त्रिपिटककी अट्ठ-कथाओंसे पूरा कर दिया है। पालिका अनुवाद यहाँ प्रायः शब्दशः हुआ है। बीच-बीचमें कुछ अंश छोड़ दिये हैं, जिनमें, पुनरुक्तके लिए (०) चिह्न, और सर्वथा अनावश्यकके स्थानपर (···) चिह्न कर दिये हैं। शब्दशः अनुवाद करनेके कारण भाषा कहीं-कहीं खटकतीसी है। कुछ विद्वानोंने कहा भी कि शब्दशः का ख्याल छोड़-कर स्वतन्त्र-अनुवाद होना चाहिए; किन्तु मैंने यहाँ, त्रिपिटकमें आई, भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक सामग्रियोंको भी एकत्रित कर दिया है; स्वतन्त्र अनुवाद होनेपर ऐतिहासिकोंके लिए उनका मूल्य कम हो जाता, इसलिए मैंने वैसा नहीं किया। मेरी इस रायसे आचार्य नरेन्द्रदेव भी सहमत रहे। इस तरह भाषा कुछ खटकतीसी जरूर मालूम होगी, किन्तु १००-५० पृष्ठ पढ़ जानेपर वह साधारणसी बन जायेगी; और पालिके मुहाविरे घरकी हिन्दी एवं स्थानीय भाषाओंसे—विशेषकर पूर्वी-अवधी तथा बिहारकी भाषाओंसे—बिल्कुल मिलते-जुलते हैं, इसलिए कोई दिक्कत न मालूम होगी। बौद्धोंके कुछ अपने दार्शनिक शब्द हैं, मैंने कोष्टक तथा टिप्पणियोंमें जहाँ तहाँ उनको समझानेकी कोशिश की है, किन्तु संक्षेपके कारण हो सकता है, कहीं अर्थ स्पष्ट न हो पाया हो; इसके लिए शब्द-सूचीमें देखना चाहिए, आशा है, वहाँसे काम चल जायेगा। बौद्ध दार्शनिक भावोंके लिए पाठकको दर्शनका सामान्य ज्ञान होना तो आवश्यक ही है। बुद्धके जन्म, निर्वाण आदि समयके बारेमें मैंने सिंहल-परम्परामें ६० वर्ष कम कर दिये हैं, जिसको विक्रमसिंह आदिने माना है; और जिसके करने से यवनराजाओंके कालसे भी ठीक मेल हो जाता है।

त्रिपिटक कालके क्रमसे एकत्रित नहीं किया गया है। त्रिपिटकका आरम्भ सुत्त-पिटक से होता है, और सुत्त-पिटकका आरम्भ "ब्रह्मजाल-सुत्त" से; लेकिन यह सुत्त भगवान्ने बुद्धत्व-प्राप्तिके बाद ही नहीं उपदेश किया। उसके बादका "सामञ्ञफल-सुत्त" तो आयुके बहत्तरवें वर्षके बादका है, जब कि श्रोता मगधराज अजात-शत्रु राजगद्दीपर बैठ चुका था। इस प्रकार सभी घटनाओं और उपदेशोंका कालानुसार लगाना बहुत ही कठिन काम था; इस काममें मुझे कोई वैसा अपना पूर्वगामी भी नहीं मिला। यद्यपि यहाँ बिल्कुल ही सभी बातोंका क्रम ठीक कालानुसार है—यह मैं नहीं कहता, तो भी प्रजापतीका संन्यास—स्त्रियों को भिक्षुणी बननेका अधिकार-प्रदान, मैंने बुद्धत्व-प्राप्तिसे पाँचवें वर्ष दिया है—जरूर ठीक होगा; इसी प्रकार बुद्धत्वके तीसरे वर्ष अनाथ-पिंडकका जेतवन-प्रदान करना, एवं वहाँ बुद्धका वर्षावास करना भी सूत्र, और विनयकी सहायतासे निश्चय कर दिया गया है। यद्यपि यहाँ अट्ठकथाका विरोध पड़ता है, किन्तु मूल त्रिपिटकके सामने अट्ठकथाका विरोध कोई चीज नहीं है। इस पुस्तकमें कुछ जगह[1] एक ही घटनाको "अट्ठकथा", "विनय" और "सूत्र"

१. देखो पृष्ठ ७६, ७७।

तीनोंके शब्दोंमें दिया गया है, उसके देखनेसे मालूम होगा, कि सूत्रोंकी अपेक्षा विनयमें अधिक अतिशयोक्ति एवं अलौकिकतासे काम लिया गया है; और अट्ठकथा तो इस बातमें विनयसे बहुत आगे बढ़ी हुई है और इसीलिये इसके ही अनुसार इनकी प्रामाणिकताका तारतम्य मान लेनेमें कोई हानि नहीं है। काल-क्रममें कहीं-कहीं मुझे भी संदेह है, तथापि आशा है कि दूसरे संस्करण तक कुछ बातें और साफ हो जायेंगी। सभीके लिये तो उसी वक्त आशा छूट गई, जब कि पिटकको कंठस्थ करनेवाले, कालपरम्पराको लिपिबद्ध न करही इस लोकसे चले गये।

कितने ही अनिश्चित भौगोलिक स्थानोंके निश्चय करनेका भी मैंने प्रयास किया है, जैसे सहजातिको मैंने भीटा (जि० इलाहाबाद) से मिलाया है। वैशाली निवासी भिक्षु नावपर सहजाति गये थे (पृष्ठ ५२३), इससे सहजातिको किसी बड़ी नदीके किनारे होना चाहिये। नदी द्वारा व्यापारमें उस समय आसानी होनेसे, वह एक अच्छा बाजार होगा यह भी अनुमान होता है। इसके बाद हम भीटाकी खुदाईमें मिली एक मुहरपर "सहजातिय-नेगमे (?)" (सहजातिका नैगम) पाते हैं; इन तीनों बातोंको इकट्ठा करनेसे भीटाका सहजाति होना निश्चित होता है। सहजाति चेदी देशमें थी, यह भीटाके यमुनाके दक्षिण तटपर स्थित होनेसे, ठीक मालूम होता है; वत्स और चेदी यमुनाके आर-पार थे ही। इसी प्रकार और भी कितने ही स्थान दिये गये हैं, विस्तार भयसे उनके बारेमें यहाँ कुछ लिखना असंभव है। इस ग्रन्थके देखने तथा त्रिपिटकसे भी पता लगता है, कि भगवान् बुद्ध कोसी-कुरुक्षेत्र विंध्य-हिमालयसे घिरे मध्य-देशके बाहर नहीं गये। समयाभावके कारण अनेक नकशे नहीं दिये गये। इस एक नकशेमें मध्यदेशके लिये जितना स्थान है, उतनेमें सभी आवश्यक स्थानोंका नाम देना असम्भव समझ, इसे भी द्वितीय संस्करणके लिये छोड़ दिया। मुझे अफसोस है कि किताबसे भी अधिक अक्षम्य गलतियाँ नकशेमें हो गई हैं। जल्दीके कारण इलाहाबादसे मँगाकर, नकशेका प्रूफ न देख सका।

बुद्धके धार्मिक विचारोंका सारांश यहाँ देना कठिन है। किन्तु पाठक इस दृष्टिसे पुस्तक पढ़नेके पूर्व, यदि एक बार "केसपुत्तिय-सुत्त" (पृष्ठ ३२५) और "सामगाम सुत्त" (पृष्ठ ४४७) समझ लेंगे, तो उन्हें बुद्धके वास्तविक मंतव्यके समझनेमें आसानी होगी।

१९२७-२८ में, जिस समय मैं लंकामें त्रिपिटक पढ़ रहा था; उसी समय बहुत सी बातें नोट भी करता जाता था। उस समय मेरा विचार था, कि त्रिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं (=भाष्यों)में प्राप्य ऐतिहासिक और भौगोलिक सामग्रीपर एक ग्रंथ लिखूँ। इसी ख्यालसे लंकामें रहते ही वक्त, मैंने श्रावस्ती-जेतवनपर एक परिच्छेद लिख भी डाला; तब मुझे आशा न थी कि तत्काल मैं इस ग्रन्थके लिखनेमें हाथ लगाऊँगा। लंकासे मैं तिब्बत जानेके लिये भारत आया। उस समय बात-चीत करनेमें एक ऐसी पुस्तककी आवश्यकता प्रतीत हुई। नेपाल और ल्हासाके नेपाली बौद्धोंसे बात-चीत करनेपर दृढ़ कर लेना पड़ा, कि मौका मिलते ही इस ग्रन्थमें हाथ लगाऊँगा। किन्तु, उस समय मुझे यह विश्वास न था, कि मैं इतनी जल्दी (१४ मासमें) अपनी यात्रा समाप्त कर पाऊँगा।

१९३० में मैं तिब्बतसे लंका लौट गया। वहाँ अपने ज्येष्ठ सब्रह्मचारी आयुष्मान् आनंदकी प्रेरणाने और मदद दी; फलतः १९३० की आश्विन पूर्णिमा या महाप्रवारणासे इस ग्रंथको लिखना आरंभ कर पौष कृष्ण अष्टमी तक कुल ६८ दिनमें समाप्त कर दिया। इसके तीसरे दिन पौष कृष्ण १० को मुझे भारतके लिये प्रस्थान करना था, इसलिये इच्छा रहते भी 'ब्रह्मजाल-सुत्त' और 'सिगालोवाद-सुत्त'को नहीं शामिलकर सका, जिनमें छपते वक्त "सिगालोवाद"को तो ले लिया, लेकिन समयाभावसे इस संस्करणमें "ब्रह्मजाल" के देनेके लोभको संवरण करना पड़ा।

भारतमें चूँकि मुख्यतः मैं देशके आंदोलनमें भाग लेने आया था, इसलिये पुस्तककी ओर ध्यान देनेका विचार न था। किंतु, अशुद्धियोंकी भरमारके डरसे अपने "अभिधर्मकोश" (जो हाल हीमें काशी-विद्यापीठकी ओरसे संस्कृतमें छपा है) के प्रूफ-संशोधनका भार लेना पड़ा। उसी समय में इस पुस्तकके नामकरणके लिये सलाह कर रहा था और एकाएक "बुद्धचर्या" नाम सामने आया। तबतक मैंने ग्रंथको दुबारा देखा भी न था, मैंने यह काम भदन्त आनन्दको सौंपा, और उन्होंने कुछ दिनोंमें समाप्त भी कर दिया। जनवरीके अंतमें मैं अपने कार्य-क्षेत्रमें चला गया। फिर वर्षावासके लिये मुझे कहीं एक जगह ठहरना था, मैंने इसके लिये बनारसको चुना। मेरे मित्रोंमें विशेषकर श्रीधूपनाथसिंहने 'बुद्धचर्या'के छपवानेका बहुत आग्रह किया, और पांचसौ रुपये देने भी तै कर लिये, दोसौ रुपये और भी जमा थे। बनारस आनेपर मैंने निश्चय किया कि, इन सातसौ रुपयोंसे पुस्तकका जितना हिस्सा छप जाये, उतना पहिले छपा लेना चाहिये, बाकी पीछे देखा जायेगा। छपाई शुरू होगई। इसी बीच बाबू शिवप्रसादगुप्तसे बात हुई और उन्होंने इसे अपनी ओरसे छपाना स्वीकार किया। श्रीधूपनाथने इस निश्चयके पूर्वही कहला भेजा था कि, पुस्तक सभी छप जानी चाहिये, और भी जो दाम लगेगा, मैं दूँगा। इस तरह पुस्तकके इतनी जल्दी प्रकाशित होनेमें सबसे बड़े कारण श्रीधूपनाथ ही हैं। बाबू शिवप्रसादजीकी उदारताके बारेमें कुछ कहना तो व्यर्थ ही होगा। मेरे मित्र आचार्य नरेन्द्रदेवजी तो मुझसे भी अधिक इस पुस्तकके छपनेके लिये उत्सुक थे; और उन्होंने इसके लिये बहुत कोशिश की, जिसका फल यह आपके सामने है।

जल्दी, असावधानी, या न जाननेके कारण पुस्तकमें बहुतसी अशुद्धियाँ रह गई हैं। मैंने शुद्धाशुद्ध पत्रको बेकार और समयापेक्ष समझ, छोड़ दिया।

काशी-विद्यापीठ, काशी।
आश्विन कृष्ण १४, १९८८

राहुल सांकृत्यायन।

द्वितीय संस्करण—"बुद्धचर्या" कई वर्षोंसे दुर्लभ हो गई थी, किन्तु कागजकी मँहगी के जमाने में देर से बिकने वाली इतनी बड़ी पुस्तक को छपाये कौन ? यदि पहिले संस्करणके लिये श्री धूपनाथ तथा अनेक या मधुर स्मरणीय बाबू शिव प्रसाद गुप्त जैसे अवलंब मिले थे, तो अब के महाबोधि सभा के सेक्रेटरी श्री देवप्रिय आगे आये।

राहुल सांकृत्यायन
मंसूरी १२-१-५२

प्रकाशकीय निवेदन

हिन्दी पाठकोंके सम्मुख आज 'बुद्धचर्या' के दूसरे संस्करणको महाबोधि सभाकी ओरसे उपस्थित करते हुए हमें बड़ा हर्ष हो रहा है। आज तक किसी भी भाषामें इतना पूर्ण और प्रामाणिक भगवान् बुद्धका जीवन-चरित नहीं प्रकाशित हुआ है। अतः इसकी बड़ी माँग रही है। 'बुद्धचर्या' की बढ़ती हुई माँगने ही हमें इसके दूसरे संस्करणको प्रकाशित करनेके लिए बाध्य किया है। आशा है इसके प्रकाशनसे हिन्दीप्रेमियोंको प्रसन्नता होगी।

महाबोधि सभाने अभीतक त्रिपिटकके कई मुख्य ग्रन्थोंका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया है और शीघ्र ही संयुत्त निकाय, अंगुत्तर निकाय और विसुद्धिमग्ग भी प्रकाशित होनेवाले हैं। इस प्रकार हिन्दीमें बौद्ध साहित्यका खटकता हुआ अभाव पूर्ण हो जायेगा। आशा है हिन्दी-पाठकोंका सहयोग पूर्ववत् बना रहेगा।

इस पुस्तकके प्रकाशनमें व्यय अधिक हुआ है, जिसका भार मैं आप विद्यानुरागी महानुभावोंकी सहायताके भरोसे पर ही वहन कर रहा हूँ। अभीतक जो दान प्राप्त हुआ है उसका ब्योरा निम्न प्रकार है:—

1. Mr. Richard Salgado, Panadura, Ceylon.	Rs. 250/-/-
2. Mr. T. A. Gunasekera, Colombo, Ceylon.	,, 250/-/-
3. Ven'ble Dikwella Seelaratana Maha Thera, Godauda, Ceylon.	,, 200/-/-
4. Mr. P. Tikiri Henaya, Hanguranketa, Ceylon.	,, 50/-/-
5. Mr. T. S. Weerasingha, Uduwara, Ceylon.	,, 40/-/-
6. Mr. M. T. Robosingho, Kurunegala, Ceylon.	,, 30/-/-
7. Ayurvedic Physician A. H. Gunasekera, Kurunegala, Ceylon.	,, 20/-/-
8. Mr. M. D. D. Perera, Horana, Ceylon.	,, 5/-/-
9. Mr. K. M. Perera, Horana, Ceylon.	,, 5/-/-
10. Mr. Mr. A. Edirisingha, Timbirigasyaya, Ceylon.	,, 5/-/-

निवेदक

ब्रह्मचारी देवप्रिय वलिसिंह, बी० ए०
प्रधान-मन्त्री,
महाबोधि सभा, सारनाथ

भूमिका।

भारतमें बौद्ध-धर्मका उत्थान और पतन

बौद्ध-धर्म भारतमें उत्पन्न हुआ। इसके संस्थापक गौतम बुद्धने कोसी-कुरुक्षेत्र और हिमाचल-विंध्याचलके भीतर ही विचरते हुए ४५ वर्ष तक प्रचार किया। इस धर्मके अनुयायी चिरकाल तक, महान् सम्राटोंसे लेकर साधारण जन तक, बहुत अधिकतासे सारे भारतमें फैले हुये थे। इसके भिक्षुओंके मठों और विहारोंसे देशका शायद ही कोई भाग रिक्त रहा हो। इसके विचारक और दार्शनिक हजारों वर्षोंतक अपने विचारोंसे भारतके विचारको प्रभावित करते रहे। इसके कला-विशारदोंने भारतीय कलापर अमिट छाप लगायी। इसके वास्तु-शास्त्री और प्रस्तर-शिल्पी हजारों वर्षोंतक सजीव पर्वतवक्षोंको मोमकी तरह काटकर, अजंता, एलौरा, कार्ले, नासिक जैसे गुहा-विहारोंको बनाते रहे। इसके गंभीर मंतव्योंको अपनानेके लिये यवन और चीन जैसी समुन्नत जातियाँ लालयित रहती रहीं। इसके दार्शनिक और सदाचारके नियमोंको आरम्भसे आजतक सभी विद्वान् बड़े आदरकी दृष्टिसे देखते रहे। इसके अनुयायियोंकी संख्याके बराबर आज भी किसी दूसरे धर्मकी संख्या नहीं है।

ऐसा प्रतापी बौद्ध-धर्म अपनी मातृभूमि भारतसे कैसे लुप्त हो गया? यह बड़ा ही महत्वपूर्ण तथा आश्चर्यकर प्रश्न है। इसी प्रश्नपर मैं यहाँ संक्षिप्त रूपसे विचार करूँगा। भारतसे बौद्ध धर्मका लोप तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दियोंमें हुआ। उस समयकी स्थिति जाननेके लिये कुछ प्राचीन इतिहास जानना जरूरी है।

गौतम बुद्धका निर्वाण ई०पूर्व ४८३में हुआ था। उन्होंने अपने सारे उपदेश मौखिक दिये थे; तो भी शिष्य उनके जीवन-कालमें ही कंठस्थ कर लिया करते थे। यह उपदेश दो प्रकारके थे, एक साधारण-धर्म और दर्शनके विषयमें, और दूसरे भिक्षु-भिक्षुणियोंके नियम। पहलेको पालीमें "धम्म" (धर्म) कहा गया है, और दूसरेको "विनय"। बुद्धके निर्वाण (वैशाख-पूर्णिमा) के बाद उनके प्रधान शिष्योंने (आगे मतभेद न हो जाय, इसलिये) उसी वर्षमें राजगृह (जिला पटना) की सप्तपर्णी गुहामें एकत्रित हो, "धर्म" और "विनय"का संगायन किया। इसीको प्रथम-संगीति कहा जाता है। इसमें महाकाश्यप भिक्षु-संघके प्रधान (संघ-स्थविर) की हैसियतसे, धर्मके विषयमें बुद्धके चिर-अनुचर 'आनन्द' से और विनयके विषयमें बुद्ध-प्रशंसित 'उपालि'से प्रश्न पूछते थे। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य आदि सुकर्मोंको पालिमें 'शील' कहते हैं, और स्कंध (रूप आदि), आयतन (रूप-चक्षु-चक्षुर्विज्ञान आदि) धातु (पृथिवी, जल आदि) आदिके सूक्ष्म दार्शनिक विचारको प्रज्ञा, दृष्टि या दर्शन कहते हैं। बुद्धके उपदेशोंमें शील और प्रज्ञा, दोनोंपर पूरा जोर दिया गया है। "धर्म"के लिये पालिमें दूसरा शब्द 'सुत्त' (सूक्त, सूत्र) या "सुत्तन्त" भी आया है। प्रथम संगीतिके स्थविर भिक्षुओंने "धर्म" और "विनय"का इस प्रकार संग्रह किया। पीछे भिन्न-भिन्न भिक्षुओंने उनको पृथक् पृथक् कंठस्थ कर, अध्ययन-अध्यापनका भार अपने ऊपर लिया। उनमें जिन्होंने "धम्म" या "सुत्त"की रक्षाका भार लिया, वह "धम्म-धर", "सुत्त-धर" या "सुत्तंतिक" (सौत्रांतिक) कहलाये। जिन्होंने "विनय"की रक्षाका भार लिया, वह "विनय-धर" कहलाये। इनके अतिरिक्त

सूत्रोंमें दर्शन-संबंधी अंश कहीं-कहीं बड़े ही संक्षेप रूपमें थे, जिन्हें "मातिका" (=मात्रिका) कहते थे। इन मातिकाओंके रक्षक "मातिकाधर" कहलाये। पीछे मातिकाओंको समझानेके लिये जब उनका विस्तार किया गया, तब इसींका नाम "अभिधम्म" (= अधिधर्म=धर्ममेंसे) हुआ, और इसके रक्षक "आभिधम्मिक" (=आभिधर्मिक) हुये।

प्रथम-संगीतिके सौ वर्ष बाद (ई. पू. ३८३) वैशालीके भिक्षुओंने विनयके कुछ नियमोंकी अवहेलना शुरू की। इसपर विवाद आरम्भ हुआ, और अंतमें फिर भिक्षु-संघने एकत्र हो उन विवाद-ग्रस्त विषयोंपर अपनी राय दी, एवं "धर्म" और "विनय"का संगायन किया। इसीका नाम द्वितीय संगीति हुआ। कितने ही भिक्षु इस संगीतिसे सहमत न हुए और उन्होंने अपने महासंघका कौशाम्बीमें पृथक् सम्मेलन किया, तथा अपने मतानुसार "धर्म" और "विनय"का संग्रह किया। संघके स्थविरों (वृद्ध-भिक्षुओं) का अनुगमन करनेवाला होनेसे पहला समुदाय (= निकाय) आर्यस्थविर या स्थविरवादके नामसे प्रसिद्ध हुआ, और दूसरा महासांघिक। इन्हीं दो समुदायोंसे अगले सवा सौ वर्षोंमें, स्थविरवादसे—वज्जिपुत्रक महीशासक, धर्मगुप्तिक, सौत्रांतिक, सर्वास्तिवाद, काश्यपीय, संक्रांतिक, सम्मितीय, षाण्णागरिक, भद्रयानिक, धर्मोत्तरीय, और महासांघिकसे – गोकुलिक, एकव्यवहारिक, प्रज्ञप्तिवाद (=लोकोत्तरवाद), बाहुलिक, चैत्यवाद; यह १८ निकाय हुये। इनका मतभेद विनय और अभिधर्मकी बातोंको लेकर था। कोई कोई निकाय आर्यस्थविरोंकी तरह बुद्धको मनुष्य न मानकर उन्हें लोकोत्तर मानने लगे। वह बुद्धमें अद्भुत और दिव्य-शक्तियोंका होना मानते थे। कोई-कोई बुद्धके जन्म और निर्वाणको दिखावा मात्र समझते थे। इन्हीं भिन्न-भिन्न मान्यताओंके अनुसार उनके सूत्र और विनयमें भी फर्क पड़ने लगा। बुद्धको अमानुषिक लीलाओंके समर्थनमें नये-नये सूत्रोंकी रचना हुई। बुद्धके निर्वाणके प्रायः सवा दो सौ वर्ष बाद सम्राट् अशोकने बौद्ध-धर्म ग्रहण किया। उनके गुरु मोग्गलिपुत्त तिस्स (मौद्गलि-पुत्र तिष्य) उस समय आर्यस्थविरोंके संघ-स्थविर थे। उन्होंने मतभेद दूर करनेके लिये पटनामें अशोकके बनवाये "अशोकाराम" विहारमें भिक्षु-संघके द्वारा चुने गये हजार भिक्षुओंका सम्मेलन किया; जिन्होंने मिलकर सभी विवाद-ग्रस्त विषयोंका निर्णय तथा धर्म और विनयका संगायन किया। यही सम्मेलन तृतीय संगीतिके नामसे प्रसिद्ध हुआ। इसी समय आर्यस्थविरोंसे निकाले सर्वास्तिवाद निकायोंने नालन्दामें अपनी पृथक् संगीति की। नालन्दा, जो समय-समयपर बुद्धका निवास-स्थान होनेसे पुनीत स्थानोंमें गिनी जाती थी, इसी समयसे सर्वास्तिवादियोंका मुख्य-स्थान बन गई।

तृतीय सङ्गीति समाप्त कर मोग्गलिपुत्त तिस्सने सम्राट् अशोककी सहायतासे भिन्न-भिन्न देशोंमें धर्म-प्रचारक भेजे। यह पहला अवसर था, जब एक भारतीय धर्म संगठित रूपमें भारतकी सीमासे बाहर प्रचारित होने लगा। यह प्रचारक जहाँ पश्चिममें यवन-राजाओंके राज्यों (ग्रीस, मिस्र, सिरिया आदि देशों)में गये, वहाँ उत्तरमें मध्य-एशिया तथा दक्षिणमें ताम्रपर्णी [लंका] और सुवर्ण-भूमि [बर्मा]में भी पहुँचे। लंकामें अशोकके पुत्र तथा मोग्गलिपुत्त तिस्सके शिष्य 'भिक्षु महेन्द्र' और उनकी सहोदरा 'संघमित्रा' गयी। लंकाके राजा 'देवानंपिय तिस्स' बौद्ध-धर्ममें दीक्षित हुये। कुछ ही दिनोंमें वहाँ की सारी जनता बौद्ध हो

गयी। आर्य-स्थविरवादका तभीसे ही यहाँ प्रचार रहा। बीचमें बारहवीं-तेरहवीं शताब्दियोंमें जब बर्मा और स्याममें महायान बौद्ध-धर्म विकृत तथा जर्जरित हो, ह्रास प्राप्त होने लगा, तब आर्यस्थविरवाद वहाँ भी पहुँच गया। लंकामें ही ईसाकी प्रथम शताब्दीमें सूत्र, विनय और अभिधर्म—तीनों पिटक (=त्रिपिटक), जो अबतक कंठस्थ चले आते थे—लेखबद्ध किये गये; और यही आजकलका पालि त्रिपिटक है।

मौर्य-सम्राट् बौद्ध-धर्मपर अधिक अनुरक्त थे, इसलिये उनके समयमें अनेक पवित्र स्थानोंमें राजाओं और धनिकोंने बड़े-बड़े स्तूप और संघाराम (मठ) बनवाये, जिनमें भिक्षु सुख-पूर्वक रहकर धर्म-प्रचार किया करते थे। ईसा-पूर्व दूसरी शताब्दीमें, मौर्योंके सेनापति पुष्यमित्रने अन्तिम मौर्य-सम्राट्को मारकर अपने शुङ्गवंशका राज्य स्थापित किया। यह नया राजवंश राजनीतिक उपयोगिताके विचारसे ब्राह्मण-धर्मका पक्का अनुयायी और अब्राह्मणधर्मद्वेषी था। शताब्दियोंसे परित्यक्त पशु-बलिमय अश्वमेध आदि यज्ञ, महाभाष्यकार पतञ्जलिके पौरोहित्यमें फिरसे होने लगे। ब्राह्मणोंके माहात्म्यसे भरे मनुस्मृति जैसे ग्रन्थोंकी रचनाका सूत्रपात हुआ। इसी समय महाभारतका प्रथम संस्करण हुआ तथा मृत संस्कृत-भाषाके पुनरुद्धारकी चेष्टा की गयी। परिस्थितिके अनुकूल न होनेसे धीरे-धीरे बौद्ध लोग बौद्ध-धर्मके केन्द्रोंको मगध और कोसलसे दूसरे देशोंमें हटाने पर मजबूर होने लगे। आर्य-स्थविर-वाद मगधसे हटकर विदिशाके समीप चैत्य-पर्वत (वर्तमान 'साँची') पर चला गया; सर्वास्तिवाद मथुराके उरुमुण्ड-पर्वत (= गोवर्धन) चला गया। इसी तरह और निकायोंने भी अपने-अपने केन्द्रोंको अन्यत्र हटा दिया।

स्थविरवाद सबसे पुराना निकाय है, और इसने पुरानी बातोंकी बड़ी कड़ाईसे सुरक्षित रखा। दूसरे निकायोंने देश, काल और व्यक्ति आदिके अनुसार अनेक परिवर्तन किये। अबतक त्रिपिटक मगधकी भाषामें ही था, जो कि पूर्वी उत्तरप्रदेश तथा बिहारकी साधारण भाषा थी। सर्वास्तिवादियोंने मथुरा पहुँचकर अपने त्रिपिटकको ब्राह्मणोंकी प्रशंसित संस्कृत-भाषामें कर दिया। इसी तरह महासांघिक, लोकोत्तरवाद आदि कितने ही और निकायोंने भी अपने पिटकोंको संस्कृतमें कर दिया। यह संस्कृत पाणिनीय संस्कृत न थी; आज कल इसे गाथासंस्कृत कहते हैं।

मौर्य-सम्राज्यके विनष्ट हो जानेपर पश्चिमी भारतपर यवन राजा 'मिनान्दर' ने कब्जा कर लिया। मिनान्दरने अपनी राजधानी साकला (वर्तमान 'स्यालकोट') बनायी। उसके तथा उसके वंशजोंके क्षत्रप मथुरा और उज्जैनमें रहकर शासन करने लगे। यवन-राजा अधिकांश बौद्ध थे; इसलिये उनके उज्जैनके क्षत्रप सांचीके स्थविरवादियोंपर तथा मथुराके क्षत्रप सर्वास्तिवादियोंपर बहुत स्नेह और श्रद्धा रखते थे। मथुरा उस समय एक क्षत्रप की राजधानी ही न थी, बल्कि पूर्व और दक्षिणसे तक्षशिलाके वणिक्-पथपर व्यापारका एक सुसमृद्ध प्रधान केन्द्र थी; इसलिये सर्वास्तिवादके प्रचारमें बड़ी सहायक हुई। मगधके सर्वास्तिवादसे इसमें कुछ अन्तर हो चुका था, इसलिये यहाँका सर्वास्तिवाद आर्य-सर्वास्तिवादके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

यवनोंको परास्तकर यूचियों (शकों) ने पश्चिमी भारतपर कब्जा किया। इन्हींकी शाखा कुषाण थी, जिसमें प्रतापी सम्राट् कनिष्क हुए। कनिष्ककी राजधानी पुरुषपुर (=पेशावर) थी। उस समय सर्वास्तिवाद गन्धारमें पहुँच चुका था। कनिष्क स्वयं सर्वास्तिवादियोंका अनुयायी था। इसीके समयमें महाकवि अश्वघोष और आचार्य वसुमित्र आदि पैदा हुए। *उस समय गान्धारके सर्वास्तिवादमें—जो मूल सर्वास्तिवाद कहा जाता था—*कश्मीर और गान्धारके आचार्योंका मतभेद हो गया था। देवपुत्र कनिष्ककी सहायतासे वसुमित्र, अश्वघोष आदि आचार्योंने सर्वास्तिवादी बौद्ध भिक्षुओंकी एक बड़ी सभा बुलायी। इस सभामें आपसके मतभेदोंको दूर करनेके लिये उन्होंने अपने त्रिपिटकपर 'विभाषा' नामकी टीकायें लिखीं। विभाषा के अनुयायी होनेसे मूल-सर्वास्तिवादियोंका दूसरा नाम 'वैभाषिक' पड़ा। बौद्ध धर्ममें दुःखों से मुक्ति यानी निर्वाणके तीन रास्ते माने गये हैं (१) जो सिर्फ स्वयं दुःखविमुक्त होना चाहता है, वह आर्य अष्टांगिक मार्गपर आरूढ़ हो जीवन्मुक्त हो अर्हत् कहा जाता। (२) *जो उससे कुछ अधिक परिश्रमके लिये तैयार होता है, वह जीवन्मुक्त हो प्रत्येक-बुद्ध कहा जाता है।* (३) *जो असंख्य जीवोंका मार्गदर्शक बननेके लिये अपनी मुक्तिकी फिक्र न कर,* बहुत परिश्रम और बहुत समय बाद उस मार्गसे स्वयं प्राप्य निर्वाणको प्राप्त होता, उसे 'बुद्ध' कहा जाता है। ये तीनों ही रास्ते क्रमशः अर्हत् (=श्रावक) यान, प्रत्येक-बुद्ध-यान और बुद्ध-यान कहे जाते हैं। कुछ आचार्योंने बाकी दो यानोंकी अपेक्षा बुद्ध-यानपर बड़ा जोर दिया और इसे महायान कहा। इस तरह पीछे कुछ लोग दूसरे यानोंको स्वार्थपूर्ण कह, केवल बुद्धयान या महायानकी प्रशंसा करने लगे। यह स्मरण रहे कि, अठारहों निकाय तीनों यानोंको मानते थे। उनका कहना था, किसी यानका चुनना मुमुक्षुकी अपनी स्वाभाविक रुचिपर निर्भर है।

ईसाकी प्रथम शताब्दीमें, जिस समय वैभाषिक-संप्रदाय उत्तरमें बढ़ता आ रहा था; उसी समय दक्षिणके विदर्भ [बरार] देशमें आचार्य नागार्जुन पैदा हुए। उन्होंने माध्यमिक या शून्यवाद दर्शनपर ग्रन्थ लिखे। कालान्तरमें महायान और माध्यमिक दर्शनके योगसे शून्यवादी महायानसंप्रदाय चला, जिसके त्रिपिटककी आवश्यकता समय-समयपर बने हुए अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता आदि ग्रन्थोंने पूरी की। चौथी शताब्दीमें पेशावरके आचार्य वसुबन्धुने वैभाषिकोंसे कुछ मतभेद करके "अभिधर्मकोश" ग्रन्थ लिखा और उनके बड़े भाई 'असंग' विज्ञानवाद या योगाचार-संप्रदायके प्रवर्तक हुए। इस प्रकार चौथी शताब्दी तक बौद्धोंके वैभाषिक, सौत्रान्तिक, योगाचार और माध्यमिक, चार दार्शनिक संप्रदाय बन चुके थे। इनमें पहले दोनोंको माननेवाले तीनों यानोंको मानते थे, इसलिये उन्हें महायानियोंने हीनयानका अनुयायी कहा; और बाकी दो सिर्फ बुद्ध-यानही को मानते थे, इसलिये उन्होंने अपनेको महायानका अनुयायी कहा।

महायानी बुद्धयानके एकान्त-भक्त थे, इतना ही नहीं, बल्कि अपने उत्साहमें वे बाकी दो यानोंको बुरा-भला कहनेसे बाज न आते थे। बुद्धके अलौकिक चरित्र उन्हें बहुत उपयुक्त मालूम हुए, इसलिये उन्होंने महासांघिकों और लोकोत्तरवादियोंकी बहुत-सी बातें ले लीं। रत्नकूट और वैपुल्य नामवाले बहुत-से सूत्रोंकी भी उन्होंने रचना की। बुद्धयानपर अच्छी प्रकार

आरूढ़, बुद्धत्वके अधिकारी, प्राणीको बोधिसत्त्व कहा जाता है। महायानके सूत्रोंमें हर एकको बोधिसत्त्वके मार्गपरही चलनेके लिए जोर दिया गया है—हरएक को अपनी मुक्तिकी पर्वाह छोड़कर संसारके सभी प्राणियोंकी मुक्तिके लिए प्रयत्न करना चाहिये। बोधिसत्त्वोंकी महत्ता दरसानेके लिए जहाँ अवलोकितेश्वर, मंजुश्री, आकाशगर्भ आदि सैकड़ों बोधिसत्त्वोंकी कल्पना की गयी, वहाँ सारिपुत्र, मोग्गलान आदि अर्हत् (=मुक्त) शिष्योंको अ-मुक्त और बोधिसत्त्व बना दिया गया। सारांश यह कि, जिस प्राचीन सूत्र आदि परम्पराको अठारहों निकाय मानते आ रहे थे, महायानियोंने उन सभीको बोधिसत्त्व और बुद्ध बननेकी धुनमें एकदम उलटनेमें कोई कसर न रखी।

कनिष्कके समय अर्थात् बुद्धसे चार सदी बाद पहले-पहल बुद्धकी प्रतिमा (मूर्ति) बनायी गयी। [1]महायानके प्रचारके साथ जहाँ बुद्ध-प्रतिमाओंकी पूजा-अर्चा बड़े ठाट-बाटसे होने लगी, वहाँ सैकड़ों बोधिसत्त्वोंकी भी प्रतिमाएँ बनने लगीं। इन बोधिसत्त्वोंको उन्होंने ब्राह्मणोंके देवी-देवताओंका काम सौंपा। उन्होंने तारा, प्रज्ञापारमिता आदि अनेक देवियोंकी भी कल्पना की। जगह-जगह इन देवियों और बोधिसत्त्वोंके लिए बड़े-बड़े विशाल मंदिर बन गये। उनके बहुतसे स्तोत्र आदि भी बनने लगे। इस बादमें इन लोगोंने यह ख्याल न किया कि, हमारे इस कामसे किसी प्राचीन परम्परा या भिक्षु-नियमका उल्लंघन होता है। जब किसीने दलील पेश की, तो कह दिया—विनय-नियम तुच्छ स्वार्थके पीछे मरनेवाले [2]हीनयानियोंके लिए हैं; सारी दुनियाकी मुक्तिके लिए मरने-जीनेवाले बोधिसत्त्वको इसकी वैसी पाबन्दी नहीं हो सकती। उन्होंने हीनयानके सूत्रोंसे अधिक महात्म्यवाले अपने सूत्र बनाये। सैकड़ों पृष्ठोंके सूत्रोंका पाठ जल्दी नहीं हो सकता था, इसलिए उन्होंने हरएक सूत्रकी दो-तीन पंक्तियोंमें छोटी-छोटी धारणी वैसे ही बनायी, जैसे भागवतका चतुःश्लोकी भागवत; गीताकी सप्तश्लोकी गीता। इन्हीं धारणियोंको और संक्षिप्त करके मन्त्रोंकी सृष्टि हुई। इस प्रकार धारणियों, बोधिसत्त्वों, उनकी अनेक दिव्य-शक्तियों तथा प्राचीन-परम्परा और पिटकोंकी निःसंकोच की जाती उलट-पलटसे उत्साहित हो, गुप्तसाम्राज्यके आरम्भिक कालसे हर्षवर्धनके समयतक मंजुश्री मूलकल्प, गुह्यसमाज और चक्रसंवर आदि कितनेही तन्त्रोंकी सृष्टि की गई। पुराने निकायोंने अपेक्षा-कृत सरलतासे अपनी मुक्तिके लिए अर्हद्यान और प्रत्येक-बुद्धयानका रास्ता खुला रखा था। महायानने सबके लिए सुदुश्चर बुद्ध-यानको ही एक-मात्र रास्ता रखा। आगे चलकर इस कठिनाईको दूर करनेके लिए ही उन्होंने धारणियों, बोधिसत्त्वोंकी पूजाओंका आविष्कार किया। इस प्रकार जब सहज दिशाओंका मार्ग खुलने लगा, तब उसके आविष्कारकोंकी भी संख्या बढ़ने लगी। मंजुश्री-मूलकल्पने तन्त्रोंके लिए रास्ता खोल दिया। गुह्य-समाजने अपने भैरवीचक्रके शराब, स्त्रीसंभोग तथा मन्त्रोच्चारणसे उसे और भी आसान कर दिया। यह मत महायानके भीतरहीसे उत्पन्न हुआ, किन्तु पहले इसका प्रचार भीतर-ही-भीतर होता रहा, भैरवी-चक्रकी सभी कार्रवाइयाँ गुप्त रखी जाती थीं। प्रवेशाकांक्षीको कितनेही समयतक उम्मेदवारी करनी पड़ती थी। फिर अनेक अभिषेकों और परीक्षाओंके बाद वह समाजमें मिलाया जाता था। यह मंत्रयान (=तंत्रयान, [2]वज्रयान) संप्रदाय इस प्रकार सातवीं शताब्दी तक गुप्त रीतिसे चलता रहा। इसके अनुयायी बाहरसे

1. देखो मेरी 'पुरातत्त्व निबंधावली' पृ० १२१-२४। २. देखो वही पृ० १२५-२०४।

अपनेको महायानी ही कहते थे। महायानी भी अपना पृथक् विनय-पिटक नहीं बना सके थे, इसीलिए उनके भिक्षु लोग सर्वास्तिवाद आदि निकायोंमें दीक्षा लेते थे। आठवीं शताब्दीमें भी, जब कि नालन्दा महायानका गढ़ थी, वहाँके भिक्षु सर्वास्तिवाद-विनयके अनुयायी थे, और वहाँके भिक्षुओंको विनयमें सर्वास्तिवादकी, बोधिसत्त्वचर्यामें महायानकी और भैरवीचक्रमें वज्रयानकी दीक्षा लेनी पड़ती थी।

आठवीं शताब्दीमें एक प्रकारसे भारतके सभी बौद्ध-संप्रदाय वज्रयान गर्भित महायानके अनुयायी हो गये थे। बुद्धकी सीधी-सादी शिक्षाओंसे उनका विश्वास उठ चुका था, और वे मनगढ़न्त हजारों लोकोत्तर कथाओंपर विश्वास करते थे। बाहरसे भिक्षुके कपड़े पहननेपर भी भीतरसे वे गुह्यसमाजी थे। बड़े-बड़े विद्वान् और प्रतिभाशाली कवि आधे पागल हो, चौरासी सिद्धोंमें दाखिल हो, संध्या-भाषामें निर्गुण गान करते थे। आठवीं शताब्दीमें उड़ीसाके राजा इन्द्रभूति और उसके गुरु सिद्ध अनंगवज्र तथा दूसरे पंडित-सिद्ध स्त्रियोंको ही मुक्तिदात्री 'प्रज्ञा', पुरुषोंको ही मुक्तिका 'उपाय' और शराबको ही 'अमृत' सिद्ध करनेमें अपनी पण्डिताई और सिद्धाई खर्च कर रहे थे। आठवींसे बारहवीं शताब्दी तकका बौद्धधर्म वस्तुतः वज्रयान या भैरवीचक्र का धर्म था। महायानने ही धारणियों और पूजाओंसे निर्वाणको सुगम कर दिया था, वज्रयानने तो उसे एकदम सहज कर दिया; इसीलिए आगे चलकर वज्रयान 'सहजयान' भी कहा जाने लगा।

वज्रयानके विद्वान् प्रतिभाशाली कवि चौरासी सिद्ध[1] विलक्षण प्रकारसे रहा करते थे। कोई पनहीं बनाया करता था; इसलिए उसे पनहीपा कहते थे। कोई कम्बल ओढ़े रहता था इसलिए उसे कमरीपा कहते थे। कोई डमरू रखनेसे डमरूपा कहा जाता था। कोई ओखल रखनेसे ओखरीपा। ये लोग शराबमें मस्त, खोपड़ीका प्याला लिए श्मशान या विकट जंगलोंमें रहा करते थे। जन साधारणको जितना ही ये लोग फटकारते थे, उतनाही लोग इनके पीछे दौड़ते थे। लोग बोधिसत्त्व-प्रतिमाओं तथा दूसरे देवताओंकी भाँति इन सिद्धोंको अद्भुत चमत्कारों और दिव्य शक्तियोंके धनी समझते थे। ये लोग खुल्लमखुल्ला स्त्रियों और शराबका उपभोग करते थे। राजा अपनी कन्याओंतकको इन्हें प्रदान करते थे। यह लोग त्राटक या हेमाटिज्मकी कुछ प्रक्रियाओंसे वाकिफ थे। इसीके बलपर अपने भोले-भाले अनुयायियोंको कभी-कभी कोई चमत्कार दिखा देते थे, कभी-कभी हाथकी सफाई तथा श्लेष-युक्त अस्पष्ट वाक्योंसे जनतापर अपनी धाक जमाते थे। इन पाँच शताब्दियोंमें धीरे-धीरे एक तरहसे सारी भारतीय जनता इनके चक्करमें पड़कर काम-व्यसनी, मद्यप और मूढ़ विश्वासी बन गयी। राजा लोग जहाँ राज-रक्षाके लिए पल्टनें रखते थे, वहाँ उसके लिए किसी सिद्धाचार्य[2] तथा उसके सैंकड़ों तान्त्रिक अनुयायियोंकी भी एक बहु-व्यय साध्य पल्टन रखा करते थे। देवमन्दिरोंमें बराबर ही बलिपूजा चढ़ती रहती थी। लाभ-सत्कार द्वारा उन्मुक्त होनेसे ब्राह्मणों और दूसरे धर्मानुयायियोंने भी बहुत अंशमें इनका अनुकरण किया।

भारतीय जनता जब इस प्रकार दुराचार और मूढ़-विश्वासके पंकमें कंठतक डूबी हुई थी। ब्राह्मण भी जातिभेदके विष-बीजको शताब्दियोंतक बो जातिको टुकड़े-टुकड़े बाँटकर,

१. देखो वही १३५-२०४। २. जयचन्द गहड़वारके गुरु सिद्धाचार्य जगन्मित्रानंद थे। देखो वही पृ० १५८।

घोर गृह-कलह पैदा कर चुके थे। शताब्दियोंसे श्रद्धालु राजाओं और धनिकोंने चढ़ावा चढ़ाकर, मठों और मंदिरोंमें अपार धन-राशि जमा कर दी थी। इसी समय पश्चिमसे मुसलमानोंने हमला किया। उन्होंने मंदिरोंकी अपार-सम्पत्तिको ही नहीं लूटा, बल्कि अगणित दिव्य-शक्तियोंके मालिक देव-मूर्तियोंको भी चकनाचूर कर दिया। तांत्रिक लोग मंत्र, बलि और पुरश्चरणका प्रयोग करते ही रह गये; किन्तु उससे मुसलमानोंका कुछ नहीं बिगड़ा। तेरहवीं शताब्दीके आरम्भ होते होते तुर्कोंने समस्त उत्तरी भारतको अपने हाथमें कर लिया। बिहारके पालवंशी राजाने राज्य-रक्षाके लिये उडन्तपुरीमें एक तांत्रिक विहार बनाया था, उसे मुहम्मद बिन्-बख्तियारने सिर्फ दो सौ घुड़सवारोंसे जीत लिया। नालन्दाकी अद्भुत शक्तिवाली तारा टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दी गयी। नालंदा और विक्रमशिलाके सैकड़ों तांत्रिक भिक्षु तलवारके घाट उतार दिये गये। यद्यपि इस युद्धमें अपार जन-धनकी हानि हुई, अपार ग्रन्थ-राशि भस्मसात् हुई, सैकड़ों कला कौशलके उत्कृष्ट नमूने नष्टकर दिये गये; तो भी इससे एक फायदा हुआ—लोगोंका जादूका स्वप्न टूट गया।

बहुत दिनोंसे बात चली आती है कि, "शंकराचार्यके ही प्रतापसे बौद्ध भारतसे निकाले गये। शंकरने बौद्धोंको शास्त्रार्थसे ही नहीं परास्त किया, बल्कि उनकी आज्ञासे राजा सुधन्वा आदिने हजारों बौद्धोंको समुद्रमें डुबो और तलवारके घाट उतारकर उनका संहार किया।"[१] यह कथायें सिर्फ दन्तकथायें ही नहीं हैं, बल्कि इनका सम्बन्ध आनन्दगिरि और माधवाचार्यकी "शंकर-दिग्विजय" पुस्तकोंसे है; इसीलिये संस्कृतज्ञ विद्वान् तथा दूसरे शिक्षित जन भी इनपर विश्वास करते हैं, इन्हें ऐतिहासिक तथ्य समझते हैं। कुछ लोग इससे शंकरपर धार्मिक-असहिष्णुताका कलंक लगता देखकर, इसे माननेसे आनाकानी करते हैं; किन्तु, यदि यह सत्य है, तो उसका अपलाप न करना ही उचित है।

शंकरके कालके विषयमें विवाद है। कुछ लोग उन्हें विक्रमका समकालीन मानते हैं। Age of Shankar के कर्त्ता तथा पुराने ढंगके पण्डितोंका यही मत है। लेकिन इतिहासज्ञ इसे नहीं मानते। यह कहते हैं— चूँकि शंकरके शारीरक-भाष्यपर वाचस्पति मिश्रने "भामती" टीका लिखी है, और वाचस्पति मिश्रका समय ईसाकी नवीं शताब्दी उनके अपने ग्रन्थमें ही निश्चित है; इसलिये शंकरका समय नवीं शताब्दीसे पूर्व तो हो सकता है, किन्तु शंकर कुमारिल-भट्टसे पूर्वके नहीं हो सकते हैं। कुमारिल बौद्ध नैयायिक धर्मकीर्तिके समकालीन थे, जो सातवीं शताब्दीमें हुए थे; इसलिये शंकर सातवीं शताब्दीके पहलेके भी नहीं हो सकते। शंकर कुमारिलके समकालीन थे, और दोनोंने एक दूसरेका साक्षात्कार किया था, यह बात हमें "दिग्विजय"से मालूम होती है। इनमें अन्तिम बातमें, जहाँ तक उनके ग्रंथोंका सम्बन्ध है, कोई पुष्टि नहीं मिलती। स्वेन्-चाङ् (सातवीं शताब्दी)के पूर्व, किसी ऐसे प्रबल बौद्ध विरोधी शास्त्रार्थी और शास्त्रार्थीका पता नहीं मिलता। यदि होता, तो

१. "आसेतोरातुषाराद्रेर्बौद्धानावृद्धबालकम्।
न हंति यः स हन्तव्यो भृत्यानित्यन्वशान्नृपः॥" माधवीय शं० दि० १:९३॥
"(कुमारिल)-भट्टपादानुसारि-राजेन सुधन्वना
धर्मद्विषो बौद्धा विनाशिताः।" शं० दि० डिंडिमटीका १:९५॥

ह्वेन्-च्वाङ् अवश्य उसका वर्णन करता। यदि यह कहा जाय कि, शंकराचार्य भारतके दक्षिणी छोरपर हुए थे और उनका कार्य्यक्षेत्र भी दक्षिण-भारत ही रहा होगा; इसलिये संभव है, दक्षिण-भारतके बौद्धोंपर उपरोक्त अत्याचार हुए हों। लेकिन यह भी बात ठीक नहीं जँचती; क्योंकि, छठी शताब्दीके बाद भी कांची और कावेरीपट्टनके रहनेवाले आचार्य धर्मपाल आदि बौद्ध पालि-ग्रन्थकार हुए हैं, जिनकी कृतियाँ अब भी सिंहल आदि देशोंमें सुरक्षित हैं। सिंहलका इतिहास ग्रन्थ "महावंस" राजनीतिक इतिहासकी अपेक्षा धार्मिक इतिहासको अधिक महत्त्व देता है। केरल देश (जहाँ शंकराचार्य पैदा हुए), और द्रविड़ देश, सिंहलके बिल्कुल समीप हैं। यदि ऐसी कोई बात हुई होती, तो यह कभी संभव नहीं था कि, "महावंस" उसका कोई जिक्र न करता। बौद्ध ऐतिहासिकोंका शंकरके शास्त्रार्थपर मौन रहना ही इस बातका काफी प्रमाण है कि, ये घटनाएँ वस्तुतः हुईं ही नहीं। बल्कि रामानुज आदिके चरितोंमें भी भिन्नमतावलम्बियोंके साथ ऐसा ही बर्ताव देखकर तो और भी सन्देह होने लगता है।

बात असल यह है : शंकराचार्य दक्षिणमें एक प्रतिभाशाली पण्डित हुए। उन्होंने "शारीरक-भाष्य" ग्रन्थ लिखा। यद्यपि यह भाष्य एक नये ढंगका था और उसमें कितने ही दार्शनिक सिद्धान्तोंपर बहस की गई थी, तो भी दिङ्नाग, उद्योतकर, कुमारिल, धर्मकीर्त्तिके युगके लिये वह कोई उतना ऊँचा ग्रन्थ न था। उत्तर-भारतीयोंका केरल और द्रविड़ देशीयोंके साथ पक्षपात भी बहुत था। इस पक्षपातका हम अच्छा अनुमान कर सकते हैं, यदि सातवीं शताब्दीके महाकवि बाणभट्टकी कादम्बरीके उस अंशको पढ़ें, जहाँ वह शबरोंके साथ किसी जंगलमें बसे एक द्रविड़ ब्राह्मणका वर्णन करता है। वस्तुतः उत्तरी भारतकी पण्डित-मण्डली, — जो उस समयकी दर-असल पंडित-मंडली थी — शंकरको आचार्य्य माननेके लिये तबतक तैयार न हुई, जबतक उत्तरीय भारतमें दार्शनिकोंकी भूमि मिथिलाके अपने समयके अद्वितीय दार्शनिक सर्व-शास्त्र-निष्णात वाचस्पति-मिश्रने शारीरक-भाष्यकी टीका "भामती" लिखकर शङ्करको भी न सूझनेवाले तत्त्व उसमेंसे निकाल डाले। यथार्थमें वाचस्पतिके कंधेपर चढ़कर ही शंकरको वह कीर्ति और बड़प्पन मिला, जो आज देखा जाता है। यदि "भामती" न लिखी गई होती, तो शंकर-भाष्य कभीका उपेक्षित और विलुप्त हो गया होता; और शंकरके भारतमें आजके गौरव और प्रभावकी तो बात ही क्या? वाचस्पतिने उत्तरी भारतकी पंडित मण्डलीके सामने शंकरकी वकालत की। वाचस्पति मिश्रसे एक शताब्दी पूर्व नालन्दामें आचार्य शान्तरक्षित हुए थे। इनका महान् दार्शनिक ग्रन्थ "तत्त्व-संग्रह" संस्कृतमें उपलब्ध होकर बड़ौदासे प्रकाशित हो चुका है। इस ग्रन्थरत्नमें शान्तरक्षितने अपनेसे पूर्वके चर्चामों दार्शनिकों और दर्शन-ग्रन्थोंके सिद्धान्त उद्धृत कर खंडित किये हैं। यदि वाचस्पति मिश्रसे पूर्व ही शंकर अपनी विद्वत्ता और दिग्विजयसे प्रसिद्ध हो चुके होते, तो कोई कारण नहीं कि, शान्तरक्षित उनका स्मरण न करते।

एक ओर कहा जाता है, शंकरने बौद्धोंको भारतसे मार भगाया और दूसरी ओर हम उनके बाद गौड़-देश (बिहार-बङ्गाल) में पालवंशीय बौद्ध नरेशोंका प्रचण्ड प्रताप फैला देखते हैं; तथा उसी समय उद्दन्तपुरी (बिहार शरीफ)और विक्रमशिला जैसे बौद्ध विश्वविद्यालयोंको

स्थापित होते देखते हैं। इसी समय भारतीय बौद्धोंको हम तिब्बतपर धर्मविजय करते भी देखते हैं। ११वीं शताब्दीमें जब कि, उक्त दन्तकथाके अनुसार भारतमें कोई भी बौद्ध न रहना चाहिए, तब तिब्बतसे कितने ही बौद्ध भारतमें आते हैं; और वह सभी जगह बौद्ध और भिक्षुओंको पाते हैं। पाल-कालके बुद्ध, बोधिसत्त्व और तान्त्रिक देवी-देवताओंकी गृहस्थों हजारों खण्डित मूर्तियाँ उत्तरी-भारतके गाँवोंतकमें पाई जाती हैं। मगध, विशेषकर गया जिलेमें तो शायद. ही कोई गाँव होगा, जिसमें इस कालकी मूर्तियाँ न मिलती हों (गया-जिलेके जहानाबाद सब डिवीजनके कुछ गाँवोंमें इन मूर्तियोंकी भरमार है, केसपा, बेंजन आदि गाँवोंमें तो अनेक बुद्ध, तारा, अवलोकितेश्वर आदिकी मूर्तियाँ उस समयके कुटिलाक्षरोंमें "ये धर्मा हेतुप्रभवा····" श्लोकसे अङ्कित मिलती हैं) वह बतला रही हैं कि, उस समय बौद्धों को किसी शंकरने नेस्तनाबूद न कर पाया था। यही बात सारे उत्तर-भारतमें प्राप्त ताम्र-लेखों और शिला-लेखोंसे भी मालूम होती है। गौड़नृपति तो मुसलमानोंके बिहार बङ्गाल विजय तक बौद्ध धर्म और कलाके महान् संरक्षक थे, अन्तिम काल तक उनके ताम्र-पत्र, बुद्ध भगवान्‌के प्रथम धर्मोपदेश-स्थान मृगदाव (सारनाथ) के लांछन दो मृगोंके बीच रखे चक्रसे अलंकृत होते थे। गौड़-देशके पश्चिममें कान्यकुब्जका राज्य था, जो कि यमुनासे गण्डक तक फैला हुआ था। वहाँके प्रजा-जन और नृपति-गणमें भी बौद्ध-धर्म खूब संमानित था। यह बात जयचन्द्रके दादा गोविन्दचन्द्रके जेतवन-विहारको दिये पाँच गाँवोंके दान-पत्र तथा उनकी रानी कुमारदेवीके बनवाये सारनाथके महान् बौद्ध-मन्दिरसे मालूम होती है। गोविन्द-चन्द्रके पोते जयचन्द्रकी एक प्रमुख रानी बौद्धधर्मावलम्बिनी थी, जिसके लिये लिखी गई प्रज्ञापारमिताकी पुस्तक अब भी नेपाल-दर्बार-पुस्तकालयमें मौजूद है। कन्नौजमें गहड़वारोंके समयकी कितनीही बौद्धमूर्तियाँ मिलती हैं, जो आज किसी देवी-देवताके रूपमें पूजी जाती हैं।

कालिञ्जरके राजाओंके समयकी बनी महोबा आदिसे प्राप्त सिंहनाद-अवलोकितेश्वर आदिकी सुन्दर मूर्तियाँ बतला रही हैं कि, तुर्कोंके आनेके समय तक बुन्देलखण्डमें बौद्धोंकी काफी संख्या थी। दक्षिण-भारतमें देवगिरि (दौलताबाद, निजाम)के पासके एलोराके भव्य गुहा-प्रासादोंमें भी कितनी ही बौद्ध गुहायें और मूर्तियाँ, मलिक-काफूरसे कुछ ही पहले तककी बनी हुई हैं। यही बात नासिकके पाण्डवलेनीकी कुछ गुहाओंके विषयमें भी है। क्या इससे नहीं सिद्ध होता कि, शंकर-द्वारा बौद्ध-धर्मका देश-निर्वासन कल्पना मात्र है। खुद शंकरकी जन्मभूमि केरलसे बौद्धोंका प्रसिद्ध तंत्र-ग्रन्थ "मंजुश्री-मूलकल्प" संस्कृतमें मिला है, जिसे वहीं त्रिवेन्द्रमसे स्व० महामहोपाध्याय गणपतिशास्त्रीने प्रकाशित कराया है। क्या इस ग्रन्थकी प्राप्ति इस बातको नहीं बतलाती कि, सारे भारतसे बौद्धोंका निकालना तो अलग खुद केरलसे भी यह बहुत पीछे लुप्त हुए। ऐसी ही और भी बहुत सी घटनाएँ और प्रमाण पेश किये जा सकते हैं, जिनसे इतिहासकी उक्त झूठी धारणा खण्डित हो जाती है।

लेकिन प्रश्न होता है : तुर्कोंने तो बौद्धों और ब्राह्मणों दोनोंके ही मन्दिरोंको तोड़ा, पुरोहितोंको मारा; फिर क्या वजह है, जो ब्राह्मण भारतमें अब भी हैं, और बौद्ध न रहे? बात यह है : ब्राह्मणधर्ममें गृहस्थ भी धर्मके अगुआ हो सकते थे; बौद्धोंमें भिक्षुओंपर ही धर्मप्रचार और धार्मिक ग्रन्थोंकी रक्षाका भार था। भिक्षुलोग अपने कपड़ों और मठोंके

निवाससे आसानीसे पहचाने जा सकते थे। यही वजह है, जो बौद्धभिक्षुओंको तुर्कोंके आरम्भिक शासनके दिनोंमें रहना मुश्किल हो गया। ब्राह्मणोंमें भी यद्यपि वाममार्गी थे; किन्तु सभी नहीं। बौद्धोंमें तो सबके सब वज्रयानी थे। इनके भिक्षुओंकी प्रतिष्ठा उनके सदाचार और विद्यापर नहीं, बल्कि उनके तथा उनके मंत्रों और देवताओंकी अद्भुत शक्तियोंपर निर्भर थी। तुर्कोंकी तलवारोंने इन अद्भुत शक्तियोंका दिवाला निकाल दिया। जनता समझने लगी, हम धोखेमें थे। इसका फल यह हुआ कि, जब बौद्ध भिक्षुओंने अपने टूटे मठों और मन्दिरों-को फिरसे मरम्मत कराना चाहा, तब उसके लिये उन्हें रुपया नहीं मिला। वस्तुतः, इन आचारहीन, शराबी भिक्षुओंको उस समय—जब कि तुर्कोंके अत्याचारके कारण लोगोंको एक-एक पैसा बहुमूल्य मालूम होता था—कौन रुपयोंकी थैली सौंपता? फल यह हुआ कि, बौद्ध अपने टूटे धर्मस्थानोंकी मरम्मत करानेमें सफल न हो सके और इस प्रकार उनके भिक्षु अशरण हो गये। ब्राह्मणोंमें यह बात न थी। उनमें सबके-सब वाममार्गी न थे, कितने ही अब भी अपनी विद्या और आचरणके कारण पूजे जाते थे। इसलिये उन्हें फिर अपने मन्दिरोंको बनवानेके लिये रुपये मिल गये। बनारसके पास ही बौद्धोंका अत्यन्त पवित्र तीर्थ-स्थान ऋषि-पतन मृगदाव (वर्तमान सारनाथ) है। वहाँकी खुदाईसे मालूम होता है कि, कान्यकुब्जेश्वर गोविन्दचन्द्रकी रानी कुमारदेवीका बनवाया विहार, वहाँका सबसे पिछला विहार था। तुर्कोंने जब इसे नष्ट कर दिया, तो फिर इसके पुनर्निर्माणकी कोशिश नहीं की गयी। इसके विरुद्ध बनारसमें विश्वनाथका मन्दिर, एकके बाद एक, चार बार नये सिरेसे बना। सबसे पुराना मन्दिर विश्वेश्वरगंजके पास था, जहाँ अब मस्जिद है, और शिवरात्रिको लोग अब भी उसमें जल चढ़ाने जाते हैं। उसके टूटनेके बाद वहाँ बना, जिसे आजकल आदिविश्वेश्वर कहते हैं। उसके भी तोड़ देनेपर ज्ञानवापीमें बना, जिसका टूटा हुआ भाग अब भी औरंगजेबकी मस्जिदके एक कोनेमें मौजूद है। इस मन्दिरको जब औरंगजेबने तुड़वा दिया, तब वर्त्तमान मन्दिर बना। नालंदा, उद्दन्तपुरी, जेतवन आदि बौद्ध पुनीत स्थानोंमें भी हम बारहवीं शताब्दीके बादकी इमारतें नहीं पाते। लामा तारानाथके इतिहाससे भी हम जानते हैं कि, विहारोंके तोड़ दिये जानेपर उनके निवासी भिक्षु भाग-भागकर तिब्बत, नेपाल तथा दूसरे देशोंकी ओर चले गये। मुसलमानोंकी भांति हिन्दुओंसे पृथक् बौद्धोंकी जाति न थी। एक ही जाति क्या, एक ही घरमें ब्राह्मण और बौद्ध दोनों मतोंके अनुयायी रहा करते थे। इसलिये अपने भिक्षुओंके अभावमें उन्हें अपनी ओर खींचनेके लिये, जहाँ उनके ब्राह्मण-धर्मी रक्त-सम्बन्धी आकर्षण पैदा कर रहे थे, वहाँ उनमेंसे जुलाहा, धुनिया आदि कितनी ही छोटी समझी जानेवाली जातियोंको मुसलमानोंकी ओरसे भय और प्रलोभन पेश किया जाता था, जिसके कारण एक दो शताब्दियोंमें ही बौद्ध या तो ब्राह्मण-धर्मी बन गये, या मुसलमान।

—राहुल सांकृत्यायन।

विषय-सूची

तृतीय-खण्ड

चतुर्थ-खण्ड

प्रथम-खंड ।

आयु-वर्ष १-४३ ।

(ई. पू. ५६३-४८३) ।

चार लाखका दान दे…सब अलंकारोंसे विभूषित हो, सुन्दर भोजन ग्रहण कर, उपोसथ (व्रत) के नियमोंको ग्रहण कर, सु-अलंकृत शयनागारमें, सुन्दर पलंगपर लेट निद्रित अवस्था में यह स्वप्न देखा —

…बोधिसत्त्व श्वेत सुन्दर हाथी बन,…रुपहली मालाके समान सूँडमें श्वेत कमल लिये, मधुर नाद कर…माताकी शय्याको तीन बार प्रदक्षिणा कर, दाहिनी बगल चीर, कुक्षिमें प्रविष्ट हुये जान पड़े। इस प्रकार (बोधिसत्त्वने) उत्तराषाढ नक्षत्रमें गर्भमें प्रवेश किया।

दूसरे दिन जागकर देवीने इस स्वप्नको राजासे कहा। राजाने ६४ प्रधान ब्राह्मणोंको बुलाकर, गोबर(=हरित) से लिपी, धानकी खीलों आदिसे मङ्गलाचार की हुई भूमिपर महार्घ आसन बिछवा; वहाँ बैठे ब्राह्मणोंको घी मधु-शक्करकी बनी सुन्दर खीरसे भरी और सोने चाँदीकी थालियोंसे ढँकी थालियाँ परोसीं, (तथा) नये कपड़ों और कपिला गौ आदिसे उन्हें सन्तर्पित किया। बाद में—"स्वप्न (का फल) क्या होगा"—पूछा। ब्राह्मणोंने कहा—"महाराज, चिन्ता न करें। आपकी देवीकी कुक्षिमें गर्भ-धारण हुआ है; यह गर्भ बालक है, कन्या नहीं। आपको पुत्र होगा। वह यदि घरमें रहा तो चक्रवर्ती राजा होगा; और यदि घर छोड़ परिव्राजक (=साधु) हुआ, तो कपाट-खुला (=महाज्ञानी) बुद्ध होगा।…

बोधिसत्त्वके…गर्भमें आनेके समयसे ही बोधिसत्त्व और उनकी माताके उपद्रवके निवारण करनेके लिये चारों देवपुत्र (महाराज) हाथमें खड्ग लिये पहरा देते थे। (उसके बाद) बोधिसत्त्वकी माताको (फिर) पुरुषमें राग नहीं हुआ। वह बड़े लाभ और यशको प्राप्त हो, सुखी, अक्लान्त-शरीर (बनी रहीं)।…बोधिसत्त्व जिस कुक्षिमें वास करते हैं, वह चैत्यके गर्भके समान (फिर) दूसरे प्राणीके रहने या उपभोग करनेके योग्य नहीं रहती, इसी लिये (बोधिसत्त्वकी माता) बोधिसत्त्वके जन्मके (एक) सप्ताह बादही मरकर तुषित लोकमें जन्म ग्रहण करती है। जिस प्रकार दूसरी स्त्रियाँ दस माससे कम (या) अधिक में भी, बैठी या लेटी भी, प्रसव करती हैं; ऐसा बोधिसत्त्व-माता नहीं (करती)। वह दस मास बोधिसत्त्वको कोखमें धारण कर खड़ी ही प्रसव करती है। यह बोधिसत्त्वकी माता की धर्मता (=विशेषता) है।

महामाया देवी भी पात्रमें तेलकी भाँति, बोधिसत्त्वको दस मास कोखमें धारण कर गर्भके परिपूर्ण होने पर, नैहर (पीहर) जानेकी इच्छासे शुद्धोदन महाराजसे बोलीं—"देव, (अपने पिताके) कुलके देवदह-नगरको जाना चाहती हूँ"। राजा ने "अच्छा" कह, कपिलवस्तुसे देवदह-नगरतकके मार्गको बराबर, और केला, पूर्णघट, ध्वज, पताका आदि से अलंकृत करा, देवीको सोनेकी पालकीमें बैठा, एक हजार अफसर तथा बहुत भारी परिजन के साथ भेज दिया।

दोनों नगरोंके बीचमें, दोनों ही नगरवालोंका 'लुम्बिनी वन नामक एक मंगल

---

१. रुम्मिन् देई, नौतनवा स्टेशन (O. T. R.) से प्रायः ८ मील पश्चिम, नेपालकी तराईमें

शाल-वन था। उस समय (वह वन) मूलसे लेकर शिखरकी शाखाओं तक फूलोंसे फूला हुआ था। फूलों और डालियोंपर पाँच रङ्गोंके भ्रमर-गण, और नाना प्रकारके पक्षि-संघ मधुर-स्वरसे कूजन करते विचर रहे थे। सारा लुम्बिनी-वन चित्र (=विचित्र)-लता वन जैसा, प्रतापी राज्यके सुसज्जित बाजार जैसा (जान पड़ता) था। उसे देख, देवीके मनमें शाल-वनमें सैर करनेकी इच्छा हुई। अफसर लोग देवीको ले, शाल-वनमें प्रविष्ट हुये। वह एक सुन्दर शालके नीचे जा, उस शाल (=साखू) की डाल पकड़ना चाहती थी। शाल-शाखा अच्छी तरह सिद्ध किये बेंतकी छड़ीके नोककी भाँति मुड़कर देवीके हाथके पास आ गई। उसने हाथ फैला शाखा पकड़ ली। उस समय उसे प्रसव-वेदना आरम्भ हुई। लोग (इर्द-गिर्द) कनात घेर (स्वयं) अलग हो गये। शाल-शाखा पकड़े खड़ेही खड़े, उसे गर्भ-उत्थान हो गया। उस समय चारों शुद्धचित्त महाब्रह्मा सोनेका जाल (हाथमें) लिये हुये पहुँचे, और जालमें बोधिसत्त्वको लेकर माताके सन्मुख रखकर बोले—"देवी! सन्तुष्ट होओ, तुम्हें महाप्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ है"।

जिस प्रकार दूसरे प्राणी माताकी कोखसे गन्दे, मल-विलिप्त निकलते हैं, वैसे बोधिसत्त्व नहीं निकलते। बोधिसत्त्व तो धर्मासन (=व्यास-गद्दी) से उतरते धर्मकथिक (=धर्मोपदेशक) के समान, सीढ़ीसे उतरते पुरुषके समान, दोनों हाथ और दोनों पैर पसारे खड़े हुये (मनुष्य) के समान, माताकी कोखके मलसे बिलकुल अलिप्त, काशी-देशके शुद्ध, निर्मल वस्त्रमें रक्खे मणि-रत्नके समान चमकते हुये माताकी कोखसे निकलते हैं।

तब चारो महाराजाओंने उन्हें सुवर्णजालमें लिये खड़े ब्रह्माओंके हाथसे लेकर···कोमल मृगचर्म···में ग्रहण किया। उनके हाथसे मनुष्योंने दूकूलके करण्डमें ग्रहण किया। मनुष्योंके हाथसे छूटकर (बोधिसत्त्वने) पृथिवी पर खड़े हो, पूर्व दिशा की ओर देखा। उनके लिए अनेक सहस्र चक्रवाल एक आँगन (से) हो गये। वहाँ देवता और मनुष्य गंध-माला आदिसे पूजा करते हुए बोले—"महापुरुष' यहाँ आप जैसा कोई नहीं है, बड़ा तो कहाँसे होगा"। बोधिसत्त्वने चारों दिशायें चारों अनु(=कोण)-दिशायें, नीचे-ऊपर दसों ही दिशाओंका अवलोकन कर, अपने जैसा (किसीको) न देख; उत्तर-दिशा (की ओर)···सात पग गमन किया। (उस समय) महाब्रह्मोंने श्वेतच्छत्र धारण किया, सुयामोंने ताल-व्यजन (पंखा), और अन्य देवताओंने राजाओंके अन्य [1]ककुध-भाण्ड हाथमें लिये। सातवें पगपर पहुँच—"मैं संसारमें सर्वश्रेष्ठ हूँ" (पुरुष-) पुंगवोंकी इस प्रथम वाणीका उच्चारण करते हुये सिंहनाद किया।

जिस समय बोधिसत्त्व लुम्बिनी वनमें उत्पन्न हुये, उसी समय राहुल-माता, छन्न (=छन्दक)-अमात्य (=अफसर), काल-उदायी अमात्य, [2]आजानीय गजराज, कन्थक अश्वराज, [3]महाबोधि-वृक्ष, और खजाने-भरे चार घड़े उत्पन्न हुये। उनमें (क्रमसे) पहिला गव्यूति (=¼ योजन) पर, दूसरा आधे योजनपर, तीसरा तीन गव्यूतिपर और चौथा एक

---

१. खड्ग, छत्र, पगड़ी, पादुका और व्यजन (=पंखा)। २. उत्तम जातिका।
३. बोध-गया, जि० गया (बिहार) का पीपल-वृक्ष।

योजनपर पैदा हुआ। यह सब एकही समय पैदा हुये। दोनों नगरोंके निवासी बोधिसत्त्वको लेकर कपिलवस्तुको लौटे।

२. बाल्य—उस समय शुद्धोदन महाराजके कुलमान्य, आठ समाधियोंवाले, काल-देवल नामक तपस्वी, भोजन करके···देवताओंको देख···उनकी बात सुन, शीघ्र ही देवलोकसे उतर, राजमहलमें प्रवेश कर···आसनपर असीन हो बोले—"महाराज, आपको पुत्र हुआ, मैं उसे देखना चाहता हूँ!" राजा सुअलंकृत कुमारको मंगा, तापसकी वन्दना कराने को ले गया। बोधिसत्त्वके चरण उठकर तापसकी जटामें जा लगे। बोधिसत्त्वके लिये···वंदनीय कोई नहीं है, यदि अनजानेमें बोधिसत्त्वका शिर तापसके चरणपर लग जाता, तो तापसका शिर सात टुकड़े हो जाता। तापसने—"मुझे अपने को विनष्ट करना नहीं चाहिये" सोच, आसनसे उठ बोधिसत्त्वको हाथ जोड़ कर (प्रणाम किया)। राजाने इस आश्चर्यको देख, अपने पुत्रको वंदना की।··· तापसने···बोधिसत्त्वके लक्षण-संपत्‌को देख, "यह बुद्ध होगा या नहीं" इस बातका विचार कर मालूम किया, कि यह "अवश्य बुद्ध होगा"। "यह पुरुष अद्‌भुत है" यह जान वह मुस्कराया, फिर (सोचने लगा), "इसके बुद्ध होने पर (मैं) इसे देख पाऊँगा, या नहीं"। सोचने से (मालूम हुआ) "नहीं देख पाऊँगा"।···, "ऐसे अद्‌भुत पुरुषको बुद्ध होनेपर न देख पाऊँगा, मेरा बड़ा दुर्भाग्य है"—सोच रो उठा। लोगोंने जब देखा, कि "हमारे आर्य (=अय्य=बाबा) अभी हँसे और फिर रोने लग गये" तो उन्होंने पूछा—"क्यों 'भन्ते, हमारे आर्यपुत्रको कोई संकट तो नहीं होनेवाला है?"।

"इनको संकट नहीं है, यह निःसंशय बुद्ध होंगे"।

"तो, (आप) क्यों रोते हैं?"

"इस प्रकारके पुरुषको बुद्ध हुये नहीं देख सकूँगा, मेरा बड़ा दुर्भाग्य है' यही सोच अपने लिये रो रहा हूँ"।

फिर "मेरे संबन्धियोंमेंसे कोई इसे बुद्ध-हुआ देखेगा या नहीं"—विचार, अपने भांजे नालकको इस योग्य जान, अपनी बहिनके घर जाकर (पूछा)—"मेरा पुत्र नालक कहाँ है"?

"घर में है आर्य!"।

"उसे बुला"

(भांजेके) पास आनेपर बोला—"तात, महाराज शुद्धोदनके कुलमें पुत्र उत्पन्न हुआ है, वह बुद्ध-अंकुर है। पैंतीस वर्ष बाद वह बुद्ध होगा, और तू उसे देख पायेगा। आजही परिव्राजक होजा।"

वह—"सत्तासी करोड़ धनवाले कुलमें उत्पन्न बालक हूँ, (लेकिन) मुझे मामा अनर्थमें नहीं लगा रहा है"—सोच, उसी समय बाजारसे काषाय (वस्त्र) तथा मट्टीका पात्र मंगा, शिर-दाढ़ी मुँड़ा, काषाय वस्त्र पहिन "जो लोकमें उत्तम पुरुष है, उसीके नामपर

1. भन्ते स्वामी या गुरुकेलिये कहा जाता था।

मेरी यह प्रव्रज्या है", यह (कहते) बोधिसत्त्वकी ओर अंजली जोड़, पाँचों अंगोंसे वन्दना कर, पात्रको झोलीमें रख, और उसे कंधेपर लटका, हिमालय में प्रवेश कर श्रमण-धर्म (का पालन) करने लगा। फिर तथागतके परम-बोधि प्राप्त कर लेनेपर पास आ, उनसे 'नालक-ज्ञान' को सुन कर, फिर हिमालयमें प्रविष्ट हो, वहाँ अर्हत् पदको प्राप्त हुआ।

बोधिसत्त्वको पाँचवे दिन शिरसे नहला, नामकरण करनेके लिये, राजाने राजभवनको चारों प्रकारके गंधोंसे लिपवा कर, खीलों सहित चार प्रकारके पुष्पोंको बिखेर, निर्जल खीर पकवा, तीनों वेदके पारंगत एक-सौ आठ ब्राह्मणोंको निमंत्रित कर, राजभवनमें बैठा, सु-भोजन करा, महान् सत्कार कर, "बोधिसत्व (का) भविष्य क्या है" (कहते) लक्षण पुछवाया। उनमें लक्षण-जाननेवाले (= दैवज्ञ) ब्राह्मण आठही थे—

राम धजा मंत्री लखन, कोंडनि भोज सुयाम।
द्विज सुदत्त षट्-अंग-युत, आठहुँ मंत्र बखान॥

गर्भधारणके दिन इन्होंने ही सगुन विचारा था। उनमेंसे सातने दो अंगुलियाँ उठा, दो प्रकारका भविष्य कहा—"ऐसे लक्षणोंवाला (पुरुष) यदि गृहस्थ रहे, तो चक्रवर्ती राजा होता है; और प्रव्रजित होने पर बुद्ध।" उनमें सबसे कम-उमरके कौण्डिन्य (नामक) तरुण ब्राह्मणने बोधिसत्त्वके सुन्दर लक्षणोंको देखकर, एक अँगुली उठा कर कहा—"इसके घरमें रहनेका कोई कारण नहीं है, अवश्यही यह विवृत-कपाट बुद्ध होगा।"

वह सातों ब्राह्मण आयु पूर्ण होने पर, अपने कर्मानुसार (परलोक) सिधारे; अकेले कौण्डिन्य ही जीवित रहा। वह महासत्त्व (बोधिसत्त्व) की ओर ध्यान रख गृह त्याग, क्रमशः उरुवेल जा, "यह भूमि-भाग बड़ा रमणीय है, योगार्थी कुल-पुत्रको योगकेलिये यह उपयुक्त स्थान है" (विचार) वहीं रहने लगा। (फिर) "महापुरुष प्रव्रजित हो गये"—सुन, उन (सात) ब्राह्मणोंके लड़कोंके पास जाकर कहा—"सिद्धार्थ-कुमार प्रव्रजित हो गये, वह निःसंशय बुद्ध होंगे। यदि तुम्हारे पिता जीवित होते, तो वह आज घर छोड़ प्रव्रजित हुये होते। यदि तुम चाहते हो, तो आओ हम उस पुरुषके पीछे प्रव्रजित होवें"। सब (लड़के) एकराय न हो सके। तीनने प्रव्रज्या न ग्रहण की। कौण्डिन्य ब्राह्मणको मुखिया बना शेष चार जनोंने प्रव्रज्या ग्रहण की। वह पाँचो जने (आगे चलकर) **पंचवर्गीय स्थविरोंके** नामसे प्रसिद्ध हुये।...

राजाने बोधिसत्त्वके लिये उत्तम रूपवाली सब दोषोंसे रहित धाइयाँ नियुक्त कीं। बोधिसत्त्व अनंत परिवार, तथा महती शोभा और श्रीके साथ बढ़ने लगे। एक दिन राजाके यहाँ (खेत) बोनेका उत्सव था। उस (उत्सवके) दिन लोग सारे नगरको देवताओंके विमानकी भाँति अलंकृत करते थे। सभी दास (=गुलाम), कर्म-कर आदि नये वस्त्र पहिन, गंध-माला आदिसे विभूषित हो, राजमहलमें इकट्ठे होते थे। राजाकी खेतीमें एक हजार हल चलते थे। उस दिन बैलोंकी रूपहली रस्सीकी जोतके साथ एक-कम-आठसौ हल थे। राजाका हल रत्न-सुवर्ण-जटित था। बैलोंकी सींगे, और कोड़े भी सुवर्ण-खचित थे। राजा बड़े दलबलके साथ पुत्रको भी ले वहाँ पहुँचा। खेतोंके पासही बहुत पत्तों तथा

घनीछायावाला एक जामुनका वृक्ष था। उसके नीचे ऊपर सुवर्ण-तार-खचित वितान बँधवा, कनातकी दीवारसे घिरवा, पहरा लगवा कुमार का बिछौना बिछवा, सब अलंकारोंसे अलंकृत हो, अमात्य-गण-सहित राजा हल जोतनेके स्थानपर गया। वहाँ उसने सुनहले हलको पकड़ा और अमात्योंने (अन्य) एक-कम-आठसौ हलोंको, (शेष) जोतनेवालोंने दूसरे हलोंको। इस प्रकार हलोंको पकड़ कर, वे इधर-उधर जोतने लगे। राजा इस पारसे उस पार, उस पार से इस पार आता था। वहाँ बड़ी भीड़ थी, तमाशा था। बोधिसत्त्वको घेरकर बैठी धाइयाँ भ , तमासा देखनेकेलिये कनातके भीतरसे बाहर चली गईं। बोधिसत्त्व इधर उधर किसको न देख, जल्दीसे उठ, आसन मार श्वास-प्रश्वास को रोक, प्रथम-ध्यानमें स्थित हो गये। धाइयोंने खाद्य-भोज्यमें कुछ देर कर दी। सभी वृक्षोंकी छाया घूम गई, किन्तु (बोधिसत्त्व-वाले) वृक्षकी छाया गोल ही खड़ी रही। "आर्यपुत्र अकेले हैं" ख्याल कर जल्दीसे कनात उठाकर घुसकर, (धाइयोंने) बोधिसत्त्वको बिछौनेपर आसन मारे बैठे देखा। उस चमत्कार (=प्रातिहार्य) को देख उन्होंने जाकर राजासे कहा—"देव, कुमार इस तरह बैठा है, सभी वृक्षोंकी छाया लम्बी हो गई हैं, लेकिन जम्बू-वृक्षकी छाया गोलाकार ही खड़ी है"। राजाने वेगसे आ, उस चमत्कारको देख, दूसरी बार पुत्रकी वन्दना की।

× × × × ×

(२)

यौवन, गृहत्याग (ई० पू०–५३१)

१. यौवन–[1]क्रमशः बोधिसत्त्व सोलह-वर्षके हुये। राजाने बोधिसत्त्वके वास्ते तीनों ऋतुओंके लिये तीन महल बनवा दिये। उनमें एक नौ तल, दूसरा सात तल, तीसरा पाँच तलका था। (वहाँ) ४४ हजार नृत्य-करने-वाली स्त्रियोंको नियुक्त किया। बोधिसत्त्व अप्सराओंके समुदायसे घिरे देवताओंकी भाँति, अलंकृत नटियोंसे परिवृत, स्त्रियों-द्वारा बजाये-गये बाजोंसे सेवित, महा-सम्पत्ति उपभोग करते हुये, ऋतुओंके अनुकूल प्रासादों में विहार करते थे। राहुल-माता देवी इनकी अग्रमहिषी (=पटरानी) थी।

इस प्रकार महा-सम्पत्ति उपभोग करते हुये (बोधिसत्त्वके बारेमें) जाति-बिरादरी में चर्चा छिड़ी—"सिद्धार्थ भोगोंमें ही लिप्त हो रहे हैं, किसी कलाको नहीं सीख रहे हैं, युद्ध आने पर क्या करेंगे?" राजाने बोधिसत्त्वको बुलाकर कहा—"तात, तेरी जातिवाले कहते हैं, कि सिद्धार्थ किसी शिल्प-कलाको न सीखकर सिर्फ भोगोंमें ही लिप्त हो रहे हैं। तुम इस विषय में क्या उचित समझते हो?"

"देव! मुझे शिल्प सीखनेको नहीं है। नगरमें मेरा शिल्प देखनेकेलिये ढँढोरा पिटवा दें, आजसे सातवें दिन जातिवालोंको (मैं अपना) शिल्प (करतब) दिखलाऊँगा।"

---

१ जातकट्ठ-कथा (निदान).

राजाने वैसाही किया। बोधिसत्वने अ-क्षण बेध, बाल-बेध जानने-वाले धनुर्धारियों को एकत्रित कर, लोगोंके मध्यमें अन्य धनुर्धारियोंसे (भी) विशेष बारह प्रकारके शिल्प (=कला) जाति-बिरादरी वालोंको दिखलाये।......तब उनके जातिवाले सन्तुष्ट हुये।

एक दिन बोधिसत्त्वने बगीचा देखनेकी इच्छासे सारथीको रथ जोतनेको कहा। उसने 'अच्छा' कह महार्घ उत्तम रथको सब अलङ्कारोंसे अलंकृत कर, श्वेत-कमलपत्रके रंगके चार मङ्गल सिन्धु-देशीय (घोड़ों) को जोत, बोधिसत्त्वको सूचना दी। बोधिसत्त्व देव-विमान-सदृश रथ पर चढ़कर बगीचेकी ओर चले। देवताओंने (सोचा), सिद्धार्थकुमारके बुद्धत्व प्राप्तिका समय समीप है, इसे पूर्व-शकुन दिखलाने चाहियें; और एक देव-पुत्रको जरासे जर्जरित, टूटे-दाँत, पके-केश, टेढ़े-झुके-हुए-शरीर, हाथमें लकड़ी लिये, काँपते हुये दिखलाया—उसे सारथी और बोधिसत्त्व ही देखते थे। तब बोधिसत्त्वने सारथीसे पूछा—'सौम्य, यह कौन पुरुष है, इसके केश भी औरोंके समान नहीं हैं?' ....सारथीका उत्तर पा—'अहो! धिक्कार हैं जन्मको, जहाँ जन्म-लेने-वालेको (ऐसा) बुढ़ापा...हो इत्यादि कह, वहाँसे लौट महलमें चले गये। राजाने जल्दी लौट आनेका कारण पूछा। 'बूढ़े आदमीका देखना' सुन...(राजाने) "मेरा सर्वनाश मत करो, जल्दी ही पुत्र केलिये नाटक तैयार करो, जिसमें भोग भोगते हुए उसे गृह-त्याग याद न आयेगा" यह कह (और) बढ़ाकर चारों दिशाओंमें आधे योजनतक पहरा रख दिया।

फिर एक दिन बोधिसत्त्व उसी प्रकार बगीचे जाते हुये, देवताओं-द्वारा रचित रोगी पुरुषको देख, पहिलेकी भाँति पूछ, शोकाकुल हृदयसे महलमें आये। राजाने सुन, पहले की भाँति, चारों-ओर पौन योजनतक पहरा बैठा दिया।

फिर एक दिन बोधिसत्त्व उसी प्रकार उद्यान जाते हुये, देवताओं-द्वारा रचित मृतकको देख, पहिलेकी भाँति पूछ, उद्विग्न-हृदय महलमें लौट आये। राजाने सुन, पहिलेकी भाँति चारों ओर एक योजनतक पहरा बैठा दिया।

फिर एक दिन बोधिसत्त्वने उद्यान जाते हुये, देवताओं-द्वारा रचित, भली प्रकार पहिने, भली प्रकार (चीवरसे) ढँके एक प्रव्रजित (=संन्यासी) को देखकर, सारथीसे पूछा—'सौम्य! यह कौन है?' सारथीने...देवताओंकी प्रेरणासे—'देव! यह प्रव्रजित है' कह संन्यासियोंके गुण वर्णन किये। बोधिसत्त्वकी प्रव्रज्यामें रुचि हुई। वह उस दिन उद्यानको गये। (यहाँ पर)[1] 'दीर्घ-भाणक' कहते हैं—"चारों शकुनोंको एकही दिन देख कर गये।"

वहाँ दिन भर खेलकर, सुन्दर पुष्करिणीमें स्नानकर, सूर्यास्तके समय सुन्दर शिला-पट्ट पर अपनेको आभूषित करानेकेलिये बैठे। जिस समय उनके परिचारक नाना रङ्गके दुशाले, नाना भाँतिके आभूषण, माला, सुगन्धि, उबटन लेकर चारों ओरसे घेर कर खड़े हुये थे, उसी समय इन्द्रका आसन गर्म हो गया। उसने "कौन मुझे इस सिंहासनसे उतारना चाहता है" सोचते हुए बोधिसत्त्वके अलंकृत होनेका काल देख, विश्वकर्माको बुलाकर कहा—

१. दीर्घ-निकायके कण्ठ करने वाले पुराने आचार्योंको दीर्घ-भाणक कहा जाता था।

"सौम्य विश्वकर्मा ! सिद्धार्थकुमार आज आधी रातके समय महाभिनिष्क्रमण (=गृह-त्याग) करेंगे। यह उनका अन्तिम शृङ्गार है। उद्यानमें जाकर महापुरुषको दिव्य अलंकारोंसे अलंकृत करो।"

उसने 'अच्छा' कह, देव-बलसे उसी क्षण आकर, बोधिसत्वके जामा-साज़ के हाथसे वेठन१ दुशाला लेलिया। बोधिसत्व उसके हाथके स्पर्शसे ही जान गये, कि यह मनुष्य नहीं है, कोई देव-पुत्र है। पगड़ीसे शिरको वेष्टित करते ही शिरमें, मुकुटके रत्नोंकी भाँति एक सहस्र दुशाले उत्पन्न हो गये, फिर बाँधनेपर दस सहस्र, इस प्रकार दस बार वेठने पर दस सहस्र दुशाले उत्पन्न हुये। शिर छोटा, और दुशाले बहुत, इसकी शंका न होनी चाहिये, (क्योंकि) उनमें सबसे बड़ा दुशाला श्यामा-लताके फूलके बराबर था; (और) दूसरे तो कुटुम्बुक पुष्पके बराबर ही थे। बोधिसत्वका शिर किंजल्क-युक्त कुय्यक फूलके समान था। सब आभूषणोंसे आभूषित हो.......... ब्राह्मणोंके 'जय हो'.....आदि वचनों, सूतमागधोंके नाना प्रकारके मंगल-वचनों तथा स्तुति-घोषोंसे सत्कृत हो, (बोधिसत्व) सर्वालङ्कार-विभूषित उत्तम रथपर आरूढ़ हुये।

उसी समय राहुल-माताने पुत्र प्रसव किया, यह सुन शुद्धोदनने उनको शुभ-समाचार सुनानेको हुकुम दिया। बोधिसत्वने उसे सुनकर कहा "राहु पैदा हुआ, बन्धन पैदा हुआ"। राजाने 'पुत्रने क्या कहा' पूछ..., कहा—" अबसे मेरे पोतेका नाम 'राहुल-कुमार' हो"।

बोधिसत्व श्रेष्ठ-रथपर आरूढ़ हो, बड़े भारी यश, अतिमनोरम शोभा तथा सौभाग्यके साथ नगरमें प्रविष्ट हुये। उस समय कोठेपर बैठी, कृशागौतमी नामक क्षत्रिय-कन्याने नगरकी परिक्रमा करते हुये बोधि-सत्वकी रूप-शोभाको देखकर, बहुत ही प्रसन्नता और हर्षसे कहा—

परम शांत माता सोई, परम शांत पितु सोय।
परम शांत नारी सोई, जासु पती अस होय॥

बोधिसत्वने यह सुना तो सोचा—"यह कह रही है, कि इस प्रकारके स्वरूपको देखते माताका हृदय परम-शांत होता है, पिताका हृदय परम-शांत होता है, पत्नीका हृदय परम शांत होता है।" किसके शांत होनेपर हृदय परम-शांत होता है" ? तब (रागादि) मलोंसे विरक्त-हृदय बोधिसत्वको ख्याल आया। राग-रूपी अग्निके शांत होनेपर द्वेष-अग्नि शांत हो जाती है। द्वेष-अग्निके शांत होनेपर मोह-अग्नि शांत होती है। मोह-अग्निके शांत होनेपर अभिमान आदि उपशांत होते हैं। अभिमान आदि सभी मलोंके उपशान्त होनेपर, (मनुष्य) परम शांत होता है। यह मुझे प्रिय-वचन सुना रही है। मैं निर्वाणको ढूँढ़ता फिर रहा हूँ। आज ही मुझे गृह-वास छोड़, निकलकर प्रव्रजित हो, निर्वाणकी खोजमें लगना चाहिये। "यह इसकी गुरु-दक्षिणा होगी"—यह कह एक लाखका मोतीका हार अपने गलेसे उतार कृशागौतमीके पास भेज दिया। वह बड़ी प्रसन्न हुई—सिद्धार्थ-कुमारने मेरे प्रेममें फँसकर भेंट भेजी है।

२. गृहत्याग—बोधिसत्त्व बड़े ही श्री-सौभाग्यके साथ अपने महलमें जा, सुन्दर पलँगपर टले रहे। उसी समय सभी अलंकारोंसे विभूषित, नृत्य, गीत आदिमें दक्ष, देवकन्या, समान अतीव सुन्दर स्त्रियोंने अनेक प्रकारके वाद्योंको लेकर, (कुमारको) खुश करनेके लिये नृत्य, गीत और वाद्य आरम्भ किया। बोधिसत्त्व (रागादि) मलोंसे विरक्त चित्त होनेके कारण, नृत्य आदिमें न रत हो, थोड़ी ही देरमें सो गये। उन स्त्रियोंने भी सोचा—'जिसके लिये हम नाच आदि करती हैं, वह ही सो गया, अब (हम) क्यों तकलीफ करें" (इसलिये वह भी) बाजोंको (साथ) लिये ही सो गईं। उस समय सुगन्धित-तेल-पूर्ण प्रदीप जल रहा था। बोधिसत्त्वने जागकर पलँगपर आसन मार वाद्योंको लिये सोई उन स्त्रियोंको देखा। (उनमें) किन्हींके मुँहसे कफ निकल रहा था, किन्हींका शरीर लारसे भींग गया था, कोई दाँत कटकटा रही थीं, कोई बर्रा रही थीं, किन्हींके मुँह खुले हुये थे, किन्हींके वस्त्र हटे होनेसे अति घृणोत्पादक गुह्य-स्थान दिखाई दे रहे थे। उन (स्त्रियों) के इन विकारोंको देखकर (वे) और भी दृढ़ हो कामनाओंसे विरक्त हुये। उन्हें वह सु-अलंकृत इन्द्र-भवन-सदृश महाभवन सड़ती हुई नाना प्रकारकी लाशोंसे पूर्ण कच्चे श्मशानकी भाँति मालूम होता था। तीनों ही संसार जलते हुये घरकी तरह दिखाई पड़ रहे थे। 'हा!! कष्ट!! हा!! शोक!!!' यह आह निकल रही थी। (उस समय) प्रव्रज्याकेलिये उनका चित्त अत्यन्त आतुर हो उठा। 'आज ही मुझे महाभिनिष्क्रमण (=गृह-त्याग) करना है' यह सोच पलँगसे उतर द्वारके पास जाके पूछा—'यहाँ कौन है?'।

उम्मार (=ड्योढ़ी) में शिर रखकर सोये हुये छन्नने कहा—'आर्यपुत्र! मैं छन्दक हूँ'।

'मैं आज महाभिनिष्क्रमण करना चाहता हूँ, मेरे लिये एक घोड़ा तय्यार करो'।

'अच्छा देव!' कह, उसने घोड़ेका सामान ले, घोड़सारमें सुगंधित तेलके जलते प्रदीपों (के प्रकाश) में, बेलबूटे वाले रेशमी चँदवेके नीचे, सुन्दर स्थानपर खड़े अश्व-राज कन्थकको देखा। यह सोच कि आज मुझे इसे ही सजाना है, उसने कंथकको सज्जित किया। साज सजाये जाते समय (कन्थक) ने सोचा—'(आजका) यह साज बहुत कड़ा है, अन्य दिनोंके बगीचा आदि जाने की भांति नहीं है। आज आर्यपुत्र महाभिनिष्क्रमणके इच्छुक होंगे।' इसलिये प्रसन्न मन हो जोरसे हिनहिनाया। वह शब्द सारे नगरमें फैल जाता, किंतु देवताओंने उस शब्दको रोककर किसीको न सुनने दिया।

बोधिसत्त्वने छन्दकको (तो) उधर भेजा, (और स्वयं) पुत्रको देखना चाहा। फिर अपने आसनको छोड़ राहुल-माताके वास-स्थान की ओर जा, शयनागारका द्वार खोला। उस समय घरके भीतर सुगंधित-तेलके प्रदीप जल रहे थे। राहुल-माता बेला, चमेली आदि फूलोंकी अम्मण (=मनों) भर बिखरी शय्या पर, पुत्रके मस्तक पर हाथ रखे सो रही थीं। बोधिसत्त्वने देहलीमें पैर रख खड़े खड़े देखकर सोचा—"यदि मैं देवीके हाथको हटाकर अपने पुत्रको ग्रहण करूँगा, तो देवी जग जायगी और मेरे गमनमें विघ्न होगा। बुद्ध (होनेके पश्चात्) आकर ही पुत्रको देखूँगा" इसलिये महलसे उतर आये। जातकट्ठकथा[१]में

१. पाली जातकों की व्याख्या।

जो 'उस समय राहुल कुमार एक सप्ताहके थे' कहा है, वह दूसरी अट्ठकथाओंमें नहीं है। इसलिये यहाँ यही समझना चाहिये।

इस प्रकार बोधिसत्त्वने महलसे उतरकर, घोड़ेके पास जाकर कहा—'तात ! कन्थक ! आज तू मुझे एक रात तार दे, मैं तेरी सहायतासे बुद्ध होकर, देवताओं सहित सारे लोकको तारूँगा'। फिर कूदकर कन्थककी पीठपर सवार हुये। कन्थक गर्दनसे लेकर (पूंछ तक) १८ हाथ लम्बा था, वैसेही वह महाकाय, बल-वेग-सम्पन्न, और धुली शंखकी भांति सर्वश्वेत (भी) था। वह यदि हिनहिनाता या पैर खटखटाता, तो (शब्द) सारे नगरमें फैल जाता। इसलिये देवताओंने अपने प्रतापसे (ऐसा किया), जिसमें कि कोई उसे न सुने; (और) हिनहिनानेके शब्दको रोक भी दिया। देवताओंने उसकी टापोंको अपने हाथोंपर ही रोक लिया। बोधिसत्त्व अश्व-पीठपर आरूढहो, छन्दकको उसकी पूँछ पकड़ा, आधी रातके समय महाद्वारके समीप पहुँचे। उस समय राजाने यह सोच, कि कहीं बोधिसत्त्व जिस किसी समय नगर-द्वारको खोलकर, (बाहर) न निकल जायँ, दर्वाजेके दोनों कपाटोंमें से प्रत्येकको एक एक हजार मनुष्यों द्वारा खुलने लायक बनवाया था। बोधिसत्त्व महाबल-सम्पन्न हाथीकी गिनतीसे हजार-करोड़ हाथीके बलको धारण करते थे; और पुरुषके हिसाबसे दस-हजार-करोड़ पुरुषोंका बल। उन्होंने सोचा—'यदि द्वार न खुला तो आज मैं कन्थककी पीठपर बैठे, उसकी पूँछ पकड़कर लटके छन्दकके साथही, उसको जंघेसे दबाकर अठारह हाथ ऊँचे प्राकारको कूदकर पार करूँगा।'

छन्दकने भी सोचा—'यदि द्वार न खुला, तो मैं आर्यपुत्रको[१] कंधे पर बैठा कन्थकको दाहिने हाथसे बगलमें दबा प्राकार फाँद जाऊँगा।' कन्थकने भी सोचा—'यदि द्वार नहीं खुला, तो मैं अपने स्वामीको पीठपर वैसेही बैठे, पूँछ पकड़कर लटकते छन्दकके साथही, प्राकारको लाँघकर पार करूँगा।' यदि द्वार न खुलता, तो तीनोंमेंसे कोई एक ऊपर-सोचे अनुसार करता, लेकिन द्वारमें रहनेवाले देवताने द्वार खोल दिया।

उसी समय बोधिसत्त्वको (वापस) लौटानेके विचारसे आकाशमें खड़े मारने कहा—"मार्ष[१] ! मत निकलो। आजसे सातवें दिन तुम्हारे लिये चक्र-रत्न[२] प्रादुर्भूत होगा। दो हजार छोटे द्वीपों सहित चारों महाद्वीपोंपर राज्य करोगे। लौटो मार्ष !"

"तुम कौन हो ?"

"मैं वशवर्ती हूँ।"

"मार ! मैं भी अपने चक्र-रत्नके प्रादुर्भावको जानता हूँ, लेकिन मुझे राज्यसे कोई काम नहीं। मैं तो साहस्रिक लोक[४] धातुओंको उन्नदित कर बुद्ध बनूँगा।"

"आजसे जब कभी कामनासंबन्धी वितर्क, द्रोहसंबन्धी वितर्क या हिंसासंबन्धी

१. देवता अपने समानवालोंको मार्ष (= मारिस) कहकर पुकारते हैं। २. चक्रवर्तीके दिग्विजयका आयुध। ३. देवताओंका एक समुदाय। ४. एक महाण्डको लोक-धातु कहते हैं।

वितर्क तुम्हारे चित्तमें पैदा होगा, उस समय मैं तुम्हें समझूँगा" यह कहकर मारने मौका ताकते, छायाकी भाँति जरा भी अलग न होते हुये, पीछा करना शुरू किया।

बोधिसत्त्व भी हाथमें आये चक्रवर्ती-राज्यको, थूककी भाँति फेंककर कामनारहित (हो) बड़े सन्मान-पूर्वक नगरसे निकले, (लेकिन उस) आषाढ़की पूर्णिमाको उत्तराषाढ़ नक्षत्रमें फिर नगर देखनेकी इच्छा हुई। चित्तमें ऐसा विचार उत्पन्न होते ही महापृथ्वी कुम्हारके चक्केकी भाँति कंपित हुई (मानो यह कहते)—"महापुरुष! तूने लौटकर देखनेका काम कभी नहीं किया है।" बोधिसत्त्व नगरकी ओर मुँहकर नगरको देखते हुए, उस भूप्रदेशमें "कन्थक-निवर्तन-चैत्य" स्थान दिखा, गंतव्य मार्गकी ओर कंथकका मुँह फेर···चल दिये। उस समय देवताओंने उनके सम्मुख साठ हजार, पीछे साठहजार, दाहिनी तरफ साठहजार और बाईं तरफ भी साठहजार मशाल धारण किये। दूसरे देवता, नाग, सुपर्ण (=गरुण) आदि दिव्य गंध, माला, चूर्ण, धूपसे पूजा करते चल रहे थे। घने मेघोंकी वृष्टिके समय (बरसती) धाराओंकी भाँति, पारिजात-पुष्प, मन्दार-पुष्प, (की वृष्टिसे) आकाश आच्छादित हो गया। उस समय दिव्य संगीत हो रहे थे। चारों ओर आठ प्रकारके, साठ प्रकारके अड़सठ-लाख बाजे बज रहे थे। समुद्रके उदरमें मेघ-गर्जन-कालकी भाँति, युगन्धरके कुक्षिमें सागर-निर्घोषकालकी भाँति (शब्द) हो रहा था। इस श्री और सौभाग्यके साथ जाते हुए बोधिसत्त्व एकही रातमें तीन राज्यों[1] को पार कर, तीस योजन पार अनोमा[2] नामक नदीके तटपर जा पहुँचे।

बोधिसत्त्वने नदीके किनारे खड़े हो छन्दकसे पूछा—

'यह कौनसी नदी है?'

"देव! अनोमा है।"

"हमारी भी प्रव्रज्या अनोमा होगी," यह कह एड़ीसे रगड़कर घोड़ेको इशारा किया। घोड़ा छलाँग मारकर आठ ऋषभ[3] चौड़ी नदीके दूसरे तट पर जा खड़ा हुआ। बोधिसत्त्वने घोड़ेकी पीठसे उतर, रुपहले रेशम जैसे (नर्म) बालुका-तटपर खड़ेहो, छन्दकको कहा—'सौम्य! छन्दक! तू मेरे आभूषणों तथा कन्थकको लेकर जा, मैं प्रव्रजित होऊँगा।'

"देव! मैं भी प्रव्रजित होऊँगा।"

बोधिसत्त्वने तीन बार 'तुझे प्रव्रज्या नहीं मिल सकती, (लौट) जा' कहकर उसे आभरण और कन्थकको दे दिया। फिर "यह मेरे केश श्रमण (=संन्यासी) लोगोंके योग्य नहीं हैं। बोधिसत्त्वके केशको काटने लायक दूसरा कोई नहीं है, इसलिये अपनेही खड्गसे इन्हें काटूँ"—सोच, दाहिने हाथमें तलवार ले बायें हाथसे मौर-सहित जूड़ेको काट डाला। केश सिर्फ दो अंगुलके होकर, दाहिनी ओरसे घूम (प्रदक्षिणा क्रमसे) शिरमें लिपट गये। जिन्दगी भर उनका वही परिमाण रहा। मूँछ (दाढ़ी) भी उसके अनुसार ही रही। फिर शिर-दाढ़ी मुड़ानेका काम नहीं पड़ा। बोधिसत्त्वने मौर-सहित जूड़ाको

१. शाक्य, कोलिय और राम-ग्राम (?)। २. औमी नदी (?) जि० गोरखपुर। ३. ४ धनुष=१६ हाथ।

लेकर—'यदि मैं बुद्ध होऊँ, तो यह आकाशमें ठहरे, भूमिपर न गिरे' सोच (उसे) आकाशमें फेंक दिया। यह चूणामणि-वेष्टन योजनभर (ऊपर) जाकर, आकाशमें ठहरा। शक्र देवराजने दिव्य-दृष्टिसे देख, (उसे) उपयुक्त रत्नमय करण्डमें ग्रहण कर (उस पर) त्रायस्त्रिंश (स्वर्ग) लोकमें चूड़ामड़ि-चैत्यकी स्थापना की—

छेदि मउर वर-गन्ध-युत, नर-वर फेंकु अकासु।
सहस-नयन वासव सिरहिं, कनक पेटारी साजु॥

फिर बोधिसत्वने सोचा—'यह काशीके बने वस्त्र भिक्षुके योग्य नहीं हैं।' तब काश्यप बुद्धके समयके इनके पुराने मित्र घटिकार महाब्रह्माने···मित्र-भावसे सोचा—'आज मेरे मित्रने महाभिनिष्क्रमण किया है। उसके लिये श्रमण (=भिक्षु) के समान ले चलूँ।'

पात्र तीन-चीवर सुई, छूरा बन्धन (जान)।
जल-छाका आठहु इहै, भिक्खुन केर समान॥

(उसने) यह आठ श्रमणोंके परिष्कार (=सामान) (बोधिसत्वको) प्रदान किये। बोधिसत्वने···उत्तम परिव्राजकके वेषको धारण कर छन्दकको प्रेरित किया—

'छन्दक! मेरी बातसे माता पिताको आरोग्य कहना।' छन्दक बोधिसत्वकी वन्दना तथा प्रदक्षिणा कर चला गया। कन्थक खड़ा खड़ा छन्दकके साथ बोधिसत्वकी बातको सुन—"अब फिर मुझे स्वामीका दर्शन न होगा" (सोच) आँखसे ओझल होनेके शोकको सहन न कर सका, और कलेजा फटनेसे मर कर त्रायस्त्रिंश (देव) लोकमें जा कन्थक नामक देव-पुत्र हुआ। छन्दकको पहिले एकही शोक था, कन्थककी मृत्युसे (अब) दूसरे शोकसे पीड़ित हो वह रोता-काँदता नगरको चला।

× × ×

(३)

तप, बुद्धत्व-प्राप्ति (ई. पू.-५२८)

१.-तब बोधिसत्व भी प्रव्रजित हो उसी प्रदेशमें, अनूपिया नामक (नगरके) आमोंके बागमें एक सप्ताह प्रव्रज्या-सुखमें बिता, एक ही दिनमें तीस योजन मार्ग पैदल चलकर, राजगृह पहुँचे। नगरमें प्रविष्ट हो भिक्षाके लिये निकले। सारा नगर बोधिसत्वके रूपको देख धनपालसे प्रविष्ट राजगृहकी भाँति, असुरेन्द्रसे प्रविष्ट देवनगरकी भाँति, संक्षुब्ध हो गया। राजपुरुषोंने जाकर राजासे कहा—"देव! इस रूपका एक पुरुष नगरमें माधूकरी माँग रहा है; वह देव है या मनुष्य, नाग है या गरुड़, कौन है हम नहीं जानते।" राजाने महलके ऊपर खड़े हो महापुरुषको देख आश्चर्यान्वित हो, (अपने) पुरुषोंको आज्ञा दी—'जाओ! देखो तो, यदि अ-मनुष्य होगा, तो नगरसे निकलकर

अन्तर्धान हो जायगा, यदि देवता होगा, तो आकाशसे चला जायगा, यदि नाग होगा तो पृथिवीमें डुबकी लगा लुप्त हो जायगा, यदि मनुष्य होगा, तो मिली हुई भिक्षाका भोजन करेगा, महापुरुषने मिले हुये भोजनको संग्रहकर, 'इतना मेरे लिये पर्याप्त होगा' यह जान प्रवेशवाले नगरद्वारसे ही (बाहर) निकल, पाण्डव-पर्वत[1]की छायामें पूरब-मुँह बैठ, भोजन करना आरम्भ किया। उस समय उनके आँत उलटकर मुँहसे निकलते जैसे मालूम हुये। तब इस जीवन में ऐसा भोजन आँखसे भी न देखा होनेसे, उस प्रतिकूल भोजनसे दुखित हुये अपने आपको स्वयं यों समझाया—

"सिद्धार्थ! तू, अन्न-पान-सुलभ कुलमें—नाना प्रकारके अत्युत्तम रसोंके साथ तीन वर्षके (पुराने) सुगन्धित चावल भोजन किये जानेवाले स्थान में पैदा होकर भी, एक गुदरीधारी (भिक्षु) को देखकर (सोचता था), कि मैं भी कब इसी तरह (भिक्षु) बनकर भिक्षा माँग के भोजन करूँगा, क्या वह भी समय होगा ? और यही सोच घरसे निकला था। अब यह क्या कर रहा है।" इस प्रकार···अपनेको समझा विकार-रहित हो भोजन किया। राजपुरुषोंने उस समाचारको···जाकर राजासे कहा। राजाने दूतकी बात सुन तुरन्त नगरसे निकल, बोधिसत्त्वके पास जा, उनकी सरलचेष्टासे प्रसन्न हो बोधिसत्त्वको (अपने) सभी ऐश्वर्य अर्पण किये। बोधिसत्त्वने कहा—'महाराज! मुझे न वस्तु कामना है, न भोग-कामना। मैं महान् बुद्ध-ज्ञान (=अभिसंबोधि) के लिये निकला हूँ।' राजाने, बहुत तरहसे प्रार्थना करनेपर भी, उनकी रुचि न देख कहा—"अच्छा जब तुम बुद्ध होना, तो···पहिले हमारे राज्यमें आना।" यह यहाँ संक्षेप में है। विस्तार··· के साथ [2]प्रव्रज्या-सूत्रकी अट्ठ-कथामें देखना चाहिये।

बोधिसत्त्वने राजाको वचन दे, क्रमशः विचरण करते हुये, **आलार कालाम** तथा **उद्दक रामपुत्र**के पास पहुँच समाधि (=समापत्ति) सीखी। (फिर) यह ज्ञान (=बोध) का रास्ता नहीं है, (ऐसा) सोच उस समाधिभावनाको अपर्याप्त समझ, देवताओं सहित सभी लोकोंको अपना बल वीर्य दिखानेके लिये, परमतत्त्वकी प्राप्तिके लिये, **उरुवेला**में पहुँच—"*यह प्रदेश रमणीय है*" सोच, वहीं ठहर महान् तप आरम्भ किया।

कौण्डिन्य आदि पाँच परिव्राजक भी गाँव, शहर, राजधानीमें भिक्षाचरण करते, बोधिसत्त्वके पास वहीं पहुँचे। "अब बुद्ध होंगे, अब बुद्ध होंगे" इस आशासे, छ वर्षतक यह आश्रमकी झाड़ू-बहारी आदि सेवाओंको करते, बोधिसत्त्वके पास रहे। बोधिसत्त्व दुष्कर तपस्या करते हुये, (अक्षत) तिलतंडुलसे कालक्षेप करने लगे; पीछे आहार ग्रहण करना भी छोड़ दिये। देवताने रोमकूपों द्वारा (उनके शरीरमें) ओज डाल दिया। (लेकिन फिर भी) निराहारसे वे बहुत दुबले हो गये। उनका कनक वर्ण शरीर काला होगया। (उनके शरीरमें विद्यमान), महापुरुषोंके (बत्तीस) लक्षण छिप गये। एक बार श्वास-रहित ध्यान करते समय, बहुत ही क्लेशसे पीड़ित (एवं) बेहोश हो टहलनेके चबूतरेपर गिर पड़े। तब कुछ देवताओंने कहा—"श्रमण गौतम मर गये।"...इसपर

---

१. वर्तमान रत्नगिरि या रत्नकूट। २. सुत्तनिपात, मार-वग्ग में।

उन्होंने सोचा—"यह दुष्कर तपस्या बुद्धत्व-प्राप्तिका मार्ग नहीं है," और स्थूल आहार ग्रहण करनेके लिये ग्रामों, और बाजारोंमें भिक्षाटनकर, भोजन ग्रहण करना शुरू कर दिया।... उनका शरीर फिर सुवर्ण-वर्ण होगया। पंच-वर्गीयोंने सोचा—"६ वर्ष तक दुष्कर तपस्या करनेपर भी यह बुद्ध नहीं होसका, अब ग्रामादिमें भिक्षा माँग, स्थूल आहार ग्रहण करनेपर क्या होगा?। यह लालची है, तपके मार्गसे भ्रष्ट है। शिरसे नहानेकी इच्छावालेके ओस-बूँदकी ओर ताकनेके समान, इसकी ओर हमारी यह प्रतीक्षा है। इससे हमारा क्या मतलब (सधेगा)?" ऐसा सोच महापुरुषको छोड़, अपने अपने पात्रचीवरको ले यह अठारह योजन दूर [1]ऋषिपतनको चले गये।

उस समय उरुवेला (प्रदेश) के सेनानी नामक कस्बेमें, सेनानी [2]कुटुम्बीके घरमें उत्पन्न सुजाता नामकी कन्याने तरुणी होनेपर, एक बरगदसे यह प्रार्थना की थी—"यदि समानजाति के कुल-घरमें जा, पहिले ही गर्भमें (पुत्र) प्राप्त करूँगी, तो प्रतिवर्ष एक लाखके खर्चसे बलिकर्म (=पूजा) करूँगी"। उसकी यह प्रर्थना पूरी हुई। महासत्त्व (=महापुरुष) की दुष्कर तपश्चर्याका छठा वर्ष पूरा होनेपर, वैशाख-पूर्णिमाको बलिकर्म करनेकी इच्छासे, उसने पहिले हजार गायों को यष्टि-मधु (=जेठीमधु) के वनमें चरवाकर, उनका दूध दूसरी पाँचसौ गायोंको पिलवाया, (फिर) उनका दूध ढाईसौ गायोंको, इस तरह (एकका दूध दूसरेको पिलाते) १६ गायोंका दूध आठ गायोंको पिलवाया। इस प्रकार दूधके गाढ़ापन मधुरता, और ओज के लिये उसने क्षीर-परिवर्तन किया। उसने वैशाखपूर्णिमाके प्रातः ही बलिकर्म करनेकी इच्छासे भिनसारको उठकर उन आठ गायोंको दुहवाया। ...दूध लेकर नये बर्तनमें डाल, अपने हाथसे ही आग जलाकर (खीर) पकाना शुरू किया।...

सुजाताने (अपनी) पूर्णा (नामकी) दासीको कहा—"'अम्म!...जल्दीसे आकर देवस्थानको साफ़कर"। "आर्ये! अच्छा" कह उसके वचनको ग्रहण कर, यह जल्दी जल्दी वृक्षके नीचेको गई। बोधिसत्त्व भी उस रातको पाँच महास्वप्नोंको देख, "निःसंशय आज मैं बुद्ध हूँगा" निश्चय कर उस रातके बीत जानेपर शौच आदिसे निवृत्त हो, भिक्षा-कालकी प्रतीक्षा करते हुये, आकर उसी वृक्षके नीचे, अपनी प्रभासे सारे वृक्षको प्रभासित करते हुये बैठे। पूर्णाने आकर वृक्षके नीचे पूर्वकी ओर ताकते हुये, बोधिसत्त्वको देखा।...देखकर उसने सोचा—"आज हमारे देवता वृक्षसे उतर कर, अपने हाथसे ही बलि ग्रहण करनेको बैठे हैं" और जल्दीसे जाकर यह बात सुजातासे कही। सुजाताने उसकी बातको सुनकर प्रसन्न हो "आजसे अब तू मेरी ज्येष्ठ पुत्री होकर रह"—कह लड़की के योग्य आभरण आदि उसको दिये। यह खीरको थालमें रख दूसरे सोनेके थालसे ढाँक, कपड़ेसे बाँध, सब अलंकारोंसे अपनेको अलंकृत कर, थालको अपने शिरपर रख...वृक्षके नीचे जा, बोधिसत्त्वको देख बहुतही सन्तुष्ट हुई, (और उन्हें) वृक्षका देवता समझ, (प्रथम) देखनेकी जगह ही से (गौरवार्थ) झुककर आ, शिरसे थालको उतार, खोल, सोनेकी झारीमें सुगंधित पुष्पोंसे सुवासित जलले, बोधिसत्त्वके पास जा खड़ी हुई। घटिकार महाब्रह्मा-द्वारा

---

१. सारनाथ (O.T.Ry), जिला बनारस। २. गृहस्थ, बड़ा किसान।
३. वर्तमान मगहीभाषा में "मैयाँ"।

प्रदत्त मट्टीका पात्र (=भिक्षापात्र) इतने समय तक बराबर बोधिसत्त्वके पास रहा, लेकिन इस समय वह अदृश्य हो गया। बोधिसत्त्वने पात्रको न देखकर, दाहिने हाथको फैला जल ग्रहण किया। सुजाताने पात्र-सहित खीरको महापुरुषके हाथोंमें अर्पण किया। महापुरुषने सुजाताकी ओर देखा। उसने इङ्गितसे जानकर—"आर्य! मैंने तुम्हें यह प्रदान किया, इसे ग्रहण कर यथारुचि पधारिये" कह वन्दना की, (और फिर)—"जैसे मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ, ऐसे ही तुम्हारा भी पूर्ण हो" कह, लाख (मुद्राके) मूल्यकी उस सुवर्ण थालको पुराने पत्तलकी भाँति (छोड़) चल दिया।

बोधिसत्त्व बैठे हुए स्थानसे उठ, वृक्षकी प्रदक्षिणा कर, थालको ले [1]नेरञ्जराके तीरपर जा···थालीको रख, (जलमें) उतरकर, स्नानकर···पूर्वकी ओर मुँहकरके बैठे, और·· उन्चास ग्रास करके, उस सभी निर्जल मधुर पायसको (उन्होंने) भोजन किया। वही उनके बुद्ध होनेके बादवाले, [2]बोधि-मण्डमें वास करते सात सप्ताहके उन्चास दिनोंके लिये आहार हुआ। इतने काल तक न दूसरा आहार किया, न स्नान, न मुख धोना···। ध्यान-सुख, मार्ग-(लाभसे उत्पन्न)-सुख, फल-(=दुःख-क्षय)-सुखसे ही (इन सात सप्ताहोंको) बिताया। उस खीरको खा, सोनेकी थाल को···(नदीमें) फेंक दिया।···

२. बुद्धत्वप्राप्ति—बोधिसत्त्व नदीतीरके सुपुष्पित शालवनमें दिनको विहार कर सायङ्काल···[3]बोधिवृक्षके पास गये।···उस समय घास लेकर सामनेसे आते हुये श्रोत्रिय नामक घास काटनेवालेने महापुरुषको आठ मुट्ठी तृण दिया। बोधिसत्त्व तृण ले बोधि-मण्ड पर चढ़, प्रदक्षिणा कर, पूर्वदिशामें जा, पश्चिमकी ओर मुँहकर खड़े हुये।··· (उन्होंने) "यह सभी बुद्धोंसे अपरित्यक्त स्थान है, (यही) दुःख-पञ्जरके विध्वंसनका स्थान है"—जान उन तृणोंके अग्रभागको पकड़कर हिलाया,···जिससे···आसन बन गया। वह तृण ऐसे आकारमें पड़े, कि वैसा (आकार) सुचतुर चित्रकार या पुस्त-कार भी लिखनेमें समर्थ नहीं हो सकता। बोधिसत्त्व बोधिवृक्षको पीठकी ओर करके, दृढ़-चित्त हो—"चाहे मेरा चमड़ा, नसें, हड्डी ही क्यों न बाकी रह जायँ; चाहे शरीर, मांस, रक्त क्यों न सूख जाये; लेकिन तो भी [5]सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त किये बिना इस आसनको नहीं छोड़ूँगा"—निश्चय कर, पूर्वाभिमुख हो, सौ बिजलियोंकी कड़कसे भी न छूटनेवाला अ-पराजित आसन लगा [4]बैठ गये।

उस समय मारदेव-पुत्र-सिद्धार्थकुमार मेरे अधिकारसे बाहर निकलना चाहता है, इसे नहीं निकलने दूँगा"—यह सोच, अपनी सेनाके पास जा, यह बात कह, मार-घोषणा करवाकर, अपनी सेना ले, निकल पड़ा। मारसेनाके बोधि-मंड तक पहुँचते पहुँचते, (सेना) में (से) एक भी खड़ा न रह सका, (सभी) सामने आतेही भाग निकले।··· महा-पुरुष अकेलेही बैठे रहे। मारने अपने अनुचरोंसे कहा—"तात! शुद्धोदन-पुत्र सिद्धार्थके समान दूसरा पुरुष नहीं है। हम लोग सामनेसे युद्ध नहीं कर सकते, (अतः) पीछेसे करें।"···

---

१. निलाजन नदी (जि० गया)। २. बोध-गयाके बुद्ध-मन्दिरका हाता। ३. बोधगयाका प्रसिद्ध पीपल-वृक्ष। ४. चार घण्टे का एक 'याम' होता है। प्रथम-याम, रात्रिका प्रथम तृतीयांश। ५. "पटिच्च-समुप्पाद सुत्त" में विस्तार देखो।

महापुरुष··· मार-सेनाको देख—"यह इतने लोग मेरे अकेलेके लिये बड़ा प्रयत्न कर रहे हैं। इस स्थान पर मेरी माता, पिता, भाई या दूसरा कोई सम्बन्धी नहीं है। यह मेरी दस पारमितायें ही मेरे चिरकालसे पोसे हुये परिजनके समान हैं। इसलिये इन पारमिताओंको ही ढाल बनाकर,(इस) पारमिता-शस्त्रको ही चलाकर, मुझे इस सेना-समूहका विध्वंस करना होगा" (यह सोच), दस पारमिताओंका स्मरण करते हुये बैठे रहे।

···मार वायु, वर्षा, पाषाण, हथियार, धधकती राख, बालू, कीचड़ और अन्धकार-वृष्टिसे बोधिसत्त्वको न भगा सका।···(फिर) बोधिसत्त्वके पास आकर बोला—"सिद्धार्थ! इस आसनसे उठ, यह (आसन) तेरे लिये नहीं, मेरेलिये है।" महासत्त्वने उसके वचनको सुनकर कहा—"मार! तूने न दस पारमितायें पूरी कीं, न उप-पारमितायें, न परमार्थकी पारमितायें, न पाँच महान् त्यागही तूने किये, न जाति-हितका काम, न लोक-हितका काम, न ज्ञानका आचरण किया। यह आसन तेरे लिये नहीं मेरेही लिये है।"

मारने महापुरुषसे पूछा—"सिद्धार्थ तूने दान... दिया है, इसका कौन साक्षी है?" महापुरुषने···"यह अचेतन ठोस महापृथिवी है"—कह चीवरके भीतरसे दाहिने हाथको निकाल, "···मेरे दान देनेकी तू साक्षिणी है" कहा; (और) पृथिवीकी ओर हाथ लटका दिया।···मार-सेना दिशाओंकी ओर भाग चली।···। इस प्रकार सूर्यके रहते रहते महापुरुषने मारसेनाको परास्त कर, चीवरके ऊपर बरसते बोधिवृक्षके टूसोंसे मानों लाल मूंगोंसे पूजित होते हुये, प्रथम-याममें पूर्वजन्मोंका ज्ञान, मध्यम-याममें दिव्य-चक्षु पा, अन्तिम-याममें प्रतीत्य-समुत्पाद-ज्ञानको उपलब्ध किया।···उस समय···(उन्होंने) यह उदान कहा—

"बहु जन्म जगमें दौड़ता, फिरता बराबर मैं रहा।
नित ढूँढ़ता गृहकारको, दुख जन्मके सहता रहा॥
गृह-कार अब देखा गया, है फिर न घर करना मुझे।
कड़ियाँ सभी टूटीं तेरी, गृह-शिखर भी बिखरा पड़ा।
संस्कार-विरहित चित्त अब तृष्णा सभीके नाश से।"

× × ×

(४)

बोधि-वृक्षके नीचे, वाराणसीको (ई. पू. ५२८)

१. बोधिवृक्षके नीचे—उस समय बुद्ध भगवान् उरुवेलामें नेरंजरा नदीके तीर बोधिवृक्षके नीचे, प्रथम अभिसंबोधिको प्राप्त हुये थे। भगवान् बोधिवृक्षके नीचे सप्ताहभर एक आसनसे विमुक्ति (=मोक्ष) का आनंद लेते हुये बैठे रहे। रातको प्रथम याममें प्रतीत्य-समुत्पादका अनुलोम (आदिसे अन्तकी ओर) और, प्रतिलोम (अन्तसे आदिकी ओर) मनन किया।—"अविद्याके कारण संस्कार होता है, संस्कारके कारण विज्ञान होता है, विज्ञानके कारण नाम-रूप, नाम-रूपके कारण छ आयतन, छ आयतनोंके कारण स्पर्श, स्पर्शके कारण

१. जातक (निदान १२)।

वेदना, वेदनाके कारण तृष्णा, तृष्णाके कारण उपादान, उपादानके कारण भव, भवके कारण जाति, जाति (=जन्म) के कारण जरा (=बुढ़ापा), मरण, शोक, रोना-पीटना, दुःख, चित्त-विकार और चित्त-खेद उत्पन्न होते हैं। इस तरह यह (संसार) जो केवल दुःखों का पुंज है, उसकी उत्पत्ति होती है। अविद्याके अ-शेष (=बिल्कुल) विरागसे, (अविद्याका) नाश होनेपर संस्कारका विनाश होता है। संस्कार-विनाशसे विज्ञानका नाश होता है। विज्ञान-नाशसे नाम-रूपका नाश होता है। नाम-रूप नाशसे छः आयतनोंका नाश होता है। छः आयतनोंके नाशसे स्पर्श नाश होता है। स्पर्श-नाशसे वेदनाका नाश होता है। वेदना-नाशसे तृष्णा नष्ट होती है। तृष्णा-नाशसे उपादानका नाश होता है। उपादान-नाशसे भव नाश होता है। भव-नाशसे जाति नाश होती है। जन्म नाशसे जरा, मरण, शोक, रोना-पीटना, दुःख, चित्त-विकार और चित्त-खेद नाश होते हैं। इस प्रकार इस केवल-दुःख-पुञ्जका नाश होता है।" भगवान्‌ने इस अर्थको जान कर, उसी समय यह उदान कहा—

"जब धर्म होते जग प्रकट, सोत्साह ध्यानी विप्र (=अर्हत्) को।
तब शांत हों कांक्षा सभी, देखै स-हेतू धर्मको॥"

फिर भगवान्‌ने रातके मध्य-याममें प्रतीत्य-समुत्पादको अनुलोम-प्रतिलोमसे मनन किया।—"अविद्याके कारण संस्कार होता है० दुःखपुंजका नाश होता है"। भगवान्‌ने इस अर्थको जानकर उसी समय यह उदान कहा—

"जब धर्म होते जग प्रकट, सोत्साह ध्यानी विप्रको।
तब शांत हो कांक्षा सभी ही जानकर क्षय कार्यको॥"

फिर भगवान्‌ने रातके अन्तिम याममें प्रतीत्य-समुत्पादको अनुलोम-प्रतिलोम करके मनन किया।—"अविद्या० केवल-दुःख-पुंजका नाश होता है"। भगवान्‌ने इस अर्थको जानकर उसी समय यह उदान कहा—

जब धर्म होते जग प्रकट, सोत्साह ध्यानी विप्रको।
ठहरै कँपाता मार-सेना, रवि प्रकाशै गगन ज्यों॥"

सप्ताह बीतनेपर भगवान् उस समाधिसे उठकर, बोधिवृक्षके नीचेसे वहाँ गये, जहाँ अजपाल नामक बर्गदका वृक्ष था। वहाँ पहुँचकर अजपाल बर्गदके वृक्षके नीचे सप्ताह भर विमुक्तिका आनंद लेते हुये एक आसनसे बैठे रहे। उस समय एक अभिमानी ब्राह्मण, जहाँ भगवान् थे, वहाँ आया। पास आकर भगवान्‌के साथ…(कुशलक्षेम पूछ कर)…एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े हुये उस ब्राह्मणने भगवान्‌से यों कहा—"हे गौतम! ब्राह्मण, कैसे होता है? ब्राह्मण बनानेवाले कौनसे धर्म (=गुण) हैं?" भगवान्‌ने इस अर्थको जानकर उसी समय यह उदान कहा—

"जो विप्र वाहित-पाप मल-अभिमान-विनु संयत रहे।
वेदांत-पारग ब्रह्मचारी ब्रह्मवादी धर्मसे।
सम नहिं कोई जिससा जगत्‌में।"

गये, जहाँ मुचलिन्द (वृक्ष) था। वहाँ पहुँचकर मुचलिंदके नीचे सप्ताह भर विमुक्तिका आनन्द लेते हुये एक आसनसे बैठे रहे। उस समय सप्ताह भर अ-समय महामेघ, (और) ठंडी हवा-वाली बदली पड़ी। तब मुचलिन्द नाग-राज अपने घरसे निकलकर भगवान्‌के शरीरको सात बार अपने देहसे लपेटकर, शिरके ऊपर अपना बड़ा फण तान कर खड़ा हो गया; जिसमें कि भगवान्‌को शीत, उष्ण, डंस, मच्छर, वात, धूप तथा सरीसृप (=रेंगने वाले) न छूवें। सप्ताह बाद मुचलिन्द नागराज आकाशको मेघ-रहित देख, भगवान्‌के शरीरसे (अपने) देहको हटाकर (और उसे) छिपाकर, बालकका रूप धारणकर भगवान्‌के सामने खड़ा हुआ। भगवान्‌ने इसी अर्थको जानकर उसी समय यह उदान कहा—

> "सन्तुष्ट देखनहार श्रुतधर्मा, सुखी एकान्तमें।
> निर्द्वन्द्व सुख है लोकमें, संयम जो प्राणी मात्रमें॥
> सब कामनायें छोड़ना, वैराग्य है सुख लोकमें।
> है परम सुख निश्चय यही, जो साधना अभिमान का॥

सप्ताह बीतनेपर भगवान् फिर उस समाधिसे उठ, मुचलिंदके नीचेसे वहाँ गये, जहाँ **राजायतन** (वृक्ष) था। वहाँ पहुँचकर राजायतनके नीचे सप्ताहभर विमुक्तिका आनन्द लेते हुये एक आसनसे बैठे रहे। उस समय तपस्सु और भल्लिक (दो) व्यापारी (=बनजारे) उत्कलदेशसे उस स्थानपर पहुँचे। उनकी जात-बिरादरीके देवताने तपस्सु-भल्लिक बनजारोंसे कहा—"मार्ष! बुद्धपदको प्राप्त हो यह भगवान् राजायतनके नीचे विहार कर रहे हैं। जाओ उन भगवान्‌को मट्ठे और लड्डू (=मधुपिंड) से सन्मानित करो, यह (दान) तुम्हारे लिये चिरकालतक हित और सुखका देनेवाला होगा।" तब तपस्सु और भल्लिक बनजारे मट्ठा और लड्डू ले जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। पास जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक तरफ खड़े हो गये। एक तरफ खड़े हुए तपस्सु और भल्लिक बनजारोंने यह कहा—"भन्ते! भगवान्! हमारे मट्ठे (=मन्थ) और लड्डुओंको स्वीकार कीजिये, जिससे कि चिरकालतक हमारा हित और सुख हो।" उस समय भगवान्‌ने सोचा—"तथागत हाथमें नहीं ग्रहण किया करते, मैं मट्ठा और लड्डू किस (पात्र) में ग्रहण करूँ"। तब चारों महाराजा भगवान्‌के मनकी बात जान, चारों दिशाओंसे चार पत्थरके (भिक्षा-) पात्र भगवान्‌के पास ले गये—"भन्ते! भगवान्! इसमें मट्ठा और लड्डू ग्रहण कीजिये।" भगवान्‌ने उस अभिनव शिलामय पात्रमें मट्ठा और लड्डू ग्रहणकर भोजन किया। उस समय तपस्सु-भल्लिक बनजारोंने भगवान्‌से कहा—"भन्ते! हम दोनों भगवान् तथा धर्मकी शरण जाते हैं। आजसे भगवान् हम दोनोंको साञ्जलि शरणागत उपासक जानें।" संसारमें यही दोनों द्वि[1]वचनसे प्रथम उपासक हुये।

सप्ताह बीतनेपर भगवान् फिर इस समाधिसे उठ **राजायतन**के नीचेसे जहाँ **अजपाल** बर्गद था, वहाँ गये। वहाँ अजपाल बर्गदके नीचे भगवान् विहार करने लगे। तब एकान्तमें ध्यानावस्थित भगवान्‌के चित्तमें वितर्क पैदा हुआ—"मैंने गंभीर, दुर्दर्शन, दुर्-ज्ञेय,

1. तब संघके न होनेसे यह बुद्ध और धर्म दो ही की शरण जा सकते थे।

शांत, उत्तम, तर्कसे अप्राप्य, निपुण पण्डितोंद्वारा जानने योग्य, इस धर्मको पा लिया। यह जनता काम-तृष्णामें रमण करनेवाली काम-रत, काममें प्रसन्न है। काममें रमण करने वाली इस जनताके लिये, यह जो कार्य-कारण रूपी प्रतीत्य-समुत्पाद (सिद्धान्त) है, वह दुर्दर्शनीय है। और वह भी दुर्दर्शनीय हैं, जो कि यह सभी संस्कारोंका शमन, सभी मन्त्रोंका परित्याग, तृष्णा-क्षय, विराग, निरोध (दुःख-निरोध), और निर्वाण हैं। मैं यदि धर्मोपदेश भी करूँ और दूसरे उसको न समझ पावें, तो मेरे लिये यह तरद्दुद, और पीड़ा (मात्र) होगी। उसी समय भगवान्‌को पहिले कभी न सुनी यह अद्भुत गाथायें सूझ पड़ीं—

"यह धर्म पाया कष्टसे इसका न युक्त प्रकाशना।
नहि राग-द्वेष-प्रलिप्तको है सुकर इसका जानना॥
गंभीर उल्टी-धारयुक्त दुर्दर्श्य सूक्ष्म प्रवीणका।
तम-पुंज-छादित रागरतद्वारा न संभव देखना॥"

भगवान्‌के ऐसा समझनेके कारण, (उनका) चित्त धर्मप्रचारकी ओर न झुककर अल्प-उत्सुकताकी ओर झुक गया। तब सहापति ब्रह्माने भगवान्‌के चित्तकी बातको जानकर ख्याल किया—"लोक-नाश हो जायगा रे! लोक-विनाश हो जायगा रे! जब तथागत अर्हत् सम्यक् संबुद्धका चित्त धर्म प्रचारकी ओर न झुककर, अल्प-उत्सुकता (=उदासीनता) की ओर झुक जाये" (ऐसा ख्याल कर) सहापति ब्रह्मा...ब्रह्मलोकसे अन्तर्धान हो, भगवान्‌के सामने प्रकट हुआ। फिर सहापति ब्रह्माने उपरना (=चद्दर) एक कंधेपर करके, दाहिने जानुको पृथिवीपर रख, जिधर भगवान् थे उधर हाथ जोड़, भगवान्‌से कहा—"भन्ते! भगवान् धर्मोपदेश करें, सुगत! धर्मोपदेश करें। (दुनियामें) अल्प-मलवाले प्राणी भी हैं, धर्मके न सुननेसे वह नष्ट हो जायेंगे। (उपदेश करें) धर्मको सुननेवाले (भी होवेंगे)"। सहापति ब्रह्माने यह कहा, और यह कहकर यह भी कहा—"मगधमें मलिन चित्तवालोंसे चिन्तित, पहिले अशुद्ध धर्म पैदा हुआ। अमृतके द्वारको खोलनेवाले विमल (पुरुष) से जानेगये इस धर्मको (अब लोक) सुने॥ पथरीले पर्वतके शिखरपर खड़ा (पुरुष) जैसे चारों ओर जनताको देखे। उसी तरह हे सुमेध! हे सर्वत्र नेत्रवाले! धर्मरूपी महलपर चढ़ सब जनताको देखो॥ हे शोक-रहित! शोक-निमग्न जन्म-जरासे पीड़ित जनताकी ओर देखो —

उठ वीर! हे संग्रामजित्! हे सार्थवाह! उऋण-ऋणा।
जग विचर धर्मप्रचार कर, भगवान्! होगा जानना॥

तब भगवान्‌ने ब्रह्माके अभिप्रायको जानकर और प्राणियोंपर दया करके, बुद्ध-नेत्रसे लोकको देखा। बुद्ध-चक्षुसे लोकको देखते हुये भगवान्‌ने जीवोंको देखा, जिनमें कितने ही अल्प-मल, तीक्ष्ण-बुद्धि, सुन्दर-स्वभाव, समझानेमें सुगम प्राणियोंको भी देखा। उनमें कोई-कोई परलोक और दोष (बुराई) से भय करते विहर रहे थे। जैसे उत्पलिनी, पद्मिनी (=पद्मसमुदाय) या पुंडरीकिनीमेंसे कितने ही उत्पल, पद्म या पुंडरीक उदकमें पैदा हुये उदकमें बँधे उदकसे बाहर न निकल (उदकके) भीतर ही डूबकर पोषित होते हैं। कोई कोई उत्पल (नीलकमल), पद्म (रक्तकमल), या पुंडरीक (श्वेतकमल) उदकमें उत्पन्न, उदकमें बँधे (भी) उदकके बराबर ही खड़े होते हैं। कोई-कोई उत्पल, पद्म या पुंडरीक

उदकमें उत्पन्न, उदकमें बँधे (भी), उदकसे बहुत ऊपर निकलकर, उदकसे अलिप्त (ही) खड़े होते हैं। इसी तरह भगवान्‌ने बुद्ध-चक्षुसे लोकको देखते हुये—अल्पमल, तीक्ष्णबुद्धि, सुस्वभाव, सुबोध्य प्राणियोंको देखा; जो परलोक तथा बुराईसे भय खाते विहर रहे थे। देखकर सहापति ब्रह्माको गाथाद्वारा कहा—

"उनके लिये अमृतका द्वार बंद हो गया है, जो कानवाले होनेपर भी, श्रद्धाको छोड़ देते हैं। हे ब्रह्मा ! (वृथा) पीड़ाका ख्यालकर मैं मनुष्योंको इस निपुण, उत्तम, धर्मको नहीं कहता था।"

तब ब्रह्मा सहापति—"भगवान्‌ने धर्मोपदेशके लिये मेरी बात मान ली" यह जान, भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर वहीं अन्तर्धान हो गया।

उस समय भगवान्‌के (मनमें) हुआ—"मैं पहिले किसे इस धर्मकी देशना (=उपदेश) करूँ ? इस धर्मको शीघ्र कौन जानेगा ?" फिर भगवान्‌के (मनमें) हुआ—"यह आलार-कालाम पण्डित, चतुर, मेधावी चिरकालसे अल्प-मलिन-चित्त है; मैं पहिले क्यों न आलार-कालामको ही धर्मोपदेश दूँ ? वह धर्मको शीघ्र ही जान लेगा।" तब गुप्त देवताने भगवान्‌को कहा—"भन्ते ! आलार-कालामको मरे सप्ताह हो गया"। भगवान्‌को भी ज्ञान-दर्शन हुआ—"आलार-कालामको मरे सप्ताह हो गया।" तब भगवान्‌के (मनमें) हुआ—"आलार कालाम महा आजानीय था, यदि वह इस धर्मको सुनता, शीघ्र ही जान लेता।" फिर भगवान्‌के (मनमें) हुआ—"यह उद्दक-रामपुत्र पण्डित चतुर, मेधावी, चिरकालसे अल्प-मलिन चित्त है, क्यों न मैं पहिले उद्दक-रामपुत्रको ही धर्मोपदेश करूँ ? वह इस धर्मको शीघ्रही जान लेगा।" तब गुप्त (=अन्तर्धान) देवताने कहा—"भन्ते ! रात ही उद्दक-रामपुत्र मर गया।" भगवान्‌को भी ज्ञान-दर्शन हुआ।…। फिर भगवान्‌के (मनमें) हुआ—"पञ्च-वर्गीय भिक्षु मेरे बहुत काम करनेवाले थे, उन्होंने साधनामें लगे मेरी सेवाकी थी। क्यों न मैं पहिले पञ्चवर्गीय भिक्षुओंको ही धर्मोपदेश दूँ।" भगवान्‌ने सोचा—"इस समय पञ्चवर्गीय भिक्षु कहाँ विहर रहे हैं ?" भगवान्‌ने अ-मानुष दिव्य विशुद्ध नेत्रोंसे देखा—"पञ्चवर्गीय भिक्षु वाराणसीके 'ऋषिपतन मृग-दाव[1]में विहारकर रहे हैं ?"

तब भगवान् उरुवेलामें इच्छानुसार विहारकर जिधर वाराणसी है, उधर चारिका (=रामत) के लिये निकल पड़े। उपक आजीवक[2] ने देखा—भगवान् बोधि (=बुद्ध गया) और गयाके बीच में जारहे हैं। देखकर भगवान्‌से बोला—"आयुष्मान् (आवुस) ! तेरी इन्द्रियाँ प्रसन्न हैं, तेरा छवि-वर्ण (=कांति) परिशुद्ध तथा उज्ज्वल है। किसको (गुरु) मानकर हे आवुस ! प्रव्रजित हुआ है, तेरा शास्ता (=गुरु) कौन ? तू किसके धर्मको मानता है ?" यह कहनेपर भगवान्‌ने उपक आजीवकको…कहा—"मैं सबको पराजित करनेवाला, सबको जाननेवाला हूँ; सभी धर्मोंमें निर्लेप हूँ। सर्व-त्यागी (हूँ), तृष्णाके क्षयसे हो विमुक्त हूँ; मैं अपनेही जानकर उपदेश करूँगा।

---

१. वर्तमान सारनाथ, बनारस। २. उस समयके नंगे साधुओंका एक सम्प्रदाय था, मक्खली-गोसाल जिसका एक प्रधान-आचार्य था।

मेरा आचार्य नहीं, है मेरे सदृश (कोई) विद्यमान नहीं ।
देवताओं सहित (सारे) लोकमें मेरे समान पुरुष नहीं ।
मैं संसारमें अर्हत् हूँ, अपूर्व शास्ता (=गुरु) हूँ ।
मैं एक सम्यक् संबुद्ध, शीतल तथा निर्वाणप्राप्त हूँ ।
धर्मका चक्का घुमानेके लिये काशियोंके नगरको जारहा हूँ ।
(वहाँ) अन्धे हुये लोकमें अमृत-दुन्दुभी बजाऊँगा ॥"

"आयुष्मन् ! तू जैसा दावा करता है, उससे तो अनन्त जिन हो सकता है ।"

"मेरे ऐसेही सत्त्व जिन होते हैं, जिनके कि आस्रव (=क्लेश=मल) नष्ट हो गये हैं । मैंने पाप (बुराइयों) धर्मोंको जीत लिया है, इसलिये हे उपक ! मैं जिन हूँ ।"

ऐसा कहनेपर उपक आजीवक—"होवोगे आवुस !" कह, शिर हिला, बेरास्ते चला गया ।

× × × ×

(५)

प्रथम धर्मोपदेश । यशकी प्रव्रज्या । (ई. पू. ५२८)

तब भगवान् क्रमशः यात्रा (=चारिका) करते हुए, जहाँ वाराणसी ऋषिपतन मृग-दाव था, जहाँ पञ्चवर्गीय भिक्षु थे, वहाँ पहुँचे । दूरसे आते हुये भगवान्को पञ्चवर्गीय भिक्षुओंने देखा, देखतही आपसमें पक्का किया—

"आवुसो ! यह बाहुलिक (=बहुत जमा करनेवाला) साधना-भ्रष्ट बाहुल्य-परायण (=जमा करनेकी ओर लौटा हुआ) श्रमण गौतम आ रहा है । इसे अभिवादन नहीं करना चाहिये, न प्रत्युत्थान (=सत्कारार्थ खड़ा होना) करना चाहिये । न इसका पात्र-चीवर (आगे बढ़कर) लेना चाहिये, केवल आसन रख देना चाहिये, यदि इच्छा होगी तो बैठेगा ।"

जैसे-जैसे भगवान् पञ्चवर्गीय भिक्षुओंके समीप आते गये, वैसेही वैसे वह...अपनी प्रतिज्ञापर स्थिर न रह सके । (अन्तमें) भगवान्के पास जा, एकने भगवान्का पात्र-चीवर लिया, एकने आसन बिछाया ; एकने पादोदक (=पैर धोनेका जल), पादपीठ (=पैरका पीढ़ा), पादकठलिका (पैर रगड़नेकी लकड़ी) ला पास रक्खी । भगवान् बिछाये आसनपर बैठे । बैठकर भगवान्ने पैर धोये । वह भगवान्के लिये 'आवुस' शब्दका प्रयोग करते थे । ऐसा करनेपर भगवान्ने कहा—"भिक्षुओ ! तथागतको नाम लेकर या 'आवुस' कहकर मत पुकारो । भिक्षुओ ! तथागत अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध हैं । इधर कान दो, मैंने जिस अमृतको पाया है, उसका तुम्हें उपदेश करता हूँ । उपदेशानुसार आचरण करनेपर, जिसके लिये कुलपुत्र घरसे बेघरहो संन्यासी होते हैं, उस अनुत्तम ब्रह्मचर्यफलको इसी जन्ममें शीघ्रही स्वयं जानकर=साक्षात्कारकर=उपलाभकर विचरोगे ।"

ऐसा कहनेपर पञ्चवर्गीय भिक्षुओंने भगवान्को कहा—"आवुस ! गौतम उस साधनमें, उस धारणामें, उस दुष्कर तपस्यामें भी तुम आर्योंके ज्ञानदर्शनकी पराकाष्ठाकी विशेषता, उत्तर-मनुष्य-धर्म (=दिव्य शक्ति)को नहीं पा सके ; फिर अब बाहुलिक साधना-भ्रष्ट,

बाहुल्यपरायण (=जमाकरनेकी ओर पलट गये), तुम आर्य-ज्ञान-दर्शनकी पराकाष्ठा, उत्तर-मनुष्य-धर्मको क्या पाओगे ।''

यह कहनेपर भगवान्‌ने पञ्चवर्गीय भिक्षुओंसे कहा—"भिक्षुओ। तथागत बाहुलिक नहीं है, और न साधना से भ्रष्ट है, न बाहुल्यपरायण है। भिक्षुओ ! तथागत अर्हत् सम्यक् संबुद्ध हैं ०। ० उपलाभकर विहार करोगे।

दूसरी बारभी पञ्चवर्गीय भिक्षुओंने भगवान्‌को कहा—"आवुस ! गौतम ०।" दूसरी बार भी भगवान्‌ने फिर (वही) कहा०। तीसरी बारभी पञ्चवर्गीय भिक्षुओंने भगवान्‌को (वही) कहा०। ऐसा कहनेपर भगवान्‌ने पञ्चवर्गीय भिक्षुओंको कहा—"भिक्षुओ ! इससे पहिले भी क्या मैंने (तुमसे) कभी इस प्रकार कहा है ?"

"भन्ते ! नहीं"

"भिक्षुओ ! तथागत अर्हत्० विहार करोगे ।"

(तब) भगवान् पञ्चवर्गीय भिक्षुओंको समझानेमें समर्थ हुये। तब पञ्चवर्गीय भिक्षुओंने भगवान्‌से (उपदेश) सुननेकी इच्छासे कान दिया,...चित्त उधर किया।[1]...

धर्मचक्र-प्रवर्तन-सूत्र ।

[2]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् वाराणसीके ऋषिपतन मृगदावमें विहार करते थे। यहाँ भगवान्‌ने पञ्चवर्गीय भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! इन दो अन्तों (=अतियों) का प्रव्रजितोंको नहीं सेवन करना चाहिये। कौनसे दो ? (१) जो यह हीन, ग्राम्य, पृथग्जनों (=भूले मनुष्यों) के (योग्य), अनार्य(-सेवित), अनर्थोंसे युक्त, कामवासनाओंमें काम-सुख-लिप्त होना है; और (२) जो दुःख (-मय), अनार्य(-सेवित) अनर्थोंसे युक्त कायक्लेश (=आत्म-पीड़ा) में लगना है। भिक्षुओ ! इन दोनों ही अन्तों (=अति) में न जाकर, तथागतने मध्यम-मार्ग खोज निकाला है, (जोकि) आँख देनेवाला, ज्ञान-करानेवाला, उपशम (=शांति) के लिये, अभिज्ञ होनेके लिये, सम्बोध (=परिपूर्ण-ज्ञान) के लिये, निर्वाण के लिये है। वह कौनसा मध्यम-मार्ग (=मध्यम-प्रतिपद्) तथागतने खोज निकाला है; (जोकि)० ? यह यही [3]आर्य-अष्टांगिक मार्ग है; जैसे कि—सम्यक्(=ठीक)-दृष्टि, सम्यक्-संकल्प, सम्यक्-वचन, सम्यक्-कर्म, सम्यक्-आजीविका, सम्यक्-व्यायाम (=प्रयत्न, परिश्रम), सम्यक्-स्मृति, सम्यक्-समाधि। यह है भिक्षुओ ! मध्यम-मार्ग (जिसको)०।

"यह भिक्षुओ ! दुःख आर्य (=उत्तम)-सत्य (=सच्चाई) है—जन्म भी दुःख है, जरा भी दुःख है, व्याधि भी दुःख है, मरण भी दुःख है, अप्रियोंका संयोग दुःख है, प्रियोंका वियोग भी दुःख है, इच्छा करनेपर किसी (चीज़) का नहीं मिलना भी दुःख है। संक्षेपमें पाँच [4]उपादानस्कन्ध ही दुःख हैं। भिक्षुओ ! दुःख-समुदय (=दुःख-कारण) आर्य-सत्य है। यह जो तृष्णा है—फिर जन्मनेकी, खुश होनेकी, राग-सहित जहाँ तहाँ प्रसन्न

---

१. महावग्ग। २. संयुक्त नि० ५५ : २: १, विनय (महावग्ग)। ३. विस्तार के लिये आगे "सतिपट्ठान-सुत्त" को देखो। ४. रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान।

होनेवाली; जैसे कि—काम-तृष्णा, भव(=जन्म)-तृष्णा, विभव-तृष्णा । भिक्षुओ! यह है दुःख-**निरोध** आर्य-सत्य । जोकि उसी तृष्णाका सर्वथा विराग होना, निरोध=त्याग =प्रतिनिस्सर्ग=मुक्ति=न लीन होना । भिक्षुओ! यह है दुःख-निरोधकी ओर जानेवाला मार्ग (**दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद्**) आर्य सत्य । यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग है ।...

"यह दुःख आर्य-सत्य है' भिक्षुओ! यह मुझे अ-श्रुत-पूर्व धर्मोमें, आँख उत्पन्न हुई=ज्ञान उत्पन्न हुआ=प्रज्ञा उत्पन्न हुई=विद्या उत्पन्न हुई=आलोक उत्पन्न हुआ । 'यह दुःख आर्य-सत्य परिज्ञेय है' भिक्षुओ! यह मुझे पहिले न सुने गये धर्मोमें० । (सो यह दुःख-सत्य) परि-ज्ञात है" भिक्षुओ! यह पहिले न सुने गये धर्मोमें० ।

"यह दुःख-समुदय आर्य सत्य है' भिक्षुओ! यह मुझे पहिले न सुने गये धर्मोमें आँख उत्पन्न हुई, ज्ञान उत्पन्न हुआ=प्रज्ञा उत्पन्न हुई=विद्या उत्पन्न हुई=आलोक उत्पन्न हुआ । "यह दुःख-समुदय आर्य-सत्य प्रहातव्य (=त्याज्य) है", भिक्षुओ! यह मुझे० । "०प्रहीण (छूट गया)" यह भिक्षुओ! मुझे० ।

"यह दुःख-निरोध आर्य-सत्य है' भिक्षुओ! यह मुझे पहिले न सुने गये धर्मोमें आँख उत्पन्न हुई० । 'सो यह दुःख-निरोध आर्य-सत्य साक्षात् (=प्रत्यक्ष) करना चाहिये' भिक्षुओ! यह मुझे० । "यह दुःख-निरोध-सत्य साक्षात् किया" भिक्षुओ! यह मुझे० ।

"यह दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् आर्यसत्य है' भिक्षुओ! यह मुझे पहिले न सुने गये धर्मोमें, आँख उत्पन्न हुई० । यह दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् आर्यसत्य भावना करना चाहिये'; भिक्षुओ! यह मुझे० । 'यह दुःख-निरोधगामिनी-प्रतिपद् भावनाकी' भिक्षुओ! यह मुझे० ।

"भिक्षुओ! जबतक कि इन चार आर्यसत्योंका (उपरोक्त) प्रकारसे तेहरा (हो) बारह आकारका यथार्थ विशुद्ध ज्ञान-दर्शन न हुआ, तबतक मैंने भिक्षुओ! यह दावा नहीं किया कि—'देवों सहित मार-सहित ब्रह्मा-सहित (सभी) लोकमें, देव-मनुष्य-सहित, श्रमण-ब्राह्मण-सहित (सभी) प्रजा (=प्राणी) में, अनुत्तर (जिससे उत्तम दूसरा नहीं), सम्यक्-संबोध (=परमज्ञान) को मैंने जान लिया' । भिक्षुओ! (जब) इन चार आर्य-सत्यों का (उपरोक्त) प्रकारसे तेहरा (हो) बारह आकारका यथार्थ विशुद्ध ज्ञान-दर्शन हुआ, तब मैंने भिक्षुओ! यह दावा किया, कि "देवों सहित० मैंने जान लिया । मैंने ज्ञानको देखा । मेरी विमुक्ति (मुक्ति) अचल है । यह अंतिम जन्म है । फिर अब आवागमन नहीं ।'

[1]भगवान्‌ने यह कहा । संतुष्ट हो **पंचवर्गीय** भिक्षुओंने भगवान्‌के वचनका अभि-नन्दन किया । इस व्याख्यान (=व्याकरण) के कहे जानेके समय, आयुष्मान् कौण्डिन्यको, "जो कुछ समुदय-धर्म (=कारण-स्वभाव-वाला) है, वह सब निरोध-धर्म (=नाश-स्वभाव-वाला) है" यह विरज=विमल धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ ।...तब भगवान्‌ने उदान कहा— "अहा! कौण्डिन्यने जान लिया अहा! कौण्डिन्यने जान लिया!" इसीलिये आयुष्मान् कौण्डिन्यका आज्ञात (=जानलिया) कौण्डिन्य ही नाम होगया । × × ×

---

१. सं. नि. ५५: २: १; विनय (महावग्ग १)

तब[1] दृष्टधर्म=प्राप्तधर्म=विदितधर्म=पर्यवगाढधर्म, संशयरहित, विवादरहित, शास्ता (=गुरु=बुद्ध) के शासन (=धर्म) में विशारद, स्वतंत्र हो, आयुष्मान् आज्ञात कौण्डिन्यने भगवान्‌से कहा—"भन्ते! भगवान्‌के पास मुझे प्रव्रज्या[2] मिले, उपसम्पदा[3] मिले।" भगवान्‌ने कहा—"भिक्षु! आओ, धर्म सु-आख्यात[4] है, अच्छी तरह दुःखके क्षयके लिये ब्रह्मचर्य (का पालन) करो"। यही उन आयुष्मान् की उपसंपदा हुई।

भगवान्‌ने उसके पीछे भिक्षुओंको फिर धर्म-संबंधी कथाओंका उपदेश किया; अनुशासन किया। भगवान्‌के धार्मिक कथाओंका उपदेश करते=अनुशासन करते समय आयुष्मान् वप्प और आयुष्मान् भद्दियको भी—'जो कुछ समुदय-धर्म है, वह सब निरोध-धर्म है" यह विरज=विमल=धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ। तब दृष्टधर्म=प्राप्त-धर्म० ०स्वतंत्र० उन्होंने भगवान्‌से कहा—"भन्ते! भगवान्‌के पास हमें प्रव्रज्या मिले, उपसम्पदा मिले"। भगवान्‌ने कहा—"भिक्षु! आओ, धर्म सु-आख्यात है, अच्छी तरह दुःखके क्षयके लिये ब्रह्मचर्य (•पालन) करो।" यही उन आयुष्मानोंकी उपसंपदा हुई।

उसके पीछे भगवान् (भिक्षुओंद्वारा) लाये भोजनको ग्रहण करते, भिक्षुओंको धार्मिक कथाओंद्वारा उपदेश करते=अनुशासन करते (रहे)। तीन भिक्षु जो भिक्षा माँगकर लाते, उसीसे छओं जने निर्वाह करते। भगवान्‌के धार्मिक कथा उपदेश करते=अनुशासन करते, आयुष्मान् महानाम और आयुष्मान् अश्वजित्‌को भी—'जो कुछ समुदय धर्म है०।" ०यही उन आयुष्मानोंकी उपसंपदा हुई।···।

उस[5] समय यश नामक कुलपुत्र, वाराणसीके श्रेष्ठीका सुकुमार लड़का था। उसके तीन प्रासाद थे—एक हेमन्तका, एक ग्रीष्मका, एक वर्षाका। वह वर्षाके चारों महीने वर्षा-कालिक-प्रासादमें, अ-पुरुषों (=स्त्रियों) के बाजोंसे सेवित हो, प्रासादके नीचे न उतरता था। (एक दिन)···यश कुलपुत्रकी···निद्रा खुली।—सारी रात वहाँ तेल-दीप जलता था। तब यश कुलपुत्रने···अपने परिजनको देखा—किसीकी बगलमें वीणा है, किसीके गलेमें मृदङ्ग है···। किसीको खुले-केश, किसीको लार-गिराते, किसीको बर्राते, साक्षात् श्मशानसा देखकर, (उसे) घृणा उत्पन्न हुई, वैराग्य चित्तमें आया। यश कुल-पुत्रने उदान कहा—"हा! संतप्त!! हा! पीड़ित!!"

यश कुलपुत्र सुनहला जूता पहिन, घरके फाटककी ओर गया···। फिर···नगर-द्वार की ओर···। तब यश कुल-पुत्र वहाँ गया, जहाँ ऋषिपतन मृगदाव था। उस समय भगवान् रातके भिनसारको उठकर, खुले (स्थान) में टहल रहे थे। भगवान्‌ने दूरसे यश कुल-पुत्रको आते देखा। देखकर टहलनेकी जगहसे उतरकर, बिछे आसनपर बैठ गये। तब यश कुलपुत्रने भगवान्‌के समीप (पहुँच) उदान कहा—"हा! सन्तप्त!! हा! पीड़ित!!।" भगवान्‌ने यश कुलपुत्रको कहा—"यश! यह है अ-संतप्त, यश! यह है अ-पीड़ित। यश! आ बैठ, तुझे धर्म बतलाता हूँ।" तब यश कुल-पुत्रने "यह अ-सन्तप्त है,

---

१. महावग्ग १. । २. श्रामणेर-संन्यास । ३. भिक्षु-संन्यास । ४. स्याख्यात= सुन्दर प्रकारसे वर्णित । ५. महावग्ग १. ६. "श्रेष्ठी" यह नगरका एक अवैतनिक पदाधिकारी होता था, जो कि धनिक व्यापारियोंमेंसे बनाया जाता था।

यह अ-पीड़ित है" यह (सुन) आह्लादित, प्रसन्न हो, सुनहले जूतेको उतार, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। पास जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे यश कुलपुत्रको, भगवान्ने आनुपूर्वी कथा कही, जैसे—दान-कथा, शीलकथा, स्वर्ग-कथा, कामवासनाओंका दुष्परिणाम-अपकार-दोष, निष्कामताका माहात्म्य प्रकाशित किया। जब भगवान्ने यशको भव्य-चित्त, मृदु-चित्त, अनाच्छादित-चित्त, आह्लादित-चित्त, प्रसन्न-चित्त देखा; तब जो बुद्धोंकी उठानेवाली (=समुत्कर्षक) देशना (=उपदेश) है—दुःख, समुदय (=दुःखका कारण), निरोध (=दुःखका नाश), और मार्ग (=दुःख-नाशका उपाय)—उसे प्रकाशित किया। जैसे कालिमा-रहित शुद्ध-वस्त्र अच्छी तरह रंग पकड़ता है, वैसेही यशकुल-पुत्रको उसी आसनपर "जो कुछ समुदय-धर्म है, वह निरोध-धर्म है" यह वि-रज=निर्मल धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ।

यश कुल-पुत्रकी माता प्रासादपर चढ़, यशकुल-पुत्रको न देख, जहाँ श्रेष्ठी गृह-पति था वहाँ गई, (और)...कहा—'गृहपति! तुम्हारा पुत्र यश दिखाई नहीं देता है?' तब श्रेष्ठी गृह-पति चारों ओर सवार छोड़, स्वयं जिधर ऋषि-पतन मृग-दाव था, उधर गया। श्रेष्ठी गृहपति सुनहले जूतोंका चिह्न देख, उसीके पीछे पीछे चला। भगवान्ने श्रेष्ठी गृहपतिको दूरसे आते देखा। तब भगवान्को (ऐसा विचार) हुआ—"क्यों न मैं ऐसा योग-बल करूँ, जिससे श्रेष्ठी गृहपति यहीं बैठे यशकुल-पुत्रको न देख सके।" तब भगवान्ने वैसाही योग-बल किया। श्रेष्ठी गृहपतिने जहाँ भगवान् थे वहाँ...जाकर भगवान्से कहा—"भन्ते! क्या भगवान्ने यश कुल-पुत्रको देखा है?"

"गृहपति! बैठ। यहीं बैठा यहाँ बैठे यश कुलपुत्रको तू देखेगा।"

श्रेष्ठी गृहपति—"यहीं बैठा यहाँ बैठे यश कुल-पुत्रको देखूँगा" यह (सुन) आह्लादित प्रसन्न हो, भगवान्को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गया।...भगवान्ने आनुपूर्वी कथा, जैसे—'दानकथा०' प्रकाशित की। श्रेष्ठी गृहपतिको उसी आसनपर० धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ। भगवान्के धर्ममें स्वतंत्र हो, वह भगवान्से बोला—"आश्चर्य! भन्ते! आश्चर्य! भन्ते!! जैसे औंधेको सीधा कर दे, ढँकेको उघाड़ दे, भूलेको रास्ता बतला दे, अंधकारमें तेलका प्रदीप रख दे, जिसमें कि आँखवाले रूप देखें; ऐसेही भगवान्ने अनेक पर्यायसे धर्मको प्रकाशित किया। यह मैं भगवान्की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी। आजसे मुझे भगवान् सांजलि शरणागत उपासक ग्रहण करें।" वह (गृहपति) ही संसारमें तीन-वचनोंवाला[1] प्रथम उपासक हुआ।

जिस समय पिताको धर्मोपदेश किया जा रहा था, उस समय देखे और जानेके अनुसार प्रत्यवेक्षण (=गंभीर चिन्तन) करते, यश कुल-पुत्रका चित्त अलिप्त हो आस्रवों (=दोषों =मलों) से मुक्त हो गया। तब भगवान्के (मनमें) हुआ—"पिताको धर्म-उपदेश० यश कुल-पुत्रका चित्त अलिप्त हो, आस्रवोंसे मुक्त होगया। (अब) यश कुलपुत्र पहिलेकी गृहस्थ-अवस्थाकी भाँति हीन (-स्थिति) में रह कामोपभोग करनेके योग्य नहीं है, क्यों न

---

1. बुद्ध, धर्म और संघ तीनोंकी शरणागत होनेका वचन।

तब दृष्टधर्म=प्राप्तधर्म=विदितधर्म=पर्यवगाढधर्म, संशयरहित, विवादरहित, शास्ता (=गुरु=बुद्ध) के शासन (=धर्म) में विशारद, स्वतंत्र हो, आयुष्मान् आज्ञात कौण्डिन्यने भगवान्‌से कहा—"भन्ते! भगवान्‌के पास मुझे प्रव्रज्या मिले, उपसम्पदा मिले।" भगवान्‌ने कहा—"भिक्षु! आओ, धर्म सु-आख्यात है, अच्छी तरह दुःखके क्षयके लिये ब्रह्मचर्य (का पालन) करो"। यही उन आयुष्मान् की उपसंपदा हुई।

भगवान्‌ने उसके पीछे भिक्षुओंको फिर धर्म-संबंधी कथाओंका उपदेश किया; अनुशासन किया। भगवान्‌के धार्मिक कथाओंका उपदेश करते=अनुशासन करते समय आयुष्मान् वप्प और आयुष्मान् भद्दियको भी—'जो कुछ समुदय-धर्म है, वह सब निरोध-धर्म है" यह विरज=विमल=धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ। तब दृष्टधर्म=प्राप्त-धर्म० ०स्वतंत्र० उन्होंने भगवान्‌से कहा—"भन्ते! भगवान्‌के पास हमें प्रव्रज्या मिले, उपसम्पदा मिले"। भगवान्‌ने कहा—"भिक्षु! आओ, धर्म सु-आख्यात है, अच्छी तरह दुःखके क्षयके लिये ब्रह्मचर्य (-पालन) करो।" यही उन आयुष्मानोंकी उपसंपदा हुई।

उसके पीछे भगवान् (भिक्षुओंद्वारा) लाये भोजनको ग्रहण करते, भिक्षुओंको धार्मिक कथाओंद्वारा उपदेश करते=अनुशासन करते (रहे)। तीन भिक्षु जो भिक्षा माँगकर लाते, उसीसे छओ जने निर्वाह करते। भगवान्‌के धार्मिक कथा उपदेश करते=अनुशासन करते,आयुष्मान् महानाम और आयुष्मान् अश्वजित्‌को भी—'जो कुछ समुदय धर्म है०।" ०यही उन आयुष्मानोंकी उपसंपदा हुई।...।

उस समय यश नामक कुलपुत्र, वाराणसीके श्रेष्ठीका सुकुमार लड़का था। उसके तीन प्रासाद थे—एक हेमन्तका, एक ग्रीष्मका, एक वर्षाका। वह वर्षाके चारों महीने वर्षा-कालिक-प्रासादमें, अ-पुरुषों (=स्त्रियों) के वाद्योंसे सेवित हो, प्रासादके नीचे न उतरता था। (एक दिन)...यश कुलपुत्रकी...निद्रा खुली।—सारी रात वहाँ तेल-दीप जलता था। तब यश कुलपुत्रने...अपने परिजनको देखा—किसीकी बगलमें वीणा है, किसीके गलेमें मृदङ्ग है...। किसीको फैले-केश, किसीको लार-गिराते, किसीको बर्राते, साक्षात् श्मशानसा देखकर, (उसे) घृणा उत्पन्न हुई, वैराग्य चित्तमें आया। यश कुल-पुत्रने उदान कहा—"हा! संतप्त!! हा! पीड़ित!!"

यश कुलपुत्र सुनहला जूता पहिन, घरके फाटककी ओर गया...। फिर...नगर-द्वार की ओर...। तब यश कुल-पुत्र वहाँ गया, जहाँ ऋषिपतन मृगदाव था। उस समय भगवान् रातके भिनसारको उठकर, खुले (स्थान) में टहल रहे थे। भगवान्‌ने दूरसे यश कुल-पुत्रको आते देखा। देखकर टहलनेकी जगहसे उतरकर, बिछे आसनपर बैठ गये। तब यश कुलपुत्रने भगवान्‌के समीप (पहुँच) उदान कहा—'हा! सन्तप्त!! हा! पीड़ित!!।" भगवान्‌ने यश कुलपुत्रको कहा—"यश! यह है अ-संतप्त, यश! यह है अ-पीड़ित। यश! आ बैठ, तुझे धर्म बताता हूँ।" तब यश कुल-पुत्रने "यह अ-सन्तप्त है,

१. महावग्ग १। २. श्रामणेर-संन्यास। ३. भिक्षु-संन्यास। ४. स्वाख्यात=सुन्दर प्रकारसे वर्णित। ५. महावग्ग १. ६. "श्रेष्ठी" यह नगरका एक अवैतनिक पदाधिकारी होता था, जो कि धनिक व्यापारियोंमेंसे बनाया जाता था।

यह अ-पीड़ित है" यह (सुन) आह्लादित, प्रसन्न हो, सुनहले जूतेको उतार, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। पास जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे यश कुलपुत्रको, भगवान्ने आनुपूर्वी कथा कही, जैसे—दान-कथा, शीलकथा, स्वर्ग-कथा, कामवासनाओंका दुष्परिणाम-अपकार-दोष, निष्कामताका माहात्म्य प्रकाशित किया। जब भगवान्ने यशको भव्य-चित्त, मृदु-चित्त, अनाच्छादित-चित्त, आह्लादित-चित्त, प्रसन्न-चित्त देखा; तब जो बुद्धोंकी उठानेवाली (=समुत्कर्षक) देशना (=उपदेश) है—दुःख, समुदय (=दुःखका कारण), निरोध (=दुःखका नाश), और मार्ग (=दुःख-नाशका उपाय)—उसे प्रकाशित किया। जैसे कालिमा-रहित शुद्ध-वस्त्र अच्छी तरह रंग पकड़ता है, वैसेही यशकुल-पुत्रको उसी आसनपर "जो कुछ समुदय-धर्म है, वह निरोध-धर्म है" यह वि-रज=निर्मल धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ।

यश कुल-पुत्रकी माता प्रासादपर चढ़, यशकुल-पुत्रको न देख, जहाँ श्रेष्ठी गृह-पति था वहाँ गई, (और)...कहा—'गृहपति! तुम्हारा पुत्र यश दिखाई नहीं देता है?' तब श्रेष्ठी गृह-पति चारों ओर सवार छोड़, स्वयं जिधर ऋषि-पतन मृग-दाव था, उधर गया। श्रेष्ठी गृहपति सुनहले जूतोंका चिह्न देख, उसीके पीछे पीछे चला। भगवान्ने श्रेष्ठी गृहपतिको दूरसे आते देखा। तब भगवान्को (ऐसा विचार) हुआ—"क्यों न मैं ऐसा योग-बल करूँ, जिससे श्रेष्ठी गृहपति यहीं बैठे यशकुल-पुत्रको न देख सके।" तब भगवान्ने वैसाही योग-बल किया। श्रेष्ठी गृहपतिने जहाँ भगवान् थे वहाँ...जाकर भगवान्से कहा—"भन्ते! क्या भगवान्ने यश कुल-पुत्रको देखा है?"

"गृहपति! बैठ। यहीं बैठा यहाँ बैठे यश कुलपुत्रको तू देखेगा।"

श्रेष्ठी गृहपति—"यहीं बैठा यहाँ बैठे यश कुल-पुत्रको देखूँगा" यह (सुन) आह्लादित प्रसन्न हो, भगवान्को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गया।...भगवान्ने आनुपूर्वी कथा, जैसे—'दानकथा०' प्रकाशित की। श्रेष्ठी गृहपतिको उसी आसनपर० धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ। भगवान्के धर्ममें स्वतंत्र हो, वह भगवान्से बोला—"आश्चर्य! भन्ते! आश्चर्य! भन्ते!! जैसे औंधेको सीधा कर दे, ढँकेको उघाड़ दे, भूलेको रास्ता बतला दे, अंधकारमें तेलका प्रदीप रख दे, जिसमें कि आँखवाले रूप देखें; ऐसेही भगवान्ने अनेक पर्यायसे धर्मको प्रकाशित किया। यह मैं भगवान्की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी। आजसे मुझे भगवान् सांजलि शरणागत उपासक ग्रहण करें।" वह (गृहपति) ही संसारमें तीन-वचनोंवाला[1] प्रथम उपासक हुआ।

जिस समय पिताको धर्मोपदेश किया जा रहा था, उस समय देखे और जानेके अनुसार प्रत्यवेक्षण (=गंभीर चिन्तन) करते, यश कुल-पुत्रका चित्त अलिप्त हो आस्रवों (=दोषों =मलों) से मुक्त हो गया। तब भगवान्के (मनमें) हुआ—"पिताको धर्म-उपदेश० यश कुल-पुत्रका चित्त अलिप्त हो, आस्रवोंसे मुक्त होगया। (अब) यश कुलपुत्र पहिलेकी गृहस्थ-अवस्थाकी भाँति हीन (-स्थिति) में रह कामोपभोग करनेके योग्य नहीं है, क्यों न

[1] १. बुद्ध, धर्म और संघ तीनोंकी शरणागत होनेका वचन।

में योगबलके प्रभावको हटा लूँ ।" तब भगवान्‌ने ऋद्धिके प्रभावको हटा लिया । श्रेष्ठी गृहपतिने यश कुलपुत्रको बैठे देखा । देखकर यश कुलपुत्रसे बोला—

"तात ! यश ! तेरी माँ रोती-पीटती तथा शोकमें पड़ी है, माताको जीवन-दान दे"।

यश कुलपुत्रने भगवान्‌की ओर आँख फेरी। भगवान्‌ने श्रेष्ठी गृहपतिको कहा—

"सो गृहपति ! क्या समझते हो, जैसे तुमने शैक्ष-सहित (=अपूर्ण) ज्ञानसे, शैक्ष-सहित-दर्शन (=साक्षात्कार) से धर्मको देखा, वैसेही यशने भी (देखा) ? देखे और जानेके अनुसार प्रत्यवेक्षण करके उसका चित्त अलिप्त हो आस्रवोंसे मुक्त हो गया। अब क्या वह पहिलेकी गृहस्थ-अवस्थाकी भाँति हीन (स्थिति-) में रहकर, कामोपभोग करनेके योग्य है ?"

"नहीं, भन्ते !"

"हे गृहपति ! (पहिले) शैक्ष-सहित ज्ञानसे, शैक्ष-सहित दर्शनसे यशने भी धर्मको देखा, जैसे तूने। (फिर) देखे और जानेके अनुसार प्रत्यवेक्षण करके, (उसका) चित्त अलिप्त हो आस्रवोंसे मुक्त हो गया । गृहपति ! अब यश कुल-पुत्र पहिलेकी गृहस्थ-अवस्थाकी भाँति हीन(-स्थिति)में रह, कामोपभोग करने योग्य नहीं है ।"

"लाभ है भन्ते ! यश कुल-पुत्रको, सुलाभ किया भन्ते ! यश कुल-पुत्रने ; कि यश कुल-पुत्रका चित्त अलिप्त हो आस्रवोंसे मुक्त हो गया। भन्ते ! भगवान् यशको अनुगामी भिक्षु (=पश्चात्-श्रमण) करके, मेरा आजका भोजन स्वीकार कीजिये ।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकृति प्रकट की ।

श्रेष्ठी गृहपति भगवान्‌की स्वीकृति जान, आसनसे उठ, भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर, चला गया । फिर यश कुल-पुत्रने श्रेष्ठी गृहपतिके चले जानेके थोड़ीही देर बाद भगवान्‌से कहा—"भन्ते ! भगवान्‌के पाससे मुझे प्रव्रज्या मिले, उपसंपदा मिले ।" भगवान्‌ने कहा—"भिक्षु ! आओ धर्म सु-अख्यात है, अच्छी तरह दुःखके क्षयके लिये ब्रह्मचर्यका पालन करो ।" यही इस आयुष्मान्‌की उपसम्पदा हुई। उस समय लोकमें सात अर्हत् थे ।

भगवान् पूर्वाह्ण समय वस्त्र पहिन (भिक्षा-)पात्र और चीवरले, आयुष्मान् यशको अनुगामी भिक्षु बना, जहाँ श्रेष्ठी गृहपतिका घर था, वहां गये । वहां, बिछे आसनपर बैठे । तब आयुष्मान् यशकी माता और पुरानी पत्नी भगवान्‌के पास आईं । आकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गईं । उनको भगवान्‌ने आनुपूर्विक कथा० कही । जब भगवान्‌ने उन्हें भव्यचित्त० देखा ; तब जो बुद्धोंकी उठाने वाली देशना है—दुःख, समुदय, निरोध और मार्ग—उसे प्रकाशित किया । जैसे कालिमा-रहित शुद्ध-वस्त्र अच्छी तरह रंग पकड़ता है, वैसेही उन (दोनों) को, उसी आसन पर—"जो कुछ समुदय-धर्म है, वह निरोध-धर्म है"—यह विरज=निर्मल धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ । दृष्ट-धर्म=प्राप्त-धर्म=विदित-धर्म=पर्यवगाढ-धर्म, सन्देह-रहित, कथोपकथन-रहित, भगवान्‌के धर्ममें विशारदता-प्राप्त=स्वतन्त्र हो, उन्होंने भगवान्‌को कहा—"आश्चर्य ! भन्ते ! आश्चर्य !! भन्ते ! ० आजसे हमें भगवान् साञ्जलि शरणागत उपासिकायें जानें । लोक में यही तीन वचनों वाली प्रथम उपासिकायें हुईं ।

आयुष्मान् यशके माता, पिता और पुरानी पत्नीने, भगवान् और आयुष्मान् यशको उत्तम खाद्य-भोजनसे सन्तृप्त कर=संप्रवारित किया । जब भोजनकर, भगवान्‌ने पात्रसे हाथ

खींच लिया, तब भगवान्‌के एक ओर बैठ गये। तब भगवान् आयुष्मान् यशके माता-पिता और पुरानी पत्नीको धार्मिक-कथा द्वारा संदर्शन=समादापन=समुत्तेजन=संप्रहर्षण कर आसन से उठकर चल दिये।

आयुष्मान् यशके चारों गृही मित्रों, वाराणसीके श्रेष्ठी-अनुश्रेष्ठियोंके कुलके लड़कों—विमल, सुवाहु, पूर्णजित् और गवांपतिने सुना, कि यश कुल-पुत्र शिर-दाढ़ी मुड़ा, काषायवस्त्र पहिन, घरसे बेघर हो प्रव्रजित हो गया। सुनकर उनके (चित्तमें) हुआ—"वह [1]धर्म-विनय छोटा न होगा, वह प्रव्रज्या (=संन्यास) छोटी न होगी, जिसमें यश कुलपुत्र शिर-दाढ़ी मुड़ा, काषाय-वस्त्र पहिन, घरसे बेघर हो, प्रव्रजित हो गया।" वह वहाँसे आयुष्मान् यशके पास आये। आकर आयुष्मान् यशको अभिवादनकर एक ओर खड़े हो गये। तब आयुष्मान् यश उन चारों गृही मित्रों सहित जहाँ भगवान् थे, वहाँ आये। आकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् यशने भगवान्‌को कहा—"भन्ते! यह मेरे चार गृही मित्र वाराणसीके श्रेष्ठी-अनुश्रेष्ठियोंके कुलके लड़के—विमल, सुवाहु, पूर्णजित् और गवाम्पति—हैं। इन्हें भगवान् उपदेश करें=अनुशासन करें"। उनको भगवान्‌ने ० [2]आनुपूर्विक कथा कही०। वह भगवान्‌के धर्ममें विशारद=स्वतन्त्र हो, भगवान्‌से बोले—"भन्ते! भगवान्‌के पाससे हमें प्रव्रज्या मिले, उपसम्पदा मिले।" भगवान्‌ने कहा—

"भिक्षुओ! आओ धर्म सु-आख्यात है। अच्छी तरह दुःखके क्षयके लिये ब्रह्मचर्यका पालन करो।" यही उन आयुष्मानोंकी उपसम्पदा हुई। तब भगवान्‌ने उन भिक्षुओंको धार्मिक कथाओं द्वारा उपदेश दिया=अनुशासना की।···(जिससे) अलिप्त हो उनके चित्त आस्रवोंसे मुक्त हो गये। उस समय लोकमें ग्यारह अर्हत् थे।

आयुष्मान् यशके ग्रामवासी (=जानपद=देहाती) पुराने खान्दानोंके पुत्र, पचास गृही मित्रोंने सुना, कि यश कुलपुत्र···प्रव्रजित हो गया। सुनकर उनके चित्तमें हुआ—"वह धर्म-विनय छोटा न होगा···, जिसमें यश कुल-पुत्र...प्रव्रजित होगया।" वह आयुष्मान् यशके पास आये।···आयुष्मान् यश उन पचास गृही मित्रों सहित···भगवान्‌के पास··· आये।···भगवान्‌ने···निष्कामताका महात्म्य वर्णन किया···। वह···विशारद हो भगवान्‌से बोले—"०हमें उपसम्पदा मिले"···।···उन आयुष्मानोंकी उपसम्पदा हुई···। तब भगवान्‌ने···उपदेश दिया।...(जिससे) अलिप्त हो उनके चित्त आस्रवोंसे मुक्त होगये। उस समय लोकमें एकसठ अर्हत् थे।

× × × ×

चारिका-सुत्त। उपसंपदा-प्रकार। भद्रवर्गीयोंकी प्रव्रज्या। काश्यप-बंधुओं की प्रव्रज्या।

[3]भगवान्‌ने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—"भिक्षुओ! जितने (भी) दिव्य और मानुष पाश (=बन्धन) हैं, मैं (उन सबों) से मुक्त हूँ, तुम भी दिव्य और मानुष पाशोंसे

---

१. धार्मिक सम्प्रदाय। २. देखो पृष्ठ २५। ३. संयुत्त-नि० ४:१:५; महावग्ग १।

मुक्त होओ। भिक्षुओ! बहु-जन-हिताय (=बहुत जनोंके हितके लिये), बहु-जन-सुखाय (=बहुत जनोंके सुखके लिये), लोकपर दया करनेके लिये, देवताओं और मनुष्योंके प्रयोजनके लिये, हितके लिये, सुखके लिये चारिका चरण (=विचरण) करो। एकसाथ दो मत जाओ। भिक्षुओ! आदिमें कल्याण-(कारक) मध्यमें कल्याण (-कारक) अन्तमें कल्याण (-कारक) (इस) धर्मका उपदेश करो। अर्थ-सहित=व्यंजन-सहित, केवल (=अमिश्र) परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्यका प्रकाश करो। अल्प दोषवाले प्राणी (भी) हैं, धर्मके न श्रवण करनेसे उनकी हानि होगी। (सुननेसे वह) धर्मके जाननेवाले होंगे। भिक्षुओ! मैं भी जहाँ उरुवेला है, जहाँ सेनानी ग्राम है, वहाँ धर्म-देशनाके लिये जाऊँगा...।"

[1]उस समय नाना-दिशाओंसे नाना-जनपदोंसे भिक्षु, प्रव्रज्याकी इच्छावाले, उपसम्पदाकी अपेक्षावाले (आदमियोंको) लाते थे, कि भगवान् उन्हें प्रव्रजित बनावें, उपसम्पन्न करें। इससे भिक्षु भी हैरान होते थे, प्रव्रज्या-उपसम्पदा चाहनेवाले भी। एकान्तस्थित ध्यानावस्थित भगवान्‌के चित्तमें (विचार) हुआ, "क्यों न भिक्षुओंको ही अनुज्ञा दे दूँ, कि भिक्षुओ! तुम्हीं उन-उन दिशाओंमें, उन-उन जनपदोंमें प्रव्रजित बनाओ, उपसम्पन्न करो"। इसलिये भगवान्‌ने संध्या समय भिक्षु-संघको एकत्रित कर धर्मकथा कह, संबोधित किया—"भिक्षुओ! एकान्तमें स्थित, ध्यानावस्थित०। इसलिये, हे भिक्षुओ! मैं स्वीकृति देता हूँ"—अब तुम्हें ही उन-उन दिशाओंमें, उन-उन देशोंमें प्रव्रज्या देनी चाहिये, उपसम्पदा देनी चाहिये। और उपसम्पदा देनेका प्रकार यह है—पहिले शिर-दाढ़ी मुड़वाकर, काषाय-वस्त्र पहनाकर, उपरना एक कंधेपर कराकर, भिक्षुओंको पाद-वंदना कराकर, उकड़ूँ बैठाकर, हाथ जोड़कर "ऐसे बोलो" कहना चाहिये—"बुद्धकी शरण लेता हूँ, धर्मकी शरण लेता हूँ, संघकी शरण लेता हूँ। दूसरी बार भी बुद्धकी० धर्मकी० संघकी शरण लेता हूँ। तीसरी बार भी बुद्धकी०, धर्मकी० संघकी शरण लेता हूँ। इन तीन शरणागमनोंसे प्रव्रज्या और उपसम्पदा (देनेकी) अनुज्ञा देता हूँ"।

[2]भगवान् वाराणसीमें इच्छानुसार विहार कर, (साठ भिक्षुओंको भिन्न-भिन्न दिशाओंमें भेजकर), जिधर उरुवेला है, उधर चारिका (=विचरण) के लिये चल दिये। भगवान् मार्गसे हटकर एक वन-खंडमें पहुँच, वन-खंडके भीतर एक वृक्षके नीचे जाकर बैठे। उस समय भद्रवर्गीय (नामक) तीस मित्र अपनी स्त्रियों सहित उसी वन-खंडमें विनोद करते थे। (उनमें) एककी पत्नी न थी। उसके लिये वेश्या लाई गई थी। वह वेश्या उनके नशामें हो घूमते वक्त, आभूषण आदि लेकर भाग गई। तब (सब) मित्रोंने (अपने) मित्रकी मददमें उस स्त्रीको खोजते उस वनखंडको ढूँढते, वृक्षके नीचे बैठे भगवान्‌को देखा। (फिर) जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌से बोले—"भन्ते! भगवान्‌ने (किसी) स्त्रीको तो नहीं देखा?"

"कुमारो! तुम्हें स्त्रीसे क्या है?"

"भन्ते! हम भद्रवर्गीय (नामक) तीस मित्र (अपनी-अपनी) पत्नियों सहित इस वन खंडमें सैर-विनोद कर रहे थे। एककी पत्नी न थी, उसके लिये वेश्या लाई गई थी। भन्ते!

---

1. महावग्ग १। 2. जातक (निदान)। 3. कप्पासिय वन-खंड (जातक. नि.)

वह वेश्या हम लोगोंके नशामें हो घूमते वक्त आभूषण आदि लेकर भाग गई। सो भन्ते! हम लोग मित्रकी मददमें, उस स्त्रीको खोजते हुये, इस बन-खंडको हींड रहे हैं।"

"तो कुमारो! क्या समझते हो, तुम्हारे लिये कौन उत्तम होगा; यदि तुम स्त्रीको ढूँढ़ो, अथवा तुम अपने को ढूँढ़ो।"

"भन्ते! हमारे लिये यही उत्तम है, यदि हम अपनेको ढूँढें।"

"तो कुमारो! बैठो, मैं तुम्हें धर्म-उपदेश करता हूँ।"

"अच्छा, भन्ते!" कह, भद्रवर्गीय मित्र भगवान्‌को वन्दनाकर, एक ओर बैठ गये। उनको भगवान्‌ने आनुपूर्वी कथा०[1] कही।...भगवान्‌के धर्ममें विशारद हो... भगवान्‌से बोले—...भगवान्‌के हाथसे हमें प्रव्रज्या मिले...। वही उन आयुष्मानोंकी उपसम्पदा हुई।

वहाँसे भगवान् क्रमशः विचरते हुये...उरुवेला पहुँचे। उस समय उरुवेलामें तीन [2]जटिल (=जटाधारी)—उरुवेल-काश्यप, नदी-काश्यप और गया-काश्यप—वास करते थे। उनमें उरुवेल-काश्यप जटिल पाँच सौ जटिलोंका नायक=विनायक=अग्र=प्रमुख=प्रामुख्य था। नदी-काश्यप जटिल तीन सौ जटिलोंका नायक०। गया-काश्यप जटिल दो सौ जटिलोंका नायक०। तब भगवान् उरुवेल-काश्यप जटिलके आश्रमपर पहुँच, उरुवेला-काश्यप जटिलसे बोले—"काश्यप! यदि तुझे भारी न हो, तो मैं एक रात (तेरी) अग्निशालामें वास करूँ।"

"महाश्रमण! मुझे भारी नहीं है (लेकिन), यहाँ एक बड़ा ही चंड, दिव्य-शक्तिधारी आशी-विष=घोर-विष नागराज है। कहीं वह तुम्हें हानि न पहुँचावे।"

दूसरी बार भी भगवान्‌ने उरुवेल-काश्यप जटिलको कहा—"...।"

तीसरी बार भी भगवान्‌ने उरुवेल-काश्यप जटिलको कहा—"...।"

"काश्यप! नाग मुझे हानि न पहुँचावेगा, तू मुझे अग्निशालाकी स्वीकृति दे दे।"

"महाश्रमण! सुखसे विहार करो।"

तब भगवान् अग्निशालामें प्रविष्ट हो तृण बिछा, आसन बाँध, शरीरको सीधा रख, स्मृतिको थिरकर बैठ गये। भगवान्‌को भीतर आया देख, नाग क्रुद्ध हो धूआँ देने लगा। भगवान्‌के (मनमें) हुआ—क्यों न मैं इस नागके छाल, चर्म, मांस, नस, हड्डी, मज्जाको बिना हानि पहुँचाये, (अपने) तेजसे (इसके) तेजको खींच लूँ।" फिर भगवान्‌भी वैसेही योगबलसे धूँआँ देने लगे। तब वह नाग कोपको सहन न कर प्रज्वलित हो उठा। भगवान्‌भी तेज-महाभूत (=धातु) में समाधिस्थ हो प्रज्वलित हो उठे। उन दोनोंके ज्योति-रूप होनेसे, वह अग्निशाला जलती हुई=प्रज्वलितसी जान पड़ने लगी। तब वह जटिल अग्निशालाको चारों ओरसे घेरे यों कहने लगे—"हाय! परम-सुन्दर महाश्रमण नागद्वारा

१. देखो पृष्ठ २५

२. उस समयके ब्राह्मणोंका एक सम्प्रदाय, जो ब्रह्मचारी, जटाधारी, अग्निहोत्री होते थे।

मारा जा रहा है।" भगवान्‌ने उस रातके बीत जानेपर, उस नागके छाल, चर्म, माँस, नस, हड्डी, मज्जाको बिना हानि पहुँचाये, (अपने) तेजसे (उसका) तेज खींचकर, पात्रमें रख (उसे) उरुवेल-काश्यप जटिल को दिखाया—"काश्यप! यह तेरा नाग है, (अपने) तेजसे (मैंने) इसका तेज खींच लिया है। तब उरुवेल-काश्यप जटिलके (मनमें) हुआ—महादिव्यशक्तिवाला=महाअनुभाव-वाला[1] महाश्रमण है, जिसने कि दिव्यशक्ति- संपन्न आशी-विष=घोर-विष चण्ड नागराजका तेज (अपने) तेजसे खींच लिया।···। भगवान्‌के इस चमत्कार (=ऋद्धि-प्रतिहार्य) से (चकित हो) उरुवेल-काश्यप जटिलने भगवान्‌को कहा—"महाश्रमण! यहीं विहार करो, मैं नित्य भोजनसे तुम्हारी (सेवा करूँगा)।"

भगवान् उरुवेल-काश्यप जटिलके आश्रमके समीप-वर्ती एक वन-खण्डमें,···उरुवेल काश्यपका दिया भोजन ग्रहण करते हुए विहार करने लगे।

उस समय उरुवेल-काश्यप जटिलको एक महायज्ञ आन उपस्थित हुआ। जिसमें सारेके सारे अंग-मगध-निवासी बहुतसा खाद्य-भोज्य लेकर आनेवाले थे। तब उरुवेल काश्यपके चित्तमें (विचार) हुआ—"इस समय मेरा महायज्ञ आन उपस्थित हुआ है, सारे अंग-मगधवाले बहुतसा खाद्य भोज्य लेकर आयेंगे। यदि महाश्रमणने जन-समुदायमें चमत्कार दिखलाया, तो महाश्रमणका लाभ और सत्कार बढ़ेगा, मेरा लाभ, सत्कार घटेगा। अच्छा होता यदि महाश्रमण कल (मे) न आता।" भगवान्‌ने उरुवेल-काश्यप जटिलके चित्तका वितर्क (अपने) चित्तसे जान, [2]उत्तर-कुरु जा, वहाँसे भिक्षान्न ले अनवतप्त [3]सरोवर (=दह) पर भोजनकर, वहीं दिनको विहार किया। उरुवेल-काश्यप जटिल उस रातके बीत जानेपर, भगवान्‌के···पास जा···बोला—"महाश्रमण! (भोजनका) समय है, भात तय्यार हो गया। महाश्रमण! कल क्यों नहीं आये? हमलोग आपको याद करते थे—क्यों नहीं आये? आपके खाद्य-भोज्यका भाग रक्खा है।"

"काश्यप! क्यों? क्या तेरे मनमें (कल) यह न हुआ था, कि इस समय मेरा महायज्ञ आन उपस्थित हुआ है० महाश्रमणका लाभसत्कार बढ़ेगा०? इसीलिये काश्यप! तेरे चित्तके वितर्कको (अपने) चित्तसे जान, मैंने उत्तरकुरुजा, अनवतप्त सरोवर पर० वहीं दिनको विहार किया।" तब उरुवेल-काश्यप जटिलको हुआ—महाश्रमण महानुभाव दिव्य-शक्तिधारी है, जोकि (अपने) चित्तसे (दूसरेका) चित्त जान लेता है। तो भी यह (वैसा) अर्हत् नहीं है, जैसा कि मैं।"

तब भगवान्‌ने उरुवेल-काश्यपका भोजन ग्रहण कर उसी वन-खंडमें (जा) विहार किया।···

एक समय भगवान्‌को पांसु-कूल (=पुराने चीथड़े) प्राप्त हुये। भगवान्‌के दिलमें हुआ,—"मैं पांसु-कूलोंको कहाँ धोऊँ"। तब देवोंके इन्द्र शक्रने, भगवान्‌के चित्तकी बात जान···हाथसे पुष्करिणी खोदकर, भगवान्‌को कहा—"भन्ते! भगवान्! (यहाँ)

---

१. महावग्ग १। २. मेरुपर्वतकी उत्तर दिशामें अवस्थित द्वीप। ३. मानसरोवर।

पांसुकूल धोवें"। तब भगवान्‌को हुआ—"मैं पांसुकूलोंको कहाँ उपछूँ (=पीटूँ)"… इन्द्रने…(वहाँ) बड़ी भारी शिला डाल दी…। तब भगवान्‌को हुआ—"मैं किसका आलम्ब ले (नीचे) उतरूँ"।…इन्द्रने…शाखा लटका दी…। मैं पांसुकूलों को कहाँ फैलाऊँ? इन्द्रने…एक बड़ी भारी शिला डाल दी…। उस रातके बीत जानेपर, उरुबेल काश्यप जटिलने, जहाँ भगवान् थे, वहाँ पहुँच भगवान्‌से कहा—"महाश्रमण! (भोजनका) समय है, भात तय्यार हो गया है। महाश्रमण! यह क्या? यह पुष्करिणी पहिले यहाँ न थी!…। पहिले यह शिलायें (भी) यहाँ न थीं; यहाँपर शिलायें डालीं किसने? इस ककुध (वृक्ष) की शाखा (भी) पहिले लटकी न थी, सो यह लटकी है।"

"मुझे काश्यप! पांसुकूल प्राप्त हुआ०…" उरुबेल-काश्यप जटिलके (मनमें) हुआ—"महाश्रमण दिव्य-शक्ति-धारी है! महा-अनुभाव-वाला है…। तो भी यह वैसा अर्हत् नहीं है, जैसा कि मैं"। भगवान्‌ने उरुबेल-काश्यपका भोजन ग्रहणकर, उसी वन-खंडमें विहार किया।

एक समय बड़ा भारी अकालमेघ बरसा। जलकी बड़ी बाढ़ आ गई। जिस प्रदेशमें भगवान् विहार करते थे, वह पानीसे डूब गया। तब भगवान्‌को हुआ—"क्यों न मैं चारों-ओरसे पानी हटाकर, बीचमें धूलियुक्त भूमिपर चंक्रमण करूँ (टहलूँ)?" भगवान्… पानी हटाकर…धूलि-युक्त भूमिपर टहलने लगे। उरुबेल-काश्यप जटिल—"अरे! महाश्रमण जलमें डूब न गया हो!" (यह सोच) नाव ले, बहुतसे जटिलोंके साथ जिस प्रदेशमें भगवान् विहार करते थे, वहाँ गया। (उसने)…भगवान्‌को…धूलि-युक्त भूमिपर टहलते देखा। देखकर भगवान्‌से बोला—"महाश्रमण यह तुम हो?" "यह मैं हूँ" कह भगवान् आकाशमें उड़, नावमें आकर खड़े हो गये। तब उरुबेल काश्यप जटिलको हुआ—"महाश्रमण दिव्य-शक्ति-धारी है, किन्तु यह वैसा अर्हत् नहीं है, जैसा कि मैं"। तब भगवान्‌को (विचार) हुआ "चिरकाल तक इस मूर्ख (=मोघपुरुष) को यह (विचार) होता रहेगा कि—महाश्रमण दिव्य-शक्ति-धारी है; किन्तु यह वैसा अर्हत् नहीं है, जैसा कि मैं। क्यों न मैं इस जटिलको संवेजन करूँ?।" तब भगवान्‌ने उरुबेल काश्यप जटिलको कहा—"काश्यप! न तो तू अर्हत् है, न अर्हत्‌के मार्गपर आरूढ़। वह सूझ भी तुझे नहीं है, जिससे अर्हत् होवे, या अर्हत्‌के मार्गपर आरूढ़ होवे।" उरुबेल काश्यप जटिल भगवान्‌के पैरोंपर शिर रख, भगवान्‌से बोला—"भन्ते! भगवान्‌के पाससे मुझे प्रव्रज्या मिले, उपसम्पदा मिले"

"काश्यप! तू पांच सौ जटिलोंका नायक…है। उनको भी देख…"। तब उरुबेल काश्यप जटिलने…जाकर, उन जटिलों से कहा—"मैं महाश्रमणके पास ब्रह्मचर्य-ग्रहण करना चाहता हूँ, तुम लोगों की जो इच्छा हो सो करो।"

"देरसे हम महाश्रमणसे प्रसन्न हैं, यदि आप महाश्रमणके पास ब्रह्मचर्य-चरण करेंगे, (तो) हम सभी महाश्रमणके पास ब्रह्मचर्य-चरण करेंगे"।

---

१. रास्ते या कूड़ों पर फेंके चीथड़े।

यह सभी जटिल केश-सामग्री, जटा-सामग्री, [1]खारीकी, घीकी सामग्री, अग्निहोत्र-सामग्री (आदि अपने सामानको) जलमें प्रवाहित कर, भगवान्‌के पास गये। जाकर भगवान्‌के चरणोंमें शिर झुकाके बोले—"भन्ते! हम भगवान्‌के पास प्रव्रज्या पावें, उपसम्पदा पावें।"

"भिक्षुओ! आओ धर्म सु-आख्यात है, भली प्रकार दुःखके अन्त करनेके लिये ब्रह्मचर्य पालन करो।"

यही उन आयुष्मानोंकी उपसंपदा हुई।

नदी काश्यप जटिलने केश-सामग्री, जटा-सामग्री, खारीकी, घीकी सामग्री, अग्निहोत्र-सामग्री नदीमें बहती हुई देखीं। देखकर उसको हुआ—"अरे! मेरे भाईको कुछ अनिष्ट तो नहीं हुआ है," (और) जटिलोंको—"जाओ, मेरे भाईको देखो तो"; (कह) स्वयंभी तीनसौ जटिलोंको साथले, जहाँ आयुष्मान् उरुवेल-काश्यप थे, वहां गया; और जाकर बोला—"काश्यप! क्या यह अच्छा है?"

"हाँ, आवुस! यह अच्छा है।"

तब वह जटिलभी केश-साम ग्री···जलमें प्रवाहितकर, जहां भगवान् थे वहां गये। जाकर ···बोले—"पावें हम भन्ते! ···उपसम्पदा।" ···यही उन आयुष्मानोंकी उपसम्पदा हुई।

गया काश्यप जटिलने केश-सामग्री नदीमें बहती देखी।···"काश्यप! क्या यह अच्छा है?" "हां! आवुस! यह अच्छा है।" ···यही उन आयुष्मानोंकी उपसम्पदा हुई।

"तब भगवान् उरुवेलामें इच्छानुसार विहार कर, सभी एकसहस्र पुराने जटिल भिक्षुओं के महाभिक्षु-संघके साथ गया में गये।

× × ×

(७)

आदित्त-परियाय-सुत्त। राजगृहमें बिम्बिसारकी दीक्षा। (ई. पू. ५२७)

[2]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् एक हजार भिक्षुओंके साथ गयामें [3]गया-सीसपर विहार करते थे। वहाँ भगवान्‌ने भिक्षुओंको आमन्त्रित किया—"भिक्षुओ! सभी जल रहा है। क्या जल रहा है? चक्षु जल रहा है, रूप जल रहा है, चक्षुका विज्ञान[4] जल रहा है, चक्षुका संस्पर्श जल रहा है, और चक्षुके संस्पर्शके कारण जो वेदनायें—सुख, दुःख न-सुख-न-दुख—उत्पन्न होती हैं, वह भी जल रही हैं?—राग-अग्निसे, द्वेष-अग्निसे, मोह-अग्निसे जल रही हैं। जन्म, जरा, और मरणके योगसे, रोने-पीटनेसे, दुःखसे, दुर्मनतासे, परेशानीसे जल रही हैं—यह मैं कहता हूं।

श्रोत्र०। ०शब्द०। ०श्रोत्र-विज्ञान०। ०श्रोत्रका-संस्पर्श०। ०श्रोत्रके संस्पर्शके कारण (उत्पन्न) वेदनायें०। घ्राण (=नासिका-इन्द्रिय) ···गंध···घ्राण-विज्ञान जल रहे हैं। घ्राणका संस्पर्श जल रहा है···यह मैं कहता हूँ। जिह्वा०। ०रस०। ०जिह्वा-विज्ञान०।

---

१ खरिया, झोली। २. संयुत्त. नि. ४३:३:६। महावग्ग १:३. गयासीस=गया-का ब्रह्मयोनि पर्वत है। ४. इन्द्रिय और विषयके सम्बन्ध से जो ज्ञान होता है।

०जिह्वा-संस्पर्श० । ०जिह्वा-संस्पर्शके कारण (उत्पन्न) वेदनायें०···०जल रही हैं ।···यह मैं कहता हूँ । काया०-०स्प्रष्टव्य०···काय-विज्ञान०···०काय-संस्पर्श···काय-संस्पर्शसे (उत्पन्न) वेदनायें०···०जल रही हैं । ०···मन०···०धर्म०···०मनो-विज्ञान०···०···मन-संस्पर्श··· मन-संस्पर्शसे (उत्पन्न) वेदनायें जल रही हैं । किससे जल रही हैं । राग-अग्निसे द्वेष-अग्निसे मोह अग्निसे जल रही हैं । जन्म,जरा और मरणके योगसे जल रही हैं, रोने-पीटनेसे दुःखसे दुर्मनतासे जल रही हैं"—यह मैं कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! ऐसा देख, (धर्मको) सुननेवाला [1]आर्यश्रावक चक्षुसे [2]निर्वेद-प्राप्त होता है, रूपसे निर्वेद-प्राप्त होता है,चक्षु-विज्ञानसे निर्वेद-प्राप्त होता है, चक्षु-संस्पर्शसे निर्वेद प्राप्त होता है, चक्षु-संस्पर्शसे निर्वेद-प्राप्त होता है; चक्षु-संस्पर्शके कारण जो यह उत्पन्न होती है वेदना—सुख, दुःख, नसुख-नदुःख—उससे भी निर्वेद-प्राप्त होता है ।

श्रोत्र० । शब्द० । श्रोत्र-विज्ञान० । श्रोत्र-संस्पर्श० । श्रोत्र-संस्पर्शके कारण (उत्पन्न) वेदना० । घ्राण० । गंध० । घ्राण-विज्ञान० । घ्राण-संस्पर्श० । घ्राण-संस्पर्शके कारण (उत्पन्न) वेदना० । जिह्वा० । रस० । जिह्वा-विज्ञान० । जिह्वा-संस्पर्श० । जिह्वा-संस्पर्शके कारण (उत्पन्न) वेदना० । काय० । [3]स्प्रष्टव्य० । काय-विज्ञान० । काय-संस्पर्श० । काय-संस्पर्शके कारण (उत्पन्न) वेदना० ।

मनसे निर्वेद-प्राप्त होता है । धर्मसे निर्वेद-प्राप्त होता है । मनो-विज्ञानसे निर्वेद प्राप्त होता है । मन-संस्पर्शसे निर्वेद-प्राप्त होता है । मन-संस्पर्शके कारण जो यह वेदना—सुख, दुःख, नसुख-नदुःख उत्पन्न होती है उससे भी निर्वेद-प्राप्त होता है ।

निर्वेद-प्राप्त हो विरक्त होता है । विरक्त होनेसे विमुक्त होता है । विमुक्त होनेपर "मैं विमुक्त हूं" यह ज्ञान होता है । वह जानता है—"जन्म क्षीण हो गया, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, कर्तव्य कर चुका, और यहां कुछ (बाकी) नहीं है ।" इस व्याकरण (=व्याख्यान) के कहे जाते वक्त उन हजार भिक्षुओंके चित्त अलिप्त हो आस्रवोंसे छूट गये ।···

[4]भगवान् **गयासीसमें** इच्छानुसार विहारकर, ([5]राजा **बिंबसारको** दी प्रतिज्ञा स्मरण कर) सभी एकहजार पुराने जटिल भिक्षुओंके महान् भिक्षु-संघके साथ, चारिकाके लिए चल दिये । भगवान् क्रमशः चारिका करते, **राजगृह** पहुँचे । वहाँ भगवान् राजगृहमें [6]लट्ठि (यष्टि) वनके **सुप्रतिष्ठित** चैत्यमें ठहरे ।

मगध-राज श्रेणिक बिंबसारने (अपने मालीके मुँहसे) सुना, कि **शाक्यकुलसे** प्रव्रजित **शाक्यपुत्र** श्रमण गौतम राजगृहमें पहुँच गये हैं । राजगृहमें लट्ठि (=यष्टि) वनके सुप्रतिष्ठित चैत्यमें विहार कर रहे हैं । उन भगवान् **गौतमकी** ऐसी मंगल-कीर्ति फैली हुई है—"यह भगवान् अर्हत् हैं, सम्यक्-संबुद्ध हैं, विद्या और आचरणसे युक्त हैं, सुगत हैं, लोकोंके जाननेवाले हैं; उनसे उत्तम कोई नहीं है, ऐसे (वह) पुरुषोंके चाबुक-सवार हैं,

१. स्रोतआपन्न, सकृदागामी, अनागामी, अर्हत् । २. वैराग्यकी पूर्वावस्था । ३. शीत, उष्ण आदि । ४. महावग्ग १ ५. जातक (नि० ११) ६. राजगृह नगरके समीपवर्ती जठियाँव (लट्ठिवन) उद्यान जातक. नि.

देवताओं और मनुष्योंके शास्ता (=उपदेशक) हैं—(ऐसे वह) बुद्ध भगवान् हैं।" वह ब्रह्मलोक, मारलोक, देवलोक सहित इस लोकको, देव-मनुष्य-सहित श्रमण-ब्राह्मण-युक्त (सभी) प्रजाको, स्वयं समझ=साक्षात्कार कर जानते हैं। वह आदिमें कल्याण(-कारक), मध्यमें कल्याण(-कारक), अन्तमें कल्याण(-कारक) धर्मका, अर्थ-सहित=व्यञ्जन-सहित उपदेश करते हैं। वह केवल परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्यका प्रकाश करते हैं। इस प्रकारके अर्हत् लोगोंका दर्शन करना उत्तम है।"

मगध-राज श्रेणिक बिंबिसार १२ नियुत[1] मगध-निवासी ब्राह्मणों और गृहपतियोंके साथ जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। वह १२ नियुत मगधवासी ब्राह्मण गृहपति भी—कोई भगवान्को अभिवादन कर, कोई भगवान्से कुशल प्रश्न पूछ कर, कोई भगवान्की ओर हाथ जोड़ कर, कोई भगवान्को नाम-गोत्र सुना कर, कोई कोई चुप-चापही एक ओर बैठ गये। तब उन १२ नियुत मगधके ब्राह्मणों, गृहपतियोंके (चित्तमें) होने लगा—

"क्योंजी! महाश्रमण (गौतम) उरुवेल-काश्यपके पास ब्रह्मचर्य-चरण करता है, अथवा उरुवेल-काश्यप महाश्रमणके पास ब्रह्मचर्य चरण करता है?"

तब भगवान्ने उस १२ नियुत मगध-वासी ब्राह्मणों गृहपतियोंके चित्तके वितर्कको चित्तसे जान, आयुष्मान् उरुवेल-काश्यपको गाथामें कहा—

"क्या देखकर हे उरुवेल-वासी! तपःकृशोंके उपदेशक! (तूने) आग छोड़ी?
काश्यप! तुमसे यह बात पूछता हूँ, तुम्हारा अग्निहोत्र कैसे छूटा?"
(काश्यपने कहा)—"रूप, शब्द और रसमें, कामभोगोंमें स्त्रियोंमें, रूपशब्द,
और रसमें, काम-भोगोंमें रूपशब्द और रस[2] कामेष्टि-यज्ञ करते हैं।
यह रागादि उपाधियाँ मल है, (मैंने) यह जान लिया,
इसलिये मैं इष्ट और हुतसे विरक्त हुआ।"

भगवान्ने (कहा)—"हे काश्यप! रूप शब्द और रसमें तेरा मन नहीं रमा। तो देव-मनुष्य-लोकमें कहाँ मन रमा, काश्यप! इसे मुझे कह?

काम-मदमें अविद्यमान, निर्लेप, शांत,
उपधि(=रागादि)-रहित (निर्वाण-) पदको देखकर।
निर्विकार, दूसरेकी सहायतासे न पार होने वाले (निर्वाण-) पदको देखकर
(मैं) इष्ट और हुतसे विरक्त हुआ।"

तब आयुष्मान् उरुवेल-काश्यप आसनसे उठ, उपरने (=उत्तरासंग) को एक कंधेपर कर, भगवान्के पैरोंपर शिर रख भगवान्से बोले—"भन्ते! भगवान् मेरे शास्ता (=गुरु) हैं, मैं श्रावक (=शिष्य) हूँ। भन्ते! भगवान् मेरे शास्ता हैं, मैं श्रावक हूँ।"

तब उन १२ नियुत मगध-वासी ब्राह्मणों और गृहपतियों के (मनमें) हुआ—"उरुवेल-काश्यप महाश्रमणके पास ब्रह्मचर्य चरता है।" तब भगवान्ने उन १२ नियुत मगध-वासी ब्राह्मणों और गृहपतियोंके चित्तकी बात चित्तसे जान आनुपूर्वी कथा० कही०। तब बिंबिसार

१. १२ लाख। २. कामनासे किया जाने वाला यज्ञ। ३. यज्ञ, हवन।

आदि ११ नियुत मगध-वासी ब्राह्मणों और गृहपतियों को उसी आसनपर, "जो कुछ समुदय-धर्म है वह निरोध-धर्म है" यह विरज=निर्मल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ; और (उनमें) एक नियुत उपासकत्वको प्राप्त हुये।

तब दृष्ट-धर्म=प्राप्त-धर्म=विदित-धर्म=पर्यवगाढ-धर्म, सन्देह-रहित, विवाद-रहित भगवान्‌के धर्ममें विशारद, स्वतंत्र हो, बिम्बसारने भगवान्‌से कहा—"भन्ते ! पहिले कुमार-अवस्थामें मेरी पांच अभिलाषायें थीं, वह अब पूरी होगईं। भन्ते ! पहिले कुमार-अवस्थामें (चित्तमें) यह होता था—"(क्याही अच्छा होता) यदि मैं (राजा) अभिषिक्त होता।" यह मेरी...पहिली अभिलाषा थी, जो अब पूरी होगई है। "मेरे राज्यमें अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध आते" यह मेरी...दूसरी अभिलाषा थी, वह भी अब पूरी होगई। "उन भगवान्‌की मैं पर्युपासना (=सेवा) करता"; यह मेरी तीसरी अभिलाषा थी, वह भी अब पूरी होगई। "वह भगवान् मुझे धर्म-उपदेश करते" यह मेरी चौथी अभिलाषा थी, वह भी अब पूरी होगई। "उन भगवान्‌को मैं जानता" यह पांचवीं अभिलाषा थी, वह भी अब पूरी होगई। आश्चर्य है ! भन्ते ! आश्चर्य है ! भन्ते !! जैसे औंधेको सीधाकर दे, ढँकेको उघाड़ दे, भूलेको रास्ता बतला दे, अंधकारमें तेलकी रोशनी रख दे, जिसमें आंखवाले रूप देखें; ऐसेही भगवान्‌ने अनेक पर्याय (=प्रकार) से धर्मको प्रकाशित किया। इसलिये मैं भगवान्‌की शरण लेता हूं, धर्म और भिक्षु-संघकी भी। आजसे भगवान् मुझे सांजलि शरण-आया उपासक जानें। भिक्षु-संघ-सहित कलके लिये मेरा निमन्त्रण स्वीकार करें।

भगवान्‌ने मौन रह उसे स्वीकार किया। तब मगध-राज श्रेणिक **बिम्बसार** भगवान्‌की स्वीकृतिको जान, आसनसे उठ भगवान्‌को अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर चला गया। मगध-राज श्रेणिक बिम्बसारने उस रातके बीतनेपर, उत्तम खाद्य-भोज्य तय्यार करा, भगवान्‌को कालकी सूचना दी—भन्ते ! काल होगया, भोजन तय्यार है। तब भगवान् पूर्वाह्न समय सु-आच्छादित (हो), (भिक्षा-)पात्र और चीवर ले, सभी एक सहस्र पुराने जटिल-भिक्षुओंके महान् भिक्षुसंघके साथ **राजगृहमें** प्रविष्ट हुये।

तब भगवान्, जहाँ मगध-राज श्रेणिक **बिम्बसारका** घर था, वहाँ गये। जाकर भिक्षुसंघ-सहित बिछे आसनपर बैठे। तब मगधराज...बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको उत्तम खाद्य भोज्य ले अपने हाथसे संतृप्त कर, पूर्ण कर, भगवान्‌के पात्रसे हाथ खींच लेनेपर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे मगध-राज...के (चित्तमें) हुआ—"भगवान् कौनसी जगह विहार करें, जो कि गाँवसे न बहुत दूर हो, न बहुत समीप हो, इच्छुकोंको पहुँचने, आने-जाने लायक हो; (जहाँ) दिनमें बहुत भीड़ न हो (और) रातमें शब्द-घोष कम हो; लोगोंके हल्ले-गुल्लेसे रहित हो; मनुष्योंके लिये रहस्य (=एकान्त) स्थान हो, एकान्तवासके योग्य हो ?" तब मगध-राज...को हुआ—"यह हमारा वेलु (वेणु) उद्यान बस्तीसे न बहुत दूर है, न बहुत समीप०। एकान्तवासके योग्य है, क्यों न मैं वेणुवन उद्यान बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको प्रदान करूँ।"

तब मगध-राज...ने भगवान्‌से निवेदन किया—"भन्ते ! मैं वेणुवन उद्यान बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको देता हूं।"

भगवान् आराम (=आश्रमको) स्वीकार किये ; और फिर मगध-राजको धर्म-संबंधी कथाओं द्वारा,...समुत्तेजितकर...आसनसे उठकर चलेगये ।

भगवान्‌ने इसीके सम्बन्धमें धर्म-संबंधी कथा कह, भिक्षुओंको सम्बोधित किया—'भिक्षुओ ! आराम ग्रहण करनेकी अनुज्ञा देता हूँ ।"

× × × ×

सारिपुत्र और मौद्गल्यायनकी प्रव्रज्या । (ई. पू. ५२७) ।

[1]उस समय संजय (नामक) परिव्राजक राजगृहमें ढाई सौ परिव्राजकोंकी बड़ी जमातके साथ निवास करता था । सारिपुत्र, और मौद्गल्यायन, संजय परिव्राजकके पास ब्रह्मचर्य-चरण करते थे । उन्होंने (आपसमें) प्रतिज्ञाकी थी—जो पहिले अमृतको प्राप्त करे, वह दूसरेको कहे । उस समय आयुष्मान् अश्वजित् पूर्वाह्ण समय सु-आच्छादित (हो), पात्र और चीवरले, अति सुन्दर=प्रतिक्रांत आलोकन=विलोकनके साथ, संकोचन और प्रसारणके साथ, नीची नजर रखते, संयमी ढंगसे, राजगृहमें भिक्षाके लिये प्रविष्ट हुये । सारिपुत्र परिव्राजकने आयुष्मान् अश्वजित्‌को अतिसुन्दर...आलोकन=विलोकनके साथ...नीची नज़र रखते संयमी ढंगसे राजगृहमें भिक्षाके लिये घूमते देखा । देखकर उनको हुआ—"लोकमें अर्हत् या अर्हत्‌के मार्गपर जो आरूढ हैं, यह भिक्षु उनमेंसे एक है । क्यों न मैं इस भिक्षुके पास जा पूछूँ—आवुस ! तुम किसको (गुरु) करके प्रव्रजित हुये हो ; कौन तुम्हारा शास्ता (=गुरु) है ?; तुम किसके धर्मको मानते हो ?" फिर सारिपुत्र परिव्राजक (के चित्तमें) हुआ—यह समय इस भिक्षुसे (प्रश्न) पूछनेका नहीं है, यह घर घर भिक्षाके लिये घूम रहा है । क्यों न मैं इस भिक्षुके पीछे होलूं "।

आयुष्मान् अश्वजित् राज-गृहमें भिक्षाके लिये घूमकर, भिक्षाको ले चल दिये । तब सारिपुत्र परिव्राजक जहां आयुष्मान् अश्वजित् थे, वहाँ गया; जाकर आयुष्मान् अश्वजित्‌के साथ यथायोग्य कुशल प्रश्न पूछ एक ओर खड़ा होगया । खड़े होकर सारिपुत्र परिव्राजकने आयुष्मान् अश्वजित्‌को कहा—"आवुस ! तेरी इन्द्रियाँ प्रसन्न हैं, तेरे छवि-वर्ण परिशुद्ध तथा उज्वल हैं । आवुस ! तुम किसको (गुरु) करके प्रव्रजित हुये हो, तुम्हारा शास्ता (=गुरु) कौन है ?; तुम किसका धर्म मानते हो ?"

"आवुस ! शाक्य-कुलसे प्रव्रजित शाक्य-पुत्र (जो) महाश्रमण हैं, उन्हीं भगवान्‌को (गुरु) करके मैं प्रव्रजित हुआ । वही भगवान् मेरे शास्ता हैं । उन्हीं भगवान्‌का धर्म मैं मानता हूँ"।

"आयुष्मान्‌के शास्ता क्या वादी हैं=किस (सिद्धांत) को कहने वाले हैं ?"

"आवुस ! मैं नया हूँ, इस धर्ममें अभी नयाही प्रव्रजित हुआ हूँ; विस्तारसे मैं तुम्हें नहीं बतला सकता । किंतु संक्षेपसे तुम्हें धर्म कहता हूँ ।"

---

१. विनय, महावग्ग १ ।

"तब सारिपुत्र परिव्राजकने आयुष्मान् अश्वजित्‌को कहा—"अच्छा आवुस—

अल्प या बहुत कहो, अर्थहीको मुझे बतलाओ।

अर्थहीसे मुझे प्रयोजन है, क्या करोगे 'बहुतसा व्यंजन लेकर"।

तब आयुष्मान् अश्वजित्‌ने सारिपुत्र परिव्राजकको यह [2]धर्म-पर्याय कहा—

[3]"हेतु (=कारण) से उत्पन्न होनेवाले जितने धर्म (दुःख आदि) हैं, उनका हेतु (=समुदय) तथागत बतलाते हैं। उनका जो निरोध है (उसको भी बतलाते हैं), यही दुःख, महाश्रमणका वाद (=प्रतिपद्) है"। तब सारिपुत्र परिव्राजकको इस धर्म-पर्यायके सुननेसे—"जो कुछ समुदय-धर्म है, वह सब निरोध-धर्म है" यह विरज=विमल धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ।

तब सारिपुत्र परिव्राजक जहाँ मौद्गल्यायन (मोग्गलायने) परिव्राजक था, वहाँ गया। मौद्गल्यायन परिव्राजकने दूसरेही सारिपुत्र परिव्राजकको आते देखा। देखकर सारिपुत्र परिव्राजकको कहा—"आवुस! तेरी इन्द्रियाँ प्रसन्न हैं, तेरे छवि-वर्ण परिशुद्ध तथा उज्वल हैं। तूने आवुस! अमृत तो नहीं पा लिया?"

"हाँ आवुस! अमृत पालिया।"

"आवुस! कैसे तूने अमृत पाया?"

"आवुस! मैंने यहाँ राजगृहमें अश्वजित् भिक्षुको अतिसुन्दर···आलोकन=विलोकनसे···भिक्षाके लिये घूमते देखकर···(सोचा) 'लोकमें जो अर्हत् हैं···यह भिक्षु उनमेंसे एक है'।···मैंने···अश्वजित्···को पूछा···तुम्हारा शास्ता कौन है···। अश्वजित्‌ने यह धर्म पर्याय कहा—हेतुसे उत्पन्न जितने धर्म हैं, उनका हेतु तथागत कहते हैं। (और) उनका जो निरोध है (उसको भी), यही महाश्रमणका-वाद है।'

तब मौद्गल्यायन परिव्राजकको इस धर्म-पर्यायके सुननेसे—'जो कुछ समुदय-धर्म है वह सब निरोध-धर्म है"—यह विमल=विरज धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ।···

मोग्गलान परिव्राजकने सारिपुत्र परिव्राजकसे कहा—"चलो चलें आवुस!! भगवान् के पास, वह हमारे शास्ता हैं। और यह (जो) ढाई सौ परिव्राजक हमारे आश्रयसे=हमें देखकर यहाँ विहार करते हैं; उन्हें भी देखलें (और कहदें)—जैसी तुम लोगोंकी राय हो वैसा करो—।" तब सारिपुत्र, मौद्गल्यायन जहाँ वह परिव्राजक थे वहाँ गये, और जाकर उन परिव्राजकोंसे बोले—"आवुसो! हम भगवान्‌के पास जाते हैं, वह हमारे शास्ता हैं"।

'हम आयुष्मानोंके आश्रयसे=आयुष्मानोंको देखकर, यहाँ विहार करते हैं। यदि आयुष्मान् महाश्रमणके पास ब्रह्मचर्य चरण करेंगे, तो हम सभी महाश्रमणके पास ब्रह्मचर्य चरेंगे।"

तब सारिपुत्र और मौद्गल्यायन जहाँ संजय परिव्राजक था, वहाँ गये। जाकर संजय परिव्राजकसे बोले—

१. विस्तार, स्पष्टीकरण। २. उपदेश। ३. ये धम्मा हेतुप्पभवा, हेतुं तेसं तथागतो आह। तेसं च यो निरोधो एवं वादी महासमनो॥

"आवुस ! हम भगवानके पास जाते हैं, वह हमारे शास्ता हैं।"

"बस आवुसो ! मत जाओ। हम तीनों (मिलकर) इस (परिव्राजक-) गणकी महन्ताई करेंगे।"

"दूसरी बारभी सारिपुत्र और मौद्गल्यायनने संजय परिव्राजकको कहा—"... हम भगवानके पास जाते हैं...।"

"...मत जाओ ! हम तीनों (मिलकर) इस गणकी महन्ताई करेंगे।"

तीसरी बार भी...।

तब सारिपुत्र और मौद्गल्यायन उन ढाई सौ परिव्राजकोंको ले, जहाँ वेणुवन था, वहाँ चले गये। संजय परिव्राजकको वहीं मुँहसे गर्म खून निकल आया।

भगवानने दूरसे ही सारिपुत्र और मौद्गल्यायनको आते हुये देख भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! यह दो मित्र कोलित (=मौद्गल्यायन) और उपतिष्य (=सारिपुत्र) आ रहे हैं। यह मेरे अग्रश्रावक-युगल होंगे, भद्र-युगल होंगे।"...

तब सारिपुत्र और मौद्गल्यायन जहाँ भगवान थे, वहाँ गये, जाकर भगवानके चरणोंमें शिर झुकाकर बोले—

"भन्ते ! हम भगवानके पास प्रव्रज्या पावें, उपसम्पदा पावें।"

भगवानने कहा—"भिक्षुओ आओ धर्म सु-आख्यात है। अच्छी प्रकार दुःखके क्षयके लिये ब्रह्मचर्य-चरण करो।"

यही उन आयुष्मानोंकी उपसम्पदा हुई।

× × ×

(९)

महाकाश्यप-प्रव्रज्या (ई. पू. ५२७)

[1]यह पिप्पली नामका [2]माणवक मगध देशके महातित्थ (=महातीर्थ) नामक ब्राह्मणोंके गाँवमें कपिल ब्राह्मणकी प्रधान भार्याके गर्भसे उत्पन्न हुआ।...भद्रा कापिलायनी [3]मद्रदेशके [4]सागलनगरमें कौशिक-गोत्र ब्राह्मणकी प्रमुख-भार्याके गर्भसे उत्पन्न हुई। क्रमसे बढ़ते बढ़ते पिप्पली माणवक बीस (वर्ष) और भद्रा कपिलायनी सोलह (वर्ष) की हुई। माता-पिताने पुत्रको देख—"तात ! तू वयःप्राप्त (=युवा) है, कुल-वंशको कायम रखना चाहिये"—यह बहुत जोर दिया। माणवकने कहा—"मेरे कानमें ऐसी बात मत कहिये। जब तक आप लोग हैं, तब तक (आप लोगोंकी) सेवा करूँगा। आप लोगोंके बाद निकलकर प्रव्रजित होऊँगा।" वह कुछ दिन ठहर कर फिर बोले, पर उसने 'नहीं' किया।

---

१. थेरगाथा-अट्ठकथा. ३०। संयु० नि. अट्ठकथा. १५.१.११। अंगु. नि. अ. क. १.१.४।
२. ब्राह्मण-विद्यार्थी। ३. रावी और चनाबके बीचका प्रदेश मद्रदेश है। ४ स्यालकोट (पंजाब)।

फिर कहा, फिर नहीं (=इन्कार) किया। उसके बाद माता बराबर कहती ही रहती। माणवकने 'माताको सचेत कर दूँ' विचार, हज़ार लाल-सोनेके निष्क (=अशर्फी) दे सोनारसे एक स्त्री-मूर्ति बनवाकर, उसकी सफाई-घुटाई आदि समाप्त हो जानेपर, उसे लाल वस्त्र पहना; रंग विरंगे फूलों, और नाना प्रकारके अलंकारोंसे अलंकृत करा, माताको बुलाकर—'माँ! इस प्रकारका रूप पा, मैं गृहस्थ रहूँगा' कहा। ब्राह्मणी पंडिता थी। उसने सोचा—"मेरा पुत्र पुण्यवान् है, (पूर्वजन्ममें) दान दिये...है। पुण्य अकेले ही नहीं किये होंगे। अवश्य इसके साथ पुण्य करनेवाली (कोई) सुवर्णवर्णा (स्त्री) भी रही होगी।" (और) आठ ब्राह्मणोंको बुलावा (उनकी) सब मुराद पूरी कर, सुवर्ण-प्रतिमाको रथपर रखवा—"तातो! जाओ जहाँ कहीं जाति-गोत्र और भोगमें हमारे समान, ऐसी (सुवर्ण-वर्णा) कन्या देखना, इसी सुवर्ण-प्रतिमाको (विवाहके) पक्केपनकी जमानत रखकर, लौट आना" कह भेज दिया।

वह "यह हमारा काम है," कह, निकलकर, 'कहाँ जायें' सोच, (फिर) 'मद्र-देश स्त्रियोंका आगार (=खजाना, खान) है, मद्र-देशको चलें" (विचार), **मद्रदेशके सागल-नगरमें** गये। वहाँ उस सुवर्ण-प्रतिमाको नहानेके घाटपर रख, एक ओर बैठ गये। तब **भद्राकी** दाई, भद्राको नहलाकर, अलंकृतकर रङ्गमहल (श्रीगर्भ) के भीतर बैठाकर, स्वयं नहानेके लिये पानीके घाटपर आई। वहाँ उस सुवर्ण-प्रतिमाको देख—"यह कैसी विनय-शून्य है, (जो) यहाँ आकर खड़ी है" (सोच) पीठपर (थप्पड़) मारा। तब उसे पता लगा कि यह सुवर्ण-प्रतिमा है। "मैंने समझा (था) मेरी अय्य-धीता (=स्वामि-पुत्री) है, यह तो मेरी अय्य-धीताकी वस्त्र ले चलनेवाली (लौंडी) जैसी भी नहीं है" वह बोली। तब उन मनुष्योंने उसे चारों ओरसे घेरकर पूछा "क्या तेरी स्वामि-पुत्री ऐसे रूपकी है?"

"ऐसे रूपकी? मेरी अय्या (=आर्या) इस सुवर्ण-प्रतिमासे सौ-गुनी, हजार-गुनी, लाख-गुनी (अधिक) सुन्दरी है। बारह हाथके घरमें उसके बैठे होनेपर दीपकका काम नहीं, शरीर की प्रभासे ही अन्धकार दूर हो जाता है।"

"तो आ फिर" कह उस कुब्जाको ले, सुवर्ण-प्रतिमाको रथपर रख, **कौशिक-गोत्र** (ब्राह्मण) के द्वारपर जा, आगमनकी सूचना दी। ब्राह्मणने सत्कार करके पूछा—"कहाँसे आये हो?"

"मगध-देशमें महातित्थ ग्रामके कपिल ब्राह्मणके घरसे—इस उद्देश्यसे (आये हैं)"

"अच्छा तातो! वह ब्राह्मण गोत्र, जाति, विभवमें हमारे समान है, मैं कन्या प्रदान करूँगा" कह, (उसने) भेंट स्वीकार की।

उन्होंने कपिल ब्राह्मणको शासन (=संदेशपत्र) भेजा—"कन्या मिल गई, करना है सो करो।"

उस पत्रको सुन, उन्होंने पिप्पली माणवकको सूचित किया।...। माणवकने—"मैंने सोचा था, कि न मिलेगी, (और) यह कह रहे हैं कि मिल गई, 'मुझे नहीं चाहिये' कहकर पत्र भेजना चाहिये" (सोच) एकांतमें बैठकर पत्र लिखा—"**भद्रा!** (मुझे छोड़) अपने जाति, गोत्र, भोगके समान गृहवास पाओ। मैं निकलकर प्रव्रजित होऊँगा, पीछे दुःखी न होना।"

भद्राने भी मुझे अमुकको देना चाहते हैं, सुनकर, 'चिट्ठी भेजनी चाहिये' विचार, एकान्तमें बैठ पत्र लिखा—'आर्य-पुत्र ! (मुझे छोड़) अपने जाति, गोत्र भोगके समान गृहवास पावो, मैं निकलकर प्रव्रजित होऊँगी; पीछे अफसोस न करना पड़े।" दोनों पत्र (-वाहक) रास्तेमें मिले।

"यह किसका पत्र है ?"

"पिप्पली माणवकने भद्राके लिये भेजा है।"

"यह किसका ?"

"भद्राने पिप्पली माणवकके लिये भेजा है" यह कहने पर "इन दोनोंको पढ़ो।" "देखो लड़कोंके कामको" (कह, पत्रवाहकोंने पत्र) फाड़कर जंगलमें फेंक, उसी प्रकारके दूसरे पत्र लिखकर···पहुँचा दिये। कुमार और कुमारीका अनुकूल-पत्र लोगोंकी प्रसन्नता की बात ठहरी। इस प्रकार अनिच्छा रखते भी दोनोंका समागम हुआ।

उसी दिन पिप्पली माणवकने एक फूल-माला गुँथवाई, और भद्राने भी (एक)। उन (मालाओं) को पलंगके बीचमें रख दिया। ब्यालू करके दोनों सोने गये। माणवक दाहिनी ओरसे, और भद्रा बाईं ओरसे शयनारूढ हुई। वह एक दूसरेके शरीर-स्पर्शके भयसे रातको बिना निद्राकेही बिताते थे। दिनको हँसना तक भी न होता था। इस प्रकार सांसारिक सुखमें बिना लिप्त हुये, जब तक माता-पिता जीवित रहे, तब तक कुटुम्बका ख्याल न किया, उनके मरनेपर विचार करने लगे। माणवकके पास बड़ी भारी सम्पत्ति थी। शरीरको उबटनकर फेंक देनेका चूर्णही, मगधकी [1]नालीसे बारह नाली भर होता था। तालेके भीतर साठ बड़े बहबच्चे (=तड़ाक) बारह योजन तक (फैले) खेत, अनुराधपुर जैसे १४ दासोंके गाँव, चौदह हाथियोंके झुण्ड, चौदह घोड़ोंके झुण्ड और चौदह रथोंके झुण्ड थे। उसने एक दिन अलंकृत घोड़ेपर चढ़, लोगोंसे घिरे खेतपर जा, खेतकी मेंड़ पर खड़े (हो), हलों द्वारा विदारित स्थानोंसे, कौवे आदि चिड़ियोंको (कीड़े केंचुये)···प्राणियोंको निकालकर खाते देखकर, पूछा—"तातो ! यह क्या खाते हैं ?"

"आर्य ! केंचुओंको"

"इनका किया पाप किसको लगेगा ?"

"आर्य ! तुम्हें"

उसने सोचा—"यदि इनका किया पाप मुझे होता है, तो सत्तासी करोड़ धन मेरा क्या करेगा ? बारह योजनकी खेती क्या (करेगी) ? तालेमें बन्द बहबच्चे क्या (करेंगे) ? चौदह दास-ग्राम क्या (करेंगे) ? क्यों न मैं यह सब भद्रा कापिलायनीको सुपुर्दकर, निकलकर प्रव्रजित हो जाऊँ।"

भद्रा कपिलायनी भी उस समय दृश्योंके भीतर तिलके तीन घड़ोंको फैलवाकर, दाइयोंके साथ बैठी, तिलके कीड़ोंको खाये जाते देख पूछा—"अम्म ! यह क्या खाते हैं ?"

"आर्ये ! प्राणियोंको"

---

[1] एक माप प्रायः २ सेर।

"पाप किसको होगा ?"

"तुम्हींको आर्य !"

उसने सोचा—"मुझे तो सिर्फ चार हाथ वस्त्र और नालीभर भात चाहिए। यदि इन सबका किया पाप मुझेही होता है, तो हजार जन्ममें भी शिर भँवरसे ऊपर नहीं किया जा सकता। आर्य-पुत्रके आतेही (यह) सभी उनको सपुर्द कर, निकल कर प्रव्रजित होऊँगी।"

माणवक आकर नहाकर प्रासादपर चढ़, बहुमूल्य पलंगपर बैठा। तब उसके लिये चक्रवर्तीके लायक भोजन सजाया गया। दोनों भोजन कर, परिजनोंके चले जानेपर, एकान्तमें अनुकूल-स्थानमें बैठे। तब माणवकने भद्राको कहा—

"भद्रे ! इस घरमें, आते वक्त कितना धन साथ लाई थी ?"

"पचपन हजार गाड़ी, आर्य !"

"वह सब, और जो इस घरमें सत्तासी करोड़, (तथा) तालेमें बन्द साठ चहबच्चे आदि सम्पत् है, यह सब तुम्हेंही सपुर्द करता हूं।"

"और तुम कहाँ (जाते हो) आर्य ?"

"प्रव्रजित होऊँगा"

"आर्य ! मैं भी तुम्हारे ही आनेकी प्रतीक्षामें बैठी थी, मैं भी प्रव्रजित होऊँगी।

वह "हमारे तीनो भव (=लोक) जलती हुई फूसकी झोपड़ीके सदृश मालूम पड़ते हैं, हम प्रव्रजित होवेंगे" विचार, बाजार से वस्त्र, और मिट्टीका (भिक्षा-) पात्र मंगवा, एक दूसरेके केशोंको काटकर—"संसार में जो अर्हत् हैं, उन्हींके उद्देश्यसे हमारी यह प्रव्रज्या है" कह, प्रव्रजित हो, झोलीमें पात्र रखकर कंधेसे लटका, महलसे उतरे। घरमें दासों या कमकरोंमें से किसीने भी न जाना।

तब वह ब्राह्मण-ग्रामसे निकल दासोंके ग्रामके द्वारसे जाने लगे। आकार-प्रकारसे दास-ग्राम-वासियोंने उन्हें पहिचाना। वह रोते पैरोंमें गिरकर बोले—

"आर्य ! हमको क्यों अनाथ बना रहे हो ?"

"भणे[1] ! हम तीनों भवोंको जलती फूसकी झोपड़ीसा समझ प्रव्रजित हुये हैं; यदि तुममेंसे एक एकको पृथक् पृथक् दासतासे मुक्त करें, तो सौ वर्षमें भी न हो सकेगा। तुम्हीं अपने आप शिरोंको धोकर दासता-मुक्त हो जाओ।" यह कह उन्हें रोते छोड़ चले गये।

आगे आगे चलते स्थविरने पीछे घूमकर देखा और सोचा—"इस सारे जम्बूद्वीपके मूल्यकी स्त्री (इस) भद्रा कापिलायनीको मेरे पीछे आते देख, हो सकता है, कोई सोचे—'यह प्रव्रजित होकर भी अलग नहीं हो सकते। अनुचित कर रहे हैं।' कोई पापसे मन बिगाड़ नरक-गामी भी हो सकता है। (इसलिये) इसे छोड़कर (ही) मुझे जाना योग्य

१. 'रे' की जगहपर।

है।" यह सामने जाकर रास्तेको दो तरफ फटता देख, उसपर खड़े हो गये। भद्रा भी जाकर वन्दना कर खड़ी होगई। तब उसको बोले—

"भद्रे! तुम्ह स्त्रीको मेरे पीछे आते देख—'यह प्रव्रजित होकर भी अलग नहीं हो सकते'—यह सोच लोग हमारे विषयमें दूषित-चित्त हो नरक-गामी बन सकते हैं। (अतः) इन दो रास्तोंमेंसे एक तू पकड़ ले, (और) एक मैं पकड़ लेता हूँ।"

"हाँ! आर्य! प्रव्रजितोंके लिये स्त्रीजन बाधक होते हैं। (लोग) हमारेमें दोष देखेंगे, आप एक रास्ता पकड़ें (मैं दूसरा और) हम दोनों अलग हो जावें" (कह), तीनवार प्रदक्षिणा कर चार स्थानोंमें पांच-अंगोंसे वन्दना कर, दस नखोंके योगसे समुज्वल अंजलीको जोड़ "लाखों कल्प-कालसे चला आया साथ, आज छूटेगा" कह, "तुम दक्षिण-जातिके हो, इसलिये तुम्हारा मार्ग दक्षिणका है, हम स्त्रियां वाम-जातिकी हैं, इसलिये हमारा मार्ग वामका है" यह कहती वन्दना कर उसने अपना मार्ग लिया।

⁂ ⁂ ⁂ ⁂

सम्यक्-संबुद्धने, वेणुवन महाविहारकी गंधकुटीमें बैठे हुए...(ध्यानमें देखा)—पिप्पली माणवक और भद्रा कापिलायनी अपार संपत्ति छोड़ प्रव्रजित हुए हैं।...। मुझे भी इनका संग्रह करना चाहिये (सोच), गंधकुटीसे निकल, स्वयं पात्रचीवर ले, अस्सी महास्थविरोंमेंसे किसीको भी बिना कहे, तीन गव्यूति (पौन योजन) मार्ग अगवानी करके, राजगृह और नालन्दाके बीच 'बहु-पुत्रक नामक बर्गदके वृक्षके नीचे आसन मार कर बैठ गये।...। महा काश्यप...ने—यह हमारे शास्ता होंगे, इन्हींको उद्देश कर हम प्रव्रजित हुए—ऐसा सोच, देखनेके स्थानसे (ही) झुके-झुके जाकर तीन स्थानोंमें वन्दना कर "भगवान् मेरे शास्ता (=गुरु) हैं, मैं आपका श्रावक (=शिष्य) हूँ" कहा।...। तब भगवान्ने उनको तीन उपदेश कर उपसंपदा दी (और उपसंपदा) देकर "बहुपुत्रक" बर्गदके नीचेसे निकल स्थविरको अनुचर-श्रमण बना रास्ता पकड़ा। शास्ताका शरीर महापुरुषोंके बत्तीस लक्षणोंसे चित्रित था, और महाकाश्यपका शरीर महापुरुषके सात लक्षणोंसे। वह किसी महानावसे बँधे (डोंगी) के समान, पीछे पीछे पग डालते चल रहे थे। शास्ताने थोड़ा मार्ग चलकर, मार्गसे हट, किसी पेड़के नीचे बैठने जैसा संकेत किया। स्थविरने—शास्ता बैठना चाहते हैं—जान, अपनी पहनी रेशमी संघाटी चौपेत कर बिछा दी। शास्ता उसपर बैठकर हाथमें चीवरको मसलते हुये बोले—

"काश्यप! तेरी यह रेशमी (=पट-पिलोतिका) संघाटी मुलायम है?"

शास्ता मेरी संघाटीके मुलायमपनको बखान रहे हैं, (शायद) पहिनना चाहते होंगे, ऐसा समझकर बोले—

"भन्ते! भगवान् संघाटीको धारण करें।"

"काश्यप! तुम क्या पहनोगे?"

"भन्ते! यदि आपका वस्त्र मिलेगा, तो पहनूँगा!"

---

१. वर्तमान् सिलाव (जि॰ पटना) में यह स्थान रहा होगा।

"काश्यप ! क्या तुम इस पहिनते-पहिनते जीर्ण होगये पांसुकूल (=गुदड़ी) को धारणकर सकते हो ?...यह बुद्धोंका पहिनते-पहिनते जीर्ण हुआ चीवर है। थोड़े गुणोंवाला (मनुष्य) इसे धारण नहीं कर सकता। समर्थ, धर्मके अनुसरणमें पक्के, जन्मभर [1]पांसुकूलिक रहनेवाले ही को (इसे) लेना योग्य है।"

यह कह स्थविरके साथ चीवर-परिवर्तन किया। इस प्रकार चीवर-परिवर्तन कर, स्थविरके चीवरको भगवान्ने धारण किया, और शास्ताके चीवरको स्थविरने।...। स्थविर—'बुद्धोंका चीवर पालिया, अब इसके बाद मुझे क्या करना है'—इस प्रकारका अभिमान किये बिना ही, बुद्धोंके पाससे तेरह [2]अवधूतोंके व्रतोंको लेकर, सात ही दिन [3]पृथग्जन रहे, आठवें दिन प्रतिसंवित्-सहित अर्हत्-पदको प्राप्त हो गये।

कस्सप-सुत्त।

[4]ऐसा मैंने सुना—एक समय आयुष्मान् महाकाश्यप राजगृहके वेणुवन कलन्दक-निवापमें विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् आनंद बड़े भारी भिक्षुसंघके साथ, दक्षिण-गिरिमें चारिका कर रहे थे। आयुष्मान् आनंदके तीस शिष्य भिक्षु-भाव छोड़कर गृहस्थ होगये, उनमें विशेष संख्या तरुणोंकी थी। तब आयुष्मान् आनंद दक्षिण-गिरिमें इच्छानुसार चारिका करके, जहाँ राजगृह वेणुवन कलन्दकनिवाप था, जहाँपर आयुष्मान् काश्यप थे, वहाँ आये। आकर आयुष्मान् काश्यपको अभिवादन कर, एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् आनन्दको, आ० महाकाश्यपने कहा—

"आवुस आनन्द ! किन कारणोंसे भगवान्ने कुलोंमें तीन भोजन विधान किये ?"

"भन्ते काश्यप ! तीन कारणोंसे भगवान्ने०। उच्छृंखल जनोंके निग्रहके लिये, पेशल (अच्छे) जनोंके सुखसे विहार करनेके लिये, जिसमें बुरी नीयतवाले सहारा लेकर फूट न डालें (और) कुलोंपर अनुग्रह हो। भन्ते काश्यप ! इन्हीं तीनों बातोंसे भगवान्ने तीन भोजन विधान किये।"

"आवुस आनन्द ! तू क्यों इन इन्द्रियोंमें अगुप्त-द्वारवाले, भोजनमें परिमाण न जाननेवाले, जागरणमें तत्पर न रहनेवाले, नये भिक्षुओंके साथ चारिका करता है। मानो तू सस्योंका घात कर रहा है, मानो तू कुलोंका घातकर रहा है। तू सस्योंका घात करता चलता है,...तू कुलोंका घात करता चलता है—(ऐसा) मैं समझता हूं। आवुस आनन्द ! तेरी मंडली भंग हो रही है, अधिकतर नये (भिक्षुओं) वाली तेरी (मंडली) टूट रही है। (अहो) यह कुमार(=आनन्द) मात्रा नहीं जानता।"

"भन्ते काश्यप ! मेरे शिरके (केश) सफेद हो गये। तो भी, आयुष्मान् महाकाश्यपके कुमार (=बचा) कहनेसे नहीं छूट रहा हूँ"

"हाँ, आवुस आनन्द ! तू इन इन्द्रियोंमें अगुप्त द्वारवाले (=अजितेन्द्रिय)०। (अहो) यह कुमार मात्रा नहीं जानता।"

---

१. सिर्फ चीथड़ोंको सीकर ही पहननेवाला। २. धुतांग। ३. जिसे तत्त्व-साक्षात्कार नहीं हुआ। ४. संयुत्त. नि. १. २७. ५.।

थुल्लनन्दा भिक्षुणीने सुना कि आर्य महाकाश्यपने वैदेहमुनि आर्य आनंदको कुमार कहकर फटकारा है। तब थुल्लनन्दा भिक्षुणीने अप्रसन्न (हो), अप्रसन्नताकी बात कही—

"कैसे दूसरे तीर्थ (=संप्रदाय) में रहे आर्य महाकाश्यप, वैदेहमुनि आर्य आनंदको 'कुमार' कहकर फटकारनेकी हिम्मत करते हैं ?"

आयुष्मान् महाकाश्यपने थुल्लनन्दा भिक्षुणीके इस वचनको सुना। तब (उन्होंने)… आयुष्मान् आनन्दको यों कहा—

"आवुस आनन्द ! थुल्लनन्दा भिक्षुणीने जल्दीमें बिना विचारेही यह कहा। क्योंकि आवुस ! जबसे मैं शिर-दाढ़ी मुँड़ा, काषाय वस्त्र पहिन, घरसे बेघर प्रव्रजित हुआ; तबसे उस भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्धको छोड़, दूसरेको शास्ता कहना नहीं जानता। पहिले आवुस ! गृही होते समय, यह (विचार) हुआ—"यह एकान्त (=बिल्कुल) परिपूर्ण, एकान्त परिशुद्ध खरादे-शंखसा (उज्वल) ब्रह्मचर्य, घरमें रहते हुये नहीं पालन किया जा सकता। क्यों न मैं शिर-दाढ़ी मुँड़ा, काषाय वस्त्र पहन, घरसे बेघर हो प्रव्रजित हो जाऊँ। सो मैं आवुस ! पीछे 'पटपिलोतिकोंकी[1] संघाटी बना, लोकमें जो अर्हत् हैं, यह मेरी प्रव्रज्या उन्हींके लिये है, (कह) शिर-दाढ़ी मुँड़ा काषाय वस्त्र पहिन, घरसे बेघर हो प्रव्रजित हुआ। इस प्रकार प्रव्रजित हो रास्तेमें जाते हुये, मैंने राजगृह और नालन्दाके बीच, बहुपुत्तक-चैत्यमें बैठे भगवान्को देखा। देखकर मुझे यह हुआ—'अरे ! मैं शास्ताको देख रहा हूँ, मैं भगवान्को देख रहा हूँ'। सो आवुस ! मैं वहीं भगवान्के पैरोंमें शिर रखकर बोला—भन्ते ! भगवान् मेरे शास्ता (=गुरु) हैं, मैं श्रावक (=शिष्य) हूँ। भन्ते ! भगवान् मेरे शास्ता हैं, मैं श्रावक हूँ। यह बोलनेपर आवुस ! भगवान्ने मुझे कहा—

'काश्यप ! जो इस प्रकारके सारे मनसे युक्त श्रावक (=शिष्य) को न जानकर 'मैं जानता हूँ,' कहे, न देखकर 'मैं देखता हूँ" कहे, उसका शिर गिर जाय। किन्तु काश्यप मैं जानता हुआ ही 'जानता हूँ' कहता हूँ, देखता हुआही 'देखता हूँ' कहता हूँ। इसलिये काश्यप ! तुझे बूढ़ों (=थेरों) में, तरुणोंमें, प्रौढ़ों (मध्यमों) में लज्जा और भय रखना सीखना चाहिये। काश्यप तुझे यह सीखना चाहिये—जो कुछ कुशल (=पवित्र=अच्छा) धर्म सुनूँगा, उन सबको अपनाकर, चारों ओरसे चित्तको अच्छी तरह एकाग्र कर, कान लगाकर धर्मको सुनूँगा।… काश्यप ! तुझे यह सीखना चाहिये, कि शरीर-संबंधी अनुकूल स्मृति (=काय-गत-स्मृति) न छूटेगी। काश्यप ! तुझे यह सीखना चाहिये।'

"आवुस ! भगवान् मुझे यह उपदेश दे आसनसे उठकर चल दिये। कुल सप्ताह भरही आवुस ! मल-चित्त-युक्त (=स-रण) मैंने राष्ट्रके पिंडको खाया, आठवें दिन अज्ञा (=विमल-ज्ञान) उत्पन्न हुई। तब आवुस ! भगवान् मार्ग छोड़, एक पेड़के नीचे गये। तब मैंने आवुस ! पटपिलोतिकों'की संघाटीको चौपेत कर रख, भगवान्से कहा—यहाँ भन्ते ! भगवान

1. "तेरह हाथका भी नया साटक (=साड़ी या धोती) किनारेके फटते ही पिलोतिका कहा जाता है, इस प्रकार महार्घ वस्त्रोंको फाड़कर बनाई संघाटीके लिये पटपिलोतिकोंकी संघाटी कहा"। अ. क.

बैठें, जिसमें मेरा चिर-काल तक कल्याण और सुख हो। आवुस! भगवान् बिछे आसनपर बैठ गये। बैठकर मुझे भगवानने कहा—काश्यप 'यह तेरी पट-पिलोतिकोंकी संघाटी मुलायम है।'

'भन्ते! भगवान् पट-पिलोतिकाओंकी संघाटीको दया करके स्वीकार करें'

'काश्यप! मेरे सनके पांसुकूल (=गुदड़ी) वस्त्रोंको धारण करोगे?'

'भन्ते! भगवान्‌के सनके पांसु-कूल वस्त्रोंको धारण करूँगा।'

"सो मैंने पट-पिलोतिकाओंकी संघाटी भगवानको दे दी, और भगवान्‌के सनके पांसु-कूल वस्त्रोंको ले लिया। जिसको कि ठीक बोलते हुये बोलना चाहिये—भगवान्‌के औरसपुत्र, मुखसे उत्पन्न, धर्मज (=धर्मसे उत्पन्न), धर्मसे निर्मित, धर्मका दायाद (=वारिस) है; (कि उसने) सनके पांसुकूलवस्त्र ग्रहण किये। मेरे लिये ठीक बोलते हुये बोलना चाहिये—भगवान्‌का औरस, मुखसे उत्पन्न, धर्म-ज, धर्मसे निर्मित, धर्मका दायाद (है जो कि) सनके पांसुकूल वस्त्र ग्रहण किये।…

❀ ❀ ❀ ❀

१०

महाकात्यायनकी प्रव्रज्या (ई. पू. ५२७)

[1](महाकात्यायन)…उज्जैन नगरमें पुरोहितके घर उत्पन्न हुये।…। उन्होंने बड़े हो तीनों वेद पढ़, पिताके मरनेपर पुरोहितका पद पाया। गोत्रके नामसे **कात्यायन** (प्रसिद्ध) हुए। राजा चण्ड **प्रद्योतने** (अपने) अमात्योंको एकट्ठाकर कहा—"तातो! लोकमें बुद्ध उत्पन्न हुये हैं, उनको जो कोई ला सकता है, वह जाकर ले आवे।"

"देव! दूसरे नहीं ला सकते, आचार्य कात्यायन ब्राह्मण ही समर्थ हैं, उन्हींको भेजिये।"

राजाने उनको बुलवाकर—"तात **दशबल** (=बुद्ध) के पास जाओ।"

"हाँ, महाराज! यदि प्रव्रजित होने (की आज्ञा) पाऊँ।"

"तात! जो कुछ भी करके, तथागतको ले आओ।"

उन्होंने (सोचा)—बुद्धोंके पास जानेके लिये बड़ी जमातकी आवश्यकता नहीं (होती), इसलिये सात जने और अपने आठवां हो, (भगवान्‌के पास) गये। तब शास्ताने उनको धर्मोपदेश दिया। देशनाके अन्तमें वह सातो जनों सहित, प्रतिसंविद्के साथ अर्हत्-पदको प्राप्त हुये। शास्ताने "भिक्षुओ! आओ" कह हाथ पसारा। उसी समय वे सभी शिर-दाढ़ीके बाल लुप्त हुए, ऋद्धिसे मिले पात्र-चीवर धारण किये, सौ वर्षके स्थविर समान हो गये। स्थविर (कात्यायन) ने अपने कार्यके समाप्त होनेपर, चुप न हो…शास्ताको उज्जैन चलनेके लिये यात्राकी प्रशंसाकी। शास्ताने उनकी बात सुन…बुद्ध (केवल) एक कारणसे न जाने योग्य स्थानमें नहीं जाते; इसलिये स्थविरको कहा—"भिक्षु! तू ही जा, तेरे जानेपर भी राजा

---

१. अंगुत्तर-नि. अ. क. १: १।१०

प्रसन्न होगा।" स्थविर (यह सोच कि) बुद्धोंकी दो बात नहीं होती, तथागतकी वन्दनाकर, अपने साथ आये सातो भिक्षुओंको ले, उज्जैनको जाते हुये रास्तेमें तेलप्पनाली नामक कस्बेमें भिक्षाचार करने गये। उस नगरमें दो सेठकी लड़कियाँ थीं, एक दरिद्र होगये कुलमें पैदा हुई, माता पिताके मरनेपर दाईके सहारे जी रही थी, किन्तु इसका रूप अति सुन्दर (और) केश दूसरोंकी अपेक्षा बहुत लम्बे थे। उसी नगरमें एक बड़े ऐश्वर्यवान् सेठके खान्दानकी लड़की केश-हीना थी। वह इसके पूर्व उसके पास (सन्देश) भेजकर—"सौ या हजार दूँगी," कहकर भी केश न मँगा सकी। उस दिन उस सेठकी लड़कीने सात भिक्षुओंके साथ स्थविरको खाली पात्र लौटते देख (सोचा)—'यह सुवर्ण-वर्ण एक ब्रह्म-बन्धु भिक्षु पहिले जैसे धोये (=खाली) पात्रसे ही (लौटा) जा रहा है। मेरे पास और धन नहीं है; लेकिन, अमुक सेठ-कन्या इन केशोंके लिये (माँग) भेजती है। अब इससे मिले धन द्वारा स्थविरके लिये दान-धर्म किया जा सकता है'—(और) दाईको भेजकर स्थविरोंको निमंत्रितकर घरके भीतर बैठाया। स्थविरोंके बैठनेपर घरमें जा, दाईसे अपने केशोंको कटवा—"अम्म! इन केशोंको अमुक सेठ-कन्याको दे आ; जो वह दे वह ले आ, आर्योंको मैं भिक्षा (=पिंड-पात) दूँगी।"

दाई...हाथमें आँसू पोंछ, एक हाथसे कलेजेको थाम, स्थविरोंके सामने ढाँककर, उन केशोंको ले, उस सेठ-कन्याके पास गई। (सच है) 'सार-पूर्ण उत्तम (वस्तु) स्वयं पास आनेपर, आदर नहीं पाती' इसलिये उस सेठ-कन्याने सोचा, 'मैं पहिले बहुत धनसे भी इन केशोंको न मँगा सकी, अब कट जानेके बाद तो कीमतके मुताबिक ही देना होगा, (और) दाईको कहा—

"पहिले मैं तेरी स्वामिनीको बहुत धन देकर भी, इन केशोंको न मँगा सकी, जहाँ जी चाहे लेजा, जीते बाल (=जीवितकेश) आठ ही कार्षापणके होते हैं" (और) आठ कार्षापण ही दिये।

दाईने कार्षापण ला सेठ-कन्याको दिये। सेठ-कन्याने एक-एक कार्षापणका एक-एक भिक्षान्न तय्यार कर, स्थविरोंको प्रदान किया। स्थविरने ध्यानसे सेठ-कन्याके भावको जान "सेठ-कन्या कहाँ है?" पूछा।

"घरमें है! आर्य!"

"उसे बुलाओ!"

उसने स्थविरके गौरवसे एक बात हीमें आकर, स्थविरोंको वन्दना कर, (मनमें) बड़ी श्रद्धा उत्पन्न की। "सुन्दर खेतमें (=सुपात्रमें) दिया भिक्षान्न इसी जन्ममें फल देता है" इसलिये स्थविरोंको वन्दना करते समय ही, केश पूर्ववत् होगये। स्थविर उस भिक्षान्नको ग्रहण कर, सेठ-कन्याके देखते-देखते ही उड़कर, आकाशमें जा कांचन-वनमें उतरे। मालीने स्थविरोंको देख, राजाके पास जाकर कहा—

"देव! आर्यपुरोहित कात्यायन प्रव्रजित हो, उद्यानमें आये हैं"।

राजाने आनन्दित (=प्रसन्नमन) हो उद्यानमें जा भोजन करलेनेपर पाँच अंगोंसे स्थविरों को वन्दना कर, (और) एक ओर बैठकर पूछा—"भन्ते! भगवान् कहाँ हैं?"

"महाराज! शास्ता ने स्वयं न आकर मुझे भेजा है?"

"भन्ते! आज भिक्षा कहाँपर पाई?"

स्थविरने राजाके पूछनेके साथ ही,-सेठ-कन्याके सब दुष्कर कर्मको कह डाला। राजाने स्थविरके लिये वास-स्थानका प्रबंध कर, (भोजनका) निमन्त्रण दिया; और घर जा सेठ-कन्याको बुला, अग्रमहिषी (=पटरानी) के पदपर स्थापित किया। इस स्त्रीको इस जन्ममें ही यश प्राप्त हुआ। इसके बाद राजा स्थविरका बड़ा सत्कार करने लगा।...। उस देवीने गर्भ धारण कर, दसमास बाद पुत्र प्रसव किया। उसका नाम (उसके) नाना सेठके नामपर **गोपालकुमार** रक्खा। वह पुत्रके नामसे **गोपाल-माता** देवीके नामसे (प्रसिद्ध) हुई। उसने स्थविरसे अत्यन्त सन्तुष्ट हो, राजासे कह कर, **कांचन-वन** उद्यानमें स्थविरके लिये विहार बनवाया। स्थविर **उज्जैन** नगरको अनुरक्त बना, फिर शास्ताके पास गये।...

× × ×

(११)

उपाध्याय, आचार्य और शिष्यके कर्तव्य। उपसम्पदा। (ई० पू० ५२७)

उस समय **मगधके** प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कुल-पुत्र (=खान्दानी) भगवान्के पास ब्रह्मचर्य चरण करते थे। लोग (देखकर) हैरान होते, निन्दा करते और दुःखी होते थे—"अपुत्र बनानेको श्रमण गौतम (उतरा है), विधवा बनानेको श्रमण गौतम (उतरा) है, कुल-विनाश-के लिये श्रमण गौतम (उतरा) है। अभी उसने एक सहस्र जटिलोंको साधु बनाया। इन ढाई सौ संजयके परिव्राजकोंको भी साधु बनाया। अब मगधके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कुल-पुत्रभी श्रमण गौतमके पास साधु बन रहे हैं।" वह भिक्षुओंको देख इस गाथाको कह, ताना देते थे—

"महाश्रमण **मगधोंके** [1]**गिरिव्रजमें** आया है।

संजयके सभी (परिव्राजकों) को तो ले लिया, अब किसको लेनेवाला है?"

भिक्षुओंने इस बातको भगवान्से कहा। भगवान्ने कहा—

"भिक्षुओ! यह शब्द देर तक न रहेगा। एक सप्ताह बीतते लोप होजायगा। जो तुम्हें उस गाथासे ताना देते हैं..., उन्हें तुम इस गाथासे उत्तर देना—

"महावीर तथागत सच्चे धर्म (के रास्ते) से ले जाते हैं।

धर्मसे ले जाये जातोंके लिये बुद्धिमानोंको असूया (=हसद) क्यों?"

...लोगोंने कहा—"**शाक्य-पुत्रीय** (=शाक्य-पुत्र बुद्धके अनुयायी) श्रमण, धर्म (के रास्ते) से ले जाते हैं, अधर्मसे नहीं।"

सप्ताह भर ही वह शब्द रहा। सप्ताह बीतते-बीतते लुप्त हो गया।

[2]उस समय भिक्षु उपाध्यायके बिना रहते थे, (इसलिये वह) उपदेश=अनुशासन न किये जानेसे, बिना ठीकसे पहने, बिना ठीकसे ढाँके, बेमहूरीसे भिक्षाके लिये जाते थे। खाते

१. राजगृह। २. महावग्ग १. ४ भाण वार।

हुये मनुष्योंके भोजनके ऊपर, खाद्यके ऊपर...पेयके ऊपर जूठे पात्रको बढ़ा देते थे। स्वयं दालभी भातभी माँगते थे, खाते थे। भोजनपर बैठे हल्ला मचाते रहते थे। लोग हैरान होते, धिक्कारते और दुःखी होते थे—क्यों शाक्यपुत्रीय श्रमण बिना टीकसे पहिने० भोजनपर बैठे भी हल्ला मचाते रहते हैं, जैसे कि ब्राह्मण ब्राह्मणभोजनमें। भिक्षुओंने लोगोंका हैरान होना० सुना। जो भिक्षु निर्लोभी, सन्तुष्ट, लज्जाशील, संकोचशील, शिक्षार्थी थे, वह हैरान हुये, धिक्कारने लगे, दुःखी हुये०।...। तब उन भिक्षुओंने भगवान्‌से इस बातको कहा।...। भगवान्‌ने धिक्कारा—'भिक्षुओ! उन नालायकोंका (यह करना) अनुचित है...अयोग्य है... अश्रमणोंका आचार है, अभव्य है, अकरणीय है। भिक्षुओ! कैसे वह नालायक बिना टीकसे पहिने० भिक्षाके लिये घूमते हैं०। भिक्षुओ! (उनका) यह (आचरण) अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये नहीं है, और न प्रसन्नों (=श्रद्धालुओं) को अधिक प्रसन्न करनेके लिये; बल्कि अप्रसन्नोंको (और भी) अप्रसन्न करनेके लिये, तथा प्रसन्नोंमेंसे भी किसी किसीके उलट देनेके लिये है।'' तब भगवान्‌ने उन भिक्षुओंको अनेक प्रकारसे धिक्कार कर···भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! मैं उपाध्याय (करने) की अनुज्ञा देता हूँ। उपाध्यायको शिष्य (=सद्धि-विहारी) में पुत्र-बुद्धि रखनी चाहिये, और शिष्यको उपाध्यायमें पिता-बुद्धि···। इस प्रकार उपाध्याय ग्रहण करना चाहिये—उपरना (उत्तरा-संग) एक कंधे पर करवा, पाद-वंदन करवा, उकडूं बैठवा, हाथ जोड़वा ऐसा कहलवाना चाहिये—'भन्ते! मेरे उपाध्याय बनिये, भन्ते! मेरे उपाध्याय बनिये, भन्ते! मेरे उपाध्याय बनिये।'···

"शिष्यको उपाध्यायके साथ अच्छा बर्ताव करना चाहिये। अच्छा बर्ताव यह है—समयसे उठकर, जूता छोड़, उत्तरासंगको एक कंधेपर रख, दातुवन देनी चाहिये, मुख (धोने की) जल देना चाहिये। आसन बिछाना चाहिये। यदि खिचड़ी (कलेऊके लिये) है, तो पात्र धोकर (उसे) देना चाहिये।···। पानी देकर पात्र ले···बिना घसे धोकर रख देना चाहिये। उपाध्यायके उठ जाने पर, आसन उठाकर रख देना चाहिये। यदि वह स्थान मैला हो, तो झाड़ू देना चाहिये। यदि उपाध्याय गाँवमें जाना चाहते हैं, तो वस्त्र थमाना चाहिये,···, कमर-बंद देना चाहिये, चौपेतकर [1]संघाटी देनी चाहिये, धोकर पानीसहित पात्र देना चाहिये। यदि उपाध्याय अनुचर-भिक्षु चाहते हैं, तो तीन स्थानोंको ढाँकते हुये घेरादार (चीवर) पहन, कमरबन्द बाँध चौपेती संघाटी पहिन, मुद्धी बाँध, धोकर पात्रके साथ उपाध्यायका अनुचर (=पीछे चलने वाला) भिक्षु बनना चाहिये। न बहुत दूर होकर चलना चाहिये, न बहुत समीप होकर चलना चाहिये। पात्रमें प्राप्त (अन्न) को ग्रहण करना चाहिये। उपाध्यायके बात करते समय, बीच बीचमें बात न करना चाहिये। उपाध्याय (यदि) सदोष (बात) बोल रहे हों, तो मना करना चाहिये। लौटते समय पहिले ही आकर आसन बिछा देना चाहिये, पादोदक (=पैर धोनेका जल), पाद-पीठ, पादकठली (पैर घिसनेका साधन) रख देना चाहिये। आगे बढ़कर पात्र-चीवर (हाथसे) लेना चाहिये। दूसरा वस्त्र देना चाहिये, पहिना वस्त्र ले लेना चाहिये। यदि चीवरमें पसीना लगा हो, थोड़ी देर धूपमें सुखा देना

1. दोहरा चीवर।

चाहिये। धूपमें चीवरको डाहना न चाहिये। (फिर) चीवर बटोर लेना चाहिये।...यदि भिक्षा है, और उपाध्याय भोजन करना चाहते हैं, तो पानी देकर भिक्षा देना चाहिये। उपाध्यायको पानीके लिये पूछना चाहिये। भोजनकर लेनेपर पानी देकर, पात्र ले, झुकाकर विना घिसे अच्छी तरह धो, पोंछकर मुहूर्तभर धूपमें सुखा देना चाहिये। धूपमें पात्र डाहना न चाहिये।...यदि उपाध्याय स्नान करना चाहें, स्नान कराना चाहिये।...यदि जंताघर (=स्नानागार) में जाना चाहें, (स्नान-) चूर्ण ले जाना चाहिये, मिट्टी भिगोनी चाहिये। जंताघरके पीढेको लेकर उपाध्यायके पीछे पीछे जाकर, जन्ताघरके पीढेको दे, चीवर ले एक ओर रख देना चाहिये। (स्नान-) चूर्ण देना चाहिये, मिट्टी देनी चाहिये।...उपाध्यायका (शरीर) मलना चाहिये। (उपाध्यायके) नहा लेनेसे पूर्व ही अपने देहको पोंछ (सुखा), कपड़ा पहन, उपाध्यायके शरीरसे पानी पोंछना चाहिये। वस्त्र देना चाहिये। संघाटी देनी चाहिये। जंताघरका पीढा ले पहिले ही आकर, आसन बिछाना चाहिये०।...

जिस विहारमें उपाध्याय विहार करते हैं, यदि वह विहार मैला हो, और उत्साह हो, तो उसे साफ करना चाहिये। विहार साफ करनेमें पहिले पात्र चीवर निकालकर, एक ओर रखना चाहिये। गद्दा चद्दर निकालकर एक ओर रखनी चाहिये। तकिया...रखनी चाहिये। चारपाईको खड़ीकर...किवाड़में विना टकराये लेकर, एक ओर रख देना चाहिये। पीढ़ेको खड़ाकर...किवाड़में विना टकराये०। चारपाईके (पावेके) ओट०। पीकदानको एक ओर०। सिरहानेका पटरा एक ओर०। फर्शको बिछावटके अनुसार जानकर, ले जाकर०। यदि विहारमें जाला हो, तो उल्लोक पहिले बहारना चाहिये। अन्धेरे कोने साफ करने चाहिये। यदि भीत (=दीवार) गेरूसे गचकी हुई हो, तो लत्ता भिगोकर रगड़कर साफ करनी चाहिये। यदि काली हो गई, मलिन भूमि हो, (तो भी) लत्ता भिगोकर रगड़कर साफ करनी चाहिये।...। जिसमें धूलसे खराब न हो जाय। कूड़ेको ले जाकर एक तरफ फेंकना चाहिये। फर्शको धूपमें सुखा, साफकर फटकारकर, ले आकर पहिलेकी भाँति बिछा देना चाहिये। चारपाईके ओट धूपमें सुखा साफकर ले आकर, उनके स्थानपर रख देने चाहिये। चारपाईको धूपमें सुखा, साफकर, फटकारकर नवाकर किवाड़को विना टकराये...ले आकर०। पीढ़ा०। तकिया०। गद्दा चद्दर धूपमें सुखा साफकर, फटकारकर ले आकर बिछा देना चाहिये। पीकदान सुखा साफकर लेकर यथा-स्थान रख देना चाहिये।...।

यदि धूली लिये पुरवा हवा चल रही हो, पूर्वकी खिड़कियाँ बन्दकर देनी चाहिये।...। यदि जाड़ेके दिन हों, दिनको जंगला खुला रखकर, रातको बन्दकर देना चाहिये। यदि गर्मीका दिन हो, दिनको जंगला बन्दकर रातको खोल देना चाहिये। यदि आंगन (=परिवेण) मैला हो, आंगन झाड़ना चाहिये। यदि कोठरी मैली हो०। यदि उपस्थान-शाला (=बैठक) मैली हो०। यदि अग्निशाला (=पानी गर्म करनेका घर) मैली०। यदि पाखाना मैला हो०। यदि पानी न हो, पानी भरकर रखना चाहिये। यदि पीनेका जल न हो०। यदि पाखानेकी मटकीमें जल न हो०।

उपाध्यायको शिष्यसे अच्छा बर्ताव करना चाहिये। वह बर्ताव यह है—उपाध्यायको शिष्यपर...अनुग्रह करना चाहिये,...(शिष्यके लिये) उपदेश देना चाहिये...।...पात्र देना

उसने गँठरी खोलकर, आभूषणोंको वृक्षपर लटका "जो देखे, उसका दिया, ले जाय" कह, जहाँ शाक्य-कुमार थे, वहाँ गया। उन शाक्य-कुमारोंने दूरसे ही देखा कि उपाली नाई आ रहा है। देखकर उपाली नाईको कहा—

"भणे! उपाली! किस लिये लौट आये?"

"आर्य-पुत्रो! लौटते वक्त मुझे यों हुआ—शाक्य चंड होते हैं०। इसलिये आर्य-पुत्रो! मैं गँठरी खोलकर, आभूषणोंको वृक्षपर लटका०, वहाँसे लौटा हूँ।"

"भणे! उपाली! अच्छा किया, जो लौट आये। शाक्य चंड होते हैं। 'इसने कुमार मार डाले' (कह) तुझे मरवा डालते।"

तब वह शाक्य-कुमार उपाली हजामको ले वहाँ गये, जहाँ भगवान् थे। जाकर भगवान्‌को वन्दनाकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठकर उन शाक्य-कुमारोंने भगवान्‌से कहा—

"भन्ते! हम शाक्य अभिमानी होते हैं। यह उपाली नाई, चिरकाल तक हमारा सेवक रहा है। इसे भगवान् पहिले प्रव्रजित करायें। (जिसमें कि) हम इसका अभिवादन, प्रत्युत्थान (= सन्मानार्थ खड़ा होना), हाथ जोड़ना करें। इस प्रकार हम शाक्योंका शाक्य होनेका अभिमान मर्दित होगा।"

तब भगवान्‌ने उपाली हजामको पहिले प्रव्रजित कराया, पीछे उन शाक्य-कुमारोंको। तब आयुष्मान् भद्दियने उसी वर्षके भीतर तीनों विद्याओंको साक्षात् किया। आयुष्मान् अनुरुद्धने दिव्य-चक्षुको०। आ० आनन्दने सोतापत्ति फलको०। देवदत्तने पृथग्जनोंवाली ऋद्धिको सम्पादित किया।

उस समय आयुष्मान् भद्दिय अरण्यमें रहते हुए भी, पेड़के नीचे रहते हुए भी, शून्य गृहमें रहते हुए भी, बराबर उदान कहते थे—"अहो! सुख!! अहो! सुख!!" बहुतसे भिक्षु जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर० एक ओर बैठ, उन भिक्षुओंने भगवान्‌से कहा—

"भन्ते! आयुष्मान् भद्दिय अरण्यमें रहते०। निःसंशय भन्ते! आयुष्मान् भद्दिय बे-मनसे ब्रह्मचर्य-चरण कर रहे हैं। उसी पुराने राज्य-सुखको याद करते अरण्यमें रहते०।"

तब भगवान्‌ने एक भिक्षुको संबोधित किया—"आ, भिक्षु! तू जाकर मेरे वचनसे भद्दिय भिक्षुको कह—आवुस भद्दिय! तुमको शास्ता बुलाते हैं।"

"अच्छा" कह, वह भिक्षु जहाँ आयुष्मान् भद्दिय थे, वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् भद्दियको बोला—"आवुस भद्दिय! तुम्हें शास्ता बुला रहे हैं।"

"अच्छा आवुस!" कह उस भिक्षुके साथ (आयुष्मान् भद्दिय) जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् भद्दियको भगवान्‌ने कहा—

"भद्दिय! क्या सचमुच तुम अरण्यमें रहते हुये भी० उदान कहते हो०।"

"भन्ते! हाँ!"

"भद्दिय ! किस बातको देखते हुये अरण्यमें रहते हुये भी० ।"

"भन्ते ! पहिले राजा होते वक्त अन्तःपुरके भीतर भी अच्छी प्रकार रक्षा होती रहती थी। नगर-भीतर भी० । नगर-बाहर भी० । देश-भीतर भी० । देश-बाहर भी० । सो मैं भन्ते ! इस प्रकार रक्षित गोपित होते हुये भी भीत, उद्विग्न, स-शंक, त्रास-युक्त घूमता था। किन्तु आज भन्ते ! अकेला अरण्यमें रहते हुये भी० शून्य-गृहमें रहते हुये भी, निडर, अनुद्विग्न, अ-शंक अ-त्रास-युक्त, बे-फिकर…विहार करता हूँ । इस बातको देख भन्ते ! अरण्यमें रहते० ।"

× × ×

(१४)

नलकपान-सुत्त (ई. पू. ५२७)

[1]ऐसा मैंने सुना…एक समय भगवान् कोसल देशमें नलकपानके पलास-बनमें विहार करते थे। उस समय बहुतसे कुलीन कुलीन कुल-पुत्र भगवान्के पास घरसे बे-घर हो प्रव्रजित हुये थे, (जैसे)—आयुष्मान् अनुरुद्ध, आयुष्मान् नन्दिय, आ० किम्बिल, आ० भृगु, आ० कुण्डधान, आ० रेवत, आ० आनन्द, तथा दूसरेभी कुलीन कुलीन कुल-पुत्र । उस समय भिक्षु-संघके सहित भगवान् खुले आँगनमें बैठे थे । तब भगवान्ने उन कुलपुत्रोंके संबंधमें भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! जो वह कुल-पुत्र मेरे पास श्रद्धा-पूर्वक ०प्रव्रजित हुये हैं; वह मनसे ब्रह्म-चर्यमें प्रसन्न तो हैं ?"

ऐसा कहनेपर भिक्षु चुप होगये । दूसरी बारभी भगवान्ने उन कुलपुत्रोंके संबंधमें भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ !० ।"

दूसरी बारभी वह भिक्षु चुप होगये । तीसरी बार भी० "भिक्षुओ !० "

तीसरी बारभी वह भिक्षु चुप होगये ।

तब भगवान्के (मनमें) हुआ, "क्यों न मैं उन्हीं कुलपुत्रोंको पूछूं ?" तब भगवान्ने आयुष्मान् अनुरुद्धको संबोधित किया—

"अनुरुद्धो ! तुम (लोग) ब्रह्मचर्यमें प्रसन्नतो हो न ?"

"हाँ भन्ते ! हम (लोग) ब्रह्मचर्यमें बहुत प्रसन्न हैं ।"

"साधु, साधु अनुरुद्धो ! तुम जैसे…श्रद्धासे० प्रव्रजित कुल-पुत्रोंके यह योग्यही है, कि तुम ब्रह्मचर्यमें प्रसन्न हो । जो तुम अनुरुद्धो ! उत्तम यौवन-सहित प्रथम वयस, बहुतही कालेकेश वाले, कामोपभोग कर रहे थे; सो तुम अनुरुद्धो ! उत्तम यौवन० वाले, घरसे बे-घर हो प्रव्रजित हुये । सो तुम अनुरुद्धो ! राजाकी जबर्दस्तीसे नहीं ०प्रव्रजित हुये । चोरके डरसे नहीं० । ऋणसे पीडित होकर नहीं० । भयसे पीडित होकर नहीं० । बे-राजीके होनेसे नहीं० । बल्कि, (यही सोच) 'जन्म, जरा, मरण, शोक, रोना,पीटना, दुःख, दुर्मनता, हैरानीमें फँसा

---

1. मज्झिम. नि. २:२:८

उसने गँठरी खोलकर, आभूषणोंको वृक्षपर लटका "जो देखे, उसका दिया, ले जाय" कह, जहाँ शाक्य-कुमार थे, वहाँ गया। उन शाक्य-कुमारोंने दूरसे ही देखा कि उपाली नाई आ रहा है। देखकर उपाली नाईको कहा—

"भणे ! उपाली ! किस लिये लौट आये ?"

"आर्य-पुत्रो ! लौटते वक्त मुझे यों हुआ—शाक्य चंड होते हैं०। इसलिये आर्य-पुत्रो ! मैं गँठरी खोलकर, आभूषणोंको वृक्षपर लटका०, वहाँसे लौटा हूँ।"

"भणे ! उपाली ! अच्छा किया, जो लौट आये। शाक्य चंड होते हैं। 'इसने कुमार मार डाले' (कह) तुझे मरवा डालते।"

तब वह शाक्य-कुमार उपाली हजामको ले वहाँ गये, जहाँ भगवान् थे। जाकर भगवान्‌को वन्दनाकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठकर उन शाक्य-कुमारोंने भगवान्‌से कहा—

"भन्ते ! हम शाक्य अभिमानी होते हैं। यह उपाली नाई, चिरकाल तक हमारा सेवक रहा है। इसे भगवान् पहिले प्रव्रजित करायें। (जिसमें कि) हम इसका अभिवादन, प्रत्युत्थान (= सन्मानार्थ खड़ा होना), हाथ जोड़ना करें। इस प्रकार हम शाक्योंका शाक्य होनेका *अभिमान मर्दित होगा*।"

तब भगवान्‌ने उपाली हजामको पहिले प्रव्रजित कराया, पीछे उन शाक्य-कुमारोंको। तब आयुष्मान् भद्दियने उसी वर्षके भीतर तीनों विद्याओंको साक्षात् किया। आयुष्मान् अनुरुद्धने दिव्य-चक्षुको०। आ० आनन्दने सोतापत्ति फलको०। देवदत्तने पृथग्जनोंवाली ऋद्धिको सम्पादित किया।

उस समय आयुष्मान् भद्दिय अरण्यमें रहते हुए भी, पेड़के नीचे रहते हुए भी, शून्य गृहमें रहते हुए भी, बराबर उदान कहते थे—"अहो ! सुख !! अहो ! सुख !!" बहुतसे भिक्षु जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर० एक ओर बैठ, उन भिक्षुओंने भगवान्‌से कहा—

"भन्ते ! आयुष्मान् भद्दिय अरण्यमें रहने०। निःसंशय भन्ते ! आयुष्मान् भद्दिय बे-मनसे ब्रह्मचर्य-चरण कर रहे हैं। उसी पुराने राज्य-सुखको याद करते अरण्यमें रहते०।"

तब भगवान्‌ने एक भिक्षुको संबोधित किया—"आ, भिक्षु ! तू आकर मेरे वचनसे भद्दिय भिक्षुको कह—आवुस भद्दिय ! तुमको शास्ता बुलाते हैं।"

"अच्छा" कह, वह भिक्षु जहाँ आयुष्मान् भद्दिय थे, वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् भद्दियको बोला—"आवुस भद्दिय ! तुम्हें शास्ता बुला रहे हैं।"

"अच्छा आवुस !" कह उस भिक्षुके साथ (आयुष्मान् भद्दिय) जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् भद्दियको भगवान्‌ने कहा—

"भद्दिय ! क्या सचमुच तुम अरण्यमें रहते हुये भी० उदान कहते हो०।"

"भन्ते ! हाँ !"

"भद्दिय ! किस बातको देखते हुये अरण्यमें रहते हुये भी० ।"

"भन्ते ! पहिले राजा होते वक्त अन्तःपुरके भीतर भी अच्छी प्रकार रक्षा होती रहती थी। नगर-भीतर भी० । नगर-बाहर भी० । देश-भीतर भी० । देश-बाहर भी० । सो मैं भन्ते ! इस प्रकार रक्षित गोपित होते हुये भी भीत, उद्विग्न, स-शंक, त्रास-युक्त घूमता था। किन्तु आज भन्ते ! अकेला अरण्यमें रहते हुये भी० शून्य-गृहमें रहते हुये भी, निडर, अनुद्विग्न, अ-शंक अ-त्रास-युक्त, बे-फिकर...विहार करता हूँ। इस बातको देख भन्ते ! अरण्यमें रहते० ।"

× × ×

(१४)

नलकपान-सुत्त (ई. पू. ५२७)

[1]ऐसा मैंने सुना...एक समय भगवान् कोसल देशमें नलकपानके पलास-बनमें विहार करते थे। उस समय बहुतसे कुलीन कुलीन कुल-पुत्र भगवान्‌के पास घरसे बे-घर हो प्रव्रजित हुये थे, (जैसे)—आयुष्मान् अनुरुद्ध, आयुष्मान् नन्दिय, आ० किम्बिल, आ० भृगु, आ० कुण्डधान, आ० रेवत, आ० आनन्द, तथा दूसरेभी कुलीन कुलीन कुल-पुत्र। उस समय भिक्षु-संघके सहित भगवान् खुले आँगनमें बैठे थे। तब भगवान्‌ने उन कुलपुत्रोंके संबंधमें भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! जो वह कुल-पुत्र मेरे पास श्रद्धा-पूर्वक ०प्रव्रजित हुये हैं; वह मनसे ब्रह्म-चर्यमें प्रसन्न तो हैं ?"

ऐसा कहनेपर भिक्षु चुप होगये। दूसरी बारभी भगवान्‌ने उन कुलपुत्रोंके संबंधमें भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ !० ।"

दूसरी बारभी वह भिक्षु चुप होगये। तीसरी बार भी० "भिक्षुओ !० "

तीसरी बारभी वह भिक्षु चुप होगये।

तब भगवान्‌के (मनमें) हुआ, "क्यों न मैं उन्हीं कुलपुत्रोंको पूछूं ?" तब भगवान्‌ने आयुष्मान् अनुरुद्धको संबोधित किया—

"अनुरुद्धो ! तुम (लोग) ब्रह्मचर्यमें प्रसन्नतो हो न ?"

"हाँ भन्ते ! हम (लोग) ब्रह्मचर्यमें बहुत प्रसन्न हैं।"

"साधु, साधु अनुरुद्धो ! तुम जैसे...श्रद्धासे० प्रव्रजित कुल-पुत्रोंके यह योग्यही है, कि तुम ब्रह्मचर्यमें प्रसन्न हो। जो तुम अनुरुद्धो ! उत्तम यौवन-सहित प्रथम वयस, बहुतही काले केश वाले, कामोपभोग कर रहे थे; सो तुम अनुरुद्धो ! उत्तम यौवन० वाले, घरसे बे-घर हो प्रव्रजित हुये। सो तुम अनुरुद्धो ! राजाकी जबर्दस्तीसे नहीं ०प्रव्रजित हुये। चोरके डरसे नहीं० । ऋणसे पीड़ित होकर नहीं० । भयसे पीड़ित होकर नहीं० । बे-राजीके होनेसे नहीं० । बल्कि, (यही सोच) 'जन्म, जरा, मरण, शोक, रोना, पीटना, दुःख, दुर्मनता, हैरानीमें फँसा

1. मज्झिम. नि. २:२:८

पूँछसे भी काम लेता है, (लेकिन) सूँडको (बेकाम) रखता है। राजाके ऐसे नागका जीवन अविश्वसनीय है'।

"लेकिन यदि राहुल ! राजाका हाथी हरिस जैसे दाँतवाला०, पूँछसे भी काम करता है, सूँडसे भी काम करता है, तो राजाके हाथीका जीवन विश्वसनीय है; अब राजाके हाथीको और कुछ करना नहीं है। ऐसे ही राहुल ! 'जिसे जानबूझकर झूठ बोलनेमें लज्जा नहीं; उसके लिये कोई भी पाप-कर्म अकरणीय नहीं' ऐसा मैं मानता हूँ। इसलिये राहुल ! '*हँसीमें भी नहीं झूठ बोलूँगा*', *यह सीख लेनी चाहिये।*

"तो क्या जानते हो, राहुल ! दर्पण किस कामके लिये है ?"

"भन्ते ! देखनेके लिये।"

"ऐसे ही राहुल ! देख देखकर कायासे काम करना चाहिये। देख देखकर वचनसे काम करना चाहिये। देख देखकर मनसे काम करना चाहिये।

"जब राहुल ! तू कायासे (कोई) काम करना चाहे, तो तुझे कायाके कामपर विचार करना चाहिये—जो मैं यह काम करना चाहता हूँ, क्या यह मेरा काय-कर्म अपने लिये पीड़ा-दायक तो नहीं हो सकता ? दूसरेके लिये पीड़ा-दायक तो नहीं हो सकता ? (अपने और पराये) दोनोंके लिये पीड़ा-दायक तो नहीं हो सकता ? यह अ-कुशल (=बुरा) काय-कर्म है, दुःखका हेतु=दुःख विपाक (=भोग) देनेवाला है ? यदि तू राहुल ! प्रत्यवेक्षा (=देखभाल= विचार) कर ऐसा जाने—'जो मैं यह कायासे काम करना चाहता हूँ०। यह बुरा काय-कर्म है।' ऐसा राहुल ! काय-कर्म सर्वथा न करना चाहिये। यदि तू राहुल ! प्रत्यवेक्षाकर ऐसा समझे,—'जो मैं यह कायासे काम करना चाहता हूँ, यह काय-कर्म न अपने लिये पीड़ा-*दायक हो सकता है, न परके लिये*०। *यह कुशल (अच्छा) काय-कर्म है, सुखका हेतु=सुख-*विपाक है'। इस प्रकारका कर्म राहुल ! तुझे कायासे करना चाहिये।

"राहुल ! कायासे काम करते हुए भी, तब काय-कर्मका प्रत्यवेक्षण (=परीक्षा) करना चाहिये—'क्या जो मैं यह कायासे काम कर रहा हूँ, यह मेरा काय-कर्म अपने लिए पीड़ा-दायक है०'। यदि तू राहुल० जाने। ०यह काय-कर्म अकुशल है०। तो राहुल ! इस *प्रकारके काय-कर्मको छोड़ देना*।० यदि० जाने।० यह काय-कर्म *कुशल है, तो इस प्रकारके* काय-कर्मको राहुल बार-बार करना।

"*काय-कर्म करके भी राहुल ! काय-कर्मका फिर तुझे प्रत्यवेक्षण करना चाहिये*—'क्या जो मैंने यह कायाकर्म किया है, यह मेरा काय-कर्म अपने लिए पीड़ादायक है०'। यह काय-कर्म अकुशल है०'। ०जाने। ०अकुशल है। तो राहुल इस प्रकारके काय-कर्मको शास्ताके पास, या विज्ञ गुरु-भाई (=सब्रह्मचारी) के पास कहना चाहिये, खोलना चाहिये=उत्तान करना चाहिये। कहकर, खोलकर=उत्तान कर, आगेको संयम करना चाहिये। यदि राहुल ! तू प्रत्यवेक्षण कर जाने। ०कुशल है। तो दिनरात कुशल (=उत्तम) धर्मों (=बातों) में शिक्षा *ग्रहण करनेवाला बन। राहुल ! इससे तू प्रीति=प्रमोदसे विहार करेगा।*

"यदि राहुल ! तू, वचनसे काम करना चाहे०। ०कुशल वचन-कर्म ०करना।० बार-बार करना। ० उससे तू० प्रीति=प्रमोदसे विहार करेगा।"

"यदि तू राहुल ! मनसे काम करना चाहे० । ० कुशल मन-कर्म ०करना ।० बराबर करना । मन-कर्म करके० यह मन-कर्म अकुशल है० । तो इस प्रकारके 'मन-कर्म' में खिन्न होना चाहिये, शोक करना चाहिये, घृणा करनी चाहिये । खिन्न हो, शोककर घृणाकर आगेको संयम करना चाहिये ।० यह मनकर्म कुशल है० । उससे तू० प्रमोदसे विहार करेगा ।

"राहुल ! जिन किन्हीं श्रमणों (=भिक्षुओं) या ब्राह्मणों (=सन्तों) ने अतीत कालसे काय-कर्म०, वचनकर्म०, मनकर्म० परिशोधित किये । उन सबोंने इस प्रकार प्रत्यवेक्षणकर प्रत्यवेक्षणकर काय०, वचन०, मन-कर्म परिशोधित किये ।जो कोई राहुल ! श्रमण या ब्राह्मण भविष्यकालमें भी काय०, वचन०, मन-कर्म परिशोधित करेंगे; वह सब इसी प्रकार० । जो कोई राहुल ! ०श्रमण या ब्राह्मण आजकल भी काय०, वचन०, मन-कर्म परिशोधित करते हैं; वह सब भी इसी प्रकार० ।"

"इसलिए राहुल ! तुझे सीखना चाहिये कि मैं प्रत्यवेक्षणकर काय-कर्म०, ०वचन-कर्म, ०मन-कर्म परिशोधन करूँगा ।"

× × × ×

(१६)

अनाथपिंडककी दीक्षा । जेतवन-दान । (ई. पू. ५२६)

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् **राजगृहमें सीतवनमें** विहार करते थे । उस समय **अनाथपिंडक** गृहपति किसी कामसे राजगृहमें आया था । अनाथपिंडकने सुना—'लोकमें बुद्ध उत्पन्न हो गये' । उसी वक्त वह भगवान्‌के दर्शनार्थ जानेके लिए इच्छुक हुआ । तब उस० को हुआ··

[2]उस समय अनाथपिंडक गृहपति (जो) राजगृहक-श्रेष्ठीका बहनोई था; किसी कामसे राजगृह गया । उस समय राजगृहक-श्रेष्ठीने संघ-सहित बुद्धको दूसरे दिनके लिए निमन्त्रण दे रक्खा था । इसलिए उसने दासों और कम-करोंको आज्ञा दी—

"तो भणे ! समयपर ही उठकर खिचड़ी पकाओ, भात पकाओ । सूप (=तेमन) तैयार करो...।" तब अनाथपिंडक गृहपतिको ऐसा हुआ—"पहिले मेरे आनेपर यह गृहपति, सब काम छोड़कर मेरे ही आव-भगतमें लगा रहता था । आज विक्षिप्तसा दासों कमकरोंको आज्ञा दे रहा है—"तो भणे ? समयपर० ।" क्या इस गृहपतिके (यहाँ) आवाह होगा, या विवाह होगा, या महायज्ञ उपस्थित है, या लोग-बाग-सहित मगध-राज श्रेणिक बिम्बसार कलके लिए निमन्त्रित किये गये हैं ?"

तब राज-गृहक श्रेष्ठी दासों और कमकरोंको आज्ञा देकर, जहाँ अनाथपिंडक गृहपति था, वहाँ आया । आकर अनाथपिंडक गृहपतिके साथ प्रतिसम्मोदन (=प्रणामापाती) कर, एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुए, राजगृह श्रेष्ठीको अनाथपिंडक गृहपतिने कहा—"पहिले मेरे आनेपर तुम गृहपति !०।"

---

१. संयु. नि. ११; १: ८. । २. चुल्लवग्ग ६: २ भाण ।

"गृहपति ! मेरे (यहाँ) न आवाह होगा, न विवाह होगा । न ०मगध-राज० निमन्त्रित किये गये हैं । कल बल्कि मेरे यहाँ बड़ा यज्ञ है । संघ-सहित बुद्ध (=बुद्ध-प्रमुख-संघ) कलके लिए निमन्त्रित हैं ।"

"गृहपति ! तू 'बुद्ध' कह रहा है ?" "गृहपति ! हाँ 'बुद्ध' कह रहा हूँ।" "गृहपति ! 'बुद्ध'० ?" "गृहपति ! हाँ 'बुद्ध'० ।" "गृहपति ! 'बुद्ध'० ?" "गृहपति ! हाँ 'बुद्ध'० ।"

"गृहपति ! 'बुद्ध' यह शब्द (=घोष) भी लोकमें दुर्लभ है । गृहपति ! क्या इस समय उन भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्धके दर्शनके लिये जाया जा सकता है ?"

"गृहपति ! यह समय उन भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्धके दर्शनार्थ जानेका नहीं है ।"

तब अनाथ पिंडक गृहपति—"अब कल समयपर उन भगवान्०के दर्शनार्थ जाऊँगा" इस बुद्ध-विषयक स्मृतिको (मनमें) ले सो रहा । रातको सवेरा समझ तीनबार उठा । तब अनाथ पिंडक गृहपति जहाँ (राजगृह नगरका) शिवथिकद्वार था, (वहाँ) गया । अ-मनुष्यों(=देव आदि)ने द्वार खोल दिया । तब अनाथपिंडक०के नगरसे बाहर निकलते ही प्रकाश अन्तर्धान होगया, अन्धकार प्रादुर्भूत हुआ । (उसे) भय, जड़ता और रोमांच उत्पन्न हुआ । तब अनाथपिंडक गृहपति जहाँ सीत-वन (है वहाँ) गया । उस समय भगवान् रातके प्रत्यूष (=भिन-सार) कालमें उठकर चौड़ेमें टहल रहे थे । भगवान्ने अनाथपिंडक गृहपतिको दूरसे ही आते हुये देखा । देखकर चंक्रमण (= टहलनेकी जगह) से उतरकर, बिछे आसनपर बैठ गये । बैठकर अनाथपिंडक गृहपतिको कहा—"आ सुदत्त ।" अनाथपिंडक गृहपति यह (सोच) 'भगवान् मुझे नाम लेकर बुला रहे हैं' हृष्ट = उदग्र (= फूला न समाता) हो, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान्के चरणोंमें शिरसे पड़कर बोला—

"भन्ते ! भगवान्को निद्रा सुखसे तो आई ?"

"निर्वाण-प्राप्त ब्राह्मण सर्वदा सुखसे सोता है ।
शीतल हुआ, दोष-रहित हो जोकि काम वासनाओंमें लिप्त नहीं होता ॥
सारी आसक्तियोंको खंडितकर हृदयसे डरको हटाकर ।
चित्तकी शांतिको प्राप्तकर उपशांत हो (वह) सुखसे सोता है ॥"

तब भगवान्ने अनाथपिंडक गृहपतिको आनुपूर्वी कथा[1]० कही । जैसे कालिमा-रहित शुद्ध-वस्त्र अच्छी तरह रंग पकड़ता है, ऐसे ही अनाथपिंडक गृहपतिको उसी आसनपर 'जो कुछ समुदय-धर्म है वह निरोध-धर्म है', यह वि-रज=वि-मल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ । तब दृष्ट-धर्म = प्राप्त-धर्म = विदित-धर्म = पर्यवगाढ़-धर्म, संदेह-रहित, वाद-विवाद-रहित, शास्ताके शासन (=बुद्ध-धर्म) में स्वतंत्र हो, अनाथपिंडक गृहपतिने भगवान्से कहा—

"आश्चर्य ! भन्ते ! आश्चर्य ! भन्ते ! जैसे, औंधेको सीधा करदे, ढँकेको उघाड़दे, भूलेको रास्ता बतलादे, अंधकारमें तेलका प्रदीप रखदे जिसमें आँखवाले रूप देखें; ऐसेही भगवान्ने अनेक प्रकारसे धर्मको प्रकाशित किया, मैं भगवान्की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु संघकी

१. देखो पृष्ठ २५ ।

(शरण जाता हूं)। आजसे मुझे भगवान् सांजलि शरण-आया उपासक ग्रहण करें। भगवान् भिक्षु-संघके सहित कलका मेरा भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया। तब अनाथपिंडक० भगवान्‌की स्वीकृतिको जान, आसनसे उठ, भगवान्‌को अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर चलागया। राजगृहक-श्रेष्ठी ने सुना—अनाथपिंडक गृह-पतिने कलको भिक्षु-संघ-सहित बुद्धको निमंत्रित किया है। तब राजगृहक श्रेष्ठीने अनाथपिंडक गृह-पति से कहा—

"तूने गृह-पति! कलके लिये भिक्षु-संघ-सहित बुद्धको निमंत्रित किया है, और तू आगंतुक (= पाहुना = अतिथि) है। इसलिये गृह-पति! मैं तुझे खर्च देता हूं; जिससे तू बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघकेलिये भोजन (तय्यार) करे?"

"नहीं गृहपति! मेरे पास खर्च है, जिससे मैं बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघका भोजन (तय्यार) करूँगा।"

राजगृहके [1]नैगमने सुना—अनाथपिंडक०। तब राजगृहके नैगमने अनाथपिंडक० को यों कहा—"०मैं तुझे खर्च० देता हूं"

"नहीं आर्य! मेरे पास खर्च है०।"

मगध-राज० ने सुना—०। तब मगध-राज०ने अनाथपिंडक०को···कहा० "मैं तुझे खर्च० देताहूं"।

"नहीं देव! मेरे पास खर्च है०।"

तब अनाथपिंडक गृह-पतिने उस रातके बीत जानेपर, राजगृहके श्रेष्ठीके मकानपर उत्तम खाद्य भोज्य तय्यार करा, भगवान्‌को कालकी सूचना दिलवाई "काल है भन्ते! भोजन तय्यार हो गया"। तब भगवान् पूर्वाह्णके समय सु-आच्छादित हो, पात्र चीवर हाथमें ले, जहाँ राजगृहके श्रेष्ठीका मकान था, वहाँ गये। जाकर भिक्षुसंघ सहित बिछाये आसनपर बैठे। तब अनाथ-पिंडक गृह-पति बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य भोज्यसे संतर्पित कर, पूर्णकर, भगवान्‌के भोजनकर पात्रसे हाथ खींच लेनेपर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे अनाथपिंडक गृह-पतिने भगवान्‌से कहा—

"भिक्षु-संघके साथ भगवान् श्रावस्तीमें वर्षा-वास स्वीकार करें।"

"शून्य आगारमें गृहपति! तथागत अभिरमण (= विहार) करते हैं।"

"समझ गया भगवान्! समझ गया सुगत!"

उस समय अनाथपिंडक गृह-पति बहु-मित्र = बहु-सहाय और प्रामाणिक था। राजगृहमें (अपने)···कामको खतम कर, अनाथ-पिंडक गृह-पति श्रावस्तीको चल पड़ा। मार्गमें उसने मनुष्योंको कहा "आर्यो! आराम बनवाओ, विहार (= भिक्षुओंके रहनेका स्थान) प्रतिष्ठित करो। लोकमें बुद्ध उत्पन्न होगये हैं; उन भगवान् को मैंने निमंत्रित किया है, (वह) इस मार्गमें आवेंगे।" तब अनाथपिंडक गृह-पति-द्वारा प्रेरित हो, मनुष्योंने आराम बनवाये, विहार प्रतिष्ठित किये, दान (=सदाव्रत) रक्खे।

---

१. 'श्रेष्ठी' या नगर-सेठ उस समयका एक अवैतनिक राजकीय पद था। इसी तरह 'नैगम' एक पद था, जो शायद 'श्रेष्ठी' से ऊपर था।

तब अनाथपिंडक गृह-पतिने श्रावस्ती जाकर, श्रावस्तीके चारों ओर नजर दौड़ाई—

"भगवान् कहाँ निवास करेंगे ? (ऐसी जगह) जो कि गाँवसे न बहुत दूर हो, न न बहुत समीप; चाहनेवालोंके आने-जाने योग्य, इच्छुक मनुष्योंके पहुँचने लायक हो। दिनको कम-भीड़ रातको अल्प-शब्द=अल्प-निर्घोष, वि-जन-वात (=आदमियोंकी हवासे रहित) मनुष्योंसे एकान्त, ध्यानके लायक हो।" अनाथपिंडक गृहपतिने (ऐसी जगह) जेत राज-कुमारका उद्यान देखा; (जो कि) गाँवसे न बहुत दूर था०। देखकर जहाँ जेत राजकुमार था, वहाँ गया। जाकर जेत राजकुमारसे कहा—

"आर्य-पुत्र ! मुझे आराम बनानेके लिये उद्यान दीजिये ?"

"गृहपति ! 'कोटि-संथारसे भी' (वह) आराम अ-देय है।"

"आर्य-पुत्र ! मैंने आराम ले लिया।"

"गृहपति ! तूने आराम नहीं लिया।"

'लिया या नहीं लिया', यह उन्होंने व्यवहार-अमात्यों (=न्यायपतियों) को पूछा। महामात्योंने कहा—

"आर्य-पुत्र ! क्योंकि तूने मोल लिया, (इसलिए) आराम ले लिया।"

तब अनाथपिंडक गृहपतिने गाड़ियोंपर हिरण्य (=मोहर) ढुलवाकर जेतवनको 'कोटिसन्थार' (=किनारेसे किनारा मिलाकर) बिछा दिया। एक बारके लाये (हिरण्य) से (द्वारके) कोठेके चारों ओरका थोड़ासा (स्थान) पूरा न हुआ। तब अनाथपिंडक गृहपतिने (अपने) *मनुष्योंको आज्ञा दी—*

"जाओ भणे ! हिरण्य ले आओ, इस खाली स्थानको ढाँकें।" तब जेत राजकुमारको (ख्याल) हुआ—"यह (काम) कम महत्त्वका न होगा, क्योंकि यह गृहपति बहुत हिरण्य खर्च *कर रहा है।" और अनाथपिंडक गृहपतिको कहा—*

"बस, गृहपति ! तू इस खाली जगहको मत ढँकवा। यह खाली जगह (=अवकाश) मुझे दे, यह मेरा दान होगा।"

"तब अनाथपिंडक गृहपतिने 'यह जेतकुमार गण्यमान्य प्रसिद्ध मनुष्य है। इस धर्मविनय (=धर्म) में ऐसे आदमीका प्रेम लाभदायक है।' (सोच) वह स्थान जेत राजकुमार को दे दिया। तब जेतकुमार ने उस स्थानपर कोठा बनवाया। अनाथपिंडक गृहपतिने जेतवनमें *विहार (=भिक्षु-विश्राम-स्थान) बनवाये। परिवेण (आँगन-सहित घर) बनवाने। कोठरियाँ०।* उपस्थान-शालायें (=सभा-गृह)०। अग्निशालायें (=पानी गर्म करनेके घर)०। कल्पिक-कुटियाँ (=भण्डार)०। पाखाने०। पेशाबखाने०। चंक्रमण (=टहलनेके स्थान०)०। *चंक्रमण-शालायें०। प्याउ०। प्याउ-घर जन्ता-घर० (=स्नानागार)०। जन्ताघर-शालायें०।* पुष्करिणियाँ०। मण्डप०।

\+ + + +

भगवान् राजगृहमें इच्छानुसार विहारकर जिधर वैशाली थी, उधर चारिका (=रामन) को चल पड़े। क्रमशः चारिका करते हुए जहाँ वैशाली थी, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान

वैशालीमें [1]महावनकी कूटागार-शालामें विहार करते थे। उस समय लोग सत्कारपूर्वक नव-कर्म (=नये भिक्षु-निवासका निर्माण) कराते थे। जो भिक्षु नव-कर्मकी देख-रेख (=अधिष्ठान) करते थे, वह भी (१) चीवर (=वस्त्र), (२) पिंडपात (=भिक्षान्न), (३) शयनासन (=घर), (४) ग्लान-प्रत्यय (=रोगि-पथ्य) भैषज्य (=औषध) इन परिष्कारोंसे सत्कृत होते थे। तब एक दरिद्र तन्तुवाय (=जुलाहा) के (मनमें) हुआ—"यह छोटा काम न होगा, जो कि यह लोग सत्कारपूर्वक नव-कर्म कराते हैं; क्यों न मैं भी नव-कर्म बनाऊँ ?" तब उस गरीब तन्तुवायने स्वयं ही कीचड़ तैयार कर ईंटें चिन, भीत खड़ी की। अनजान होनेसे उसकी बनाई भीत गिर पड़ी। दूसरी बार भी उस गरीब०। तीसरी बार भी उस दरिद्र०। तब वह गरीब तन्तुवाय···खिन्न···होता था—"इन शाक्य-पुत्रीय श्रमणोंको जो चीवर० देते हैं; उन्हींके नव-कर्मकी देख-रेख करते हैं। मैं दरिद्र हूँ, इसलिए कोई भी मुझे न उपदेश करता है, न अनुशासन करता है, और न नव-कर्मकी देख-रेख करता है।" भिक्षुओंने उस गरीब तन्तुवायको··खिन्न··होते सुना। तब उन्होंने इस बातको भगवान्‌से कहा। तब भगवान्‌ने इसी सम्बन्धमें, इसी प्रकरणमें धार्मिक-कथा कहकर, भिक्षुओंको आमन्त्रित किया—

"भिक्षुओ! नव-कर्म देनेकी आज्ञा करता हूँ। नव-कर्मिक (=विहार बनवानेका निरीक्षक) भिक्षुको विहारकी जल्दी तैयारीका ख्याल करना चाहिये। (उसे) टूटे-फूटेकी मरम्मत करानी होगी। और भिक्षुओ! (नव-कर्मिक भिक्षु) इस प्रकार देना चाहिये। पहिले भिक्षुसे प्रार्थना करनी चाहिये। फिर एक चतुर समर्थ भिक्षु द्वारा संघ ज्ञापित किया जाना चाहिये—

"भन्ते! संघ मुझे सुने। यदि संघको पसन्द है, तो अमुक गृहपतिके विहारका नव-कर्म, अमुक भिक्षुको दिया जाय। यह ज्ञप्ति (=निवेदन) है।

"भन्ते! संघ मुझे सुने। अमुक गृह-पतिके विहारका नवकर्म अमुक भिक्षुको दिया जाता है। जिस आयुष्मान्‌को मान्य है कि अमुक गृह-पतिके विहारका नव-कर्म अमुक भिक्षुको दिया जाय, वह चुप रहे; जिसको मान्य न हो बोले।"

"दूसरी बार भी०"। "तीसरी बार भी०।"

"संघने० नव-कर्म अमुक व्यक्तिको दिया; संघको मान्य है, इसलिए चुप है, ऐसा मैं समझता हूँ।"

भगवान् वैशालीमें इच्छानुसार विहार करके, जहाँ श्रावस्ती है वहाँ चारिकाके लिये चले। उस समय छ-वर्गीय भिक्षुओंके शिष्य, बुद्ध-प्रमुख भिक्षु संघके आगे आगे जाकर, विहारोंको दखलकर लेते थे, शय्यायें दखलकर लेते थे—"यह हमारे उपाध्यायोंके लिये होगा, यह हमारे आचार्योंके लिये होगा, यह हमारे लिये होगा।" आयुष्मान् सारिपुत्र, बुद्ध-प्रमुख संघके पहुँचनेपर, विहारोंके दखल हो जानेपर, शय्याओंके दखल हो जानेपर, शय्या न पा, किसी वृक्षके नीचे बैठे रहे। भगवान्‌ने रातके भिनसारको उठकर खाँसा। आयुष्मान् सारिपुत्रने भी खाँसा।

---

[1] बसाढ़ (जि० मुजफ्फरपुर) से प्रायः २. मील उत्तर वर्तमान कोल्हुआ, जहाँ आज भी अशोक-स्तम्भ खड़ा है।

तब अनाथपिंडक गृह-पतिने श्रावस्ती जाकर, श्रावस्तीके चारों ओर नजर दौड़ाई—

"भगवान् कहाँ निवास करेंगे? (ऐसी जगह) जो कि गाँवसे न बहुत दूर हो, न न बहुत समीप; चाहनेवालोंके आने-जाने योग्य, इच्छुक मनुष्योंके पहुँचने लायक हो। दिनको कम-भीड़ रातको अल्प-शब्द=अल्प-निर्घोष, वि-जन-वात (=आदमियोंकी हवासे रहित) मनुष्योंसे एकान्त, ध्यानके लायक हो।" अनाथपिंडक गृहपतिने (ऐसी जगह) जेत राजकुमारका उद्यान देखा; (जो कि) गाँवसे न बहुत दूर था०। देखकर जहाँ जेत राजकुमार था, वहाँ गया। जाकर जेत राजकुमारसे कहा—

"आर्य-पुत्र! मुझे आराम बनानेके लिये उद्यान दीजिये?"

"गृहपति! 'कोटि-संथारसे भी' (वह) आराम अ-देय है।"

"आर्य-पुत्र! मैंने आराम ले लिया।"

"गृहपति! तूने आराम नहीं लिया।"

'लिया या नहीं लिया', यह उन्होंने व्यवहार-अमात्यों (=न्यायपतियों) को पूछा। महामात्योंने कहा—

"आर्य-पुत्र! क्योंकि तूने मोल लिया, (इसलिए) आराम ले लिया।"

तब अनाथपिंडक गृहपतिने गाड़ियोंपर हिरण्य (=मोहर) ढुलवाकर जेतवनको 'कोटिसन्थार' (=किनारेसे किनारा मिलाकर) बिछा दिया। एक बारके लाये (हिरण्य) से (द्वारके) कोठेके चारों ओरका थोड़ासा (स्थान) पूरा न हुआ। तब अनाथपिंडक गृहपतिने (अपने) मनुष्योंको आज्ञा दी—

"जाओ भणे! हिरण्य ले आओ, इस खाली स्थानको ढाँकें।" तब जेत राजकुमारको (ख्याल) हुआ—"यह (काम) कम महत्त्वका न होगा, क्योंकि यह गृहपति बहुत हिरण्य खर्च कर रहा है।" और अनाथपिंडक गृहपतिको कहा—

"बस, गृहपति! तू इस खाली जगहको मत ढँकवा। यह खाली जगह (=अवकाश) मुझे दे, यह मेरा दान होगा।"

"तब अनाथपिंडक गृहपतिने 'यह जेतकुमार गण्यमान्य प्रसिद्ध मनुष्य है। इस धर्मविनय (=धर्म) में ऐसे आदमीका प्रेम लाभदायक है।' (सोच) यह स्थान जेत राजकुमार को दे दिया। तब जेतकुमार ने उस स्थानपर कोठा बनवाया। अनाथपिंडक गृहपतिने जेतवनमें विहार (=भिक्षु-विश्राम-स्थान) बनवाये। परिवेण (आँगन-सहित घर) बनवाये। कोठरियाँ०। उपस्थान-शालाएँ (=सभा-गृह)०। अग्निशालाएँ (=पानी गर्म करनेके घर)०। कप्पिय-कुटियाँ (=भण्डार)०। पाखाने०। पेशाबखाने०। चंक्रमण (=टहलनेके स्थान०)०। चंक्रमण-शालाएँ०। प्याउ०। प्याउ-घर जन्ता-घर० (=स्नानागार)०। जन्ताघर-शालाएँ०। पुष्करिणियाँ०। मण्डप०।

+ + + +

भगवान् राजगृहमें इच्छानुसार विहारकर जिधर वैशाली थी, उधर चारिका (=रामत) को चल पड़े। क्रमशः चारिका करते हुए जहाँ वैशाली थी, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान

वैशालीमें [1]महावनकी कूटागार-शालामें विहार करते थे। उस समय लोग सत्कारपूर्वक नव-कर्म (=नये भिक्षु-निवासका निर्माण) कराते थे। जो भिक्षु नव-कर्मकी देख-रेख (=अधिष्ठान) करते थे, वह भी (१) चीवर (=वस्त्र), (२) पिंडपात (=भिक्षान्न), (३) शयनासन (=घर), (४) ग्लान-प्रत्यय (=रोगि-पथ्य) भैषज्य (=औषध) इन परिष्कारोंसे सत्कृत होते थे। तब एक दरिद्र तन्तुवाय (=जुलाहा) के (मनमें) हुआ—"यह छोटा काम न होगा, जो कि यह लोग सत्कारपूर्वक नव-कर्म कराते हैं; क्यों न मैं भी नव-कर्म बनाऊँ ?" तब उस गरीब तन्तुवायने स्वयं ही कीचड़ तैयार कर ईंटें चिन, भीत खड़ी की। अनजान होनेसे उसकी बनाई भीत गिर पड़ी। दूसरी बार भी उस गरीब०। तीसरी बार भी उस दरिद्र०। तब वह गरीब तन्तुवाय···खिन्न···होता था—"इन शाक्य-पुत्रीय श्रमणोंको जो चीवर० देते हैं; उन्हींके नव-कर्मकी देख-रेख करते हैं। मैं दरिद्र हूँ, इसलिए कोई भी मुझे न उपदेश करता है, न अनुशासन करता है, और न नव-कर्मकी देख-रेख करता है।" भिक्षुओंने उस गरीब तन्तुवायको···खिन्न···होते सुना। तब उन्होंने इस बातको भगवान्‌से कहा। तब भगवान्‌ने इसी सम्बन्धमें, इसी प्रकरणमें धार्मिक-कथा कहकर, भिक्षुओंको आमन्त्रित किया—

"भिक्षुओ! नव-कर्म देनेकी आज्ञा करता हूँ। नव-कर्मिक (=विहार बनवानेका निरीक्षक) भिक्षुको विहारकी जल्दी तैयारीका ख्याल करना चाहिये। (उसे) टूटे-फूटेकी मरम्मत करानी होगी। और भिक्षुओ! (नव-कर्मिक भिक्षु) इस प्रकार देना चाहिये। पहिले भिक्षुसे प्रार्थना करनी चाहिये। फिर एक चतुर समर्थ भिक्षु द्वारा संघ ज्ञापित किया जाना चाहिये—

"भन्ते! संघ मुझे सुने। यदि संघको पसन्द है, तो अमुक गृहपतिके विहारका नव-कर्म, अमुक भिक्षुको दिया जाय। यह ज्ञप्ति (=निवेदन) है।

"भन्ते! संघ मुझे सुने। अमुक गृह-पतिके विहारका नवकर्म अमुक भिक्षुको दिया जाता है। जिस आयुष्मान्‌को मान्य है कि अमुक गृह-पतिके विहारका नव-कर्म अमुक भिक्षुको दिया जाय, वह चुप रहे; जिसको मान्य न हो बोले।"

"दूसरी बार भी०"। "तीसरी बार भी०।"

"संघने० नव-कर्म अमुक व्यक्तिको दिया; संघको मान्य है, इसलिए चुप है, ऐसा मैं समझता हूँ।"

भगवान् वैशालीमें इच्छानुसार विहार करके, जहाँ श्रावस्ती है वहाँ चारिकाके लिये चले। उस समय छ-वर्गीय भिक्षुओंके शिष्य, बुद्ध-प्रमुख भिक्षु संघके आगे आगे जाकर, विहारोंको दखलकर लेते थे, शय्यायें दखलकर लेते थे—"यह हमारे उपाध्यायोंके लिये होगा, यह हमारे आचार्योंके लिये होगा, यह हमारे लिये होगा।" आयुष्मान् सारिपुत्र, बुद्ध-प्रमुख संघके पहुँचनेपर, विहारोंके दखल हो जानेपर, शय्याओंके दखल हो जानेपर, शय्या न पा, किसी वृक्षके नीचे बैठे रहे। भगवान्‌ने रातके भिनसारको उठकर खाँसा। आयुष्मान् सारिपुत्रने भी खाँसा।

---

१. बसाढ़ (जि० मुजफ्फरपुर) से प्रायः २. मील उत्तर वर्तमान कोल्हुआ, जहाँ आज भी अशोक-स्तम्भ खड़ा है।

"कौन यहाँ है ?" "भगवान् ! मैं सारिपुत्र !" "सारि-पुत्र ! तू क्यों यहाँ बैठा है ।"

तब आयुष्मान् सारि-पुत्रने सारी बात भगवान्से कही। भगवान्ने इसी संबन्धमें= इसी प्रकरणमें भिक्षु-संघको जमा करवा, भिक्षुओंसे पूछा—

"सचमुच भिक्षुओ ! छ-वर्गीय भिक्षुओंके अन्तेवासी (=शिष्य) बुद्ध-प्रमुख संघके आगे आगे जाकर० दखल कर लेते हैं ?"

"सच-मुच भगवान् !"

भगवान्ने धिक्कारा—"भिक्षुओ ! कैसे वह नालायक भिक्षु बुद्ध-प्रमुख संघके आगे० ! *भिक्षुओ ! यह न अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है, न प्रसन्नोंको अधिक प्रसन्न करनेके लिये है;* बल्कि अ-प्रसन्नोंको (और भी) अप्रसन्न करनेके लिये, तथा प्रसन्नों (=श्रद्धालुओं) में से भी किसीके उलटा (अप्रसन्न) हो जानेके लिये हैं।"

धिक्कार कर धार्मिक कथा कह, भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! प्रथम आसन, प्रथम जल, और प्रथम परोसा (=अग्र-पिंड) के योग्य कौन है ?"

किन्हीं भिक्षुओंने कहा—"भगवान् ! जो क्षत्रिय कुलसे प्रव्रजित हुआ हो, वह योग्य है।"

किन्हीं० ने कहा—"भगवान् जो ब्राह्मण कुलसे प्रव्रजित हुआ है, वह०।"

किन्हीं० ने कहा—"भगवान् ! जो गृह-पति (=वैश्य) कुलसे।"

किन्हीं० ने कहा—"भगवान् ! जो सौत्रांतिक (=सूत्र-पाठी) हो०।"

किन्हीं० ने कहा—"भगवान् ! जो विनय-धर (=विनय-पाठी) हो०।"

किन्हीं० भिक्षुओंने कहा—"भगवान् जो धर्म-कथिक (=धर्मव्याख्याता) हो०।"

किन्हीं० "जो प्रथम ध्यानका लाभी (=पानेवाला) हो०।"

किन्हीं०—"द्वितीय ध्यानका लाभी।"…"जो तृतीय ध्यानका०।"…"जो चतुर्थ ध्यानका०।"…"जो स्रोतापन्न (स्रोतआपन्न) हो०।"…"जो सकृदागामी (=सकृदागामी)०।"…"जो अनागामी०।"…"जो अर्हत्०।"…"जो त्रैविद्य हो०।"… "जो षड्-अभिज्ञ०।"।"…

तित्तिर जातक—तब भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"पूर्वकालमें भिक्षुओ ! हिमालयके पासमें एक बड़ा बरगद था। उसको आश्रयकर, तित्तिर, वानर और हाथी तीन मित्र विहार करते थे। वह तीनों एक दूसरेका गौरव न करते, सहायता न करते, साथ जीविका न करते हुये, विहार करते थे। भिक्षुओ ! उन मित्रोंको ऐसा (विचार) हुआ—'अहो ! हम जानें (कि हममें कौन जेठा है), ताकि हम जिसे जन्मसे बड़ा जानें, उसका सत्कार करें, गौरव करें, मानें, पूजें, और उसकी सीखमें रहें।'

तब भिक्षुओ ! तित्तिर और मर्कट (=वानर) ने हस्ति-नागको पूछा—

'सौम्य ! तुम्हें कौनसी पुरानी (बात) याद है ?'

'सौम्यो ! जब मैं बच्चा था, तो इस न्यग्रोध (बर्गद) को जाँघोंके बीचमें करके लाँघ जाता था, इसकी फुनगी मेरे पेटको छूती थी। 'सौम्यो ! मुझे यह पुरानी बात स्मरण है।'

"तब भिक्षुओ ! तित्तिर और हस्ति-नागने मर्कटको पूछा—

"सौम्य ! तुम्हें क्या पुरानी (बात) याद है ?'

"सौम्यो ! जब मैं बच्चा था, भूमिमें बैठकर इस बर्गदके फुनगीके अंकुरोंको खाता था। सौम्यो ! यह पुरानी०।'

"तब भिक्षुओ ! मर्कट और हस्ति-नागने तित्तिरको पूछा—

'सौम्य ! तुम्हें क्या पुरानी (बात) याद है ?'

'सौम्यो ! उस जगहपर महान् बर्गद था, उसके फल खाकर इस जगह मैंने विष्टा किया, उसीसे यह बर्गद पैदा हुआ। उस समय सौम्यो ! मैं जन्मसे बहुत सयाना था।'

"तब भिक्षुओ ! हाथी और मर्कटने तित्तिरको यों कहा—

सौम्य ! तू जन्ममें हम सबसे बहुत बड़ा है। तेरा हम सत्कार करेंगे, गौरव करेंगे, मानेंगे, पूजेंगे, और तेरी सीखमें रहेंगे।'

"तब भिक्षुओ ! तित्तिरने मर्कट और हस्ति-नागको पाँच शील[1] ग्रहण कराये, आप भी पाँच शील ग्रहण किये। वह एक दूसरेका गौरव करते, सहायता करते, साथ जीविका करते हुये विहरकर; काया छोड़ मरनेके बाद, सुगति (प्राप्त कर) स्वर्ग लोकमें उत्पन्न हुये। यही भिक्षुओ ! तैत्तिरीय-ब्रह्मचर्य हुआ—

'धर्मको जानकर जो मनुष्य वृद्धका सत्कार करते हैं।

(उनके लिये) इसी जन्ममें प्रशंसा है, और परलोकमें सुगति।'

"भिक्षुओ ! वह तिर्यग् योनिके प्राणी (थे, तो भी) एक दूसरेका गौरव करते, सहायता करते, साथ जीवन-यापन करते हुये, विहार करते थे। और भिक्षुओ ! यहाँ क्या यह शोभा देगा, कि तुम ऐसे सु-आख्यात धर्म-विनयमें प्रव्रजित होकर भी, एक दूसरेका गौरव न करते, सहायता न करते, साथ जीवन-यापन न करते (हुये) विहार करो। भिक्षुओ ! यह न अप्रसन्नों को प्रसन्न करनेके लिये है०।"

भगवान्ने धिक्कारकर धार्मिक कथा कहके उन भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! वृद्ध-पनके अनुसार अभिवादन, प्रत्युत्थान, (बड़ेके सामने खड़ा होना), हाथ जोड़ना, कुशलप्रश्न, प्रथम-आसन, प्रथम-जल, प्रथम-परोसा देनेकी अनुज्ञा करता हूँ। सांघिक वृद्धपनके अनुसरणको न तोड़ना चाहिये, जो तोड़े उसको [2]'दुष्कृत' की आपत्ति (होगी)। भिक्षुओ ! यह दश अ-वन्दनीय हैं—

'पूर्वके उप-सम्पन्नको पीछेका [3]उपसम्पन्न अ-वन्दनीय है। अन्-उपसम्पन्न अवंदनीय है। नाना सह-वासी, वृद्ध-तर अ-धर्म-वादी०। स्त्रियाँ०। नपुंसक०। [4]'परिवास' दिया गया०। [5]'मूलके प्रति-कर्षणार्ह०। [5]'मानत्वार्ह०। [5]'मानत्व-चारिक०। [5]'आह्वानार्ह०।

---

१. अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, मद्य-वर्जन।

२. भिक्षु-नियमके अनुसार छोटा पाप है। ३. भिक्षुकी दीक्षा प्राप्त। ४. किसी अपराधके कारण संघद्वारा कुछ दिनके लिये पृथक् करण। ५. यह भी एक दंड।

भिक्षुओ ! यह तीन वंदनीय हैं—पीछे उपसम्पन्न द्वारा पहिले उपसम्पन्न हुआ वन्दनीय है, नाना सहवासी वृद्धतर धर्मवादी०। देव-मार-ब्रह्मा सहित सारे लोकके लिये, देव-मनुष्य-श्रमण-ब्राह्मण सहित सारी प्रजाके लिये, तथागत अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध वन्दनीय हैं।

क्रमशः चारिका करते हुये, भगवान् जहाँ श्रावस्ती है, वहाँ पहुँचे। वहाँ श्रावस्तीमें भगवान् अनाथ-पिंडकके आराम 'जेत-वन' में विहार करते थे। तब अनाथ-पिंडक गृहपति जहाँ भगवान् थे, वहाँ आया, आकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये, अनाथ-पिंडक गृहपतिने भगवान्से कहा—

"भन्ते ! भगवान् भिक्षु-संघ-सहित कलको मेरा भोजन स्वीकार करें"

भगवान्ने मौन रह स्वीकार किया। तब अनाथ-पिंडक० भगवान्की स्वीकृति जान, आसनसे उठ, भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया। अनाथ-पिंडकने…उस रातके बीत जानेपर उत्तम खाद्य भोज्य तैय्यार करवा, भगवान्को काल सूचित कराया०। तब अनाथ-पिंडक गृहपति अपने हाथसे बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको उत्तम खाद्य भोज्यसे संतर्पित कर पूर्णकर, भगवान्के पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, एक ओर० बैठकर भगवान्से बोला—

"भन्ते ! भगवान् ! मैं जेतवनके विषयमें कैसे करूँ ?"

"गृहपति ! जेतवनको आगत-अनागत चातुर्दिश संघके लिये प्रदान कर दे ?"

अनाथ-पिंडकने 'ऐसा ही भन्ते !' उत्तर दे, जेतवनको आगत-अनागत चातुर्दिश भिक्षु-संघको प्रदान कर दिया।

+　　　　+　　　　+　　　　+

…'तथागत प्रथम-बोधिमें=बीसवर्ष तक अस्थिर-वास हो, जहाँ जहाँ ठीक रहा वहीं जाकर वास करते रहे। पहिली-वर्षामें ऋषिपतनमें धर्म-चक्र-प्रवर्तन कर…वाराणसीके पास ऋषिपतनमें वास किया। दूसरी-वर्षामें राजगृह वेणुवनमें०। तीसरी चौथी भी वहीं। पाँचवीं-वर्षामें वैशालीमें…महावन कूटागारशालामें। छठवीं-वर्षा मंकुल-पर्वतपर। सातवीं त्रयस्त्रिंश-भवनमें। आठवीं भर्ग-देशमें सुंसुमारगिरिके…भेसकलावनमें। नवीं कौशाम्बीमें। दसवीं पारिलेयक वनखंडमें। ग्यारहवीं नाला ब्राह्मण-ग्राममें। बारहवीं

१ अ. नि. अ. क. २:४:५ में बुद्धके वर्षावास निम्न प्रकार दिये हैं—

१. (५२७ ई. पू.) ऋषि-पतन	१२.	(५१६ ई. पू.)	वेरंजा
२. ४. (५२६-२४,,) राजगृह	१३.	(५१५,,)	चालिय-पर्वत
५. (५२३,,) वैशाली	१४.	(५१४,,)	श्रावस्ती
६. (५२२,,) मंकुल-पर्वत	१५.	(५१३,,)	कपिलवस्तु
७. (५२१,,) त्रयस्त्रिंश	१६.	(५१२,,)	आलवी
८. (५२०,,) सुंसुमारगिरि	१७.	(५११,,)	राजगृह
९. (५१९,,) कौशाम्बी	१८, १९.	(५१०-९,,)	चालिय-पर्वत
१०. (५१८,,) पारिलेयक	२०.	(५०८,,)	राजगृह
११. (५१७,,) नाला	२१-४५.,,	(५०७-४८३ ,,)	श्रावस्ती
	४६.	(४८३,,)	वैशाली

घेरंजामें। तेरहवीं चालिय-पर्वतमें। चौदहवीं जेतवनमें। पंद्रहवीं कपिलवस्तुमें। सोलहवीं आलवकको दमनकर…आलवीमें। सत्रहवीं राजगृहमें। अठारहवीं भी चालिय-पर्वतपर, और उन्नीसवीं भी। बीसवीं-वर्षामें, राजगृह हीमें बसे। इस प्रकार बीसवीं तक अ-निबद्ध-(वर्षा)-वास करते, जहाँ जहाँ ठीक हुआ, वहीं बसे। इससे आगे दो ही शयनासन (=निवास-स्थान) ध्रुव-परिभोग (=सदा रहनेके) किये। कौनसे दो?—जेतवन और पूर्वाराम।…

(१७)

दक्षिणा-विभङ्ग-सुत्त। प्रजापतीकी प्रव्रज्या। (ई. पू. ५२५-२४)

…[1]गौतम यह गोत्र है।…नामकरणके दिन…इसका नाम महाप्रजापती रक्खा गया।…गोत्रसे मिलाकर महाप्रजापती गौतमी कहा गया।…गौतमीने भगवान्‌को दुस्स देनेका मन कब किया? अभि-संबोधि प्राप्तकर पहिली यात्रामें कपिलपुर आनेके समय…।

\+ + + + +

दक्षिणा-विभङ्ग-सुत्त।

[2]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् शाक्यों (के देश) में कपिल-वस्तुके न्यग्रोधाराममें विहार करते थे। तब महाप्रजापती गौतमी नये दुस्स (=धुस्से) के जोड़ेको लेकर, जहाँ भगवान् थे वहाँ आई। आकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गई। एक ओर बैठी, महाप्रजापती गौतमीने भगवान्‌को यों कहा—"भन्ते! यह अपना ही काता, अपना ही बुना, मेरा यह नया धुस्सा-जोड़ा भगवान्‌को (अर्पण है)। भन्ते! भगवान् अनुकम्पा (=कृपा) कर, इसे स्वीकार करें।"

ऐसा कहनेपर भगवान्‌ने महाप्रजापती गौतमीको कहा—

"गौतमी! (इसे) संघको देदे। संघको देनेसे मैं भी पूजित हूँगा, और संघ भी।"

दूसरी बार भी० कहा—"भन्ते यह०"।…"गौतमी! संघको दे०"। तीसरी बार भी०।

यह कहनेपर आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌को यों कहा—

"भन्ते! भगवान् महाप्रजापती गौतमीके धुस्सा-जोड़ेको स्वीकार करें। भन्ते! आपादिका (=अभिभाविका), पोपिका, क्षीर-दायिका (होनेसे), भगवान्‌की मौसी महाप्रजापती गौतमी बहुत उपकार करनेवाली है। इसने जननीके मरनेपर भगवान्‌को दूध पिलाया। भगवान् भी महाप्रजापती गौतमीके महोपकारक हैं। भन्ते! भगवान्‌के कारण महाप्रजापती० बुद्धकी शरण आई, धर्मकी शरण आई, संघकी शरण आई। भगवान्‌के कारण भन्ते! महाप्रजापती गौतमी प्राणातिपात (=हिंसा) से विरत हुई। अदत्तादान (=बिना दिये लेना=चोरीसे) विरत हुई। काम-मिथ्याचारसे०। मृषावाद (=झूठ बोलना) से०।

---

1. म० नि० अ० क० ३ : ४ : १२। 2. म० नि० ३ : ४ : १२।

सुरा-मेरय (=कच्ची शराब)-मद्य-प्रमादस्थान (=प्रमाद करनेकी जगह) से०। भगवान्‌के कारण भन्ते! महाप्रजापती गौतमी बुद्धमें अत्यन्त श्रद्धा (=प्रसाद) युक्त, धर्ममें अत्यन्त प्रसाद-युक्त, संघमें अत्यन्त प्रसाद-युक्त (हुई); आर्य (=उत्तम) कांत (=कमनीय=सुन्दर) शीलोंसे युक्त (हुई)। भगवान्‌के ही कारण भन्ते? ० दुःखसे बेफिक्र हुई, दुःख-समुदयसे०, दुःख-निरोधसे०, दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद्‌से०. भगवान् भी भन्ते! महाप्रजापती गौतमीके महाउपकारक हैं।"

"आनन्द! यह ऐसाही है, पुद्गल (=व्यक्ति=प्राणी) पुद्गलके सहारे बुद्धका शरणागत होता है, धर्मका०, संघका०। लेकिन आनन्द! जो यह अभिवादन, प्रत्युपस्थान (=सेवा), अञ्जलि जोड़ना=समीची करना, चीवर, पिंड-पात, शयनासन, ग्लान (=रोगी) को पथ्य-औषध देना है, (इसे) मैं इस पुद्गलका उस पुद्गलके प्रति सुप्रतिकार (=प्रत्युपकार) नहीं कहता। जो (कि यह) पुद्गल (दूसरे) पुद्गल के सहारे प्राणातिपात०, अदत्तादान०, काम-मिथ्याचार०, मृषावाद०, सुरा-मेरय-मद्य-प्रमाद-स्थानसे विरत होता है! आनंद! जो यह अभिवादन०। जो यह आनन्द! पुद्गल पुद्गलके सहारे दुःखसे बेफिक्र होता है०।

"आनन्द! यह चौदह प्राति-पुद्गलिक (=व्यक्तिगत) दक्षिणायें (=दान) हैं। कौनसी चौदह? तथागत अर्हत्-सम्यक्-संबुद्धको दान देता है; यह पहिली प्राति-पुद्गलिक दक्षिणा है। प्रत्येक बुद्धको दक्षिणा देता है; यह दूसरी०। तथागतके श्रावक (=शिष्य) अर्हत्‌को० तीसरी०। अर्हत्-फलके साक्षात् करनेमें लगे हुयेको० चौथी०। अनागामीको० पाँचवीं। अनागामि-फल साक्षात् करनेमें लगेहुयेको छठीं०। सकृदागामीको० सातवीं। सकृदागामि-फल साक्षात् करनेमें लगे को० आठवीं०। सोतापन्न को० नवीं०। सोतापत्ति (=स्रोत आपत्ति) फल साक्षात्करनेमें लगे को० दसवीं०। गाँवके बाहरके वीत-राग को० ग्यारहवीं०। शीलवान् पृथग्जन (स्रोत आपत्ति आदिको न प्राप्त) को० बारहवीं०। दुःशील पृथग्जन को० तेरहवीं०। तिर्यग्योनिगत (=पशु पक्षी आदि) को० चौदहवीं०। यहाँ आनन्द! तिर्यग्योनि-गत को दान देनेमें सौगुनी दक्षिणा की आशा रखनी चाहिये। दुःशील पृथग्जनमें० हजार गुनी०। शील-वान् पृथग्जनमें० सौ हजार०। ०सौ हजार करोड़०। स्रोत आपत्ति फल साक्षात् करनेमें लगेको दान दे० असंख्य (=अनगिनत) अप्रमेय (=प्रमाण रहित) दक्षिणाकी आशा रखनी चाहिये। फिर स्रोतआपन्न की बात क्या कहनी है? फिर सकृदागामी०? फिर अनागामी०? फिर अर्हत्०? फिर प्रत्येक-बुद्ध०? फिर तथागत अर्हत् सम्यक् संबुद्ध०?

"आनन्द! यह सात संघ-गत (=संघोंको) दक्षिणायें हैं। कौन सी सात? बुद्ध-प्रमुख दोनों संघोंको दान देता है; यह पहिली संघ-गत दक्षिणा है। तथागतके परिनिर्वाणपर 'दोनों संघोंको० दूसरी०। भिक्षु-संघको० तीसरी०। भिक्षुणी-संघको० चौथी०। मुझे संघ इतने भिक्षु भिक्षुणी उद्देश करें (=दान देनेके लिये दें), ऐसे दान देता है० यह पाँचवीं०। मुझे संघमेंसे इतने भिक्षु० छठीं०। मुझे संघमेंसे इतनी भिक्षुणियाँ०, सातवीं०।

"आनन्द! भविष्यकालमें भिक्षु-नाम-धारी (=गोत्रभू), काषाय-मात्र-धारी (=काषाय-कंठ) दुःशील, पाप-धर्मा (=पापी) (भिक्षु) होंगे। (लोग) संघके (नामपर)

1. भिक्षु और भिक्षुणीके संघ।

उन दुःशीलोंको दान देंगे। उस वक्त भी आनन्द ! मैं संघ-विषयक दक्षिणाको असंख्येय, अपरिमित (फलवाली) कहता हूं। आनन्द ! किसी तरह भी संघ-विषयक दक्षिणासे प्राति-पुद्गलिक (=व्यक्तिगत) दक्षिणाको अधिक फल-दायक मैं नहीं मानता।

"आनन्द यह चार दक्षिणा (=दान) की विशुद्धियां (=शुद्धियां) हैं। कौनसी चार ? आनन्द ! (कोई) दक्षिणा तो दायकसे परि-शुद्ध होती है, प्रतिग्राहक से नहीं। (कोई) दक्षिणा प्रति-ग्राहकसे परिशुद्ध होती है, दायकसे नहीं। आनन्द ! (कोई) दक्षिणा न दायकसे शुद्ध होती है, न प्रति-ग्राहकसे। (कोई) दक्षिणा दायकसे भी शुद्ध होती है, ·········प्रतिग्राहकसे भी···। आनन्द ! दक्षिणा कैसे दायकसे शुद्ध होती है,···प्रतिग्राहक नहीं···? आनन्द ! जब दायक शील-वान् (=सदाचारी) और कल्याण-धर्मा (=पुण्यात्मा) हो, और प्रति-ग्राहक हो दुःशील (=दुराचारी) पाप-धर्मा (=पापी); तो आनन्द ! दक्षिणा दायकसे शुद्ध होती है, प्रतिग्राहकसे नहीं। आनन्द ! कैसे दक्षिणा प्रति-ग्राहकसे शुद्ध होती है, दायकसे नहीं ? आनन्द ! जब प्रतिग्राहक शील-वान् और कल्याण-धर्मा हो, (और) दायक हो दुःशील, पाप-धर्मा०। आनन्द ! कैसे दक्षिणा न दायकसे शुद्ध होती है, न प्रति-ग्राहकसे ? आनन्द ! जब दायक दुःशील, पाप-धर्मा हो, और प्रतिग्राहक भी दुःशील पाप-धर्मा हो। आनन्द ! कैसे दक्षिणा दायकसे भी शुद्ध होती है, और प्रतिग्राहकसे भी ? आनन्द ! (जब) दायक शील-वान् कल्याण-धर्मा हो (और) प्रतिग्राहक भी शील-वान् कल्याण-धर्मा हो, तो०। आनन्द ! यह चार दक्षिणाकी विशुद्धियाँ हैं।"

× × × ×

(पजापती पव्वज्जा) सुत्त।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् **शाक्यों** (के देश) में **कपिलवस्तुके न्यग्रोधाराममें** विहार करते थे। तब **महाप्रजापती गौतमी** जहाँ भगवान् थे, वहाँ आई। आकर भगवान्‌को वन्दनाकर, एक ओर खड़ी हुई। एक ओर खड़ी हुई महाप्रजापती गौतमीने भगवान्‌से कहा..."भन्ते ! अच्छा हो (यदि) मातृग्राम (=स्त्रियाँ) भी तथागतके दिखाये धर्म-विनय (=धर्म) में घरसे बेघर हो प्रव्रज्या पावें।"

"नहीं गौतमी ! मत तुझे (यह) रुचे—स्त्रियाँ तथागतके दिखाये धर्ममें०।"

दूसरीबार भी०। तीसरीबार भी०।

तब महाप्रजापती गौतमी—भगवान्, तथागत-प्रवेदित धर्म-विनय (=बुद्धके दिखलाये धर्म) में स्त्रियोंको घर छोड़ बेघर हो प्रव्रज्या (लेने) की अनुज्ञा नहीं करते—जान, दुःखी= दुर्मना अश्रुमुखी (हो) रोती, भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चली गई।

भगवान् कपिल-वस्तुमें इच्छानुसार विहारकर (जिधर) **वैशाली** थी, (उधर) चारिकाको चल दिये। क्रमशः चारिका करते हुये, जहाँ वैशाली थी, वहाँ पहुँचे। भगवान् वैशालीमें **महावनकी कूटागारशालामें** विहार करते थे। तब महाप्रजापती गौतमी, केशोंको कटाकर काषाय-वस्त्र पहिन, बहुत सी 'शाक्य-स्त्रियों' के साथ, जिधर वैशाली थी

---

1. अ. नि. ८:२:१:१। चुल्लवग्ग ११।

(उधर) चली। क्रमशः चलकर वैशालीमें जहाँ महावनकी कूटागार-शाला थी (वहाँ) पहुँची। महाप्रजापती गौतमी फूले-पैरों धूल-भरे शरीरसे, दुःखी=दुर्मना अश्रु-मुखी, रोती, द्वार-कोष्ठक (=बड़ा द्वार, जिसपर कोठा होता था) के बाहर जा खड़ी हुई। आयुष्मान् आनन्दने महाप्रजापती० को खड़ा देखकर...पूछा—

"गौतमी! तू क्यों फूले पैरों० ?"

"भन्ते! आनन्द! तथागत-प्रवेदित धर्म-विनयमें स्त्रियोंको घर छोड़ बे घर प्रव्रज्याकी भगवान् अनुज्ञा नहीं देते।"

"गौतमी! तू यहीं रह; बुद्ध-धर्ममें स्त्रियोंको० प्रव्रज्याके लिये मैं भगवान्से प्रार्थना करता हूँ।"

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर० बैठ, भगवान्से बोले—

"भन्ते! महाप्रजापती गौतमी फूले-पैरों धूल-भरे शरीरसे दुःखी दुर्मना अश्रु-मुखी रोती हुई द्वार-कोष्ठकके बाहर खड़ी है (कि),—भगवान्...(बुद्ध-धर्ममें)...०प्रव्रज्या मिले।"

"नहीं आनन्द! मत तुझे रुचे—तथागतके जतलाये धर्ममें स्त्रियोंकी घरसे बेघर हो प्रव्रज्या।"

दूसरी बार भी आयुष्मान् आनन्द०। तीसरीबार भी०।

तब आयुष्मान् आनन्दको हुआ,—भगवान् तथागत-प्रवेदित धर्म-विनयमें स्त्रियोंको घरसे बेघर प्रव्रज्याकी अनुज्ञा नहीं देते, क्यों न मैं दूसरे प्रकारसे० प्रव्रज्याकी अनुज्ञा माँगूँ। तब आयुष्मान् आनन्दने भगवान्को कहा—

"भन्ते! क्या तथागत-प्रवेदित धर्ममें घरसे बेघर प्रव्रजित हो, स्त्रियाँ स्रोत-आपत्तिफल, सकृदागामि-फल, अनागामिफल, अर्हत्व-फलको साक्षात् कर सकती हैं?"

"साक्षात् कर सकती हैं, आनन्द! तथागत-प्रवेदित०।"

"यदि भन्ते! तथागत-प्रवेदित धर्म-विनयमें ०प्रव्रजित हो, स्त्रियाँ ०अर्हत्व-फलको साक्षात् करने योग्य हैं। तो, भन्ते! अभिभाविका, पोषिका, क्षीरदायिका हो, भगवान्की मौसी महाप्रजापती गौतमी बहुत उपकार करनेवाली है। जननीके मरनेपर (उसने) भगवान्को दूध पिलाया। भन्ते! अच्छा हो स्त्रियोंको० प्रव्रज्या मिले।"

"आनन्द! यदि महाप्रजापती गौतमी आठ गुरु-धर्मों (=बड़ी बातों) को स्वीकार करे, तो उसकी उपसम्पदा हो।—

(१) सौ वर्षकी उप-सम्पन्न (=उपसंपदा पाई) भिक्षुणीको भी उसी दिनके उपसम्पन्न भिक्षुके लिये अभिवादन, प्रत्युत्थान, अंजलि जोड़ना, सामीची-कर्म करना चाहिये। यह भी धर्म सत्कार-पूर्वक गौरव-पूर्वक मानकर, पूजकर जीवनभर न अतिक्रमण करना चाहिये।

(२) (भिक्षुको) उपगमन (=धर्मश्रवणार्थ आगमन) करना चाहिये। यह भी धर्म०।

(३) प्रति आधेमास भिक्षुणीको भिक्षु-संघसे पर्येषण करना चाहिये। यह०।

(४) वर्षा-वास कर चुकनेपर भिक्षुणीको दोनों संघोंमें देखे, सुने, जाने तीनों स्थानोंसे प्रवारणा करनी चाहिये।०

(५) गुरु-धर्म स्वीकार किये भिक्षुणीको दोनों संघोंमें पक्ष-मानना करनी चा० ।

(६) किसी प्रकार भी भिक्षुणी भिक्षुको गाली आदि (=आक्रोश) न दे । यह भी० ।

(७) आनन्द ! आजसे भिक्षुणियोंका भिक्षुओंको (कुछ) कहनेका रास्ता बन्द हुआ० ।

(८) लेकिन भिक्षुओंका भिक्षुणियोंको कहनेका रास्ता खुला है । यह० ।

यदि आनन्द ! महाप्रजापती गौतमी इन आठ गुरु-धर्मोंको स्वीकार करे, तो उसकी उपसम्पदा होवे ।"

तब आयुष्मान् आनन्द भगवान्के पास, इन आठ गुरु-धर्मोंको समझ (=उद्ग्रहण= पढ़) कर जहाँ महाप्रजापती गौतमी थी, वहां गये । जाकर महा-प्रजापती गौतमीसे बोले—

"यदि गौतमी ! तू इन आठ गुरु-धर्मोंको स्वीकार करे, तो तेरी उपसम्पदा होगी— (१) सौ वर्षकी उपसम्पन्न० (८)० ।

"भन्ते ! आनन्द ! जैसे शौकीन शिर से नहाये अल्प-वयस्क, अथवातरुण स्त्री या पुरुष उत्पलकी माला, वार्षिक (=जूही) की माला, या अतिमुक्तक (=मोतिया) की मालाको पा, दोनों हाथोंमें ले, (उसे) उत्तम-अंग शिरपर रखता है । ऐसेही भन्ते ! मैं इन आठ गुरु-धर्मोंको स्वीकार करती हूँ ।"

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर ०अभिवादनकर० एक ओर बैठकर, भगवान्से बोले—

"भन्ते ! प्रजापती गौतमीने यावज्जीवन अनुल्लंघनीय आठ गुरु-धर्मोंको स्वीकार किया।"

"आनन्द ! यदि तथागत-प्रवेदित धर्म-विनयमें स्त्रियाँ० प्रव्रज्या न पातीं, तो (यह) ब्रह्मचर्य चिरस्थायी होता, सद्धर्म सहस्रवर्ष तक ठहरता । लेकिन चूँकि आनन्द ! स्त्रियाँ० प्रव्रजित हुई; अब ब्रह्मचर्य चिर-स्थायी न होगा सद्धर्म पाँच ही सौ वर्ष ठहरेगा । आनन्द ! जैसे बहुत स्त्रीवाले और थोड़े पुरुषोंवाले कुल, चोरों द्वारा, भँडियाहों (=कुम्भ-चोरों) द्वारा आसानीसे ध्वंसनीय (=सु-प्र-ध्वंस्य) होते हैं, इसी प्रकार आनन्द ! जिस धर्म-विनयमें स्त्रिया ०प्रव्रज्या पाती हैं, वह ब्रह्मचर्य चिर-स्थायी नहीं होता । जैसे आनन्द ! सम्पन्न (=तय्यार, लहलहाते) धानके खेतमें सेतट्टिका (=सफेदा) नामक रोग-जाति पड़ती है, जिससे वह शालि-क्षेत्र चिर-स्थायी नहीं होता; ऐसे ही आनन्द ! जिस धर्म-विनयमें० । जैसे आनन्द ! सम्पन्न (=तय्यार) ऊखके खेतमें मांजेष्टिका (=लाल-रोग) नामक रोग-जाति पड़ती है, जिससे वह ऊखका खेत चिर-स्थायी नहीं होता; ऐसे ही आनन्द० । आनन्द ! जैसे आदमी पानीको रोकने लिये, बड़े तालाबकी रोक-थामके लिये, मेंढ़ (=आली) बाँधे, उसी प्रकार आनन्द ! मैंने रोक-थामके लिये भिक्षुणियोंको जीवनभर अनुल्लंघनीय आठ गुरु-धर्मोंको स्थापित किया ।

× × × ×

(पजापति)-सुत्त ।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् वैशालीमें महावनकी कूटागार-शालामें

१. अं. नि. ८-२:१:२ ।

विहार करते थे। तब महाप्रजापती गौतमी जहाँ भगवान् थे, वहाँ गई। जाकर भगवान् को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गई। ०भगवान्से यों बोली—

"भन्ते! अच्छा हो (यदि) भगवान् संक्षेपसे धर्मका उपदेश करें, जिसे भगवान्से सुनकर, एकाकी=उपकृष्ट, प्रमाद-रहित हो (मैं) आत्म-संयमकर विहार करूँ।"

"गौतमी! जिन धर्मोंको तू जाने कि, वह (धर्म) स-रागके लिए हैं, विरागके लिए नहीं। संयोगके लिए हैं, वि-संयोग (=वियोग=अलग होना) के लिए नहीं। जमा करनेके लिए हैं, विनाशके लिए नहीं। इच्छाओंको बढ़ानेके लिए हैं, इच्छाओंको कम करनेके लिए नहीं। असन्तोषके लिए हैं, संतोषके लिए नहीं। भीड़के लिए हैं, एकान्तके लिए नहीं। अनुद्योगिताके लिए हैं, उद्योगिता (वीर्यारंभ) के लिए नहीं। दुर्भरता (=कठिनाई) के लिए हैं, सुभरताके लिए नहीं। तो तू गौतमी! सोलहों आने (=एकांसेन) जान, कि न यह धर्म है, न विनय है, न शास्ता (=बुद्ध) का (=उपदेश) है।

"और गौतमी! जिन धर्मोंको तू जाने, कि वह विरागके लिए हैं, सरागके लिए नहीं। वियोगके लिये०। उद्योगके लिये०। विनाश०। इच्छाओंको अल्प करनेके लिये०। सन्तोषके लिये०। एकान्तके लिये०। उद्योगके लिये०। सुभरता (=आसानी) के लिये०। तो तू गौतमी! सोलहों आने जान, कि यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ताका शासन है।"

× × × ×

(१८)

दिव्य-शक्ति-प्रदर्शन। यमक-प्रातिहार्य। संकाश्यमें अवतरण। ई. पू. ५२२

[1]तथागत…छठी वर्षामें मंकुल-पर्वतपर (वसे)।…

[2]उस समय राजगृहके श्रेष्ठीको एक महार्घ चन्दन-सारकी चन्दन गांठ मिली थी। तब राजगृहके श्रेष्ठीके मनमें हुआ—'क्यों न मैं इस चन्दनगाँठका, पात्र खरदवाऊँ; चूरा मेरे कामका होगा, और पात्र दान दूँगा।' तब राजगृहके श्रेष्ठीने उस चंदन-गाँठका पात्र खरदवाकर, सींकेमें रख, बाँसके सिरेपर लगा, एकके ऊपर एक बाँसोंको बँधवाकर कहा—"जो कोई श्रमण ब्राह्मण अर्हत् या ऋद्धिमान् हो (वह इस दान) दिये हुए पात्रको उतार ले।"

पूर्ण काश्यप जहाँ राजगृहका श्रेष्ठी रहता था, वहाँ गये। और जाकर राजगृहके श्रेष्ठीसे बोले—"गृहपति! मैं अर्हत हूँ, ऋद्धिमान् भी हूँ। मुझे पात्र दो।"

"भन्ते! यदि आयुष्मान् अर्हत और ऋद्धिमान् हैं, दिया हो हुआ है, पात्रको उतार लें।"

तब मक्खली-गोसाल (=मस्करी गोशाल)० अजित-केश-कंबली०। प्रकुध-कात्यायन०। संजय-बेलट्ठिपुत्त०। निगंठ-नाथपुत्त०। जहाँ राज-गृहका श्रेष्ठी था, वहाँ गये। जाकर राजगृहके श्रेष्ठीसे बोले—"गृहपति! मैं अर्हत हूँ, और ऋद्धिमान भी, मुझे पात्र दो।"

---

१. अ. नि. ८:२:१०। २. चुल्ल० व० ५। ५. ५. ४. ८ ५: २।

"भन्ते ! यदि आयुष्मान् अर्हत्० ।"

उस समय आयुष्मान् **मौद्गल्यायन** और आयुष्मान् **पिंडोल भारद्वाज**, पूर्वाह्ण समय सु-आच्छादित हो, पात्र चीवरले राज-गृहमें पिंडके (=भिक्षा) के लिये प्रविष्ट हुये। तब आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाजने आयुष्मान् मौद्गल्यायन से कहा—

"अयुष्मान् महामौद्गल्यायन अर्हत् हैं, और ऋद्धिमान भी, जाइये आयुष्मान् मौद्गल्यायन ! इस पात्रको उतार लाइये। आपके लिये ही यह पात्र है।"

"आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाज अर्हत हैं, और ऋद्धिमान् भी० ।"

तब आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाजने आकाशमें उड़कर, उस पात्र को ले, तीनवार राजगृहका चक्कर दिया। उस समय राजगृहके श्रेष्ठीने पुत्र-दारा-सहित हाथ जोड़, नमस्कार करते हुये अपने घरपर खड़े हो कहा—

"भन्ते ! आर्य-भारद्वाज ! यहीं हमारे घरपर उतरें।"

अयुष्मान् पिंडोल भारद्वाज राजगृहके श्रेष्ठी के मकानपर उतरे (=प्रतिष्ठित हुये)। तब राज-गृहक श्रेष्ठीने आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाजके हाथसे पात्र लेकर, महार्घ खाद्यसे भरकर उन्हें दिया। आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाज पात्र-सहित आराम (=निवास-स्थान) को गये। मनुष्योंने सुना—आर्य-पिंडोल भारद्वाजने राजगृहक श्रेष्ठीके पात्रको उतार लिया। वह मनुष्य हल्ला मचाते आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाजके पीछे पीछे लगे। भगवान्ने हल्लेको सुना, सुनकर आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया—"आनन्द ! यह क्या हल्ला-गुल्ला है ?"

"आयुष्मान् **पिंडोल भारद्वाजने** भन्ते ! **राजगृहके श्रेष्ठीके** पात्रको उतार लिया। लोगोंने (इसे) सुना०। भन्ते ! इसीसे लोग हल्ला करते आयुष्मान् पिंडोल-भारद्वाजके पीछे पीछे लगे हैं। भगवान् ! वही यह हल्ला है।"

तब भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें, भिक्षु-संघको जमा करवा, आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाजसे पूछा—

"भारद्वाज ! क्या तूने सचमुच राजगृहके श्रेष्ठीका पात्र उतारा ?"

"सच-मुच भगवान् !"

भगवान्ने धिक्कारते हुये कहा—

"भारद्वाज ! यह अनुचित है प्रतिकूल=अ-प्रतिरूप, श्रमणके अयोग्य, अविधेय= अकरणीय है ! भारद्वाज ! मुर्दे लड़कीके बर्तनके लिये कैसे तू गृहस्थोंको 'उत्तर-मनुष्य-धर्म'[1] ऋद्धि-प्रतिहार्य[2] दिखायेगा।...। भारद्वाज ! यह न अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है०।"

(इस प्रकार) धिक्कारते (हुये) धार्मिक कथा कह, भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! गृहस्थोंको उत्तर-मनुष्य-धर्म ऋद्धि-प्रतिहार्य न दिखाना चाहिये, जो दिखाये उसको 'दुष्कृत' की आपत्ति। भिक्षुओ ! इस पात्रको तोड़, टुकड़ा टुकड़ाकर, भिक्षुओंको अंजन पीसनेके लिये दे दो। भिक्षुओ ! लकड़ीका बर्तन न धारण करना चाहिये। ०'दुष्कृत'।"

१. मनुष्योंकी शक्तिसे परेकी बात। २. चमत्कार दिव्य-शक्ति।

"भिक्षुओ ! सुवर्णमय पात्र न धारण करना चाहिये, रौप्यमय०, मणि-मय, वैदुर्य मय०, स्फटिकमय०, कंसमय, काच-मय, रांगेका० सीसेका०, ताम्रलोह (=ताँबा) का०,··· 'दुष्कृत'···। भिक्षुओ ! लोहेके और मिट्टीके—दो पात्रोंकी अनुज्ञा देता हूं ।"

\+ + + +

[1]"श्रमण गौतमने उस पात्रको तोड़वा, अपने श्रावकोंको पाटिहारिय (=प्रतिहार्य =चमत्कार) न करनेके लिये शिक्षा-पद बना दिया है"—तैर्थिक यह सुन,—श्रमण गौतमके श्रावक तो प्रज्ञप्त (=निर्धारित) शिक्षा-पदको प्राणके लिये भी नहीं छोड़ सकते, श्रमण गौतम भी उसको मानेहीगा। अब हम लोगोंको मौका मिला—(विचार,) नगरकी सड़कोंपर यह कहते विचरने लगे—"हमने गुण (=करामात) रखते भी पहले लकड़ीके पात्रके लिये अपना गुण लोगोंको नहीं दिखाया। श्रमण गौतमके शिष्योंने (उसे) सिर्फ बर्तनके लिये भी लोगोंको दिखलाया। श्रमण गौतमने अपनी पंडिताई (=चतुराई) से उस पात्रको तोड़वाकर शिक्षा-पद (=नियम) बना दिया। अब हम लोग उसके ही साथ दिव्य-शक्ति-प्रदर्शन (=पाटिहारिय) करेंगे।

राजा बिम्बिसारने इस बातको सुन शास्ताके पास जाकर कहा—

"भन्ते ! आपने श्रावकोंके लिये पाटिहारिय न करनेका शिक्षा-पद बनाया है ?"

"महाराज ! हाँ।"

"तैर्थिक आपके साथ प्रातिहार्य करनेको कह रहे हैं, अब क्या करेंगे ?"

"महाराज ! उनके करनेपर करूँगा।"

"अपने तो शिक्षा-पद बना दिया ?"

"मैंने अपने लिये शिक्षा-पद नहीं बनाया, यह मेरे श्रावकोंके लिये बना है।"

"भन्ते ! अपनेको छोड़, सिर्फ औरोंके लिये भी शिक्षा-पद होता है ?"

"महाराज ! तुम्हींसे पूछता हूँ। तेरे राज्यमें उद्यान है न ?"

"है, भन्ते !"

"यदि महाराज ! लोग उद्यानमें (जाकर) आम आदि खायें, तो इसका क्या करना चाहिये।"

"दण्ड, भन्ते !"

"और तू खा सकता है ?"

"हाँ भन्ते ! मेरे लिये दण्ड नहीं है, मैं अपनी (चीज) को खा सकता हूँ।"

"महाराज जैसे तीन सौ-योजन (अंग-मगध) राज्यमें तेरी आज्ञा चलती है। आम आदि खानेमें (तुझे) दंड नहीं है; लेकिन औरोंको है। इसी प्रकार सौ-हजार-कोटि चक्र-वाल भर मेरी आज्ञा चलती है। मुझे शिक्षा-पद-निर्धारणके अतिक्रम (में दोष) नहीं है। लेकिन दूसरोंको है। मैं प्रातिहार्य करूँगा।"

तैर्थिकोंने इस बातको सुनकर कहा—

"अब हम बर्बाद हुये। श्रमण गौतमने श्रावकोंके लिये ही शिक्षापद निर्धारित किया

---

१. धम्मपद अ. क. ४:२।

है, अपने लिये नहीं। स्वयं प्रातिहार्य करना चाहता है। अब क्या करें।" सलाह करने लगे।

राजाने शास्तासे पूछा—"भन्ते! कब प्रातिहार्य करेंगे?"

"आजसे चार मास बाद, आषाढ़ पूर्णिमाको महाराज!"

"कहां करेंगे भन्ते?"

"श्रावस्तीमें महाराज!"

शास्ताने इतने दूरका स्थान क्यों कहा? इसलिये कि वह सभी बुद्धोंके प्रातिहार्यका स्थान है। और लोगोंके जमावड़ेके लिये भी दूर स्थान बतलाया। तैर्थिकोंने इस बातको सुनकर—

"आजसे चार मास बाद श्रमण गौतम श्रावस्तीमें प्रातिहार्य करेगा। इस वक्त निरन्तर उसका पीछा करना चाहिये! लोग हमें 'यह क्या है' पूछेंगे, तब उन्हें कहेंगे—'हमने श्रमण गौतमके साथ प्रातिहार्य करनेको कहा, वह भाग रहा है, हम भागने न देकर उसके पीछे लगे हैं।"

शास्ता राजगृहमें भिक्षाचार कर, निकले। तैर्थिक भी पीछे पीछे निकल भोजन किये स्थानपर वास करते थे, (रात्रि-) वासके स्थानपर दूसरे दिन कलेऊ करते थे। वह मनुष्यों द्वारा "यह क्या है?" पूछे जानेपर, उक्त सोचे हुये ढंगपर ही कहते थे। लोग भी प्रातिहार्य देखनेके लिये पीछे होलिये। शास्ता क्रमशः श्रावस्ती पहुँचे। तैर्थिक भी साथ ही जाकर, अपने भक्तोंको चेता, सौ हजार पाकर, खैरके स्तम्भोंसे मण्डप बनवा, नीले कमलसे छवा—'यहां प्रातिहार्य करेंगे' (कहकर) बैठे।

राजा **प्रसेनजित् कोसल** शास्ताके पास जा—

"भन्ते! तैर्थिकोंने मंडप बनवाया है, मैं भी तुम्हारा मंडप बनवाता हूं।"

"नहीं महाराज! हमारा मंडप बनाने वाला (दूसरा) है।"

"भन्ते! यहां मुझे छोड़, दूसरा कौन बनायेगा?"

"**शक्र देवराज**, महाराज!"

"फिर भन्ते! प्रातिहार्य कहां, करेंगे?"

"**गंडम्ब-रुक्ख** (गण्डके आम) के नीचे, महाराज!"

तैर्थिकोंने 'आमके वृक्षके नीचे प्रातिहार्य करेंगे' सुन, अपने भक्तोंको कह, एक योजन स्थानके भीतर, उस दिन जन्मे अमोले तकको भी उखाड़कर जंगलमें फेंकवा दिया।

शास्ताने आषाढ़ पूर्णिमाके दिन नगरमें प्रवेश किया। राजाके उद्यान-पाल गण्डने, माटों (=पिंगल-किपिल्लक) की झालकी आड़में एक बड़े पके आमको देख, उसके गन्ध-रसके लोभसे आये कौओंको उड़ा, राजाके लिये लेकर जाते (समय), रास्तेमें शास्ताको देख, सोचा—'राजा इस आमको खाकर मुझे आठ या सोलह कार्षापण (=कहापण) देगा, वह मेरे अकेलेकी जीवन-वृत्तिके लिये काफी नहीं। यदि मैं इसे शास्ताको दूं, जरूर वह अपरिमित कालतक हित-प्रद होगा।' (और) उस आमको शास्ताके पास ले गया। शास्ताने आनन्द स्थविरकी ओर देखा। तब स्थविरने चारों (दिव्य-) महाराजोंके दिये पात्रको लेकर हाथमें

रक्खा। शास्ताने पात्रको रोप, उस पके आमको लेकर, बैठने जैसा दर्शाया। स्थविरने चीवर बिछा दिया। तब उनके बैठने पर स्थविरने पानी छान, उस पके आमको गारकर, रस बनाकर शास्ताको दिया। शास्ताने आमके रसको पीकर गंडको कहा—"इस आमकी गुठली (=अट्ठि= आँठी) को यहाँ मट्टी हटाकर रोप दे।" उसने वैसा ही किया। शास्ताने उसपर हाथ धोया। हाथ धोते मात्र ही, तना हलके शिरके बराबर हो, ऊँचाईमें पचास हाथका आम्र वृक्ष हो गया। चारों दिशाओंमें चार और एक ऊपर को—पाँच पचास हाथ लम्बी महाशाखायें हो गईं। वह उसी समय पुष्प और फलसे आच्छन्न हो गया, (तथा) हर स्थानमें पके आम्र-धारण किये हुये था। पीछेसे आने वाले भिक्षु भी पके आम खाते हुये ही गये। राजाने ऐसा आम उगा है, सुन—इसको कोई न काटे, इसके लिये पहरा (=आरक्षा) लगा दिया।

यह गंड द्वारा रोपा गया होनेसे 'गण्डम्ब-रुक्ख' (=गंडका आम्र वृक्ष) के नामसे ही प्रसिद्ध हुआ। धूर्तोंने भी पके आम खा—"अरे दुष्ट तैर्थिको! 'श्रमण गौतम गंडम्ब-रुक्ख के नीचे प्रातिहार्य करेगा' इसलिये तुमने योजन भरके भीतर उस दिनके जन्मे अमोलों तकको उखड़वा (=उप्पाट=उत्पाट) दिया। 'यह गंडम्ब है' कह जूठी गुठलियें फेंक फेंककर (उन्हें) मारा। शास्ताने वात-वलाहक (=मरुत) देवपुत्रको आज्ञा दी—'तैर्थिकोंके मंडपको हवासे उखाड़कर कूड़ेकी भूमिपर फेंक दो'। उसने वैसा ही किया। सूर्य देव-पुत्रको भी आज्ञा दी—'सूर्य-मंडलको थामकर तपाओ'। उसने भी वैसा ही किया। फिर वात-वलाहक को आज्ञा दी—'वात-वलाहक आँधी! उठाते जाओ'। उसने वैसाकर तैर्थिकोंके पसीना चूते शरीरको धूलसे (ढाँक) दिया। वह ताँबेके बमईवाले जैसे हो गये। वर्षा-वलाहक को भी आज्ञा दी—"बड़ी बड़ी बूँद गिराओ।" उसने वैसा ही किया। तब उनका शरीर कबरी गाय जैसा हुआ। वह निगंठ (=निर्ग्रंथ) लजाते हुये सामनेसे भाग गये।

ऐसे पलायन करते समय पूर्ण काश्यपका एक सेवक (=भक्त) कृषक—'यह मेरे आर्योंके प्रातिहार्य करनेकी वेला है, जाकर प्रातिहार्य देखूँ'—(विचार), बैलोंको छोड़, सबेरेकी लाई खिचड़ीका कूट और जोता लेकर चलते (हुये), पूर्णको उस प्रकार भागते देख—"भन्ते! मैं आर्योंका प्रातिहार्य देखने आ रहा हूँ, आप कहाँ जा रहे हैं?"

"तुझे प्रातिहार्यसे क्या? इस कूट (=बर्तन) और जोतेको मुझे दे।"

उसके दिये कूट और जोतेको ले (पूर्ण काश्यप) नदी तीर जा, कूटको जोतेसे गलेमें बाँध, लजाते कुछ न कह दहमें कूद, पानीका बुलबुला उठाते हुये मरकर, अवीचि (नर्क) में उत्पन्न हुआ।

शास्ताने आकाशमें रत्न (-मय-) चंक्रमण (=टहलनेका चबूतरा) बनाया। उसका एक छोर पूर्वके चक्रवालके मुखमें था, एक छोर पश्चिमके चक्रवालके मुखमें। (शास्ता) एकत्रित हुई छत्तीस योजनकी परिषद्को (देख आयुष्मान्),—'अब बड़े मानवकी छायामें प्रातिहार्य करनेकी वेला है' (सोच), गंधकुटीसे निकल देहलीके बाहरी (=अलिन्द) पर खड़े हुए······

शास्ता रत्न-चंक्रमणपर उतरे। सामने बारह योजन लम्बी परिषद् थी, वैसे ही पीछे, उत्तर और दक्षिणकी ओर भी, सबमें छत्तीस योजन-वाली परिषद्के बीचमें आकाशमें यमक-प्रातिहार्य किया। इसे पाली (=सूत्रपिटक) से इस प्रकार जानना चाहिये।

यमकप्रातिहार्य—"क्या है तथागतका यमक-प्रातिहार्यका ज्ञान ? यहां तथागत श्रावकोंके साथ यमक-प्रातिहार्य करते हैं—ऊपरके शरीरसे अग्नि-पुंज निकलता है, निचले शरीरसे पानीकी धार निकलती है, नीचेवाले शरीरसे अग्नि-पुंज०, ऊपरके शरीरसे जल-धारा०। आगेकी कायासे अग्नि-पुंज०, पीछेकी कायासे जलधारा; पीछे० अग्नि०, आगे० जल०। दाहिनी आँखसे अग्नि०, बाईं आँखसे जल-धारा०, बाईं०, दाहिनी०। दाहिने कानके सोतेसे अग्नि०, बायें कानके सोतेसे जलधारा०; बायें०, दाहिने०। दाहिनी नासिकाके सोतेसे अग्नि०, बाईं नासिकाके सोतेसे जलधारा०; बाईं०, दाहिनी०। दाहिने कन्धेसे अग्नि०, बायें कन्धेसे०; बायें०, दाहिने०। दाहिने हाथसे अग्नि०, बायें हाथसे जलधारा०; बायें०, दाहिने०। दाहिनी बगलसे अग्नि०, बाईं बगलसे जलधारा०; बाईं०, दाईं०। दाहिने पैरसे अग्नि०, बायें पैरसे जलधारा०, बायें०, दाहिने०। अंगुलियोंसे अग्नि०, अंगुलियोंके बीचसे जलधारा०; अंगुलियोंके बीच०, अंगुलियोंसे०। एक-एक रोम-छिद्रसे अग्नि-पुंज०, एक-एक रोम-छिद्रसे उदक-धारा० नील, पीत, लोहित (=लाल), अवदात (=सफेद), मांजिष्ठ (=मजीठके रङ्गका), प्रभास्वर (=सूर्य-प्रकाशके रङ्गका)—छ रङ्गोंके (हो), भगवान् टहलते हैं, निर्मित बुद्ध (=योग-बलसे उतपादित बुद्ध-रूप) खड़ा होता है, बैठता है, सोता है। निर्मित सोता है, भगवान् टहलते हैं, खड़े होते हैं, या बैठते हैं। यह तथागतके **यमक-प्रातिहार्यका** ज्ञान है।

इस प्रातिहार्यको शास्ताने उस चंक्रमणपर टहलते हुये किया। उनके "तेजो-कसिण'[1] (=तेजःकृत्स्न) समाधि-ध्यानके कारण उनके उपरले शरीरसे अग्नि-पुञ्ज निकलता था, 'आपो कसिण' (आपःकृत्स्न) ध्यानके कारण, निचले शरीरसे जल-धारा उत्पन्न होती थी; किन्तु, जल-धाराके निकलनेके स्थानसे अग्नि-पुंज नहीं निकलता था।

शास्ताने प्रातिहार्य करते हुए ही (सोचा), कि अतीत कालके बुद्ध प्रातिहार्य करके कहाँ वर्षावास करते थे—'ध्यानमें देखते हुये **त्रयस्त्रिंशमें** वर्षावासकर, माताको **अभिधर्म-पिटक** का उपदेश करते हैं' देख, दाहिने चरणको युगन्धर पर्वतके शिखरपर रख, दूसरे चरणको उठा [2]**सुमेरुपर्वतके** मस्तकपर रक्खा। इस प्रकार अड़सठ लाख-योजन स्थानमें तीनही पग (=पाद-चार) हुये। ऐसा न समझना, कि शास्ताने दो पर्वतोंके अन्तरको पैर फैलाके पार किया। उनके पैर उठानेके समय पर्वतोंने स्वयं ही आकर, पाद-मूलको ग्रहण किया। शास्ताके आगे जानेपर, उठकर अपने स्वाभाविक स्थानपर जा स्थित हुये।

शक्रने शास्ताको देख सोचा—'मालूम होता है, भगवान् यह वर्षावास **पाण्डु-कम्बल शिला** (= लाल संगमर्मर जैसी देवलोककी एक शिला) पर करेंगे। अहो! बहुतसे देवताओंका उपकार होगा। शास्ताके यहां वर्षा-वाससे दूसरे देवता इसपर हाथ भी न रख सकेंगे। किन्तु यह पांडु-कंबल शिला लम्बाईमें साठ योजन, विस्तार (=चौड़ाई) में पचास योजन,

---

१. एक प्रकारका योगाभ्यास, जिसमें आंखको तेज-खंडपर लगाकर, धीरे धीरे सारे भूमण्डलको तेजोमय देखनेकी भावना की जाती है। २. भूमण्डलके बीचमें सुमेरु पर्वत है; जिसके शिखरपर इन्द्रका त्रयस्त्रिंश लोक है। सुमेरुके चारों ओर समुद्र है; उसके बाद युगंधर-पर्वत घेरे हुए है। फिर छ पर्वत और छ समुद्रके पार जम्बूद्वीप है।

मोटाई (=पृथुलता)में पन्द्रह योजन है। शास्ताके बैठनेपर भी (यह) थाली (=गुच्छ) की तरह ही होगी।' शास्ताने उसके मनकी बातको जान, शिलाको ढाँकनेके लिये अपनी संघाटी फेंकी। शक्रने सोचा—'चीवरको-ढाँकनेके लिये फेंका है; परन्तु स्वयं स्वल्प स्थान में ही बैठेंगे'। शास्ताने उसके मनकी बात जान, छोटे पीढ़ेपर बैठे, बड़े (शरीरवाले) पांसु-कूलिक (=गुदड़ी-धारी) की भांति, पांडु-कम्बल-शिलाको बीचमें कर बैठ गये।

लोगोंने उस क्षण शास्ताको न देखा।

"चित्रकूटको गये, या कैलाश या युगन्धरको? लोक-ज्येष्ठ नर-पुङ्गव संबुद्धको अब हम नहीं देख पायेंगे।" यह गाथा कहते हुये लोग रोने-काँदने लगे। किन्हीं किन्होंने (कहा)—'शास्ता तो एकांत-प्रिय हैं, ऐसी परिषद्के लिये ऐसा प्रातिहार्य किया' इस लज्जासे दूसरे नगर, राष्ट्र या जनपदको चले गये होंगे। तो अब उनको कहाँ देखेंगे" (कह) रोते हुए ये इस गाथाको बोले—

"एकांत-प्रेमी धीर इस लोकमें फिर न आयेंगे।
लोक-ज्येष्ठ नरपुंगव संबुद्धको (अब) हम न देख पायेंगे।"

उन्होंने महामौद्गल्यायनसे पूछा—"भन्ते, शास्ता कहाँ हैं?" वह स्वयं जानते हुये भी 'दूसरेकी भी करामात प्रकट हो' इस विचारसे—'अनुरुद्धको पूछो'—बोले। लोगोंने स्थविरसे वैसेही पूछा—"भन्ते, शास्ता कहां हैं?"

"त्रयस्त्रिंश-भवन (=इन्द्रलोक) में पांडु-कम्बल-शिलापर वर्षा-वास कर, माताको अभिधर्म-पिटक उपदेश करने गये।"

"भन्ते! कब आयेंगे?"

"तीन महीने तक अभिधर्मका उपदेश कर, महा-प्रवारणा(=आश्विन-पूर्णिमा)के दिन"।

हम शास्ताको बिना देखे न जायेंगे—यह (निश्चय कर) उन्होंने वहीं छावनी (=स्कंधावार) डाली। आकाश उनकी छत हुई। उतने बड़े जमावड़े (=परिषद्) में शरीरसे चला भी न मालूम हुआ, पृथ्वीने विवर (=छेद) कर दिया। (वहां) सर्वत्र पृथ्वी-तल परिशुद्ध था। शास्ताने पहिलेही महा-मौद्गल्यायनसे कह दिया था—"महामौद्गल्यायन! तू इस परिषद्को धर्म-देशना करना। चुल्ल (= छोटा) अनाथपिंडक आहार देगा।" इस लिये उन तीन मासों तक चुल्ल अनाथपिंडकने ही उस परिषद्को यागू (=खिचड़ी), भात, खाद्य, ताम्बूल, गन्ध, माला, और आभूषण दिये। महा मौद्गल्यायनने धर्मोपदेश किया। प्रातिहार्य देखनेके लिये आये हुओं द्वारा पूछे प्रश्नोंका भी उत्तर दिया। माताको अभि-धर्म-पिटक उपदेश करनेके लिये पांडु-कम्बल शिलापर वर्षावास करते हुए, शास्ताको दस हजार चक्रवालोंके देवता घेरे हुये थे। इसीलिये कहा है—

'त्रयस्त्रिंशमें जब पुरुषोत्तम बुद्ध पांडु-कम्बल-शिलापर,
पारिछत्रकके नीचे विहार कर रहे थे॥
दसों लोक-धातुओंके देवता जमा होकर,
नग-अग्रतलपर वास करते, संबुद्धकी सेवा करते थे॥

संबुद्धके वर्ण (=शरीर-प्रभासे) अभिभावित हो कोईभी देवता न चमकता था,
सब देवताओंको अभिभावितकर (उस समय) संबुद्धही चमक रहे थे ॥'

इस प्रकार सभी देवताओंको अपनी शरीर-प्रभासे अभिभावितकर बैठे हुये (शास्ता) के दक्षिण ओर, [1]तुषित-देवविमानसे आकर माता (माया-देवी) बैठीं।...

तब शास्ताने देव-परिषद्के बीचमें बैठी माताको—"कुशल धर्म, अकुशल धर्म, अव्याकृत (=अ-कथित) धर्म (...) अभिधर्म-पिटकको आरम्भ किया। इस प्रकार तीन मास निरन्तर अभिधर्म-पिटकको कहा। कहते हुये भिक्षाचारके समय—"जब तक मैं आऊँ तब तक इतना धर्म उपदेश करो" (कह) [3]निर्मित-बुद्ध बना, हिमवान्में जा, नागलताकी दाँतवनसे (दाँतवन) कर, अनवतप्त दह (=मान-सरोवर) में मुँह धो, उत्तर-कुरुसे पिंड-पात (=भिक्षा) ले आ, [4]महाशाल-मालकमें बैठ भोजन करते। सारिपुत्र स्थविरके जानेपर वहां शास्ता भोजन कर स्थविरको कहते—"सारिपुत्र! आज मैंने इतना धर्म कहा है, उसे तू अपने अधीन पाँचसौ भिक्षुओंको पढ़ा।"—यमक-प्रातिहार्यके समय प्रसन्न हो पाँच सौ भिक्षु स्थविरके पास प्रव्रजित हुए थे, उन्हीं, पाँच सौके बारेमें शास्ताने वैसा कहा। फिर देवलोकमें जा निर्मित बुद्ध-द्वारा कहेसे आगे स्वयं धर्म उपदेश करते। स्थविरभी जाकर उन पाँच सौ भिक्षुओंको धर्म-उपदेश करते। वह (पाँच सौ भिक्षु) शास्ताके देवलोकमें वास करते समय ही [5]सप्तप्राकरणिक हो गये।

शास्ताने इसी प्रकार तीन मासतक अभिधर्मपिटक उपदेश किया। देशनाकी समाप्तिपर अस्सी-करोड़-हजार प्राणियोंको धर्माभिसमय (=धर्म-दीक्षा) हुआ। महामाया भी स्रोतआपत्ति-फलमें प्रतिष्ठित हुईं।

छत्तीस योजनके घेरेमें (इकट्ठी हुई) परिषद्ने—'अब सातवें दिन प्रवारणा होगी' (जान), महामौद्गल्यायन स्थविरके पास जाकर कहा—

"भन्ते! शास्ताके उतरनेका दिन जानना चाहिये। बिना देखे हम नहीं जायेंगे।"

आयुष्मान् मौद्गल्यायनने इस बातको सुन—'अच्छा आवुसो!' कह, वहीं पृथिवीमें डूब—'परिषद् मुझे सुमेरु (पर्वत) पर चढ़ते हुये देखे' यह अधिष्ठान (=योग-संबंधी संकल्प) कर, मणि-रत्नसे आच्छादित पाण्डुकंबलके सूत्रकी भाँति, रूप दिखाते, सुमेरुके बीचमें चढ़े। मनुष्योंने भी 'एक योजन चढ़े', 'दो योजन चढ़े' उन्हें देखा। स्थविरने भी शिरके बल ऊपर-फेंके-जातेकी भाँति आरोहण कर, शास्ताके चरणकी वन्दना कर यों कहा—

"भन्ते! परिषद् आपको बिना देखे नहीं जाना चाहती, आप कहाँ उतरेंगे?"

"महामौद्गल्यायन! *मेरा ज्येष्ठ-भ्राता सारि-पुत्र कहाँ है?*"

"[6]संकाश्य-नगरके द्वारपर वर्षा-वासके लिये गये।"

"मौद्गल्यायन! मैं आजसे सातवें दिन महाप्रवारणाको संकाश्य-नगरके द्वारपर

---

१. इन्द्रलोकसे भी ऊपरका एक लोक। २. अभिधर्मपिटक, धम्म-संगनी। ३. योग-मायासे निर्मित बुद्ध-रूप। ४. देवलोकका कोई बंगला।

५. अभिधर्म-पिटकके सातों ग्रंथ सप्त-प्रकरण कहे जाते हैं। ६. संकिसा-बसंतपुर, स्टेशन मोटा, मैनपुरी, उत्तर प्रदेश।

उतरूँगा। मुझे देखनेकी इच्छावाले वहाँ आवें। श्रावस्तीसे संकाश्य-नगर तीस योजन है। इतने रास्तेके लिये किसीको पाथेयका काम नहीं। उपोसथिक (=उपवास रखनेवाले) हो, स्थानीय विहारमें धर्म (=उपदेश) सुननेके लिये जाते हुये की भाँति आवें"—यह उनको कहा।

स्थविरने 'अच्छा भन्ते!' (कह) जाकर वैसे ही कह दिया।

देवावरोहण—शास्ताने वर्षा-वास समाप्तकर, प्रवारणा (=पारन) कर शक्रको कहा—"महाराज, मनुष्य-पथ (=मनुष्य-लोक) को जाऊँगा"। शक्रने सुवर्ण-मय, मणि-मय, रजत-मय, तीन सोपान बनवाये, जिनके पैर संकाश्य-नगरके द्वारपर प्रतिष्ठित थे, और सीस सुमेरुके शिखरपर। उनमें दक्षिण ओरका स्वर्ण-सोपान देवताओंके लिये था, बाईं ओरका रजत-सोपान महाब्रह्मोंके लिये और बीचका मणि-सोपान तथागतके लिये। शास्ताने भी सुमेरु-शिखरपर खड़े हो, देवावरोहण यमक-प्रातिहार्य कर, ऊपर अवलोकन किया; सभी ब्रह्मलोक एक-आँगन (से) हो गये। नीचे अवलोकन किया; अवीचि (नर्क) तक एक-आँगन हो गया। दिशाओं और अनु-दिशाओंकी ओर अवलोकन किया, सौ-हजार चक्रवाल एक-आँगन हो गये। (उस समय) देवताओंने मनुष्योंको देखा, मनुष्योंने भी देवताओंको देखा। भगवान् ने छ वर्ण (=रंग) की रश्मियाँ छोड़ीं। उस दिन बुद्धकी श्री (=शोभा) को देख, छत्तीस योजन लम्बी परिषद्में एक भी ऐसा न था; जो बुद्धत्वकी चाहना न करता हो, न रखता हो। (तब) सुवर्ण-सोपानसे देवता उतरे, मणि-सोपानसे सम्यक्-संबुद्ध उतरे। पंचशिख गंधर्व-पुत्र बेलुवपंडु-वीणा (=बेलुकी स्याह-वीणा) ले दाहिनी ओर खड़ा, शास्ताकी गंधर्व-पूजा (=संगीतसे पूजा) करते हुए उतर रहा था। मातली संग्राहक बाईं ओर खड़े हो, दिव्य गंध-माला-पुष्प ले, नमस्कार पूजा करते हुए उतर रहा था। महाब्रह्मा छत्र लगाये थे, और सुयाम (देव-पुत्र) बाल-व्यजनी (=मोरछल)। शास्ता ऐसे परिवार (=अनुचर-गण) के साथ उतरकर, संकाश्य नगरके द्वारपर खड़े हुये। सारिपुत्र स्थविरने भी आकर शास्ताको वन्दनाकरते—क्योंकि इससे पूर्व ऐसी बुद्ध-श्रीके साथ उतरते शास्ताको न देखा था, इसलिये—

> "इससे पूर्व किसीका न ऐसा देखा, न सुना।
> *ऐसे मधुर-भाषी शास्ता तुषित (लोक) से (अपने) गणमें आये॥"*

आदिसे अपने संतोषको प्रकाशित करते—"भन्ते! आज सभी देव, और मनुष्य आपकी स्पृहा और प्रार्थना करते हैं" कहा। तब शास्ताने—"सारिपुत्र! ऐसे ही गुणोंसे युक्त बुद्ध, देवों और मनुष्योंके प्रिय होते हैं" कह, धर्म-देशना करते इस गाथाको कहा—

> "जो ध्यानमें तत्पर, धीर, निष्कर्मता और उपशममें रत हैं।
> उन स्मृतिवाले संबुद्धोंको देवता भी चाहते हैं॥"

…देशनाके अन्तमें तीस करोड़ प्राणियोंको धर्म-दीक्षा हुई। स्थविर (सारिपुत्र) के शिष्य पाँच-सौ भिक्षु अर्हत्-पदको प्राप्त हुये।

यमक-प्रातिहार्य कर, देवलोकमें वर्षा-वासकर, संकाश्य नगर-द्वारपर उतरना, (सभी) बुद्धोंसे अपरिहार्य है। यहाँ (संकाश्यमें) दाहिने पैरके रखनेके स्थानका नाम "अचल-चैत्य" है……।

+ + + +

(१९)

छ शास्ताओंकी सर्वज्ञता । कुछ भिक्षु–नियम । (ई० पू० ५२१)

(जटिल)-सुत्त ।

'ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीसे अनाथ पिंडकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। तब राजा प्रसेनजित कौसल जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर कुशल-प्रश्न पूछ एक ओर बैठ⋯भगवान्‌से बोला—

"हे गौतम ! आप भी तो 'अनुत्तर (=सर्वोत्तम) सम्यक् संबोधि' (=परमज्ञान) को जान लिया' यह दावा करते हैं ?"

"महाराज ! 'अनुत्तर सम्यक् सम्बोधिको जान लिया, यह ठीकसे बोलनेपर, मेरे ही लिये बोलना चाहिये ।"

"हे गौतम ! वह जो श्रमण-ब्राह्मण संघके अधिपति, गणाधिपति, गणके आचार्य, ज्ञात (=प्रसिद्ध), यशस्वी, तीर्थंकर (=पन्थ चलनेवाले), बहुत जनों द्वारा साधु-सम्मत (=अच्छे माने जानेवाले) हैं, जैसे—पूर्ण काश्यप, मक्खली (=मस्करी) गोशाल, निगंठ नाट-पुत्त (=निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र), संजय बेलट्ठिपुत्त, प्रकुध कात्यायन, अजित केशकम्बली,- वह भी '(क्या आपने) अनुत्तर सम्यक्-संबोधिको जान लिया, यह दावा करते हैं' पूछनेपर, 'अनुत्तर ०सम्बोधिको जान लिया' यह दावा नहीं करते । फिर जन्मसे अल्प-वयस्क, और प्रव्रज्यामें नये, आप गौतमके लिये तो क्या कहना है ?"

"महाराज ! चारको अल्प-वयस्क (=दहर) न जानना चाहिये, 'छोटे (=दहर) हैं' (समझकर) परिभव (=तिरस्कार) न करना चाहिये । कौनसे चार ? महाराज ! क्षत्रियको दहर न जानना चाहिये । सर्पको० । अग्निको० । भिक्षुको० ! इन चारको महाराज ! दहर न समझना चाहिये० । यह कहकर शास्ताने फिर यह भी कहा ।—

"कुलीन, उत्तम, यशस्वी, क्षत्रियको, दहर करके, आदमी उसका अपमान और तिरस्कार न करे । हो सकता है राज्य-प्राप्त कर, वह मनुजेन्द्र क्षत्रिय, क्रुद्ध हो राज-दण्डसे पराक्रम करे ॥ इसलिये अपने जीवनकी रक्षाके लिये उससे अलग रहना चाहिये । गांव या अरण्यमें जहां सांपको देखे, दहर करके, आदमी उसका अपमान और तिरस्कार न करे ॥ नाना प्रकारके रूपोंसे उरग (=सांप) तेजमें विचरता है । वह समय पाकर नर, नारी, बालकको डँस लेगा ॥ इसलिये अपने जीवन की रक्षाके लिये उससे अलग रहना चाहिये । बहु-भक्षी ज्वाला-युक्त पावक=कृष्णवर्त्मा (=काले मार्गवाला, आग) को दहर करके, आदमी उसका अपमान और तिरस्कार न करे ॥ उपादान (=सामग्री) पा, बड़ा होकर वह आग समय पाकर, नर नारीको जला देगी । इसलिये अपने जीवनकी रक्षाके लिये उससे अलग रहना चाहिये ॥ पावक=कृष्ण-वर्त्मा = अग्नि...वनको जला देता है । (लेकिन) अहोरात्र बीतनेपर वहां अंकुर उत्पन्न हो जाते हैं ॥ लेकिन जिसको सदाचारी भिक्षु (अपने) तेजसे जलाता है ।

---

१. सं० नि ३:१:१ ।

उतरूँगा। मुझे देखनेकी इच्छावाले यहाँ आवें। श्रावस्तीसे संकाश्य-नगर तीस योजन है। इतने रास्तेके लिये किसीको पाथेयका काम नहीं। उपोसथिक (=उपवास रखनेवाले) हो, ग्यारी विहारमें धर्म (=उपदेश) सुननेके लिये जाते हुये की भाँति आवें"—यह उनको कहा।

स्थविरने 'अच्छा भन्ते !' (कह) जाकर वैसे ही कह दिया।

देवावरोहण—शास्ताने वर्षा-वास समाप्तकर, प्रवारणा (=पारन) कर शक्रको कहा—"महाराज, मनुष्य-पथ (=मनुष्य-लोक) को जाऊँगा"। शक्रने सुवर्ण-मय, मणि-मय, रजत-मय, तीन सोपान बनवाये, जिनके पैर संकाश्य-नगरके द्वारपर प्रतिष्ठित थे, और सीस सुमेरुके शिखरपर। उनमें दक्षिण ओरका स्वर्ग-सोपान देवताओंके लिये था, बाइं ओरका रजत-सोपान महाब्रह्मोंके लिये और बीचका मणि-सोपान तथागतके लिये। शास्ताने भी सुमेरु-शिखरपर खड़े हो, देवावरोहण यमक-प्रातिहार्य कर, ऊपर अवलोकन किया; नवों ब्रह्मलोक एक-आँगन (से) हो गये। नीचे अवलोकन किया; अवीचि (नर्क) तक एक-आँगन हो गया। दिशाओं और अनु-दिशाओंकी ओर अवलोकन किया, सौ-हजार चक्रवाल एक-आँगन हो गये। (उस समय) देवताओंने मनुष्योंको देखा, मनुष्योंने भी देवताओंको देखा। भगवान् ने छ वर्ण (=रंग) की रश्मियाँ छोड़ीं। उस दिन बुद्धकी श्री (=शोभाको) देख, छत्तीस योजन लम्बी परिषद्में एक भी ऐसा न था; जो बुद्धत्वकी चाहना न करता हो, न रखता हो। (तब) सुवर्ण-सोपानसे देवता उतरे, मणि-सोपानसे सम्यक्-संबुद्ध उतरे। पंचशिख गंधर्व-पुत्र वेलुवपंडु-वीणा (=वेणुकी लाल-वीणा) ले दाहिनी ओर खड़ा, शास्ताकी गंधर्व-पूजा (=संगीतसे पूजा) करते हुए उतर रहा था। मातली संग्राहक बाइं ओर खड़े हो, दिव्य गंध-माला-पुष्प ले, नमस्कार पूजा करते हुए उतर रहा था। महाब्रह्मा छत्र लगाये थे, और सुयाम (देव-पुत्र) बाल-व्यजनी (=मोरछल)। शास्ता ऐसे परिवार (=अनुचर-गण) के साथ उतरकर, संकाश्य नगरके द्वारपर खड़े हुये। सारिपुत्र स्थविरने भी आकर शास्ताको वन्दनाकरते—क्योंकि इससे पूर्व ऐसी बुद्ध-श्रीके साथ उतरते शास्ताको न देखा था, इसलिये—

"इससे पूर्व किसीका न ऐसा देखा, न सुना।
ऐसे मधुर-भाषी शास्ता तुषित (लोक) से (अपने) गणमें आये॥"

आदिसे अपने संतोषको प्रकाशित करते—"भन्ते! आज सभी देव, और मनुष्य आपकी स्पृहा और प्रार्थना करते हैं" कहा। तब शास्ताने—"सारिपुत्र! ऐसे ही गुणोंसे युक्त बुद्ध, देवों और मनुष्योंके प्रिय होते हैं" कह, धर्म-देशना करते इस गाथाको कहा—

"जो ध्यानमें तत्पर, धीर, निष्कर्मता और उपशममें रत हैं।
उन स्मृतिमान् संबुद्धोंको देवता भी चाहते हैं॥"

...देशनाके अन्तमें तीस करोड़ प्राणियोंको धर्म-दीक्षा हुई। स्थविर (सारिपुत्र) के शिष्य पाँच-सौ भिक्षु अर्हत्-पदको प्राप्त हुये।

यमक-प्रातिहार्य कर, देवलोकमें वर्षा-वासकर, संकाश्य नगर-द्वारपर उतरना, (सभी) संबुद्धोंमें अचल्य है। यहाँ (संकाश्यमें) दाहिने पैरके रखनेके स्थानका नाम "अचल-चैत्य" है......।

\+ + + +

(१९)

छ शास्ताओंकी सर्वज्ञता । कुछ भिक्षु–नियम । (ई० पू० ५२१)

(जटिल)-सुत्त ।

'ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीसे अनाथ पिंडकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। तब राजा प्रसेनजित कौसल जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर कुशल-प्रश्न पूछ एक ओर बैठ" भगवान्से बोला—

"हे गौतम ! आप भी तो 'अनुत्तर (=सर्वोत्तम) सम्यक् संबोधि' (=परमज्ञान) को जान लिया' यह दावा करते हैं ?"

"महाराज ! 'अनुत्तर सम्यक् सम्बोधिको जान लिया, यह ठीकसे बोलनेपर, मेरे ही लिये बोलना चाहिये ।"

"हे गौतम ! वह जो श्रमण-ब्राह्मण संघके अधिपति, गणाधिपति, गणके आचार्य, ज्ञात (=प्रसिद्ध), यशस्वी, तीर्थंकर (=पन्थ चलनेवाले), बहुत जनों द्वारा साधु-सम्मत (=अच्छे माने जानेवाले) हैं, जैसे—पूर्ण काश्यप, मक्खली (=मस्करी) गोशाल, निगंठ नाट-पुत्त (=निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र), संजय बेलट्ठिपुत्त, प्रकुध कात्यायन, अजित केशकम्बली,– वह भी '(क्या आपने) अनुत्तर सम्यक्-संबोधिको जान लिया, यह दावा करते हैं' पूछनेपर, 'अनुत्तर ०सम्बोधिको जान लिया' यह दावा नहीं करते। फिर जन्मसे अल्प-वयस्क, और प्रव्रज्यामें नये, आप गौतमके लिये तो क्या कहना है ?"

"महाराज ! चारको अल्प-वयस्क (=दहर) न जानना चाहिये, 'छोटे (=दहर) हैं' (समझकर) परिभव (=तिरस्कार) न करना चाहिये। कौनसे चार ? महाराज ! क्षत्रियको दहर न जानना चाहिये । सर्पको० । अग्निको० । भिक्षुको० ! इन चारको महाराज ! दहर न समझना चाहिये० । यह कहकर शास्ताने फिर यह भी कहा ।—

"कुलीन, उत्तम, यशस्वी, क्षत्रियको, दहर करके, आदमी उसका अपमान और तिरस्कार न करे । हो सकता है राज्य-प्राप्त कर, यह मनुजेन्द्र क्षत्रिय, क्रुद्ध हो राज-दण्डसे पराक्रम करे ॥ इसलिये अपने जीवनकी रक्षाके लिये उससे अलग रहना चाहिये । गांव या अरण्यमें जहां सांपको देखे, दहर करके, आदमी उसका अपमान और तिरस्कार न करे ॥ नाना प्रकारके रूपोंसे उरग (=सांप) तेजमें विचरता है । वह समय पाकर नर, नारी, बालकको डँस लेगा ॥ इसलिये अपने जीवन की रक्षाके लिये उससे अलग रहना चाहिये । बहु-भक्षी ज्वाला-युक्त पावक=कृष्णवर्त्मा (=काले मार्गवाला, आग) को दहर करके, आदमी उसका अपमान और तिरस्कार न करे ॥ उपादान (=सामग्री) पा, बड़ा होकर यह आग समय पाकर, नर नारीको जला देगी । इसलिये अपने जीवनकी रक्षाके लिये उससे अलग रहना चाहिये ॥ पावक=कृष्ण-वर्त्मा = अग्नि...वनको जला देता है । (लेकिन) अहोरात्र बीतनेपर वहाँ अंकुर उत्पन्न हो जाते हैं ॥ लेकिन जिसको सदाचारी भिक्षु (अपने) तेजसे जलाता है ।

---

१. सं० नि ३:१:१ ।

उसके पुत्र, पशु (तक) नहीं होते, दायाद भी धन नहीं पाते ॥ सन्तान-रहित दायाद-रहित शिरकटे ताल जैसा वह होता है ॥ इसलिये पंडितजन अपने हितको जानते हुए, भुजंग, पावक यशस्वी क्षत्रिय; और शील सम्पन्न (=सदाचारी) भिक्षु के (साथ), अच्छी तरह वर्ताव करें ॥"

ऐसा कहने पर राजा प्रसेनजित् कोसलने भगवान्से कहा।—

"आश्चर्य ! भन्ते !! आश्चर्य ! भन्ते !! जैसे भन्ते ! औंधेको सीधा करदे ० । ० मुझे उपासक धारण करें।"

× × × ×

[1]यह छ शास्ता.......आचार्योंकी सेवाकर चिन्तामणि आदि विद्याओंको पढ़कर 'हम बुद्ध हैं' यह दावा करते, बहुतसे लोग-बाग ले, देश-देशान्तरमें विचरते, क्रमशः श्रावस्ती पहुँचे। उनके भक्तोंने राजाके पास जाकर कहा—"महाराज ! पूर्ण काश्यप.....अजित केशकम्बली, बुद्ध हैं, सर्वज्ञ हैं।"

राजाने कहा—"तुम उन्हें निमंत्रित कर ले आओ।"

उन्होंने आकर कहा—"राजा आप लोगोंको निमंत्रित कर रहे हैं, (आप) राजाके घर भिक्षा ग्रहण करें।"

वह जानेका साहस न करते थे। बार बार कहने पर, भक्तोंके मनको रखनेके लिये, स्वीकारकर सभी एक साथ ही गये। राजाने आसन बिछवाकर 'बैठिये' कहा। निर्गुणोंके शरीरमें राज-तेज छा जाता है; (इसलिये) वह बहु-मूल्य आसनोंपर बैठनेमें असमर्थ हो, धरतीपर ही बैठ गये। राजाने—'इतने हीसे इनके भीतर शुक्ल-धर्म नहीं है—' कह, बिना भोजन प्रदान किये; तालके गिरेको मुंगरेसे पीटते हुए की भांति—"तुम बुद्ध हो, (या) बुद्ध नहीं हो ?" पूछा। उन्होंने सोचा—यदि बुद्ध हैं, कहें तो राजा बुद्धके विषयमें प्रश्न पूछेगा, न कह सकने पर—तुम लोग 'हम बुद्ध हैं, (कहकर) लोगोंको ठगते फिरते हो— (कह) जिह्वा भी कटवा सकता है, दूसरा भी अनर्थ कर सकता है। इसलिये दावा करके भी 'हम बुद्ध नहीं हैं' उत्तर दिया। तब राजाने उन्हें घरसे निकलवा दिया।

राज-घरसे निकलने पर भक्तोंने पूछा—"क्यों आचार्यो ! राजाने तुमसे प्रश्न पूछकर, सन्मान किया ?"

"राजाने 'तुम बुद्ध हो' पूछा, तब हमने—'यदि राजा बुद्धके विषयमें प्रश्नव्याख्यान को न जानते हुये, हमलोगोंके प्रति मनको दूषित करेगा, तो बहुत पाप करेगा' सोच राजा-पर दयाकर, हमने 'हम बुद्ध नहीं हैं' कहा। हम तो बुद्ध ही हैं, हमारा बुद्धत्व तो पानीसे धोनेसे भी नहीं जा सकता।"......

× × × ×

[2]उस समय बुद्ध भगवान् राजगृहमें विहार करते थे। उस समय छ वर्गीय भिक्षु नहाते हुये वृक्षसे शरीरको भी रगड़ते थे, जंघाको, बाहुको, छातीको, पेटको भी। लोग खिन्न होते, धिक्कारते थे—कैसे यह शाक्य-पुत्रीय श्रमण नहाते हुये वृक्षसे०, जैसे कि मल्ल (=पहलवान) और मालिश

१. सं. नि. अ. क ३: १: १ । २. विनय-पिटक, चुल्लवग्ग ५ ।

करनेवाले'।...। भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ! नहाते हुये भिक्षुको वृक्षसे शरीर न रगड़ना चाहिये, जो रगड़े उसको 'दुष्कृत' की आपत्ति है।"

..."भिक्षुओ! बाली नहीं धारण करनी चाहिये, साँकल०, कंठ-सूत्र०, कटि-सूत्र०, ओवट्टिक (=कटि-भूषण)०, केयूर०, हाथका आभरण०, अंगुलीकी अंगूठियाँ न धारण करनी चाहिये, जो धारण करे (उसे) दुष्कृतकी आपत्ति है।"

...'लम्बे केश नहीं रखने चाहिये। ०'दुष्कृत' की आपत्ति०। दो महीनेके (केश) या दो अंगुल लम्बेकी, अनुज्ञा देता हूँ।...

..."दर्पण या जल-पात्रमें मुँह न देखना चाहिये। ०'दुष्कृत'०।"

..."रोगसे (पीड़ितको) दर्पण या जल-पात्रमें मुँह देखनेकी अनुज्ञा देता हूँ।"...

उस समय **राजगृहमें गिरग्ग-समज्या**[1] (=गिरग्गसमज्जा) होती थी; छवर्गीय भिक्षु **गिरग्ग-समज्जा** देखने गये। लोग खिन्न होते धिक्कारते...।..."नाच, गीत, बाजा देखनेको न जाना चाहिये।...'दुष्कृत'...।

उस समय छवर्गीय भिक्षु लम्बे गीतके स्वरसे धर्म (=सूत्र) को गाते थे। लोग खिन्न होते धिक्कारते—कैसे **शाक्य-पुत्रीय** श्रमण लम्बे गीत-स्वरसे धर्मको गाते हैं।...। भगवान्‌ने ...धिक्कारकर...संबोधित किया—

"भिक्षुओ! लम्बे गीत-स्वरमें धर्मको गानेमें यह पाँच बुराइयाँ हैं—(१) स्वयं भी उस स्वरमें स-राग होता है, (२) दूसरे भी०, (३) गृहस्थ भी खिन्न होते हैं, (४) अलाप लेने वालेकी (=सरकुत्तिम्पि निकामयमानस्स) समाधिका भंग होता है, (५) आनेवाली जनता भी देखेका अनुगमन करती है। भिक्षुओ! लम्बे गीतस्वरमें यह०। ०लम्बे गीत स्वरसे धर्म न गाना चाहिये।...दुष्कृत...। [2]स्वरभण्यकी अनुज्ञा देता हूँ।

भगवान् क्रमशः चारिका करते जहाँ **वैशाली** थी वहाँ पहुँचे। वहाँ वैशालीमें भगवान् **महावनकी कूटागारशालामें** विहार करते थे।...

..."भिक्षुओ! मशक-कुटी (=मकसकुटी=मसहरी) की अनुज्ञा देता हूँ।"

उस समय वैशालीमें उत्तम भोजनोंका...(निरंतर निमंत्रण रहता था), भिक्षु...बहुत रोगी...हो रहे थे। **जीवक कौमारभृत्य** किसी कामसे वैशाली आया था। जीवक० ने भिक्षुओंको...बहुत रोगी देख...भगवान्‌को अभिवादन कर...कहा—

"भन्ते! इस समय भिक्षु...बहुत रोगी हो रहे हैं। भन्ते! अच्छा हो यदि भगवान् [3]चंकम और [4]जन्ताघरकी अनुज्ञा दें, इस प्रकार भिक्षु निरोग रहेंगे।"...

"भिक्षुओ! चंकम और जन्ताघरकी अनुज्ञा देता हूँ।"...

"चंकमण-वेदिका० अनुज्ञा देता हूँ।"..................

[5]वैशालीमें इच्छानुसार विहारकर, भगवान् जिधर [6]भर्ग (=भर्गोंका देश) था, उधर चारिकाको चले।...। वहाँ भगवान् भर्गमें **सुंसुमारगिरिके भेसकलावन मृगदावमें** विहार करते थे।

---

१. समज्या=समाज=मेला=तमाशा। २. वैदिकोंकी भाँति सस्वरपाठ। ३. टहलना और टहलनेका चबूतरा। ४. स्नान-गृह। ५. चुल्ल-वग्ग ५. ६. बनारस, मिर्जापुर, इलाहाबाद जिलोंके गंगाके दक्षिणवाले प्रदेशका कितनाही भाग, जहां चुनार (सुंसुमारगिरि) है।

द्वितीय-खण्ड ।

(१)

भिक्षु-संघमें कलह । पारिलेयक-गमन । (ई. पू. ५२०-१९)

[1]उस समय भगवान् कौशाम्बीके घोषितारामर्में विहार करते थे। (तब) किसी भिक्षुको 'आपत्ति' (=दोष) हुई थी। वह उस आपत्तिको आपत्ति समझता था; दूसरे भिक्षु उस आपत्तिको अनापत्ति समझते थे। (फिर) दूसरे समय वह (भी) उस आपत्तिको अनापत्ति समझने लगा; और दूसरे भिक्षु उस आपत्तिको आपत्ति समझने लगे। तब उन भिक्षुओंने उस भिक्षुसे कहा—"आवुस ! तुम जो आपत्ति किये हो, उस आपत्तिको देख (मान) रहे हो ?" "आवुसो ! मुझे 'आपत्ति' ही नहीं; किसको मैं देखूं ?" तब उन भिक्षुओंने जमा हो, ...'आपत्ति न देखनेके लिये, उस भिक्षुका '[2]उत्क्षेपण' किया। वह भिक्षु, बहु-श्रुत[3]आगमज्ञ, धर्म-धर, विनय-धर, [4]मात्रिका-धर, पंडित=व्यक्त, मेधावी, लज्जी, आस्थावान् सीखनेवाला था। उस भिक्षुने संभ्रान्त भिक्षुओंके पास जाकर कहा—"हे आवुसो ! यह अनापत्ति है आपत्ति नहीं। मैं आपत्ति-रहित हूँ, इसे मुझे (वह लोग) आपत्ति-सहित (कहते हैं) । मैं 'उत्क्षेपण'-रहित (=अनुत्क्षिप्त) हूँ, मुझे (उन्होंने) उत्क्षिप्त किया। अधार्मिक=कोप्य स्थानमें अनुचित निर्णय (=कर्म) द्वारा उत्क्षिप्त किया गया हूँ। आयुष्मान् (लोग) धर्मके साथ विनयके साथ मेरा पक्ष ग्रहण करें।" (तब) सभी जानकार संभ्रांत भिक्षुओंको उसने पक्षमें पाया। जानपद (=दीहाती) जानकार और संभ्रान्त भिक्षुओंके

---

१. महावग्ग १० की अट्ठकथामें है—

"एक संघाराममें दो भिक्षु—एकविनयधर (=विनपिटक-पाठी), दूसरा सौत्रान्तिक (= सूत्रपिटक-पाठी) वास करते थे। उनमें सौत्रान्तिक एक दिन पाखानेमें जा, शौचके बचे जलको वर्तनमें ही छोड़ चला आया। विनयधर पीछे पाखाने गया। वर्तनमें पानी देखकर, उस भिक्षुसे पूछा—'आवुस ! तुमने इस जलको छोड़ा है ?' 'हां, आवुस !' 'तुम इसमें आपत्ति (=दोष) नहीं समझते ?' 'हां; नहीं समझता'। 'आवुस ! यहां आपत्ति होती है।' 'यदि होती है, तो (प्रति-) देशना (=क्षमापन) करूँगा।' 'यदि तुमने विना जाने, भूलसे किया, तो आपत्ति नहीं है'। वह उस आपत्तिको अनापत्ति समझता था। विनयधरने भी अपने अनुयायियोंको कहा—"यह सौत्रान्तिक 'आपत्ति' करके भी नहीं समझता"। वह उस (सौत्रान्तिक) के अनुयायियोंको देखकर कहते—"तुम्हारा उपाध्याय आपत्ति करके भी 'आपत्ति हुई', नहीं जानता।" वह कहते—"पर विनयधर पहिले अनापत्ति बतला अब आपत्ति कहता है, वह मिथ्या-वादी है।" उन्होंने कहा-'तुम्हारा उपाध्याय मिथ्या-वादी है !' इस प्रकार कलह बढ़ी।" २. एक प्रकार का दण्ड। ३. सूत्रपिटकके दीघ-निकाय आदि पांच निकाय 'आगम' भी कहे जाते हैं। ४. अति-संक्षिप्त अभिधर्म।

पास भी दूत भेजा। जानपद जानकार और संभ्रान्त भिक्षुओंको भी पक्षमें पाया। वह उत्क्षिप्त भिक्षुके पक्षवाले भिक्षु, जहाँ उत्क्षेपक थे वहाँ गये। जाकर उत्क्षेपक भिक्षुओंसे बोले— "यह अनापत्ति है आवुसो! आपत्ति नहीं। यह भिक्षु आपत्ति-रहित है, आपत्ति-सहित (=आपन्न) नहीं, अनुत्क्षिप्त है···उत्क्षिप्त नहीं। यह अ-धार्मिक ० कर्म (=अभियोग) से उत्क्षिप्त किया गया है।" ऐसा कहनेपर उत्क्षेपक भिक्षुओंने उत्क्षिप्त भिक्षुके पक्षवालोंसे कहा—'आवुसो! यह आपत्ति है, अनापत्ति नहीं। यह भिक्षु आपन्न है, अनापन्न नहीं। यह भिक्षु उत्क्षिप्त है, अनुत्क्षिप्त नहीं। यह धार्मिक=अकोप्य=स्थानीय कर्म द्वारा उत्क्षिप्त हुआ है। आयुष्मानो! आप लोग इस उत्क्षिप्त भिक्षुका अनुवर्तन=अनुगमन न करें।" उत्क्षिप्तके पक्षवाले भिक्षु, उत्क्षेपक भिक्षुओं द्वारा ऐसा कहे जानेपर भी; उत्क्षिप्त भिक्षुका वैसे ही अनुवर्तन=अनुगमन करते रहे।

\+ \+ \+ ×

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् [1]कोशाम्बीके घोषितराममें विहार करते थे। उस समय कौशाम्बीमें भिक्षु भंडन करते, कलह करते, विवाद करते, एक दूसरेको मुख (रूपी) शक्ति (=हथियार) से बेधते फिरते थे। तब कोई भिक्षु, जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर, एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े हुये उस भिक्षुने भगवान् से यों कहा—"यहाँ कोशाम्बीमें भन्ते! भिक्षु भंडन करते, कलह करते, विवाद करते एक दूसरेको मुखशक्तिसे बेधते फिरते हैं। अच्छा हो यदि भन्ते! भगवान्, जहाँ वह भिक्षु हैं, वहाँ चलें।"

भगवान्‌ने मौनसे उसे स्वीकार किया। तब भगवान् जहाँ वह भिक्षु थे, वहाँ गये। जाकर उन भिक्षुओंसे बोले—

"बस भिक्षुओ! भंडन, कलह, विग्रह, विवाद (मत) करो।"

ऐसा कहनेपर एक भिक्षुने भगवान्‌को कहा—

"भन्ते! भगवान्! धर्म-स्वामी! रहने दें। पर्वाह मत करें। भन्ते! भगवान्! धर्म-स्वामी! दृष्ट-धर्म (इसी जन्म) के सुखके साथ विहार करें। हम इस भंडन कलह विग्रह विवादसे (स्वयं निपट लेंगे)।

दूसरीबार भी भगवान्‌ने उन भिक्षुओंसे कहा—"बस भिक्षुओ० ! ०'।०। तीसरी बार भी भगवान् ०।०।

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय (सुख) पहनकर पात्र-चीवर ले कौशाम्बीमें भिक्षाचार कर, भोजन कर पिंड-पातसे उठ, आसन समेट, पात्र चीवर ले, खड़ेही खड़े इन गाथाको बोले—

"बड़े शब्द करने वाले एक समान (यह) जन कोई भी अपनेको बाल (=अज्ञ) नहीं मानते; संघके भंग होने (और) मेरे लिये मनमें नहीं सोचते॥

मूढ़, पंडितसे दिखलाते, जीभभर आई बातको बोलनेवाले;
मन-चाहा मुख फैलाना चाहते हैं; जिस (कलह) से (अयोग्य मार्गपर)
ले जाये गये हैं, उसे नहीं जानते॥

[1] म. नि. ३: २: ८। [2] कोसम, जिला इलाहाबाद।

'मुझे निन्दा', 'मुझे मारा', 'मुझे जीता', 'मुझे त्यागा'।
(इस तरह) जो उसको (मनमें) बाँधते हैं, उनका वैर शांत नहीं होता ॥
'मुझे निन्दा', 'मुझे मारा', 'मुझे जीता', 'मुझे त्यागा'।
(इस तरह) जो उसको नहीं बाँधते, उनका वैर शांत हो जाता है ॥
वैरसे वैर कभी शांत नहीं होता।
अ-वैरसे (ही) शांत होता है, यही सनातन-धर्म है ॥
दूसरे (=अपंडित) नहीं जानते, हम यहाँ मृत्युको प्राप्त होंगे।
जो वहाँ (मृत्युके पास) जाना जानते हैं, वे (पंडित) बुद्धिगत (कलहोंको) शमन करते हैं ॥
हड्डी तोड़नेवालों, प्राण हरनेवालों, गाय-घोड़ा-धन हरनेवालों।
राष्ट्रको विनाश करने वालों (तक) का भी मेल होता है ॥
यदि नम्रसाधु-विहारी धीर (पुरुष) सहचर=सहायक (=साथी) मिले।
तो सब झगड़ोंको छोड़ प्रसन्न हो बुद्धिमान् उसके साथ विचरे ॥
यदि नम्र साधु-विहारी धीर सहचर सहायक न मिले।
तो राजाकी भाँति विजित राष्ट्रको छोड़, उत्तम मातंग-राजकी भाँति अकेला विचरे ॥
अकेला विचरना अच्छा है, बालसे मित्रता नहीं (अच्छी)।
बे-पर्वाह हो उत्तम मातंग(=नाग)-राजकी भाँति अकेला विचरे और पाप न करे ॥"

तब भगवान् खड़े-खड़े इन गाथाओंको कहकर, जहाँ बालकलोणकार ग्राम था, वहाँ गये। उस समय आयुष्मान् भृगु बालक-लोणकार ग्राममें वास करते थे। आयुष्मान् भृगुने दूरसे ही भगवान्‌को आते देखा। देखकर आसन बिछाया, पैर धोनेको पानी भी (रक्खा)। भगवान् बिछाये आसनपर बैठे। बैठकर चरण धोये। आयुष्मान् भृगु भी भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान भृगुको भगवान्‌ने यों कहा—"भिक्षु ! क्या खमनीय (=ठीक) तो है, क्या यापनीय (=अच्छी गुजरती) तो है ? पिंड (=भिक्षा) के लिए तो तुम तकलीफ नहीं पाते ?"

"खमनीय है भगवान् ! यापनीय है भगवान् ! मैं पिंडके लिए तकलीफ नहीं पाता।"

तब भगवान् आयुष्मान् भृगुको धार्मिक कथासे० समुत्तेजित कर०, आसनसे उठकर, जहाँ प्राचीनवंश-दाव है, वहाँ गये। उस समय आयुष्मान् अनुरुद्ध, आयुष्मान् नन्दिय और आयुष्मान् किम्बिल प्राचीनवंश-दावमें विहार करते थे। दाव-पालक (=वन-पाल) ने दूरसे ही भगवान्‌को आते देखा। देखकर भगवान्‌को कहा—

"महाश्रमण ! इस दावमें प्रवेश मत करो। यहाँपर तीन कुल-पुत्र यथाकाम (=मौज से) विहर रहे हैं, उनको तकलीफ मत दो।"

आयुष्मान् अनुरुद्धने दाव-पालकको भगवान्‌के साथ बात करते सुना। सुनकर दाव-पालसे यह कहा—

"आवुस ! दाव-पाल ! भगवान्‌को मत मना करो। हमारे शास्ता भगवान् आये हैं।"

तब आयुष्मान् अनुरुद्ध जहाँ आयुष्मान् नन्दिय और आयु० किम्बिल थे, वहाँ गये। जा कर बोले'''—

"आयुष्मानो ! चलो आयुष्मानो ! हमारे शास्ता भगवान् आ गये।"

तब आ० अनुरुद्ध, आ० नन्दिय, आ० किम्बिल भगवान्‌की अगवानी कर, एकने पात्र-चीवर ग्रहण किया, एकने आसन बिछाया, एकने पादोदक रक्खा। भगवान्‌ने बिछाये आसनपर बैठ पैर धोये। वे भी आयुष्मान् भगवान्‌को अभिवादन कर, एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए...भगवान्‌ने कहा—

"अनुरुद्धो! खमनीय तो है? यापनीय तो है? पिंडके लिये तो तुम लोग तकलीफ नहीं पाते?"

"खमनीय है, भगवान्!०"

"अनुरुद्धो! क्या तुम एकत्रित, परस्पर मोद-सहित, दूध-पानी हुये, परस्पर प्रिय-दृष्टिसे देखते, विहरते हो? "हाँ भन्ते! हम एकत्रित०।"

"तो कैसे अनुरुद्धो! तुम एकत्रित०?" "भन्ते! मुझे, यह विचार होता है—"मेरे लिये लाभ है, मेरे लिये सुलाभ प्राप्त हुआ है, जो ऐसे स-ब्रह्मचारियों (=गुरुभाइयों) के साथ विहरता हूँ। भन्ते! इन आयुष्मानोंमें मेरा कायिक कर्म अन्दर और बाहरसे मित्रता-पूर्ण होता है; वाचिक-कर्म अन्दर और बाहरसे मित्रतापूर्ण होता है; मानसिक कर्म अन्दर और बाहर०। तब भन्ते! मुझे यह होता है—क्यों न मैं अपना मन हटाकर, इन्हीं आयुष्मानोंके चित्तके अनुसार वर्तूं। सो भन्ते! मैं अपने चित्तको हटाकर इन्हीं आयुष्मानोंके चित्तोंका अनुवर्तन करता हूँ। भन्ते! हमारा शरीर नाना है, किन्तु चित्त एक···।"

आयुष्मान् नन्दीने भी कहा—"भन्ते! मुझे यह होता है०।"

आयुष्मान् किम्बिलने भी कहा—"भन्ते! मुझे यह०।"

"साधु, साधु, अनुरुद्धो! अनुरुद्धो! क्या तुम प्रमाद-रहित, आलस्य-रहित, संयमी हो विहरते हो?" "भन्ते! हाँ! हम प्रमाद-रहित०।"

"अनुरुद्धो! तुम कैसे प्रमाद-रहित०?" "भन्ते! हमारेमें जो पहिले ग्रामसे भिक्षाचार करके लौटता है, वह आसन लगाता है, पीनेका पानी रखता है, कूड़ेकी थाली रखता है। जो पीछे गाँवसे पिंडचार करके लौटता है, (वह) भोजन (मेंसे जो) बचा रहता है, यदि चाहता है, खाता है, (यदि) नहीं चाहता है, तो (ऐसे) स्थानमें, जहाँ हरियाली न हो, छोड़ देता है, या जीव-रहित पानीमें छोड़ देता है। आसनोंको समेटता है। पीनेके पानीको समेटता है। कूड़ेकी थालीको धो कर समेटता है। खानेकी जगहपर झाड़ू देता है। पानीके घड़े, पीनेके घड़े, या पाखानेके घड़ेमें जिसे खाली देखता है; उसे (भरकर) रख देता है। यदि वह उससे होने लायक नहीं होता, तो हाथके इशारेसे, हाथके संकेत (=हत्थविलंघक) से दूसरोंको बुलाकर, पानीके घड़े, या पीनेके घड़ेको (भरकर) रखवाता है। भन्ते! हम उसके लिये वाक्-युद्ध नहीं करते। भन्ते! हम पाँचवें दिन सारी रात धर्म-सम्बन्धी कथा करते बैठते हैं। इस प्रकार भन्ते! हम प्रमाद-रहित०।"

"साधु, साधु, अनुरुद्धो! अनुरुद्धो! इस प्रकार प्रमाद-रहित, निरालस, संयमी हो विहरते, क्या तुम्हें उत्तर-मनुष्य-धर्म[1] अलमार्य-ज्ञान-दर्शन[2]-विशेष अनुकूल विहार प्राप्त है?"

---

१. दिव्यशक्ति। २. दिव्यज्ञान।

"भन्ते ! हम प्रमाद-रहित० विहार करते, अवभास और रूपोंके दर्शनको देखते हैं, किंतु वह अवभास, और रूपोंके दर्शन हम लोगोंके जल्द ही अन्तर्धान हो जाते हैं। हम इसका कारण नहीं जान पाते।"

"अनुरुद्धो ! तुम्हें वह कारण जान लेना चाहिए। मैं भी सम्बोधिसे पूर्व, न-बुद्ध-हुआ, बोधि-सत्त्व होते (समय) अवभास और रूपोंके दर्शनको जानता था। मेरा वह अवभास और रूपोंका दर्शन जल्द ही अन्तर्धान हो जाता था। तब मुझे अनुरुद्धो ! यह हुआ—क्या है हेतु (=कारण), क्या है प्रत्यय (=कार्य), जिससे मेरा अवभास और रूपोंका दर्शन अन्तर्धान हो जाता है। तब मुझे अनुरुद्धो ! यह हुआ—(१) विचिकित्सा (=शंका, सन्देह) मुझे उत्पन्न हुई, विचिकित्साके कारण मेरी समाधि च्युत हो गई। समाधिके च्युत होनेपर अवभास और रूपोंका दर्शन अन्तर्धान होता है। सो मैं ऐसा करूँ, जिसमें फिर विचिकित्सा न उत्पन्न हो। सो मैं अनुरुद्धो ! प्रमाद-रहित० विहार करते, अवभास (=प्रकाश) और रूपोंका दर्शन देखने लगा। (किंतु) वह अवभास और रूपोंका दर्शन जल्द ही (फिर) अन्तर्धान हो जाता था। तब मुझे अनुरुद्धो ! यह हुआ—क्या है हेतु०। 'तब मुझे अनुरुद्धो ! हुआ—(२) अमनसिकार (=मनमें न दृढ़ करना), मुझे उत्पन्न हुआ। अ-मनसिकारके कारण मेरी समाधि च्युत हुई०। सो मैं ऐसा करूँ, जिसमें फिर न विचिकित्सा न अ-मनसिकार उत्पन्न हो। सो मैं०। ०(३) थीन-मिद्ध (=स्त्यान-मिद्ध)०। ०न विचिकित्सा न अमनसिकार, न थीन-मिद्ध उत्पन्न हो। सो मैं०। ० (४) छम्भितत्त (=स्तम्भितत्त्व)०। स्तम्भितत्त्व (=जड़ता) के कारण मेरी समाधि च्युत हुई। समाधिके च्युत होनेपर, अवभास और रूपोंका दर्शन अन्तर्धान हुआ। अनुरुद्धो ! जैसे पुरुष (अँधेरी रातमें) रास्तेमें जा रहा हो, उसके दोनों ओर बटेरें उड़ जाँय। उसके कारण उसको स्तम्भि-तत्त्व उत्पन्न हो। ऐसे ही अनुरुद्धो ! मुझे स्तम्भितत्त्व उत्पन्न हुआ। स्तम्भितत्त्वके कारण०। सो मैं ऐसा करूँ, जिसमें फिर न विचिकित्सा उत्पन्न हो, न अ-मनसिकार, न स्त्यान-मिद्ध, न स्तम्भितत्त्व। सो मैं अनुरुद्धो०। (५) ०उप्पील (=उब्बिल्ल=उत्पीडा=विह्वलता)०। जैसे अनुरुद्धो ! कोई पुरुष एक निधि (=खजाना) को ढूँढता, वह एक ही बार पाँच निधियोंके मुखको पाजाय, जिसके कारण उसे उत्पीड़ा उत्पन्न हो। ऐसे ही अनुरुद्धो ! उत्पीड़ा उत्पन्न हुई। उत्पीड़ाके कारण मेरी समाधि च्युत हुई०। सो मैं ऐसा करूँ, जिसमें मुझे फिर न विचिकित्सा उत्पन्न हो० न उत्पीड़ा। सोमैं अनुरुद्धो !०।०(६)दुट्ठुल्ल (=दुःस्थौल्य)०। सो मैं ऐसा करूँ, जिसमें मुझे न विचिकित्सा उत्पन्न हो०, न दुःस्थौल्य ! सो मैं०। तब मुझे अनुरुद्ध ! यह हुआ—(७) अति-आरब्ध-वीर्य (=अच्चारद्ध-वीरिय, अत्यधिक अभ्यास) मुझे उत्पन्न हुआ०। जैसे अनुरुद्धो ! पुरुष दोनों हाथोंसे बटेरको जोरसे पकड़े, वह वहीं मर जाय। ऐसे ही मुझे अनुरुद्धो !०। सो मैं ऐसा करूँ, जिसमें मुझे० अत्यारब्ध वीर्य०। (८) अति-लीन-वीर्य (=अतिलीनवीरिय)०। जैसे अनुरुद्धो ! पुरुष बटेरको ढीला पकड़े, वह उसके हाथसे उड़ जाय०। सो मैं० अतिलीन वीर्य० ।० (९) अभिजप्प। (=अभिजल्प)०। सो मैं० अभिजप्प०। ०(१०) नानात्वप्रज्ञा (=नानात्तपञ्ञा)०।

"सो मैं० नानात्व-प्रज्ञा०। ०(११) अतिनिध्यायितत्व (=अतिनिज्झायितत्त) रूपोंका मुझे उत्पन्न हुआ। अतिनिध्यायितत्वके कारण मेरी रूपोंकी समाधि-च्युत हुई।

"हरीस जैसे दाँतवाले हस्ति-नागसे नाग (=बुद्ध) का चित्त समान है, जो कि वनमें अकेला रमण करता है।"

(२)

पारिलेयकसे श्रावस्ती। संघ-मेल। (ई. पू. ५१८)।

"ऐसा[1] मैंने सुना—एक समय भगवान् कौशाम्बीके घोषितारामामें विहार करते थे।

तब भगवान् पूर्वाह्न समय पहिन कर पात्र-चीवर ले, कौशाम्बीमें पिंड-पातके लिये प्रविष्ट हुये। कौशाम्बीमें पिंडचार करके, पिंड-पात समाप्त कर, भोजनके पश्चात्, स्वयं आसन समेट पात्र-चीवर ले उपस्थाकों (=हजूरियों)को बिना कहे, भिक्षु-संघको बिना देखे, अकेले=अ-द्वितीय चारिकाके लिये चल दिये। तब एक भिक्षु भगवान्के जानेके थोड़ी ही देर बाद जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् आनन्दको बोला—

"आवुस! आनन्द! भगवान् स्वयं आसन समेटकर पात्र-चीवर ले० चारिकाके लिये चले गये।"

भगवान् उस समय अकेले ही विहार करना चाहते थे, इस लिये वह किसीके द्वारा अनुगमनीय न थे।

क्रमशः चारिका करते भगवान् जहाँ पारिलेयक[2] था, वहाँ गये। वहाँ पारिलेयकमें भद्रशालके नीचे विहार करते थे। तब बहुत से भिक्षु जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् आनन्दके साथ संमोदन कर० एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे उन भिक्षुओंने आयुष्मान् आनन्दको कहा—

"आवुस! आनन्द! हमें भगवान्के मुखसे धर्म-कथा सुने देर हुई। आवुस! आनन्द! हम भगवान्के मुखसे धर्म-कथा सुनना चाहते हैं।"

तब आयुष्मान् आनन्द उन भिक्षुओंके साथ, जहाँ पारिलेयक-भद्रशाल-मूल था, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को वन्दनाकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुये उन भिक्षुओंको भगवान्ने धार्मिक कथा द्वारा दर्शाया, दिखाया, हर्षाया। उस समय एक भिक्षुके चित्तमें ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—

"क्या जानने क्या देखनेके अनन्तर आस्रवों (=दोषों) का क्षय होता है?"

तब भगवान्ने उस भिक्षुके चित्तके वितर्कको अपने चित्तसे जान कर भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ मैंने धर्मको पूरी तरह उपदेश किया है। पूरी तरह मैंने उपदेश किये हैं, चार स्मृति-प्रस्थान। ०चार सम्यक् प्रधान। ०चार ऋद्धि-पाद। ०पाँच इन्द्रियाँ। ०छ बल! ०सात बोधि-अङ्ग। ०आर्य-अष्ट-अंगिक-मार्ग इस प्रकार भिक्षुओ! मैंने पूरी तरह धर्मको उपदेश किया है। इस प्रकार मेरे पूरी तरह धर्मके उपदेशकर देनेपर भी, यहाँ एक भिक्षुके चित्तमें ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—'क्या जानने क्या देखनेके अनन्तर आस्रवोंका

1. सं० नि० २१ : ८ : ९। 2. पारिलेय्यक (बर्मी पुस्तकमें)।

क्षय होता है।' भिक्षुओ ! क्या जानते क्या देखते हुए बीचहीमें आस्रवोंका क्षय होता है ? भिक्षुओ ! अ-श्रुतवान् (=अ-पण्डित) पृथग्जन, आर्योंका अ-दर्शक, आर्य-धर्ममें अ-कोविद, आर्य-धर्ममें अ-व्रती; [1]सत्पुरुषोंका अ-दर्शक, सत्पुरुषोंके धर्ममें अ-कोविद सत्पुरुष-धर्ममें अ-व्रती, रूपको आत्मा करके जानता है। उसकी जो समनुपश्यना (=सूझ, सिद्धांत) है, वह संस्कार (=कृत्रिम) है। वह संस्कार किस निदानवाला=किस समुदय (=हेतु) वाला, किससे जन्मा—किससे प्रभव हुआ है ? अ-विद्याके स्पर्श (=योग) से। भिक्षुओ ! वेदनासे स्पृष्ट (=युक्त, लिप्त) अ-पंडित पृथग्जनको तृष्णा उत्पन्न होती है, उसीसे उत्पन्न है, वह संस्कार। इस प्रकार भिक्षुओ ! वह संस्कार -अनित्य=संस्कृत (=निर्मित)=प्रतीत्यसमुत्पन्न (=कारणसे उत्पन्न) है। जो तृष्णा है, वह भी अ-नित्य, संस्कृत, प्रतीत्य-समुत्पन्न है। जो वेदना है०। जो स्पर्श (=योग) है०। जो अविद्या है०। भिक्षुओ ! ऐसा भी जानने देखनेके अनंतर आस्रवोंका क्षय होता है। (तब) वह (द्रष्टा) रूपको आत्मा करके नहीं देखता, बल्कि रूप-वान्को आत्मा समझता है। भिक्षुओ ! जो वह समनुपश्यना (=सूझ) है, वह संस्कार है। वह संस्कार किस निदानवाला० है ? अविद्याके योगसे उत्पन्न वेदनासे लिप्त अ-पंडित पृथग्जनको तृष्णा उत्पन्न होती है, उसीसे उत्पन्न हुआ है, वह संस्कार। इस प्रकार भिक्षुओ ! वह संस्कार अ-नित्य, संस्कृत, प्रतीत्य-समुत्पन्न है। जो तृष्णा है वह भी अनित्य०। जो वेदना० जो स्पर्श०। जो अ-विद्या०। भिक्षुओ ! ऐसा जानने देखनेके अनन्तर भी आस्रवोंका क्षय होता है। (वह) रूपको आत्मा करके नहीं देखता, न रूपवान्को आत्मा करके देखता है।

"भिक्षुओ ! जो वह समनुपश्यना (=सूझ) है, वह संस्कार है।० ऐसा जानने देखनेके अनन्तर भी आस्रवोंका क्षय होता है। (वह) न रूपको आत्मा करके०। न रूपवान्० ! न आत्मामें रूप देखता है; बल्कि रूपमें आत्माको देखता है।

"भिक्षुओ ! जो वह समनुपश्यना०। (वह) रूपको आत्मा करके नहीं देखता। न रूपवान्०। न आत्मामें रूपको०। न रूपमें आत्माको। बल्कि वेदनाको आत्मा करके देखता है; बल्कि वेदनावान्को आत्मा देखता है; बल्कि आत्मामें वेदनाको देखता है; बल्कि वेदनाके लिये आत्माको देखता (=जानता) है। ० संज्ञा०।

"बल्कि, संस्कारोंको आत्मा करके देखता है। बल्कि संस्कार-वान्को०। ०आत्मामें संस्कारोंको०। संस्कारोंमें आत्माको०।

"०विज्ञान०। ०विज्ञानवान्को०। ०आत्मामें विज्ञानको०। ०विज्ञानमें०।

"भिक्षुओ ! जो वह समनुपश्यना (है), वह संस्कार है। वह संस्कार किस-निदान-वाला० है ? ०तृष्णा उत्पन्न होती है, उसीसे उत्पन्न है, वह संस्कार। इस प्रकार भिक्षुओ ! वह संस्कार भी अ-नित्य०। जो तृष्णा० वेदना० स्पर्श० अविद्या०। ऐसे भी भिक्षुओ ! जानने देखनेके अनन्तर आस्रवोंका क्षय होता है। न रूपको आत्मा करके देखता है, न वेदनाको० न संज्ञाको०, न संस्कारको०, न विज्ञानको०। बल्कि इस प्रकारकी दृष्टि

1. स्रोतआपन्न, सकृदागामी, अनागामी, अर्हत् फलमेंसे किसीको न प्राप्त पृथग्जन कहलाता है, और किसीको प्राप्त आर्य या सत्पुरुष।

"हरीस जैसे दाँतवाले हस्ति-नागसे नाग (=बुद्ध) का चित्त समान है, जो कि वनमें अकेला रमण करता है।"

(२)

पारिलेयकसे श्रावस्ती। संघ-मेल। (ई. पू. ५१८)।

"ऐसा[1] मैंने सुना—एक समय भगवान् कौशाम्बीके घोषितारममें विहार करते थे।

तब भगवान् पूर्वाह्न समय पहिन कर पात्र-चीवर ले, कौशाम्बीमें पिंड-पातके लिये प्रविष्ट हुये। कौशाम्बीमें पिंडचार करके, पिंड-पात समाप्त कर, भोजनके पश्चात्, स्वयं आसन समेट पात्र-चीवर ले उपस्थाकों (=हजूरियों)को बिना कहे, भिक्षु-संघको बिना देखे, अकेले=अ-द्वितीय चारिकाके लिये चल दिये। तब एक भिक्षु भगवान्‌के जानेके थोड़ी ही देर बाद जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् आनन्दको बोला—

"आवुस ! आनन्द ! भगवान् स्वयं आसन समेटकर पात्र-चीवर ले० चारिकाके लिये चले गये।"

भगवान् उस समय अकेले ही विहार करना चाहते थे, इस लिये वह किसीके द्वारा अनुगमनीय न थे।

क्रमशः चारिका करते भगवान् जहाँ पारिलेयक[2] था, वहाँ गये। वहाँ पारिलेयकमें भद्रशालके नीचे विहार करते थे। तब बहुत से भिक्षु जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् आनन्दके साथ संमोदन कर० एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे उन भिक्षुओंने आयुष्मान् आनन्दको कहा—

"आवुस ! आनन्द ! हमें भगवान्‌के मुखसे धर्म-कथा सुने देर हुई। आवुस ! आनन्द ! हम भगवान्‌के मुखसे धर्म-कथा सुनना चाहते हैं।"

तब आयुष्मान् आनन्द उन भिक्षुओंके साथ, जहाँ पारिलेयक-भद्रशाल-मूल था, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को वन्दनाकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुये उन भिक्षुओंको भगवान्‌ने धार्मिक कथा द्वारा दर्शाया, सिखाया, हर्षाया। उस समय एक भिक्षुके चित्तमें ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—

"क्या जानते क्या देखनेके अनन्तर आस्रवों (=दोषों) का क्षय होता है ?"

तब भगवान्‌ने उस भिक्षुके चित्तके वितर्कको अपने चित्तसे जान कर भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ मैंने धर्मको पूरी तरह उपदेश किया है। पूरी तरह मैंने उपदेश किये हैं, चार स्मृति-प्रस्थान। ०चार सम्यक् प्रधान। ०चार ऋद्धि-पाद। ०पाँच इन्द्रियाँ। ०छ बल ! ०सात बोधि-अङ्ग। ०आर्य-अष्ट-अंगिक-मार्ग इस प्रकार भिक्षुओ ! मैंने पूरी तरह धर्मको उपदेश किया है। इस प्रकार मेरे पूरी तरह धर्मके उपदेशकर देनेपर भी, यहाँ एक भिक्षुके चित्तमें ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—'क्या जानते क्या देखनेके अनन्तर आस्रवोंका

1. सं० नि० २१: ८:९। 2. पालिलेय्यक (बर्मी पुस्तकमें)।

क्षय होता है।' भिक्षुओ ! क्या जानते क्या देखते हुए बीचहीमें आस्रवोंका क्षय होता है ? भिक्षुओ ! अ-श्रुतवान् (=अ-पण्डित) पृथग्जन, आर्योंका अ-दर्शक, आर्य-धर्ममें अ-कोविद, आर्य-धर्ममें अ-व्रती; [1]सत्पुरुषोंका अ-दर्शक, सत्पुरुषोंके धर्ममें अ-कोविद सत्पुरुष-धर्ममें अ-व्रती, रूपको आत्मा करके जानता है। उसकी जो समनुपश्यना (=सूझ, सिद्धांत) है, वह संस्कार (=कृत्रिम) है। वह संस्कार किस निदानवाला=किस समुदय (=हेतु) वाला, किससे जन्मा—किससे प्रभव हुआ है ? अ-विद्याके स्पर्श (=योग) से। भिक्षुओ ! वेदनासे स्पृष्ट (=युक्त, लिप्त) अ-पंडित पृथग्जनको तृष्णा उत्पन्न होती है, उसीसे उत्पन्न है, वह संस्कार। इस प्रकार भिक्षुओ ! वह संस्कार -अनित्य=संस्कृत (=निर्मित)=प्रतीत्यसमुत्पन्न (=कारणसे उत्पन्न) है। जो तृष्णा है, वह भी अ-नित्य, संस्कृत, प्रतीत्य-समुत्पन्न है। जो वेदना है०। जो स्पर्श (=योग) है०। जो अविद्या है०। भिक्षुओ ! ऐसा भी जानने देखनेके अनंतर आस्रवोंका क्षय होता है। (तब) वह (द्रष्टा) रूपको आत्मा करके नहीं देखता, बल्कि रूप-वान्को आत्मा समझता है। भिक्षुओ ! जो वह समनुपश्यना (=सूझ) है, वह संस्कार है। वह संस्कार किस निदानवाला० है ? अविद्याके योगसे उत्पन्न वेदनासे लिप्त अ-पंडित पृथग्जनको तृष्णा उत्पन्न होती हैं, उसीसे उत्पन्न हुआ है, वह संस्कार। इस प्रकार भिक्षुओ ! वह संस्कार अ-नित्य, संस्कृत, प्रतीत्य-समुत्पन्न है। जो तृष्णा है वह भी अनित्य०। जो वेदना० जो स्पर्श०। जो अ-विद्या०। भिक्षुओ ! ऐसा जानने देखनेके अनन्तर भी आस्रवोंका क्षय होता है। (वह) रूपको आत्मा करके नहीं देखता, न रूपवान्को आत्मा करके देखता है।

"भिक्षुओ ! जो वह समनुपश्यना (=सूझ) है, वह संस्कार है।० ऐसा जानने देखनेके अनन्तर भी आस्रवोंका क्षय होता है। (वह) न रूपको आत्मा करके०। न रूपवान्० ! न आत्मामें रूप देखता है; बल्कि रूपमें आत्माको देखता है।

"भिक्षुओ ! जो वह समनुपश्यना०। (वह) रूपको आत्मा करके नहीं देखता। न रूपवान्०। न आत्मामें रूपको०। न रूपमें आत्माको। बल्कि वेदनाको आत्मा करके देखता है; बल्कि वेदनावान्को आत्मा देखता है; बल्कि आत्मामें वेदनाको देखता है; बल्कि वेदनाके लिये आत्माको देखता (=जानता) है। ० संज्ञा०।

"बल्कि, संस्कारोंको आत्मा करके देखता है। बल्कि संस्कार-वान्को०। ०आत्मामें संस्कारोंको०। संस्कारोंमें आत्माको०।

"०विज्ञान०। ०विज्ञानवान्को०। ०आत्मामें विज्ञानको०। ०विज्ञानमें०

"भिक्षुओ ! जो वह समनुपश्यना (है), वह संस्कार है। वह संस्कार किस-निदान-वाला० है ? ०तृष्णा उत्पन्न होती है, उसीसे उत्पन्न है, वह संस्कार। इस प्रकार भिक्षुओ ! वह संस्कार भी अ-नित्य०। जो तृष्णा० वेदना० स्पर्श० अविद्या०। ऐसे भी भिक्षुओ ! जानने देखनेके अनन्तर आस्रवोंका क्षय होता है। न रूपको आत्मा करके देखता है, न वेदनाको० न संज्ञाको०, न संस्कारको०, न विज्ञानको०। बल्कि इस प्रकारकी दृष्टि

---

[1] सोतआपन्न, सकृदागामी, अनागामी, अर्हत् फलोंमेंसे किसीको न प्राप्त पृथग्जन कहलाता है, और किसीको प्राप्त आर्य या सत्पुरुष।

(=सिद्धान्त) वाला होता है—'वही आत्मा है, वही लोक है, वही पीछे जन्मता है, (वह) नित्य=ध्रुव=अ-विपरिणाम धर्मवाला है।' भिक्षुओ! यह जो शाश्वत-दृष्टि (=नित्यता-वाद) है, वह संस्कार है। वह संस्कार किस-निदान-वाला है? भिक्षुओ! इस प्रकार भी जानने०। न रूपको आत्मा करके देखता, न वेदनाको०, न संज्ञा०, न संस्कार०, न विज्ञान०। न इस दृष्टिवाला होता है—'वही आत्मा है, वही लोक है, वही पीछे जन्मता है; (वह) नित्य= ध्रुव = अ-विपरिणाम-धर्मवाला है'। बल्कि इस दृष्टिवाला होता है—'न मैं था, न मेरे लिये था, न होऊँगा, न मेरे लिये होगा।'

"भिक्षुओ! जो यह उच्छेद-दृष्टि (= उच्छेद-वाद) है, वह संस्कार है। वह संस्कार किस-निदानवाला०। ०आस्रवोंका क्षय होता है। न रूपको आत्मा करके मानता है। न वेदनाको०, न विज्ञानमें आत्माको०। न इस दृष्टिवाला होता है—'वही आत्मा है, वही लोक है, वही पीछे जन्मता हूँ, नित्य=ध्रुव=अ-विपरिणाम-धर्मवाला (हूँ)।' न इस दृष्टिवाला होता है—'न मैं था, न मेरे लिये था, न होऊँगा, न मेरे लिये होगा।' बल्कि कांक्षा=विचिकित्सा (=संशय) वाला होता है, सद्धर्ममें न निष्ठा रखनेवाला (होता) है।

"भिक्षुओ! जो यह कांक्षा=वि-चिकित्सा सद्धर्म में निष्ठा न रखना है, वह (भी) संस्कार है। वह संस्कार किस निदानवाला०। इस प्रकार वह संस्कार अ-नित्य० है। जो तृष्णा०। जो वेदना०। जो स्पर्श०। जो अविद्या०। भिक्षुओ! इस प्रकार जानने देखनेके अनन्तर (भी) आस्रवोंका क्षय होता है। × × ×

'तब भगवान् पारिलेय्यकमें इच्छानुसार विहार कर, जिधर श्रावस्ती थी, उधर चारिकाके लिये चल दिये। क्रमशः चारिका करते जहाँ श्रावस्ती थी, वहाँ गये। वहाँ भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। तब कौशाम्बीके उपासकोंने (विचारा)—

"यह अय्या (=भिक्षु) कौशाम्बीके भिक्षु, हमारे बड़े अनर्थ करनेवाले हैं। इनसे ही पीड़ित हो भगवान् चले गये। हाँ! तो अब हम अय्या कौशाम्बक भिक्षुओंको न अभिवादन करें, न प्रत्युत्थान करें, न हाथ जोड़ना=सामीचिकर्म करें, न सत्कार करें, न गौरव करें, न मानें, न पूजें; आनेपर भी पिंड (=भिक्षा) न दें। इस प्रकार हम लोगों द्वारा अ-सत्कृत, अ-गुरुकृत, अ-मानित, अ-पूजित, असत्कार-प्राप्त चले जायेंगे, या गृहस्थ बन जायेंगे, या भगवान्को जाकर प्रसन्न करेंगे।" तब कौशाम्बी-वासी उपासक कौशाम्बी-वासी भिक्षुओंको न अभिवादन करते०। तब कौशाम्बी-वासी भिक्षुओंने कौशाम्बीके उपासकोंसे असत्कृत हो कहा—

"अच्छा आवुसो! हम लोग श्रावस्तीमें भगवान्के पास इस झगड़े (=अधिकरण) को शांत करेंगे।" तब कौशाम्बी-वासी भिक्षु आसन समेटकर पात्र-चीवर ले जहाँ श्रावस्ती थी वहाँ गये।

आयुष्मान् सारिपुत्रने सुना—"वह भंडन-कारक=कलह-कारक=विवाद-कारक, भस्स(=भष)-कारक, संघमें अधिकरण(=झगड़ा)-कारक कौशाम्बी-वासी भिक्षु

१. महावग्ग १०।

श्रावस्ती आ रहे हैं।" तब आयुष्मान् सारिपुत्र जहाँ भगवान् थे, वहां गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्से कहा—"भन्ते! वह भंडन-कारक० कौशाम्बी-वासी भिक्षु श्रावस्ती आ रहे हैं, उन भिक्षुओंके साथ मैं कैसे वर्तूं?"

"सारिपुत्र! तो तू धर्मके अनुसार वर्त।"

"भन्ते! मैं धर्म या अधर्म कैसे जानूँ?"

"सारि-पुत्र! अठारह बातों (=वस्तु) से अ-धर्मवादी जानना चाहिये। सारिपुत्र! भिक्षु (१) अ-धर्मको धर्म (=सूत्र) कहता है। (२) धर्मको अ-धर्म कहता है। (३) अ-विनयको विनय (विनयनियम) कहता है। (४) विनयको अ-विनय कहता है। (५) तथागत-द्वारा अ-भाषित=अ-लपितको, तथागत-द्वारा भाषित=लपित कहता है। (६) ०भाषित=लपितको, ०अ-भाषित=अ-लपित कहता है। (७) तथागत-द्वारा अन्-आचरितको ०आचरित कहता है। (८) तथागत-द्वारा आचरितको ०अन्-आचरित कहता है। (९) तथागत-द्वारा अ-प्रज्ञप्त (=अ-विहित) को ०प्रज्ञप्त कहता है। (१०) ०प्रज्ञप्तको ०अ-प्रज्ञप्त०। (११) अन्-आपत्तिको आपत्ति (=दोष) कहता है। (१२) आपत्तिको अन्-आपत्ति कहता है। (१३) लघु (=छोटी) आपत्तिको गुरु (=बड़ी)-आपत्ति कहता है। (१४) गुरु-आपत्तिको लघु-आपत्ति कहता है। (१५) स-अवशेष (=अ-पूर्ण) आपत्तिको अन्-अवशेष (=पूर्ण) आपत्ति कहता है। (१६) अन्-अवशेष आपत्तिको स-अवशेष आपत्ति कहता है। (१७) दुःस्थौल्य (=दुराचार) आपत्तिको, अ-दुःस्थौल्य आपत्ति कहता (=दीपेति)=प्रकाशित करता है)। (१८) दुःस्थौल्य आपत्तिको अ-दुःस्थौल्य आपत्ति कहता है।

"अठारह वस्तुओंसे सारिपुत्र धर्म-वादी जानना चाहिये।—

'सरिपुत्र! भिक्षु (१) अधर्मको अधर्म कहता है। (२) धर्मको धर्म०। (३) अ-विनयको अ-विनय०। (४) विनयको विनय०। (५) ०अ-भाषित=अ-लपित०। (६) ०भाषित=लपितको ०भाषित=लपित०। (७) ०अन्-आचरितको ०अन्-आचरित०। (८) ०आचरितको ०आचरित०। (९) ०अ-प्रज्ञप्तको ०अ-प्रज्ञप्त०। (१०) ०प्रज्ञप्तको ०प्रज्ञप्त०। (११) अन्-आपत्तिको अन्-आपत्ति०। (१२) आपत्तिको आपत्ति०। (१३) लघु-आपत्तिको लघु-आपत्ति०। (१४) गुरु-आपत्तिको गुरु-आपत्ति०। (१५) स-अवशेष आपत्तिको स-अवशेष आपत्ति०। (१६) अन्-अवशेष आपत्तिको अन्-अवशेष आपत्ति०। (१७) दुःस्थौल्य आपत्तिको दुःस्थौल्य आपत्ति०। (१८) अ-दुःस्थौल्य आपत्तिको अ-दुःस्थौल्य आपत्ति०।

आयुष्मान महामौद्गल्यायनने सुना—'वह भंडनकारक ०।०।

आयुष्मान् महाकाश्यपने ०।० महाकात्यायनने सुना—०।० महाकोट्ठित (=०कोष्ठिल) ने सुना—०।० महाकप्पिनने सुना—०।० महाचुन्द ०।० अनुरुद्ध ०।० रेवत ०।० उपाली ०।० आनन्द ०।० राहुल ०।

महाप्रजापती गौतमीने सुना—'वह भंडन-कारक०।' "भन्ते! मैं उन भिक्षुओंके साथ कैसे वर्तूं?"

"गौतमी! तू दोनों ओरका धर्म (=बात) सुन। दोनों ओरका धर्म सुनकर, जो भिक्षु

धर्म-वादी हों, उनकी दृष्टि, क्षान्ति, रुचि, पसन्द कर। भिक्षुनी-संघको भिक्षु-संघसे जो कुछ अपेक्षा करनी है, वह सब धर्मवादीसे ही अपेक्षा करनी चाहिये।"

अनाथपिंडक गृह-पतिने सुना—'वह भंडनकारक०।' "भन्ते! मैं उन भिक्षुओंके साथ कैसे वर्तूं?"

"गृहपति! तू दोनों ओर दान दे। दोनों ओर दान देकर दोनों ओर धर्म सुन। दोनों ओर धर्म सुनकर, जो भिक्षु धर्म-वादी हों, उनकी दृष्टि (=सिद्धान्त) क्षांति (=औचित्य), रुचिको ले, पसन्द कर।"

विशाखा मृगार-माताने सुना—जो वह०। "भन्ते! मैं उन भिक्षुओंके साथ कैसे वर्तूं?"

"विशाखा! दोनों ओर दान दे०। ०रुचिको ले, पसन्द कर।"

तब कौशाम्बीवासी भिक्षु क्रमशः जहाँ श्रावस्ती थी, वहाँ पहुँचे। तब आयुष्मान् सारिपुत्रने जहाँ भगवान् थे, वहां जा० "भन्ते! वह भंडनकारक० कौशाम्बी-वासी भिक्षु श्रावस्ती आ गये। भन्ते! उन भिक्षुओंको आसन आदि कैसे देना चाहिये?"

"सारिपुत्र! अलग आसन देना चाहिये।"

"भन्ते! यदि (आसन) अलग न हो, तो कैसे करना चाहिये?"

"सारिपुत्र! तो अलग बनाकर देना चाहिये। परन्तु सारि-पुत्र! वृद्धतर भिक्षुका आसन हटाने (के लिये) मैं किसी प्रकार भी नहीं कहता। जो हटाये उसको 'दुष्कृत' की आपत्ति।

"भन्ते! आमिष (=भोजन आदि) के (विषयमें) कैसे करना चाहिये।"

"सारिपुत्र! आमिष सबको समान बाँटना चाहिये।"

तब धर्म और नियमकी प्रत्यवेक्षा (=मिलान, खोज) करते उस उत्क्षिप्त भिक्षुको (विचार) हुआ—'यह आपत्ति (=दोष) है, अन्-आपत्ति नहीं है। मैं आपन्न (=आपत्ति-युक्त) हूँ, अन्-आपन्न नहीं हूँ। मैं उत्क्षिप्त (='उत्क्षेपण' दंडसे दंडित) हूँ, अन्-उत्क्षिप्त नहीं हूँ। अ-कोप्य=स्थानार्ह=धार्मिक कर्म (=न्याय) से मैं उत्क्षिप्त हूँ।' तब वह उत्क्षिप्त भिक्षु (अपने)···अनुयायियोंके पास गया,···बोला—'यह आपत्ति है आवुसो! आओ आयुष्मानो! मुझे मिला दो।'। तब वह उत्क्षिप्त-अनुयायी भिक्षु उत्क्षिप्त भिक्षुको लेकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये; जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठकर उन भिक्षुओंने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते! यह उत्क्षिप्तक भिक्षु कहता है—'आवुसो! यह आपत्ति है अन्-आपत्ति नहीं०, आओ आयुष्मानों मुझे (संघमें) मिला दो।' भन्ते! सो कैसे करना चाहिये?"

"भिक्षुओ! यह आपत्ति है, अन्-आपत्ति नहीं। यह भिक्षु, आपन्न है, अन्-आपन्न नहीं है। उत्क्षिप्त है अन्-उत्क्षिप्त नहीं है। अ-कोप्य=स्थानार्ह=धार्मिक कर्मसे उत्क्षिप्त है। भिक्षुओ! चूँकि यह भिक्षु आपन्न है, उत्क्षिप्त है, और (आपत्ति=दोष) देखता है, अतः इस भिक्षुको मिला लो।"

तब उत्क्षिप्तके अनुयायी भिक्षुओंने उस उत्क्षिप्त भिक्षुको मिलाकर (=ओसारण कर), जहाँ उत्क्षेपक भिक्षु थे, वहाँ गये। जाकर उत्क्षेपक भिक्षुओंसे कहा—

"आवुसो! जिस वस्तु (=बात)में संघका भंडन=कलह, विग्रह, विवाद हुआ था, संघ-भेद (फूट)=संघराजी=संघ-व्यवस्थान=संघ-नानाकरण हुआ था, सो (उस विषयमें) यह भिक्षु आपन्न है, उत्क्षिप्त है, अव-सारित (=मिला लिया गया) है। हाँ तो! आवुसो! हम इस वस्तु (=मामला, बात)के उप-शमन (=फैसला, मिटाना)के लिये संघकी सामग्री (=मेल) करें।"

तब वह उत्क्षेपक (=अलग करनेवाले) भिक्षु जहाँ भगवान् थे,···जाकर भगवान्को अभिवादन कर···एक ओर बैठ···भगवान्से बोले—

"भन्ते! वह उत्क्षिप्त-अनुयायी भिक्षु ऐसा कहते हैं—'आवुसो! जिस वस्तुमें० संघकी सामग्री करें!' भन्ते! कैसे करना चाहिये?"

"भिक्षुओ! चूँकि वह भिक्षु आपन्न, उत्क्षिप्त, पश्यी (=दर्शी=आपत्ति देखने माननेवाला) और अव-सारित है। इसलिये भिक्षुओ! उस वस्तुके उप-शमनके लिये संघकी सामग्री करो। और वह इस प्रकार करनी चाहिये—रोगी निरोग सभीको एक जगह जमा होना चाहिये, किसीको (बदला) भेजकर, छन्द (=वोट) न देना चाहिये। जमा होकर, योग्य, समर्थ भिक्षु-द्वारा संघ ज्ञापित (=सूचित=संबोधित) होना चाहिये—'भन्ते! संघ मुझे सुने। जिस वस्तुमें संघमें भंडन, कलह, विग्रह, विवाद० हुआ था; सो (उस विषयमें) यह भिक्षु आपन्न है उत्क्षिप्त (है), पश्यी, अव-सारित है। यदि संघ उचित (=पत्तकल्ल) समझे, तो संघ उस वस्तुके उपशमके लिये संघ-सामग्री करे। यह ज्ञप्ति (=सूचना) है।

'भन्ते! संघ मुझे सुने—जिस वस्तुमें० अवसारित हैं। संघ उस वस्तुके उपशमनके लिये संघ-सामग्री कर रहा है। जिस आयुष्मान्को उस वस्तुके उपशमनके लिये संघ-सामग्री करना, पसन्द है, वह चुप रहे; जिसको नहीं पसन्द है, वह बोले। दूसरी बार भी०। तीसरी बार भी०। संघने उस वस्तुके उपशमनके लिये संघ-सामग्री (=फूटे संघको एक करना) की; संघ-राजी=० संघ-भेद निहत (=नष्ट) हो गया। 'संघको पसन्द है, इसलिये चुप है'—यह मैं समझता हूँ।···"

× × × ×

जैन असिबंधकके प्रश्न। कुल-नाशके कारण। पिंड-सुत्त।

(ई० पू० ५१८)।

[1]ग्यारहवीं (वर्षा) नाला (नालंदा) ब्राह्मण-ग्राममें।

असिबंधक पुत्त सुत्त।

× × ×

[2](ऐसा मैंने सुना)—एक समय कोसलमें चारिका करते हुये बड़े भारी भिक्षु-

1. अं० नि० अ० क० २:४:५। 2. सं० नि० ४०:१:९।

संघके साथ भगवान् जहाँ नालन्दा है, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् नालन्दामें प्रावारिक (सेठ)के आमके बागमें विहार करते थे। उस समय नालन्दा दुर्भिक्ष (=भिक्षा पाना कठिन जहाँ हो), दो ईतियों (=अकाल और महामारी)से युक्त, और श्वेत-हड्डियोंवाली, 'सलाकावुत्ता' (=फल रहित खूँटी हो गई खेती जहाँ हो) थी। उस समय बड़ी भारी निगंठों (=जैन-साधुओं)की परिषद् (=जमात)के साथ निगंठ 'नाटपुत्त'[1] (=महावीर) नालन्दामें (ही) वास करते थे। तब निगंठोंका शिष्य (=जैन) असि-बन्धक-पुत्र ग्रामणी जहाँ निगंठ नाट-पुत्त (=ज्ञातृ-पुत्र) थे, वहाँ गया। जाकर निगंठ नाट-पुत्तको अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे असि-बन्धक-पुत्र ग्रामणीसे निगंठ नाट-पुत्तने यह कहा—

"आ ग्रामणी! श्रमण गौतमसे वाद (=शास्त्रार्थ) कर, इस प्रकार तेरा सुन्दर कीर्ति-शब्द फैल जायेगा। (लोग कहेंगे)—'असिबन्धकपुत्त ग्रामणीने इतने बड़े ऋद्धि-वाले, इतने महाप्रतापवाले श्रमण गौतमसे वाद किया।"

"भन्ते! मैं इतने बड़े ऋद्धिवाले, इतने महाप्रतापी श्रमण गौतमसे कैसे वाद रोपूँगा?"

"ग्रामणी! आ जहाँ श्रमण गौतम है, वहाँ जा। जाकर श्रमण गौतमसे ऐसे कह— 'भन्ते! भगवान् तो अनेक प्रकारसे कुलोंकी, उन्नति बखानते हैं, अनुरक्षा बखानते हैं, अनुकम्पा (=दया) बखानते हैं?' यदि ग्रामणी! श्रमण गौतम ऐसा पूछे जानेपर, इस प्रकार उत्तर दे—'ऐसा ही है ग्रामणी! तथागत अनेक प्रकारसे कुलोंकी०'। तो तू इस प्रकार कहना— 'तो क्यों भन्ते! भगवान् महान् भिक्षु-संघके साथ, दुर्भिक्ष, दो ईतियोंसे युक्त, श्वेत हड्डियों पूर्ण, जमले सूखे खेतोंवाले (प्रदेश) में चारिका करते हैं? (क्या) भगवान् कुलोंको सतानेके लिये हुये हैं? (क्या) भगवान् कुलोंके उप-घातके लिये हुये हैं।' ग्रामणी! इस प्रकार दोनों ओरसे प्रश्न पूछनेपर श्रमण गौतम न उगलना चाहेगा, न निगलना चाहेगा।"

निगंठ नाट-पुत्तको 'अच्छा भन्ते!' कह असिबन्धक-पुत्र ग्रामणी, आसनसे उठ, निगंठ नाट-पुत्तको अभिवादन कर, प्रदक्षिणाकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये असिबन्धक-पुत्र ग्रामणीने भगवान्से कहा—

"क्या भन्ते! भगवान् तो अनेक०?"

"ऐसा ही है ग्रामणी! तथागत०।"

"तो क्यों भन्ते! भगवान्०?"

"ग्रामणी! आजसे एकानवे कल्प (पूर्व तक), जिसे मैं स्मरण करता हूँ, एक

---

1. नाटपुत्त=ज्ञातृपुत्र। ज्ञातृ लिच्छवियोंकी एक शाखा थी, जो वैशालीके आसपास रहती थी। ज्ञातृसे ही वर्तमान जथरिया शब्द बना है। महावीर और जथरिया दोनोंका गोत्र काश्यप है। आज भी जथरिया भूमिहार ब्राह्मण इस प्रदेशमें बहुत संख्यामें हैं। उनका निवास रत्ती परगना भी ज्ञातृ=नती=रत्ती=रत्तीसे बना है।

कुलको भी नहीं जानता, जो पकी भिक्षाको देने मात्रसे उप-हत (=नष्ट) हो गया हो। बल्कि जो वह कुल आढ्य, महाधन-सम्पन्न, महाभोग-सम्पन्न, बहुत-सोना-चाँदी-युक्त, बहुत-वस्तु-उपकरण-युक्त, बहुत-धन-धान्य-युक्त हैं, वह सभी दानसे हुये, सत्यसे हुये, श्रामण्य (= श्रमण होने) से हुये हैं। ग्रामणी! कुलोंके उपघातके आठ हेतु आठ प्रत्यय (= कार्य) होते हैं। (१) राजा द्वारा उप-घातको प्राप्त होते हैं। (२) या चोरसे०। (३) या आगसे०। (४) या उदक (= पानी) से०। (५) या गड़ा रक्खा (धन अपने) स्थानसे चला जाता है। (६) या अच्छी तौर न की हुई खेती नष्ट हो जाती है। (७) या कुलमें कुल-अंगार पैदा होता है, वह उन भोगोंको उड़ाता, चौपट करता, विध्वंस करता है। (८) आठवां (सभी वस्तुओंकी) अनित्यता है। ग्रामणी! यह आठ हेतु, आठ प्रत्यय कुलोंके उपघातके लिये हैं।' इन आठ हेतुओं आठ प्रत्ययोंके होते हुए भी जो मुझे यह कहे— 'भगवान् कुलोंके उच्छेदके लिये हुये हैं०।' ग्रामणी! (वह) इस बातको बिना छोड़े, इस विचारको बिना छोड़े, इस दृष्टि (= धारणा) को बिना परित्याग किये, ले जाते (= मरते) ही नर्कमें जायगा।' ऐसा कहनेपर असिबन्धक-पुत्र ग्रामणीने भगवान्से कहा—

"आश्चर्य! भन्ते!! आश्चर्य! भन्ते!! जैसे०। आजसे भगवान् मुझे सांजलि शरणागत उपासक धारण करें।"

(निगंठ)-सुत्त।

'ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् नालन्दामें प्रवारिकके आम्रवनमें विहार करते थे।

तब निगंठोंका शिष्य असिबन्धक-पुत्र ग्रामणी जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे असिबन्धक-पुत्र ग्रामणीसे भगवान्ने यह कहा—

"ग्रामणी! निगंठ नाट-पुत्त श्रावकों (=शिष्यों) को क्या धर्म उपदेश करते हैं?"

"भन्ते! निगंठ नाट-पुत्त श्रावकोंको यह धर्म उपदेश करते हैं कि—जो कोई प्राणोंको मारता (—अतिपात) है, वह सभी दुर्गति, नर्कको जाता है। जो कोई बिना दियेको (चोरी) लेता है, वह सभी०। काममें मिथ्याचार (=निषिद्ध स्त्री-प्रसंग) करता है०। जो कोई झूठ बोलता है०। जो जैसे बहुत करके विहरता है, वह उसीसे ले जाया जाता है।' भन्ते! निगंठ नाट-पुत्त श्रावकोंको इस प्रकारसे धर्म उपदेश करते हैं।"

"ग्रामणी! जो (जैसे) बहुत करके विहरता हैं, वह उसीसे ले जाया जाता है? ऐसा होनेपर (निगंठ नाट-पुत्तके वचनानुसार) कोई भी दुर्गति-गामी = नरक-गामी न होगा। तो क्या मानते हो ग्रामणी! जो वह पुरुष रात या दिनमें, समय अ-समयमें प्राण-हिंसा करता है, उसका कौनसा समय अधिकतर होता है, जब वह प्राणीको मारता है या जब वह प्राणीको नहीं मारता?"

"भन्ते! पुरुष रात या दिन समय अ-समय प्राण-हिंसा करता है; (उसमें) वही समय अल्प-तर है; जब कि वह प्राण-हिंसा करता है, और वही समय अधिकतर है, जब कि वह प्राण-हिंसा नहीं करता।"

---

१. सं नि. ४०:१:७।

"ग्रामणी 'जो जैसे बहुत करके विहार करता है, उसीसे वह (नरक) ले जाया जाता है'—ऐसा होनेपर, निगंठ नाट-पुत्तके वचनानुसार कोई भी दुर्गति-गामी नरक-गामी न होगा। तो क्या मानते हो ग्रामणी! जो पुरुष रात या दिन समय अ-समय चोरी करता है, उसका कौनसा समय अधिकतर होता है, जब कि वह चोरी करता है, या जब कि वह चोरी नहीं करता ?"

"भन्ते ! जब वह पुरुष रात या दिन समय अ-समय चोरी करता है, (उसमें) वही समय अल्पतर है, जब कि वह चोरी करता है (और) वही समय अधिकतर है जब कि वह चोरी नहीं करता।"

"ग्रामणी! 'जो बहुत०।' ऐसा होनेपर तो निगंठ नाट-पुत्तके वचनानुसार कोई भी दुर्गति-गामी नरक-गामी न होगा। तो क्या मानते हो, ग्रामणी! ०काम-मिथ्याचार०। ०मृषावाद०। ग्रामणी! कोई-कोई प्राणी ऐसी धारणा=दृष्टि (=वाद) वाला होता है—'जो कोई प्राण मारता है, वह सभी अपाय-गामी नरक-गामी होता है; ०चोरी०; ०काम-मिथ्याचार०; ०मृषा-वाद०।' ऐसे शास्ता (=गुरु) में ग्रामणी! श्रावक (= शिष्य) श्रद्धावान् होता है। उसको ऐसा होता है—मेरे शास्ताका यह वाद=यह दृष्टि है—'जो कोई प्राण मारता है; वह अपाय-गामी निरय-गामी होता है।' 'मैंने प्राणोंको मारा है, (अतः) मैं अपायगामी निरय-गामी हूँ' इस दृष्टि (=धारणा) को पाता है। ग्रामणी! इस वचनको बिना छोड़े इस विचारको बिना छोड़े, इस दृष्टिको बिना परित्याग किये, ले जाते (मरते) वह निरयमें (पड़ेगा)। ०मेरा शास्ता० चोरी०। ०काम-मिथ्याचार०। ०मृषा-वाद०।

"यहाँ ग्रामणी! 'अर्हत्, सम्यक्-संबुद्ध, विद्या-आचरण-संपन्न, सुगत, लोक-विद्, अनुपम पुरुष-दम्य-सारथी, देव-मनुष्योंके शास्ता (=उपदेशक), बुद्ध भगवान्' तथागत लोकमें उत्पन्न होते हैं। वह अनेक प्रकारसे प्राण-हिंसाकी निन्दा = विगर्हणा करते हैं। 'प्राण-हिंसा विरत होओ'—कहते हैं। वह अनेक प्रकारसे चोरी०। ०काम-मिथ्याचार०। ०मृषावाद०। ऐसे शास्तामें ग्रामणी! (जब) श्रावक श्रद्धालु होता है। वह इस प्रकार विचारता है—भगवान् अनेक प्रकारसे प्राण-हिंसाकी निन्दा=विगर्हणा करते हैं, 'प्राण-हिंसा विरत होओ' कहते हैं। मैंने भी जितनी तितनी प्राण-हिंसाकी है, सो अच्छा नहीं, ठीक नहीं। मैं भी उसके कारण संताप करता हूँ—'काश ! यदि मैंने उस पाप-कर्मको न किया होता।' वह इस प्रकार विचार कर, उस प्राण-हिंसाको छोड़ता है, आगेके लिये प्राण हिंसासे विरत होता है। इस प्रकार इस पापकर्मका परित्याग करता है, इस प्रकार इस पापकर्मसे हटता है। ०भगवान् अनेक प्रकारसे चोरी०। ०काम-मिथ्याचार०। ०मृषावाद।

"(फिर) वह प्राण-अतिपात (=प्राण-हिंसा) छोड़, प्राण-अतिपातसे विरत होता है।० अदत्त-आदान (=चोरी) छोड़०। ०काम-मिथ्याचार०। ०मृषा-वाद०। ०पिशुन-वचन (=चुगली)०। ०परुष-वचन (=कठोर-वचन)०। ०संप्र-प्रलाप (=संप्रलाप=बकवाद), ०अभिध्या (=लोभ) को छोड़ अन्-अभिध्यालु (=अलोभी)०। ०व्यापाद (=द्रोह) छोड़, अ-व्यापन्न-चित्त (=अ-द्रोह-चित्त)०। मिथ्या-दृष्टि (=झूठी धारणा) छोड़, सम्यक्-दृष्टि (=सच्ची धारणावाला) होता है। सो ग्रामणी! वह आर्य-श्रावक (=आर्य

धारणावाला शिष्य) इस प्रकार अभिध्या-रहित, व्यापाद-रहित, संमोह-रहित जानकार, सुननेवाला हो, मित्र-भाव-युक्त-चित्तसे एक दिशाको पूर्ण कर विहार करता है। ०दूसरी दिशा०। ०तीसरी दिशा०। ०चौथी दिशा०। इस प्रकार ऊपर नीचे, आड़े-बेड़े सबका विचार करनेवाला, सबके अर्थ; विपुल, महान्, प्रमाण-रहित, वैर-रहित, व्यापाद-रहित, मित्रता-भाव-युक्त चित्तसे सभी लोकको पूर्ण कर विहार करता है। जैसे ग्रामणी! बलवान् शंख बजानेवाला थोड़ी ही मेहनतसे चारों दिशाओंको (शब्द) सूचित कर देता है; इसी प्रकार ग्रामणी! इस प्रकार भावनाकी गई—मैत्रीभावना,=इस प्रकार बढ़ाई चित्त-विमुक्ति, जिस प्रमाणमें की जाये, वहाँ अव-शिष्ट (=खतम) नहीं होतीं; वह वहाँ अव-शिष्ट नहीं होती।

"ग्रामणी! वह आर्य-श्रावक इस प्रकार लोभ-रहित, द्रोह-रहित, मोह-रहित, जानकार सुननेवाला एक दिशाको करुणा-युक्त चित्तसे पूर्ण कर विहार करता है। ०दूसरी दिशा०। ०तीसरी दिशा०। ०चौथी दिशा०।०। ०मुदिता-युक्त चित्तसे०। "०उपेक्षा-सहित चित्तसे०।"

(भगवान्‌के) ऐसा कहनेपर असिबन्धक-पुत्र ग्रामणीने भगवान्‌से कहा—"आश्चर्य !! भन्ते! आश्चर्य !! भन्ते !! ०उपासक धारण करें।"

पिंड-सुत्त।

[1](ऐसा मैंने सुना) - एक समय भगवान् मगधमें पंचशाला ब्राह्मण-ग्राममें विहार करते थे।

उस समय पंचशाला ब्राह्मण-ग्राममें कुमारियोंका त्योहार था। तब भगवान्‌ने पूर्वाह्न समय पहिन कर पात्र-चीवर ले पंचशाला ब्राह्मण-ग्राममें प्रवेश किया। उस समय पंचशालाके ब्राह्मण गृहस्थ, मारके आवेशमें थे—'(जिसमें) श्रमण गौतम पिंड न पावे।' भगवान् जैसे पात्र लिये पंचशाला ब्राह्मण-ग्राममें प्रविष्ट हुये थे, वैसे ही धुले पात्रके साथ निकल आये। तब मार पापी जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, जा कर भगवान्‌से बोला—

"श्रमण! क्या तुम्हें पिंड नहीं मिला?"

"पापी! वैसा ही तो तूने किया, जिसमें पिंड न पाऊँ।"

"भन्ते! भगवान् दूसरी बार पंचशाला ब्राह्मण-ग्राममें प्रवेश करें, मैं वैसा करूँगा, जिसमें भगवान् पिंड पावें।"

"मारने तथागतसे लाग लगा अ-पुण्य (=पाप) कमाया।
पापी! क्या तू समझता है कि, तुझे पाप न लगेगा॥"

अहो! हम सुखसे जीते हैं, जिन हमारे (लोगोंके) पास (कुछ) नहीं है।
[2]आभास्वर देवताओंकी भाँति हम प्रीति-रूपी भोजनके खानेवाले हैं।"

तब मार पापी—"भगवान् मुझे पहिचानते हैं, सुगत मुझे पहिचानते हैं"—(कह) वहीं अन्तर्धान होगया।

× × × ×

---

१. सं. नि. ४:२:८।
२. एक देव-समुदाय।

(४)

मागंदिय-संवाद (ई० पू० ५१७) ।

[1]एक समय भगवान्‌ने...कुरु देशके कल्मापदम्य (=कम्मासदम्म)-निगम (=कस्बा)-निवासी मागन्दिय ब्राह्मणका स्त्री-सहित अर्हत्-पद-प्राप्तिका भविष्य देख,... वहाँ जाकर, कल्मापदम्मके पास किसी वन-खण्डमें बैठ (अपना) सुवर्ण-प्रभास प्रकट किया। मागन्दिय भी उस समय वहाँ मुँह धोनेके लिये जा, सुवर्ण-तेज देख—'यह क्या है' इधर उधर देखते, भगवान्‌को देख सन्तुष्ट हुआ। उसकी कन्या सुवर्ण-वर्णा थी। उस (कन्या) को बहुतसे क्षत्रिय-कुमार आदि चाहते हुये भी न पा सके थे। ब्राह्मणका ख्याल था—'(किसी) सुवर्ण-वर्ण श्रमणको ही दूँगा। उसने भगवान्‌को देखकर—'यह मेरी कन्याके समान वर्णका है, इसीको इसे दूँगा' निश्चय किया; इसलिये देखते ही सन्तुष्ट हो गया।

उसने वेगसे घर जाकर ब्राह्मणीसे कहा—

"भवती (=आप)! भवती! मैंने बेटीके समान वर्णका पुरुष देख लिया। बेटीको अलंकृत करो, इसे उसको दिखाऊँगा।"

ब्राह्मणीके लड़कीको सुगंधित जलसे नहला वस्त्र, पुष्प, अलंकारसे अलंकृत करते करते ही, भगवान्‌की भिक्षाचारकी वेला आगई। तब भगवान् कम्मासदम्ममें पिंडके लिये प्रविष्ट हुये। वह दोनों भी कन्याको ले भगवान्‌के बैठनेकी जगहपर पहुँचे। भगवान्‌को वहाँ न देख, ब्राह्मणीने इधर उधर ताकते, भगवान्‌के बैठनेके स्थानपर तृण-विछा देखा।... ब्राह्मणीने कहा—

"ब्राह्मण! यह उसका तृण-संस्तर-(=तृण-आसन) है?" "हाँ, भवती!"

"तो ब्राह्मण! हमारे आनेका काम पूरा न होगा।"

"भवती! क्यों?"

"ब्राह्मण! देखो, तृण-संस्तर कामके जीतनेवाले पुरुषका होनेमें असाधारण नहीं हुआ है।"

"मत भवती! मंगल खोजते समय अमंगल (की बात) कहो।"

फिर ब्राह्मणीने इधर उधर विचर कर भगवान्‌के पद-चिन्हको देख कर कहा—"देखो ब्राह्मण! पद चिन्ह; यह राग (=जोश) काममें लिप्त नहीं है।"

"भवती! तुम कैसे जानती हो?"

ऐसा कहनेपर अपने ज्ञान-बलको दिखलाती हुई बोली—"राग युक्तका पद उकड़ूँ होता है, द्वेष-युक्तका पद निकला हुआ होता है। मोह-युक्तका सहसा दबा होता है, मल-रहितका पद ऐसा होता है।"

उनकी यह कथा हो (ही) रही थी, कि भगवान् भिक्षा समाप्त कर उस वन-खंडमें आगये। ब्राह्मणीने सुन्दर लक्षणोंसे युक्त...भगवान्‌के रूपको देखकर, ब्राह्मणसे कहा—

---

१. सुत्तनिपात अ. क. ४ : ९ । २. मेरठ कमिश्नरी ।

"ब्राह्मण ! इन्हींको तुमने देखा था ?"

"हाँ, भवती !"

"आनेका काम पूरा न होगा। ऐसे लोग कामोपभोग (=काम-भोग) करें, यह संभव नहीं।"

उनके इस प्रकार बात करते समय, भगवान् तृणासनपर बैठ गये। ब्राह्मण बायें हाथसे कन्या और दाहिने हाथसे कमंडल पकड़े, भगवान्‌के पास जा (बोला)—

"हे प्रव्रजित ! आप भी सुवर्ण-वर्ण हो, और यह कन्या भी; यह तुम्हारे योग्य है। इसको मैं तुम्हें भार्या करनेके लिये देता हूँ, जल-सहित इस कन्याको ग्रहण करो।"

और देनेकी इच्छासे खड़ा रहा। भगवान्‌ने ब्राह्मणसे न बोल दूसरेसे बोलनेकी भाँति···गाथा कही—

"(मार-कन्यायें) तृष्णा, अ-रति और रागको देख कर भी मैथुनमें मेरा विचार नहीं हुआ। यह मल-मूत्र-पूर्ण क्या है, जिसे (मनुष्य) पैरसे भी छूना न चाहे।"

(मागन्दिय)—"बहुतसे नरेन्द्रोंसे प्रार्थित इस नारी-रत्नको यदि नहीं चाहते।

तो अपनी दृष्टि शील-व्रत जीवन-भावमें उत्पत्तिको कैसा कहते हो ?"

भगवान्—"मागन्दिय !—धर्मोंका अन्वेषण करके मुझे 'मैं यह कहता हूं' यह धारणा नहीं हुई।

मैंने दृष्टियों (= वादों) को देख (उन्हें) न ग्रहण कर, चुनते हुए आत्म-शांतिको ही देखा" ॥ (१)

मागन्दिय—"जितने सिद्धान्त कल्पित किये गये हैं, हे मुनि ! (तुम) उनको न ग्रहण करनेको कहते हो।

तो अध्यात्म-शांति (नामक) इस पदार्थको (आप) धीरने कैसे जाना ?" (२)

भगवान्—"मागन्दिय ! न दृष्टिसे, न श्रुति (=श्रवण, वेद) से, न ज्ञानसे, न शीलसे, न व्रतसे शुद्धि कहता हूं।

अ-दृष्टि, अ-श्रुति, अ-ज्ञान, अ-शील, अ-व्रतसे भी नहीं।

(जो) इनको छोड़ते इनको न ग्रहण करते हुये एक (भी) भव (=जन्म)को न चाहे" (३)

मागन्दिय—"यदि न दृष्टिसे न श्रुतिसे न ज्ञानसे न शीलसे न व्रतसे शुद्धि कहते हो।

और अ-दृष्टि अ-श्रुति अ-ज्ञान अ-शील और अ-व्रतसे भी नहीं।

तो मैं समझता हूं, कि कोई कोई (लोग) दृष्टिसे अत्यन्त मोह-पूर्ण धर्मंहीको शुद्धि जानते हैं ॥ (४)

भगवान्—"मागन्दिय ! दृष्टिके विषयमें बार बार पूछते हुये, तू धारणकी हुई (दृष्टियोंमें) मोह-युक्त है।

यहाँ (अध्यात्म-शांतिमें) थोड़ा भी नहीं जानते, अतएव तू इसको मोह-पूर्ण कहता है। (५)

"जो सम अधिक या न्यून समझता है, वह विवाद करता है।

तीनों भेदोंमें (जो) अचल है, (उसके लिये) सम, विशेष (और न्यून) नहीं होता ॥ (६)

"हे ब्राह्मण ! 'सत्य है' यह किसे कहे, 'झूठ है' यह (कह) किससे विवाद करे।

धर्मको देखता विहरता है। 'काया है' यह स्मृति, ज्ञान और स्मृतिके प्रमाणके लिये उपस्थित रहती है। (तृष्णा आदिमें) अ-लग्न हो विहरता है। लोकमें कुछ भी (मैं, और मेरा करके) नहीं ग्रहण करता। इस प्रकार भी भिक्षुओ! भिक्षु कायामें काय-बुद्धि रखते विहरता है।

[1]फिर भिक्षुओ! भिक्षु जाते हुये 'जाता हूँ' जानता है। बैठे हुये 'बैठा हूँ' जानता है। सोये हुये 'सोया हूँ' जानता है। जैसे जैसे उसकी काया अवस्थित होती है, वैसे ही उसे जानता है। इसी प्रकार कायाके भीतरी भागमें कायानुपश्यी हो विहरता है। कायाके बाहरी भागमें कायानुपश्यी विहरता है। कायाके भीतरी और बाहरी भागोंमें कायानुपश्यी विहरता है। कायामें समुदय-(उत्पत्ति)-धर्म देखता विहरता है, ०व्यय-(=विनाश) धर्म०, ०समुदय-व्यय-धर्म० ।०।

[2]और भिक्षुओ! भिक्षु गमन-आगमन जानते (=अनुभव करते) हुये करता है। आलोकन=विलोकन जानते हुये करता है। सिकोड़ना फैलाना० [3]संघाटी, पात्र, चीवरका धारण जानते हुये करता है। आसन, पान, खादन, आस्वादन, जानते हुये करता है। पाखाना (=उच्चार), पेशाब (=पस्साव), जानते हुये करता है। चलते, खड़े होते, बैठते, सोते, जागते, बोलते, चुप रहते, जानकर करनेवाला होता है। इस प्रकार कायाके भीतरी भागमें कायानुपश्यी हो विहरता है।०।

[4]और भिक्षुओ! भिक्षु पैरके तलवेसे ऊपर केश-मस्तकसे नीचे, इस कायाको नाना प्रकारके मलोंसे पूर्ण देखता (=अनुभव करता) है—इस कायामें हैं—केश, रोम, नख, दाँत, त्वक् (=चमड़ा), माँस, स्नायु, अस्थि, अस्थि (के भीतरकी)-मज्जा, वृक्क, हृदय (कलेजा), यकृत्, क्लोमक प्लीहा (=तिल्ली), फुफ्फुस, आँत, पतली आँत (=अंत-गुण) उदरस्थ (वस्तुयें), पाखाना, पित्त, कफ, पीब, लोहू, पसीना, मेद (=चर), आँसू, वसा (=चर्बी), लार, नासा-मल, [5]लसिका-स्थित, और मूत्र। जैसे भिक्षुओ! नाना अनाज शाली, व्रीही (=धान), मूँग, उड़द, तिल, तण्डुलसे दोनों मुखभरी डेहरी (मुटौली, पुटोली) हो, उसको आँखवाला पुरुष खोल कर देखे—यह शाली है, यह व्रीही है, यह मूँग है, यह उड़द है, यह तिल है, यह तंडुल है। इसी प्रकार भिक्षुओ! भिक्षु पैरके तलवेके ऊपरसे केश-मस्तकसे नीचे इस कायाको नाना प्रकारके मलोंसे पूर्ण देखता है—इस कायामें हैं०। इस प्रकार कायाके भीतरी भागमें कायानुपश्यी हो विहरता है।०।

"और फिर भिक्षुओ! भिक्षु इस कायाको (इसकी) स्थितिके अनुसार (इसकी) रचनाके अनुसार देखता है—इस कायामें हैं—पृथिवी-धातु (=पृथिवी महाभूत), आप (=जल)-धातु, तेज (=अग्नि)-धातु, वायु-धातु। जैसे कि भिक्षुओ! दक्ष (=चतुर) गोघातक या गो-घातकका अन्तेवासी, गायको मार कर बोटी-बोटी काट कर चौरस्ते पर बैठा हो। ऐसे ही भिक्षुओ! भिक्षु इस कायाको स्थितिके अनुसार, रचनाके अनुसार देखता है।०। इस प्रकार कायाके भीतरी भागको०।

---

१. यही ईर्यापथ है। २. यही संप्रजन्य है। ३. भिक्षुओंकी दोहरी चादर। ४. प्रतिकूल-मनसिकार। ५. जोड़ोंका तरल पदार्थ।

"और भिक्षुओ ! भिक्षु एक दिनके मरे, दो दिनके मरे, तीन दिनके मरे फूले नीले पड़ गये, पीव-भरे, (मृत-) शरीरको श्मशानमें फेंकी देखे। (और उसे) वह इसी (अपनी) कायापर घटावे—यह भी काया इसी धर्म (=स्वभाव) वाली, ऐसा ही होनेवाली, इससे न बच सकनेवाली है। इस प्रकार कायाके भीतरी भाग० ।०।

"और भी भिक्षुओ ! भिक्षु कौओंसे खाये जाते, चील्होंसे खाये जाते, गिद्धोंसे खाये जाते, कुत्तोंसे खाये जाते, नाना प्रकारके जीवोंसे खाये जाते, श्मशानमें फेंके (मृत) शरीरको देखे। वह इसी (अपनी) कायापर घटावे—यह भी काया०।०।

"और भिक्षुओ ! भिक्षु माँस-लोहू-नसोंसे बँधे हड्डी-कंकालवाले शरीरको श्मशानमें फेंका देखे०।०।

"०माँस-रहित लोहू-लगे, नसोंसे बँधे० ।०। ० माँस-लोहू-रहित नसोंसे बँधे० ।०। ० बंधन-रहित हड्डियोंको दिशा-विदिशामें फेंकी देखे—कहीं हाथकी हड्डी है, ०पैरकी हड्डी० ०जंघाकी हड्डी०, ०उरुकी हड्डी०, कमरकी हड्डी०, ०पीठके काँटे०, ०खोपड़ी०; और इसी (अपनी) कायापर घटावे० ।०।

"और भिक्षुओ ! भिक्षु शंखके समान वर्णवाली सफेद हड्डीवाले शरीरको श्मशानमें फेंका देखे० ।०। ० वर्षों-पुरानी जमाकी हड्डियोंवाले० ।०। ० सड़ी चूर्ण-हो गई हड्डियोंवाले० ।०।

"कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु [2]वेदनाओंमें वेदनानुपश्यी (हो) विहरता है ? भिक्षुओ ! भिक्षु सुख-वेदनाको अनुभव करते 'सुखवेदना अनुभव कर रहा हूँ' जानता है। दुःख-वेदनाको अनुभव करते 'दुःखवेदना अनुभव कर रहा हूँ' जानता है। अदुःख-असुख वेदनाको अनुभव करते 'अदुःख-असुख-वेदना अनुभव कर रहा हूँ' जानता है। स-आमिष (=भोग-पदार्थ-सहित) सुख-वेदनाको अनुभव करते० निर्-आमिष सुख-वेदना०। स-आमिष दुःख-वेदना०। निर्-आमिष दुःख-वेदना०। स-आमिष अदुःख-असुख-वेदना०। निर्-आमिष अदुःख-असुख-वेदना०। इस प्रकार कायाके भीतरी भाग० ।०।

"कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु चित्तमें [3]चित्तानुपश्यी हो विहरता है ? यहाँ भिक्षुओ ! भिक्षु स-राग चित्तको 'स-राग चित्त है' जानता है। विराग (=राग-रहित) चित्तको 'विराग चित्त है' जानता है। स-द्वेष चित्तको 'सद्वेष चित्त है' जानता है। वीत-द्वेष (=द्वेष-रहित) चित्तको 'वीत-द्वेष चित्त है' जानता है। स-मोह चित्तको०। वीत-मोह चित्तको०। संक्षिप्त चित्तको०। विक्षिप्त चित्तको०। महद्-गत (=महापरिमाण) चित्तको०। अ-महद्गत चित्तको०। स-उत्तर०। अन्-उत्तर (=उत्तम)०। समाहित (=एकाग्र)०। अ-समाहित०। विमुक्त०। अ-विमुक्त०। इस प्रकार कायाके भीतरी भाग० ।०।

"कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु धर्मोंमें [4]धर्मानुपश्यी हो विहरता है ? भिक्षुओ ! भिक्षु पाँच नीवरण धर्मोंमें धर्मानुपश्यी (हो) विहरता है। कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु पाँच [5]नीवरण धर्मोंमें

---

* केहुनी आदि जोड़ोंमें स्थित तरल पदार्थ। * धातु—मनसिकार। १. चौदह (१) कायानुपश्यना समाप्त। २. (२) वेदनानुपश्यना।

३. (३) चित्तानुपश्यना। ४. (४) धर्मानुपश्यना। ५. पाँच नीवरण—कामच्छन्द, व्यापाद, स्त्यानमृद्ध, औद्धत्य-कौकृत्य, विचिकित्सा।

धर्मानुपश्यी हो विहरता है ? यहाँ भिक्षुओ ! भिक्षु विद्यमान भीतरी काम-छन्द (=कामुकता)को 'मेरेमें भीतरी काम-च्छन्द विद्यमान है' जानता है। अ-विद्यमान भीतरी कामच्छन्दको 'मेरेमें भीतरी कामच्छन्द नहीं विद्यमान है'—जानता है। अन्-उत्पन्न कामच्छन्दकी जैसे उत्पत्ति होती है—उसे जानता है। जैसे उत्पन्न हुये कामच्छन्दका प्रहाण (=विनाश) होता है, उसे जानता है। जैसे विनष्ट कामच्छन्दकी आगे फिर उत्पत्ति नहीं होती, उसे जानता है। विद्यमान भीतरी व्यापाद (=द्रोह)को—'मेरेमें भीतरी व्यापाद विद्यमान है'—जानता है। अ-विद्यमान भीतरी व्यापादको—'मेरेमें भीतरी व्यापाद नहीं विद्यमान है'—जानता है। जैसे अन्-उत्पन्न व्यापाद उत्पन्न होता है, उसे जानता है। जैसे उत्पन्न व्यापाद नष्ट होता है, उसे जानता है। जैसे विनष्ट व्यापाद आगे फिर नहीं उत्पन्न होता, उसे जानता है। विद्यमान भीतरी स्त्यान-मृद्ध (=थीन-मृद्ध=मनकी अलसता)० ।०।

० भीतरी औद्धत्य-कौकृत्य (=उद्धच-कुक्कुच=उद्वेग-खेद,) ०।०।

० भीतरी विचिकित्सा (=संशय) ०।०।

"इस प्रकार भीतर धर्मोंमें धर्मानुपश्यी हो विहरता है। बाहर धर्मोंमें (भी) धर्मानुपश्यी हो विहरता है। भीतर-बाहर०। धर्मोंमें समुदय (=उत्पत्ति) धर्मका अनुपश्यी (=अनुभव करनेवाला) हो विहरता है।० व्यय (=विनाश)-धर्म०। ०उत्पत्ति-विनाश-धर्म०। स्मृतिके प्रमाणके लिये ही, 'धर्म है' यह स्मृति उसकी बराबर विद्यमान रहती है। वह (तृष्णा आदिमें) अ-लग्न हो विहरता है। लोकमें कुछ भी (मैं और मेरा) करके ग्रहण नहीं करता। इस प्रकार भिक्षुओ ! भिक्षु धर्मोंमें धर्म-अनुपश्यी हो विहरता है।

"और फिर भिक्षुओ ! भिक्षु, पांच उपादान स्कंध[1] धर्मोंमें धर्म-अनुपश्यी हो विहरता है। कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु पांच उपादानस्कंध धर्मोंमें धर्म-अनुपश्यी हो विहरता है ? भिक्षुओ ! भिक्षु (अनुभव करता है)–'यह रूप है', 'यह रूपकी उत्पत्ति (=समुदय)', 'यह रूपका अस्त-गमन (=विनाश) है'। ०संज्ञा०। ०संस्कार०। ०विज्ञान०। इस प्रकार अध्यात्म (=शरीरके भीतरी) धर्मोंमें धर्म-अनुपश्यी हो विहरता है। बहिर्धा (=शरीरके बाहरी) धर्मोंमें धर्म-अनुपश्यी०। शरीरके भीतर-बाहरी। धर्मों (=वस्तुओं) में समुदय (=उत्पत्ति)-धर्मको अनुभव करता विहरता है। वस्तुओंमें विनाश (=व्यय)–धर्मको अनुभव करता विहरता है। वस्तुओंमें उत्पत्ति-विनाश-धर्मको अनुभव करता विहरता है। सिर्फ ज्ञान और स्मृतिके प्रमाणके लिये ही 'धर्म है' यह स्मृति उसको बराबर विद्यमान रहती है। वह अ-लग्न हो विहरता है। लोकमें कुछभी नहीं ग्रहण करता। इस प्रकार भिक्षुओ ! भिक्षु पाँच उपादान-स्कंधोंमें धर्म (=स्वभाव) अनुभव करता (= धर्म-अनुपश्यी) विहरता है।

"और फिर भिक्षुओ ! भिक्षु छ आध्यात्मिक (= शरीरके भीतरी), बाह्य (= शरीरके बाहरी) आयतन[2] धर्मोंमें धर्म अनुभव करता विहरता है। कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु छ भीतरी बाहरी आयतन (=रूपी) धर्मोंमें धर्म अनुभव करता विहरता है ? भिक्षुओ ! भिक्षु चक्षुको

१. स्कंध—रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान। २. आयतन—चक्षु, श्रोत्र, घ्राण (=नासिका), जिह्वा (=रसना), काय (=त्वक्), मन। इनमें पहिले पाँच बाह्य आयतन हैं, मन आध्यात्मिक (=शरीरके भीतरका) आयतन है।

अनुभव करता है, रूपोंको अनुभव करता है, औरजो उन दोनों (=चक्षु और रूप) करके संयोजन उत्पन्न होता है, उसे भी अनुभव करता है। जिस प्रकार अन्-उत्पन्न संयोजनकी उत्पत्ति होती है, उसे भी जानता है। जिस प्रकार उत्पन्न संयोजनका प्रहाण (= विनाश) होता है, उसे भी जानता है। जिस प्रकार प्रहीण (= विनष्ट) संयोजनकी आगे फिर उत्पत्ति नहीं होती, उसे भी जानता है। श्रोत्रको अनुभव करता है; शब्दको अनुभव करता है०। घ्राण (सूंघनेकी शक्ति, घ्राण-इन्द्रिय) को अनुभव करता है। गंधको अनुभव करता है०। जिह्वा० रस०।०। काया (= त्वक्-इंद्रिय ठंडा गर्म आदि जाननेकी शक्ति)०, स्प्रष्टव्य (= ठंडा गर्म आदि) ०।०। मनको अनुभव करता है। धर्म (= मनका विषय) को अनुभव करता है। दोनों (=मन और धर्म) करके जो [1]संयोजन उत्पन्न होता है, उसको भी अनुभव करता है।०। इस प्रकार अध्यात्म (=शरीरके भीतर) धर्मों (=पदार्थों) में धर्म (=स्वभाव) अनुभव करता विहरता है, बहिर्धा (= शरीरके बाहर)०, अध्यात्म—बहिर्धा०। धर्मोंमें उत्पत्ति-धर्मको०, ०विनाश-धर्मको०, ०उत्पत्ति-विनाश-धर्मको०। सिर्फ ज्ञान और स्मृतिके प्रमाणके लिये०। इस प्रकार भिक्षुओ! भिक्षु शरीरके भीतर और बाहर वाले छ आयतन धर्मों (=पदार्थों) में धर्म (=स्वभाव) अनुभव करता विहरता है।

"और भिक्षुओ! भिक्षु सात [2]बोधि-अङ्ग धर्मों (=पदार्थों) में धर्म (=स्वभाव) अनुभव करता विहरता है। कैसे भिक्षुओ!० ? भिक्षुओ! भिक्षु विद्यमान भीतरी (=अध्यात्म) स्मृति संबोधि-अङ्गको 'मेरे भीतर स्मृति संबोधि-अङ्ग है' अनुभव करता है। अ- विद्यमान भीतरी स्मृति संबोधि-अङ्गको 'मेरे भीतर स्मृति संबोधि-अङ्ग नहीं है' अनुभव करता है। जिस प्रकार अन्-उत्पन्न स्मृति संबोधि-अङ्गकी उत्पत्ति होती है, उसे जानता है। जिस प्रकार उत्पन्न स्मृति संबोधि-अङ्गकी भावना परिपूर्ण होती है, उसे भी जानता है।० भीतरी धर्म-विचय (=धर्म-अन्वेषण) संबोधि-अङ्ग०। ०वीर्य०। ०प्रीति०। ०प्रश्रब्धि०। ०समाधि०। विद्यमान भीतरी उपेक्षा संबोधि-अङ्गको 'मेरे भीतर उपेक्षा संबोधि-अङ्ग है' अनुभव करता है। अ-विद्यमान भीतरी उपेक्षा संबोधि-अङ्गको 'मेरे भीतर उपेक्षा संबोधि-अङ्ग नहीं है' अनुभव करता है। जिस प्रकार अन्-उत्पन्न उपेक्षा संबोधि-अङ्गकी उत्पत्ति होती है, उसे जानता है। जिस प्रकार उत्पन्न उपेक्षा संबोधि-अङ्गकी भावना परिपूर्ण होती है, उसे जानता है। इस प्रकार शरीरके भीतरके धर्मोंमें धर्म अनुभव करता विहरता है; शरीरके बाहर०- शरीरके भीतर-बाहर०।०। इस प्रकार भिक्षुओ! भिक्षु शरीरके भीतर और बाहर वाले सात संबोधि-अङ्ग धर्मोंमें धर्म अनुभव करता विहरता है।

"और फिर भिक्षुओ! भिक्षु चार [3]आर्य-सत्य धर्मोंमें धर्म अनुभव करते विहरता है।

---

१. संयोजन दश यह हैं—प्रतिघ (=प्रतिहिंसा), मान(=अभिमान), दृष्टि (=धारणादुराग्रह), विचिकित्सा (=संशय), शील-व्रत-परामर्श (=शील और व्रतका ख्याल), भव-राग (= आवागमन-प्रेम), ईर्षा, मात्सर्य और अ-विद्या। संयोजन=बन्धन। २. सात बोध्यङ्ग—स्मृति, धर्म-विचय (= धर्म-अन्वेषण), वीर्य [= उद्योग), प्रीति (=हर्ष), प्रश्रब्धि (=शांति), समाधि, उपेक्षा। संबोधि=बोधि(=परम ज्ञान)प्राप्त करने में यह परम सहायक हैं, इसलिये इन्हें बोधि-अङ्ग कहा जाता है। ३. आर्य-सत्य चार हैं—दुःख, समुदय, निरोध, निरोध-गामिनी-प्रतिपद् (निरोध मार्ग)

कैसे० ? भिक्षुओ ! 'यह दुःख है' ठीक-ठीक (=यथाभूत=जैसा है वैसा) अनुभव करता है। 'यह दुःखका समुदय (=कारण) है' ठीक ठीक अनुभव करता है। 'यह दुःखका निरोध (=विनाश) है' ठीक ठीक अनुभव करता है। 'यह दुःखके निरोधकी ओर ले जाने वाला मार्ग (= दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद्) है' ठीक ठीक अनुभव करता है।

"भिक्षुओ ! दुःख आर्य-सत्य क्या है ? जन्म भी दुःख है, जरा (=बुढ़ापा) भी दुःख है, व्याधिभी दुःख है, मरना भी दुःख है। शोक करना, रोना-पीटना, दुःख=दौर्मनस्य, उपायास (=परेशानी) भी दुःख हैं। जिस (वस्तु) को इच्छा करके नहीं पाता, वह (न पाना) भी दुःख है। संक्षेपमें पाँच उपादान-स्कंध (=रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान) (सभी) दुःख हैं। जन्म (=जाति) क्या है ? भिक्षुओ, जो उन उन सत्वों (=चित्त-धाराओं) का उन उन प्राणि-समुदायों (=योनियों) में जन्म=संजायन= अवक्रांति=अभि-निर्वृत्ति=स्कंधों (=रूप आदि पाँच) का प्रादुर्भाव=आयतनों (= चक्षुः आदि छ) का लाभ है। यह भिक्षुओ ! जन्म है।

"भिक्षुओ ! जरा (=बुढ़ापा) क्या है ? जो उन उन सत्वोंका उन उन प्राणि-समुदायों में जरा = जीर्णता = दाँत-टूटना (=खांडित्य), = बाल-पकना = चमड़ेमें झुर्री पड़ना = आयुकी समाप्ति = इन्द्रियों का पक जाना, यह भिक्षुओ ! जरा कही जाती है।

"क्या है भिक्षुओ ! मरण ? जो उन सत्वोंका उस प्राणि-निकाय (=योनि) से च्युत होना = च्यवन होना = भेद = अन्तर्धान = मृत्यु = मरण = कालकरना = स्कंधों (= रूप आदि) की जुदाई = कलेवर (= शरीर) का फेंकना (= निक्षेप)। यह है भिक्षुओ ! मरण।

"क्या है भिक्षुओ ! शोक ? 'भिक्षुओ ! जो यह तिन तिन व्यसनों से युक्त, तिन-तिन दुःख-धर्मोंमें लिप्त (पुरुष) का, शोक करना = शोचना = शोचित होना = भीतरी शोक = भीतरी परिशोक। यह है भिक्षुओ ! शोक।

"क्या है भिक्षुओ ! परिदेव ? भिक्षुओ ! जो यह तिन-तिन व्यवसायोंसे युक्त, तिन-तिन दुःख-धर्मों से लिप्त (पुरुष) का आदेव (=रोना-पीटना)=परिदेव=आदेवन=परिदेवन= आदेवित होना = परिदेवित होना। यह है भिक्षुओ ! परिदेव।

"क्या है भिक्षुओ ! दुःख ? भिक्षुओ ! जो यह (= काय-सम्बन्धी) दुःख = कायिक अ-सात = कायके संयोगसे उत्पन्न दुःख = प्रतिकूल वेदना (= अ-सात वेदयित)। यही है भिक्षुओ ! दुःख।

"क्या है भिक्षुओ ! दौर्मनस्य ? जो यह भिक्षुओ ! मानसिक (= चैतसिक) दुःख = मानसिक प्रतिकूलता (अ-सात) = मनके संयोगसे उत्पन्न दुःख = प्रतिकूल वेदना। यही है भिक्षुओ ! दौर्मनस्य।

"क्या है भिक्षुओ ! उपायास ? भिक्षुओ ! जो यह तिन-तिन व्यवसायोंसे युक्त, तिन तिन दुःख-धर्मोंसे लिप्त (पुरुष) का आयास = उपायास = आयासित होना = उपायासित होना (= परेशान होना)। यही है भिक्षुओ ! उपायास।

"क्या है भिक्षुओ ! 'जिसको इच्छा करके भी नहीं पाता वह भी दुःख है' ? 'जन्म-धर्मवाले सत्वों (= प्राणियों) को यह इच्छा होती है—'हा ! हम जन्म-धर्म-वाले न होते,

और हमारा (दूसरा) जन्म न होता।' किंतु यह इच्छासे पाने लायक नहीं है। यह 'जिसको इच्छा करके भी नहीं पाता—यह भी दुःख है'।

"भिक्षुओ! जरा-धर्म-वाले व्याधि-धर्म-वाले, मरण-धर्मवाले, शोक-परिदेव-दुःख-दौर्मनस्य-उपायास-धर्मवाले सत्त्वों (=प्राणियों) को यह इच्छा होती है—'काश! कि हम शोक-परिदेव-दुःख-दौर्मनस्य-उपायास-धर्मवाले न होते, और शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य, उपायास हमारे पास न आते'। —किन्तु यह (केवल) इच्छासे मिलनेको नहीं है। यह 'जिसको इच्छा करके भी नहीं पाता—यह भी दुःख है'।

"कौनसे भिक्षुओ! 'संक्षेपमें पाँच उपादान-स्कंध दुःख हैं'? जैसे—रूप उपादान-स्कंध, वेदना उपादान-स्कंध, संज्ञा उपादान-स्कंध, संस्कार उपादानस्कंध, विज्ञान उपादान-स्कंध। भिक्षुओ! संक्षेपमें यह पाँच उपादान-स्कंध दुःख कहे जाते हैं। इसे ही भिक्षुओ! दुःख आर्य-सत्य कहते हैं।

"क्या है भिक्षुओ! दुःखसमुदय आर्य सत्य! जो यह आवागमन वाली (=पौनर्भविक) तृष्णा, नन्दि-राग (=सुख सम्बन्धी इच्छा)-संयुक्त, तहाँ तहाँ अभिनन्दन करनेवाली- जैसे कि—काम-उपभोगकी तृष्णा, भव (=आवागमन) की तृष्णा, विभवकी तृष्णा उत्पन्न होती है—यहाँ वहाँ घुसकर बैठती है। जो लोकमें प्रियरूप=सात-रूप है, उत्पन्न होनेवाली होनेपर यह तृष्णा, वहाँ उत्पन्न होती है। घुसनेवाली होनेपर वहाँ घुसती है। लोकमें प्रिय-रूप=सात-रूप क्या है? चक्षु (=आँख) लोकमें प्रियरूप=सात-रूप है। तृष्णा उत्पन्न होनेवाली होनेपर यहाँ उत्पन्न होती, घुसनेवाली होनेपर यह घुसती है। और क्या लोकमें प्रिय-रूप=सात-रूप है? श्रोत्र०। ०घ्राण०। ०जिह्वा०। ०काया(=स्पर्श-इन्द्रिय)०। ०मन०। ०रूप०। ०शब्द०। ०गन्ध०। ०रस०। ०स्प्रष्टव्य (=ठण्डा आदि)०। ०धर्म (=मन का विषय)०। ०चक्षुका विज्ञान (=चक्षु और रूपके मिलनेसे जो रूप सम्बन्धी ज्ञान होता है, वह,०। ०श्रोत्रका विज्ञान०। ०घ्राणका विज्ञान०। ०जिह्वाका विज्ञान०। ०कायाका विज्ञान०। ०मनका विज्ञान०। ०चक्षुका संस्पर्श (=रूप और चक्षुका टकराना, छूना)०। ०श्रोत्र-संस्पर्श०। ०घ्राण संस्पर्श०। ०जिह्वा-संस्पर्श०। ०काय-संस्पर्श०। ०मन-संस्पर्श०। ०चक्षु-संस्पर्शसे पैदा हुई वेदना (=रूप और चक्षुके एक-साथ मिलनेके बाद चित्तमें जो दुःख, सुख आदि विकार उत्पन्न होता है)०। ०श्रोत्र-संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना०। ०घ्राण-संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना०। ०जिह्वा-संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना०। ०काय-संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना०। ०मन-संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना०। ०रूप-संज्ञा (=चक्षु और रूपके एक साथ मिलनेपर अनुकूल वेदनाके बादही 'यह अमुक रूप है' ज्ञानको रूप-संज्ञा कहते हैं)०। ०शब्द-संज्ञा०। ०गंध-संज्ञा०। ०रस-संज्ञा०। स्प्रष्टव्य-संज्ञा०। ०धर्म-संज्ञा०। ०रूप-संचेतना(=रूप-ज्ञानके बाद रूपका चिन्तन करना जो होता है)०। ०शब्द-संचेतना०। ०गंध-संचेतना०। ०रस-संचेतना०। ०स्प्रष्टव्य-संचेतना०। ०धर्म-संचेतना०। ०रूप-तृष्णा (रूपके चिन्तनके बाद उसके लिये लोभ)०। ०शब्द-तृष्णा०। ०गंध-तृष्णा०। ०रस-तृष्णा०। ०स्प्रष्टव्य-तृष्णा०। ०धर्म-तृष्णा०। ०रूप-वितर्क (=रूप तृष्णाके बाद उसके विषयमें जो तर्क-वितर्क होता है)०।

०शब्द-वितर्क० । ०गन्ध-वितर्क० । ०रस-वितर्क० ०स्प्रष्टव्य-वितर्क० । ०धर्म-वितर्क० । ०रूपका विचार० । ०शब्द-विचार० । ०गंध-विचार० । ०रस-विचार० । ०स्प्रष्टव्य-विचार० । ०धर्म-विचार० । लोकमें यह (सब) प्रिय-रूप=सात-रूप है । तृष्णा उत्पन्न होनेवाली होनेपर यहीं उत्पन्न होती है, घुसने-वाली होनेपर यहीं घुसती है । भिक्षुओ ! यह दुःख-समुदय आर्य-सत्य कहा जाता है ।

"क्या है भिक्षुओ ! दुःख-निरोध आर्य-सत्य ? उसी तृष्णासे सर्वथा वैराग्य, (उसी तृष्णाका सर्वथा) निरोध = त्याग=प्रतिनिस्सर्ग=मुक्ति = अन्-आलय (=न घर पकड़ना) । भिक्षुओ ! यह तृष्णा कहाँ छोड़ी जानेसे छूटती है—कहाँ निरोध की जानेसे निरुद्ध होती है ? लोकमें जो प्रिय-रूप=सात-रूप है, वहीं छोड़ी जानेपर यह तृष्णा छूटती है—यहीं निरोधकी जानेसे निरुद्ध होती है । क्या है फिर लोकमें प्रिय रूप=सात रूप ? चक्षु लोकमें प्रिय-रूप=सात-रूप है० ।०।०। धर्म-विचार लोकमें प्रिय-रूप=सात-रूप; यहाँ यह तृष्णा छोड़ी जानेपर छूटती है = यहीं निरोधकी जानेपर निरुद्ध होती है । भिक्षुओ । यह दुःख-निरोध आर्य-सत्य कहा जाता है ।

"क्या है भिक्षुओ ! दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् (=दुःख-विनाशकी ओर जानेवाला मार्ग) ? यही (जो) आर्य (= श्रेष्ठ) अष्टांगिक–मार्ग (= आठ अंगोंवाला मार्ग); सम्यक् (=ठीक)-दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक्-वचन, सम्यक्-कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक्, व्यायाम, सम्यक्-स्मृति, सम्यक्-समाधि ।

"क्या है भिक्षुओ ! सम्यक्-दृष्टि ? जो यह दुःख-विषयक ज्ञान, दुःख-समुदय-विषयक ज्ञान, दुःख-निरोध-विषयक ज्ञान, दुःख-निरोधकी-ओर-जानेवाली प्रतिपद्-विषयक ज्ञान । यही कही जाती है, भिक्षुओ ! सम्यक्-दृष्टि ।

"क्या है भिक्षुओ ! सम्यक्-संकल्प ? निष्कर्मता संबन्धी संकल्प, अ-व्यापाद (=अद्रोह) संबन्धी संकल्प, अ-विहिंसा (=अ-हिंसा)–संकल्प, भिक्षुओ ! यह कहा जाता है, सम्यक् (=ठीक, अच्छा)-संकल्प ।

"क्या है भिक्षुओ ! सम्यक्-वचन ? मृषावाद (=झूठ बोलना) से विरत होना (=छोड़ना) पिशुन(चुगलीके)-वचन छोड़ना, परुष (=कड़ी)-वचन छोड़ना, सम्प्रलाप (= बकवाद) छोड़ना । यह है भिक्षुओ ! सम्यक्-वचन है०।

"क्या है भिक्षुओ ! सम्यक्-कर्मान्त ? प्राणातिपात (=प्राण-हिंसा) से विरत होना, बिना दिया-लेनेसे विरत होना, काम (=उपभोग)के मिथ्याचार (=दुराचार)से विरत होना । भिक्षुओ ! यह सम्यक् कर्मान्त कहलाता है ।

"क्या है भिक्षुओ ! सम्यक्-आजीव ? भिक्षुओ ! आर्य श्रावक मिथ्या-आजीव (= रोजगार) छोड़ सम्यक्-आजीव से जीवन-यापन करता है । यही है० सम्यक्-आजीव ।

"क्या है भिक्षुओ ! सम्यक्-व्यायाम ? भिक्षुओ ! भिक्षु अन्-उत्पन्न पापक = अ कुशल धर्मोंकी न उत्पत्तिके लिये निश्चय (= छन्द) करता है, परिश्रम करता है, उद्योग करता है, चित्तको पकड़ता है, रोकता है । उत्पन्न पाप = अ कुशल धर्मोंके प्रहाण (=छोड़ना, विनाश) के लिये निश्चय करता है० । अन्-उत्पन्न कुशल (=अच्छे) धर्मोंकी उत्पत्तिके लिये निश्चय० ।

उत्पन्न कुशल धर्मोंकी स्थिति=अ-विस्मरण, बढ़ती=विपुलता, भावना, परिपूर्णताके लिये निश्चय करता है०। यही है भिक्षुओ ! सम्यक्-व्यायाम।

"क्या है भिक्षुओ ! सम्यक्-स्मृति ? भिक्षुओ ! भिक्षु काय (= शरीर)में काय(धर्म, अशुचि जरा आदि)को अनुभव करता हुआ, उद्योगशील अनुभव-ज्ञान-युक्त हो, लोकमें अभिध्या (=लोभ) और दौर्मनस्य (चित्त-संताप)को छोड़कर विहरता है। वेदनाओंमें०। चित्तमें०। धर्मोंमें०। भिक्षुओ ! यही सम्यक् स्मृति कही जाती है।

"क्या है भिक्षुओ ! सम्यक् समाधि ? भिक्षुओ ! भिक्षु कामसे अलग हो, और अ-कुशल धर्मों (=बुरे विचार आदि)से अलग हो, स वितर्क, स विचार, विवेकसे उत्पन्न प्रीति सुख-वाले प्रथम ध्यानको, प्राप्त हो विहरता है। वितर्क और विचारसे शांत होने पर भीतरी शांति, चित्तकी एकाग्रता, अ-वितर्क, अ-विचार समाधिसे उत्पन्न प्रीति सुख-वाले द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। प्रीतिसे भी विरक्त, और उपेक्षक हो, स्मृति-मान् संप्रजन्य (=अनुभव) वान् हो, कायासे सुखको भी अनुभव करता हुआ; जिसको कि आर्य लोग उपेक्षक, स्मृतिमान्, सुख-विहारी कहते हैं; (वैसे) तृतीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। सुख और दुःखके प्रहाण (=परित्याग)से; सौमनस्य (=चित्तोल्लास) और दौर्मनस्य (=चित्त-सन्ताप)के पहिले ही अस्त होजानेसे, अ-दुःख, अ-सुख, उपेक्षा स्मृतिकी परिशुद्धता (रूपी) चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। यह है कही जाती भिक्षुओ ! सम्यक्-समाधि।

"यह कही जाती है भिक्षुओ ! दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् आर्य सत्य।

"इस प्रकार भीतरी धर्मोंमें धर्मानु-पश्यी हो विहरता है।०। अ-लग्न हो विहरता है। लोक में किसी (वस्तु) को भी (मैं और मेरा) करके नहीं ग्रहण करता। इस प्रकार भिक्षुओ ! भिक्षु चार आर्य-सत्य धर्मोंमें धर्मानुपश्यी हो विहरता है।

"जो कोई भिक्षुओ ! इन चार स्मृति-प्रस्थानों की इस प्रकार सात वर्ष भावना करे, उसको दो फलोंमें एक फल (अवश्य) होना चाहिये—इसी जन्ममें आज्ञा (= अर्हत्व) का साक्षात्कार, या [1]उपाधि शेष होनेपर अनागामि-भाव। रहने दो भिक्षुओ ! सात वर्ष, जो कोई इन चार स्मृति-प्रस्थानोंको इस प्रकार छ वर्ष भावना करे०। ०पाँच वर्ष०। चार वर्ष०। ०तीन वर्ष०। ०एक वर्ष। ०सात मास०। ०छः मास०। ०पाँच मास०। ०चार मास०। ०तीन मास०। ०दो मास०। ०एक मास०। ०अर्द्ध मास०। ० सप्ताह०।

"भिक्षुओ ! 'यह जो चार स्मृति प्रस्थान हैं'; वह सत्वोंके शोक-कष्टकी विशुद्धिके लिये, दुःख दौर्मनस्यके अतिक्रमणके लिए, न्याय (= सत्य) की प्राप्तिके लिये, निर्वाण की प्राप्ति और साक्षात् करनेके लिये, एकायन मार्ग है।' यह जो (मैंने) कहा, इसी कारणसे कहा।"

भगवान्‌ने यह कहा, उन भिक्षुओंने सन्तुष्ट हो, भगवान्‌के वचनको अभिनन्दित किया।

× × × ×

---

1. दुःखका कारण तृष्णा आदि।

(६)

महानिदान-सुत्त (ई. पू. ५९७)

¹ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् कुरु देशमें, कुरुओंके निगम कम्मासदम्ममें विहार करते थे।

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌से कहा—

"आश्चर्य है भन्ते! अद्भुत है, भन्ते! कितना गम्भीर है, और गम्भीरसा दीखता है... यह प्रतीत्य-समुत्पाद। परन्तु मुझे यह साफ साफ (= उत्तान) जान पड़ता है।"

"ऐसा मत कहो आनन्द! ऐसा मत कहो आनन्द! आनन्द! यह प्रतीत्य-समुत्पाद गम्भीर है, और गम्भीरसा दीखता (भी) है। आनन्द इस धर्म के न जाननेसे = न प्रतिवेध करनेसे ही, यह प्रजा (= जनता) उलझे सूतसी, गाँठें पड़ी रस्सीसी, मूँज-बल्वजसी, अपाय = दुर्गति = विनिपातको प्राप्त हो, संसारसे नहीं पार हो सकती।

"आनन्द! 'क्या जरा-मरण स-कारण है?' पूछनेपर, 'है' कहना चाहिये। 'किस कारणसे जरा-मरण होता है' यह पूछे तो 'जन्मके कारण जरा-मरण होता है' कहना चाहिये। 'क्या जन्म (= जाति) स-कारण है' पूछनेपर; 'है' कहना चाहिये। 'किस कारणसे जन्म होता है' पूछनेपर 'भवके कारण जन्म' कहना चाहिये। 'क्या भव स-कारण है' पूछनेपर, 'है'०। 'किस कारणसे भव होता है' पूछे तो 'उपादानके कारण भव'०। 'क्या उपादान स-कारण है' पूछनेपर, 'है०'। 'किस कारणसे उपादान होता है' पूछे तो, 'तृष्णाके कारण उपादान'०। ०वेदनाके कारण तृष्णा०। स्पर्शके कारण वेदना०। नाम-रूपके कारण स्पर्श०। विज्ञानके कारण नाम रूप०। नाम-रूपके कारण विज्ञान०।

"इस प्रकार आनन्द! नाम-रूपके कारण विज्ञान है, विज्ञानके कारण नाम-रूप है। नाम रूपके कारण स्पर्श है। स्पर्शके कारण वेदना है। वेदनाके कारण तृष्णा है। तृष्णाके कारण उपादान है। उपादानके कारण भव है। भवके कारण जाति (= जन्म) है। जातिके कारण जरा-मरण है। जरा-मरणके कारण शोक, परिदेव (= रोना पीटना), दुःख, दौर्मनस्य (= मन-सन्ताप) उपायास (= परेशानी) होते हैं। इस प्रकार इस केवल (= सम्पूर्ण) दुःखस्कन्ध (दुःखपुंज) का समुदय (= उत्पत्ति) होता है।

" 'जातिके कारण जरा-मरण' यह जो कहा, इसे आनन्द! इस प्रकार जानना चाहिये"। यदि आनन्द! जाति न होती तो सर्वथा बिल्कुल ही सब किसीकी कुछ भी जाति न होती; जैसे—देवोंका देवत्व, गन्धर्वोंका गन्धर्वत्व, यक्षोंका यक्षत्व, भूतोंका भूतत्व, मनुष्योंका मनुष्यत्व, चतुष्पदों (= चौपायों) का चतुष्पदत्व, पक्षियोंका पक्षित्व, सरीसृपों (= रेंगनेवालों) का सरीसृपत्व, उन उन प्राणियों (= सत्वों) का यह होना। यदि

---

१. दी. नि. २:१५।

जाति न हो, सर्वथा जातिका अभाव हो, जातिका निरोध (=विनाश) हो; तो क्या आनन्द ! जरा-मरण जान पड़ेगा ?"

"नहीं भन्ते !"

"इसलिए आनन्द ! जरा-मरणका यही हेतुहै=यही निदान है = यही समुदय है = यही प्रत्यय है, जो कि यह जाति ।

"'भवके कारण जाति होती है' यह जो कहा, सो आनन्द ! इस प्रकार जानना चाहिये० । यदि आनन्द ! सर्वथा० सब किसीका कोई भव (=लोक) न होता ; जैसे कि–काम–भव, रूप–भव, अ-रूप–भव । तो भवके सर्वथा न होनेपर, भवके सर्वथा अभाव होनेपर, भवके निरोध होनेपर, क्या आनन्द ! जाति जान पड़ती ?"

"नहीं भन्ते !"

"इसीलिये आनन्द ! जातिका यही हेतु है०, जो कि यह भव ।"

"'उपादानके कारण भव होता है' यह जो कहा, सो आनन्द ! इस प्रकार जानना चाहिये० । यदि आनन्द ! सर्वथा० किसीका कोई उपादान न होता ; जैसे कि—काम-उपादान दृष्टि–उपादान, शील-व्रत-उपादान या आत्मवाद उपादान । उपादानके सर्वथा न होनेपर० क्या आनन्द ! भव होता ?"

"नहीं भन्ते !"

"इसीलिये आनन्द ! भवका यही हेतु है०, जो कि यह उपादान ।

"'तृष्णाके कारण उपादान होता है'० । यदि आनन्द ! सर्वथा० तृष्णा न होती; जैसे कि—रूप–तृष्णा, शब्द–तृष्णा, गंध–तृष्णा, रस–तृष्णा, स्प्रष्टव्य (=स्पर्श)–तृष्णा, धर्म (=मनका विषय)–तृष्णा । तृष्णाके सर्वथा न होनेपर० क्या आनन्द ! उपादान जान पड़ता?"

"नहीं भन्ते !"

"इसीलिये आनन्द ! उपादानका यही हेतु है०, जो कि यह तृष्णा ।

"'वेदनाके कारण तृष्णा है' ० । यदि आनन्द ! सर्वथा० वेदना न होती; जैसे कि—चक्षु–संस्पर्श (चक्षु और रूपके योग) से उत्पन्न वेदना, श्रोत्र–संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना, घ्राण-संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना, जिह्वा–संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना, काय–संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना, मन–संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना । वेदनाके सर्वथा० न होनेपर० क्या आनन्द ! तृष्णा जान पड़ती ?"

"नहीं भन्ते !"

"इसीलिये आनन्द ! तृष्णाका यही हेतु है०, जो कि–यह वेदना ।"

"इस प्रकार आनन्द ! वेदना के कारण तृष्णा, तृष्णाके कारण पर्येषणा (=खोजना), पर्येषणाके कारण लाभ, लाभके कारण विनिश्चय (=दृढ़ विचार), विनिश्चयके कारण छन्द-राग (=प्रयत्नकी इच्छा) छन्द-रागके कारण, अध्यवसान (=प्रयत्न); अध्यवसानके कारण परिग्रह (=जमा करना), परिग्रहके कारण मात्सर्य (कंजूसी), मात्सर्यके कारण आरक्षा (=हिफाजत), आरक्षाके कारण ही दंड-ग्रहण, शस्त्र-ग्रहण, कलह, विग्रह, विवाद, 'तू तू मैं मैं (=तुवं तुवं)', चुगली, झूठ बोलना, अनेक पाप=अ-कुशल-धर्म होते हैं ।"

"'आरक्षाके कारण ही दंड–ग्रहण० अनेक पाप० होते हैं' यह जो आनन्द ! कहा;

उसे इस प्रकारसे भी जानना चाहिये० । यदि सर्वथा० आरक्षा न होती ; तो सर्वथा आरक्षाके न होनेपर०, क्या आनन्द !, दंड-ग्रहण० अनेक पाप० होते ?"

"नहीं भन्ते !"

"इसीलिये आनन्द ! यह जो आरक्षा है, यही इस दंड-ग्रहण० पाप=अकुशल धर्मोंके उत्पत्तिका हेतु=निदान=समुदय=प्रत्यय है ।

"मात्सर्य (=कंजूसी) के कारण आरक्षा है' यह जो कहा, सो इसे आनन्द ! इस प्रकार जानना चाहिये० । यदि आनन्द ! सर्वथा किसीको कुछ भी मात्सर्य न होता; तो सब तरह मात्सर्यके अभावमें=मात्सर्य (=कंजूसी) के निरोधसे, क्या आरक्षा देखनेमें आती ?"

"नहीं भन्ते !"

"इसीलिये आनन्द ! आरक्षाका हेतु०, जो कि यह कंजूसी ।

"परिग्रह (=जमा करना, बटोरना) के कारण कंजूसी है०' । यदि आनन्द ! सर्वथा किसीको कुछ भी परिग्रह न होता०, क्या कंजूसी दिखाई पड़ती ?०।०।

"अध्यवसानके कारण परिग्रह है' ०। यदि आनन्द ! सर्वथा किसीको कुछ भी अध्यवसान न होता०; क्या परिग्रह (=बटोरना) देखनेमें आता ?०।०।

"छन्द-रागके कारण अध्यवसान होता है' ०। क्या अध्यवसान देखनेमें आता ?०।०

"विनिश्चयके कारण छंद राग होता है' ०।

"लाभके कारण विनिश्चय है"०। यदि आनन्द ! सर्वथा किसीको कहीं कुछ भी लाभ न होता०; क्या निश्चय दिखाई देता ? ०।०।

"पर्येषणाके कारण लाभ होता"० । क्या लाभ दिखाई देता ? ०।०।

तृष्णाके कारण पर्येषणा होती है"० । क्या पर्येषणा दिखाई देती ? ०।० ।

"स्पर्शके कारण तृष्णा होती है"० । क्या तृष्णा दिखाई देती ? ०।० ।

"नाम-रूपके कारण स्पर्श होता है"० । यह जो कहा, इसको आनन्द ! इस प्रकारसे जानना चाहिये, जैसे 'नाम रूपके कारण स्पर्श होता है । जिन आकारों=जिन लिंगों=जिन निमित्तों=जिन उद्देश्योंसे नाम-काय (=नाम-समुदाय) का ज्ञान होता; उन आकारों, उन लिंगों, उन निमित्तों, उन उद्देश्योंके न होने पर; क्या रूप-काय (=रूप-समुदाय) का अधि-वचन (=नाम) देखा जाता ?"

"नहीं भन्ते !"

"आनन्द ! जिन आकारों, जिन लिंगों,० से रूपकायका ज्ञान होता है; उन आकारों० के न होनेपर, क्या नाम-कायमें प्रतिघ-संस्पर्श (=प्रतिहिंसाका योग) दिखाई पड़ता ?"

"नहीं भन्ते !"

"आनन्द जिन आकारों० से नाम-काय और रूप कायका ज्ञान होता है; उन आकारों० के न होनेपर, क्या अधिवचन-संस्पर्श या प्रतिघ संस्पर्श दिखाई पड़ता ?"

"नहीं भन्ते !"

"आनन्द ! जिन आकारों, जिन लिंगों, जिन निमित्तों, जिन उद्देश्योंसे नाम-रूपका

ज्ञान (=प्रज्ञापन) होता है; उन आकारों, उन लिंगों, उन निमित्तों, उन उद्देश्योंके अभावमें क्या स्पर्श (=योग) दिखाई पड़ता ?"

"नहीं भन्ते !"

"इसीलिये आनन्द ! स्पर्शका यही हेतु = यही निदान = यही समुदय=यही प्रत्यय है, जो कि नाम-रूप ।

"विज्ञानके कारण नाम-रूप होता है"० । यदि आनन्द ! विज्ञान (= चित्त-धारा, जीव) माताके कोखमें नहीं आता, तो क्या नाम-रूप संचित होता ?"

"नहीं भन्ते !"

"आनन्द ! (यदि केवल) विज्ञानही माताकी कोखमें प्रवेशकर निकल जाये; तो क्या नाम-रूप इसके लिये बनेगा (होगा) ?"

"नहीं भन्ते !"

"कुमार या कुमारीके अति-शिशु रहतेही यदि विज्ञान छिन्न हो जाये; तो क्या नाम-रूप वृद्धि = विरूढि = विपुलताको प्राप्त होगा ?

"नहीं भन्ते !"

"इसीलिये आनन्द ! नाम-रूपका यही हेतु० है, जो कि विज्ञान ।"

"नाम-रूपके कारण विज्ञान होता है' ०।० । आनन्द ! यदि विज्ञान नाम-रूपमें प्रतिष्ठित न होता, तो क्या भविष्यमें (=आगे चलकर) जाति, जरा-मरण, दुःख समुदय दिखाई पड़ते ?"

"नहीं भन्ते ?"

"इसीलिये आनन्द ! विज्ञानका यही हेतु० है, जो कि यह नाम-रूप । आनन्द ! यह जो विज्ञान-सहित नाम-रूप है, इतनेहीसे जन्मता, बूढ़ा होता, मरता = च्युत होता, उत्पन्न होता है; इतनेहीसे अधिवचन (= नाम-संज्ञा)-व्यवहार, इतनेहीसे निरुक्ति (=भाषा)-व्यवहार, इतनेहीसे प्रज्ञा विषय है, इतनेही से 'इस प्रकार' का जतलानेके लिये मार्ग वर्तमान है ।

"आनन्द ! आत्माको प्रज्ञापन करनेवाला कितनेसे प्रज्ञापन (=जताना) करता है ? रूपवान् क्षुद्र रूप-धारीको आत्मा प्रज्ञापन करते हुए 'मेरा आत्मा रूप-धारी और क्षुद्र (= अणु) है' प्रज्ञापन करता है । रूप-वान् और अनन्त प्रज्ञापन करते हुये 'मेरा आत्मा रूपवान् और अनन्त है, प्रज्ञापन करता है । रूप-रहित अणु (=परित्त) आत्मा करते हुये 'मेरा आत्मा अ-रूप अणु है' कहता है । रूप रहित अनन्तको आत्मा मानते हुये 'मेरा आत्मा अ रूप अनन्त है' कहता है ।

"यहाँ जो आनन्द ! आत्माको प्रज्ञापन करते हुये रूप-वान् अणु (= परित्त)को आत्मा कहता है 'यह वर्तमानके आत्माको प्रज्ञापन करता, रूप-वान् अणु कहता है । या

---

१. उच्छेदवादी आत्माको विनाशी मानते हुये, वर्तमानमें ही उसकी सत्ता स्वीकार करता है ।

बिल्कुल निरुद्ध हो जायें; तो वेदनाके सर्वथा न होनेसे, वेदनाके निरोध होनेसे, क्या वहाँ 'मैं हूँ' यह होगा ?"

"नहीं भन्ते !"

"इसलिए आनन्द ! इससे भी यह समझना ठीक नहीं कि—'न वेदना मेरा आत्मा है, और न अ-प्रतिसंवेदना० वेदना-धर्मवाला मेरा आत्मा है।

"चूँकि आनन्द ! भिक्षु न वेदनाको आत्मा समझता है, न अ-प्रतिसंवेदनाको०, और नहीं 'आत्मा मेरा वेदित होता है, वेदना-धर्मवाला मेरा आत्मा है' समझता है। इस प्रकार न समझे हुये लोकमें किसीको (मैं और मेरा करके) नहीं ग्रहण करता। न ग्रहण करनेवाला होनेसे त्रास नहीं पाता। त्रास न पानेसे स्वयं परि-निर्वाणको प्राप्त होता है। (तब)-जन्म खतम होगया, ब्रह्मचर्य-वास हो चुका, कर्तव्य कर चुका, और कुछ यहाँ (करणीय) नहीं' जानता है। ऐसे विमुक्त-चित्त भिक्षुको जो कोई ऐसा कहे—'मरनेके बाद तथागत होता है—यह इसकी दृष्टि है' सो अयुक्त है। 'मरनेके बाद तथागत नहीं होता है—यह इसकी दृष्टि है'—सो अ-युक्त है। 'मरनेके बाद तथागत होता भी है, नहीं भी होता है—यह इसकी दृष्टि है—सो अयुक्त है। मरनेके बाद तथागत न होता है न नहीं होता है यह इसकी दृष्टि है—सो अयुक्त सो किस कारण ? जितना भी आनन्द ! अधिवचन (= नाम, संज्ञा), जितना वचन-व्यवहार, जितनी निरुक्ति (= भाषा), जितनी भी भाषा-व्यवहार, *जितनी प्रज्ञप्ति (= समझाना), जितनी भी प्रज्ञप्ति-व्यवहार, जितनी भी प्रज्ञा (= ज्ञान)*, जितना भी प्रज्ञाका विषय, जितना संसार जितना संसारमें है, उस (सबको) जानकर भिक्षु विमुक्त हुआ है। उसे जानकर विमुक्त हुआ भिक्षु, 'नहीं जानता है, नहीं देखता है, यह इसकी दृष्टि है'—सो अयुक्त है।

"आनन्द ! विज्ञान (= जीव) की सात स्थितियाँ हैं, और दो ही आयतन। कौन सी सात ? आनन्द ! (१) कोई कोई सत्व (= जीव) नाना कायावाले और नाना संज्ञावाले हैं, जैसे कि मनुष्य, कोई कोई देवता (=काम धातुके छः) और कोई २ विनिपातिक (= नीच गतिवाले • पिशाच) यह प्रथम विज्ञान-स्थिति है। (२) आनन्द ! कोई कोई सत्व नाना कायवाले, किंतु एक संज्ञा (= नाम) वाले होते हैं; जैसे कि, प्रथम-ध्यानके साथ उत्पन्न ब्रह्म-कायिक (= ब्रह्मा लोक) देवता। यह दूसरी विज्ञान-स्थिति है। (३) आनंद !० एक काया किंतु नाना संज्ञावाले देवता हैं, जैसे कि आभास्वर देवता। यह तीसरी विज्ञान-स्थिति है। (४)• *एक कायावाले, एक संज्ञावाले देवता, जैसे कि शुभकीर्ण (= शुभ-किण्ण) देवता।* यह चौथी विज्ञान-स्थिति है। (५) आनन्द ! (कोई २) सत्व हैं, (जो कि) रूप-संज्ञाके अतिक्रमणसे, प्रतिघ-संज्ञाके अस्त हो जानेसे, नानात्व संज्ञाको मनमें न करनेसे 'अनन्त आकाश' इस आकाश आयतन (=निवास-स्थान) को प्राप्त हैं। यह पाँचवीं विज्ञान-स्थिति है। (६) आनन्द ! (कोई कोई) सत्व आकाश-आयतनको सर्वथा अतिक्रमण कर 'विज्ञान अनन्त है', इस विज्ञान आयतनको प्राप्त हैं। यह छठीं विज्ञान-स्थिति है। (७) आनन्द ! (कोई कोई) सत्व विज्ञान-आयतनको सर्वथा अतिक्रमणकर 'नहीं कुछ है' इस आकिंचन्य-आयतन (= निवास-स्थान) को प्राप्त हैं। यह सातवीं विज्ञान-स्थिति है। (दो आयतन हैं) असंज्ञि-

सत्त्व-आयतन (=संज्ञा-रहित सत्त्वोंका आवास), और दूसरा नैव-संज्ञा-नासंज्ञा-आयतन (=न संज्ञावाला न असंज्ञावाला आयतन)।

"आनन्द! जो यह प्रथम विज्ञान-स्थिति 'नाना काया नाना संज्ञा' है, जैसे कि०। जो उस (प्रथम विज्ञान-स्थिति ,को जानता है, उसकी उत्पत्ति (=समुदय) को जानता है, उसके अस्तगमन (=विनाश) को जानता है, उसके आस्वादको जानता है, उसके परिणाम (=आदिनव) को जानता है, उसके निस्सरण (=छंदराग छोड़ना) को जानता है, क्या उस (जानकारको) उस (=विज्ञान-स्थिति) का अभिनन्दन करना युक्त है?"

"नहीं भन्ते!"

० दूसरी विज्ञान स्थिति—० सातवीं विज्ञान-स्थिति ०। ० असंज्ञ-सत्त्वायतन०, ० नैवसंज्ञा-न-संज्ञायतन०।

आनन्द! जो इन सात सत्त्व-स्थियों और दो आयतनोंके समुदय, अस्त-गमन, आस्वाद, परिणाम, निस्सरणको जानकर, (उपादानोंको) न ग्रहणकर विमुक्त होता है; वह भिक्षु प्रज्ञा-विमुक्त (=जानकर मुक्त) कहा जाता है।

"आनन्द! यह आठ विमोक्ष हैं। कौनसे आठ? (१) (स्वयं) रूप-वान् (दूसरे) रूपोंको देखता है। यह प्रथम विमोक्ष है। (२) भीतरमें (=अध्यात्म) रूप-रहित संज्ञा वाला, बाहर रूपोंको देखता है, यह दूसरा विमोक्ष है। (३) 'शुभ है' इससे अधिमुक्त (=विमुक्त) होता है, यह तीसरा विमोक्ष है। (४) सर्वथा रूप-संज्ञाके अतिक्रमण प्रतिघ (=प्रतिहिंसा) संज्ञाके अस्त होनेसे, नाना-त्वकी संज्ञाके मनमें न करनेसे 'आकाश अनन्त है' इस आकाशके आयतनको प्राप्त हो विहरता है, यह चौथा विमोक्ष है। (५) सर्वथा आकाशोंके आयतनको अतिक्रमणकर, 'विज्ञान अनन्त है' इस विज्ञान आयतनको प्राप्त हो विहरता है, यह पाँचवाँ विमोक्ष है। (६) सर्वथा विज्ञान आयतनको अतिक्रमणकर, 'कुछ नहीं है' इस आकिंचन्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है, यह छठाँ विमोक्ष है। (७) सर्वथा आकिंचन्य-आयतनको अतिक्रमणकर, नैव-संज्ञा-न-असंज्ञा-आयतनको प्राप्त हो विहरता है। यह सातवाँ विमोक्ष है। (८) सर्वथा नैव-संज्ञा-न-असंज्ञा-आयतनको अतिक्रमणकर संज्ञाकी वेदना (=अनुभव) के निरोधको प्राप्त हो विहरता है। यह आठवाँ विमोक्ष है। आनन्द! यह आठ विमोक्ष हैं।

"जब आनन्द! भिक्षु इन आठ विमोक्षोंको अनुलोम (१, २, ३···क्रमसे) प्राप्त (=समाधि-प्राप्त) होता है, प्रतिलोमसे (८, ७, ६···) भी (समाधि-) प्राप्त होता है। अनुलोम भी और प्रतिलोम भी (१···८···१) प्राप्त होता है, जहाँ चाहता है, जब चाहता है, जितना चाहता है, उतनी (समाधि-) प्राप्त होता है; (समाधिसे) उठता भी है। (=राग द्वेष आदि चित्त मलों) के क्षयसे, इसी जन्ममें आस्रव-रहित (=अन्-आस्रव) चित्तकी विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्तिको स्वयं जानकर=साक्षात्कर, प्राप्त हो, विहरता है। आनन्द! यह भिक्षु उभतोभाग-विमुक्त (=नाम रूपसे विमुक्त) कहा जाता है। आनन्द! इस उभतो-भाग-विमुक्तिसे बढ़कर=उत्तम दूसरी उभतो-भागविमुक्ति नहीं है।"

भगवान्‌ने ऐसा कहा। सन्तुष्ट हो आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌के भाषणका अभिनंदन किया।

× × × ×

पति-पत्नी-गुण। वेरंजक-ब्राह्मण-सुत्त। (ई. पू. ५१७)।

[1]ऐसे मैंने सुना—एक समय भगवान् मथुरा और वेरञ्जाके बीचमें रास्तेमें जा रहे थे। उस समय बहुतसे गृहपति और गृह-पतिनियाँ भी मथुरा और वेरञ्जाके बीच रास्तेमें जा रही थीं। भगवान् मार्गसे हटकर, एक वृक्षके नीचे बैठे। उन०ने भगवान्‌को एक वृक्षके नीचे बैठे देखा। देखकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे उन गृह-पतियों और गृह-पतिनियोंको भगवान्‌ने यह कहा—

"गृह-पतियो! चार प्रकारके संवास (=सहवास, एक साथ वास) होते हैं। कौनसे चार? (१) शव (=मुर्दा) शवके साथ संवास करता है; (२) शव देवीके साथ संवास करता है; (३) देव शवके साथ संवास करता है; (४) देव देवीके साथ संवास करता है। कैसे गृहपतियो! शव शवके साथ संवास करता है? यहाँ गृहपतियो! स्वामी (=पति); हिंसक, चोर, दुराचारी, झूठा, नशा-बाज़, दुःशील, पाप-धर्मी, कंजूसीकी गंदगीसे लिप्त चित्त, श्रमण (=साधु) ब्राह्मणोंको दुर्वचन, कहने वाला हो, गृहमें वास करता है (और) उसकी भार्या भी—हिंसक॰ होती है। (उस समय) गृहपतियो! शव शवके साथ संवास करता है। कैसे गृह-पतियो! शव देवीके साथ संवास करता है?···गृहपतियो स्वामी हिंसक॰ होता है। और उसकी भार्या अ-हिंसारत, चोरी-रहित, सदाचारिणी, सच्ची, नशा-विरत, सुशीला, कल्याण-धर्म-युक्त, मल-मात्सर्य-रहित, श्रमण-ब्राह्मणोंको दुर्वचन न कहनेवाली हो गृहमें वास करती है। (उस समय) गृह-पतियो! शव देवीके साथ संवास करता है। कैसे गृहपतियो! देव शवके साथ वास करता है?···गृहपतियो! स्वामी होता है, अहिंसारत॰ उसकी भार्या हिंसक॰ होती है। (उस समय) गृहपतियो! देव शवके साथ संवास करता है। कैसे गृह-पतियो! देव देवीके साथ संवास करता है?···स्वामी अहिंसा-रत॰ और उसकी भार्या भी अहिंसा-रत॰ होती है। उस (उस समय) देव देवीके साथ संवास करता है। गृह-पतियो! यह चार संवास हैं।

× × × ×

वेरंजक-सुत्त।

[2]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् वेरंजामें नलेरु-पुचिमन्द (वृक्ष)के नीचे विहार करते थे।

तब वेरंजक ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्‌के साथ···संमोदन कर···कुशल प्रश्न पूछ, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए, वेरंजक ब्राह्मणने भगवान्‌से

---

१. अं. नि. ४:२:१:३। २. अ॰ नि॰ ८:१:२:१। पाराजिक १।

कहा—"हे गौतम ! मैंने सुना है, कि श्रमण गौतम जीर्ण=वृद्ध=महल्लक=अध्व-गत=वयः-प्राप्त ब्राह्मणोंके आने पर, न अभिवादन करता है, न प्रत्युत्थान करता है, न आसनके लिये कहता है। हे गौतम ! क्या यह ठीक है?" "ब्राह्मण ! देव-मार-ब्रह्मा-सहित सारे लोकमें, श्रमण-ब्राह्मण-देव-मनुष्य-सहित सारी प्रजा (=जनता) में भी, मैं किसीको ऐसा नहीं देखता, जिसको कि मैं अभिवादन करूँ, प्रत्युत्थान करूँ, आसनके लिये कहूँ। ब्राह्मण ! तथागत जिस (मनुष्य) को अभिवादन करें, प्रत्युत्थान करें, या आसन के लिये कहें, उसका शिर भी गिर सकता है।"

"गौतम ! आप अ-रस-रूप हैं।"

"ब्राह्मण ! ऐसा कारण है, जिस कारणसे मुझे ठीक कहते हुये 'श्रमण गौतम अ-रस-रूप है' कहा जा सकता है। ब्राह्मण ! जो वह रूप-रस (=रूपका स्वाद), शब्द-रस, गंध-रस, रस-रस, स्पर्श-रस हैं; तथागतके वह सभी प्रहीण=जड़-मूलसे-कटे, सिर-कटे ताड़से, नष्ट, आगे-न-उत्पन्न-होनेवाले हो गये हैं। ब्राह्मण ! यह कारण है, जिससे मुझे० 'श्रमण गौतम अ-रस-रूप है' कहा जा सकता है; (किन्तु) उससे नहीं जिस ख्यालसे कि तू कहता है।"

"आप गौतम ! निर्भोग हैं।"

"ब्राह्मण ! ऐसा कारण है, जिससे ठीक ठीक कहते मुझे 'श्रमण गौतम निर्भोग है' कहा जा सकता है। जो वह ब्राह्मण ! शब्द-भोग०; तथागतके० वह नष्ट, आगेको न उत्पन्न होनेवाले हो गये हैं। ब्राह्मण ! यह कारण है, जिससे० मुझे 'श्रमण गौतम निर्-भोग है' कहा जा सकता है। उससे नहीं जिस ख्यालसे कि तू कहता है।"

"आप गौतम ! अ-क्रिया-वादी हैं"

"ब्राह्मण ! ऐसा कारण है जिससे०। ब्राह्मण ! मैं कायाके दुराचार (= प्राण-हिंसा, चोरी, व्यभिचार), वचनके दुराचार (झूठ, चुगली, कटुवचन, प्रलाप), मनके दुश्चरित (=लोभ, मोह, मिथ्या-दृष्टि) को अ-क्रिया कहता हूँ। अनेक प्रकारके पाप =अ-कुशल-धर्मोंको मैं अ-क्रिया कहता हूँ। यह कारण है ब्राह्मण !०"

"आप गौतम ! उच्छेद-वादी हैं।"

"ब्राह्मण ! ऐसा कारण है, ०। ब्राह्मण ! मैं 'राग, द्वेष, मोह का उच्छेद (करना चाहिये)' कहता हूँ, अनेक प्रकारके पाप=अ-कुशल-धर्मोंका उच्छेद कहता हूँ। ०।"

"आप गौतम ! जुगुप्सु (=घृणा करनेवाले) हैं।"

"०ब्राह्मण ! मैं कायिक, वाचिक, मानसिक दुराचारोंसे घृणा करता हूँ; अनेक प्रकारके पाप०। ०।"

"आप गौतम ! वैनयिक (=हटानेवाले, साधनेवाले) हैं।"

"०ब्राह्मण ! मैं राग, द्वेष, मोहके विनयन (= हटाने) के लिये धर्म उपदेश करता हूँ; अनेक प्रकारके पाप०। ०।"

"आप गौतम ! तपस्वी हैं।"

"०ब्राह्मण ! मैं पाप=अकुशल-धर्मों (को), काय-वचन-मनके दुराचारोंको, तपानेवाला कहता हूँ। ब्राह्मण ! जिसके पाप० तपानेवाले धर्म नहीं हो गये, जड़-मूलसे

चले गये, सिर-कटे ताड़से हो गये, अभावको प्राप्त हो गये, भविष्यमें न उत्पन्न होने लायक हो गये; उसको मैं तपस्वी कहता हूं। ब्राह्मण! तथागत के पाप० तपानेवाले धर्म नहीं हो गये० भविष्यमें न उत्पन्न होनेलायक हो गये। ब्राह्मण! यह कारण है, जिससे० ।०।

"आप गौतम! अप-गर्भ हैं।"

"०ब्राह्मण! जिसका भविष्यका गर्भशयन=आवागमन नष्ट हो गया, जड़ मूलसे चला गया०; उसको मैं अपगर्भ कहता हूं। ब्राह्मण! तथागतका भविष्यका गर्भ-शयन, आवागमन नष्ट हो गया, जड़ मूलसे चला गया० ।०।

"ब्राह्मण! जैसे मुर्गीके आठ या दस या बारह अण्डे हों,…(और) मुर्गी-द्वारा अच्छी तरह सेवित हों = परिभावित हों। उन मुर्गीके बच्चोंमें जो प्रथम पैरके नखोंसे या चोंचसे अंडेको फोड़कर सकुशल बाहर चला आये, उसको क्या कहना चाहिये, ज्येष्ठ या कनिष्ठ?"

"हे गौतम! उसे ज्येष्ठ कहना चाहिये। वही उनमें ज्येष्ठ होता है।"

"*इसी प्रकार ब्राह्मण! अविद्यामें पड़ी, (अविद्यारूपी) अंडेमें जकड़ी इस प्रजा* (=जनता) में, मैं अकेलाही अविद्या (रूपी) अंडेके खोलको फोड़कर, अनुत्तर (=सर्वश्रेष्ठ) *सम्यक्-संबोधि* (= बुद्धत्व) को जाननेवाला हूँ। *मैं ही ब्राह्मण, लोकमें ज्येष्ठ-श्रेष्ठ हूँ।*… मैंनेही ब्राह्मण! न दबनेवाला वीर्य आरम्भ किया; विस्मरण-रहित स्मृति मेरे सन्मुख थी, *अ-चल और शांत (मेरा) शरीर था, एकाग्र समाहित चित्त था। सो ब्राह्मण! मैं स-वितर्क* स-विचार विवेकसे उत्पन्न प्रीति-सुख वाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगा। वितर्क और *विचार शांत हो, भीतरी शांति, चित्तकी एकाग्रता, अ-वितर्क, अ-विचार,* समाधिसे उत्पन्न प्रीति सुख—वाले द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगा। प्रीतिसे भी विरक्त, और उपेक्षक हो विहरता हुआ स्मृति-मान्, अनुभव (= संप्रजन्य) वान् हो, कायासे सुखको भी अनुभव करता हुआ; जिसको कि आर्य लोग—उपेक्षक, स्मृतिमान्, सुख-विहारी—कहते हैं (वैसा हो) तृतीय ध्यानको प्राप्तहो विहरने लगा। सुख और दुःखके प्रहाण (=परित्याग) से; सौमनस्य (=चित्तोल्लास) और दौर्मनस्य (चित्त-सन्ताप) के पहिलेही अस्त हो जानेसे, अ-दुःख, अ-सुख, उपेक्षा, स्मृतिकी परिशुद्धता (रूपी) चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगा। सो इस प्रकार चित्तके समाहित परिशुद्ध - पर्यवदात अङ्गण-रहित = उपक्लेश (= मल)-रहित, मृदु-भूत=काम-लायक, स्थिर = अचलता-प्राप्त=समाहित हो जानेपर, पूर्व जन्मोंकी स्मृतिके ज्ञान (= पूर्वनिवासानुस्मृति-ज्ञान) के लिये चित्तको मैंने झुकाया। फिर मैं अनेक पूर्व-निवासोंको स्मरण करने लगा—जैसे एक जन्म भी, दो जन्म भी…आकार-सहित उद्देश-सहित, अनेक …पूर्व-निवासोंको स्मरण करने लगा। ब्राह्मण! इस प्रकार प्रमाद-रहित, तत्पर, आत्म-संयम-युक्त विहरते हुये, रातके पहिले याममें, मुझे पहिली विद्या प्राप्त हुई, अविद्या गई, विद्या आई, तम नष्ट हुआ, आलोक उत्पन्न हुआ। ब्राह्मण! अंडेसे मुर्गीके बच्चेकी तरह यह पहली फूट हुई।

"*सो इस प्रकार चित्तके परिशुद्ध=पर्यवदात होनेपर प्राणियोंके जन्म-मरणके लिये मैंने* चित्तको झुकाया। सो अ-मानुष दिव्य विशुद्ध चक्षु (=नेत्र) से अच्छे-बुरे, सुवर्ण-दुर्वर्ण, सुगत

(=अच्छी गतिमें गये)-दुर्गत, मरते-उत्पन्न होते, प्राणियोंको देखने लगा। सो० कर्मानुसार गतिको प्राप्त प्राणियोंको जानने लगा। ब्राह्मण! रातके बिचले पहरमें यह द्वितीय विद्या उत्पन्न हुई, अविद्या गई०। ब्राह्मण। अण्डेमे मुर्गीके बच्चेकी भाँति यह दूसरी फूट हुई!

"सो इस प्रकार चित्तके०, आस्रवोंके क्षयके ज्ञानके लिये, मैंने चित्तको झुकाया— 'यह दुःख है' इसे यथार्थ जान लिया 'यह दुःख-समुदाय है' इसे यथार्थ जान लिया। 'यह दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् है' इसे यथार्थ जान लिया। 'यह आस्रव हैं' इसे यथार्थ जान लिया। 'यह आस्रव-निरोध है' इसे यथार्थ जान लिया। 'यह आस्रव-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् है' इसे यथार्थ जान लिया। सो इस प्रकार जानते, इस प्रकार देखते हुये चित्त कामास्रवों से छूट (मुक्त हो) गया। भवास्रवोंसे भी विमुक्त हो गया। अ-विद्यास्रवोंसे भी विमुक्त हो गया। छूट (=विमुक्त) जानेपर 'छूट गया' ऐसा ज्ञान हुआ। 'जन्म समाप्त हो गया' ब्रह्मचर्य पूरा हो गया; करना था सो कर लिया; अब यहाँके लिये कुछ (शेष) नहीं' इसे जाना। ब्राह्मण! रातके पिछले याम (=पहर) में (यह) तृतीय विद्या प्राप्त हुई। अविद्या चली गई, विद्या उत्पन्न हुई। तम गया, आलोक उत्पन्न हुआ। ब्राह्मण! अण्डेसे मुर्गीके बच्चेकी भाँति यह तीसरी फूट हुई"।

ऐसा कहनेपर वेरञ्जक ब्राह्मणने भगवान्‌को कहा—"आप गौतम! ज्येष्ठ हैं, आप गौतम! श्रेष्ठ हैं। आश्चर्य! हे गौतम!! आश्चर्य! हे गौतम!!० उपासक धारण करें।"

\+ + + +

(८)

वेरंजामें वर्षावास। (ई. पू. ५१७)

"[1]भन्ते! भिक्षु-संघ-सहित भगवान् वेरंजामें वर्षावास स्वीकार करें।" भगवान्‌ने मौनसे उसे स्वीकार किया। भगवान्‌की स्वीकृतिको जान वेरंजक ब्राह्मण आसनसे उठ भगवान्‌को अभिवादनकर, प्रदक्षिणा कर चला गया।

उस समय वेरंजा दुर्भिक्ष-युक्त दो ईतियों (अकाल और महामारी)से युक्त श्वेत-हड्डियोंवाली, सूखी खेतीवाली थी। (वहाँ) भिक्षा करके गुज़र करना सुकर न था। उस समय उत्तरापथ[2]के घोड़ोंके सौदागर पाँच-सौ घोड़ोंके साथ वेरंजामें वर्षावास (करते थे)। घोड़ोंके डेरोंमें उन्होंने भिक्षुओंको प्रस्थ भर चावल बाँध रक्खा था।

भिक्षु पूर्वाह्न समय (चीवर) पहनकर पात्र-चीवर ले वेरंजामें पिंड-चारके लिये प्रवेश-कर, पिंड न पा, घोड़ोंके डेरों (=अश्वमंडलिका)में भिक्षाचार कर प्रस्थ-प्रस्थ चावल (=पुलक) पा, आराममें लाकर, ओखलमें कूट-कूट कर खाते थे। आयुष्मान् आनन्द प्रस्थभर पुलकको सीलपर पीसकर, भगवान्‌को देते, भगवान् उसे भोजन करते थे।

भगवान्‌ने ओखलका शब्द सुना। जानते हुये भी तथागत पूछते हैं। (पूछनेका) काल जान पूछते (हैं), (न पूछनेका) काल जान नहीं पूछते। अर्थ-युक्तको पूछते हैं, अनर्थ युक्तको नहीं। अनर्थ-सहितमें तथागतोंका सेतु-घात (=मर्यादा-खंडन) है। दो कारणोंसे

---

१. पाराजिका १। २. पंजाब।

बुद्ध भिक्षुओंको पूछते हैं, (१) धर्म-देशना करनेके लिये या (२) श्रावकोंको शिक्षा-पद (=भिक्षुनियम) विधान करनेके लिये। तब भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दको कहा—

"आनन्द! क्या यह ओक्खलका शब्द है?"

आयुष्मान् आनन्दने वह (सब) बात भगवान्‌को कह दी।

"साधु! साधु! आनन्द! तुम सत्पुरुषोंने (लोकको) जीत लिया। आनेवाली जनता (तो) पुलाव (= शालि-मांस-ओदन) चाहेगी।"

+ + + +

एकान्त-स्थ ध्यान-अवस्थित आयुष्मान् सारिपुत्रके चित्तमें इस प्रकार वितर्क उत्पन्न हुआ—"किन किन बुद्ध भगवानोंका ब्रह्मचर्य (= सम्प्रदाय) चिर-स्थायी नहीं हुआ? किन किन बुद्ध भगवानोंका ब्रह्मचर्य चिरस्थायी हुआ?" तब संध्या समय आयुष्मान् सारिपुत्र ध्यानसे उठकर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये; जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्‌से कहा—

"भन्ते! एकान्त-स्थित ध्यानावस्थित होनेके समय, मेरे चित्तमें इस प्रकार परि-वितर्क उत्पन्न हुआ—किन-किन बुद्ध भगवानों०, सो भन्ते! किन-किन बुद्ध भगवानोंका०?"

"सारिपुत्र! भगवान् [1]विपश्यी, भगवान् शिखी और भगवान् विश्वभू (=वेस्सभू) का ब्रह्मचर्य चिरस्थायी नहीं हुआ। सारिपुत्र! भगवान् कुकुसंध (=ककुच्छन्द); भगवान् कोनागमन और भगवान् काश्यपका ब्रह्मचर्य चिरस्थायी हुआ।"

"भन्ते! क्या हेतु है, भन्ते! क्या प्रत्यय है (=कार्य-कारण), जिससे कि भगवान् विपश्यी···शिखी···विश्वभूके ब्रह्मचर्य चिरस्थायी न हुये।"

"सारिपुत्र! भगवान् विपस्सी···सिखी··वेस्सभू श्रावकोंको विस्तारसे धर्म-उपदेश करनेमें आलसी (=किलासी) थे। [2]उनके सुत्त (=सूत्र), गेय्य (=गेय), वेय्याकरण (=व्याकरण=व्याख्यान), गाथा, उदान, इतिवुत्तक (=इतिवृत्तक) जातक, अब्भुत-धम्म (=अद्भुत-धर्म), वेदल्ल थोड़े थे। उन्होंने शिक्षा-पदों (=भिक्षु-नियम=विनय) का विधान नहीं किया था, [3]प्रातिमोक्षका उद्देश नहीं किया था। उन बुद्ध भगवानोंके अन्तर्धान होनेपर, उनके बुद्ध-अनु-बुद्ध श्रावकोंके अन्तर्धान होने बाद; नाना-नाम, नाना-गोत्र, नाना-जाति नाना-कुलसे प्रव्रजित (जो) पिछले श्रावक (=शिष्य) थे, उन्होंने उस ब्रह्मचर्यको शीघ्र ही अन्तर्धान कर दिया। जैसे सारिपुत्र! सूतमें बिना पिरोये नाना पुष्प तख्तेपर रक्खे हों, उनको हवा बिखेरती है, विध्वंसन = विध्वंसन करती है। सो किस हेतु? चूँकि सूतमें पिरोये (=संगृहीत) नहीं हैं; इसी प्रकार सारिपुत्र! उन बुद्ध भगवानोंके अन्तर्धान होने-पर०, उस ब्रह्मचर्यको शीघ्र ही अन्तर्धानकर दिया।······।"

"भन्ते! क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है, जिससे कि भगवान्···ककुसंध···कोनागमन···काश्यपके ब्रह्मचर्य चिरस्थायी हुये?"

"सारिपुत्र! भगवान् कुकुसंध··कोनागमन···कस्सप श्रावकोंको विस्तार-पूर्वक

---

१. वर्तमान महाकल्पके ७ बुद्ध हैं उपरके छ, और भावी मैत्रेय बुद्ध।

२. बुद्धके उपदेश इन नौ प्र[illegible]   ३. भिक्षुओंके आचारिक नियम।

धर्मदेशना करनेमें निर्-आलस थे। उनके (उपदेश किये) सूत्र, गेय, व्याकरण, गाथा, उदान, इतिवृत्तक, जातक, अद्भुत-धर्म, वैदल्य बहुत थे। (उन्होंने) शिक्षा-पद विधान किये थे, प्रातिमोक्ष (=प्रातिमोक्ख) उद्देश किये थे। उन बुद्ध भगवानोंके अन्तर्धान होनेपर, बुद्धानुबुद्ध-श्रावकोंके अन्तर्धान होनेपर; जो नाना-नाम, नाना-गोत्र, नाना-जाति, नाना-कुलसे प्रव्रजित पीछेके शिष्य थे; उन्होंने उस ब्रह्मचर्यको चिर तक, दीर्घकाल तक स्थापित रक्खा। जैसे सारिपुत्र! सूतमें संगृहीत (=गूँथे) तख्तेपर रक्खे नाना फूल हों, उनको हवा नहीं बिखेरती०। सो किस लिये? चूँकि सूतसे सुसंगृहीत हैं।…… ।

तब आयुष्मान् सारिपुत्रने आसनसे उठ, उत्तरासंग (=चादर) को एक कंधेपर (दाहिने कंधेको खोले हुये रख) कर, जिधर भगवान् थे, उधर हाथ जोड़ भगवान्से कहा—

"इसीका भगवन्! काल है, इसीका सुगत! समय है; कि, भगवान् श्रावकोंके लिये शिक्षा-पदका विधान करें, प्रातिमोक्षका उद्देश करें; जिससे कि यह ब्रह्मचर्य अध्वनीय=चिरस्थायी हो।"

"सारिपुत्र! ठहरो, सारिपुत्र! ठहरो, तथागत काल जानेंगे। सारिपुत्र! शास्ता (=गुरु) तब तक श्रावकोंके लिये शिक्षापद विधान नहीं करते, प्रातिमोक्ष उद्देश्य नहीं करते, जब तक कि''संघमें कोई आस्रव (=चित्त-मल) वाले धर्म (=पदार्थ) प्रादुर्भूत नहीं हो जाते। सारिपुत्र! जब यहाँ संघमें कोई कोई आस्रववाले धर्म प्रादुर्भूत हो जाते हैं, तब शास्ता श्रावकोंको शिक्षा-पद विधान करते हैं, प्राति-मोक्ष उद्देश करते हैं; उन्हीं आस्रव-स्थानीय धर्मोंके प्रतिघातके लिये। सारिपुत्र! संघमें तब तक कोई आस्रव-स्थानीय धर्म उत्पन्न नहीं होते, जब तक कि संघ रत्तञ्ञ-महत्त्व (=रत्तञ्ञुमहत्त)को न प्राप्त हो। सारिपुत्र! जब संघ रत्तञ्ञ-महत्त्वको प्राप्त हो जाता है, तब यहाँ संघमें कोई कोई आस्रव-स्थानीय धर्म उत्पन्न होते हैं, और तबही शास्ता श्रावकोंके लिये शिक्षा-पद विधान करते हैं, प्रातिमोक्ष उद्देश करते हैं०। तब तक सारिपुत्र!…संघमें कोई आस्रवस्थानीय धर्म नहीं उत्पन्न होते, जब तक कि सारिपुत्र! उसको वैपुल्य-महत्त्व०, ०उत्तम (वस्तुओंके) लाभकी बड़ाई (=लाभग्ग-महत्त)को०, ०बाहु-सच्च०। सारिपुत्र! (इस समय) संघ अर्बुद-(=मल)-रहित=आदिनव रहित, कालिमा-रहित, शुद्ध, सारमें स्थित है। इन पांचसौ भिक्षुओंमें जो सबसे पिछड़ा भिक्षु है, वह स्रोतआपत्ति (फल)को प्राप्त, दुर्गति-से रहित, स्थिर संबोधि-परायण (=परमज्ञान प्राप्तिमें निश्चल) हैं।"

यह कह भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया—

"आनन्द! यह तथागतोंका आचार है, कि जिनके द्वारा निमंत्रित हो वर्षा-वास करते हैं, उनको बिना देखे (पूछे) नहीं जाते। चलें आनन्द! वेरंज ब्राह्मणको देखें।"

"अच्छा भन्ते!" (कह) आयुष्मान् आनन्दने भगवान्को उत्तर दिया।

भगवान् (चीवर) पहिन पात्र-चीवर ले० आनन्दको अनुगामी बना, जहाँ वेरंज ब्राह्मणका घर था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसन पर बैठे। वेरंज ब्राह्मण…भगवान्के पास, आकर, भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे वेरंज ब्राह्मणको भगवान्ने कहा—

"ब्राह्मण ! तुम्हसे निमंत्रित हो, हमने वर्षा-वास कर लिया। अब तुमको देखने आये हैं। हम जनपद-चारिका (=देशाटन)को जाना चाहते हैं।"

"हे गौतम ! सच-मुचही मैंने वर्षा-वासके लिये निमन्त्रित किया था—मेरा जो देनेका धर्म था, वह (मैंने) नहीं दिया। सो न होनेके कारण नहीं, और न देनेकी इच्छासे (भी नहीं)। सो (मौका) कैसे मिले? गृहमें बसना (=गृहस्थाश्रम) बहुत काम, बहुत-कृत्योंवाला (होता है), आप गौतम कलके लिये भिक्षु-संघ-सहित मेरा भोजन स्वीकार करें।"

भगवान् ने मौन रह स्वीकार किया। तब भगवान् वेरंज ब्राह्मणको धार्मिक कथासे संदर्शन · करा आसनसे उठकर चल दिये।

वेरंज ब्राह्मणने उस रातके बीत जानेपर, अपने घरमें उत्तम खाद्य-भोज्य तय्यार करा, भगवान्को कालकी सूचना दी···। तब भगवान् पूर्वाह्न समय (चीवर) पहिन कर, पात्र-चीवर ले, जहाँ वेरंज ब्राह्मणका घर था, वहाँ गये। जाकर भिक्षु-संघ-सहित बिछे आसन पर बैठे। वेरंज ब्राह्मणने अपने हाथसे बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको उत्तम खाद्य-भोज्यसे संतर्पित कर, पूर्ण किया, खाकर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, भगवान्को तीन [1]चीवरसे आच्छादित किया। एक एक भिक्षुको एक एक धुस्से (= थान) जोड़ेसे आच्छादित किया। भगवान् वेरंज ब्राह्मणको धर्म-उपदेश कर·· आसनसे उठ चल दिये।

भगवान् वेरंजामें इच्छानुसार विहरकर, [2]सोरेय्य, [3]संकाश्य (= संकस्स, कान्य-कुब्ज (=कण्णकुज्ज, कन्नौज) होते हुये, जहाँ [4]प्रयाग-प्रतिष्ठान (= पयाग-पतिट्ठान) था वहाँ गये। जाकर प्रयाग-प्रतिष्ठानमें गङ्गा नदी पारकर, जहाँ वाराणसी थी, वहाँ गये। तब भगवान् वाराणसीमें इच्छानुसार विहर कर, जहाँ वैशाली थी, वहाँ चारिकाके लिये चल दिये। क्रमशः चारिका करते जहाँ वैशाली थी, वहाँ पहुँचे। वैशालीमें भगवान् महावन कूटागारशालामें विहार करते थे।

बुद्ध-चारिका [5]बुद्धोंका आचार है। वर्षा-वास समाप्तकर [6]प्रवारणा करके लोक-संग्रहके लिये देशाटन करते हुए महा-मण्डल, मध्य-मण्डल, अन्तिम-मण्डल इन तीन मण्डलों-मेंसे एक मण्डलमें चारिका करते हैं।···महामण्डल नौ सौ योजन है, मध्य-मण्डल ६०० योजन और अन्तिम मण्डल तीनसौ योजन है। जब महामंडलमें चारिका करना चाहते हैं, तो महाप्रवारणा (=आश्विन पूर्णिमा)को प्रवारणाकर, प्रतिपद्के दिन महा-भिक्षु-संघके साथ निकलकर ग्राम-निगम (=कस्बा) आदिमें अन्न-पान आदि (=आमिष) ग्रहणकर लोगोंपर कृपा करते, धर्म-दान (=धर्मोपदेश) से···उनके पुण्यकी वृद्धि करते, नव मासमें देशाटन समाप्त करते हैं। यदि वर्षावासमें भिक्षुओंकी शमथ-विपश्यना (=समाधि-प्रज्ञा) अपरिपक्व (=अपक्व) होती है, तो महाप्रवारणाको प्रवारणा न कर,···कार्तिककी पूर्णमासीको प्रवारणाकर मार्ग-

---

१. (१) अन्तरवासक (=लुंगी), (२) उत्तरासंग (=इकहरी चादर), (३) संघाटी (=दुहरी चादर)। २. सोरों (जिला एटा)। ३. संकिसा-बसन्तपुर (जि॰ फर्रुखाबाद)। ४. झूसी इलाहाबाद। ५. विनयट्ठकथा (पाराजिका १)। ६. आश्विन-पूर्णिमाके उपोसथको प्रवारणा कहते हैं।

शीर्षके पहिले दिन महा भिक्षु-संघ-सहित निकलकर, उपरोक्त प्रकारसे ही मध्य-मंडलमें आठ महीनेमें चारिका समाप्त करते हैं। यदि वर्षा समाप्त करनेपर भी विनयाकांक्षी सत्त्वोंकी भावना नहीं होती, तो उनकी भावनाके परिपक्व होनेके लिये मार्गशीर्ष मास भर भी वहीं वासकर, पूस (=फुस्स) मासके पहिले दिन, महा-भिक्षु-संघ-सहित निकलकर, उक्त क्रमसे ही अन्तिम-मण्डलमें सात महीनेमें चारिका समाप्त करते हैं।

\+ + + + +

(९)

वनारसमें। वैशालीमें। (ई. पू. ५१६)।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् वाराणसीमें ऋषिपतन मृगदावमें विहार करते थे।

वहां भगवान्ने पूर्वाह्न-समय (चीवर) पहिनकर पात्र-चीवर ले वाराणसीमें पिंड-चार के लिये प्रवेश किया। [2]गोयोगप्लक्षमें पिंड-चार करते, भगवान्ने किसी शून्य-हृदय (= रित्तास), बहिर्मुख-चित्त (= वाहिरास) मूढ़-स्मृति, संप्रजन्य-रहित अ-समाधान-चित्त = विभ्रान्त-चित्त प्राकृत-इन्द्रिय (=साधारण काम-भोगी जनों जैसा) भिक्षुको देखा। देखकर उस भिक्षुको कहा—

"भिक्षु! भिक्षु! अपनेको तू जूठन मत बना। जूठन बने दुर्गन्धसे लिप्त हुये तुझपर कहीं मक्खियाँ न आएँ, (तुझे) मलिन न करदें। (तेरे लिये) यह उचित नहीं है।"

भगवान्-द्वारा इस प्रकारके उपदेशसे उपदिष्ट हो, वह भिक्षु वैराग्य (= संवेग) को प्राप्त हुआ। भगवान्ने वाराणसीमें पिंडचार कर, भोजनानन्तर भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! आज मैंने पूर्वाह्न समय० भिक्षुको देखा। देखकर भिक्षुको कहा—'भिक्षु! भिक्षु! अपनेको तू जूठन मत बना० तब भिक्षुओ! वह भिक्षु मेरे इस उपदेशसे उपदिष्ट हो, संवेगको प्राप्त हो गया।"

ऐसा कहनेपर एक भिक्षुने भगवान्से पूछा—

"क्या है भन्ते! जूठन(= कतुविय), क्या है दुर्गंध (=आमगंध), क्या हैं मक्खियाँ?"

"भिक्षु! अभिध्या (= लोभ, राग) जूठन है, व्यापाद (= द्रोह) आमगंध है; और पाप अ-कुशल-वितर्क (= बुरे विचार) मक्खियाँ हैं।..."

वैशालीमें।

[3]उस समय वैशालीके नातिदूर कलन्दक-ग्राम नामका (गाँव) था। वहाँ सुदिन्न-कलन्दपुत्त नामक सेठका लड़का रहता था। तब सुदिन्न कलन्द-पुत्त बहुतसे मित्रोंके साथ, किसी कामके लिये वैशाली गया। उस समय भगवान् बड़ी भारी परिषद्के साथ बैठे, धर्म

१. अ. नि.३:३:६। २. "वैलहट्टेमें उगा एक पाकड़का वृक्ष।" अ. क. ३. विनय, (पाराजिका १)।

"ब्राह्मण ! तुझसे निमंत्रित हो, हमने वर्षा-वास कर लिया। अब तुमको देखने आये हैं। हम जनपद-चारिका (=देशाटन)को जाना चाहते हैं।"

"हे गौतम ! सच-मुचही मैंने वर्षा-वासके लिये निमन्त्रित किया था—मेरा जो देनेका धर्म था, वह (मैंने) नहीं दिया। सो न होनेके कारण नहीं, और न देनेकी इच्छासे (भी नहीं)। सो (मौका) कैसे मिले? गृहमें बसना (=गृहस्थाश्रम) बहुत काम, बहुत-कृत्योंवाला (होता है), आप गौतम कलके लिये भिक्षु-संघ-सहित मेरा भोजन स्वीकार करें।"

भगवान् ने मौन रह स्वीकार किया। तब भगवान् वेरंज ब्राह्मणको धार्मिक कथासे संदर्शन ··· करा आसनसे उठकर चल दिये।

वेरंज ब्राह्मणने उस रातके बीत जानेपर, अपने घरमें उत्तम खाद्य-भोज्य तय्यार करा, भगवान्‌को कालकी सूचना दी···। तब भगवान् पूर्वाह्न समय (चीवर) पहिन कर, पात्र-चीवर ले, जहाँ वेरंज ब्राह्मणका घर था, वहाँ गये। जाकर भिक्षु-संघ-सहित बिछे आसन पर बैठे। वेरंज ब्राह्मणने अपने हाथसे बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको उत्तम खाद्य-भोज्यसे संतर्पित कर, पूर्ण किया, खाकर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, भगवान्‌को तीन [1]चीवरसे आच्छादित किया। एक एक भिक्षुको एक एक धुस्से (= थान) जोड़ेसे आच्छादित किया। भगवान् वेरंज ब्राह्मणको धर्म-उपदेश कर···आसनसे उठ चल दिये।

भगवान् वेरंजामें इच्छानुसार विहरकर, [2]सोरेय्य, [3]संकाश्य (= संकस्स, कान्य-कुब्ज (=कण्णकुज्ज, कन्नौज) होते हुये, जहाँ [4]प्रयाग-प्रतिष्ठान (= पयाग-पतिट्ठान) था वहाँ गये। जाकर प्रयाग-प्रतिष्ठानमें गङ्गा नदी पारकर, जहाँ वाराणसी थी, वहाँ गये। तब भगवान् वाराणसीमें इच्छानुसार विहर कर, जहाँ वैशाली थी, वहाँ चारिकाके लिये चल दिये। क्रमशः चारिका करते जहाँ वैशाली थी, वहाँ पहुँचे। वैशालीमें भगवान् महावन कूटागारशालामें विहार करते थे।

बुद्ध-चारिका [5]बुद्धोंका आचार है। वर्षा-वास समाप्तकर [6]प्रवारणा करके लोक-संग्रहके लिये देशाटन करते हुए महा-मण्डल, मध्य मण्डल, अन्तिम-मण्डल इन तीन मण्डलोंमेंसे एक मण्डलमें चारिका करते हैं।···महामण्डल नौ सौ योजन है, मध्य-मण्डल ६०० योजन और अन्तिम मण्डल सौ··· योजन है। जब महामंडलमें चारिका करना चाहते हैं, तो महाप्रवारणा (=आश्विन पूर्णिमा)को प्रवारणाकर, प्रतिपद्‌के दिन महा-भिक्षु-संघके साथ निकलकर ग्राम-निगम (=कस्बा) आदिमें अन्न-पान आदि (=आमिष) ग्रहणकर लोगोंपर कृपा करते, धर्म-दान (=धर्मोपदेश) से···उनके पुण्यकी वृद्धि करते, नव मासमें देशाटन समाप्त करते हैं। यदि वर्षावासमें भिक्षुओंकी शमथ-विपश्यना (=समाधि-प्रज्ञा) अपरिपक्व (=तरुण) होती है, तो महाप्रवारणाको प्रवारणा न कर,···कार्तिककी पूर्णमासीको प्रवारणाकर मार्ग-

---

१. (१) अन्तरवासक (= लुंगी), (२) उत्तरासंग (= ऊपरकी चद्दर), (३) संघाटी (= दोहरी चद्दर)। २. सोरों (जिला एटा)। ३. संकिसा-बसन्तपुर (जि० फर्रुखाबाद)। ४. शायद इलाहाबाद। ५. विनयपिटक (पाराजिका १)। ६. आश्विन-पूर्णिमाके उपोसथको प्रवारणा कहते हैं।

शीर्षके पहिले दिन महा भिक्षु-संघ-सहित निकलकर, उपरोक्त प्रकारसे ही मध्य-मंडलमें आठ महीनेमें चारिका समाप्त करते हैं । यदि वर्षा समाप्त करनेपर भी विनयाकांक्षी सत्त्वोंकी भावना नहीं होती, तो उनकी भावनाके परिपक्व होनेके लिये मार्गशीर्ष मास भर भी वहीं वासकर, पूस (=फुस्स) मासके पहिले दिन, महा-भिक्षु-संघ-सहित निकलकर, उक्त क्रमसे ही अन्तिम-मण्डलमें सात महीनेमें चारिका समाप्त करते हैं ।

\+ + + + +

(९)

बनारसमें । वैशालीमें । (ई. पू. ५१६) ।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् वाराणसीमें ऋषिपतन मृगदावमें विहार करते थे ।

वहाँ भगवान्‌ने पूर्वाह्ण-समय (चीवर) पहिनकर पात्र-चीवर ले वाराणसीमें पिंड चार के लिये प्रवेश किया । [2]गोयोगप्लक्षमें पिंड-चार करते, भगवान्‌ने किसी शून्य-हृदय (= रित्तास), बहिमुर्ख-चित्त (= बाहिरास) मूढ-स्मृति, संप्रजन्य-रहित अ-समाधान-चित्त = विभ्रान्त-चित्त प्राकृत-इन्द्रिय (=साधारण काम-भोगी जनों जैसा) भिक्षुको देखा । देखकर उस भिक्षुको कहा—

"भिक्षु ! भिक्षु ! अपनेको तू जूठन मत बना । जूठन बने दुर्गन्धसे लिप्त हुये तुझपर कहीं मक्खियाँ न आयें, (तुझे) मलिन न करदें । (तेरे लिये) यह उचित नहीं है ।"

भगवान्-द्वारा इस प्रकारके उपदेशसे उपदिष्ट हो, वह भिक्षु वैराग्य (= संवेग) को प्राप्त हुआ । भगवान्‌ने वाराणसीमें पिंडचार कर, भोजनानन्तर भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! आज मैंने पूर्वाह्ण समय० भिक्षुको देखा । देखकर भिक्षुको कहा—'भिक्षु ! भिक्षु ! अपनेको तू जूठन मत बना० तब भिक्षुओ ! वह भिक्षु मेरे इस उपदेशसे उपदिष्ट हो, संवेगको प्राप्त हो गया ।"

ऐसा कहनेपर एक भिक्षुने भगवान्‌से पूछा—

"क्या है भन्ते ! जूठन(= कटुविय), क्या है दुर्गन्ध (= आमगंध), क्या हैं मक्खियाँ ?"

"भिक्षु ! अभिध्या (= लोभ, राग) जूठन है, व्यापाद (= द्रोह) आमगंध है ; और पाप अ-कुशल-वितर्क (= बुरे विचार) मक्खियाँ हैं ।"···

वैशालीमें ।

[3]उस समय वैशालीके नातिदूर कलन्दक-ग्राम नामका (गाँव) था । वहाँ सुदिन्न-कलन्दपुत्त नामक सेठका लड़का रहता था । तब सुदिन्न कलन्द-पुत्त बहुतसे मित्रोंके साथ, किसी कामके लिये वैशाली गया । उस समय भगवान् बड़ी भारी परिषद्‌के साथ बैठे, धर्म

१. अ. नि.३:३:६ । २. "बैलहट्टेमें उगा एक पाकड़का वृक्ष ।" अ. क. ३. विनय, (पाराजिका १) ।

उपदेश कर रहे थे। सुदिन्न कलन्द-पुत्तने भगवान्‌को० उपदेश करते देखा। देखकर उसके चित्तमें हुआ—मैं भी क्यों न धर्म सुनूं। तब सुदिन्न कलन्द-पुत्र जहाँ वह परिषद् थी, वहाँ गया। जाकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये सुदिन्न कलन्द-पुत्रको यह हुआ—'जैसे जैसे मैं भगवान्‌के उपदिष्ट धर्मको जान रहा हूं, (उससे जान पड़ता है कि) यह सर्वथा परिपूर्ण, सर्वथा परिशुद्ध खरादे शंखसा उज्वल ब्रह्मचर्य, घरमें बसे (=गृहस्थ रहते) को सुकर नहीं है। क्यों न मैं सिर-दाढ़ी मुंडा, काषाय वस्त्र पहिन, घरसे बेघर हो प्रव्रजित होजाऊँ ?' तब भगवान्‌के धार्मिक उपदेश को···(सुन)···वह परिषद् आसनसे उठ, भगवान्‌को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चली गई। परिषद्‌के चले जानेके थोड़ीही देर बाद, सुदिन्न कलन्द-पुत्र जहाँ भगवान् थे वहाँ गया, जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे सुदिन्न कलन्द-पुत्रने भगवान्‌को कहा—

"जैसे जैसे भन्ते! मैं भगवान्‌के उपदिष्ट धर्मको जान रहा हूँ०। भन्ते! मैं सिर-दाढ़ी मुंडा० प्रव्रजित होना चाहता हूँ। भन्ते! भगवान् मुझे प्रव्रजित करें।"

"सुदिन्न! क्या घरसे बेघर हो प्रव्रजित होनेके लिये तुम माता पिताके द्वारा अनुज्ञात हो।"

"भन्ते! घरसे बेघर प्रव्रजित होनेके लिये, मैं माता-पिता-द्वारा अनुज्ञात नहीं हूं।"

"सुदिन्न! तथागत माता-पिता-द्वारा अननुज्ञात पुत्रको प्रव्रजित नहीं करते।"

"तो मैं भन्ते! ऐसा करूँगा, जिसमें० प्रव्रजित होनेकी अनुज्ञा (= आज्ञा) देदें।"

तब सुदिन्न कलन्द-पुत्र वैशालीमें उस कार्यको खुतमकर, जहाँ कलन्द-ग्राम था, जहाँ माता-पिता थे, वहाँ गया। जाकर माता-पिताको बोला—

"अम्मा! तात! जैसे जैसे मैं भगवान्‌के० उपदिष्ट धर्म०। मैं० प्रव्रजित होना चाहता हूं। मुझे ०प्रव्रजित होनेकी अनुज्ञा दो।"

ऐसा कहनेपर सुदिन्न० के माता पिताने सुदिन्नको० यह कहा—"तात! सुदिन्न! तुम हमारे प्रिय = मनाप, सुखमें बढ़े, सुखमें पले एक ही पुत्र हो। तात! सुदिन्न! तुम दुःख कुछ भी नहीं जानते। मरनेपर भी हम तुमसे अनिच्छुक न होंगे; फिर हम तुम्हें जीतेजी, कैसे घरसे बेघर प्रव्रजित होनेकी अनुज्ञा देंगे?"

दूसरी बारभी सुदिन्नने० माता पिताको यह कहा ०।०।

तीसरी बार भी ०।०।

तब सुदिन्न कलन्द-पुत्र—'मुझे माता-पिता घरसे बेघर प्रव्रजित होनेकी अनुज्ञा नहीं देते'—(सोच) वहीं नंगी धरतीपर पड़ रहा—'यहीं मेरा मरण होगा या प्रव्रज्या।' तब सुदिन्न०ने एक (बारका) भात (= भोजन) न खाया, दो भी०, तीन भी०, चार०, पाँच०, छः०, सात०। तब सुदिन्नके० माता पिताने सुदिन्नको० यह कहा—

"तात! सुदिन्न! तुम हमारे प्रिय० एक पुत्र हो०। मरनेपरभी हम तुमसे अकाम न होंगे०। उठो तात! सुदिन्न खाओ पीओ···(सुखी) हो। खाते पीते···सुखसे काम-भोग भोगते पुण्य करते रमण करो। हम तुम्हें···प्रव्रजित होनेकी अनुज्ञा न देंगे।"

ऐसा बोलनेपर सुदिन्न० चुप रहा।

दूसरी बार भी ०।०।

तीसरी बार भी ०।०।

तब सुदिन्न० के मित्र जहाँ सुदिन्न था, वहां गये; जाकर सुदिन्न० को बोले—

"सौम्य ! सुदिन्न ! तुम माता पिताके प्रिय० एक-पुत्र हो । मरनेपर भी तुम्हारे माता पिता० प्रव्रजित होने की आज्ञा न देंगे । उठो सौम्य सुदिन्न ! खाओ, पीओ० पुण्य करते रमण करो । माता-पिता तुम्हें प्रव्रजित होनेकी आज्ञा न देंगे ।"

ऐसा बोलनेपर सुदिन्न० चुप रहा ।

दूसरी बार भी ०।० ।

तीसरी बार भी ०।० ।

तब सुदिन्नके० मित्र जहाँ सुदिन्न० के माता-पिता थे, वहाँ गये । जाकर···बोले—

"अम्मा ! तात ! यह सुदिन्न नंगी धरतीपर पड़ा ··(कहता है ;—'यहीं मरण होगा या प्रव्रज्या' । यदि ०प्रव्रज्याकी अनुज्ञा न दोगे, तो वहीं मर जायेगा । यदि सुदिन्नको ०प्रव्रज्याकी अनुज्ञा देदोगे, तो प्रव्रजित होनेपर उसे देखोगे । यदि सुदिन्नको ०प्रव्रज्या अच्छी न लगी, तो उसकी दूसरी और क्या गति होगी ?—यहीं लौट आयेगा । सुदिन्नको० प्रव्रज्याकी अनुज्ञा देदो ।"

"तातो ! हम सुदिन्नको ०प्रव्रज्याकी अनुज्ञा देते हैं ।"

तब सुदिन्न कलन्द-पुत्र के मित्र जहाँ सुदिन्न कलन्द-पुत्र था वहाँ गये, जाकर सुदिन्न कलन्द-पुत्रको बोले—

"उठो सौम्य ! सुदिन्न ! ०प्रव्रज्याके लिये माता-पिता-द्वारा अनुज्ञात हो ।"

तब सुदिन्न कलन्द-पुत्र—'०प्रव्रज्याके लिये माता-पिता-द्वारा अनुज्ञात हूँ'—(जान) हृष्ट=उदग्र हाथसे शरीर पोंछते, उठ खड़ा हुआ । तब सुदिन्न० कुछ दिनमें शक्ति पाकर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया; जाकर भगवानको अभिवादनकर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुये, सुदिन्न कलन्द-पुत्रने भगवान्को कहा—

"भन्ते ! ०प्रव्रज्याके लिये मैं माता-पिता-द्वारा अनुज्ञात हूँ । मुझे भगवान् प्रव्रजित करें ।"

सुदिन्न कलन्द-पुत्रने भगवान्के पास प्रव्रज्या (=श्रामणेरभाव) और उपसंपदा (= भिक्षु-भाव) पाई । उपसंपदा (=भिक्षु होने) के थोड़ी ही देर बाद, सुदिन्न इन धुत (=अवधूत)-गुणोंसे युक्त हो वज्जी (देश)के एक ग्राममें विहार करने लगे···जैसे, आरण्यक (=वनमें रहना), पिंड-पातिक (=मधूकरी खाना, निमंत्रण आदि नहीं), पांशु-कुलिक (=फेंके चीथड़ोंको ही सीकर पहिनना), और स-पदान-चारी (निरंतर-चारिका चलते) रहना।

\+ \+ \+

[1]भगवान्ने तेरहवीं (वर्षा) चालिय पर्वतमें (बिताई) ।

\+ \+ \+ \+

---

१ अ. नि. अ. क. २:४:५. ।

उपदेश कर रहे थे। सुदिन्न कलन्द-पुत्रने भगवान्को० उपदेश करते देखा। देखकर उसके चित्तमें हुआ—मैं भी क्यों न धर्म सुनूं। तब सुदिन्न कलन्द-पुत्र जहाँ वह परिषद् थी, वहाँ गया। जाकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये सुदिन्न कलन्द-पुत्रको यह हुआ—'जैसे जैसे मैं भगवान्के उपदिष्ट धर्मको जान रहा हूँ, (उससे जान पड़ता है कि) यह सर्वथा परिपूर्ण, सर्वथा परिशुद्ध खरादे शंखसा उज्वल ब्रह्मचर्य, घरमें बसे (=गृहस्थ रहते) को सुकर नहीं है। क्यों न मैं सिर-दाढ़ी मुड़ा, काषाय वस्त्र पहिन, घरसे बेघर हो प्रव्रजित होजाऊँ ? तब भगवान्के धार्मिक उपदेश को'''(सुन)'''वह परिषद् आसनसे उठ, भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चली गई। परिषद्के चले जानेके थोड़ीही देर बाद, सुदिन्न कलन्द-पुत्र जहाँ भगवान् थे वहाँ गया, जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे सुदिन्न कलन्द-पुत्रने भगवान्को कहा—

"जैसे जैसे भन्ते ! मैं भगवान्के उपदिष्ट धर्मको जान रहा हूँ०। भन्ते ! मैं सिर-दाढ़ी मुड़ा० प्रव्रजित होना चाहता हूँ। भन्ते ! भगवान् मुझे प्रव्रजित करें।"

"सुदिन्न ! क्या घरसे बेघर हो प्रव्रजित होनेके लिये तुम माता पिताके द्वारा अनुज्ञात हो।"

"भन्ते ! घरसे बेघर प्रव्रजित होनेके लिये, मैं माता-पिता-द्वारा अनुज्ञात नहीं हूँ।"

"सुदिन्न ! तथागत माता-पिता-द्वारा अननुज्ञात पुत्रको प्रव्रजित नहीं करते।"

"तो मैं भन्ते ! ऐसा करूँगा, जिसमें० प्रव्रजित होनेकी अनुज्ञा (= आज्ञा) देदें।"

तब सुदिन्न कलन्द-पुत्र वैशालीमें उस कार्यको भुगताकर, जहाँ कलन्द-ग्राम था, जहाँ माता-पिता थे, वहाँ गया। जाकर माता-पिताको बोला—

"अम्मा ! तात ! जैसे जैसे मैं भगवान्के० उपदिष्ट धर्म०। मैं० प्रव्रजित होना चाहता हूँ। मुझे ०प्रव्रजित होनेकी अनुज्ञा दो।"

ऐसा कहनेपर सुदिन्न० के माता पिताने सुदिन्नको० यह कहा—"तात ! सुदिन्न ! तुम हमारे प्रिय = मनाप, सुखमें बढ़े, सुखमें पले एक ही पुत्र हो। तात ! सुदिन्न ! तुम दुःख कुछ भी नहीं जानते। मरनेपर भी हम तुमसे अनिच्छुक न होंगे; फिर हम तुम्हें जीतेजी, कैसे घरसे बेघर प्रव्रजित होनेकी अनुज्ञा देंगे ?"

दूसरी बारभी सुदिन्नने० माता पिताको यह कहा ०।०।

तीसरी बार भी ०।०।

तब सुदिन्न कलन्द-पुत्र—'मुझे माता-पिता घरसे बेघर प्रव्रजित होनेकी अनुज्ञा नहीं देते'—(सोच) वहीं नंगी धरतीपर पड़ गया—'यहीं मेरा मरण होगा या प्रव्रज्या'। तब सुदिन्नने एक (बारका) भात (= भोजन) न खाया, दो भी०, तीन भी०, चार०, पाँच०, छः०, सात०। तब सुदिन्नके० माता पिताने सुदिन्नको० यह कहा—

"तात ! सुदिन्न ! तुम हमारे प्रिय० एक पुत्र हो०। मरनेपरभी हम तुमसे अकाम न होंगे०। उठो तात ! सुदिन्न खाओ पीओ'''(मौज) करो। खाते पीते'''तुम काम-भोग भोगते पुण्य करते रमण करो। हम तुम्हें'''प्रव्रजित होनेकी अनुज्ञा न देंगे।"

ऐसा बोलनेपर सुदिन्न० चुप रहा।

दूसरी बार भी ०।०।

तीसरी बार भी ०।०।

तब सुदिन्न० के मित्र जहाँ सुदिन्न था, वहां गये; जाकर सुदिन्न० को बोले—

"सौम्य ! सुदिन्न ! तुम माता पिताके प्रिय० एक-पुत्र हो। मरनेपर भी तुम्हारे माता पिता० प्रव्रजित होने की आज्ञा न देंगे। उठो सौम्य सुदिन्न ! खाओ, पीओ० पुण्य करते रमण करो। माता-पिता तुम्हें प्रव्रजित होनेकी आज्ञा न देंगे।"

ऐसा बोलनेपर सुदिन्न० चुप रहा।

दूसरी बार भी ०।०।

तीसरी बार भी ०।०।

तब सुदिन्नके० मित्र जहाँ सुदिन्न० के माता-पिता थे, वहाँ गये। जाकर···बोले—

"अम्मा ! तात ! यह सुदिन्न नंगी धरतीपर पड़ा ··(कहता है)—'यहीं मरण होगा या प्रव्रज्या'। यदि ०प्रव्रज्याकी अनुज्ञा न दोगे, तो वहीं मर जायेगा। यदि सुदिन्नको ०प्रव्रज्याकी अनुज्ञा देदोगे, तो प्रव्रजित होनेपर उसे देखोगे। यदि सुदिन्नको ०प्रव्रज्या अच्छी न लगी, तो उसकी दूसरी और क्या गति होगी ?—यहीं लौट आयेगा। सुदिन्नको० प्रव्रज्याकी अनुज्ञा देदो।"

"तातो ! हम सुदिन्नको ०प्रव्रज्याकी अनुज्ञा देते हैं।"

तब सुदिन्न कलन्द-पुत्र के मित्र जहाँ सुदिन्न कलन्द-पुत्र था वहाँ गये, जाकर सुदिन्न कलन्द-पुत्रको बोले—

"उठो सौम्य ! सुदिन्न ! ०प्रव्रज्याके लिये माता-पिता-द्वारा अनुज्ञात हो।"

तब सुदिन्न कलन्द-पुत्र—'०प्रव्रज्याके लिये माता-पिता-द्वारा अनुज्ञात हूँ'—(जान) हृष्ट=उदग्र हाथसे शरीर पोंछते, उठ खड़ा हुआ। तब सुदिन्न० कुछ दिनमें शक्ति पाकर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया; जाकर भगवानको अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये, सुदिन्न कलन्द-पुत्रने भगवान्को कहा—

"भन्ते ! ०प्रव्रज्याके लिये मैं माता-पिता-द्वारा अनुज्ञात हूँ। मुझे भगवान् प्रव्रजित करें।"

सुदिन्न कलन्द-पुत्रने भगवान्के पास प्रव्रज्या (=श्रामणेरभाव) और उपसंपदा (= भिक्षु-भाव) पाई। उपसंपदा (=भिक्षु होने) के थोड़ी ही देर बाद, सुदिन्न इन धुत (=अवधूत)-गुणोंसे युक्त हो वज्जी (देश)के एक ग्राममें विहार करने लगे···जैसे, आरण्यक (=वनमें रहना), पिंड-पातिक (=मधूकरी खाना, निमंत्रण आदि नहीं), पांशु-कुलिक (=फेंके चीथड़ोंको ही सीकर पहिनना), और स-पदान-चारी (निरंतर-चारिका चलते) रहना।

\+ \+ \+

[1]भगवान्ने तेरहवाँ (वर्षा) चालिय पर्वतमें (बिताई)।

\+ \+ \+ \+

---

१ अ. नि. अ. क. २:४:५.।

(१०)

सीह-सुत्त (ई. पू. ५१५)।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् वैशालीमें महावनकी कूटागार-शालामें विहार करते थे।

उस समय बहुतसे प्रतिष्ठित प्रतिष्ठित लिच्छवि संस्थागार (=गणराज्यभवन) में बैठे हुये, एकत्रित हुये, बुद्धका गुण बखानते थे, धर्मका०, संघका गुण बखानते थे। उस समय निगंठों (=जैनों) का श्रावक सिंह सेनापति उस सभामें बैठा था। तब सिंह सेनापतिके चित्तमें हुआ—'निःसंशय वह भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध होंगे, तभी तो यह बहुतसे प्रतिष्ठित लिच्छवि ०बखान रहे हैं। क्यों न मैं उन भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्धके दर्शनके लिये जाऊँ।'

तब सिंह सेनापति जहाँ निगंठ नाथ-पुत्त थे, वहाँ गया। जाकर निगंठ नाथ-पुत्तको बोला—

"भन्ते! मैं श्रमण गौतमको देखनेके लिये जाना चाहता हूँ।"

"सिंह! क्रियावादी होते हुये, तू क्या अक्रिया-वादी श्रमण गौतमके दर्शनको जायेगा। सिंह! श्रमण गौतम अक्रिया-वादी है, श्रावकोंको अ-क्रिया-वादका उपदेश करता है…।"

तब सिंह सेनापतिकी भगवान्‌के दर्शनके लिये जानेकी जो इच्छा थी, वह शांत होगई।

दूसरी बार भी बहुतसे प्रतिष्ठित प्रतिष्ठित लिच्छवि०। तब सिंह सेनापति जहाँ निगंठ नाथ-पुत्त थे, वहाँ गया० कहा०।

"क्या तू सिंह! क्रियावादी होकर, अक्रियावादी श्रमण गौतमके दर्शनको जायेगा०।"

दूसरी बार भी सिंह सेनापतिकी० इच्छा० शांत होगई।

तीसरी बार भी बहुतसे प्रतिष्ठित प्रतिष्ठित लिच्छवि०। 'पूछूँ या न पूछूँ' निगंठ नाथ-पुत्त मेरा क्या करेगा? क्यों न निगंठ नाथ-पुत्तको बिना पूछे ही, मैं उन भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्धके दर्शनके लिये जाऊँ'?

तब सिंह सेनापति पाँच सौ रथों के साथ, दिन ही दिन (=दो पहर) को भगवान् के दर्शनके लिये, वैशालीसे निकला। जितना यान (=रथ) का रास्ता था, उतना यानसे जाकर, यानसे उतर, पैदल ही आराममें प्रविष्ट हुआ। सिंह सेनापति जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये सिंह सेनापतिने भगवान्‌को यह कहा—

"भन्ते! मैंने सुना है कि—श्रमण गौतम अक्रिया-वादी है। अक्रियाके लिये धर्म उपदेश करता है, उसीकी ओर शिष्योंको ले जाता है। भन्ते! जो ऐसा कहता है—'श्रमण गौतम अक्रिया-वादी है०।'…क्या वह भगवान्‌को…ठीक कहता है? अभूत (=जो नहीं है) से भगवान्‌की निन्दा तो नहीं करता? धर्मानुसार ही धर्मको कहता है?

---

1. अं. नि. ८: १: २: २।

कोई सह-धार्मिक वादानुवाद तो निन्दित नहीं होता ? भन्ते ! हम भगवान्‌की निन्दा करना नहीं चाहते ।"

"सिंह ! ऐसा कारण है, जिस कारणसे ठीक ठीक कहते हुये, मुझे कहा जा सकता है—'श्रमण 'गौतम अक्रिया-वादी है०' ।

"सिंह ! क्या कारण है, 'श्रमण गौतम अ-क्रिया-वादी है०' सिंह ! मैं काय-दुश्चरित, वचन-दुश्चरित, मन-दुश्चरितको, अनेक प्रकारके पाप अकुशल-धर्मोंको अक्रिया कहता हूँ० ।०

"सिंह ! क्या कारण है जिस कारणसे०—'श्रमण गौतम क्रिया-वादी है, क्रियाके लिये धर्म उपदेश करता है, उसीसे श्रावकोंको ले जाता है० । सिंह ! मैं काय-सुचरित (=अ-हिंसा, चोरी न करना, अ-व्यभिचार), वाक्-सुचरित (=सच बोलना, चुगली न करना, मीठा वचन, बकवाद न करना), मन-सुचरित (=अ-लोभ, अ-द्रोह, सम्यक्-दृष्टि) अनेक प्रकारके कुशल (=उत्तम) धर्मोंको क्रिया कहता हूँ । सिंह ! यह कारण है जिस कारणसे० मुझे 'श्रमण गौतम क्रियावादी' है० ।०

"०उच्छेदवादी० । ०जुगुप्सु० । ०वैनायिक० । ०तपस्वी० । अपगर्भ० ।

"सिंह ! क्या कारण है जिस कारणसे ठीक ठीक कहनेवाला मुझे कह सकता है—'श्रमण गौतम अस्ससन्त (=आश्वसन्त) है, आश्वासके लिये धर्म-उपदेश करता है, उसीसे श्रावकोंको ले जाता है' । सिंह ! मैं परम आश्वाससे आश्वासित हूँ, आश्वासके लिये धर्म उपदेश करता हूँ, आश्वास (के मार्ग) से ही श्रावकोंको ले जाता हूँ । यह कारण० ।"

ऐसा कहनेपर सिंह सेनापतिने भगवान्‌को कहा—

"आश्चर्य ! भन्ते ! आश्चर्य ! भन्ते !० उपासक मुझे स्वीकार करें ।"

"सिंह ! सोच समझकर करो० । तुम्हारे जैसे संभ्रान्त मनुष्योंका सोच समझ कर (निश्चय) करना ही अच्छा है ।"

"भन्ते ! भगवान्‌के इस कथनसे मैं और भी सन्तुष्ट हुआ । भन्ते ! दूसरे तैर्थिक मुझे श्रावक पाकर, सारी वैशालीमें पताका उड़ाते—सिंह सेनापति हमारा श्रावक (=चेला) हो गया । लेकिन भगवान् मुझे कहते हैं—'सोच समझकर सिंह ! करो० । यह मैं भन्ते ! दूसरी बार भगवान्‌की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी० ।"

"सिंह ! तुम्हारा कुल दीर्घकालसे निगंठोंके लिये प्याउकी तरह रहा है; उनके जानेपर पिंड न देना (चाहिये)' ऐसा मत समझना ।"

"भन्ते ! इससे मैं और भी प्रसन्न-मन, सन्तुष्ट, और अभिरत हुआ । ० । मैंने सुना था भन्ते ! कि श्रमण गौतम ऐसा कहता है—'मुझे ही दान देना चाहिये, दूसरोंको दान न देना चाहिये०'[2] । भन्ते ! भगवान् तो मुझे निगंठोंको भी दान देनेको कहते हैं । हम भी भन्ते ! इसे युक्त समझेंगे । यह भन्ते ! मैं तीसरी बार भगवान्‌की शरण जाता हूँ । ० ।

तब भगवान्‌ने सिंह सेनापतिको आनुपूर्वी कथा कही, जैसे—दान-कथा, शील-कथा,

---

१. अक्रियावादी, उच्छेदवादी, जुगुप्सु, तपस्वी, अप-गर्भकी व्याख्या वेरञ्जसुत्त (पृष्ठ १२९, १३०) में देखो । २. उपालि-सुत्त देखो ।

स्वर्ग-कथा, कामभोगोंके दोष, अपकार और क्लेश; और निष्कर्मताका माहात्म्य प्रकाशित किया। जब भगवान्‌ने सिंह सेनापतिको अरोग-चित्त, मृदु-चित्त, अनाच्छादित चित्त, उद्‌ग्र-चित्त, प्रसन्न-चित्त जाना। तब वह जो बुद्धोंकी स्वयं उठानेवाली धर्म-देशना है, उसे प्रकाशित किया—दुःख, समुदय, निरोध और मार्ग। जैसे कालिमा-रहित शुद्ध वस्त्र अच्छी प्रकार रङ्ग पकड़ता है, इसी प्रकार सिंह सेनापतिको उसी आसनपर वि-मल, वि-रज, धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ—

'जो कुछ समुदय-धर्म है, वह सब निरोध-धर्म है'। सिंह सेनापति दृष्ट-धर्म=प्राप्त-धर्म=विदित-धर्म=परि-अवगाढ-धर्म, संदेह-रहित, वाद-विवाद-रहित, विशारदता-प्राप्त, शास्ताके शासनमें स्वतन्त्र हो भगवान्‌से यह बोला—

"भन्ते! भिक्षु-संघके साथ भगवान् मेरा कलका भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया। तब सिंह सेनापति भगवान्‌की स्वीकृतिको जान आसनसे उठ भगवान्‌को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर चला गया।

तब सिंह सेनापतिने एक आदमीसे कहा—

"हे आदमी! जा तू तय्यार मांसको देख तो।"

तब सिंह सेनापतिने उस रातके बीतनेपर अपने घरमें उत्तम खाद्य-भोज्य तय्यार करा, भगवान्‌को कालकी सूचना दी। भगवान् पूर्वाह्न समय (चीवर) पहनकर पात्र-चीवर ले जहाँ सिंह सेनापतिका घर था, वहाँ गये। जाकर भिक्षु-संघके साथ बिछे आसनपर बैठे। उस समय बहुतसे निगंठ (=जैनसाधु) वैशालीमें एक सड़कसे दूसरी सड़कपर, एक चौरस्तेसे दूसरे चौरस्तेपर, बाँह उठाकर चिल्ला रहे थे—'आज सिंह सेनापतिने मोटे पशुओंको मारकर, श्रमण गौतमके लिये भोजन पकाया; श्रमण गौतम जान बूझकर (अपनेही) उद्देश्यसे तैयार किये, उस (मांस) को खाता है।'...

तब कोई पुरुष जहाँ सिंह सेनापति था, वहाँ गया। जाकर सिंह सेनापतिके कानमें बोला—

"भन्ते! जानते हैं, बहुतसे निगंठ वैशालीमें एक सड़क से दूसरी सड़कपर० बाँह उठाकर चिल्ला रहे हैं—आज०।"

"जाने दो आर्यो (=अय्यो)! चिरकालसे यह आयुष्मान् (=निगंठ) बुद्ध० धर्म० संघकी निन्दा चाहने वाले हैं। यह आयुष्मान् भगवान्‌की असत्, तुच्छ, मिथ्या, अ-भूत निन्दा करते नहीं शरमाते। हम तो (अपने) प्राणके लिये भी जान बूझकर प्राण न मारेंगे।"

तब सिंह सेनापतिने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्यसे संतर्पित, परिपूर्ण किया। भगवान्‌के भोजनकर पात्रसे हाथ खींच लेनेपर, सिंह सेनापति...एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये सिंह सेनापतिको भगवान्, धार्मिक कथासे संदर्शन करा..., आसनसे उठकर चल दिये।

\+ + + + +

(११)

मेण्डक-दीक्षा । विशाखा । (ई. पू. ५१५)

[1]तब भगवान् वैशालीमें इच्छानुसार विहारकर साढ़े बारहसौ भिक्षुओंके महाभिक्षुसंघके साथ, जिधर [1]भद्दिया थी, उधर चारिकाके लिये चल दिये। क्रमशः चारिका करते जहाँ भद्दिया थी, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् भद्दिया (=भद्रिका) में जातिया(=जातिका)वनमें विहार करते थे। मेण्डक गृहपतिने सुना कि—'शाक्य-कुलसे प्रव्रजित शाक्य-पुत्र श्रमण गौतम भद्दियामें आए हैं,...जातियावनमें विहार करते हैं। उन भगवान् गौतमका ऐसा कल्याण (=मङ्गल) कीर्ति-शब्द फैला हुआ है—'वह भगवान् अर्हत, सम्यक्-संबुद्ध, विद्या-आचरण-संयुक्त, सुगत, लोक-विद्, पुरुषोंके अनुत्तर (=सर्वश्रेष्ठ) दम्य-सारथी (=चाबुक-सवार), देव-मनुष्योंके शास्ता, बुद्ध भगवान् हैं। वह देव-मार-ब्रह्मा-सहित इस लोकको; श्रमण-ब्राह्मणों सहित, देव-मनुष्यों सहित-(इस) प्रजा (=जनता) को, स्वयं (परम-तत्वको) जानकर साक्षात्कर समझाते हैं। वह आदि-कल्याण, मध्य-कल्याण, अवसान(अन्तमें)-कल्याण, अर्थ-सहित=व्यंजनसहित, धर्मको उपदेशते हैं; और केवल, परिपूर्ण, परिशुद्ध, ब्रह्मचर्यका प्रकाश करते हैं। इस प्रकारके अर्हतोंका दर्शन उत्तम होता है।'

तब मेंडक गृहपति भद्र (=उत्तम) भद्र यानोंको जुड़वाकर, भद्र यानपर आरूढ़ हो, भद्र भद्र यानोंके साथ, भगवान्के दर्शनके लिये भद्रिकासे निकला। बहुतसे तैर्थिकों (=पंथायियों)ने दूरसे ही मेंडक-गृहपतिको आते हुये देखा। देखकर मेंडक-गृहपतिको कहा—

"गृहपति! तू कहाँ जाता है?"

"भन्ते! मैं श्रमण गौतमके दर्शनके लिये जाता हूँ।"

"क्यों गृहपति! तू क्रियावादी होकर अ-क्रियावादी श्रमण गौतमके दर्शनको जाता है? गृह-पति! श्रमण गौतम अ-क्रियावादी हैं, अ-क्रियाके लिये धर्म उपदेश करता है, उसी (रास्ते)से श्रावकोंको भी ले जाता है।"

तब मेंडक गृहपतिको हुआ—

"निःसंशय वह भगवान् अर्हन् सम्यक्-संबुद्ध होंगे, जिसलिये कि यह तैर्थिक निंदा करते हैं।"

जितना रास्ता यानका था, उतना यानसे जाकर (फिर) यानसे उतर, पैदल ही जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे मेंडक श्रेष्ठीको भगवान्ने आनुपूर्विक [2]कथा कही ०। मेंडक गृहपतिको उसी आसनपर विमल विरज धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ—'जो कुछ समुदय-धर्म है, वह निरोध-धर्म है।०। तब दृष्टधर्म० मेंडक गृहपतिने भगवान् को कहा—"आश्चर्य! भन्ते!! आश्चर्य! भन्ते!! जैसे कि भन्ते!० मैं भगवान्की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी। आजसे भगवान् मुझे सांजलि शरणागत उपासक जानें। भन्ते! भिक्षु-संघ-सहित भगवान् मेरा कलका भोजन स्वीकार करें।"

---

१. महावग्ग ६. २. मुंगेर (बिहार)। २. देखो, पृ. २५।

"भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया।"

मेंडक गृहपति भगवान्‌की स्वीकृतिको जान, आसनसे उठ, भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया।

तब मेंडक गृहपतिने उस रातके बीतनेपर उत्तम खाद्य-भोज्य तैय्यार करा, भगवान्‌को काल सूचित कराया०। भगवान् पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, जहाँ मेंडक श्रेष्ठीका घर था, वहाँ गये। जाकर भिक्षुसंघ-सहित बिछे आसनपर बैठे। तब मेंडक गृहपतिकी भार्या, पुत्र, पुत्र-वधू (=सुणिसा) और दास जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये; जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। उनको भगवान्‌ने आनुपूर्विक कथा कही०। उनको उसी आसनपर वि-मल वि-रज धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ०। तब दृष्ट-धर्म० उन्होंने भगवान्‌को कहा—

"आश्चर्य! भन्ते!! आश्चर्य! भन्ते!!० हम भन्ते! भगवान्‌की शरण जाते हैं, धर्म और भिक्षु संघकी भी। आजसे हमें भन्ते!० उपासक जानें।"

तब मेंडक गृहपतिने अपने हाथसे बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको उत्तम खाद्य भोज्यसे संतर्पितकर, पूर्णकर, भगवान्‌के भोजनकर, पात्रसे हाथ हटा लेनेपर० एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठ मेंडक गृह-पतिने भगवान्‌को कहा—

"जब तक भन्ते! भगवान् भद्दियामें विहार करते हैं, तब तक मैं बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघकी ध्रुव-भक्त (=सर्वदाके भोजन) से (सेवा करूँगा)।"

तब भगवान्! मेंडक गृहपतिको धार्मिक कथा…(कह)…आसनसे उठकर चल दिये।

\+ \+ \+ \+

विशाखाका जन्म (वि. पू. ४६५)।

[1]विशाखाका जन्म [2]अंगदेशके भद्दिया नगरमें मेंडक श्रेष्ठीके पुत्र धनंजय श्रेष्ठीकी अग्रमहिषी सुमना देवीकी कोखमें हुआ था। उसकी सात वर्षकी अवस्थामें शास्ता शैल ब्राह्मण आदिको…(बोध करानेके लिये)…महाभिक्षु-संघके साथ चारिका करते हुये, उस नगरको प्राप्त हुये। उस समय मेंडक गृहपति उस नगरके पाँच महापुण्यात्माओंमें प्रधान (=ज्येष्ठ) होकर, (नगर-) श्रेष्ठी-पद (पर) काम करता था। पाँच महापुण्यात्मा थे—मेंडक श्रेष्ठी, चन्द्र-पद्मा उसकी प्रधान भार्या, उसका ज्येष्ठ-पुत्र धनंजय, इसकी भार्या सुमना देवी, मेंडक श्रेष्ठीका दास पूरण। केवल मेंडक श्रेष्ठी ही नहीं, बिम्बिसार-राजाके राज्यमें पाँच (जने) अमितभोगवाले थे—जोतिय, जटिल, मेंडक, पुण्णक (=पूर्णक), और काकवलिय।

इसीसे मेंडक श्रेष्ठीने दश-बल (=बुद्ध) के अपने नगरमें आनेकी बात जानकर, अपने पुत्र धनंजय श्रेष्ठीकी कन्या विशाखाको बुलाकर कहा—

"अम्म! तेरा भी मंगल है, हमारा भी मंगल है। अपने परिवारकी पाँचसौ कन्याओं (तथा) पाँचसौ दासियोंके साथ, पाँचसौ रथोंपर चढ़ दशबलकी अगवानी कर।"

उसने 'अच्छा' कह वैसा ही किया। कारण अन्यान्य जन्मोंमें कुशल होनेसे जितना मार्ग

---

१. धम्मपद. अ. क. ४.८। २. गंगाके दक्षिण वर्तमान भागलपुर और मुंगेर जिले (बिहार)।

यानका था, उतना यानसे जा उतरकर पैदल ही शास्ताके पास जा वन्दनाकर एक ओर खड़ी हो गई। भगवान्‌ने उसे चर्याके संबंधमें देशनाकी। देशनाके अन्तमें वह पाँचसौ कन्याओंके साथ स्रोत-आपत्ति-फलमें प्रतिष्ठित हुई। मेण्डक श्रेष्ठीने भी शास्ताके पास आकर, धर्म-कथा सुन स्रोत-आपत्ति-फलमें प्रतिष्ठित हो, दूसरे दिनके लिये, निमंत्रितकर, दूसरे दिन अपने घरमें उत्तम खाद्य-भोज्य बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको परोसकर, इस प्रकार आठ मास महादान दिया। शास्ता भद्दिया (=मुंगेर) नगरमें इच्छानुसार विहारकर, चले गये।

उस समय बिम्बसार और प्रसेनजित् कोसल एक दूसरेके बहनोई थे। एक दिन कोसल-राजाने सोचा—'बिंबसारके राज्यमें पाँच अमितभोगवाले (आदमी) बसते हैं, मेरे राज्यमें एक भी वैसा नहीं है। क्यों न बिंबसारके पास जाकर, एक महापुण्य को मांग लाऊँ।' वह वहाँ जाकर, राजाके खातिर करनेके बाद—'किस कारणसे आये?' पूछे जाने-पर—'तुम्हारे राज्यमें पाँच अमित-भोग महापुण्य बसते हैं, उनमेंसे एकको ले जानेके लिये आया हूँ। उनमेंसे एक मुझे दो।"

"महाकुलोंको हम हटा नहीं सकते।"—कहा।

"बिना पाये न जाऊँगा।" –कहा।

राजाने अमात्योंसे सलाह करके—

"जोति आदि महाकुलोंका चलाना पृथ्वीके चलानेके समान है। मेंडक महाश्रेष्ठीका पुत्र धनंजय श्रेष्ठी है, उसके साथ सलाहकर, तुम्हें उत्तर दूँगा।" कह, उसको बुलवाकर–

"तात! कोसल-राजा–एक धनी श्रेष्ठी ले जानेको कहता है। तुम उसके साथ जाओगे?"

"आपके भेजनेपर, देव! जाऊँगा।"

"तो तात! प्रबंध करके जाओ।"

उसने अपना कृत्य समाप्त कर लिया। राजाने भी उसका बहुत सत्कार करके—'इसे ले जाओ'—कह प्रसेनजित् राजाको दे दिया। वह उसको लेकर एक रास्तेमें एक रात ठहरकर जाते हुए, एक स्थानपर डेरा डाल दिया। धनंजय श्रेष्ठीने पूछा—

"यह किसका राज्य है?"

"मेरा है, श्रेष्ठी!"

"यहाँसे श्रावस्ती कितनी दूर है?"

"यहाँसे सात योजनपर।"

"नगरके भीतर बहुत भीड़ होती है, हमारा परिजन (=नौकर-चाकर) भारी है। यदि आज्ञा हो तो, देव! यहीं बसें।"

राजा, 'अच्छा' कह, उस स्थान पर नगर बनवा, उसे देकर चला गया। सायं वास-स्थान पानेके कारण "साकेत' यही नगरका नाम हुआ।

'तब भद्दियामें इच्छानुसार विहारकर, मेंडक गृहपतिको बिना पूछे ही, साढ़े बारह

पोतलिय गृह-पति भी निवासन (=पोशाक)-प्रावरण (=चादर) पहिने, छाता-जूता धारण किये, जंघा-विहार (=चहल-कदमी) के लिये टहलता, जहाँ वह वनखंड था, वहाँ गया। वनखंडमें घुसकर, जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचा। जाकर भगवान्‌के साथ…संमोदन कर………एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े हुये पोतलिय गृह-पतिको भगवानूने कहा—

"गृहपति! आसन विद्यमान हैं, यदि चाहते हो, तो बैठो।"

ऐसा कहनेपर पोतलिय गृह-पति—'गृहपति (=गृहस्थ,वैश्य)' कहकर मुझे श्रमण गौतम पुकारता है'—कुपित और अ-सन्तुष्ट हो चुप रहा।

दूसरी बार भी०।०।

तीसरी बार भी०। तब पोतलिय गृहपतिने—'गृहपति कहकर०'—कुपित और असन्तुष्ट हो भगवान्‌से कहा—

"हे गौतम! तुम्हें यह उचित नहीं, तुम्हें यह योग्य नहीं, जो मुझे गृह-पति कहकर पुकारते हो।"

"गृहपति! तेरे वही आकार हैं, वही लिङ्ग हैं, वही निमित्त (=चिह्न) हैं, जैसे कि गृह-पति के।"

"चूंकि हे गौतम! मैंने सारे कर्मान्त (=खेती) छोड़ दिये, सारे व्यवहार (=व्यापार, वाणिज्य) समाप्त कर दिये। हे गौतम! मेरे पास जो धन, धान्य, रजत (=चाँदी), जातरूप (=सोना) था, सब पुत्रोंको मकाँ दे दिया। सो मैं (खेती आदिमें) न सलाह करनेवाला, न कटु कहनेवाला हूँ; सिर्फ खाने-पहिरने भरसे वास्ता रखने वाला (हो), विहरता हूँ।…"

"गृहपति! तू जिस प्रकार व्यवहारके उच्छेदको कहता है। आर्योंके विनयमें व्यवहार-उच्छेद, (इससे) दूसरी ही प्रकार होता है।"

"तो भन्ते! आर्य-विनयमें व्यवहार-उच्छेद कैसे होता है? अच्छा! भन्ते! भगवान् मुझे उस प्रकारका धर्म उपदेश करें, जैसे कि आर्य-विनयमें व्यवहार-उच्छेद होता है।"

"तो गृहपति! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो; कहता हूँ।"

"अच्छा भन्ते!" पोतलिय गृह-पतिने भगवान्‌को कहा। भगवान्‌ने कहा—

"गृहपति! आर्य-विनय (=आर्य-धर्म, आर्य-नियम) में यह आठ धर्म व्यवहार-उच्छेद करनेके लिये हैं। कौन से आठ? (१) अ-प्राणातिपात (=अहिंसा) के लिये, प्राणातिपात छोड़ना चाहिये। (२) दिया-लेने (=दिन्नादान) के लिये, अ-दिन्नादान (=चोरी, न दिया लेना) छोड़ना चाहिये। (३) सत्य बोलनेके लिये, मृषावाद छोड़ना चाहिये। (४) अ-पिशुन-वचन (=न चुगली करने) के लिये, पिशुन-वचन छोड़ना चाहिये। (५) अ-गृद्ध-लोभ (=निर्लोभ) के लिये गृद्ध-लोभ छोड़ना चाहिये। (६) अ-निन्दा-रोषके लिये, निन्दा छोड़ना चाहिये। (७) अ-क्रोध-उपायास (=परेशानी) के लिये क्रोध-उपायास छोड़ना चाहिये। (८) अन्-अतिमानके लिये, अतिमान (=अभिमान) को छोड़ना चाहिये। गृहपति! संक्षिप्तसे कहे, विस्तारसे न विभाजित किये, यह आठ धर्म, आर्य-विनयमें व्यवहार-उच्छेद करनेके लिये हैं।"

"भन्ते ! भगवान्‌ने जो मुझे विस्तारसे न विभाजित किये, संक्षिप्तसे, आठ धर्म० कहे । अच्छा हो भन्ते ! (यदि) भगवान् अनुकम्पाकर (उन्हें) विस्तारसे विभाजित करें ।"

"तो गृहपति ! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ ।"

"अच्छा भन्ते !" पोतलिय गृहपतिने भगवान्‌को उत्तर दिया । भगवान् बोले—

"गृहपति ! 'अप्राणातिपातके लिये प्राणातिपात छोड़ना चाहिये, यह जो कहा, किस कारणसे कहा ? गृहपति ! आर्य-श्रावक ऐसा सोचता है—'जिन संयोजनोंके कारण मैं प्राणातिपाती होऊँ, उन्हीं संयोजनोंको छोड़नेके लिये, उच्छेदके लिये मैं लगा हूँ, और मैं ही प्राणातिपाती होगया । प्राणातिपातके कारण, आत्मा (=अपना चित्त) भी मुझे धिक्कारता है । प्राणातिपातके कारण, विज्ञ लोग भी जानकर धिक्कारते हैं । प्राणातिपातके कारण, काया छोड़नेपर, मरनेके बाद, दुर्गति भी होनी है । यही संयोजन (= बंधन) है, यही नीवरण (= ढकन) है, जो कि यह प्राणातिपात । प्राणातिपातके कारण जो विघात-परिदाह (= द्वेष-जलन) और आस्रव (= चित्त-दोष) उत्पन्न होते हैं, प्राणातिपातसे विरतको वह विघात-परिदाह, आस्रव नहीं उत्पन्न होते । 'अ प्राणातिपातके लिये, प्राणातिपात छोड़ना चाहिये' यह जो कहा, वह इसी कारणसे कहा ।

"दिन्नादानके लिये अदिन्नादान छोड़ना चाहिये, यह जो कहा, किस कारणसे कहा ? गृहपति ! आर्य-श्रावक ऐसा सोचता है—जिन संयोजनोंके हेतु मैं अदिन्नादायी (=बिना दिया लेनेवाला) होताहूँ, उन्हीं संयोजनोंके छोड़नेके लिये, उच्छेद करनेके लिये, मैं लगा हुआ हूँ; और मैं ही अ-दिन्नादायी होगया ! अ-दिन्नादानके कारण आत्मा भी मुझे धिक्कारता है । अ-दिन्ना-दानके कारण विज्ञ लोग भी जानकर धिक्कारते हैं । अ-दिन्नादानके कारण काया छोड़नेपर मरनेके बाद दुर्गति भी होनी है । यही संयोजन है, यही नीवरण है, जो कि यह अ-दिन्नादान । अ-दिन्नादानके कारण विघात (= पीड़ा) परिदाह (= जलन) (और) आस्रव उत्पन्न होते हैं; अ-दिन्नादान-विरतको वह० नहीं होते । 'दिन्नादानके लिये अ-दिन्नादान छोड़ना चाहिये' यह जो कहा, वह इसी कारण कहा ।

"अ-पिशुन-वचनके लिये० ।

"अ-गृद्ध-लोभके लिये० ।

"अ-निन्दा-रोषके लिये० ।

"अ-क्रोध-उपायासके लिये० ।

"अन्-अतिमानके लिये० ।

"गृहपति ! यह आठ संक्षिप्तसे कहे, विस्तारसे विभाजित धर्म, आर्य-विनयमें व्यवहार-उच्छेद करनेवाले हैं ।··· (किंतु इनसे) सर्वथा सब कुछ व्यवहारका उच्छेद नहीं होता ।"

"तो कैसे भन्ते ! आर्य-विनयमें···सर्वथा सब कुछ व्यवहार उच्छेद होता है ? अच्छा हो भन्ते ! भगवान् मुझे वैसे धर्मका उपदेश करें, जैसे कि आर्यविनयमें···सर्वथा सब कुछ व्यवहारका उच्छेद होता है ?"

"तो गृहपति ! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ ।"

"अच्छा भन्ते !"०।०।

"गृहपति ! जैसे भूखसे अति-दुर्बल कुक्कुर गो-घातकके सूना (=माँस काटनेके

पीछे) के पास खड़ा हो। चतुर गो-घातक या गो-घातकका अन्तेवासी उसको माँस-रहित लोहूमें सनी हड्डी फेंक दे। तो क्या मानते हो, गृहपति ! क्या वह कुक्कुर उस हड्डी को खाकर, भूखकी दुर्बलताको हटा सकता है ?"

"नहीं, भन्ते !"

"सो किस हेतु ?"

"भन्ते ! वह लोहू-में सुथरी माँस रहित हड्डी है। वह कुक्कुर केवल परेशानी=पीड़ाकाही भागी होगा।"

"ऐसे ही गृहपति ! आर्य-श्रावक सोचता है—'भगवानने भोगोंको बहुत दुःख बहुत परेशानीवाले हड्डीजैसा कहा है, इनमें बहुतसी बुराइयाँ हैं। अतः इसको यथार्थसे, अच्छी तरह प्रज्ञासे देखकर, जो यह अनेकतावाली अनेकमें लगी उपेक्षा है, उसे छोड़, जो यह एकान्तवाली एकान्तमें लगी (उपेक्षा) है, जिसमें लोकके आमिष (=भोग) का उपादान (=ग्रहण) सर्वथा ही टूट जाते हैं; उसी उपेक्षाकी भावना करता है।

"जैसे गृहपति ! गिद्ध, कौवा या चील्ह माँसके टुकड़ेको लेकर उड़े, उसको गिद्ध भी, कौवे भी, चील्ह भी पीछे उड़ उड़कर नोचें, खसोटें। तो क्या मानता है, गृहपति ! वह गिद्ध कौआ या चील्ह, यदि शीघ्र ही उस माँसके टुकड़ेको न छोड़ दे, तो वह उसके कारण मरणको या मरणान्त दुःखको पायेगा ?"

"ऐसा ही, भन्ते !"

"ऐसा ही, गृहपति ! आर्य-श्रावक सोचता है—भगवान्‌ने माँसके टुकड़ेकी भाँति बहुत दुःखवाले बहुत परेशानीवाले कामों(भोगों)को कहा है; इनमें बहुतसी बुराइयाँ हैं। इस प्रकार इसको अच्छी तरह प्रज्ञासे देखकर, जो यह अनेकतावाली, अनेकमें लगी उपेक्षा है, उसे छोड़, जो यह एकान्तकी एकान्तमें लगी उपेक्षा है; जिसमें लोकामिष (=सांसारिक भोग)के उपादान (=ग्रहण) सर्वथा ही उच्छिन्न हो जाते हैं; उसी उपेक्षाकी भावना करता है।

"जैसे गृहपति ! पुरुष तृणकी उल्का (=मशाल, लुकारी) को ले, हवाके रुख जावे। तो क्या मानते हो, गृहपति ! यदि वह पुरुष शीघ्र ही उस तृण-उल्काको न छोड़ दे, तो (क्या) वह तृण-उल्का उसकी हथेलीको (न) जला देगी, या बाँहको (न) जला देगी, या दूसरे अंग प्रत्यंगको न जला देगी...?"

"ऐसा ही, भन्ते !"

"ऐसे ही, गृहपति ! आर्य-श्रावक सोचता है—तृण-उल्काकी भाँति बहुत दुःखवाले बहुत परेशानीवाले० है० ।०।

"जैसे कि गृहपति ! धूम-रहित, अर्चि (=लौ)-रहित अंगारका (=अंगार, अग्नि-पुंज) हो। तब जीवित-इच्छुक, मरण-अनिच्छुक, सुख-इच्छुक, दुःख-अनिच्छुक पुरुष आये, उसको दो बलवान् पुरुष अनेक बाहुओंसे पकड़कर अङ्गारकामें डाल दें। तो क्या मानते हो गृहपति ! क्या वह पुरुष इस प्रकार इधर-उधर शरीर (नहीं) डालेगा ?"

"हाँ भन्ते !"

"सो किस हेतु ?"

"भन्ते ! उस पुरुषको मालूम है, यदि मैं इन अङ्गारकाओंमें गिरूँगा तो उसके कारण मरूँगा या मरणांत दुःख पाऊँगा।"

"ऐसे ही गृहपति आर्य-श्रावक यह सोचता है—अङ्गारकाकी भाँति दुःखद०। इसमें बहुत बुराइयाँ हैं।०।

"जैसे गृह-पति ! पुरुष आरामकी रमणीयतासे युक्त, वन-रमणीयता-युक्त, भूमि-रमणीयता-युक्त, पुष्करिणी-रमणीयता-युक्त स्वप्नको देखे। सो जागनेपर कुछ न देखै। ऐसेही गृहपति ! आर्य-श्रावक यह सोचता है—भगवान्‌ने (भोगोंको) स्वप्न-समान (=स्वप्नोपम) बहुत दुःखद० कहा है।०।

"जैसे कि गृह पति ! (किसी पुरुष (के पास) मँगनीके भोग, यान या पुरुषके उत्तम मणिकुंडल हों। वह० उन मँगनीके भोगोंके साथ···बाजारमें जाये। उसको देखकर आदमी कहें—कैसा भोग-संपन्न पुरुष है ! भोगी लोग ऐसेही भोगका उपभोग करते हैं !! सो उसको मालिक (=स्वामी)० जहाँ देखें वहाँ कनात लगादें। तो क्या मानते हो, गृहपति ! क्या उस पुरुषका दूसरा (भाव समझना) युक्त है ?"

"हाँ, भन्ते !"

"सो किस हेतु ?"

"(क्योंकि जेवरोंके) मालिक कनात घेर देते हैं।"

"ऐसेही गृहपति ! आर्य-श्रावक ऐसा सोचता है—मंगनीकी चीजके समान (=याचितकूपम)० कहा है।०।

"जैसे गृहपति ! ग्राम या निगमसे अ-दूर, भारी वन-खण्ड हो। वहाँ फल-सम्पन्न = उत्पन्न-फल वृक्ष हो; कोई फल भूमिपर न गिरा हो। तब फल-इच्छुक, फल-गवेषक=फल-खोजी पुरुष घूमते हुये आवे। वह उस बनके भीतर जाकर, उस फल-संपन्न० वृक्षको देखै। उसको यह हो—यह वृक्ष फल-सम्पन्न० है, कोई फल भूमिपर नहीं गिरा है; मैं वृक्षपर चढ़ना जानता हूँ। क्यों न मैं चढ़कर इच्छा-भर खाऊँ, और फाँढ (=उच्छङ्ग, उत्सङ्ग) भर ले चलूँ। तब दूसरा फल-इच्छुक, फल-गवेषी=फलखोजी, पुरुष घूमता हुआ तेज़ कुल्हाड़ा लिये उस वन-खण्डके भीतर जाकर, उस वृक्षको देखै। उसको ऐसा हो—यह वृक्ष फल सम्पन्न० है, मैं वृक्षपर चढ़ना नहीं जानता; क्यों न इस वृक्षको जड़से काटकर इच्छा भर खाऊँ, और फाँढ भर ले चलूँ। वह उस वृक्षको जड़से काटे। तो क्या मानते हो, गृहपति ! वह जो पुरुष पेड़पर पहिले चढ़ा था, यदि जल्दीही न उतर आये, तो (क्या) यह गिरता हुआ वृक्ष उसके हाथको (न) तोड़ देगा, पैरको (न) तोड़ देगा, या दूसरे अङ्गप्रत्यङ्गको (न) तोड़ देगा ? वह उसके कारण क्या मरणको (न) प्राप्त होगा, या मरणान्त दुःखको (न प्राप्त होगा) ?

"हाँ, भन्ते !"

"ऐसे ही गृह-पति ! आर्य-श्रावक सोचता है—वृक्ष-फल-समान कामोंको० कहा है; इनमें बहुत सी बुराइयाँ (=आदि-नव) हैं। इस प्रकार इसको यथार्थतः, अच्छी प्रकार, प्रज्ञासे देखकर, जो यह अनेकता-वाली अनेकमें लगी उपेक्षा है, उसे छोड़; जो यह एकांतकी,

या बल-काय (=सेना)-सहित मगध-राज श्रेणिय बिंबसार, कलके भोजनके लिये निमंत्रित किया गया है ?"

"नहीं, शैल ! न मेरे यहाँ आवाह होगा, न विवाह होगा, और न बल-काय-सहित मगध-राज श्रेणिय बिंबसार कलके भोजके लिये निमंत्रित है। बल्कि मेरे यहाँ महा-यज्ञ है। शाक्य-कुलसे प्रव्रजित शाक्य-पुत्र श्रमण गौतम साढ़े बारहसौ भिक्षुओंके महाभिक्षु-संघ के साथ अंगुत्तरापमें चारिका करते, आपणमें आये हैं। उन भगवान् गौतमका ऐसा मंगल कीर्ति-शब्द फैला हुआ है—यह भगवान् अर्हत्, सम्यक्-संबुद्ध, विद्या-आचरण-संपन्न, सुगत, लोक-विद्, अनुत्तर (=अनुपम) पुरुषोंके चाबुक-सवार, देव-मनुष्योंके शास्ता, बुद्ध भगवान् हैं। वह भिक्षु-संघ-सहित कल मेरे यहाँ निमंत्रित हुये हैं।०।

"हे केणिय ! (क्या) 'बुद्ध' कह रहे हो ?"

"हे शैल ! (हाँ) 'बुद्ध' कहरहा हूं।"

"०बुद्ध कह रहे हो ?"

"०बुद्ध कह रहा हूं।"

"०बुद्ध कह रहे हो ?"

"०बुद्ध कह रहा हूं।"

तब शैल ब्राह्मणको हुआ—'बुद्ध' ऐसा घोष (=आवाज) भी लोकमें दुर्लभ है। हमारे मंत्रोंमें महापुरुषोंके बत्तीस लक्षण आए हुए हैं, जिनसे युक्त महापुरुषकी दोही गतियां हैं—यदि वह घरमें वास करता है, तो चारों छोर तकका राज्यवाला, धार्मिक धर्म-राज चक्रवर्ती ···राजा (होता) है···। वह सागर-पर्यन्त इस पृथिवीको बिना दण्ड-शस्त्रके, धर्मसे विजय कर शासन करता है। और यदि घर छोड़ बेघर हो प्रव्रजित होता है, (तो) लोकमें आच्छादन-रहित अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध होता है।' 'हे केणिय ! तो फिर कहाँ वह आप गौतम अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध, इस समय विहार करते हैं ?'

ऐसा कहने पर केणिय जटिलने दाहिनी बाँह पकड़कर, शैल ब्राह्मणको यह कहा—

"हे शैल ! जहाँ वह नील वन-पाँती है।"

तब शैल तीनसौ माणवकोंके साथ जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। तब शैल ब्राह्मणने उन माणवकोंको कहा—

"आप लोग निःशब्द (=अल्प-शब्द) हो, पैरके बाद पैर रखते आवें। सिंहोंकी भाँति वह भगवान् अकेले विचरनेवाले, (और) दुर्लभ होते हैं। और जब मैं श्रमण गौतमके साथ संवाद करूँ, तो आपलोग मेरे बीचमें बात न उठावें। आपलोग मेरे (कथन) की समाप्ति तक चुप रहें।"

तब शैल ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया; जाकर भगवान्के साथ संमोदनकर (कुशल-प्रश्न पूछ)···एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठकर शैल ब्राह्मण भगवान्के शरीरमें महापुरुषोंके बत्तीस लक्षण खोजने लगा। शैल ब्राह्मणने बत्तीस महापुरुष-लक्षणोंमेंसे दोको छोड़ अधिकांश भगवान्के शरीरमें देख लिये। दो महापुरुष-लक्षणों—[illegible] गुह्य, और अति-दीर्घ-जिह्वा के बारेमें···संदेहमें था···। तब भगवान्ने इस प्रकारका योगबल प्रकट किया, जिससे कि शैल ब्राह्मणने भगवान्के कोष-आच्छादित वस्ति-गुह्यको देखा। फिर भगवान्ने

जीभ निकालकर (उससे) दोनों कानोंके स्रोतको छूआ···, सारे ललाट मंडलको जीभसे ढाँक दिया। तब शैल ब्राह्मणको ऐसा हुआ—श्रमण गौतम अ-परिपूर्ण नहीं, परिपूर्ण बत्तीस महापुरुष-लक्षणोंसे युक्त है। लेकिन कह नहीं सकता—बुद्ध हैं, या नहीं। वृद्ध = महल्लक ब्राह्मणों आचार्य-प्राचार्योंको कहते सुना है—कि जो अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध होते हैं, वह अपने गुण कहे जानेपर अपनेको प्रकाशित करते हैं। क्यों न मैं श्रमण गौतमके संमुख उपयुक्त गाथाओंसे स्तुति करूँ। तब शैल ब्राह्मण भगवान्‌के सामने उपयुक्त गाथाओंसे स्तुति करने लगा—

"परिपूर्ण-काया सुन्दर रुचि (=कांति) वाले, सुजान, चारु-दर्शन।
सुवर्णवर्ण हो भगवान्! सु-शुक्ल-दाँत हो, (और) वीर्यवान् ॥१॥
सुजात (=सुन्दर जन्मवाले) नरके जो व्यंजन (=लक्षण) होते हैं,
वह सभी महापुरुष-लक्षण तुम्हारी कायामें (हैं) ॥२॥
प्रसन्न (=निर्मल)-नेत्र, सुमुख बड़े सीधे, प्रताप-वान्।
(आप) श्रमण-संघके बीचमें आदित्यकी भाँति विराजते हो ॥३॥
कल्याण-दर्शन हे भिक्षु! कंचन-समान शरीरवाले।
ऐसे उत्तम वर्णवाले तुम्हें श्रमण-भाव (=भिक्षु होने) में क्या (रक्खा) है ?॥४॥
तुम तो चारों छोरके राज्यवाले, जम्बूद्वीपके स्वामी।
रथर्षभ, चक्रवर्ती, राजा हो सकते हो ॥५॥
क्षत्रिय भोज-राजा (=मंडलिक-राजा) तुम्हारे अनुयायी होते।
हे गौतम! राजाधिराज मनुजेन्द्र होकर राज्य करो ॥६॥"

(भगवान्—)"शैल! मैं राजा हूँ, अनुपम धर्मराजा।
मैं न पलटनेवाला···चक्र धर्मके साथ चला रहा हूँ ॥७॥"

(शैल—) "अनुपम धर्म-राजा संबुद्ध (अपनेको) कहते हो ?
हे गौतम! 'धर्मसे चक्र चला रहा हूँ' कह रहे हो ॥८॥
कौन सा दन्तप (=नाग) श्रावक आप शास्ताका सेनापति है ?
कौन इस चलाये धर्म-चक्रको अनु-चालन कर रहा है ॥९॥

(भगवान्—शैल!)मेरे द्वारा संचालित चक्र, अनुपम धर्म-चक्रको।
तथागतका अनुजात (=पीछे उत्पन्न) सारिपुत्र अनुचालित कर रहा है ॥१०॥
ज्ञातव्यको जान लिया, भावनीयकी भावना कर ली।
परित्याज्यको छोड़ दिया, अतः हे ब्राह्मण! मैं बुद्ध हूँ ॥११॥
ब्राह्मण! मेरे विषयके संशयको हटाओ, छोड़ो।
बार-बार संबुद्धोंका दर्शन दुर्लभ है ॥१२॥
लोकमें जिसका बार-बार प्रादुर्भाव दुर्लभ है।
वह मैं (राग आदि)शल्यका छेदनेवाला अनुपम, संबुद्ध हूँ ॥१३॥
ब्रह्म-भूत, तुलना-रहित, मार (= रागादि शत्रु)-सेनाका प्रमर्दक।
(मुझे) देखकर कौन न संतुष्ट होगा, चाहे वह कृष्ण-अभिजातिक[1] क्यों न हो॥१४॥

1. दुर्गुणोंसे भरा।

(शैल—) "जो मुझे चाहता है, (वह मेरे) पीछे आवे, जो नहीं चाहता, वह जावे।
(मैं) यहाँ उत्तम-प्रज्ञावाले (बुद्ध)के पास प्रव्रजित[1] होऊँगा ॥१५॥"
(शैलके शिष्य-)"यदि आपको यह सम्यक्-संबुद्धका शासन (=धर्म) रुचता है।
(तो) हम भी वर-प्रज्ञके पास प्रव्रजित होंगे ॥१६॥
यह तीनसौ ब्राह्मण हाथ-जोड़े हैं।
(वह) सभी भगवन् ! तुम्हारे पास ब्रह्मचर्य-चरण करेंगे ॥१७॥"
(भगवान्—शैल !) "(यह) [2]सांदृष्टिक [3]अकालिक [4]स्वाख्यात ब्रह्मचर्य है।
जहाँ प्रमाद-शून्य सीखनेवालेकी प्रव्रज्या अमोघ है ॥१८॥"

शैल ब्राह्मणने परिषद्-सहित भगवान्के पास प्रव्रज्या और उपसंपदा पाई।

तब केणिय जटिलने उस रातके बीतनेपर, अपने आश्रममें उत्तम खाद्य-भोज्य तय्यार करा, भगवान्को कालकी सूचना दिलवाई...। तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, जहाँ केणिय जटिलका आश्रम था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर भिक्षु-संघके साथ बैठे। तब केणिय जटिलने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको अपने हाथसे, संतर्पित किया, पूर्ण किया। केणिय जटिल भगवान्के भोजन कर, पात्रसे हाथ हटा लेने पर एक नीचा आसन ले, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये केणिय जटिलको भगवान्ने इन गाथाओंसे (दान-) अनुमोदन किया—

"यज्ञोंमें मुख अग्नि-होत्र है, छन्दोंमें मुख (=मुख्य) [5]सावित्री है।
मनुष्योंमें मुख राजा है, नदियोंमें मुख सागर है ॥ (१)
नक्षत्रोंमें मुख चन्द्रमा है, तपनेवालोंमें मुख आदित्य है।
इच्छुओंमें (मुख) पुण्य (है), यजन (=पूजा) करनेमें मुख संघ है ॥ (२)

भगवान् केणिय जटिलको इन गाथाओंसे अनुमोदित कर आसनसे उठ कर चल दिये।

तब आयुष्मान् शैल परिषद्-सहित एकान्तमें प्रमाद-रहित, उद्योग-युक्त, आत्म-निग्रही हो विहरते अचिरमें ही, जिसके लिये कुल-पुत्र घरसे बेघर हो प्रव्रजित होते हैं, उस अनुपम ब्रह्मचर्यके अन्त (=निर्वाण)को, इसी जन्ममें स्वयं जानकर, साक्षात् कर, प्राप्त कर, विहरने लगे। 'जन्म क्षय हो गया, ब्रह्मचर्य-वास पूरा हो गया। करणीय कर लिया गया, और यहाँ कुछ करना नहीं'—यह जान गये। परिषद्-सहित आयुष्मान् शैल अर्हत् हुये।

तब आयुष्मान् शैलने शास्ता (=गुरु)के पास आकर, चीवरको (दहिना कंधा नंगा रख) एक कंधेपर (रख), जिधर भगवान् थे, उधर अञ्जलि जोड़ कर, भगवान्को गाथाओंसे कहा—

हे चक्षु-मान् ! जो मैं आजसे आठ दिन पूर्व तुम्हारी शरण आया।
हे भगवान् ! तुम्हारे शासनमें सात ही रातमें दान्त हो गया ॥ (१) ॥
तुम्हीं बुद्ध हो, तुम्हीं शास्ता हो, तुम्हीं मार-विजयी मुनि हो।
तुम (राग आदि) अनुशयोंको छिन्न कर, (स्वयं) उत्तीर्ण हो, इस प्रजाको तारते हो ॥२॥
उपधि तुम्हारी हट गई, आस्रव तुम्हारे विदलित हो गये।

१. गृह त्यागी। २. प्रत्यक्ष फलप्रद। ३. न कालान्तरमें फल-प्रद। ४. सुन्दर प्रकारसे व्याख्यान किया गया। ५. सावित्री गायत्री।

सिंह-समान भव (-सागर) की भीषणतासे रहित, तुम उपादान-रहित हो ॥(३)॥
यह तीन सौ भिक्षु हाथ जोड़े खड़े हैं।
हे वीर ! पाद प्रसारित करो, (यह) नाग (=पाप-रहित) शास्ताकी वंदना करें ॥४॥

\+ + +

(१४)

केणिय-जटिल । रोजमल्ल उपासक । आपणसे श्रावस्ती । (ई. पू. ५१५)

[1]तब केणिय जटिलको हुआ—मैं श्रमण गौतमके लिये क्या लिया चलूँ। फिर केणिय जटिलको हुआ—'जो कि यह ब्राह्मणोंके पूर्वके ऋषि, मंत्रोंको रचनेवाले (=कर्त्ता) मंत्रोंको प्रवचन (=वाचन) करनेवाले थे,—जिनके पुराने मंत्र-पदको, गीतको, कथितको, समीहितको, आजकल ब्राह्मण अनुगान करते हैं, अनुभाषण करते हैं; भाषितको ही अनुभाषण करते हैं, बाँचेको ही अनु-वाचन करते हैं,—जैसे कि—अट्टक, वामक, वामदेव, विश्वामित्र, यमदग्नि, अङ्गिरा, भारद्वाज, वसिष्ट, कश्यप, भृगु[1]। (वह) रातको (भोजनसे) उपरत थे, विकाल (मध्याह्नोत्तर)-भोजनसे विरत थे। वह इस प्रकारके पान (पीनेकी चीज) पीते थे। श्रमण गौतम भी रातको उपरत = विकाल-भोजनसे विरत हैं। श्रमण गौतम भी इस प्रकारका पान पी सकते हैं। (यह सोच) बहुतसा पान तय्यार करा, बँहगी (=काज)से उठवाकर, जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्के साथ संमोदन किया···(और) एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े हुये केणिय जटिलने भगवान्को कहा—

"हे भगवान् (=आप) ! गौतम यह मेरा पान ग्रहण करें।"

"केणिय ! तो भिक्षुओंको दो।"

भिक्षु आगा-पीछा करते ग्रहण नहीं करते थे।

"अनुज्ञा देता हूँ भिक्षुओ ! आठ पानकी। आम्र-पान, जम्बू-पान, चोच-पान, मोच (=केला)-पान, मधु-पान, मुद्दिक (=अंगूर)-पान, सालूक (=कोंईकी जड़)-पान, और फारुसक (= फालसा)-पान। अनुज्ञा देता हूँ सभी फल-रसोंकी एक अनाजके फल-रसको छोड़। ०सभी पत्र-रसकी, एक शाकके रसको छोड़।० सभी पुष्प-रसकी एक महुवेके फूलका रस छोड़। अनुज्ञा देता हूँ ऊखके रसकी।···

× × × ×

तब आपणमें इच्छानुसार विहार कर भगवान् साढ़े बारहसौ भिक्षुओंके भिक्षु-संघ-सहित जहाँ [4]कुसीनारा थी, उधर चारिकाके लिये चल दिये। कुसीनाराके [5]मल्लोंने सुना—साढ़े बारहसौ भिक्षुओंके महासंघके साथ भगवान् कुसीनारा आ रहे हैं। उन्होंने नियम किया—'जो भगवान्की अगवानीको नहीं जाये, उसको पाँच सौ दंड'। उस समय रोज नामक मल्ल आनन्दका मित्र था। भगवान् क्रमशः चारिका करते जहाँ कुसीनारा थी, वहाँ पहुँचे।··· कुसीनाराके मल्लोंने भगवान्का प्रत्युद्गमन (= अगवानी) किया। रोजमल्ल भी भगवान्का

१. परि-ग्रह। २. महावग्ग ६। ३. इनके रचे मंत्रोंके बारेमें देखो "दर्शनदिग्दर्शन" पृ० ५२८। ४. कसया, जि० गोरखपुर। ५. आजकलकी सँथवार जाति।

प्रत्युद्गमन कर, जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गया। जाकर० आनन्दको अभिवादनकर, एक ओर खड़ा हो गया,। एक ओर खड़े हुये रोज मल्लको आयुष्मान् आनन्दने कहा—

"आवुस रोज! यह तेरा (कृत्य) बहुत सुन्दर (=उदार) है, जो तूने भगवान्की अगवानी की।"

"भन्ते! आनन्द! मैंने बुद्ध, धर्म, संघका सन्मान नहीं किया; बल्कि भन्ते आनन्द! ज्ञातिके दण्डके भयसे ही मैंने भगवान्का प्रत्युद्गमन किया।"

तब आयुष्मान् आनन्द अ-सन्तुष्ट हुये—"कैसे रोजमल्ल ऐसा कहता है?"

आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। भगवान्को अभिवादन कर, एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुये, आयुष्मान् आनन्दने भगवान्को कहा—

"भन्ते! रोजमल्ल विभव-सम्पन्न अभिज्ञात=प्रसिद्ध मनुष्य है। इस प्रकारके ज्ञात मनुष्योंका इस धर्म-विनयमें प्रसाद (= श्रद्धा) होना अच्छा है। अच्छा हो, भन्ते! भगवान् ऐसा करें, जिसमें रोज मल्ल इस धर्म-विनय (= बुद्धधर्म) में प्रसन्न होवे।" तब भगवान् रोज मल्लके प्रति मित्रता-पूर्ण (= मैत्र) चित्त उत्पन्न कर, आसन से उठ विहारमें प्रविष्ट हुये। तब रोज मल्ल भगवान्के मैत्र-चित्तके स्पर्शसे, छोटे बछड़ेवाली गायकी भाँति, एक विहारसे दूसरे विहार, एक परिवेणसे परिवेणमें जाकर भिक्षुओंको पूछता था—

"भन्ते! इस वक्त वह भगवान् अर्हन् सम्यक्-संबुद्ध कहाँ विहार कर रहे हैं; हम उन भगवान् अर्हन् सम्यक् सम्बुद्धका दर्शन करना चाहते हैं?"

"आवुस, रोज! यह दर्वाजा-बन्द विहार है। निःशब्द हो धीरे धीरे वहाँ जाकर आलिन्दमें प्रवेशकर खाँसकर जंजीरको खटखटाओ, भगवान् तुम्हारे लिये द्वार खोल देंगे।"

तब रोज मल्लने जहाँ वह बन्द-द्वार विहार था, वहाँ निःशब्द हो धीरे धीरे जाकर, आलिन्दमें घुसकर, खाँसकर जंजीर खटखटाई। भगवान्ने द्वार खोल दिया। तब रोज मल्ल विहारमें प्रवेशकर भगवान्को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये रोज-मल्लको भगवानने आनुपूर्विक कथा०'—०रोजमल्लको उसी आसनपर विरज विमल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ—'जो कुछ उत्पन्न होनेवाला है, वह सब विनाश होनेवाला है!' तब रोजने दृष्टधर्म हो० भगवान्को कहा—

'अच्छा हो, भन्ते' आर्या (= आर्य = भिक्षु लोग) मेरा ही चीवर, पिंड-पात (= भिक्षा), शयनासन (= आसन), ग्लान-प्रत्यय-भैषज्य-परिष्कार (= पथ्य-औषध) ग्रहण करें, औरोंका नहीं।"

"रोज तेरी तरह जिन्होंने अपूर्णज्ञान और अपूर्ण-दर्शनसे धर्म देखा है, उनको ऐसा ही होता है—'क्या ही अच्छा हो, आर्या मेरा ही० ग्रहण करें, औरोंका नहीं।'" "

तब भगवान् कुसीनारामें इच्छानुसार विहार कर०, जहाँ आतुमा थी, वहाँ चारिकाके लिये चल दिये। उस समय आतुमामें बुढ़ापेमें प्रव्रजित हुआ, भूतपूर्व हजाम (=नहापित) वृद्ध (= भिक्षु) निवास करता था। उसके दो पुत्र थे, (जो) अपनी शिल्पचातुरी और कर्ममें सुन्दर, प्रतिभाशाली, दक्ष, शिल्पमें परिशुद्ध थे। वृद्ध-प्रव्रजित

१. महावग्ग ६। २. देखो पृष्ठ ३५।

(बुढ़ापेमें = प्रव्रजित) ने सुना कि, भगवान्० आतुमा आ रहे हैं। तब उस वृद्ध-प्रव्रजितने उन दोनो पुत्रोंको कहा—

"तातो! भगवान्० आतुमामें आ रहे हैं। तातो! हजामतका सामान लेकर नाली, आवापकके साथ घर घरमें फेरा लगाओ, (और) लोन, तेल, तंडुल और खाद्य (पदार्थ) संग्रह करो। आनेपर भगवान्को यवागू (= खिचड़ी) दान देंगे।"

"अच्छा तात!" वृद्ध-प्रव्रजितको कह, पुत्र हजामतका सामान ले० लोन, तेल, तंडुल, खाद्य संग्रह करते घूमने लगे। उन लड़कोंको सुन्दर, प्रतिभा-संपन्न देखकर, जिनको (क्षौर) न कराना था, वह भी कराते थे, और अधिक देते थे। तब उन लड़कोंने बहुत सा लोन भी तेल भी, तंडुल भी, खाद्य भी संग्रह किया। भगवान् क्रमशः चारिका करते, जहाँ आतुमा थी, वहाँ पहुँचे। वहाँ आतुमामें भगवान् भुसागारमें विहार करते थे। तब वह बुड्ढा प्रव्रजित उस रातके बीत जानेपर, बहुत सा यागू तय्यार करा, भगवान्के पास ले गया—"भन्ते! भगवान् मेरी खिचड़ी स्वीकार करें"।...। भगवान्ने उस वृद्ध-प्रव्रजितसे पूछा—"कहांसे भिक्षु! यह खिचड़ी है?"

उस वृद्ध प्रव्रजितने भगवान्को (सब) बात कह दी। भगवान्ने धिक्कारा—

"मोघ-पुरुष (=नालायक)! (यह तेरा कहना) अनुचित = अन् अनुलोम = अ-प्रतिरूप, श्रमण-कर्तव्यके विरुद्ध, अविहित (=अ-कप्पिय) = अ-करणीय है। कैसे तू मोघ-पुरुष! अविहित (चीज)के (जमा करनेके लिये) कहेगा?..."

...भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ! भिक्षुको निषिद्ध (=अ-कप्पिय) के लिये आज्ञा (=समादपन) नहीं देनी चाहिये। जो आज्ञा दे, उसको 'दुष्कृत' की आपत्ति; और भिक्षुओ! भूतपूर्व हजामको हजामतका सामान न ग्रहण करना चाहिये। जो ग्रहण करे, उसे 'दुष्कृत' की आपत्ति।"

तब भगवान् आतुमामें इच्छानुसार विहारकर, जिधर श्रावस्ती थी, उधर चारिकाके लिये चल दिये। क्रमशः चारिका करते, जहाँ श्रावस्ती थी, वहाँ पहुँचे। वहाँ श्रावस्तीमें भगवान् अनाथपिंडकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। उस समय श्रावस्तीमें बहुत सा खाद्य फल था। भिक्षुओंने...भगवान्को यह बात कही।

"अनुज्ञा देता हूँ, सब खाद्य फलोंके लिये।"

उस समय संघके बीजको व्यक्तिके (=पौद्‌गलिक) खेतमें रोपते थे, पौद्गलिक बीजको संघके खेतमें रोपते थे। भगवान्को यह बात कही—

(भगवान्ने कहा—) "संघके बीजको यदि पौद्गलिक खेतमें बोया जाय, तो [1]भाग देकर परिभोग करना चाहिये। पौद्‌गलिक बीजको यदि संघके खेतमें बोया जाये, तो भाग देकर परिभोग करना चाहिये।"

......"जो मैंने भिक्षुओ। 'यह नहीं विहित है' (कहकर) निषिद्ध नहीं किया, यदि वह निषिद्ध (=अ-कप्पिय) के अनुलोम हो, और विहित (=कप्पिय)का विरोधी,

---

१. (अट्ठकथामें) "दसवाँ भाग देकर। यह जम्बूद्वीप (=भारत)में पुराना रवाज (=पोराण-चारित्तं) है, इसलिये दस भागमें एक भाग भूमिके मालिकोंको देना चाहिये।"

(तो) वह तुम्हें विहित नहीं है। भिक्षुओ! जिसे मैंने 'यह विहित नहीं है' (कहकर) निषिद्ध नहीं किया, यदि वह कप्पियके अनुलोम है, और अ-कप्पियका विरोधी, (तो) वह तुम्हें कप्पिय है। भिक्षुओ! जिसे मैंने 'यह कप्पिय है' (कहकर) अनुज्ञा नहीं दी, वह यदि अ-कप्पियके अनुलोम (=अ-विरोधी) है, और कप्पियका विरोधी, तो वह तुम्हें कप्पिय (=विहित) नहीं है। भिक्षुओ! जिसे मैंने 'यह कप्पिय है' (कहकर) अनुज्ञा नहीं दी, वह यदि कप्पियके अनुलोम है, और कप्पियका विरोधी, तो वह तुम्हें कप्पिय है।"

× × × ×

(१५)

चूल-हत्थिपदोपम-सुत्त (ई. पू. ५१६)।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ पिंडकके आराम जेतवनमें विहार करते थे।

उस समय जाणुस्सोणि (=जानुश्रोणि) ब्राह्मण सर्वश्वेत घोड़ियोंके रथपर सवार हो, मध्याह्नको श्रावस्तीके बाहर जा रहा था। जानुश्रोणि ब्राह्मणने पिलोतिक परिव्राजकको दूरसे ही आते देखा। देखकर पिलोतिक परिव्राजकसे यह कहा—

"हन्त! वात्स्यायन (=वच्छायन)! आप मध्याह्नमें कहाँसे आ रहे हैं?"

"भो! मैं श्रमण गौतमके पाससे आ रहा हूँ।"

"तो आप वात्स्यायन श्रमण गौतमकी प्रज्ञा, पाण्डित्यको क्या समझते हैं? पंडित मानते हैं?"

"मैं क्या हूँ, जो श्रमण गौतमका प्रज्ञा-पांडित्य जानूँगा?"

"आप वात्स्यायन उदार (=बड़ी) प्रशंसा द्वारा श्रमण गौतमकी प्रशंसा कर रहे हैं!"

"मैं क्या हूँ, और मैं क्या श्रमण गौतमकी प्रशंसा करूँगा? प्रशस्त प्रशस्त (ही) है, आप गौतम देव-मनुष्योंके श्रेष्ठ हैं।"

आप वात्स्यायन किस कारणसे श्रमण गौतमके विषयमें इतने अभिप्रसन्न हैं?

"(जैसे) कोई चतुर नाग-वनिक (=हाथीके जंगलका आदमी) नाग-वनमें प्रवेश करे। वह वहाँ बड़े भारी (लंबे-चौड़े) हाथीके पैर (=हस्ति-पद)को देखे। उसको विश्वास हो जाय—अरे, बड़ा भारी नाग है। इसी प्रकार भो! जब मैंने श्रमण गौतमके चार पद देखे, तो विश्वास होगया—कि (यह) भगवान् सम्यक्-संबुद्ध हैं, भगवान्का धर्म स्वाख्यात है, भगवान्का श्रावक-संघ सुप्रतिपन्न (=सुन्दर प्रकारसे मार्गपर आरूढ़) है। कौनसे चार? मैं देखता हूँ, बालकी खाल उतारनेवाले, दूसरोंसे वाद-विवाद किये हुये, निपुण, कोई कोई क्षत्रिय पंडित, मानों प्रज्ञासे स्थित (सत्य) को, दृष्टिगत (=धारणाओं स्थित मत) को खंडा-खंडी करते चलते हैं, सुनते हैं—श्रमण गौतम अमुक ग्राम या निगममें आवेगा। वह प्रश्न तय्यार करते हैं—'इस प्रश्नको हम श्रमण गौतमके पास जाकर पूछेंगे। ऐसा हमारे

---

[1] म. नि. अ. क. १।३।७—"पाँचवें (वर्ष) भगवानने जेतवनमें विहार।"
म. नि. १।३।७।

पूछनेपर, यदि वह ऐसा उत्तर देगा; तो हम इस प्रकार वाद (=शास्त्रार्थ) रोपेंगे।' वह सुनते हैं—श्रमण गौतम अमुक ग्राम या निगममें आगया। वह जहाँ श्रमण गौतम होता है, वहाँ जाते हैं। उनको श्रमण गौतम धार्मिक उपदेश कहकर दर्शाता है, समादपन,=समुत्तेजन, संप्रशंसन करता है। वह श्रमण गौतमसे धार्मिक उपदेश द्वारा संदर्शित, समादपित, समुत्तेजित, संप्रशंसित हो, श्रमण गौतमसे प्रश्न भी नहीं पूछते, उसके(साथ) वाद कहाँसे रोपेंगे? बल्कि और भी श्रमण गौतमके ही श्रावक (=शिष्य) हो जाते हैं। भो! जब मैंने श्रमण गौतममें यह प्रथम पद देखा, तब मुझे विश्वास हो गया—भगवान् सम्यक्-संबुद्ध हैं०।

"और फिर भो! मैं देखता हूँ, यहाँ कोई कोई बालकी खाल उतारने वाले, दूसरोंसे वाद-विवादमें सफल, निपुण ब्राह्मण पण्डित०। ०मैंने श्रमण गौतम में यह दूसरा पद देखा।

"०गृहपति (=वैश्य)-पण्डित०। ० यह तीसरा पद०।

"०श्रमण (=प्रव्रजित)-पण्डित०। वह श्रमण गौतमके धार्मिक उपदेशद्वारा ०समुत्तेजित संप्रशंसित हो, श्रमण गौतमसे प्रश्न भी नहीं पूछते, उसके (साथ) वाद कहाँसे रोपेंगे? बल्कि और भी श्रमण गौतमसे घरसे बेघर(की) प्रव्रज्याके लिये आज्ञा माँगते हैं। उनको श्रमण गौतम प्रव्रजित करता है, उपसम्पन्न करता है। वह वहाँ प्रव्रजित हो, अकेले एकान्तसेवी, प्रमाद-रहित, तत्पर, आत्म-संयमी हो विहार करते अचिर ही में, जिसके लिये कुल-पुत्र घरसे बेघर हो, प्रव्रजित होते हैं, उस अनुपम ब्रह्मचर्य-फलको इसी जन्ममें स्वयं जान कर, साक्षात् कर, प्राप्त कर, विहरते हैं। वह ऐसा कहते हैं—"मनको भो! नाश किया, मनको भो! प्र-नाश किया। हम पहिले अ-श्रमण होते हुये भी 'हम श्रमण हैं' दावा करते थे; अ-ब्राह्मण होते हुये भी 'हम ब्राह्मण हैं' दावा करते थे। अन्-अर्हत् होते हुये भी 'हम अर्हत् हैं' दावा करते थे। अब हम श्रमण हैं, अब हम ब्राह्मण हैं, अब हम अर्हत् हैं।" श्रमण गौतममें जब इस चौथे पदको देखा, तब मुझे विश्वास हो गया—भगवान् सम्यक् संबुद्ध हैं०। भो! मैंने जब इन चार पदोंको श्रमण गौतममें देखा, तब मुझे विश्वास हो गया०।"

ऐसा कहने पर जानुश्रोणी ब्राह्मणने सर्व-श्वेत घोड़ीके रथसे उतरकर, एक कंधेपर उत्तरासंग (=चादर) करके, जिधर भगवान् थे उधर अञ्जलि जोड़कर, तीन बार यह उदान कहा—"नमस्कार है, उस भगवान् अर्हत् सम्यक् संबुद्धको,'[1] 'नमस्कार है०।' 'नमस्कार है०।' क्या मैं कभी किसी समय उन गौतमके साथ मिल सकूँगा? क्या कभी कोई कथा-संलाप हो सकेगा?'

तब जानु-श्रोणि ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्‌के साथ ०संमोदनकर…(कुशल-प्रश्न पूछ) एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये जानु-श्रोणि ब्राह्मणने, जो कुछ पिलोतिक परिव्राजकके साथ कथा-संलाप हुआ था, सब भगवान्‌को कह दिया। ऐसा कहनेपर भगवान्‌ने जानु-श्रोणि ब्राह्मणको कहा—

"ब्राह्मण! इतने (ही) विस्तारसे हस्ति-पद-उपमा परिपूर्ण नहीं होती। ब्राह्मण! जिस प्रकारके विस्तारसे हस्ति-पद-उपमा परिपूर्ण होती है, उसे सुनो और मनमें (धारण) करो।"

"अच्छा भो!" कह जानु-श्रोणि ब्राह्मणने भगवान्‌को उत्तर दिया। भगवान्‌ने कहा—

---

१. 'नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स'।

"जैसे ब्राह्मण नाग-वनिक नाग-वनमें प्रवेश करे। वहाँ पर नाग-वनमें वह बड़े भारी॰ हस्ति-पदको देखे। जो चतुर नाग-वनिक होता है वह विश्वास नहीं करता—'अरे! बड़ा भारी नाग है'। किसलिये? ब्राह्मण! नाग-वनमें वामनी (=बौनी) नामकी हथिनियाँ भी महा-पदवाली होती हैं, उनका यह पैर हो सकता है। उसके पीछे चलते हुए वह नाग-वनमें बड़े भारी···(लम्बे चौड़े)···हस्ति-पद और ऊँचे डीलको देखता है। जो चतुर नाग-वनिक होता है, वह तब भी विश्वास नहीं करता—'अरे बड़ा भारी नाग है'। किसलिये? ब्राह्मण! नागवनमें ऊँची कालारिका नामक हथिनियाँ बड़े पैरों वाली होती हैं, यह उनका पद हो सकता है। वह उसका अनुगमन करता है, अनुगमन करते नाग-वनमें देखता है—बड़े भारी लम्बे चौड़े हस्ति-पद, ऊँचे डील और ऊँचे दाँतोंसे आरंजित को। जो चतुर नाग-वनिक होता है, वह तब भी विश्वास नहीं करता॰। सो किस लिये? ब्राह्मण! नाग-वनमें ऊँची करेणुका नामक हथिनियाँ महा-पदवाली होती हैं। यह उनका भी पद हो सकता है। वह उसका अनुगमन करता है। उसका अनुगमन करते नाग-वनमें, बड़े भारी,···(लम्बे-चौड़े) हस्ति-पद, ऊँचे डील, ऊँचे दाँतोंसे सुशोभित, और शाखाको ऊँचेसे टूटा देखता है। वह विश्वास करता है, यही वह महानाग है।

"इसी प्रकार ब्राह्मण यहाँ तथागत, अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध, विद्या-आचरण-सम्पन्न, सुगत, लोकविद् अनुपम पुरुष-दम्य-सारथी, देव-मनुष्योंके शास्ता, बुद्ध भगवान् लोकमें उत्पन्न होते हैं। वह इस देव-मार-ब्रह्मा सहित लोक, श्रमण-ब्राह्मण-देव-मनुष्य-सहित प्रजाको, स्वयं जान कर, साक्षात् कर, समझाते हैं। वह आदि-कल्याण मध्य-कल्याण पर्यवसान-कल्याण वाले धर्मका उपदेश करते हैं। अर्थ-सहित व्यंजन-सहित, केवल, परिपूर्ण परिशुद्ध, ब्रह्म-चर्यको प्रकाशित करते हैं। उस धर्मको गृह-पति या गृह-पतिका पुत्र, या और किसी छोटे कुलमें उत्पन्न सुनता है। वह उस धर्मको सुनकर तथागतके विषयमें श्रद्धा लाभ करता है। वह उस श्रद्धा-लाभसे संयुक्त हो, यह सोचता है—गृह-वास जंजाल मैलका मार्ग है। प्रव्रज्या मैदान (=चौड़ा) है। इस एकान्त सर्वथा-परिपूर्ण, सर्वथा परिशुद्ध, खरादे शंख जैसे ब्रह्मचर्य का पालन, घरमें बसते हुयेके लिये सुकर नहीं है। क्यों न मैं सिर दाढ़ी मुँडाकर, काषायवस्त्र पहिन, घरसे बेघर प्रव्रजित हो जाऊँ? सो वह दूसरे समय अपनी अल्प (=थोड़ी) भोग-राशि, या महा भोग राशिको छोड़, अल्प-ज्ञाति मंडल या महा-ज्ञाति-मंडलको छोड़, सिर-दाढ़ी मुँडा, काषायवस्त्र पहिन, घरसे बेघर हो, प्रव्रजित होता है। वह इस प्रकार प्रव्रजित हो, भिक्षुओंकी शिक्षा, समान-जीविकाको प्राप्त हो, प्राणातिपात छोड़ प्राणहिंसासे विरत होता है। दण्ड-त्यागी, शस्त्र-त्यागी, लज्जी, दयालु, सर्व-प्राणी सर्व-भूत भूतोंका हित और अनुकंपक हो, विहार करता है। अदिन्नादान (=चोरी) छोड़ दिन्नादायी (=दियेको लेने वाला), दत्त-प्रतिकांक्षी (=दियेका चाहने वाला),···पवित्रात्मा हो, विहरता है। अ-ब्रह्म-चर्यको छोड़कर ब्रह्मचारी, ग्राम्य-धर्म मैथुनसे विरत हो, आर-चारी (=दूर रहने वाला) होता है। मृषावादको छोड़, मृषावादसे विरत हो, सत्य-वादी, सत्य-संध, लोकका अ-विसंवादक विश्वास-पात्र···होता है। पिशुन वचन (=चुगली) छोड़, पिशुन-वचनसे विरत होता है,—यहाँ सुनकर इनके फोड़नेके लिये, वहाँ कहने वाला नहीं होता; न वहाँ सुनकर उनके फोड़नेके लिये, यहाँ कहने वाला नहीं होता। इस प्रकार भिन्नों (=फूटे) को मिलाने वाला

मिले हुओंको भिन्न न करने वाला, एकतामें प्रसन्न, एकतामें रत, एकतामें आनन्दित हो, समग्र (=एकता)-करणी वाणीका बोलनेवाला होता है। परुष (= कटु) वचनको छोड़, परुष वचनसे विरत होता है। जो वह वाणी···कर्ण-सुखा, प्रेमणीया, हृदयङ्गमा, पौरी (= नागरिक, सभ्य) बहुजन-कान्ता = बहुजन-मनापा है; वैसी वाणीका बोलनेवाला होता है। प्रलापको छोड़कर प्रलापसे विरत होता है। काल-वादी (= समय देखकर बोलनेवाला), भूत (= यथार्थ)-वादी, अर्थ-वादी, धर्म-वादी, विनय-वादी हो, तात्पर्य-सहित, पर्यन्त-सहित, अर्थ-सहित, निधानवती वाणी का बोलनेवाला होता है।

"वह बीज-समुदाय भूत-समुदायके विनाश[1] (= समारंभ) से विरत होता है। एकाहारी, रातको उपरत = विकाल (= मध्याह्नोत्तर)-भोजनसे विरत होता है। माला, गंध और विलेपनके धारण, मंडन और विभूषणसे विरत होता है। उच्चशयन और महाशयन (= शय्या) से विरत होता है। जातरूप (= सोना)-रजतके प्रतिग्रहणसे विरत होता है। कच्चे अनाजके प्रतिग्रहण (= लेना) से विरत होता है। कच्चा मांस लेनेसे विरत होता है। स्त्री-कुमारीके०। दासी-दास०। भेड़-बकरी०। मुर्गी-सूअर०। हाथी-गाय०। घोड़ा-घोड़ी०। खेत-घर०। 'दूत बनकर जाने···०। क्रय-विक्रय०। तराजूकी ठगी, काँसेकी ठगी, मान (= सेर मन आदि) की ठगी०। घूस, वंचना, जाल-साजी, कुटिल-योग०। छेदन, बध, बंधन, छापा मारने, आलोप (ग्राम आदिका विनाश) करने, डाका डालने०।

"वह शरीरपरके चीवरसे, पेटके खानेसे सन्तुष्ट होता है। वह जहाँ जहाँ जाता है, (अपना सामान) लिये ही जाता है; जैसे कि पक्षी जहाँ कहीं उड़ता है, अपने पत्र-भार सहित उड़ता है। इसी प्रकार भिक्षु शरीरके चीवरसे, पेटके खानेसे, सन्तुष्ट होता है।०। वह इस प्रकार आर्य-शील (= निर्दोष सदाचारकी)-स्कंध (= राशि) से युक्त हो, अपनेमें (= अध्यात्म) निर्दोष सुख अनुभव करता है।

'वह चक्षुसे रूपको देखकर, निमित्त (= लिंग आकृति, आदि) और अनुव्यञ्जनका ग्रहण करनेवाला नहीं होता। चूँकि चक्षु इन्द्रियको अ-रक्षित रख विहरनेवालेको, राग द्वेष पाप = अ-कुशल धर्म उत्पन्न हो जाते हैं, इसलिए उसको रक्षित रखता (= संवर करता) है। चक्षु इन्द्रियकी रक्षा करता है = चक्षु इन्द्रियमें संवर ग्रहण करता है। वह श्रोतसे शब्द सुनकर निमित्त और अनुव्यञ्जनका ग्रहण करनेवाला नहीं होता०। घ्राणसे गंध ग्रहणकर०। जिह्वासे रस ग्रहणकर० कायसे स्पर्श ग्रहणकर०। मनसे धर्म ग्रहणकर०। इस प्रकार वह आर्य-इन्द्रिय-संवरसे युक्त हो, अपनेमें निर्मल सुखको अनुभव करता है।

"वह आने-जानेमें, जानकर करनेवाला होता है। अवलोकन विलोकनमें, संप्रजन्य-युक्त (= जानकर करनेवाला) होता है। समेटने-फैलानेमें संप्रजन्य-युक्त होता है। संघाटी पात्र-चीवर धारण करनेमें०। खाना-पीना भोजन-आस्वादनमें०। पाखाना-पेशाबके काममें०। जाते-खड़े होते, बैठते, सोते-जागते, बोलते चुप रहते, संप्रजन्य-युक्त होता है। वह इस आर्य-शील-स्कंधसे युक्त, इस आर्य इन्द्रिय-संवरसे युक्त, इस आर्य स्मृति-संप्रजन्यसे युक्त हो, एकान्तमें—अरण्य, वृक्षके नीचे, पर्वत, कन्दरा, गिरि-गुहा, श्मशान, वन-प्रान्त,

---

1. समारम्भ = समालम्भ = हिंसा, जैसे अश्वालम्भ, गवालम्भ।

नीचे, पुआलके गंजमें—वास करता है। वह भोजनके पश्चात्···आसन मारकर, कायाको सीधाकर, स्मृतिको सन्मुख रखकर बैठता है। वह लोकमें (१) अभिध्या (= लोभ) को छोड़, अभिध्या-रहित-चित्त हो विहरता है; चित्तको अभिध्यासे परिशुद्ध करता है। (२) व्यापाद (= द्रोह)-दोषको छोड़कर, व्यापाद-रहित चित्तसे, सर्व प्राणियोंका हितानुकम्पी हो, विहरता है; व्यापाद दोषसे चित्तको परिशुद्ध करता है। (३) स्त्यानमृद्ध (= मनके आलस) को छोड़, स्त्यानमृद्ध-रहित हो, आलोक-संज्ञावाला, स्मृति, संप्रजन्यसे युक्त हो विहरता है। औद्धत्य-कौकृत्यको छोड़ अनु-उद्धत हो भीतरसे शान्त हो, विहरता है। (४) औद्धत्य-कौकृत्यसे चित्तको परिशुद्ध करता है। (५) विचिकित्सा (= सन्देह) को छोड़ विचिकित्सा-रहित हो, कुशल (= उत्तम)-धर्मोंमें विवाद-रहित (= अकथंकथी) हो, विहरता है; चित्तको विचिकित्सासे परिशुद्ध करता है।

"वह इन पाँच नीवरणोंको चित्तसे छोड़, उप-क्लेशों (=चित्त-मलों) को जान, (उनके) दुर्बल करनेके लिये, कामोंसे पृथक् हो, अ-कुशल-धर्मोंसे पृथक् हो, स-वितर्क, स-विचार विवेकसे उत्पन्न, प्रीति-सुखवाले प्रथम-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। ब्राह्मण! यह पद भी तथागतका पद कहा जाता है, यह (पद) भी तथागतसे सेवित है, यह (पद) भी तथागत-रञ्जित है। किन्तु आर्य-श्रावक इतनेहीसे विश्वास नहीं कर लेता—भगवान् सम्यक् संबुद्ध हैं, भगवान्‌का धर्म स्वाख्यात है, भगवान्‌का श्रावक-संघ सु-प्रतिपन्न है।

"और फिर ब्राह्मण! भिक्षु वितर्क और विचारके उपशान्त होनेपर, भीतरके संप्रसाद (=प्रसन्नता) = चित्तकी एकाग्रताको वितर्क-विचार-रहित, समाधिसे उत्पन्न प्रीति-सुखवाले, द्वितीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। ब्राह्मण! यह पद भी तथागतका पद कहा जाता है, यह भी तथागत-सेवित है, यह भी तथागत-रञ्जित है। किन्तु आर्य-श्रावक इतनेहीसे विश्वास नहीं कर लेता—भगवान् सम्यक्-संबुद्ध हैं०।

"और फिर ब्राह्मण! भिक्षु प्रीति और विरागसे उपेक्षक हो, स्मृति और संप्रजन्यसे युक्त हो, कायासे सुखको अनुभव करता विहरता है। जिसको आर्य-जन उपेक्षक स्मृतिमान् सुख-विहारी कहते हैं, ऐसे तृतीय-ध्यानको प्राप्त हो, विहरता है। ब्राह्मण! यह पद भी तथागत पद कहा जाता है०। किन्तु आर्य-श्रावक इतनेहीसे विश्वास नहीं कर लेता०।

"और फिर ब्राह्मण! भिक्षु सुख और दुःखके विनाशसे, सौमनस्य और दौर्मनस्यके पूर्व ही अस्त हो जानेसे, दुःख-रहित, सुख-रहित उपेक्षक हो, स्मृतिकी परिशुद्धता-युक्त चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। यह भी ब्राह्मण! तथागत-पद कहा जाता है०। किन्तु आर्य श्रावक इतनेहीसे विश्वास नहीं कर लेता—भगवान् सम्यक् संबुद्ध हैं०।

"सो इस प्रकार चित्तके—परिशुद्ध = पर्यवदात, अंगण-रहित=उपक्लेश (=मल)-रहित, मृदु हुये, काम-लायक, स्थिर = अचलता-प्राप्त=समाहित—हो जानेपर, पूर्वजन्मोंकी स्मृतिके ज्ञान (=पूर्व-निवासानुस्मृति-ज्ञान) के लिये चित्तको झुकाता है। फिर वह अनेक पूर्व-निवासोंको स्मरण करने लगता है—जैसे 'एक जन्मको भी, दो जन्मको भी, तीन जन्मको भी, चार०, पाँच०, दस०, बीस०, तीस०, चालीस०, पचास०, सौ०, हजार०, सौहजार०, अनेक संवर्त (=प्रलय)-कल्प, अनेक विवर्त (=सृष्टि)-कल्प, अनेक संवर्त-विवर्त-कल्पोंको भी,—इस नामवाला, इस गोत्रवाला, इस वर्णवाला, इस आहारवाला, इस प्रकारके सुख-दुःख

को अनुभव करनेवाला, इतनी आयु-पर्यन्त, मैं अमुक स्थानपर रहा। सो मैं वहाँसे च्युत हो, यहाँ उत्पन्न हुआ।' इस प्रकार आकार-सहित उद्देश्य-सहित अनेक किये गये निवासोंको स्मरण करता है। यह भी ब्राह्मण! तथागत-पद कहा जाता है। ०।

"सो इस प्रकार चित्तके परिशुद्ध० समाहित होनेपर प्राणियोंके जन्म-मरणके ज्ञान (=च्युति-उत्पाद-ज्ञान) के लिये चित्तको झुकाता है। सो अ-मानुष दिव्य विशुद्ध चक्षुसे अच्छे बुरे, सुवर्ण, दुर्वर्ण, सुगत, दुर्गत, मरते, उत्पन्न होते, प्राणियोंको देखता है। उनके कर्मोंके साथ सत्त्वोंको जानता है—' यह जीव काय-दुश्चरित-सहित, वचन-दुश्चरित-सहित, मन-दुश्चरित-सहित थे, आर्योंके निन्दक (=उपवादक) मिथ्या दृष्टिवाले, मिथ्यादृष्टि-सम्बन्धी कर्मोंसे युक्त थे। यह काया छोड़, मरनेके बाद अ-पाय = दुर्गति = विनिपात = नर्कमें उत्पन्न हुये हैं। किंतु यह जीव (= सत्त्व) काय-सुचरित-सहित, वचन-सुचरित-सहित, मन-सुचरित-सहित थे, आर्योंके अ-निन्दक सम्यग्दृष्टिवाले सम्यग्-दृष्टि-सम्बन्धी कर्मोंसे युक्त थे। यह कायसे अलग हो''मरनेके बाद सुगति = स्वर्गलोकको प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार अ-मानुष दिव्य विशुद्ध चक्षुसे प्राणियोंको० देखता है। यह भी ब्राह्मण! तथागत-पद कहा जाता है।०।

"सो इस प्रकार चित्तके० समाहित हो जानेपर आस्रव-क्षय-ज्ञान (= रागादि मलोंके नाश होनेका ज्ञान) के लिये चित्तको झुकाता है। सो 'यह दुःख है' इसे यथार्थसे जानता है, 'यह दुःख-समुदय है' इसे यथार्थसे जानता है, 'यह दुःख-निरोध है' इसे यथार्थसे जानता है। 'यह आस्रव है'०। 'यह आस्रव-समुदय है'। 'यह आस्रव-निरोध है'०। 'यह आस्रव-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् (= रागादि चित्त-मलोंके नाशकी ओर ले जानेवाला मार्ग) है'०। यह भी ब्राह्मण! तथागत-पद कहा जाता है, ०।०।

"इस प्रकार जानते, इस प्रकार देखते, उस (पुरुष) के चित्तको काम-आस्रव भी छोड़ देता है, भव-आस्रव भी०, अ-विद्या-आस्रव भी०। छोड़ देने (= विमुक्त हो जाने) पर, 'छूट गया हूँ' ऐसा ज्ञान होता है। 'जन्म खतम हो गया, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, करना था, सो कर लिया, अब यहाँके लिये कुछ नहीं' यह भी जानता है। ब्राह्मण! यह भी तथागत-पद कहा जाता है०। इतनेसे ब्राह्मण! आर्य-श्रावक विश्वास करता है—भगवान् सम्यक्-संबुद्ध हैं०।

"इतनेसे ब्राह्मण! हस्ति-पदकी उपमा विस्तारपूर्वक पूरी होती है।"

ऐसा कहनेपर जानुश्रोणि ब्राह्मणने भगवान्‌को यह कहा—

"आश्चर्य! भन्ते!! आश्चर्य! भन्ते!!० भन्ते! मैं आप गौतमकी शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी। आजसे (मुझे) आप गौतम अंजलि-बद्ध उपासक धारण करें।

\+ + + +

(२६)

महा-हत्थिपदोपम-सुत्त (ई. पू. ५१५)।

[1] ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिंडकके आराम जेतवन में विहार करते थे।

---

१. म. नि. १:३:८।

थोड़े, पुआलके गंजमें—वास करता है। वह भोजनके पश्चात्···आसन मारकर, कायाको सीधाकर, स्मृतिको सन्मुख रखकर बैठता है। वह लोकमें (१) अभिध्या (= लोभ) को छोड़, अभिध्या-रहित-चित्त हो विहरता है; चित्तको अभिध्यासे परिशुद्ध करता है। (२) व्यापाद (= द्रोह)-दोषको छोड़कर, व्यापाद-रहित चित्तसे, सर्व प्राणियोंका हितानुकम्पी हो, विहरता है; व्यापाद दोषसे चित्तको परिशुद्ध करता है। (३) स्त्यानमृद्ध (= मनके आलस) को छोड़, स्त्यानमृद्ध-रहित हो, आलोक-संज्ञावाला, स्मृति, संप्रजन्यसे युक्त हो विहरता है। औद्धत्य-कौकृत्यको छोड़ अन्-उद्धत हो भीतरसे शान्त हो, विहरता है। (४) औद्धत्य-कौकृत्यसे चित्तको परिशुद्ध करता है। (५) विचिकित्सा (= सन्देह) को छोड़ विचिकित्सा-रहित हो, कुशल (= उत्तम)-धर्मोंमें विवाद-रहित (= अकथंकथी) हो, विहरता है; चित्तको विचिकित्सासे परिशुद्ध करता है।

"वह इन पाँच नीवरणोंको चित्तसे छोड़, उप-क्लेशों (=चित्त-मलों) को जान, (उनके) दुर्बल करनेके लिये, कामोंसे पृथक् हो, अ-कुशल-धर्मोंसे पृथक् हो, स-वितर्क, स-विचार विवेकसे उत्पन्न, प्रीति-सुखवाले प्रथम-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। ब्राह्मण! यह पद भी तथागतका पद कहा जाता है, यह (पद) भी तथागतसे सेवित है, यह (पद) भी तथागत-रञ्जित है। किन्तु आर्य-श्रावक इतनेहीसे विश्वास नहीं कर लेता—भगवान् सम्यक् संबुद्ध हैं, भगवान्‌का धर्म स्वाख्यात है, भगवान्‌का श्रावक-संघ सु-प्रतिपन्न है।

"और फिर ब्राह्मण? भिक्षु वितर्क और विचारके उपशांत होनेपर, भीतरके संप्रसाद (=प्रसन्नता) = चित्तकी एकाग्रताको वितर्क-विचार-रहित, समाधिसे उत्पन्न प्रीति-सुखवाले, द्वितीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। ब्राह्मण! यह पद भी तथागतका पद कहा जाता है, यह भी तथागत-सेवित है, यह भी तथागत-रञ्जित है। किन्तु आर्य-श्रावक इतनेहीसे विश्वास नहीं कर लेता—भगवान् सम्यक्-संबुद्ध हैं०।

"और फिर ब्राह्मण! भिक्षु प्रीति और विरागसे उपेक्षक हो, स्मृति और संप्रजन्यसे युक्त हो, कायासे सुखको अनुभव करता विहरता है। जिसको आर्य-जन उपेक्षक स्मृतिमान् सुख-विहारी कहते हैं; ऐसे तृतीय-ध्यानको प्राप्त हो, विहरता है। ब्राह्मण! यह पद भी तथागत-पद कहा जाता है०। किन्तु आर्य-श्रावक इतनेहीसे विश्वास नहीं कर लेता०।

"और फिर ब्राह्मण! भिक्षु सुख और दुःखके विनाशसे, सौमनस्य और दौर्मनस्यके पूर्वही अस्त हो जानेसे, दुःख-रहित, सुख-रहित उपेक्षक हो, स्मृतिकी परिशुद्धता-युक्त चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। यह भी ब्राह्मण! तथागत-पद कहा जाता है०। किन्तु आर्य श्रावक इतनेहीसे विश्वास नहीं कर लेता—भगवान् सम्यक् संबुद्ध हैं०।

"सो इस प्रकार चित्तके—परिशुद्ध = परि-अवदात, अंगण-रहित=उपक्लेश (= मल)-रहित, मृदु हुये, काम-लायक, स्थिर = अचलता-प्राप्त=समाहित—हो जानेपर, पूर्वजन्मोंकी स्मृतिके ज्ञान (=पूर्व-निवासाऽनुस्मृति-ज्ञान) के लिये चित्तको झुकाता है। फिर वह अनेक पूर्व-निवासोंको स्मरण करने लगता है—जैसे 'एक जन्मभी, दो जन्मभी, तीन जन्मभी, चार०, पाँच०, छ०, दस०, बीस०, तीस०, चालीस०, पचास०, सौ०, हजार०, सौहजार०, अनेक संवर्त (=प्रलय)-कल्प, अनेक विवर्त (=सृष्टि)-कल्प, अनेक संवर्त-विवर्त-कल्पको भी,—इस नामवाला, इस गोत्र-वाला, इस वर्णवाला, इस आहारवाला, इस प्रकारके सुख-दुःख

को अनुभव करनेवाला, इतनी आयु-पर्यन्त, मैं अमुक स्थानपर रहा। सो मैं वहाँसे च्युत हो, यहाँ उत्पन्न हुआ।' इस प्रकार आकार-सहित उद्देश्य-सहित अनेक किये गये निवासोंको स्मरण करता है। यह भी ब्राह्मण! तथागत-पद कहा जाता है। ०।

"सो इस प्रकार चित्तके परिशुद्ध० समाहित होनेपर प्राणियोंके जन्म-मरणके ज्ञान (=च्युति-उत्पाद-ज्ञान) के लिये चित्तको झुकाता है। सो अ-मानुष दिव्य विशुद्ध चक्षुसे अच्छे बुरे, सुवर्ण, दुर्वर्ण, सुगत, दुर्गत, मरते, उत्पन्न होते, प्राणियोंको देखता है। उनके कर्मोंके साथ सत्त्वोंको जानता है—'यह जीव काय-दुश्चरित-सहित, वचन-दुश्चरित-सहित, मन-दुश्चरित-सहित थे, आर्योंके निन्दक (=उपवादक) मिथ्या दृष्टिवाले, मिथ्यादृष्टि-सम्बन्धी कर्मोंसे युक्त थे। यह काया छोड़, मरनेके बाद अ-पाय = दुर्गति = विनिपात = नर्कमें उत्पन्न हुये हैं। किंतु यह जीव (= सत्त्व) काय-सुचरित-सहित, वचन-सुचरित-सहित, मन-सुचरित-सहित थे, आर्योंके अ-निन्दक सम्यग्दृष्टिवाले सम्यग्-दृष्टि-सम्बन्धी कर्मोंसे युक्त थे। यह कायसे अलग हो'''मरनेके बाद सुगति = स्वर्गलोकको प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार अ-मानुष दिव्य विशुद्ध चक्षुसे प्राणियोंको० देखता है। यह भी ब्राह्मण! तथागत-पद कहा जाता है।०।

"सो इस प्रकार चित्तके० समाहित हो जानेपर आस्रव-क्षय-ज्ञान (= रागादि मलोंके नाश होनेका ज्ञान) के लिये चित्तको झुकाता है। सो 'यह दुःख है' इसे यथार्थसे जानता है, 'यह दुःख-समुदय है' इसे यथार्थसे जानता है, 'यह दुःख-निरोध है' इसे यथार्थसे जानता है। 'यह आस्रव हैं'०। 'यह आस्रव-समुदय है'। 'यह आस्रव-निरोध है'०। 'यह आस्रव-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् (= रागादि चित्त-मलोंके नाशकी ओर ले जानेवाला मार्ग) है'०। यह भी ब्राह्मण! तथागत-पद कहा जाता है, ०।०।

"इस प्रकार जानते, इस प्रकार देखते, उस (पुरुष) के चित्तको काम-आस्रव भी छोड़ देता है, भव-आस्रव भी०, अ-विद्या-आस्रव भी०। छोड़ देने (= विमुक्त हो जाने) पर, 'छूट गया हूँ' ऐसा ज्ञान होता है। 'जन्म खतम हो गया, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, करना था, सो कर लिया, अब यहाँके लिये कुछ नहीं' यह भी जानता है। ब्राह्मण! यह भी तथागत-पद कहा जाता है०। इतनेसे ब्राह्मण! आर्य-श्रावक विश्वास करता है—भगवान् सम्यक्-संबुद्ध हैं०।

"इतनेसे ब्राह्मण! हस्ति-पदकी उपमा विस्तारपूर्वक पूरी होती है।"

ऐसा कहनेपर जानुश्रोणि ब्राह्मणने भगवान्‌को यह कहा—

"आश्चर्य! भन्ते!! आश्चर्य! भन्ते!!० भन्ते! मैं आप गौतमकी शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी। आजसे (मुझे) आप गौतम अंजलि-बद्ध उपासक धारण करें।

\+ + + +

(१६)

महा-हत्थिपदोपम-सुत्त (ई. पू. ५१५)।

[1] ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिंडकके आराम जेतवन में विहार करते थे।

---

१. म. नि. १ : ३ : ८।

वहाँ आयुष्मान् सारिपुत्रने भिक्षुओंको संबोधित किया—

" आवुसो ! भिक्षुओ ! "

" आवुस " कह, उन भिक्षुओंने आयुष्मान् सारिपुत्रको उत्तर दिया। आयुष्मान् सारिपुत्रने कहा—

" जैसे आवुसो ! जंगली प्राणियोंके जितने पद हैं, वह सभी हाथीके पैर (= हस्ति पद) में समा जाते हैं। महाईमें हस्ति-पद उनमें अग्र (= श्रेष्ठ) गिना जाता है। ऐसे ही आवुसो ! जितने कुशल धर्म हैं, वह सभी चार आर्य-सत्योंमें सम्मिलित हैं। कौनसे चारोंमें? दुःख आर्य-सत्यमें, दुःख-समुदय आर्य-सत्यमें, दुःख-निरोध आर्य-सत्यमें, और दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् आर्य-सत्यमें।

" क्या है आवुसो ! दुःख आर्य-सत्य ? जन्म भी दुःख है। जरा (= बुढ़ापा) भी दुःख है। मरण भी दुःख है। शोक, रोना-पीटना, दुःख है। मनःसंताप, परेशानी भी दुःख हैं। जो इच्छा करके नहीं पाता वह भी दुःख है। संक्षेपमें पाँच उपादान-स्कंध दुःख हैं।

" आवुसो ! पाँच उपादान-स्कंध कौनसे हैं ? (पाँच उपादान-स्कंध हैं) जैसे कि— रूप-उपादान स्कंध, वेदना०, संज्ञा०, संस्कार०, विज्ञान०। आवुसो ! रूप-उपादान-स्कंध क्या है ? चार महाभूत, और चारों महाभूतोंको लेकर (होनेवाले) रूप। आवुसो ! चार महाभूत कौनसे हैं ? पृथिवी-धातु, आप (= पानी)०, तेज (= अग्नि)०, वायु०। आवुसो ! पृथिवी ! धातु क्या है ? पृथिवी धातु हैं (दो), आध्यात्मिक (= शरीरमें) और बाहरी। आवुसो ! आध्यात्मिक पृथिवी-धातु क्या है ? जो शरीरमें (= अध्यात्म) हरएक शरीरमें कर्कश कठोर लिये हुये हैं, जैसे कि—केश, लोम, नख, दन्त, त्वक् (= चमड़ा), मांस, स्नायु (= नहारु), अस्थि, अस्थिके भीतरकी मज्जा, वुक्क, हृदय, यकृत, क्लोमक, प्लीहा, फुफ्फुस, आँत, आँत-पतली, उदरका मल (= करीष)। और भी जो कुछ शरीरमें प्रति-शरीरके भीतर कर्कश, कठोर लिये हुये गृहीत हैं। यह आवुसो ! आध्यात्मिक पृथिवी-धातु कही जाती है। जो कि आध्यात्मिक पृथिवी धातु है, और जो बाहरी (= बाहिरा) पृथिवी-धातु है, वह पृथिवी धातुही है। ' यह यह (पृथिवी) न मेरी है, न यह मैं ही हूँ, न यह मेरा आत्मा है ' यह यथार्थसे अच्छी प्रकार जानकर देखना चाहिये। इस प्रकार इसे यथार्थसे अच्छी प्रकार जानकर देखनेसे, (पुरुष) पृथिवी-धातुसे निर्वेद (= उदासीनता) को प्राप्त होता है। पृथिवी धातुसे चित्तको विरक्त करता है।

"आवुसो ! ऐसा भी समय होता है, जब बाहरी पृथिवी-धातु कुपित होती है, उस समय बाहरी पृथिवी धातु अन्तर्धान होती है। (तब) आवुसो ! इतनी महान् बाहरी पृथिवी धातुकी भी अनित्यता = क्षय-धर्मता = वि-परिणाम-धर्मता जान पड़ती है। इस क्षुद्र कायाका तो क्या (कहना है) ? तृष्णासे पैदा जिसे 'मैं', 'मेरा' या 'मैं हूँ' (कहता), यहाँ इसको नहीं होती।

"भिक्षुको यदि दूसरे आक्रोश=परिहास=रोष=पीड़ा देते हैं, तो वह समझता है— 'यह उत्पन्न दुःखकर-वेदना (=अनुभव) मुझे श्रोत्रके संस्पर्श (=संसर्ग) से उत्पन्न हुई है। और वह कारणसे (उत्पन्न हुई है) अकारणसे नहीं। किस कारणसे ? स्पर्शके कारण।

'स्पर्श अ-नित्य है' यह यह देखता है। 'वेदना अ-नित्य है'० 'संज्ञा अ-नित्य है'०। 'संस्कार अ-नित्य है'०। 'विज्ञान अ-नित्य है'०।' उसका चित्त धातु (=पृथिवी) रूपी विषयसे पृथक्, प्रसन्न (=स्वच्छ), स्थिर; विमुक्त होता है। उस भिक्षुके साथ आवुसो! यदि दूसरे, अन्-इष्ट=अ-कांत=अ-मनाप (व्यवहार)से वर्त्ताव करते हैं— हाथके योग (=संस्पर्श)से, ढलेके योगसे, दंडके योगसे, शस्त्रके योगसे। वह यह जानता है कि 'यह इस प्रकारकी काया है, जिसमें पाणि-संस्पर्श भी लगते हैं, ढलेके संस्पर्श भी०, दंडके संस्पर्श भी०, शस्त्रके संस्पर्श भी०। भगवान्‌ने 'क्रकचोपम' (=आराके समान) अववाद (=उपदेश) में कहा है—'भिक्षुओ! यदि चोर डाकू (=ओचरक) दोनों ओर दस्तेवाले आरासे भी एक एक अंग काटें, वहाँपर भी जो मनको दूषित करे, वह मेरे शासन (=उपदेश) (के अनुकूल आचरण) करनेवाला नहीं है।' मेरा वीर्य (=उद्योग) चलता रहेगा, विस्मरण-रहित स्मृति मेरी उपस्थित (रहेगी), काया स्थिर (=प्रश्रब्ध) अ-चंचल (=अ-सारद्ध), चित्त समाहित=एकाग्र (रहेगा)। चाहे इस कायामें पाणि-संस्पर्श हो, ढला मारना हो, डण्डा पड़े, शस्त्र लगे, (किंतु) बुद्धोंका उपदेश (पूरा) करना ही होगा।

"आवुसो! उस भिक्षुको, इस प्रकार बुद्धको याद करते, इस प्रकार धर्मको याद करते, इस प्रकार संघको याद करते, कुशल-संयुक्त (=निर्मल) उपेक्षा जब नहीं ठहरती। वह उससे उदास होता है, संवेगको प्राप्त होता है—'अहो! अ-लाभ है मुझे, मुझे लाभ नहीं हुआ; मुझे दुर्लभ है, सुलाभ नहीं हुआ; जिस मुझे इस प्रकार बुद्ध, धर्म, संघको स्मरण करते कुशल-संयुक्त उपेक्षा नहीं ठहरती; जैसे कि आवुसो! बहू (=सुणिसा) ससुरको देखकर संविग्न होती है, संवेगको प्राप्त होती है। इस प्रकार आवुसो! उस भिक्षुको ऐसे बुद्ध-धर्म-संघ (के गुणों) को याद करते कुशल-संयुक्त उपेक्षा नहीं ठहरती, वह उससे० संवेगको प्राप्त (=उदास) होता है—मुझे अलाभ है०। आवुसो! उस भिक्षुको यदि इस प्रकार बुद्ध, धर्म, संघको अनुस्मरण करते कुशल-युक्त उपेक्षा ठहरती है, तो वह उससे सन्तुष्ट होता है। इतनेसे भी आवुसो! भिक्षुने बहुत कर लिया।

"क्या है आवुसो! आप-धातु? आप (=जल)-धातु दो होती है, आध्यात्मिक और बाहरी। आवुसो! आध्यात्मिक आप-धातु क्या है? जो शरीरमें प्रतिशरीरमें पानी, या पानीका (विषय) है; जैसे कि पित्त, श्लेष्म (=कफ), पीब, लोहू, स्वेद (=पसीना), मेद, अश्रु, वसा (=चर्बी), राल, नासिकामल, कर्णमल (=लसिका), मूत्र, और जो कुछ और भी शरीरमें पानी या पानीका है। आवुसो! यह आप-धातु कही जाती है। जो आध्यात्मिक आप-धातु है, और जो बाहरी आप-धातु है, यह आप-धातुही है। 'यह मेरा नहीं', 'यह मैं नहीं', 'यह मेरा आत्मा नहीं' इस प्रकार इसे यथार्थ जानकर, देखना चाहिये। इस प्रकार यथार्थतः अच्छी तरह, जानकर, देखकर, आप धातुसे निर्वेदको प्राप्त (=उदास) होता है। आप-धातुसे चित्तको विरक्त करता है।

"आवुसो! ऐसा भी समय होता है, जब बाह्य आप-धातु प्रकुपित होती है। ग्राम को भी, निगमको भी, नगरको भी, जनपदको भी, जनपद-प्रदेशको भी बहा देती है। आवुसो! ऐसा समय होता है, जब महा समुद्रमें सौ योजन, दो सौ योजन, सातसौ योजनके भी पानी आते हैं। आवुसो! सोभी समय होता है, जब महा समुद्रमें सात ताल, छ ताल,

पाँच ताल, चार ताल, तीन ताल, दो ताल, तालभर भी पानी होता…है। आवुसो! सो समय होता है, जब महासमुद्रमें सात पोरिसा (=पुरुष-परिमाण), ०पोरिसा भर पानी रह जाता है। ०जब महासमुद्रमें आध-पोरिसा, कमर भर, जाँघ भर, घुट्टी भर पानी ठहरता है। ०जब महासमुद्रमें अंगुलके पोर धोने भरके लिये भी पानी नहीं रह जाता। आवुसो! उस इतनी बड़ी बाह्य आप-धातुकी अनित्यता ०।० । आवुसो! इतनेसे भी भिक्षुने बहुत किया।

"आवुसो! तेज-धातु क्या है? तेज-धातु है आध्यात्मिक और बाह्य। आवुसो! आध्यात्मिक तेज-धातु क्या है? जो शरीरमें प्रतिशरीरमें तेज (=अग्नि) या तेजका है; जैसे कि—जिससे संतप्त होता है, जर्जरित होता है, परिदग्ध होता है, खाया-पीया अच्छी प्रकार हजम होता है; या जो कुछ और भी शरीरमें, प्रतिशरीरमें, तेज या तेज-विषय है। यह कहा जाता है आवुसो! तेज-धातु। जो यह आध्यात्मिक (=शरीरमें की) तेज-धातु है, और जो कि यह बाह्य तेज-धातु है, यह तेज-धातुही है। 'न यह मेरी है', 'न यह मैं हूँ', 'न यह मेरा आत्मा है'—इस प्रकार इसे यथार्थ जानकर देखना चाहिये। इस प्रकार इसे यथार्थतः जानकर, देखनेसे तेजधातुसे निर्वेदको प्राप्त होता है, तेजधातुसे चित्त विरक्त होता है।०।

"आवुसो! ऐसा समय (भी) होता है, जब बाह्य तेज-धातु कुपित होता है। वह गाँव, निगम, नगर० को भी जलाता है। वह हरियाली महामार्ग (=वनपथ), या शैल या पानी (या) भूमि-भागको प्राप्त हो, आहार न पा बुझ जाता है। आवुसो! ऐसा भी समय होता है, जब कि इसे मुर्गीके पर भर भी, चमड़ेके छिलके भर भी ढूँढते हैं। आवुसो! उस इतने बड़े तेज-धातुकी अ-नित्यता ०।०। आवुसो! इतनेसे भी भिक्षुने बहुत किया।

"आवुसो! वायु-धातु क्या है? वायुधातु आध्यात्मिक भी है, बाह्य भी। आध्यात्मिक वायु-धातु कौन है? जो शरीरमें प्रति-शरीरमें वायु या वायु विषयक है; जैसे कि ऊर्ध्वगामी वात, अधोगामी वात (=हवा), कुक्षि (=पेट)के वात, कोठेमें रहनेवाले वात, अङ्ग-प्रत्यङ्गमें अनुसरण करनेवाले वात, या आश्वास-प्रश्वास, और जो कुछ और भी०। यह आवुसो! आध्यात्मिक वायु-धातु।० कहा जाता है।

"आवुसो! ऐसा समय भी होता है, जब कि बाह्य वायु-धातु कुपित होता है, वह गाँवको भी उड़ा ले जाता है। आवुसो! ऐसा समय (भी) होता है, जब ग्रीष्मके पिछले महीनेमें ताड़का पंखा डुलाकर भी हवा खोजते हैं,…। आवुसो! इस इतने बड़े वायु-धातु० उस भिक्षुको यदि दूसरे आक्रोश ०।०। इतनेसे भी आवुसो! भिक्षुने बहुत कर लिया।

"जैसे आवुसो! काठ, वल्ली, तृण और मृत्तिकासे घिरा आकाश, घर कहा जाता है। ऐसेही आवुसो! अस्थि, स्नायु, मांस और चर्मसे घिरा आकाश, रूप (=मूर्ति, शरीर) कहा जाता है। (जब) आध्यात्मिक (=शरीरमें की) चक्षु अ-परिभिन्न (=अ-विकृत) होती है, बाह्यरूप सामने नहीं आते; (तो) उससे समन्वाहार (=मनविकार, विषय-ज्ञान) उत्पन्न नहीं होता, उससे उत्पन्न विज्ञान-भाग प्रादुर्भूत नहीं होता। जब आवुसो! शरीरमें की चक्षु अ-परिभिन्न होती है, बाह्यरूप सामने आते हैं। तो उससे समन्वाहार (=विषय ज्ञान) उत्पन्न होता है, इस प्रकार उससे उत्पन्न (तदनुरूप) विज्ञान भागका प्रादुर्भाव होता है।

"जो चक्षु-विज्ञानके साथका रूप है, वह रूप-उपादान-स्कंध गिना जाता है। और०

वेदना है, वह वेदना उपादान-स्कंध गिना जाता है। ० संज्ञा० संज्ञा-उपादान-स्कंध०। ०संस्कार० संस्कार-उपादान-स्कंध०। ०विज्ञान० विज्ञान-उपादान-स्कंध०। सो इस प्रकार जानता है—इस प्रकार इन पाँचों उपादान-स्कंधोंका संग्रह=सन्निपात=समवाय होता है। यह भगवान्‌ने भी कहा है—'जो प्रतीत्य-समुत्पादको देखता (= जानता) है, वह धर्मको देखता है; जो धर्मको देखता है, वह प्रतीत्य-समुत्पाद (= कार्य कारणसे उत्पत्ति होने) को देखता है यह प्रतीत्य-समुत्पन्न (=कारणकरके उत्पन्न) हैं, जो कि यह पाँच उपादान-स्कंध। जो इन पाँच उपादान-स्कंधोंमें छन्द (=रुचि)=आलय = अनुनय = अध्यवसान है, वही दुःख-समुदय है। जो इन पाँच उपादान स्कंधोंमें छन्द=रागका हटाना, छोड़ना है, वह दुःख-निरोध है। इतनेसे भी आवुसो! भिक्षुने बहुत किया।०।

"आवुसो? यदि आध्यात्मिक (=शरीरमेंका) श्रोत्र अ-विकृत होता है।०। ०घ्राण०। ०जिह्वा०। ०काय०। ०मन०। इतनेसे भी आवुसो! भिक्षुने बहुत किया०।"

आयुष्मान् सारिपुत्रने यह कहा। सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने आयुष्मान् सारिपुत्रके भाषणको अनुमोदित किया।

\+ \+ \+

आस्सलायण-सुत्त (ई० पू. ५१५)।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडकके आराम जेतवनमें विहार कर रहे थे।

उस समय नाना देशोंके पाँचसौ ब्राह्मण किसी कामसे श्रावस्तीमें ठहरे थे। तब उन ब्राह्मणोंको यह (विचार) हुआ—यह श्रमण गौतम चारों वर्णकी शुद्धि (=चातुर्वर्णी शुद्धि) का उपदेश करता है। कौन है जो श्रमण गौतमसे इस विषयमें वाद कर सके? उस समय श्रावस्तीमें आश्वलायन नामक निघंटु-केटुभ (=कल्प)-अक्षर-प्रभेद (= शिक्षा)-सहित तीनों वेदों तथा पाँचवें इतिहासमें भी पारङ्गत, पदक (= कवि), वैयाकरण, लोकायत महापुरुष-लक्षण (शास्त्रों) में निपुण, वपित (= मुण्डित)-शिर, तरुण माणवक (=विद्यार्थी) रहता था। तब उन ब्राह्मणोंको यह हुआ—यह श्रावस्तीमें आश्वलायन० माणवक रहता है, यह श्रमण गौतमसे इस विषयमें वाद कर सकता है।

तब वह ब्राह्मण जहाँ आश्वलायन माणवक था, वहाँ गये। जाकर आश्वलायन माणवकसे बोले—

"आश्वलायन! यह श्रमण गौतम [2]चातुर्वर्णी शुद्धि उपदेश करता है। जाइये आप आश्वलायन श्रमण गौतमसे इस विषयमें वाद कीजिये।"

ऐसा कहने पर आश्वलायन माणवकने उन ब्राह्मणोंको कहा—

"श्रमण गौतम धर्मवादी है। धर्मवादी वाद करनेमें दुष्प्रतिमंत्र्य (=वाद करनेमें दुष्कर) होते हैं। मैं श्रमण गौतमके साथ इस विषयमें वाद नहीं कर सकता।"

दूसरी बार भी उन ब्राह्मणोंने आश्वलायन माणवकको कहा०।

---

१. म. नि. २:५:३। २. केवल ब्राह्मणोंकी नहीं, चारों वर्णोंकी ध्यान आदिसे पाप-शुद्धि।

तीसरी बार भी उन ब्राह्मणोंने आश्वलायन माणवकको कहा—

"भो आश्वलायन ! यह श्रमण गौतम चातुर्वर्णी शुद्धिका उपदेश करता है। आइये आप आश्वलायन श्रमण गौतमसे इस विषयमें वाद कीजिये। आप आश्वलायन युद्धमें बिना पराजित हुये ही मत पराजित हो जायें।"

ऐसा कहने पर आश्वलायन माणवकने उन ब्राह्मणोंको कहा—

"...मैं श्रमण गौतमके साथ नहीं (पार) पा सकता। श्रमण गौतम धर्मवादी है०। मैं श्रमण गौतमके साथ इस विषयमें वाद नहीं कर सकता। तो भी मैं आप लोगोंके कहनेसे जाऊँगा।"

तब आश्वलायन माणवक बड़े भारी ब्राह्मण-गणके साथ जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्‌के साथ ०संमोदन कर।...(कुशल-प्रश्न-पूछ)...एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये आश्वलायन माणवकने भगवान्‌को कहा—

"हे गौतम ! ब्राह्मण ऐसा कहते हैं—'ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है, दूसरे वर्ण छोटे हैं। ब्राह्मण ही शुक्ल वर्ण है, दूसरे वर्ण कृष्ण हैं। ब्राह्मण ही शुद्ध होते हैं, अ-ब्राह्मण नहीं। ब्राह्मणही ब्रह्माके औरस पुत्र हैं, मुखसे उत्पन्न, ब्रह्म-ज, ब्रह्म-निर्मित, ब्रह्माके दायाद हैं'। इस विषयमें आप गौतम क्या कहते हैं।"

"लेकिन आश्वलायन ! ब्राह्मणोंकी ब्राह्मणियाँ ऋतुमती, गर्भिणी, जनन करती, पिलाती देखी जाती हैं। योनिसे उत्पन्न होते हुए भी वह (ब्राह्मण) ऐसा कहते हैं—ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है०!!"

"यद्यपि आप गौतम ऐसा कहते हैं, फिर भी ब्राह्मण तो ऐसाही कहते हैं—ब्राह्मण ही श्रेष्ठ०।"

"तो क्या मानते हो आश्वलायन ! तुमने सुना है कि [1]यवन और [2]कम्बोजमें और दूसरे भी सीमान्त देशोंमें दो ही वर्ण होते हैं—आर्य (स्वतंत्र) और दास (=गुलाम)। आर्य हो दास हो (सक)ता है, दास हो आर्य हो (सक)ता है?"

"हाँ, भो ! मैंने सुना है कि यवन और कम्बोजमें०।"

"आश्वलायन ! ब्राह्मणोंको क्या बल = क्या आश्वास है, जो ब्राह्मण ऐसा कहते हैं—ब्राह्मणही श्रेष्ठ वर्ण है०?"

"यद्यपि आप गौतम ऐसा कहते हैं, फिर भी ब्राह्मण तो ऐसाही कहते हैं०।"

"तो क्या मानते हो, आश्वलायन ! क्षत्रिय, प्राण-हिंसक, चोर, दुराचारी, झूठा, चुगुलखोर, कटुभाषी, बकवादी, लोभी, द्वेषी, मिथ्या-दृष्टि (= झूठी धारणावाला) हो। (तो क्या) काया छोड़, मरनेके बाद अपाय = दुर्गति = विनिपात = नरकमें उत्पन्न होगा, या नहीं ? ब्राह्मण प्राणि हिंसक० हो० नरकमें उत्पन्न होगा या नहीं ? वैश्य० ? शूद्र० नरकमें उत्पन्न होगा या नहीं ?"

"भो गौतम ! क्षत्रिय भी प्राणि हिंसक० हो० नरकमें उत्पन्न होगा ! ब्राह्मण भी० ।

---

१. पश्चिमी गान्धार जहाँ सिकन्दरके बाद यवन (ग्रीक) लोग बसे हुये थे; अथवा यूनान। २. काफिरिस्तान।

वैश्य भी०। शूद्र भी०। सभी चारो वर्ण हे गौतम! प्राणि-हिंसक० हो० नरकमें उत्पन्न होंगे।"

"तो फिर आश्वलायन! ब्राह्मणोंको क्या बल = क्या आश्वास है, जो ब्राह्मण ऐसा कहते हैं०।"

"०फिर भी ब्राह्मण तो ऐसा ही कहते हैं०।"

"तो क्या मानते हो, आश्वलायन! क्या ब्राह्मण ही प्राण-हिंसासे विरत होता है, चोरीसे विरत होता है, दुराचार०, झूठ०, चुगली०, कटुवचन०, बकवादसे विरत होता है, अलोभी, अ-द्वेषी, सम्यक्-दृष्टि (=सच्ची दृष्टिवाला) हो, शरीर छोड़ मरनेके बाद, सुगति स्वर्गलोकमें उत्पन्न होता है; क्षत्रिय नहीं, वैश्य नहीं, शूद्र नहीं?"

"नहीं, हे गौतम! क्षत्रिय भी प्राण-हिंसा-विरत० सुगति स्वर्ग-लोकमें उत्पन्न हो सकता है, ब्राह्मण भी०, वैश्य भी०, शूद्र भी०, सभी चारों वर्ण०।"

"आश्वलायन! ब्राह्मणोंको क्या बल०?।०

"तो क्या मानते हो, आश्वलायन! क्या ब्राह्मण ही वैर-रहित द्वेष-रहित मैत्री चित्तकी भावना कर सकता है, क्षत्रिय नहीं, वैश्य नहीं, शूद्र नहीं?"

"नहीं, हे गौतम! क्षत्रिय भी इस स्थानमें० भावना कर सकता है०।०। सभी चारों भावना कर सकते हैं।

"यहाँ आश्वलायन! ब्राह्मणोंको क्या बल०?" ०।

"तो क्या मानते हो, आश्वलायन! क्या ब्राह्मण ही मंगल (=स्वस्ति) स्नान-चूर्ण लेकर नदीको जा, मैल धो सकता है, क्षत्रिय नहीं०?"

"नहीं, हे गौतम! क्षत्रिय भी मंगल स्नान-चूर्ण ले, नदी जा मैल धो सकता है०, सभी चारों वर्ण०।"

"यहाँ आश्वलायन! ब्राह्मणोंको क्या बल०?"०

"तो क्या मानते हो, आश्वलायन! (यदि) यहाँ मूर्द्धा-भिषिक्त क्षत्रिय राजा, नाना जातिके सौ-पुरुष इकट्ठे करे (और उन्हें कहे)—आवें आप सब, जो कि क्षत्रिय कुलसे, ब्राह्मण-कुलसे, और राजन्य (=राजसंतान) कुलसे उत्पन्न हैं; और शाल (=साखू) की या सरल (वृक्ष)की या चन्दन की या पद्म (काष्ठ)की उत्तरारणी लेकर आग बनावें, तेज प्रादुर्भूत करें। (और) आप भी आवें, जो कि चण्डालकुलसे, निषादकुलसे, बसोर (=वेणु)-कुलसे, रथकार-कुलसे, पुक्कसकुलसे उत्पन्न हुये हैं, और कुत्तेके पीनेकी, सूअरके पीनेकी कठरीकी, धोबीकी कठरीकी, या रेंडकी लकड़ीकी उत्तरारणी लेकर, आग बनावें, तेज प्रादुर्भूत करें। तो क्या मानते हो, आश्वलायन! जो यह क्षत्रिय-ब्राह्मण-वैश्य-शूद्रकुलोंसे उत्पन्नों-द्वारा शाल-सरल-चन्दन पद्मकी उत्तरारणीको लेकर, अग्नि उत्पन्न की गई है, तेज प्रादुर्भूत किया गया, क्या वही अर्चिमान् (=ज्योतिवाला), वर्णवान् प्रभास्वर अग्नि होगा? उसी आगसे अग्निका काम लिया जा सकता है; और जो यह चांडाल-निषाद-बसोर-रथकार-पुक्कस-कुलोत्पन्नों द्वारा श्वपान-कठरीकी शूकर-पान-कठरीकी, रेंड-काष्ठकी उत्तरारणीको लेकर

उत्पन्न आग है, प्रादुर्भूत तेज (है) वह अर्चिमान् वर्णवान् प्रभास्वर न होगा? उस आगसे अग्निका काम नहीं लिया जा सकेगा?"

'नहीं, हे गौतम! जो वह क्षत्रिय० कुलोत्पन्न द्वारा० अग्नि बनाई गई है० वह भी अर्चिमान्० अग्नि होगी, उस आगसे भी अग्निका काम लिया जा सकता है; और जो वह चांडाल० कुलोत्पन्न द्वारा० अग्नि बनाई गई है० वह भी अर्चिमान्० अग्नि होगी। सभी आगसे अग्निका काम लिया जा सकता है।"

"यहाँ आश्वलायन! ब्राह्मणोंका क्या बल० ?" ०।

"तो क्या मानते हो, आश्वलायन! यदि क्षत्रिय-कुमार ब्राह्मण-कन्याके साथ संवास करे। उनके सहवाससे पुत्र उत्पन्न हो। जो वह क्षत्रिय-कुमार द्वारा ब्राह्मण-कन्यामें पुत्र उत्पन्न हुआ है, क्या वह माताके समान और पिताके समान, 'क्षत्रिय (है)', 'ब्राह्मण (है)' कहा जाना चाहिये?" "हे गौतम! ०कहा जाना चाहिये।"

"०आश्वलायन! यदि ब्राह्मण-कुमार क्षत्रिय-कन्याके साथ संवास करे० 'ब्राह्मण (है)' कहा जाना चाहिये?" "०'ब्राह्मण (है)' कहा जाना चाहिये।"

"०आश्वलायन! यहाँ घोड़ीको गदहेसे जोड़ा मिलायें, उनके जोड़से किशोर (=बछड़ा) उत्पन्न हो। क्या वह माता० पिताके समान, 'घोड़ा है' 'गदहा है' कहा जाना चाहिये?"

"…हे गौतम! वह अश्वतर (=खच्चर) होता है। यहाँ…भेद देखता हूँ। उन दूसरोंमें कुछ भेद नहीं देखता।"

"०आश्वलायन! यहाँ दो माणवक सगे भाई हों। एक अध्ययन करनेवाला, और उपनीत (=उपनयन द्वारा गुरुके पास प्राप्त) है; दूसरा अन्-अध्यायक और अन्-उपनीत (है)। श्राद्ध, यज्ञ या पाहुनाई (=पाहुने,में), ब्राह्मण किसको प्रथम भोजन करायेंगे?"

"हे गौतम! जो वह माणवक अध्यायक और उपनीत है, उसीको० प्रथम भोजन करायेंगे। अन्-अध्यायक अन्-उपनीतको देनेसे क्या महाफल होगा?"

"तो क्या मानते हो, आश्वलायन! यहां दो माणवक सगे भाई हों। एक अध्यायक उपनीत, (किंतु) दुःशील (=दुराचारी), पाप-धर्म (=पापी) हो; दूसरा अन्-अध्यायक अन्-उपनीत, (किंतु) शीलवान् कल्याण-धर्म। इनमें किसको ब्राह्मण श्राद्ध या यज्ञ या पाहुनाईमें प्रथम भोजन करायेंगे?"

"हे गौतम! जो वह माणवक अन्-अध्यायक, अन्-उपनीत, (किंतु) शीलवान् कल्याण-धर्म है, उसीको ब्राह्मण० प्रथम भोजन करायेंगे। दुःशील=पाप-धर्मको दान देनेसे क्या महा-फल होगा?"

"आश्वलायन! पहिले तू जातिपर पहुँचा, जातिसे जाकर मंत्रोंपर पहुँचा, मन्त्रोंसे जाकर अब तू चातुर्वर्णी शुद्धिपर आगया, जिसका कि मैं उपदेश करता हूँ।"

ऐसा कहनेपर आश्वलायन माणवक चुप होगया, मूक हो गया, …अधोमुख चिन्तित, निष्प्रतिभ हो बैठा।

तब भगवान्‌ने आश्वलायन माणवकको चुप मूक० निष्प्रतिभ बैठे देख…कहा—

"पूर्वकालमें आश्वलायन ! जंगलमें, पर्णकुटियोंमें वास करते हुये सात ब्राह्मण-ऋषियोंको, इस प्रकारकी पाप-दृष्टि (= बुरी धारणा) उत्पन्न हुई—ब्रह्मणही श्रेष्ट वर्ण है०। आश्वलायन ! तब असित देवल ऋषिने सुना, ०सात ब्राह्मण ऋषियोंको इस प्रकारकी पाप-दृष्टि उत्पन्न हुई है०। तब आश्वलायन ! असित देवल ऋषि सिर-दाढी मुंडा मंजीठके रंगका (=लाल) धुस्सा पहिन, खड़ाऊँ पर चढ़, सोने चाँदीका दंड धारण कर, सातों ब्राह्मण ऋषियोंकी कुटीके आँगनमें प्रादुर्भूत हुये। तब आश्वलायन ! असित देवल ऋषि सातों ब्राह्मण ऋषियोंके कुटीके आँगनमें टहलते हुये कहने लगे—"हे ! आप ब्राह्मण-ऋषि कहाँ चले गये ? हे ! आप ब्राह्मण ऋषि कहाँ चले गये ?" तब आश्वलायन ! उन सातों ब्राह्मण ऋषियोंको हुआ—'कौन है यह गँवार लड़केकी तरह सातों ब्राह्मण ऋषियोंकी कुटीके आँगनमें टहलते ऐसे कह रहा है-हे ! आप०। अच्छा तो इसे शाप देवें।' तब आश्वलायन ! सात ब्राह्मण-ऋषियोंने असित देवल ऋषिको शाप दिया—'शूद्र ! (=वृषल) भस्म हो जा।' जैसे जैसे आश्वलायन ! सात ब्राह्मण ऋषि असित देवल ऋषिको शाप देते थे, वैसेही वैसे ··देवल ऋषि अधिक सुन्दर, अधिक दर्शनीय = अधिक प्रासादिक होते जा रहे थे। तब आश्वलायन ! सातों ब्राह्मण ऋषियोंको हुआ—'हमारा तप व्यर्थ है, ब्रह्मचर्य निष्फल है। हम पहिले जिसको शाप देते—'वृषल ! भस्म होजा', वह भस्मही होता था। इसको हम जैसे जैसे शाप देते हैं, वैसे ही वैसे यह अभिरूप-तर, दर्शनीय-तर, प्रासादिक-तर, होता जा रहा है।' (असित देवलने कहा)—'आप लोगोंका तप व्यर्थ नहीं, ब्रह्मचर्य निष्फल नहीं, आप लोगोंका मन जो मेरे प्रति दूषित हो गया है, उसे छोड़ दें।' (उन्होंने कहा)—जो मनोपदोस (=मानसिक दुर्भाव) है, उसे हम छोड़ते हैं, आप कौन हैं ?" 'आप लोगोंने असित देवल ऋषिको सुना है ?' 'हाँ, भो !" वही मैं हूँ।'

"तब आश्वलायन ! सातों ब्राह्मण ऋषि, असित देवल ऋषिको अभिवादन करनेके लिये पास गये। असित देवल ऋषिने कहा—'मैंने सुना···कि 'अरण्यके भीतर पर्णकुटियोंमें वास करते, सात ०ऋषियोंको इस प्रकारकी पापदृष्टि उत्पन्न हुई है—ब्राह्मणही श्रेष्ट वर्ण है०।" "हाँ भो !" "जानते हैं आप, कि जननी=माता ब्राह्मणहीके पास गई, अ-ब्राह्मणके पास नहीं ?" "नहीं।" "जानते हैं आप, कि जननी = माताकी माता सात पीढ़ी तक मातामही-(=नानी) ब्राह्मणहीके पास गई, अ-ब्राह्मणके पास नहीं ?" 'नहीं भो !' "जानते हैं आप कि जनिता=पिता० पितामह-युगल (=दादा) सातवीं पीढ़ी तक ब्राह्मणीहीके पास गये, अ-ब्राह्मणीके पास नहीं ?" 'नहीं भो !" "जानते हैं आप, गर्भ कैसे ठहरता है ?" "हाँ जानते हैं भो ! जब माता-पिता एकत्र होते हैं, माता ऋतुमती होती है, और गंधर्व (=उत्पन्न होने वाला, सत्व) उपस्थित होता है ; इस प्रकार तीनोंके एकत्रित होनेसे गर्भ ठहरता है।" "जानते हैं आप, कि यह गंधर्व क्षत्रिय होता है, ब्राह्मण, वैश्य या शूद्र होता है ?" "नहीं भो ! हम नहीं जानते, कि यह गंधर्व०।" "जब ऐसा (है) तब जानते हो कि तुम कौन हो ?" "भो ! हम नहीं जानते हम कौन हैं।"

"हे आश्वलायन ! असित देवल ऋषि-द्वारा जातिवादके विषयमें पूछे जानेपर,···वह सातों ब्राह्मण ऋषि भी (उत्तर) न दे सके; तो फिर आज तुम···क्या (उत्तर) दोगे; (जबकि) अपनी सारी पण्डिताई-सहित तुम उनके रसोईदार (=दर्विग्राहक) (के समान) हो।"

ऐसा कहने पर आश्वलायन माणवकने भगवान्‌को कहा—"आश्चर्य ! हे गौतम !! आश्चर्य ! हे गौतम !!० आजसे मुझे अंजलि-बद्ध उपासक धारण करें ।"

+ + +

(१८)

महाराहुलोवाद-सुत्त । अवखण-सुत्त (ई० पू० ५१५) ।

ऐसा[1] मैंने सुना – एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आराम जेतवन में विहार करते थे ।

तब पूर्वाह्ण समय भगवान् पहिनकर, पात्र चीवरले श्रावस्तीमें पिंड-(चार)के लिये प्रविष्ट हुये । आयुष्मान् राहुलभी पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवरले भगवान्‌के पीछे पीछे होलिये । भगवान्‌ने देखकर, आयुष्मान् राहुलको संबोधित किया—

"राहुल ! जो कुछ रूप है – भूत-भविष्य वर्तमान-का शरीरके भीतर (=अध्यात्म) का, या बाहरका, महान् या सूक्ष्म, अच्छा या बुरा, दूर या समीप-का—सभी रूप 'न यह मेरा है', 'न मैं यह हूँ ', 'न यह मेरा आत्मा है', इस प्रकार यथार्थ जानकर देखना (=समझना) चाहिये ।"

"रूपहीको भगवान् ! रूपहीको सुगत !"

"रूपकोभी राहुल ! वेदनाकोभी, संज्ञाकोभी, संस्कारकोभी, विज्ञानकोभी ।"

तब आयुष्मान् राहुल—'कौन आज भगवान्‌का उपदेश सुनकर, गाँवमें पिंड-चार के लिये जाये ?' (सोच) वहींसे लौटकर एक वृक्षके नीचे, आसन मार, शरीरको सीधा रख, स्मृतिको सम्मुख ठहराकर बैठगये । भगवान्‌ने आयुष्मान् राहुलको वृक्षके नीचे० बैठा देखा । देखकर संबोधित किया—

"राहुल ! आनापान सति (= प्राणायाम) भावनाकी भावना (=ध्यान) कर । राहुल ! आनापान-सति (=आनापान स्मृति) भावना किये जानेपर महाफलदायक, बड़े माहात्म्यवाली होती है ।"

तब आयुष्मान् राहुल सायंकालको ध्यानसे उठ, जहाँ भगवान् थे वहाँ गये । जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् राहुलने भगवान्‌को यह कहा—

"भन्ते ! किस प्रकार भावना की गई, किस प्रकार बढ़ाई गई, आनापान सति महा-फल-दायक, बड़े माहात्म्यवाली होती है ?"

" राहुल ! जो कुछ भी शरीरमें (= अध्यात्म), प्रतिशरीरमें (=प्रत्यात्म) कर्कश, खरीत है, जैसे - केश, लोम, नख, दाँत, चमड़ा, मांस, स्नायु, अस्थि, अस्थि-मज्जा, वृक्क, हृदय, यकृत, क्लोमक, प्लीहा, फुफ्फुस, आँत, पतली आँत, (=अंत-गुण = आँतकी रस्सी), पेटका मल । और जो और भी कुछ शरीरमें, प्रतिशरीरमें कर्कश० है । राहुल ! यह सब ! अध्यात्म पृथिवी-धातु, कहलाती है । जो कुछ कि अध्यात्म पृथिवी-धातु

---

१. म. नि. २: २: २ ।

है, और जो कुछ बाह्य; यह (सब) पृथिवी-धातु, पृथिवी-धातु ही है। उसको 'यह मेरी नहीं', 'यह मैं नहीं हू'', 'यह मेरा आत्मा नहीं है' इस प्रकार यथार्थतः जानकर देखना चाहिये। इस प्रकार इसे यथार्थतः अच्छी प्रकार जानकर देखनेसे (भिक्षु) पृथिवी-धातुसे उदास होता है, पृथिवी-धातुसे चित्तको विरक्त करता है।

"क्या है राहुल! आपधातु? आप (=जल) धातु (दो) हैं आध्यात्मिक (=शरीरमें की) और बाह्य। क्या है? अध्यात्मिक आप-धातु[1]०। ०तेज-धातु०।० वायु-धातु०।

"क्या है राहुल! आकाश-धातु? आकाश-धातु आध्यात्मिक भी है, और बाह्य भी। "राहुल! आध्यात्मिक आकाश-धातु क्या है? जो कुछ शरीरमें, प्रतिशरीरमें आकाश या आकाश-विषयक है, जैसे कि—कर्ण-छिद्र, नासिका-छिद्र, मुख-द्वार जिससे अन्न-पान खादन-आस्वादन किया जाता है, और जहाँ खाना-पीना"'ठहरता है, और जिससे कि अधोभागसे खाया-पिया"'बाहर निकलता है। और जो कुछ और भी शरीरमें प्रति-शरीरमें आकाश या आकाश-विषयक है। यह सब राहुल! आध्यात्मिक आकाश धातु कही जाती है। जो कुछ आध्यात्मिक आकाश-धातु है, और जो कुछ बाह्य आकाश-धातु है, वह सब आकाश-धातु ही है। 'वह न मेरी है'०, ०।०

"राहुल! पृथिवी-समान भावनाकी भावना (=ध्यान) कर। पृथिवी-समान भावनाकी भावना करते हुये, राहुल! तेरे चित्तको, दिल को अच्छे लगनेवाले स्पर्श—चित्तको चारों ओरसे पकड़कर न चिमटेंगे। जैसे राहुल! पृथिवीमें शुचि (=पवित्र वस्तु) भी फेंकते हैं, अशुचिभी फेंकते हैं। पाखानाभी०, पेशाबभी०, कफ०, पीव०, लोहू०। उससे पृथिवी दुःखी नहीं होती,"'ग्लानि नहीं करती, घृणा नहीं करती, इसी प्रकार; तू राहुल! पृथिवी-समान भावनाकी भावनाकर। पृथिवीसमान भावना करते राहुल! तेरे चित्तको अच्छे लगनेवाले स्पर्श चित्तको० न चिमटेंगे।

"आप (=जल)-समान०। जैसे राहुल! जलमें शुचिभी धोते हैं०।

"तेज (=अग्नि)-समान०। जैसे राहुल! तेज शुचिको भी जलाता है०।

"वयु-समान०। जैसे राहुल! वायु शुचिके पासभी बहता है।

'आकाश-समान०। जैसे राहुल! आकाश किसी पर प्रतिष्ठित नहीं। इसी प्रकार तू राहुल! आकाश-समान भावनाकी भावना कर। राहुल! आकाश-समान भावनाकी भावना करनेपर, उत्पन्न हुये मनको अच्छे लगनेवाले स्पर्श चित्तको चारों ओरसे पकड़कर चित्त को न चिमटेंगे।

"राहुल! मैत्री (=सबको मित्र समझना)-भावनाकी भावना कर। मैत्री-भावनाकी भावना करनेसे राहुल! जो व्यापाद (=द्वेष) है, वह छूट जायेगा।

"राहुल! करुणा-(=सर्व प्राणिपर दया करना) भावनाकी भावना कर। करुणा भावनाकी भावना करनेसे राहुल! जो तेरी विहिंसा (=पर-पीड़ा-प्रवृत्ति) है, वह छूट जायगी।

"राहुल! मुदिता (=सुखी को देख प्रसन्न होना)-भावनाकी भावना कर।

---

[1] पृ० १७६, १७७।

० राहुल ! जो तेरी अ-रति (= मन न लगना) है वह हट जायेगी।

"राहुल ! उपेक्षा (= शत्रुकी शत्रुताकी उपेक्षा)-भावनाकी भावना कर। ० जो तेरा प्रतिघ (= प्रतिहिंसा) है, वह हट जायेगा।

"राहुल ! अ-शुभ (= सभी भोग बुरे हैं)-भावनाकी भावना कर। ० जो तेरा राग है, वह चला जायगा।

"राहुल ! अ-नित्य-संज्ञा (= सभी पदार्थ अ-नित्य हैं)-भावनाकी भावना कर। ० जो तेरा अस्मिमान (= अहंकार) है, वह छूट जायेगा।

"राहुल ! आणापान-सति (= प्राणायाम)-भावनाकी भावना कर। आणा-पान सति भावना करना-बढ़ाना, राहुल ! महा-फल-प्रद बड़े माहात्म्यवाला है। राहुल ! आणा-पान-सति-भावना भावित होनेपर, बढ़ाई जानेपर कैसे महा-फल-प्रद० होती है ? राहुल ! भिक्षु अरण्यमें वृक्षके नीचे, या शून्य-गृहमें आसन मारकर, शरीरको सीधा धारण कर, स्मृति को सन्मुख रख, बैठता है। वह स्मरण रखते साँस छोड़ता है, स्मरण रखते साँस लेता है, लम्बी साँस छोड़ते 'लम्बी साँस छोड़ रहा हूँ' जानता है। लम्बी साँस लेते 'लम्बी साँस ले रहा हूँ' जानता है। छोटी साँस छोड़ते० , छोटी साँस लेते०। 'सारे कायको अनु-भव (=प्रतिसंवेदन) करते साँस छोड़ूँ' सीखता है। 'सारे कायको अनुभव करते साँस लूँ'-सीखता है। कायाके संस्कारों श्वास आदि को दबाते हुये साँस छोड़ूँ, ० ० साँस लूँ' सीखता है। 'प्रीतिको अनुभव करते साँस छोड़ूँ' ०। '० साँस लूँ' सीखता है। 'सुख अनुभव करते०'। 'चित्तके संस्कारको अनुभव करते०। 'चित्त संस्कारको दबाते हुये०। 'चित्तको अनुभव करते०'। 'चित्तको प्रमुदित करते०। 'चित्तको समाधान करते०। 'चित्तको (राग आदिसे) विमुक्त करते०। '(सब पदार्थोंको) अनित्य देखने-वाला हो०। '(सब पदार्थोंमें) विरागकी दृष्टि से०। '(सब पदार्थों में) निरोध (=वि-नाश) की दृष्टिसे। '(सब पदार्थों में) परित्यागकी दृष्टिसे साँस छोड़ूँ' सीखता है। 'परित्यागकी दृष्टिसे साँस लूँ' सीखता है। राहुल ! इस प्रकार भावना की गई, बढ़ाई गई आणा-पान-सति महा-फल दायक, और बड़े माहात्म्यवाली होती है। राहुल ! इस प्रकार भावना की गई, बढ़ाई गई आणा पान-सतिसे जो यह अन्तिम आश्वास (= साँस छोड़ना) प्रश्वास (=साँस लेना) है, वह भी विदित होकर, लय (=निरुद्ध) होते हैं, अ-विदित होकर नहीं।"

भगवान्‌ने यह कहा। आयुष्मान् राहुलने संतुष्ट हो, भगवान्‌के भाषणका अभिनन्दन किया।

[1][illegible]-सुत्त।

"ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडकके आराम जेतवनमें विहार करते थे।

वहाँ भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ !"

---

१. म. नि. [illegible]।

"भदन्त !" (कह) उन भिक्षुओंने उत्तर दिया। तब भगवान्‌ने उन भिक्षुओंको कहा-

"भिक्षुओं ! 'लोक क्षण-कृत्य है, क्षण-कृत्य है' ऐसा अज्ञ (=अश्रुतवान्) पृथग्जन कहता है, लेकिन वह क्षण या अ-क्षणको नहीं जानाता। भिक्षु ब्रह्मचर्य-वासके लिये यह आठ अ-क्षण=अ-समय हैं। कौनसे आठ ? भिक्षुओ ! लोकमें तथागत अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध विद्या-आचरण-संपन्न, सुगत, लोक-विद्, अनुपम पुरुषके चाबुक-सवार, देव-मनुष्य-उपदेशक बुद्ध भगवान् उत्पन्न हों। वह सुगतके ज्ञात, उपशांत करनेवाले, निर्वाणको लानेवाले, संबोधि (=परमज्ञान)-गामी धर्मको उपदेश करते हों। (१) (उस समय) यह पुद्गल (=पुरुष) नर्कमें उत्पन्न हो। (२)० पशुयोनिमें उत्पन्न हो। (३)० प्रेतलोकमें उत्पन्न हो। (४)० किसी दीर्घायु देव-समुदायमें०। (५)० (ऐसे) प्रत्यन्त (=सीमान्त) देशमें, अविज्ञ म्लेच्छों (के देश) में उत्पन्न हो, जहाँ भिक्षु-भिक्षुणियाँ, उपासक-उपासिकाओंकी गति नहीं। (६)० [1]मध्यमजनपदों (=मज्झिमेसु जनपदेसु) में उत्पन्न हुआ हो, (किंतु) मिथ्या दृष्टि= उलटी मत का हो—दान (कुछ) नहीं, यज्ञ (कुछ) नहीं, सुकृत-दुष्कृत कर्मोंका फल=विपाक कुछ नहीं, यह लोक नहीं, परलोक नहीं, माता नहीं है, पिता नहीं, उत्पन्न होनेवाले (=ओपपातिक) प्राणी (कोई) नहीं। लोकमें अच्छी तरह पहुँचे, अच्छी तरह (तत्त्वको) प्राप्त हुये, श्रमण-ब्राह्मण (कोई) नहीं हैं, जो कि इस लोक और परलोकको स्वयं जानकर=साक्षात् कर, जतलायें। (७)० यह पुद्गल मध्यम-देशमें पैदा हुआ हो, लेकिन वह है, दुष्प्रज्ञ, जड़, वज्रमूर्ख (=एड्मूग=भेड-गूँगा); सुभाषित, दुर्भाषितके अर्थको जाननेमें असमर्थ, यह भिक्षुओ ! ब्रह्मचर्य-वासके लिये सातवाँ अ-क्षण=अ-समय है।

"(८) और फिर भिक्षुओ ! लोकमें तथागत० उत्पन्न हों, उपदेश करते हों, उस समय यह पुद्गल मध्यम-देशमें न पैदा हुआ हो, और प्रज्ञावान्, अजड़, अन्-एड्मूग, सुभाषित दुर्भाषितके अर्थ जाननेमें समर्थ हो। यह भिक्षुओं ! ब्रह्मचर्य-वासके लिये, आठवाँ अ-क्षण=अ-समय।

"यह भिक्षुओ ! ब्रह्मचर्यवासके लिये ये अ-क्षण=अ-समय हैं। भिक्षुओ ! ब्रह्मचर्य-वासके लिये एक ही क्षण = समय है। कौन सा एक ? भिक्षुओ ! लोकमें तथागत ०उत्पन्न हों, ०उपदेश करते हों; और यह पुद्गल मध्यम-देशोंमें पैदा हुआ हो, और वह हो प्रज्ञावान्०, अजड़, अन्-एड्-मूग सुभाषित दुर्भाषितके अर्थ जाननेमें समर्थ। यही भिक्षुओ ' एक क्षण=समय है, ब्रह्मचर्यवासके लिये।

\+ + + +

(१९)

पोट्ठपाद-सुत्त (ई. पू. ५१५)।

[2]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान्० अनाथपिंडकके आराम जेतवनमें विहार करते थे।

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र–चीवर ले, श्रावस्तीमें पिंडके लिये प्रविष्ट हुये। तब भगवान्‌को यह हुआ - 'श्रावस्तीमें पिंडचारके लिये अभी बहुत सबेरा है, क्यों न

१. वर्तमान हिंदीभाषी (कोसीसे कुरुक्षेत्र, हिमालयसे विंध्याचल तकके बीचका) देश। देखो पृष्ठ १। २. दी. नि. १:९।

में समय-प्रवादक (= भिन्न-भिन्न मतोंके वादका स्थान) एकसालक (= एक बड़ी शाला-वाले) मल्लिका (= कोसलेश्वर-महिषी) के आराम 'तिन्दुकाचीर'में, जहाँ पोट्ठपाद परिव्राजक है, वहाँ चलूँ।' तब भगवान् जहाँ० तिन्दुकाचीर था, वहाँ गये।

उस समय पोट्ठ (= प्रोष्ठ) पाद परिव्राजक, राज-कथा, चोर-कथा, महामात्य-कथा, सेना-कथा, भय-कथा, युद्ध-कथा, अन्न-कथा, पान-कथा, वस्त्र-कथा, शयन-कथा, गंध-कथा, माला-कथा, ज्ञाति (= कुल)-कथा, यान (= युद्ध-यात्रा)-कथा, ग्राम-कथा, निगम-कथा, नगर-कथा, जन-पद-कथा, स्त्री-कथा, शूर-कथा, विशिखा (= चौरस्ता)-कथा, कुम्भ-स्थान (= पनघट)-कथा, पूर्व-प्रेत (= पहिले मरोंकी)-कथा, नानात्व-कथा, लोक-आख्यायिका, समुद्र-आख्यायिका, इति भवाभव (= ऐसा हुआ, ऐसा नहीं हुआ)-कथा आदि निरर्थक कथायें कहती, नाद करती, शोर मचाती, बड़ी भारी परिव्राजक-परिषद्के साथ बैठा था। पोट्ठ-पाद परिव्राजकने दूरसे ही भगवान्‌को आते देखा। देखकर अपनी परिषद्‌को कहा— 'आप सब निःशब्द हों, आप सब शब्द मत करें। श्रमण गौतम आ रहे हैं। वह आयुष्मान् निःशब्द-प्रेमी, निः (= अल्प)-शब्द-प्रशंसक हैं। परिषद्‌को अल्प-शब्द देख संभव है, (इधर) आवें।" ऐसा कहनेपर (वे) परिव्राजक चुप हो गये।

तब भगवान् जहाँ पोट्ठपाद परिव्राजक था, वहाँ गये। पोट्ठपाद परिव्राजकने भगवान्‌को कहा—

"आइये भन्ते! भगवान्। स्वागत है भन्ते! भगवान्। चिर (-काल) के बाद भगवान् यहाँ आये हैं। बैठिये भन्ते! भगवान् यह आसन बिछा है।"

भगवान् बिछे आसनपर बैठ गये। पोट्ठपाद परिव्राजक भी एक नीचा आसन लेकर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये पोट्ठ-पाद परिव्राजकको भगवान्‌ने कहा—

"पोट्ठ पाद! किस कथामें इस समय बैठे थे, क्या कथा बीचमें हो रही थी?"

ऐसा कहनेपर पोट्ठ-पाद परिव्राजकने भगवान्‌को यह कहा—

"जाने दीजिये भन्ते! इस कथाको, जिस कथामें हम इस समय बैठे थे। ऐसी कथा, भन्ते! भगवान्‌को पीछे भी सुननेमें दुर्लभ न होगी। पिछले दिनोंके पहिले भन्ते! कुतूहल-शालामें जमा हुये, नाना तीर्थी (= पंथों) के श्रमण-ब्राह्मणोंमें अभिसंज्ञा-निरोध (= एक समाधि) पर कथा चली—'भो! अभिसंज्ञा-निरोध कैसे होता है?' वहाँ किन्हींने कहा—'बिना हेतु = बिना प्रत्ययके पुरुषकी संज्ञा (= चेतना) उत्पन्न भी होती है, निरुद्ध भी होती है। वह उस समय संज्ञा-रहित (= अ-संज्ञी) होता है। इस प्रकार कोई कोई अभि-संज्ञा-निरोधका प्रचार करते हैं।' उसको दूसरेने कहा—'भो! वह ऐसा नहीं हो सकता। संज्ञा पुरुषका आत्मा है। वह आता भी है, जाता भी है। जिस समय आता है, उस समय संज्ञा-वान् (= संज्ञी) होता है; जिस समय जाता है, संज्ञा-रहित (= अ-संज्ञी) होता है। इस प्रकार कोई कोई अभिसंज्ञा-निरोध बतलाते हैं। उसको दूसरेने कहा—'भो! वह ऐसा नहीं होगा। (कोई कोई) श्रमण-ब्राह्मण महा ऋद्धि-मान् = महा अनुभाव-वाले हैं। वह इस पुरुषकी संज्ञाको डालते भी हैं, निकालते भी हैं। जिस समय डालते हैं, उस समय संज्ञा-वान् होता है। जिस समय निकालते हैं, उस समय अ-संज्ञी होता है। इस प्रकार कोई कोई अभिसंज्ञा-

१. करीमग्ज कनैबाद, गहड़-मड़ेर, जि. सहारनपुर।

निरोध बतलाते हैं।' उसको दूसरेने कहा—भो! यह ऐसे न होगा। (कोई कोई) देवता महा-ऋद्धि-मान्=महा-अनुभव-वान् हैं। वह इस पुरुषकी संज्ञा(=होश) डालते भी हैं, निकालते भी हैं०। इस प्रकार कोई कोई अभि-संज्ञा-निरोध बतलाते हैं।' तब मुझको भन्ते! भगवान्के बारेमें ही स्मरण आया—'अहो अवश्य वह भगवान् सुगत हैं' जो इन धर्मों (=अभिज्ञता) में चतुर हैं।' भगवान् अभि-संज्ञा-निरोधके प्रकृतिज्ञ (=स्वभावज्ञ) हैं।' कैसे भन्ते! अभि-संज्ञा-निरोध होता है?"

"पोट्ठ-पाद! जो वह श्रमण ब्राह्मण ऐसा कहते हैं—बिना हेतु=बिना प्रत्ययही पुरुषकी संज्ञायें उत्पन्न होती हैं, निरुद्ध भी होती हैं, आदिसेही उन्होंने भूल की। वह किस लिये? स-हेतु (=कारणसे) =स-प्रत्यय पोट्ठपाद पुरुषकी संज्ञायें उत्पन्न होती हैं, निरुद्ध भी होती हैं। शिक्षासे कोई कोई संज्ञा उत्पन्न होती है, शिक्षासे कोई कोई संज्ञा निरुद्ध होती है।"

"और शिक्षा क्या है?"

भगवान्ने कहा—"पोट्ठपाद! यहाँ लोकमें तथागत उत्पन्न होते हैं,—सम्यक्-संबुद्ध, विद्या-आचरण-संपन्न, सुगत, लोक-वित्, अनुपम पुरुष-चाबुक-सवार, देव-मनुष्य-उपदेसक बुद्ध भगवान्। वह इस देव-मार-ब्रह्म-सहित लोकको०[1]। ०धर्म-देशना करते हैं०। ०छेदन, वध, बंधन, छापा मारने, आलोह (=ग्राम आदि विनाश करने), डाका डालनेसे विरत होते हैं। इस प्रकार पोट्ठपाद! भिक्षु शीलसम्पन्न होता है।०। उसे इन पाँच नीवरणोंसे मुक्त हो, अपनेको देखनेसे प्रमोद उत्पन्न होता है। प्रमुदितको प्रीति उत्पन्न होती है। प्रीति-सहित चित्तवालेकी काया अ-चंचल (=प्रश्रब्ध) होती है। प्रश्रब्ध-काय-वाला सुख-अनुभव करता है। सुखितका चित्त समाहित (=एकाग्र) होता है। वह कामोंसे पृथक् हो, अ-कुशल धर्मोंसे पृथक् हो, स-वितर्क-विवेकसे उत्पन्न प्रीति-सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। उसकी जो वह पहिलेकी काम-संज्ञा है, वह निरुद्ध (=नष्ट) होती है। विवेकसे उत्पन्न प्रीतिसुखवाली सूक्ष्म सत्य-संज्ञा उस समय होती है, जिससे कि वह उस समय सूक्ष्म-सत्य-संज्ञी होता है। इस शिक्षासे भी कोई कोई संज्ञायें उत्पन्न होती हैं, कोई कोई निरुद्ध होती हैं।

"और भी पोट्ठपाद! भिक्षु वितर्क विचारके उपशांत होनेपर, भीतरके संप्रसाद (=प्रसन्नता) = चित्तकी एकाग्रताको, वितर्क-विचार-रहित समाधिसे उत्पन्न प्रीति-सुख-वाले द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। उसकी जो वह पहिली विवेकज प्रीति-सुख-वाली सूक्ष्म सत्य-संज्ञा थी, वह निरुद्ध होती है। समाधिसे उत्पन्न प्रीति-सुखवाली सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा-वान् ही वह उस समय होता है। इस शिक्षामें भी कोई कोई संज्ञा उत्पन्न होती हैं, कोई कोई संज्ञा निरुद्ध होती हैं। यह शिक्षा है।"

"और फिर पोट्ठपाद! भिक्षु प्रीति और विरागसे उपेक्षक० तृतीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। उसकी वह पहिलेकी समाधिज प्रीति-सुख-वाली सूक्ष्म सत्य-संज्ञा निरुद्ध होती है। उपेक्षा-सुख-वाली सूक्ष्म सत्य-संज्ञा उस समय (पैदा) होती है। उपेक्षा-सुख-सत्य-संज्ञीही वह उस समय होता है। ऐसी शिक्षासे भी कोई कोई संज्ञायें उत्पन्न होती हैं, कोई कोई संज्ञायें निरुद्ध होती हैं। यह शिक्षा है।"

---

१. पृष्ठ १६० 'तथागत पाँच' और 'ब्राह्मण' छोड़कर।

में समय-प्रवादक (= भिन्न-भिन्न मतोंके वादका स्थान) एकसालक (= एक बड़ी शाला-वाले) मल्लिका (= कोसलेश्वर-महिषी) के आराम [1]तिन्दुकाचीरमें, जहाँ पोट्ठपाद परिव्राजक है, वहाँ चलूँ।' तब भगवान् जहाँ० तिन्दुकाचीर था, वहाँ गये।

उस समय पोट्ठ (= प्रोष्ठ) पाद परिव्राजक, राज-कथा, चोर-कथा, महामात्य-कथा, सेना-कथा, भय-कथा, युद्ध-कथा, अन्न-कथा, पान-कथा, वस्त्र-कथा, शयन-कथा, गंध-कथा, माला-कथा, ज्ञाति (= कुल)-कथा, यान (= युद्ध-यात्रा)-कथा, ग्राम-कथा, निगम-कथा, नगर-कथा, जन-पद-कथा, स्त्री-कथा, शूर-कथा, विशिखा (= चौरस्ता)-कथा, कुम्भ-स्थान (= पनघट)-कथा, पूर्व-प्रेत (= पहिले मरोंकी)-कथा, नानात्व-कथा, लोक-आख्यायिका, समुद्र-आख्यायिका, इति-भवाभव (= ऐसा हुआ, ऐसा नहीं हुआ)-कथा आदि निरर्थक कथायें कहती, नाद करती, शोर मचाती, बड़ी भारी परिव्राजक-परिषद्के साथ बैठा था। पोट्ठ-पाद परिव्राजकने दूरसे ही भगवान्‌को आते देखा। देखकर अपनी परिषद्को कहा—'आप सब निःशब्द हों, आप सब शब्द मत करें। श्रमण गौतम आ रहे हैं। वह आयुष्मान् निःशब्द-प्रेमी, निः (= अल्प)-शब्द-प्रशंसक हैं। परिषद्को अल्प-शब्द देख सम्भव है, (इधर) आयें।" ऐसा कहनेपर (वे) परिव्राजक चुप हो गये।

तब भगवान् जहाँ पोट्ठपाद परिव्राजक था, वहाँ गये। पोट्ठ-पाद परिव्राजकने भगवान्‌को कहा—

"आइये भन्ते! भगवान्। स्वागत है भन्ते! भगवान्। चिर (-काल) के बाद भगवान् यहाँ आये हैं। बैठिये भन्ते! भगवान् यह आसन बिछा है।"

भगवान् बिछे आसनपर बैठ गये। पोट्ठपाद परिव्राजक भी एक नीचा आसन लेकर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये पोट्ठ-पाद परिव्राजकको भगवान्‌ने कहा—

"पोट्ठ-पाद! किस कथामें इस समय बैठे थे, क्या कथा बीचमें हो रही थी?"

ऐसा कहनेपर पोट्ठ-पाद परिव्राजकने भगवान्‌को यह कहा—

"जाने दीजिये भन्ते! इस कथाको, जिस कथामें हम इस समय बैठे थे। ऐसी कथा, भन्ते! भगवान्‌को पीछे भी सुननेमें दुर्लभ न होगी। पिछले दिनोंके पहिले भन्ते! कुतूहल-शालामें जमा हुये, नाना तीर्थों (= पंथों) के श्रमण-ब्राह्मणोंमें अभिसंज्ञा-निरोध (= एक समाधि) पर कथा चली—'भो! अभिसंज्ञा-निरोध कैसे होता है?' वहां किन्हींने कहा—'बिना हेतु = बिना प्रत्ययही पुरुषकी संज्ञा (= चेतना) उत्पन्न भी होती हैं, निरुद्ध भी होती हैं। वह उस समय संज्ञा-रहित (=अ-संज्ञी) होता है। इस प्रकार कोई कोई अभि-संज्ञा-निरोधका प्रचार करते हैं।' उसको दूसरेने कहा—'भो! यह ऐसा नहीं हो सकता। संज्ञा पुरुषका आत्मा है। वह आता भी है, जाता भी है। जिस समय आता है, उस समय संज्ञा-वान् (=संज्ञी) होता है; जिस समय जाता है, संज्ञा-रहित (=अ-संज्ञी) होता है। इस प्रकार कोई कोई अभि-संज्ञा-निरोध बतलाते हैं। उसको दूसरेने कहा—'भो! यह ऐसा नहीं होगा। (कोई कोई) श्रमण-ब्राह्मण महा-ऋद्धि-मान् = महा-अनुभव-वान् हैं। वह इस पुरुषकी संज्ञाको डालते भी हैं, निकालते भी हैं। जिस समय डालते हैं, उस समय संज्ञा वान् होता है। जिस समय निकालते हैं, उस समय अ-संज्ञी होता है। इस प्रकार कोई कोई अभिसंज्ञा-

[1] वर्तमान चीरेनाथ, सहेट-महेट, जि. बहराइच।

निरोध बतलाते हैं।' उसको दूसरेने कहा—भो ! यह ऐसे न होगा। (कोई कोई) देवता महा-ऋद्धि-मान्=महा-अनुभव-वान् हैं। वह इस पुरुषकी संज्ञा(=होश) डालते भी हैं, निकालते भी हैं०। इस प्रकार कोई कोई अभि-संज्ञा-निरोध बतलाते हैं।' तब मुझको भन्ते ! भगवान्के बारेमें ही स्मरण आया—'अहो अवश्य वह भगवान् सुगत हैं' जो इन धर्मों (=अभिज्ञता) में चतुर हैं।' भगवान् अभि-संज्ञा-निरोधके प्रकृतिज्ञ (=स्वभावज्ञ) हैं।' कैसे भन्ते ! अभि-संज्ञा-निरोध होता है ?"

"पोट्ठ-पाद ! जो वह श्रमण ब्राह्मण ऐसा कहते हैं—बिना हेतु=बिना प्रत्ययही पुरुषकी संज्ञायें उत्पन्न होती हैं, निरुद्ध भी होती हैं, आदिसेही उन्होंने भूल की। वह किस लिये ? स-हेतु (=कारणसे) =स-प्रत्यय पोट्ठपाद पुरुषकी संज्ञायें उत्पन्न होती हैं, निरुद्ध भी होती हैं। शिक्षासे कोई कोई संज्ञा उत्पन्न होती है, शिक्षासे कोई कोई संज्ञा निरुद्ध होती है।"

"और शिक्षा क्या है ?"

भगवान्ने कहा—"पोट्ठपाद ! यहाँ लोकमें तथागत उत्पन्न होते हैं,—सम्यक्-संबुद्ध, विद्या-आचरण-संपन्न, सुगत, लोक-वित् अनुपम पुरुष-चाबुक-सवार, देव-मनुष्य-उपदेसक बुद्ध भगवान्। वह इस देव-मार-ब्रह्म-सहित लोकको०[1]। ०धर्म-देशना करते हैं०। ०छेदन, बध, बंधन, छापा मारने, आलोह (=ग्राम आदि विनाश करने), डाका डालनेसे विरत होते हैं। इस प्रकार पोट्ठपाद ! भिक्षु शीलसम्पन्न होता है।०। उसे इन पाँच नीवरणोंसे मुक्त हो, अपनेको देखनेसे प्रमोद उत्पन्न होता है। प्रमुदितको प्रीति उत्पन्न होती है। प्रीति-सहित चित्तवालेकी काया अ-चंचल (=प्रश्रब्ध) होती है। प्रश्रब्ध-काय-वाला सुख-अनुभव करता है। सुखितका चित्त समाहित (=एकाग्र) होता है। वह कामोंसे पृथक् हो, अ-कुशल धर्मोंसे पृथक् हो, स-वितर्क-विवेकसे उत्पन्न प्रीति-सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। उसकी जो वह पहिलेकी काम-संज्ञा है, वह निरुद्ध (=नष्ट) होती है। विवेकसे उत्पन्न प्रीतिसुखवाली सूक्ष्म सत्य-संज्ञा उस समय होती है, जिससे कि वह उस समय सूक्ष्म-सत्य-संज्ञी होता है। इस शिक्षासे भी कोई कोई संज्ञायें उत्पन्न होती हैं, कोई कोई निरुद्ध होती हैं।

"और भी पोट्ठपाद ! भिक्षु वितर्क विचारके उपशांत होनेपर, भीतरके संप्रसाद (=प्रसन्नता) =चित्तकी एकाग्रताको, वितर्क-विचार-रहित समाधिसे उत्पन्न प्रीति-सुख-वाले द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। उसकी जो वह पहिली विवेकज प्रीति-सुख वाली सूक्ष्म सत्य-संज्ञा थी, वह निरुद्ध होती है। समाधिसे उत्पन्न प्रीति-सुखवाली सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा-वान् ही वह उस समय होता है। इस शिक्षामें भी कोई कोई संज्ञा उत्पन्न होती हैं, कोई कोई संज्ञा निरुद्ध होती हैं। यह शिक्षा है।"

"और फिर पोट्ठपाद ! भिक्षु प्रीति और विरागसे उपेक्षक० तृतीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। उसकी वह पहिलेकी समाधिज प्रीति-सुख-वाली सूक्ष्म सत्य-संज्ञा निरुद्ध होती है। उपेक्षा-सुख-वाली सूक्ष्म सत्य-संज्ञा उस समय (पैदा) होती है। उपेक्षा-सुख-सत्य-संज्ञीही वह उस समय होता है। ऐसी शिक्षासे भी कोई कोई संज्ञायें उत्पन्न होती हैं, कोई कोई संज्ञायें निरुद्ध होती हैं। यह शिक्षा है।"

---

1. पृष्ठ १६० 'तथागत पाँच' और 'ब्राह्मण' छोड़कर।

"और फिर पोट्ठपाद ! भिक्षु सुख और दुःखके विनाशसे[1] चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। उसकी वह जो पहिलेकी उपेक्षा-सुख-वाली सूक्ष्म सत्य-संज्ञा (थी, वह) निरुद्ध होती है। अदुःख-असुख सूक्ष्म सत्य-संज्ञा, उस समय होती है। उस समय (वह) अदुःख असुख-सूक्ष्म-सत्य-संज्ञीही वह होता है। ऐसी शिक्षासे भी कोई कोई संज्ञायें उत्पन्न होती हैं, कोई कोई संज्ञायें निरुद्ध होती हैं। यह शिक्षा है।"

"और फिर पोट्ठपाद ! भिक्षु रूप-संज्ञाओंके सर्वथा छोड़नेसे, प्रतिघ (=प्रतिहिंसा) संज्ञाओंके अस्त हो जानेसे, नानापन (=नानात्व)की संज्ञाओंको मनमें न करनेसे, 'अनन्त आकाश' इस आकाश-आनंत्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है। उसकी जो पहिलेकी रूप-संज्ञा थी, वह निरुद्ध हो जाती है, आकाश-आनन्त्य-आयतनवाली सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा उस समय होती है। आकाश-आनन्त्य-आयतन सूक्ष्म-सत्य-संज्ञी ही वह उस समय होता है। ऐसी शिक्षा से भी०।"

"और फिर पोट्ठपाद ! भिक्षु आकाश अनन्त्य-आयतनको सर्वथा अतिक्रमण कर 'विज्ञान अन्त है' इस विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है। उसकी वह पहिलेकी आकाश-आनंत्य-आयतनवाली सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा नष्ट होती है, विज्ञान आनंत्य-आयतनवाली सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा होती है। विज्ञान-आनंत्य आयतन-सूक्ष्म-सत्य-संज्ञी ही (वह) उस समय होता है।०।"

"और फिर पोट्ठपाद ! भिक्षु विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको सर्वथा अतिक्रमणकर 'कुछ नहीं है' इस आकिंचन्य (=न-कुछ भी-पना-)आयतनको प्राप्त हो विहार करता है। उसकी वह पहिलेकी विज्ञान-आनन्त्य-आयतनवाली सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा नष्ट हो जाती है आकिंचन्य-आयतनवाली सूक्ष्म-सत्य संज्ञी ही०। वह आकिंचन्य-आयतन-सूक्ष्म-सत्य संज्ञी ही उस समय होता है।०।"

"चूँकि पोट्ठपाद ! भिक्षु स्वक-संज्ञी (=अपनेमें संज्ञा ग्रहण करनेवाला) होता है, (इसलिये) वह वहाँसे वहाँ, वहाँसे वहाँ, क्रमशः श्रेष्ठ-तर संज्ञा प्राप्त (=स्पर्श) करता है। श्रेष्ठतर-संज्ञापर स्थित हो, उसको यह होता है—'मेरा चिंतन करना बहुत बुरा (=पापीयस्) है, मेरा न चिंतन करना, बहुत अच्छा (=श्रेयस्) है। यदि मैं न चिंतन करूँ, न अभिसंस्करण करूँ, तो यह संज्ञायें मेरी नष्ट हो जायेंगी, और और भी विशाल (=उदार) संज्ञायें उत्पन्न होंगी। क्यों न मैं न चिंतन करूँ, न अभिसंस्करण करूँ।' उसके चिंतन न करने, अभिसंस्करण न करनेसे, वह संज्ञायें नाश हो जाती हैं, और दूसरी उदार संज्ञायें उत्पन्न नहीं होतीं। वह निरोधको स्पर्श (=प्राप्त) करता है। इस प्रकार पोट्ठपाद ! क्रमशः अभिसंज्ञा (=संज्ञा=चेतना) निरोधवाली संप्रज्ञात-समापत्ति (=संप्रज्ञान समापत्ति=संप्रज्ञात-समाधि) उत्पन्न होती है।

"तो क्या मानते हो, पोट्ठपाद ! क्या तुमने इससे पूर्व इस प्रकारकी क्रमशः अभिसंज्ञा-निरोध संप्रज्ञात-समापत्ति सुनी थी ?"

"नहीं, भन्ते ! भगवान्‌के भाषण करनेसे ही मैं इस प्रकार जानता हूँ।"

"चूँकि पोट्ठपाद ! भिक्षु यहाँ स्वक-संज्ञी होता है। (इसलिये) वह यहाँसे वहाँ

[1] १. पृष्ठ ११२

यहाँसे वहाँ, क्रमशः संज्ञाके अग्र (= उत्तम स्थान) को प्राप्त (स्पर्श) करता है। संज्ञाके अग्र पर स्थित हो, उसको ऐसा होता है—'मेरा चिंतन करना बहुत बुरा है, चिंतन न करना मेरे लिये बहुत अच्छा है०।' वह निरोधको स्पर्श करता है। इस प्रकार पोट्ठपाद! क्रमशः अभिसंज्ञा-निरोध संप्रज्ञात-समाधि होती है। ऐसे पोट्ठपाद!०"

"भन्ते! भगवान् क्या एक हीको संज्ञा-अग्र (= संज्ञाओंमें सर्व-श्रेष्ठ) बतलाते हैं, या पृथक् पृथक् भी संज्ञाग्रोंको कहते हैं?"

"पोट्ठपाद! मैं एक भी संज्ञाग्र बतलाता हूँ, और पृथक् पृथक् भी संज्ञाग्रोंको बतलाता हूँ। पोट्ठपाद! जैसे जैसे निरोधको प्राप्त (= स्पर्श) करता है, वैसे वैसे संज्ञाअग्रको मैं कहता हूँ। इस प्रकार पोट्ठपाद! मैं एक भी संज्ञाग्र बतलाता हूँ, और पृथक् भी संज्ञाग्रोंको बतलाता हूँ।"

"भन्ते! संज्ञा पहिले उत्पन्न होती है, पीछे ज्ञान; या ज्ञान पहिले उत्पन्न होता है, पीछे संज्ञा; या संज्ञा और ज्ञान न पूर्व न-पीछे उत्पन्न होते हैं?"

"पोट्ठपाद! संज्ञा पहिले उत्पन्न होती है, पीछे ज्ञान। संज्ञाकी उत्पत्तिसे (ही) ज्ञानकी उत्पत्ति होती है। वह यह जानता है—इस कारण (= प्रत्यय) से ही यह मेरा ज्ञान उत्पन्न हुआ है। पोट्ठपाद! इस कारणसे यह जानना चाहिये कि, संज्ञा प्रथम उत्पन्न होती है, ज्ञान पीछे; संज्ञाकी उत्पत्तिसे ज्ञानकी उत्पत्ति होती है।"

"संज्ञा (ही) भन्ते! पुरुषका आत्मा है; या संज्ञा अलग है, आत्मा अलग?"

"किसको पोट्ठपाद! तू आत्मा समझता है?"

"भन्ते! मैं आत्माको स्थूल (=औदारिक) रूप-वान्, चार महाभूतोंवाला, कवल-करके-खानेवाला (=कवलिंकार-आहार) मानता हूँ।"

"तो पोट्ठपाद! तेरा आत्मा यदि स्थूल०, रूपी, चतुर्महाभौतिक, कवलिंकार-आहार-वान् है; तो ऐसा होनेपर पोट्ठपाद! संज्ञा दूसरी ही होगी, आत्मा दूसरा ही होगा। सो इस कारणसे भी पोट्ठपाद! जानना चाहिये, कि संज्ञा दूसरी होगी, आत्मा दूसरा। पोट्ठपाद! रहने दो इसे—आत्मा स्थूल० है, (इस) के होनेहीसे इस पुरुषकी दूसरी ही संज्ञायें उत्पन्न होती हैं, दूसरी ही संज्ञायें निरुद्ध होती हैं। सो इस कारणसे भी पोट्ठपाद! जानना चाहिये, संज्ञा दूसरी होगी, आत्मा दूसरा।"

"भन्ते! मैं आत्माको समझता हूँ—मनोमय सब अंग-प्रत्यंगवाला, इन्द्रियसे अहीन।"

"ऐसा होनेपर भी पोट्ठपाद! तेरी संज्ञा दूसरी होगी और आत्मा दूसरा। सो इस कारणसे भी पोट्ठपाद! जानना चाहिये, (कि) संज्ञा दूसरी होगी, आत्मा दूसरा। पोट्ठपाद! सर्वांग-प्रत्यंग-युक्त इन्द्रियोंसे अहीन मनोमय आत्मा है, तभी इस पुरुषकी कोई कोई संज्ञायें उत्पन्न होती हैं, कोई कोई संज्ञायें निरुद्ध होती हैं। इस कारणसे भी पोट्ठपाद!०।"

"भन्ते! मैं आत्माको रूप-रहित संज्ञा-मय समझता हूँ।"

"यदि पोट्ठपाद! तेरा आत्मा रूप-रहित संज्ञामय है, तो ऐसा होनेपर पोट्ठ-पाद! (इस) कारण से जानना चाहिये, कि संज्ञा दूसरी होगी, और आत्मा दूसरा। पोट्ठ-पाद! रूप-रहित संज्ञा-मय आत्मा है ही, तभी इस पुरुषकी०।

" भन्ते ! क्या मैं यह जान सकता हूँ—कि संज्ञा पुरुषकी आत्मा है, या संज्ञा दूसरी (चीज) है, आत्मा दूसरी (चीज़) ?"

" पोट्ठपाद ! 'भिन्न-दृष्टि (=धारणा)-वाले, भिन्न-क्षान्ति (=चाह)-वाले, भिन्न रुचिवाले, भिन्न-आयोग-वाले, भिन्न-आचार्य रखनेवाले तेरे लिये—'संज्ञा पुरुषकी आत्मा है ०'—जानना मुश्किल है।"

" यदि भन्ते ! भिन्न-दृष्टि-वाले ० मेरे लिये-'संज्ञा पुरुषकी आत्मा है ०'-जानना मुश्किल है, तो फिर क्या भन्ते ! 'लोक नित्य (=शाश्वत) है', यही सच है, दूसरा (अनित्यता का विचार) निरर्थक (=मोघ) है ?"

" पोट्ठपाद !—'लोक नित्य है' यही सच है, और दूसरा (वाद) निरर्थक है—यह मैंने अ-व्याकृत (=कथनका विषय न होने से अ-कथित) किया है।"

" क्या भन्ते !–'लोक अ-शाश्वत (=अ-नित्य) है', यही सच और सब (वाद) फजूल है ? "

" यह भी पोट्ठ-पाद ! ' लोक अ-शाश्वत० ' मैंने अ-व्याकृत किया है।"

" क्या भन्ते !—'लोक अन्त-वान् है ' ० ? "

" यह भी पोट्ठ-पाद ! ० अव्याकृत ०।"

" क्या भन्ते !—'लोक-अन्-अन्त-वान् है ० ? ',

" यह भी पोट्ठ-पाद ! ० अ-व्याकृत ० । "

" ० 'वही जीव है, वही शरीर है' ० ? " " ० अ-व्याकृत ०।"

" ० ' जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है ' ० ? " " ० अ-व्याकृत ०।"

" ० ' मरनेके बाद तथागत फिर (पैदा) होता है ० ? " " ० अ-व्याकृत ०।"

" ० ' मरने के बाद फिर तथागत नहीं होता ' ० ? " " ० अ-व्याकृत ०।"

" ० ' ० होता है, और नहीं भी होता है ' ० ? " " ० अ-व्याकृत ० । "

" ० ' मरने के बाद तथागत न होता है, न नहीं होता है' ० ?" " ०अ-व्याकृत०।"

" किस लिये भन्ते ! भगवान् ने इसे अव्याकृत किया है ? "

" पोट्ठपाद ! न यह अर्थ-युक्त (=स-प्रयोजन) है, न धर्म-युक्त, न आदि-ब्रह्मचर्यके उपयुक्त, न निर्वेद (=उदासीनता) केलिये, न विराग केलिये, न निरोध (=क्लेश-विनाश) केलिये, न उपशम (= शांति) के लिये, न अभिज्ञाकेलिये, न संबोधि (=परमार्थ-ज्ञान) केलिये, न निर्वाण के लिये, है। इसलिये मैंने इसे अ-व्याकृत किया। "

" भन्ते ! भगवान् ने क्या क्या व्याकृत किया है ? "

" पोट्ठपाद ! ' यह दुःख है ' (इसे) मैंने व्याकृत किया है । ' यह दुःख-समुदय है ' मैंने व्याकृत किया है। ' यह दुःख-निरोध है ' ० । ' यह दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् (=मार्ग) है ' ० । "

" भन्ते ! भगवान्ने इसे क्यों व्याकृत किया है ?"

" पोट्ठपाद ! यह अर्थ-उपयोगी, धर्म-उपयोगी, आदि-ब्रह्म-चर्य-उपयोगी है । यह निर्वेदके लिये, विरागके लिये, निरोधके लिये उपशमके लिये, अभिज्ञाके लिये, संबोधके लिये, निर्वाणके लिये है। इसलिये मैंने इसे व्याकृत किया।"

"यह ऐसाही है भगवान् ! यह ऐसाही है, सुगत ! अब भन्ते ; भगवान् जिसका काल समझते हों (सो करें) ।"

तब भगवान् आसनसे उठकर चल दिये।

तब परिव्राजकोंने भगवान्के जानेके थोड़ीही देर बाद, पोट्ठपाद परिव्राजकको चारों ओरसे वाग्-वाणसे जर्जरित करना शुरू किया—"इसी प्रकार आप पोट्ठपाद, जो जो श्रमण गौतम कहता (रहा), उसीको अनुमोदन करते (रहे) 'यह ऐसाही है भगवान् ! यह ऐसाही है सुगत ।' हमतो श्रमण गौतमका कहा कोई धर्म एकसा नहीं देखते, कि—'लोक शाश्वत है', लोक-अशाश्वत है', 'लोक अन्तवान् है', 'लोक अन्-अन्त-वान् है', 'वही जीव है, वही शरीर है', 'दूसरा जीव है, दूसरा शरीर है', 'तथागत मरनेके बाद होता है', 'तथागत मरनेके बाद नहीं होता' 'तथागत मरनेके बाद होता है, नहीं भी होता है ।' 'तथागत मरनेके बाद न होता है, न नहीं होता है ।'

ऐसा कहनेपर पोट्ठपाद परिव्राजकने उन परिव्राजकोंको यह कहा—"मैं भी भो ! श्रमण गौतमका कहा कोई धर्म एकसा नहीं देखता—'लोक शाश्वत है० । बल्कि श्रमण गौतम 'भूत=तथ्य (=यथार्थ) धर्ममें स्थित हो, धर्म-नियामक-प्रतिपद् (=मार्ग, ज्ञान) को कहता है । (तो फिर) मेरे जैसा विज्ञ, श्रमण गौतम के सुभाषितको सुभाषितके तौरपर कैसे अनुमोदन न करेगा ?"

तब दो तीन दिनके बीतनेपर, चित्र हत्थि-सारिपुत्त और पोट्ठपाद परिव्राजक जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर चित्त हत्थि-सारिपुत्त भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठा । पोट्ठपाद परिव्राजक भगवान्के साथ संमोदन कर···, एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे पोट्ठपाद परिव्राजकने भगवान्को कहा—

"उस समय भन्ते ! भगवान्के चले जानेके थोड़ीही देर बाद (परिव्राजक) मुझे चारों ओरसे·· जर्जरित करने लगे—'इसी प्रकार आप पोट्ठपाद !०।० मेरे जैसा विज्ञ० सुभाषितको० कैसे अनुमोदन नहीं करेगा ?"

"पोट्ठपाद ! सभी यह परिव्राजक अन्धे=चक्षु-रहित हैं" । तू ही उनमें एक चक्षु-मान् है । पोट्ठपाद ! मैंने (कितने ही) धर्म एकांशिक कहे हैं = प्रज्ञापित किये हैं । कितनेही धर्म अन्-एकांशिक भी कहे हैं० । पोट्ठ-पाद ! मैंने कौनसे धर्म अन्-एकांशिक उपदेश किये हैं० ? 'लोक शाश्वत है' इसको मैंने अनैकांशिक धर्म कहा है० । 'लोक अ-शाश्वत है' ०अनैकांशिक धर्म०।। 'तथागत मरनेके बाद न होता है, न नहीं होता है' मैंने अनैकांशिक धर्म उपदेश किया है० । यह पोट्ठपाद ! न अर्थ-उपयोगी हैं, न धर्म-उपयोगी हैं, न आदि-ब्रह्मचर्य-उपयोगी हैं । न निर्वेदके लिये०, न वैराग्यके लिये ० । इसलिये इन्हें मैंने अन्-ऐकांशिक उपदेश किया०

"पोट्ठपाद ! मैंने कौनसे एक-अंशिक धर्म कहे हैं=प्रज्ञापित किये हैं ? 'यह दुःख है' ०।० यह दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् है' इसे पोट्ठ-पाद ! मैंने एकांशिक धर्म बतलाया है० । यह पोट्ठपाद ! अर्थ-उपयोगी है० । इसलिये मैंने उन्हें एकांशिक धर्म कहा है = प्रज्ञा-पित किया है ।"

"पोट्ठपाद ! कोई कोई श्रमण ब्राह्मण ऐसे वाद (=मत)-वाले=ऐसी दृष्टिवाले

हैं—'मरनेके बाद आत्मा अरोग, एकान्त-सुखी (=केवल सुखी) होता है'। उनसे मैं यह कहता हूँ—'सच-मुच तुम सब आयुष्मान् इस वादवाले=इस दृष्टिवाले हो—'मरने के बाद आत्मा अ-रोग एकान्त-सुखी होता है' ? वह जब ऐसा पूछनेपर मुझे 'हाँ' कहते हैं। तब उनको मैं यह कहता हूँ—'क्या तुम सब आयुष्मान् एकान्त-सुखवाले लोकको जानते, देखते, विहार करते हो' ? ऐसा पूछनेपर 'नहीं' कहते हैं। उनको मैं यह कहता हूँ—'क्या तुम सब आयुष्मान् एक रात या एक दिन, आधी रात या आधा दिन एकान्त-सुखवाले आत्माको जानते हो' ? ऐसा पूछनेपर 'नहीं' कहते हैं। उनको मैं यह कहता हूँ—'क्या आप सब आयुष्मान् जानते हैं, यही मार्ग = यही प्रतिपद् एकान्त-सुखवाले लोकके साक्षात्कारके लिये है ? ऐसा पूछनेपर 'नहीं' कहते हैं। उनको मैं यह पूछता हूँ,—क्या आप सब आयुष्मान् जो वह देवता एकान्त-सुखवाले लोकमें उत्पन्न हैं, उनके भाषित शब्दको सुनते हैं एकान्त-सुखवाले लोकके साक्षात्कारके लिये—'मार्ष ! सु-प्रतिपन्न (=ठीकसे पहुँचे) हो; मार्ष ! ऋजु-प्रतिपन्न (=अ-कुटिलतासे प्राप्त) हो, हम भी मार्ष ! ऐसे ही प्रतिपन्न (=मार्गारूढ) हो, एकान्त-सुख-वाले लोकमें उत्पन्न हुये हैं ?" ऐसा पूछनेपर 'नहीं' कहते हैं। तो क्या मानते हो पोट्ट-पाद ! क्या ऐसा होनेसे उन श्रमण-ब्राह्मणोंका कथन प्रमाण (=प्रति-हरण)-रहित नहीं होता ?"

"अवश्य, भन्ते ! ऐसा होनेपर उन श्रमण ब्राह्मणोंका कथन प्रतिहरण-रहित होता है।"

"जैसे कि पोट्ठपाद ! कोई पुरुष ऐसा कहे—इस जनपद (=देश) में जो जनपद-कल्याणी (=देशकी सुंदरतम स्त्री) है, मैं उसको चाहता हूँ, उसकी कामना करता हूँ। उसको यदि (लोग)ऐसा कहें—'हे पुरुष जिस जनपद-कल्याणीको तू चाहता है=कामना करता है, जानता है, कि वह क्षत्रियाणी है, ब्राह्मणी है, वैश्य-स्त्री है, या शूद्री है' ? ऐसा पूछने-पर 'नहीं' बोले, तब उसको यह कहें—'हे पुरुष ! जिस जनपद-कल्याणीको तू चाहता है०, जानता है० (वह) अमुक-नाम-वाली अमुक-गोत्र-वाली है, लम्बी, छोटी या मझोली; काली, श्यामा या, मद्गुर (=मंगुर मछली) के वर्णकी है; इस ग्राम, निगम या नगरमें (=रहती) है ?' यह पूछनेपर 'नहीं' कहे। तब उसको यह कहें—'हे पुरुष जिसको तू नहीं जानता, जिसको तूने नहीं देखा; उसको तू चाहता है, उसकी तू कामना करता है ?' ऐसा पूछनेपर 'हाँ' कहे। तो क्या मानते हो पोट्ट-पाद ! क्या ऐसा होनेपर उस पुरुषका भाषण प्रतिहरण-रहित नहीं हो जाता ?"

"अवश्य भन्ते ! ऐसा होनेपर उस पुरुषका भाषण प्रतिहरण-रहित हो जाता है।"

"इसी प्रकार पोट्ठपाद ! जो वह श्रमण ब्राह्मण इस तरह वाद वाले=दृष्टि वाले हैं—'मरनेके बाद आत्मा अ-रोग एकान्त-सुखी होता है' उनको मैं यह कहता हूँ—सचमुच तुम सब आयुष्मान्०।०। तो...पोट्ट-पाद ! क्या० उन श्रमण-ब्राह्मणोंका कथन प्रतिहरण-रहित नहीं है ?"

"अवश्य ! भन्ते०।"

"जैसे पोट्ठपाद ! कोई पुरुष चौराहे (=चातुर्महापथ) पर, महलपर चढ़नेके लिये सीढ़ी बनावे। तब उसको (लोग) यह कहें—'हे पुरुष ! जिस (प्रासाद) के लिये तुम सीढ़ी

बना रहे हो, जानते हो वह प्रासाद पूर्व दिशामें, दक्षिण दिशामें, पश्चिम दिशामें, (या) उत्तर दिशामें, है ? ऊँचा, नीचा, (या) मझोला है ?' ऐसा पूछनेपर 'नहीं' कहे। उसको यह कहे—'हे पुरुष ! जिसको तुम नहीं जानते, तुम ने नहीं देखा, उस प्रासादपर चढ़नेके लिये सीढ़ी बना रहे हो ?' ऐसा पूछनेपर 'हाँ' कहे। तो क्या मानते हो पोट्ठ-पाद ! क्या ऐसा होनेपर उस पुरुषका भाषण प्रमाण-रहित नहीं हो जाता ?"

"अवश्य भन्ते !०"···

इसी प्रकार पोट्ठपाद ! जो वह श्रमण ब्राह्मण० "मरनेके बाद आत्मा अ-रोग एकान्त-सुखी होता है" ०।०।

"अवश्य भन्ते !०"

"पोट्ठपाद ! तीन आत्म-प्रतिलाभ (=शरीर-ग्रहण) हैं, स्थूल (=औदारिक) आत्म-प्रतिलाभ, मनोमय आत्म-प्रतिलाभ, अ-रूप आत्म-प्रतिलाभ। पोट्ठपाद ! स्थूल आत्म-प्रतिलाभ कौन है ? रूपवान् चार महाभूतोंसे बना कवलिंकार (=ग्रास-ग्रास करके) भक्ष्य वाला, यह स्थूल आत्म-प्रतिलाभ है। मनोमय आत्म-प्रतिलाभ कौन है ? रूपी (=रूप-वान्, साकार) मनोमय सर्व-आहार सर्वअंग-प्रत्यङ्ग-वाला, इन्द्रियोंसे अ-हीन, यह मनो-मय आत्म-प्रतिलाभ है। अ-रूप (= रूप-रहित=निराकार) आत्म-प्रतिलाभ कौन है ? अ-रूपी संज्ञामय, यह अ-रूप आत्मप्रतिलाभ (=शरीर-ग्रहण) है। पोट्ठपाद ! मैं स्थूल शरीर-परिग्रहणसे छूटनेके लिये धर्म उपदेश करता हूँ, इस तरह मार्गारूढ हुओंके 'संक्लेश (= क्लेश मल)-उत्पादक धर्म छूट जायेंगे। 'व्यवदानीय धर्म, प्रज्ञाकी परि-पूर्णता, विपुलताको प्राप्त होंगे, (और वह) इसी जन्ममें स्वयं जान कर साक्षात् कर, प्राप्त कर विहरेगा। शायद पोट्ठपाद ! तुझे (यह विचार) हो—'संक्लेशिक धर्म छूट जायेंगे०, इसी जन्ममें० प्राप्त कर विहरेगा, (किन्तु) वह विहरना कठिन (=दुःख) होगा।' पोट्ठपाद ! ऐसा नहीं समझना चाहिये,०। उसे प्रामोद्य (=प्रमोद) भी होगा, प्रीति, प्रश्रब्धि, स्मृति, सम्प्र-जन्य और सुख-विहार भी होगा।"

"मनोमय शरीर-परिग्रहके परित्यागके लिये भी पोट्ठपाद ! मैं धर्म उपदेश करता हूँ। जिससे कि मार्गारूढ होनेवालोंके संक्लेशिक धर्म छूट जायेंगे०।०। ०सुख विहार भी होगा।"

"अ-रूप (= निराकार) शरीर-परिग्रहके परित्यागके लिये भी पोट्ठपाद ! मैं धर्म उपदेश करता हूँ।०। ०सुखविहार भी होगा।"

"दूसरे लोग यदि पोट्ठपाद ! हमें पूछें—'क्या है आवुसो ! यह स्थूल शरीर-परिग्रह (= आत्म-प्रतिलाभ), जिसके प्रहाण (= परित्याग) के लिये तुम धर्म-उपदेश करते हो; और जिस प्रकार मार्गारूढ हो०, इसी जन्ममें स्वयं जानकर० विहरोगे ?' उनके ऐसा पूछने पर हम उत्तर देंगे—'यह है आवुसो ! वह स्थूल शरीर-परिग्रह, जिसके प्रहाणके लिये हम धर्म-उपदेश करते हैं।०।

"दूसरे लोग यदि पोट्ठपाद हमें पूछें—क्या है आवुसो ! मनोमय शरीर-परिग्रह०। ०विहरोगे ?

१. १२ अकुशल चित्तोत्पाद धर्म। २. शमथ, विपश्यना।

"दूसरे लोग यदि पोट्ठपाद ! हमें पूछें—क्या है आवुसो ! अ-रूप शरीरग्रह० ? ०।०।

'जैसे पोट्ठपाद ! कोई पुरुष प्रासादपर चढ़नेके लिये उसी प्रासादके नीचे सीढ़ी बनावे। उसको यह पूछें—'हे पुरुष ! जिस प्रासादपर चढ़नेके लिये तुम सीढ़ी बनाते हो; जानते हो, वह प्रासाद पूर्व दिशामें है, या दक्षिण ०; ऊँचा है या नीचा या मझोला ?।' वह यदि कहे—यह है आवुसो ! वह प्रासाद, जिसपर चढ़नेको, उसीके नीचे मैं सीढ़ी बनाता हूँ।' तो क्या मानते हो पोट्ठपाद ! ऐसा होनेपर क्या उस पुरुषका भाषण प्रामाणिक होगा ?"

"अवश्य, भन्ते ! ऐसा होनेपर उस पुरुषका भाषण प्रामाणिक होगा।"

"इसी प्रकार पोट्ठपाद ! यदि दूसरे हमें पूछें—आवुसो ! यह स्थूल शरीर-परिग्रह क्या है ०।०।

"० आवुसो ! यह मनोमय शरीर-परिग्रह क्या है ० ? ०।

"० आवुसो ! यह अ-रूप शरीर-परिग्रह क्या है, जिसके प्रहाण (= परित्याग) के लिये, तुम धर्म-उपदेश करते हो, ० ; ० ? उनके ऐसा पूछनेपर हम यह उत्तर देंगे—'यह (पूर्वोक्त) है आवुसो ! यह अ-रूप शरीर-परिग्रह ०।० तो क्या मानते हो पोट्ठपाद ! ऐसा होनेपर क्या उस पुरुषका भाषण प्रामाणिक होता है ?"

"अवश्य भन्ते ! ०"

ऐसा कहनेपर चित्त हत्थिसारि-पुत्तने भगवान्‌को कहा—"भन्ते जिस समय स्थूल शरीर-परिग्रह होता है, उस समय मनोमय शरीर-परिग्रह तथा अ-रूप-शरीर-परिग्रह मोघ (= मिथ्या) होते हैं, स्थूल शरीर-परिग्रह ही उस समय उसके लिये सच्चा होता है। जिस समय भन्ते ! मनोमय शरीर-परिग्रह होता है, उस समय स्थूल शरीर-परिग्रह तथा अ-रूप-शरीर-परिग्रह मिथ्या होते हैं, मनोमय शरीर-परिग्रह ही उस समय उसके लिये सच्चा होता है। जिस समय भन्ते ! अ-रूप शरीर-परिग्रह होता है, उस समय स्थूल शरीर-परिग्रह तथा मनोमय शरीर-परिग्रह मिथ्या होते हैं, अ-रूप शरीर-परिग्रह ही उस समय उसके लिये सच्चा होता है।"

"जिस समय चित्त ! स्थूल शरीर-परिग्रह होता है, उस समय 'मनोमय शरीर-परिग्रह है' नहीं समझा जाता। न 'अ-रूप शरीर-परिग्रह है' यही समझा जाता है। 'स्थूल शरीर-परिग्रह है' यही समझा जाता है। जिस समय चित्त ! मनोमय शरीर-परिग्रह०। जिस समय अ-रूप शरीर-परिग्रह ०। यदि चित्त ! तुझे यह पूछें—तू भूत-कालमें था, नहीं तो तू न था ? भविष्य-कालमें तू होगा (= रहेगा) ? नहीं तो तू न होगा ? इस समय तू है ? नहीं तो तू नहीं है ?"

"ऐसा पूछने पर भन्ते ! मैं यह उत्तर दूँगा—'मैं भूत कालमें था, (मैं नहीं तो न) था। भविष्य कालमें मैं होऊँगा, नहीं तो मैं न होऊँगा। इस समय मैं हूँ, नहीं तो मैं नहीं हूँ'। ऐसा पूछने पर मैं भन्ते ! इस प्रकार उत्तर दूँगा।"

"यदि चित्त ! तुझे यह पूछें—जो तेरा भूतकालका शरीर-परिग्रह था, वही तेरा शरीर-परिग्रह सत्य है, भविष्यका और वर्तमानका (क्या) मिथ्या है ? जो तेरा भविष्यमें होनेवाला शरीर-परिग्रह है, वही ० सच्चा है, भूतका और वर्तमानका (क्या) मिथ्या है ? जो इस

समय तेरा वर्तमान शरीर-परिग्रह है, वही तेरा शरीर-परिग्रह सच्चा है, भूतका और भविष्यका (क्या) मिथ्या है ? ऐसा पूछनेपर चित्त तू कैसे उत्तर देगा ?"

"यदि भन्ते ! मुझे ऐसा पूछेंगे 'जो तेरा भूतकालका शरीर-परिग्रह था० ।' ऐसा पूछनेपर भन्ते ! मैं इस प्रकार उत्तर दूँगा—'जो मेरा भूतका शरीर-परिग्रह था, वही शरीर-परिग्रह मेरा उस समय सच्चा था, भविष्य और वर्तमानके० असत्य थे । जो मेरा भविष्यमें अन्-आगत शरीर-परिग्रह होगा, वही शरीर-परिग्रह मेरा उस समय सच्चा होगा; भूत और वर्तमानके शरीर-परिग्रह असत्य होंगे । जो मेरा इस समय वर्तमान शरीर-परिग्रह है, वही शरीर-परिग्रह मेरा (इस समय) सच्चा है, भूत और भविष्यके शरीर-परिग्रह अ-सत्य हैं ।' ऐसा पूछनेपर भन्ते ! मैं यह उत्तर दूँगा ।"

"ऐसे ही चित्त ! जिस समय स्थूल शरीर-परिग्रह होता है, उस समय मनोमय शरीर परिग्रह नहीं कहा जाता, न उस समय अ-रूप शरीर-परिग्रह कहा जाता है; स्थूल शरीर-परिग्रह ही उस समय कहा जाता है । जिस समय चित्त ! मनोमय शरीर-परिग्रह० । जिस समय चित्त ! अरूप शरीर-परिग्रह होता है, उस समय 'स्थूल शरीर-परिग्रह है' नहीं कहा जाता; न 'मनोमय शरीर-परिग्रह है' कहा जाता है । 'अरूप शरीर-परिग्रह है' यही कहा जाता है । जैसे चित्त ! गायसे दूध, दूधसे दही, दहीसे नवनीत (=नैनू), नवनीतसे घी (=सर्पिष्), सर्पिषसे सर्पिष्-मंड (=घीका सार) होता है । जिस समय दूध होता है, उस समय न दही होता है, न नवनीत०, न सर्पिष्०, न सर्पिष्-मंड; दूध ही उस समय उसका नाम होता है । जिस समय दही० । ०नवनीत० । ०सर्पिष० । सर्पिष्-मंड० । ऐसे ही चित्त ! जिस समय स्थूल शरीर-परिग्रह होता है० । ०मनोमय० । ०अ-रूप० । यह चित्त ! लौकिक संज्ञायें हैं = लौकिक निरुक्तियाँ हैं=लौकिक व्यवहार हैं = लौकिक प्रज्ञप्तियाँ हैं, तथागत इनसे बिना लिप्त हुये, व्यवहार करते हैं ।"

ऐसा कहनेपर पोट्ठपाद परिव्राजकने भगवान् को कहा—

"आश्चर्य ! भन्ते !! आश्चर्य ! भन्ते !! ० आजसे आप गौतम मुझे अंजलि-बद्ध उपासक धारण करें ।"

चित्त हत्थिसारि-पुत्त (=चित्त हस्तिसारि-पुत्र) ने भगवान्को कहा—

"आश्चर्य ! भन्ते !! आश्चर्य ! भन्ते !! ० । भन्ते ! मैं भगवान्का शरणागत हूँ, धर्म और भिक्षु-संघका भी; भन्ते ! भगवान्के पास मुझे प्रव्रज्या मिले, उपसंपदा मिले ।"

चित्त हत्थि-सारि-पुत्त (=चित्र हस्ति-सारि-पुत्त) ने भगवान्के पास प्रव्रज्या पाई, उपसंपदा पाई । आयुष्मान् चित्त हत्थिसारिपुत्त उपसम्पदा प्राप्त करनेके थोड़े ही दिन बाद; एकाकी,-एकांतवासी, प्रमाद-रहित उद्योगी, आत्म-संयमी हो, विहार करते हुये, जल्दी ही जिसके लिये कुल-पुत्र अच्छी तरह घरसे बेघर हो-प्रव्रजित होते हैं, उस अनुपम ब्रह्मचर्य-फल-को, इसी जन्ममें जानकर=साक्षात्कर=पाकर, विहार करने लगे । 'जन्म क्षीण होगया, ब्रह्मचर्य-वास हो लिया, करना था, सो कर लिया, और कुछ करनेको नहीं रहा ।' यह जान गये । आयुष्मान् चित्त हत्थि-सारि-पुत्त अर्हतोंमेंसे एक हुये ।

× × × ×

तृतीय-खण्ड

आयु-वर्ष ४९-५५

(ई. पू. ५१४-५०८)

तृतीय-खंड

(१)
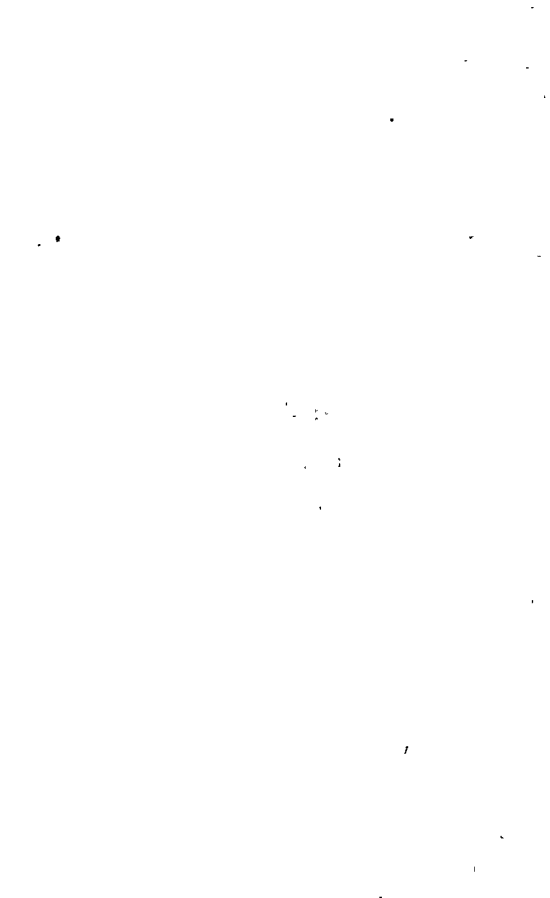
तेविज्ज-सुत्त (ई. पू. ५१४)

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् [2]कोसल देशमें पाँचसौ भिक्षुओंके महाभिक्षु-संघके साथ चारिका करते, जहाँ **मनसाकट** नामक कोसलोंका ब्राह्मण-ग्राम था, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् मनसाकटमें, मनसाकटके उत्तर तरफ **अचिरवती** नदीके तीर आम्रवनमें विहार करते थे।

उस समय बहुतसे अभिज्ञात (=प्रसिद्ध) अभिज्ञात ब्राह्मण महाशाल (=महा-धनिक) मनसाकटमें निवास कर रहे थे, जैसे कि—[3]**चंकि** ब्राह्मण, **तारुक्ख** ब्राह्मण, **पोक्खरसाति** ब्राह्मण, **जानुस्सोणि** ब्राह्मण, **तोदेय्य** ब्राह्मण और दूसरे भी अभिज्ञात अभिज्ञात ब्राह्मण महाशाल।

तब चहलकदमीके लिए टहलते हुये, विचरते हुये, वशिष्ट और **भारद्वाज** में रास्तेमें बात उत्पन्न हुई। **वाशिष्ट** माणवकने कहा—

"यही मार्ग (वैसा करनेवालेकी) ब्रह्म-सलोकताके लिए जल्दी पहुँचानेवाला, सीधा ले जानेवाला है; जिसे कि यह ब्राह्मण पोष्करसातिने कहा है।"

भारद्वाज माणवक ने कहा—"यही मार्ग० है, जिसे कि ब्राह्मण तारुक्षने कहा है।"

वाशिष्ट माणवक भारद्वाज माणवकको नहीं समझा सका, न भारद्वाज माणवक वाशिष्ट माणवकको (ही) समझा सका। तब वाशिष्ट माणवकने भारद्वाज माणवकको कहा—

"यह भारद्वाज! शाक्य-कुलसे प्रव्रजित शाक्य-पुत्र श्रमण गौतम मनसाकटमें, मनसाकटके उत्तर अचिरवती (=रापती) नदीके तीर, आम्रवनमें विहा करते हैं। उन भगवान् गौतमके लिए ऐसा मंगल कीर्ति शब्द फैला हुआ है—यह भगवान्० बुद्ध भगवान् हैं। चलो भारद्वाज! जहाँ श्रमण गौतम हैं, वहाँ चलें। चलकर इस बातको श्रमण गौतमसे पूछें। जैसा हमको श्रमण गौतम उत्तर देंगे, वैसा हम धारण करेंगे।"

"अच्छा भो!" कह **भारद्वाज** माणवकने…उत्तर दिया।

तब वाशिष्ट और भारद्वाज (दोनों) माणवक जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये; जाकर भगवान्के साथ संमोदनकर…(कुशल-प्रश्न पूछ) एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए वाशिष्ट माणवकने भगवान्से कहा—

---

१ दी. नि. १. १३. । २ उत्तरप्रदेशके फैजाबाद, गोंडा, बहराइच, सुल्तानपुर, बारांबंकी, और बस्ती के जिले, तथा गोरखपुर जिलेका कितना ही भाग। ३ चंकि ओपसाद-निवासी, तारुक्ख इच्छानंगल-निवासी, पोक्खरसाति उक्कट्ठा-वासी, जानुस्सोणि श्रावस्ती-निवासी, तोदेय्य तुदीगाम-निवासी।

" हे गौतम !० रास्तेमें हमलोगोंमें यह बात उत्पन्न हुई० । यहाँ हे गौतम ! विग्रह है, विवाद है, नानावाद है ।"

" क्या वासिष्ट ! तू ऐसा कहता है—' यही मार्ग० है, जिसे कि ब्राह्मण पौष्कर-सातिने कहा है ' ? और भारद्वाज माणवक यह कहता है—०जिसे कि ब्राह्मण तारुक्षने कहा है । तब वासिष्ट ! किस विषय में विग्रह० है ?"

"हे गौतम ! मार्ग-अमार्गके संबन्धमें ऐतरेय ब्राह्मण तैत्तिरीय ब्राह्मण, छन्दोग ब्राह्मण, छन्दावा-ब्राह्मण, ब्रह्मचर्य-ब्राह्मण अन्य अन्य ब्राह्मण नाना मार्ग बतलाते हैं । तब भी यह (वैसा करनेवालेको) ब्रह्माकी सलोकता को पहुँचाते हैं । जैसे हे गौतम ! ग्राम या निगमके अन्दूरमें बहुतसे नाना-मार्ग होते हैं, तो भी वे सभी ग्राममें ही जानेवाले होते हैं । ऐसे ही हे गौतम ! ०ब्राह्मण नाना मार्ग बतलाते हैं, ०।०ब्रह्माकी सलोकताको पहुँचाते हैं ।"

"वासिष्ट ! 'पहुँचते हैं' कहते हो ?" " 'पहुँचते हैं' कहता हूँ !"

" 'वासिष्ट ! पहुँचाते हैं, कहते हो ?" "पहुँचाते हैं' ० ।"

" वासिष्ट ! पहुँचाते हैं, कहते हो ?" "पहुँचाते हैं ० ।"

" वासिष्ट ! 'त्रैविद्य ब्राह्मणोंमें एक भी ब्राह्मण है, जिसने ब्रह्माको अपनी आँखसे देखा हो ?"

" नहीं हे गौतम !"

" क्या वासिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मणोंका एक भी आचार्य है, जिसने ब्रह्माको अपनी आँखसे देखा हो ?"

" नहीं हे गौतम !"

" वासिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मणोंका एक भी आचार्य-प्राचार्य है० ?" "नहीं हे गौतम !"

" क्या वासिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मणोंके आचार्यकी सातवीं पीढ़ी तकमें कोई है ० ?"

" नहीं हे गौतम !"

" क्या वासिष्ट ! जो त्रैविद्यब्राह्मणोंके पूर्वज, मन्त्रोंके कर्ता, मन्त्रोंके प्रवक्ता ऋषि (थे)—जिनके कि गीत, प्रोक्त, समीहित पुराने मंत्र-पदको आजकल त्रैविद्य ब्राह्मण अनुगान, अनुभाषण, करते हैं, भाषितको अनुभाषण करते हैं, बाँचेको अनु-वाचन करते हैं, जैसे कि अट्ठक, वामक, वामदेव, विश्वामित्र, यमदग्नि, अङ्गिरा, भरद्वाज, वशिष्ट, कश्यप, भृगु । उन्होंने भी (क्या) यह कहा—जहाँ ब्रह्मा है, जिसके साथ ब्रह्मा है, जिस विषयमें ब्रह्मा है, हम यह जानते हैं, हम यह देखते हैं !"

" नहीं हे गौतम !"

" इस प्रकार वासिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मणोंमें एक ब्राह्मण भी नहीं, जिसने ब्रह्माको अपनी आँखसे देखाहो । ०एक आचार्य भी ० । एक आचार्य-प्राचार्य भी ० । ० सातवीं पीढ़ी तकके आचार्योंमें भी० । जो त्रैविद्य ब्राह्मणोंके पूर्ववाले ऋषि ० । और त्रैविद्य ब्राह्मण ऐसा कहते हैं !'—'जिसको न जानते हैं, जिसको न देखते हैं, उसकी स-लोकताकेलिये हम मार्ग उपदेश करते हैं' । यही मार्ग ब्रह्म-सलोकताके लिये सदरी-पहुँचानेवाला, है !! ' तो क्या मानते हो, वासिष्ट ! क्या ऐसा होनेपर त्रैविद्य ब्राह्मणोंका 'कथन अ-प्रामाणिकताको नहीं प्राप्त हो जाता है ?"

---

१. तीनों वेदोंके ज्ञाता ।

"अवश्य, हे गौतम ! ऐसा होनेपर त्रैविद्य ब्राह्मणोंका कथन अ-प्रामाणिकताको प्राप्त होजाता है।"

"अहो ! वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण जिसको न जानते हैं, जिसको न देखते हैं, उसकी सलोकताके मार्गका उपदेश करते हैं !!—यही० सीधा मार्ग है। यह उचित नहीं है। जैसे वाशिष्ट ! अन्धोंकी पाँती एक दूसरेसे जुड़ी; पहिलेवाला भी नहीं देखता, बीचवाला भी नहीं देखता, पीछेवाला भी नहीं देखता। ऐसेही वाशिष्ट ! अन्ध-वेर्णाके समान ही त्रैविद्य ब्राह्मणोंका कथन है, पहिलेवालेने भी नहीं देखा०। (अतः) उन त्रैविद्य ब्राह्मणोंका कथन प्रलापही ठहरता है, [1]व्यर्थ०, रिक्त०=तुच्छ०। तो······वाशिष्ट ! क्या त्रैविद्य ब्राह्मण चन्द्र सूर्यको तथा दूसरे बहुतसे जनोंको, देखते हैं, कि कहाँसे वह उगते हैं, कहाँ डूबते हैं, जो कि (उनकी) प्रार्थना करते हैं, स्तुति करते हैं, हाथ जोड़कर नमस्कार करते घूमते हैं ?"

"हाँ, हे गौतम ! त्रैविद्य ब्राह्मण चन्द्र सूर्य तथा दूसरे बहुत जनोंको देखते हैं।०"

"तो क्या मानते हो, वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण जिन चन्द्रसूर्य या दूसरे बहुत जनोंको, देखते हैं, कहाँसे०। क्या त्रैविद्य ब्राह्मण चन्द्र सूर्यकी सलोकता (=सहव्यता= एक स्थान निवास) के लिये मार्ग का उपदेशकर सकते हैं—'यही वैसा करनेवाले को, चन्द्र-सूर्यकी सलोकताके लिये० सीधा मार्ग है ?"

"नहीं हे गौतम" !

"इस प्रकार वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण जिनको देखते हैं, ०प्रार्थना करते हैं०। उन चन्द्र-सूर्यकी सलोकताके लिये भी मार्गका उपदेश नहीं कर सकते, कि० 'यही सीधा मार्ग है'; तो फिर ब्रह्माको—जिसे न त्रैविद्य ब्राह्मणोंने अपनी आँखोसे देखा, ० ० न त्रैविद्यब्राह्मणोंके पूर्व-वाले ऋषियोंने०। तो क्या वाशिष्ट ! ऐसा होनेपर त्रैविद्य ब्राह्मणोंका कथन अ-प्रामाणिक (नहीं) (=अप्पाटिहीरक) ठहरता ?"

"अवश्य, हे गौतम !"

"अच्छा वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण जिसे न जानते हैं, जिसे न देखते हैं, उसकी सलोकताके लिये मार्ग उपदेश करते हैं—०यही सीधा मार्ग है'। ०यह उचित नहीं। जैसे कि वाशिष्ट ! पुरुष ऐसा कहे—इस जनपद (=देश) में जो जनपद-कल्याणी (=देशकी सुंदरतम स्त्री) है, मैं उसको चाहता हूँ०'। तब उसको यह पूछें—हे पुरुष ! जिसको तू नहीं जानता, जिसको तूने नहीं देखा, उसको तू चाहता है, उसकी तू कामना करता है' ? ऐसा पूछनेपर 'हाँ' कहे। तो······वाशिष्ट ! क्या ऐसा होनेपर उस पुरुष का भाषण अ-प्रामाणिक नहीं ठहरता ?"

"अवश्यक हे गौतम !।"

"ऐसे ही हो वाशिष्ट ! तैविद्य ब्राह्मणोंने ब्रह्माको अपनी आँखसे नहीं देखा०। अहो ! यह त्रैविद्य ब्राह्मण यह कहते हैं—जिसे हम नहीं जानते० उसकी सलोकता के लिये मार्ग उपदेश करते हैं०। तो क्या वाशिष्ट ! ०भाषण अ-प्रामाणिक नहीं होता ?"

"अवश्य हे गौतम !०"

"साधु, वाशिष्ट ! अहो ! वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण जिसको नहीं जानते०

१. पृष्ठ १९६।

" सो किस कारण ?"

" हे गौतम ! यह पुरुष मनसाकटमें उत्पन्न और बढ़ा है, उसको मनसाकटके सभी मार्ग सुविदित हैं । "

"वाशिष्ट ! मनसाकटमें उत्पन्न और बढ़े हुए उस पुरुषको मनसाकटका मार्ग पूछनेपर देरी या जड़ता हो सकती है; किन्तु तथागतको ब्रह्मलोक या ब्रह्मलोक जानेवाला मार्ग पूछने पर, देरी या जड़ता नहीं हो सकती । वाशिष्ट ! मैं ब्रह्माको जानता हूँ, ब्रह्मलोकको और ब्रह्मलोक-गामिनी-प्रतिपद् (=ब्रह्मलोकके मार्ग) को भी; और जैसे मार्गारूढ़ होनेसे ब्रह्मलोकमें उत्पन्न होता है, उसे भी जानता हूँ । "

ऐसा कहनेपर वाशिष्ट माणवकने भगवान्‌को कहा—

" हे गौतम ! मैंने यह सुना है, श्रमण गौतम ब्रह्माओंकी सलोकताका मार्ग उपदेश करता है । अच्छा हो आप गौतम हमें ब्रह्माकी सलोकताके मार्ग (का) उपदेश करें । हे गौतम ! आप (इस) ब्राह्मण-संतानका उद्धार करें । "

" तो वाशिष्ट ! सुनो, अच्छी प्रकार मनमें (धारण) करो, कहता हूँ । "

" अच्छा भो ! " वाशिष्ट माणवकने भगवान्‌को कहा । भगवान्‌ने कहा :—

" वाशिष्ट ! यहाँ लोकमें तथागत उत्पन्न होते हैं । ०[1] इस प्रकार भिक्षु शरीरके चीवर, और पेटके भोजनसे सन्तुष्ट होता है । इस प्रकार वाशिष्ट ! भिक्षु शील-संपन्न होता है । [2]० वह अपनेको इन पाँच नीवरणोंसे मुक्त देख, प्रमुदित होता है । प्रमुदित प्रीति प्राप्त करता है, प्रीतिमान्‌का शरीर स्थिर शांत होता है । प्रश्रब्ध (=शांत) शरीरवाला सुख अनुभव करता है, सुखितका चित्त एकाग्र होता है ।

" वह मित्र-भाव युक्त चित्तसे एक दिशाको पूर्ण करके विहरता है, ० दूसरी दिशा०, ० तीसरी दिशा०, ० चौथी दिशा० इसी प्रकार ऊपर नीचे आड़े-बेड़े सम्पूर्ण मनसे, सबके लिए सारेही लोकको मित्र-भाव-युक्त, विपुल, महान् , अ-प्रमाण, वैर-रहित, द्रोह-रहित चित्तसे स्पर्श करता विहरता है । जैसे वाशिष्ट ! बलवान् शंख-ध्मा (=शंख बजानेवाला) थोड़ी ही मिहनत से चारों दिशोंको गुंजा देता है । वाशिष्ट ! इसी प्रकार मित्र-भावनासे भवित, चित्तकी विमुक्ति (=छूटने) से जितने प्रमाणमें काम किया है, वह वहीं अवशेष= ग्रसम नहीं होता । यह भी वाशिष्ट ! ब्रह्माओंकी सलोकता मार्ग है ।

" और फिर वाशिष्ट ! करुणा-युक्त चित्तसे एक दिशाको० । मुदिता-युक्त चित्तसे० । उपेक्षा-युक्त चित्तसे० सारेही लोकको उपेक्षा-युक्त विपुल, महान् , अ-प्रमाण, वैर-रहित, द्रोह-रहित चित्तसे स्पर्श करके विहरता है । जैसे वाशिष्ट ! बलवान् शंखध्मा ० । वाशिष्ट ! इसी प्रकार उपेक्षासे भावित चित्तकी विमुक्तिसे जितने प्रमाणमें काम किया गया है, वहीं अवशेष= ग्रसम नहीं होता । यह भी वाशिष्ट ! ब्रह्माओंकी सलोकताका मार्ग है ।

"तो···वाशिष्ट ! इस प्रकारके विहार वाला भिक्षु, स-परिग्रह है, या अ-परिग्रह ?"
"अ-परिग्रह है गौतम !"

"स वैर-चित्त या अ-वैर-चित्त ?" "अ-वैर-चित्त है गौतम !"

---

१. दे. १६०-६१, १९०-९१ । २. १६२ ।

"स-व्यापाद-चित्त है या अ-व्यापाद-चित्त ?" "अ-व्यापाद-चित्त हे गौतम !"
"संक्लिष्ट (=मलिन)-चित्त या अ-संक्लिष्ट-चित्त ?" "अ-संक्लिष्ट चित्त हे गौतम !"

"वश-वर्ती (=जितेन्द्रिय) या अ-वश-वर्ती ?" "वश-वर्ती हे गौतम !"

"इस प्रकार वाशिष्ट ! भिक्षु अ-परिग्रह है, ब्रह्मा अ-परिग्रह है, तो क्या अपरिग्रह भिक्षुकी अ-परिग्रह ब्रह्माके साथ समानता है, मेल है ?" "हाँ ! हे गौतम !"

"साधु, वाशिष्ट ! वह अ-परिग्रह भिक्षु काया छोड़ मरनेके बाद, अपरिग्रह ब्रह्माकी सलोकता को प्राप्त होवे, यह संभव है। इस प्रकार भिक्षु अ-वैर-चित्त है० ।०। वश-वर्ती भिक्षु काया छोड़ मरनेके बाद वशवर्ती ब्रह्माकी सलोकताको प्राप्त होवे, यह संभव है।

ऐसा कहनेपर वाशिष्ट और भारद्वाज माणवकोंने भगवान् को कहा—

"आश्चर्य हे गौतम ! आश्चर्य हे गौतम !० आजसे आप गौतम हमको अंजलि-बद्ध शरणागत उपासक धारण करें।"

× × × ×

(२)

अम्बट्ठ-सुत्त (ई. पू. ५१४)।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् पाँच सौ भिक्षुओंके महान् भिक्षु-संघके साथ [2]चारिका करते हुए, जहाँ इच्छानंगल नामक कोसलोंका ब्राह्मण-ग्राम था, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् इच्छानंगलमें इच्छानंगल-वनखण्डमें विहरते थे।

उस समय पौष्कर-साति ब्राह्मण, जनाकीर्ण, तृणकाष्ठ-उदक-धान्य-सहित कोसल-राज प्रसेन-जित्-द्वारा दत्त, राजा-भोग्य, राज-दायज, ब्रह्म-देय उक्कट्ठाका स्वामित्व करता था।

पौष्करसाति ब्राह्मणने सुना—शाक्य-कुलसे प्रव्रजित शाक्य-पुत्र श्रमण गौतम० कोसल-देशमें चारिका करते, इच्छानंगलमें० विहार कर रहे हैं। उन भगवान् गौतमका ऐसा मंगल-

---

१. दी. नि. १:१।

२. अ. क. "भगवान्‌की चारिका दो प्रकारकी होती थी—त्वरित-चारिका, और अत्वरित-चारिका। दूर बोधनीय मनुष्यको देखकर, उसके बोधके लिये सहसा गमन त्वरित-चारिका है। यह महाकाश्यप स्थविरके प्रत्युद्गमन (=अगवानी) आदिमें जानना चाहिये। भगवान्, महाकाश्यप स्थविरके प्रत्युद्गमनके लिये, एक मुहूर्तमें तीन गव्यूति (=¾योजन) मार्ग चले गये; आलवकके लिये तीस योजन; उतना ही अंगुलि-मालके लिये; पुक्कुसातिके लिये ४५ योजन, महाकप्पिनके लिये १२० योजन, धनियके लिये ७०० योजन गये। धर्म-सेनापति (=सारिपुत्र) के शिष्य वनवासी तिष्य-श्रामणेरके लिये १२० योजन तीन गव्यूति गये।...। यह त्वरित-चारिका है। जो गाँव निगमके क्रमसे प्रति-दिन योजन, अर्द्ध-योजन करके, पिंडचार करते, लोकानुग्रह करते गमन करना है, यह अत्वरित चारिका है।... (पौष्करसाति) तीनों वेदोंमें पारङ्गत, पंडित=व्यक्त हो, जम्बूद्वीपमें अग्र ब्राह्मण था। दूसरे समय उसने कोसल-राजको (अपना) गुण (=शिल्प) दिखलाया। तब उसके शिल्पसे प्रसन्न हो राजाने, उक्कट्ठा नामक महानगरको ब्रह्म-देय किया।"

कीर्ति शब्द उठा हुआ है० । इस प्रकारके अर्हतोंका दर्शन अच्छा होता है । उस समय पौष्कर-साति ब्राह्मणका शिष्य अम्बष्ट नामक माणवक (था, जो कि), अध्यायक मंत्र-धर, नि-घण्टु-केटुभ (=कल्प)-अक्षर-प्रभेद (=शिक्षा निरुक्त)-सहित तीनों वेद, पाँचवें इतिहासका पारङ्गत, पद-ज्ञ, वैयाकरण, लोकायत (शास्त्र) तथा महापुरुषलक्षण (=सामुद्रिक-शास्त्र) में परिपूर्ण, अपनी पंडिताई, प्रवचनमें—'जो मैं मानता हूँ, सो तू जानता है; जो तू जानता है वह मैं जानता हूँ', (कहकर आचार्य-द्वारा) अनुज्ञात-प्रतिज्ञात (=स्वीकृत) था ।

तब पौष्करसाति ब्राह्मणने अम्बष्ट माणवकको संबोधित किया—

"तात ! अम्बष्ट ! शाक्य-कुलोत्पन्न० विहार करते हैं,० इस प्रकारके अर्हतोंका दर्शन अच्छा होता है । आओ ! अम्बष्ट ! जहाँ श्रमण गौतम हैं, वहां आओ । जाकर श्रमण गौतमको जानो, कि आप गौतमका शब्द (=कीर्ति) यथार्थ फैला हुआ है, या अ-यथार्थ ? क्या०वैसे हैं या नहीं, जिसमें कि हम उन आप गौतमको जानें ।

"कैसे भो ! मैं उन गौतमको जानूंगा—कि आप गौतम० वैसे हैं या नहीं ?"

"तात अम्बष्ट ! हमारे मंत्रोंमें बत्तीस महापुरुष-लक्षण आये हैं । जिनसे युक्त महा-पुरुषकी दो ही गतियाँ होती हैं, तीसरी नहीं । यदि वह घरमें रहता है, ० चक्रवर्ती राजा होता है । यदि घरसे बेघर हो प्रव्रजित होता है,...अर्हत् सम्यक् संबुद्ध होता है । तात अम्बष्ट ! मैं मन्त्रोंका दाता हूँ, तुम मन्त्रोंके प्रतिगृहीता हो ।"

पौष्करसाति ब्राह्मणको "हाँ भो" कह अम्बष्ट माणवक, आसनसे उठ, अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर, घोड़ीके रथपर चढ़, बहुत माणवकोंके साथ जिधर इच्छानंगल वन-खंड था, उधरको चला । जितनी रथकी भूमि थी, रथसे जाकर, यानसे उतर, पैदल ही आराममें प्रविष्ट हुआ । उस समय बहुतसे भिक्षु खुली जगहमें टहल रहे थे । तब अम्बष्ट माणवक जहाँ वह भिक्षु थे वहाँ गया, जाकर उन भिक्षुओंको बोला—

"भो ! आप गौतम इस समय कहाँ विहार कर रहे हैं ? हम आप गौतमके दर्शनके लिये यहाँ आये हैं ।"

तब उन भिक्षुओंको यह हुआ—यह कुलीन प्रसिद्ध अम्बष्ट माणवक, अभिज्ञात (= प्रख्यात) पौष्करसाति ब्राह्मणका शिष्य है । इस प्रकारके कुल-पुत्रोंके साथ कथा-संलाप भगवान्को भारी नहीं होता ।' (और) अम्बष्ट माणवकको कहा—

"अम्बष्ट ! यह द्वार-बन्द विहार है, वहाँ चुपचाप धीरेसे जाकर, बरांडेमें (= अलिन्दमें) प्रवेशकर खांसकर, जंजीरको खटखटाओ, ताल्लेको हिलाओ । भगवान् तुम्हारे लिये द्वार खोल देंगे ।"

तब अम्बष्ट माणवकने जहाँ द्वार-बंद विहार (= निवासघर) था, चुपचाप धीरेसे वहाँ जा० ताल्लेको हिलाया । भगवान्ने द्वार खोल दिया । अम्बष्ट माणवकने प्रवेश किया । (दूसरे) माणवकोंने भी प्रवेश कर भगवान्के साथ...संमोदन किया...(और, एक ओर बैठ गये । किंतु अम्बष्ट माणवक बैठे हुये भी, भगवान्के टहलते वक्त कुछ पूछ रहा था, खड़े हुये भी बैठे हुये, भगवान्के साथ० ।

तब भगवान्ने अम्बष्ट माणवकको यह कहा—

"अम्बष्ट ! क्या वृद्ध = महल्लक आचार्य-प्राचार्य ब्राह्मणोंके साथ कथा-संलाप, ऐसेही होता है, जैसे कि तू चलते खड़े बैठे हुये मेरे साथ···कर रहा है ?"

"नहीं हे गौतम ! चलते ब्राह्मणके साथ चलते हुये, खड़े ब्राह्मणके साथ खड़े हुये, बैठे ब्राह्मणके साथ बैठे हुये बात करना चाहिये, सोये ब्राह्मणके साथ सोये बात कर सकते हैं। किंतु जो हे गौतम ! मुंडक, श्रमण, इब्भ, काले, ब्रह्मा (=बंधु) के पैरकी संतान हैं, उनके साथ ऐसेही कथा-संलाप होता है, जैसा कि आप गौतमके साथ।"

"अम्बट्ठ ! अर्थीकी भाँति तेरा यहाँ आना हुआ है। (मनुष्य) जिस अर्थके लिये आवे, उसी अर्थको मनमें करना चाहिये। अम्बट्ठ ! तूने (गुरुकुलमें) नहीं वास किया है; क्या वास करे विनाही (गुरुकुल-) वासका अभिमानी है ?"

तब अम्बट्ठ माणवकने भगवान्‌के (गुरुकुल) अ-वास कहनेसे कुपित हो असंतुष्ट हो, भगवान्‌को ही खुनसाते (=खुन्सेन्तो) भगवान्‌को ही निन्दते, भगवान्‌को ही ताना देते 'श्रमण गौतम दुष्ट (= पापिक) होगा' (सोच) यह कहा—

"हे गौतम ! शाक्य-जाति चंड है। हे गौतम ! शाक्य-जाति क्षुद्र (=लघुक) है। हे गौतम ! शाक्य-जाति बकवादी (= रभस) है। नीच (इब्भ) समान होनेसे शाक्य ब्राह्मणोंका सत्कार नहीं करते, ब्राह्मणोंका गौरव नहीं करते,० नहीं मानते, ०नहीं पूजते; ०नहीं अपचय करते। हे गौतम ! सो यह अ-च्छन्न=अयोग्य है, जो कि नीच, नीच-समान शाक्य, ब्राह्मणोंका सत्कार नहीं करते०।"

इस प्रकार अम्बट्ठने शाक्योंपर यह प्रथम इभ्यवाद (=नीच करना) कह, आक्षेप किया।

"अम्बट्ठ ! शाक्योंने तेरा क्या कसूर किया है ?"

"हे गौतम ! एक समयमें आचार्य ब्राह्मण पौष्करसातिके किसी कामसे कपिलवस्तु गया। (वहाँ) जहाँ शाक्योंका संस्थागार (= प्रजातंत्र-भवन) है, वहाँ गया। उस समय बहुतसे शाक्य तथा शाक्य-कुमार संस्थागारमें ऊँचे आसनोंपर, एक दूसरेको अंगुली गदाते हँस रहे थे, खेल रहे थे; मुझे ही मानो हँस रहे थे। किसीने मुझे आसनपर बैठनेको नहीं कहा। सो यह गौतम ! अच्छन्न=अयुक्त है, जो यह इभ्य तथा इभ्य-समान शाक्य ब्राह्मणोंका सत्कार नहीं करते०।"

इस प्रकार अम्बट्ठ माणवकने शाक्योंपर दूसरा इभ्यवादका आक्षेप किया।

"लटुकिका चिड़िया भी अम्बट्ठ ! अपने घोंसलेपर स्वच्छंद-आलापिनी होती है। कपिलवस्तु शाक्योंका अपना (घर) है, अम्बट्ठ ! इस थोड़ी बातमें तुम्हें अमर्ष न करना चाहिये।"

"हे गौतम ! चार वर्ण हैं,—क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र। इनमें हे गौतम ! क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यह तीन वर्ण, ब्राह्मणके ही सेवक हैं। गौतम ! सो यह० अयुक्त है०।"

इस प्रकार अम्बट्ठ माणवकने शाक्योंपर तीसरा इभ्यवादका आक्षेप किया। तब भगवान्‌को यह हुआ—यह अम्बट्ठ माणवक बहुत बढ़ बढ़कर शाक्योंपर इभ्यवादका आक्षेप कर रहा है, क्यों न मैं गोत्र पूछूँ। तब भगवान्‌ने अम्बट्ठ माणवकको कहा—

"किम् गोत्रो हो, अम्बट्ठ !"

"कृष्णायन हूँ, हे गौतम !"

"अम्बष्ट ! तुम्हारे पुराने नामगोत्रके अनुसार, शाक्य आर्य (=स्वामि-)-पुत्र होते हैं, तुम शाक्योंके दासी-पुत्र हो। अम्बष्ट ! शाक्य, राजा इक्ष्वाकु (=ओक्काक) को पितामह धारण करते (=मानते) हैं। पूर्व कालमें अम्बष्ट ! राजा इक्ष्वाकुने अपनी प्रिया=मनापा रानीके पुत्रको राज्य देनेकी इच्छासे, ओक्कामुख (=उल्का मुख), करण्डु, हस्थिनिक, और सिनीसूर (नामक) चार बड़े लड़कोंको राज्यसे निर्वासित कर दिया। वह निर्वासित हो, हिमालयके पास सरोवरके किनारे (एक) बड़े शाकवनमें वास करने लगे। जातिके बिगड़नेके डरसे अपनी बहिनोंके साथ उन्होंने संवास (=संभोग) किया। तब अम्बष्ठ ! राजा इक्ष्वाकुने अपने आमात्यों और दरबारियोंको पूछा—'कहाँ हैं भो ! इस समय कुमार ?'

'देव ! हिमवान्‌के पास सरोवरके किनारे महाशाक-वन (=साक-संड) है, वहीं इस वक्त कुमार रहते हैं। वह जातिके बिगड़नेके डरसे अपनी बहिनोंके साथ संवास करते हैं।'

"तब अम्बष्ट ! राजा इक्ष्वाकुने उदान कहा—'अहो ! कुमार ! शाक्य (=समर्थ) है रे !! महाशाक्य हैं रे कुमार !' तबसे अम्बष्ट ! वह शाक्यके नामही से प्रसिद्ध हुये, वही (=इक्ष्वाकु) उनका पूर्वपुरुष था। अम्बष्ट ! राजा इक्ष्वाकुकी दिशा नामकी दासी थी। उससे कृष्ण (=कण्ह) नामक पुत्र पैदा हुआ। पैदा होते ही कृष्णने कहा—'अम्मा ! धोओ मुझे, अम्मा ! नहलाओ मुझे, इस गंदगी (=अशुचि) से मुझे मुक्त करो, मैं तुम्हारे काम आऊँगा।' अम्बष्ट ! जैसे आजकल मनुष्य पिशाचोंको देखकर 'पिशाच' कहते हैं, वैसे ही उस समय पिशाचोंको, कृष्ण कहते थे। उन्होंने कहा—इसने पैदा होते ही बात की, (अतः यह) 'कृष्ण पैदा हुआ', 'पिशाच पैदा हुआ'। इसीसे आगे कृष्णायन प्रसिद्ध हुये, वह कृष्णायनों का पूर्व-पुरुष था। इस प्रकार अम्बष्ट, तेरे माता-पिताओंके गोत्रको ख्याल करनेसे, शाक्य आर्य-पुत्र होते हैं, तू शाक्योंका दासी-पुत्र है।"

ऐसा कहनेपर उन माणवकोंने भगवान्‌को कहा—

"आप गौतम ! अम्बष्ट माणवकको कड़े दासी-पुत्र-वादसे मत लजावें। हे गौतम ! अम्बष्ट माणवक सुजात है, कुल-पुत्र है०, बहुश्रुत०, सुवक्ता०, पंडित है। अम्बष्ट माणवक इस बातमें आप गौतमके साथ वाद कर सकता है।"

तब भगवान्‌ने उन माणवकोंको कहा—

"यदि तुम माणवकोंको होता है—अम्बष्ट माणवक दुर्जात है, ०अ-कुलपुत्र है, ०अल्प-श्रुत०, ०दुर्वक्ता०, दुष्प्रज्ञ (=अ-पंडित)०। अम्बष्ट माणवक श्रमण गौतमके साथ इस विषयमें वाद नहीं कर सकता। तो अम्बष्ट माणवक बैठे, तुम्हीं इस विषयमें मेरे साथ वाद करो। यदि तुम माणवकोंको ऐसा है—अम्बष्ट माणवक सुजात है० ।०। तो तुम लोग ठहरो, अम्बष्ट माणवकको मेरे साथ वाद करने दो।"

"हे गौतम ! अम्बष्ट माणवक सुजात है,०। अम्बष्ट माणवक इस विषयमें आप गौतमके साथ वाद कर सकता है। हम लोग चुप रहते हैं। अम्बष्ट माणवक ही आप गौतमके साथ इस विषयमें वाद करेगा।"

तब भगवान्‌ने अम्बष्ट माणवकको कहा—

"अम्बष्ट ! यह तुमपर धर्म-संबन्धी प्रश्न आता है, न इच्छा होने भी उत्तर देना

चाहिये, यदि नहीं उत्तर देगा, या इधर उधर करेगा, या चुप होगा, या चला जायेगा; तो यहीं तेरा शिर सात टुकड़े हो जायगा। तो अम्बष्ट ! क्या तुमने वृद्ध = महल्लक ब्राह्मणों आचार्य-प्राचार्यों श्रमणोंसे सुना है (कि) कबसे कृष्णायन हैं, और उनका पूर्व-पुरुष कौन था ?"

ऐसा पूछनेपर अम्बष्ट माणवक चुप होगया।

दूसरी बार भी भगवान्‌ने अम्बष्ट माणवकको यह पूछा—०।

तब भगवान्‌ने अम्बष्ट माणवकको कहा—

"अम्बष्ट ! उत्तर दो, यह तुम्हारा चुप रहनेका समय नहीं। जो कोई तथागतसे तीनबार स्वधर्म-संबंधी प्रश्न पूछे जानेपर भी उत्तर नहीं देगा, उसका शिर यहीं सात टुकड़े हो जायगा।"

उस समय वज्रपाणि यक्ष बड़े भारी आदीप्त=संप्रज्वलित=सप्रकाश लोह-खंड (=अयःकूट) को लेकर, अम्बष्ट माणवकके ऊपर आकाशमें खड़ा था—'यदि यह अम्बष्ट माणवक तथागतसे तीनबार स्वधर्म-संबंधी प्रश्न पूछे जानेपर भी उत्तर नहीं देगा; (तो) यहीं इसके शिरको सात टुकड़े करूँगा।' उस वज्रपाणि यक्षको (या तो) भगवान् देखते थे, या अम्बष्ट माणवक। तब उसे देख अम्बष्ट माणवक भयभीत, उद्विग्न, रोमांचित हो, भगवान्‌से त्राण=लयन=शरण चाहता, बैठकर भगवान्‌से बोला—

"क्या आप गौतमने कहा, फिरसे आप गौतम कहें तो ?"

"तो क्या मानते हो, अम्बष्ट ! क्या तुमने सुना है० ?"

"ऐसा ही है गौतम ! जैसा कि आपने कहा। तबसे ही कृष्णायन हुए, और वही कृष्णायनोंका पूर्व-पुरुष था।"

ऐसा कहनेपर माणवक उन्नाद = उच्चशब्द = महाशब्द (= कोलाहल) करने लगे—

"अम्बष्ट माणवक दुर्जात है अ-कुलपुत्र है। अम्बष्ट माणवक शाक्योंका दासी-पुत्र है। शाक्य, अम्बष्ट माणवकके आर्य (=स्वामि)-पुत्र होते हैं। सत्यवादी श्रमण गौतमको हम अश्रद्धेय करना चाहते थे।"

तब भगवान्‌को यह हुआ—'यह माणवक अम्बष्ट माणवकको दासी-पुत्र कहकर बहुत अधिक लजवाते हैं, क्यों न मैं (इसे) छुड़ाऊँ'। तब भगवान्‌ने माणवकों को कहा—

"माणवको ! तुम अम्बष्ट माणवकको दासी-पुत्र कहकर बहुत अधिक मत लजवाओ। वह कृष्ण महान् ऋषि थे। उन्होंने दक्षिण-देश में जाकर ब्रह्ममंत्र पढ़कर, राजा इक्ष्वाकु के पास जा क्षुद्र-रूपी कन्याको माँगा। तब राजा इक्ष्वाकुने—'अरे यह मेरी दासीका पुत्र होकर क्षुद्र-रूपी कन्याको माँगता है' (सोच), कुपित हो असन्तुष्ट हो, बाण चढ़ाया। लेकिन उस बाणको न वह छोड़ सकता था, न समेट सकता था। तब आमात्य और पार्षद (=दर्बारी) कृष्ण ऋषिके पास जाकर बोले—

'भदन्त ! राजाका मंगल हो, भदन्त ! राजाका मंगल (स्वस्ति) हो।'

'राजाका मंगल होगा, यदि राजा नीचेकी ओर बाण (=क्षुरप्र) को छोड़ेगा। (लेकिन) जितना राजाका राज्य है, उतनी पृथ्वी विदीर्ण हो जायगी।'

'भदन्त ! राजाका मंगल हो, जनपद (=देश) का मंगल हो।'

'राजाका मंगल होगा, जनपदका भी मंगल होगा; यदि राजा ऊपरकी ओर बाण छोड़ेगा, (लेकिन) जहाँ तक राजाका राज्य है, वहाँ सात वर्षतक वर्षा न होगी।'

'भदन्त ! राजाका मंगल हो जनपदका मंगल हो, देव भी वर्षा करे।'

'०देवभी वर्षा करेगा, यदि राजा ज्येष्ठ कुमारपर बाण छोड़े। कुमार स्वस्ति पूर्वक (किंतु) गंजा हो जायेगा।'

'तब माणवको ! आमात्योंने इक्ष्वाकुको कहा—'···ज्येष्ठ कुमारपर बाण छोड़ें, कुमार स्वस्ति-सहित (किंतु) गंजा होगा, राजा इक्ष्वाकुने ज्येष्ठ कुमार पर बाण छोड़ दिया···। उस ब्रह्मदण्डसे भयभीत, उद्विग्न, रोमांचित, तर्जित राजा इक्ष्वाकुने ऋषिको कन्याप्रदान की। माणवको ! अम्बष्ट माणवकको दासी-पुत्र कह, तुम मत बहुत अधिक लजवाओ। वह कृष्ण महान् ऋषि थे।"

तब भगवान्‌ने अम्बष्ट माणवकको संबोधित किया—

"तो···अम्बष्ट ! यदि (एक) क्षत्रिय-कुमार ब्राह्मण-कन्याके साथ संवास करे, उनके संवाससे पुत्र उत्पन्न हो। जो क्षत्रिय-कुमारसे ब्राह्मण-कन्यामें पुत्र उत्पन्न होगा, क्या वह ब्राह्मणोंमें आसन और पानी पायेगा ?" "पायेगा हे गौतम !" "क्या ब्राह्मण श्राद्ध, स्थालि-पाक, यज्ञ या पहुनाईमें उसे खिलायेंगे ?" "खिलायेंगे हे गौतम !" "क्या ब्राह्मण उसे मंत्र (=वेद) बँचायेंगे ?" "बँचायेंगे हे गौतम !" "इसको स्त्री (पाने) में रुकावट होगी, या नहीं ?" "नहीं रुकावट होगी।" "क्या क्षत्रिय ! उसे क्षत्रिय-अभिषेकसे अभिषिक्त करेंगे ?" "नहीं हे गौतम !" "माताकी ओरसे हे गौतम ! अयुक्त है।"

"तो···अम्बष्ट ! यदि एक ब्राह्मण-कुमार क्षत्रिय-कन्याके साथ संवास करता है, उनके संवाससे पुत्र उत्पन्न होवे, तो जो वह ब्राह्मण-कुमारसे क्षत्रिय-कन्यामें पुत्र उत्पन्न हुआ है, क्या वह ब्राह्मणमें आसन, पानी पायेगा ?" "पायेगा हे गौतम !" "क्या ब्राह्मण श्राद्ध, स्थालिपाक, यज्ञ या पहुनाईमें उसे खिलायेंगे ?" "खिलायेंगे हे गौतम !" "क्या ब्राह्मण उसे मंत्र बँचायेंगे, या नहीं ?" "बँचायेंगे हे गौतम !" "क्या उसे (ब्राह्मण-) स्त्री (पाने) में रुकावट होगी ?" "रुकावट न होगी हे गौतम !" "क्या उसे क्षत्रिय क्षत्रिय-अभिषेकसे अभिषिक्त करेंगे ?" "नहीं, हे गौतम !" "सो किस हेतु ?" "गौतम पितासे वह अनुपपन्न है।"

"इस प्रकार अम्बष्ट ! स्त्रीसे करके भी पुरुष करके भी क्षत्रिय ही श्रेष्ठ है, ब्राह्मण हीन है। तो···अम्बष्ट ! यदि ब्राह्मण किसी ब्राह्मणको किसी कारणसे छुरेसे मुण्डित करा, घोड़ेके चाबुकसे मार कर, राष्ट्र या नगरसे निर्वासित कर दें। क्या वह ब्राह्मणोंमें आसन, पानी पायेगा ?" "नहीं हे गौतम !" "क्या ब्राह्मण श्राद्ध स्थालिपाक, यज्ञ पहुनाईमें उसे खिलायेंगे ?" "नहीं, हे गौतम !" "क्या ब्राह्मण उसे मंत्र बँचायेंगे या नहीं ?" "नहीं, हे गौतम !" "उसे (ब्राह्मण-) स्त्री (लेने) में रुकावट होगी, या बेरुकावट ?" "रुकावट होगी, हे गौतम !"

"तो···अम्बष्ट ! यदि क्षत्रिय (एक पुरुषको) किसी कारणसे छुरेसे मुण्डित कर, घोड़ेके चाबुकसे मार कर, राष्ट्र या नगरसे निर्वासित कर दें। क्या वह ब्राह्मणोंमें आसन पानी पायेगा ?" "पायेगा हे गौतम !" "क्या ब्राह्मण ०उसे खिलायेंगे ?" "खिलायेंगे हे गौतम !"

"क्या ब्राह्मण उसे मंत्र बँचायेंगे ?" "बँचायेंगे हे गौतम !" "क्या उसे स्त्रीमें रुकावट होगी या बेरुकावट ?" "बेरुकावट होगी हे गौतम !"

"अम्बष्ट ! क्षत्रिय बहुत ही निहीन (=नीच) हो गया रहता है, जब कि इसको क्षत्रिय किसी कारणसे मुण्डित कर० । इस प्रकार अम्बष्ट ! जब वह क्षत्रियोंमें परम नीचताको प्राप्त है, तब भी क्षत्रिय ही श्रेष्ठ है, ब्राह्मण हीन है । ब्रह्मा सनत्कुमारने भी अम्बष्ट ! यह गाथा कही है—

" गोत्र लेकर चलनेवाले जनोंमें क्षत्रिय श्रेष्ठ है । "

" जो विद्या और आचरण युक्त है, वह देव-मनुष्योंमें श्रेष्ठ है ॥ "

" सो अम्बष्ट ! यह गाथा ब्रह्मा सनत्कुमारने उचित ही गायी (=सुगीता) है, अनुचित नहीं गायी है,—सुभाषित है, दुर्भाषित नहीं है ; सार्थक है, निरर्थक नहीं ; मैं भी सहमत हूँ, मैं भी अम्बष्ट कहता हूँ—" गोत्र लेकर० । "

" क्या है, हे गौतम ! चरण, और क्या है विद्या ? "

' अम्बष्ट ! अनुपम विद्या-आचरण-सम्पदाको जातिवाद नहीं कहते, नहीं गोत्र-वाद कहते हैं, नहीं मान-वाद—'मेरे तू योग्य है', 'मेरे तू योग्य नहीं है' कहते हैं । जहाँ अम्बष्ट आवाह-विवाह होता है···, वहीं यह जातिवाद···, गोत्रवाद···, मानवाद, ' मेरे तू योग्य है', 'मेरे तू योग्य नहीं है' कहा जाता है । अम्बष्ट ! जो कोई जातिवादमें बँधे हैं, गोत्र-वादमें बँधे, (अभि-) मान-वादमें बँधे हैं, आवाह-विवाहमें बँधे हैं, वह अनुपम विद्या-चरण-संपदासे दूर हैं । अम्बष्ट ! जाति-वाद-बंधन, गोत्र-वाद-बंधन, मान-वाद-बंधन, आवाह-विवाह-बंधन छोड़कर, अनुपम विद्या-चरण-संपदा प्रत्यक्ष की जाती है ।

" क्या है, हे गौतम ! चरण, और क्या है विद्या ? "

" अम्बष्ट ! लोकमें तथागत उत्पन्न होता है[1]० । ० । इसी प्रकार भिक्षु शरीरके चीवर, पेटके खानेसे सन्तुष्ट होता है ।०। इस तरह अम्बष्ट ! भिक्षु शील-संपन्न होता है[1]० । वह प्रीति-सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । यह भी उसके चरणमें होता । [1]०द्वितीय ध्यान० । ०तृतीय ध्यान० । ०चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है, यह भी उसके चरणमें होता है । अम्बष्ट ! यह चरण ज्ञानके प्रत्यक्ष करनेके लिए, (मनुष्यके) चित्तको नमाता है, झुकाता है । सो इस प्रकार चित्तके परिशुद्ध०[1] । इस प्रकार आकार-सहित उद्देश-सहित अनेक पूर्व-निवासोंको जानता है । यह भी अम्बष्ट ! उसकी विद्यामें है । [1]०दिव्य विशुद्ध चक्षुसे०प्राणियों-को देखता है । यह भी अम्बष्ट ! उसकी विद्यामें है । ०' ' जनम खतम होगया, ब्रह्मचर्य पूरा

---

१. पृष्ठ १६०-६२ । २. अ. क. "तापस आठ प्रकारके होते हैं—(१) स-पुत्र-भार्य, (२) उंछाचारी, (३) अन्-अग्नि-पक्कि, (४) अ-स्वयं-पाकी, (५) अश्म-मुष्टिक, (६) दंतवल्कलिक, (७) प्रवृत्त-फल-भोजी, (८) पाण्डु-पलाशिक । इनमें जो केणिय जटिलकी भाँति कुटुंब सहित वास करते हैं, 'स-पुत्र-भार्य' कहलाते हैं । जो···गाँव-कस्बोंसे चावलकी भिक्षा लेकर पका कर खाते हैं, वह 'अनग्नि-पक्कि'०।···जो गाँवमें जाकर पकी भिक्षाको ग्रहण करते हैं, वह 'अ-स्वयं-पाकी'०।···जो पत्थरसे अम्बाटक आदि वृक्षोंके चमड़े उकाच कर खाते हैं, वह 'अश्म-मुष्टिक'···। जो दाँतसे ही (छाल = वल्कल) उपाड़कर खाते हैं, वह प्रवृत्त-

होगया, करना था सो कर लिया, अब यहाँके लिये कुछ नहीं है' यह भी जानता है। यह भी उसकी विद्यामें है। यह अम्बष्ठ ! विद्या है। अम्बष्ठ ! ऐसा भिक्षु विद्या-सम्पन्न कहा जाता है। इस प्रकार चरण-संपन्न; इस प्रकार विद्या-चरण-संपन्न होता है ! इस विद्या-संपदा, तथा चरण-संपदासे बढ़कर दूसरी विद्या-सम्पदा या चरण-सम्पदा नहीं है।

"अम्बष्ठ ! इस अनुपम विद्या-चरण-सम्पदाके चार अपाय-मुख (=विघ्न) हैं। कौनसे चार ? कोई श्रमण या ब्राह्मण अम्बष्ठ ! इस अनुपम विद्या-चरण संपदाको पूरा न करके, खारी-विविध (=झोरी-मंगा बाणप्रस्थीके समान) लेकर—'फलमूलाहारी होऊँ' (सोच) वन-वासके लिये जाता है। वह विद्या-चरणसे भिन्न वस्तुका परिचारक (=सेवक) बनता है। इस अनुपम विद्या-चरण-संपदाका यह प्रथम अपाय-मुख (=विघ्न) है। और फिर अम्बष्ठ ! यहाँ कोई श्रमण या ब्राह्मण इस अनुपम विद्या-चरण-संपदाको पूरा न करके, फलाहारिताको भी पूरा न करके, कुदालले 'कन्द-मूलफलाहारी होऊँ' (सोच) विद्या-चरणसे भिन्न वस्तुका परिचारक बनता है। ०यह द्वितीय अपाय-मुख है। और फिर अम्बष्ठ ! ०फलाहारिताको न पूरा करके, गाँवके पास या निगम (=कस्बे) के पास अग्नि-शाला बना अग्नि-परिचरण (= होम आदि) करता रहता है०। ०यह तृतीय अपाय मुख है। और फिर अम्बष्ठ ! ०अग्नि-परिचर्याको भी पूरा न करके, चौरस्तेपर चार द्वारों वाला आगार बना कर रहता है, कि चारों दिशाओंसे जो यहाँ श्रमण या ब्राह्मण आयेगा, उसका मैं यथाशक्ति = यथाबल सत्कार करूँगा। यह इस प्रकार विद्याचरणसे भिन्नोंका परिचारक बनता है।० यह चतुर्थ अपाय-मुख है। इस अनुपम विद्या-चरण-संपदाके अम्बष्ठ यह चार विघ्न हैं।

"तो···अम्बष्ठ ! क्या आचार्य-सहित तुम इस अनुपम विद्याचरण-संपदाका उपदेश करते हो?

"नहीं हे गौतम ! कहाँ आचार्य सहित मैं और कहाँ अनुपम विद्या-चरण-संपदा ! हे गौतम ! आचार्य-सहित मैं अनुपम विद्या-चरण संपदासे दूर हूँ।"

"तो···अम्बष्ठ ! इस अनुपम विद्या-चरण संपदाको पूरा न कर, झोली आदि (=खारीविविध) लेकर 'प्रवृत्त फलभोजी होऊँ' (सोच), क्या तू वनवासके लिये आचार्य सहित वनमें प्रवेश करता है ?

"नहीं हे गौतम।"

फल-भोजी'···। जो···स्वयं गिरे फूल-फल-पत्ते खाते जीवन-यापन करते हैं, वह 'पंडु-पलासिक'···। यह तीन प्रकारके होते हैं, उत्कृष्ट, मध्यम और मृदुक (=साधारण)। जो बैठनेके स्थानसे बिना उठे हाथ पहुँचने भरके स्थानके फलको खाते हैं, वह 'उत्कृष्ट'। जो एक वृक्षसे दूसरे वृक्षको नहीं जाते, वह 'मध्यम'। जो जिस किसी वृक्षके नीचे जाकर खोजकर खाते हैं, यह 'मृदुक'। यह आठों तापस-प्रव्रज्यायें उन्हीं चारोंमें आ जाती हैं। कैसे ? इनमें 'सपुत्र-भार्य' 'उंछाचारी' इगारगार सेवन करते हैं। 'अनग्नि-पक्विक और 'अ-स्मयंपाकी, अग्न्यागार०। 'अश्म-मुष्टिक', और 'दन्त-वल्कलिक' कन्दमूल-फल भोजी०। 'पांडुपलासी' प्रवृत्त-फल भोजी०।

"०।०। चौरस्तेपर चार द्वारों वाला आगार बनाकर रहता है, कि जो यहाँ चारों दिशाओंसे श्रमण या ब्राह्मण आयेगा, उसका मैं यथाशक्ति यथाबल सत्कार करूँगा ?"

"नहीं हे गौतम !"

"इस प्रकार अम्बष्ट ! आचार्य-सहित तू इस अनुत्तर विद्या-चरण-संपदासे भी हीन है, और यह जो अनुत्तर विद्या-चरण सम्पदाके चार अपाय-मुख हैं, उनसे भी हीन। तूने अम्बष्ट ! आचार्य ब्राह्मण पौष्कर-सातिसे सीखकर यह वाणी बोली—'कहाँ इब्भ, (=नीचा, इभ्य) काले, पैरसे उत्पन्न मुंडक श्रमण हैं, और कहाँ त्रैविद्य ब्राह्मणोंका साक्षात्कार'। स्वयं अपायिक (=दुर्गतिगामी) भी, (विद्या-चरण) न पूरा करते (हुये भी), अम्बष्ट ! अपने आचार्य ब्राह्मण पौष्करसातिका यह अपराध देख। अम्बष्ट ! पौष्करसाति ब्राह्मण राजा प्रसेनजित् कोसलका दिया खाता है। राजा प्रसेनजित् कोसल उसको दर्शन भी नहीं देता। जब उसके साथ मंत्रणा भी करता है, तो कपड़ेकी आड़से मंत्रणा करता है[1]। अम्बष्ट ! जिसकी धार्मिक दी हुई भिक्षाको (पौष्करसाति) ग्रहण करता है, वह राजा प्रसेनजित् कोसल उसे दर्शन भी नहीं देता !! देख अम्बष्ट ! अपने आचार्य ब्राह्मण पौष्करसातिका यह अपराध तो क्या मानते हो अम्बष्ट ! राजा प्रसेनजित् कोसल हाथीपर बैठा, या घोड़ेपर बैठा, या रथके ऊपर खड़ा [2]उग्रोंके साथ या राजन्यों[3]के साथ कोई सलाह करे, और उस स्थानसे हटकर एक ओर खड़ा हो जाये। तब (कोई) शूद्र या शूद्र-दास आ जाय, वह उस स्थानपर खड़ा हो, उसी सलाहको करे—जैसी राजा प्रसेनजित् कोसलने की थी, तो क्या वह राज-कथनको कहता है, राजमंत्रणाको मंत्रित करता है, इतनेसे वह राजा या राज अमात्य हो जाता है ?"

"नहीं हे गौतम !"

"इसी प्रकार हे अम्बष्ट ! जो वह ब्राह्मणोंके पूर्वज ऋषि मंत्र-कर्ता, मंत्र-प्रवक्ता (थे), जिनके कि पुराने गीत, प्रोक्त, समीहित (= चिन्तित) मंत्रपदको ब्राह्मण आजकल अनुगान, अनुभाषण करते हैं, भाषितको अनुभाषित, वाचितको अनु-वाचित करते हैं; जैसे कि—अट्टक[4]

---

१. अ. क. "वह (पौष्करसाति) सन्मुखावर्जनी माया (=Hypnotism) जानता था। जब राजा महार्घ अलंकारसे अलंकृत होता, तब राजाके पास खड़ा होकर उस अलंकार का नाम लेता। नाम लेनेपर राजा 'नहीं दूँगा' नहीं कह सकता था। देकर फिर महोत्सवके दिन, 'अलंकार ले आओ' कह कर, 'देव ! नहीं है' तुमने ब्राह्मण पौष्करसातिको दे दिया' कहने पर, 'मैंने क्यों दिया ?' पूछता। वे आमात्य 'वह ब्राह्मण 'आवर्जनी-माया' जानता है, उसीसे आपको भरमाकर ले जाता है' कहते। दूसरे राजाके साथ उसकी परममित्रताको न सहनकर कहते—'देव ! इस ब्राह्मणके शरीरमें शंख-पलित-कुष्ट' (शंखसा उजला कोढ़) है। तुम इसको देखकर आलिंगन करते हो, छूते हो। यह कुष्ट (रोग) काय-संसर्गसे अनुगमन करता है, ऐसा मत करो।' तबसे राजा उसको दर्शन नहीं देता। (लेकिन) चूँकि वह ब्राह्मण पंडित, क्षत्र-विद्यामें कुशल था, इसलिये उसके साथ सलाह करके किया काम नहीं बिगड़ता (सोच), कनातके भीतर खड़े हो बाहर खड़े उसके साथ मंत्रणा करता।" २ 'ऊँचे ऊँचे अमात्य'। ३ अभिषेक-रहित कुमार। ४ इन आठो ऋषियोंमें निम्न इके मंत्र ऋक् संहिताके निम्न मंडलोंमें हैं—अष्टक (१), वामदेव (४), विश्वामित्र (३, ९), जमदग्नि (८, ९) भरद्वाज (६, ९), वशिष्ट (७, ९), कश्यप (१, ९), भृगु (९)।

वामक, वामदेव, विश्वामित्र, यमदग्नि, अंगिरा, भरद्वाज, वशिष्ठ, कश्यप, भृगु। 'उनके मंत्रोंको आचार्य-सहित मैं अध्ययन करता हूँ' क्या इतनेसे तू ऋषी या ऋषित्वके मार्गपर आरूढ हो जायगा ? यह संभव नहीं।

"तो क्या अम्बष्ठ ! तूने वृद्ध-महल्लक ब्राह्मणों आचार्यों-प्राचार्योंको कहते सुना है, जो वह ब्राह्मणोंके पूर्वज ऋषि० अट्टक० (थे); क्या वह ऐसे सुस्नात, सु-विलिप्त अंगराग लगाये, केश मोंछ सँवारे मणिकुण्डल आभरण पहिने, स्वच्छ (श्वेत) वस्त्र-धारी पाँच काम-गुणोंमें लिप्त, युक्त, घिरे रहते थे; जैसे कि आचार्य-सहित तू है ?" "नहीं, हे गौतम !"

"ऐसे क्या वह शालिका भात, शुद्ध माँसका सेवन (=उपसेचन), कालिमारहित सूप (=दाल), अनेक प्रकारकी तर्कारी (=व्यंजन) भोजन करते थे, जैसे कि आज आचार्य-सहित तू ?" "नहीं, हे गौतम !"

"ऐसे क्या वह (साड़ी-) वेष्टित कमनीय गात्रवाली स्त्रियोंके साथ रमते थे, जैसे कि आज आचार्य-सहित तू ?" "नहीं, हे गौतम !"

"ऐसे क्या वह कटेवालोंवाली घोड़ियोंके रथपर लम्बे डंडेवाले कोड़ोंसे वाहनोंको पीटते गमन करते थे, जैसे कि० ?" "नहीं, हे गौतम !"

"ऐसे क्या वह खाँई-खोदे, परिघ (=काष्ठ-प्राकार) उठाये, नगर-रक्षिकाओंमें (=नगरूपकारिकासु) दीर्घ-आयु-पुरुषोंसे रक्षा करवाते थे, जैसे कि० तू ?" "नहीं, हे गौतम !"

"इस प्रकार अम्बष्ठ ! न आचार्य-सहित तू ऋषि है, न ऋषित्वके मार्गपर आरूढ। अम्बष्ठ मेरे विषयमें जो तेरा संशय=विमति हो वह प्रश्न कर, मैं उसे उत्तरसे (दूर करूँगा)।"

यह कह भगवान् विहारसे निकल, चंक्रम (=टहलने) के स्थानपर खड़े हुये। अम्बष्ठ माणवक भी विहारसे निकल चंक्रमपर खड़ा हुआ। तब अम्बष्ठ माणवक भगवान्के पीछे पीछे टहलता भगवान्के शरीरमें ३२ महापुरुष-लक्षणोंको ढूँढ़ता था। अम्बष्ठ माणवकने दो को छोड़ बत्तीस महापुरुष लक्षणोंमेंसे अधिकांश भगवान्के शरीरमें देख लिये। ०[1]। तब अम्बष्ठ माणवकको ऐसा हुआ—'श्रमण गौतम बत्तीस महापुरुष-लक्षणोंसे समन्वित, परिपूर्ण है' और भगवान्को बोला—"हन्त ! हे गौतम ! अब जायेंगे, हम बहुत कृत्यवाले, बहुत कामवाले हैं।"

"अम्बष्ठ ! जिसका तू काल समझता है ?"

तब अम्बष्ठ माणवक वड़वा (=घोड़ी)-रथपर चढ़कर चला गया।

उस समय पौष्करसाति ब्राह्मण बड़े भारी ब्राह्मण-गणके साथ, उक्कट्ठासे निकलकर, अपने आराम (=बगीचे) में, अम्बष्ठ माणवककी ही प्रतीक्षा करते बैठा था। तब अम्बष्ठ माणवक जहाँ अपना आराम था वहाँ गया। जितना यान (=रथ) का रास्ता था, उतना यानसे जाकर; यानसे उतर पैदल ही जहाँ पौष्करसाति ब्राह्मण था, वहाँ गया। जाकर ब्राह्मण पौष्करसातिको अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे अम्बष्ठ माणवकको पौष्करसातिने कहा—

---

१. पृष्ठ १५०।

"क्या तात ! अम्बष्ट ! उन भगवान् गौतमको देखा ?"

"देखा भो ! हमने उन भगवान् गौतमको।"

"क्या तात ! अम्बष्ट ! उन भगवान् गौतमका यथार्थमें शब्द फैला हुआ है, या अयथार्थमें ? क्या आप गौतम वैसे ही हैं, या दूसरे (=अन्यादृश) ?"

"यथार्थहीमें भो ! उन भगवान् गौतमके लिये शब्द फैला है। आप गौतम वैसे ही हैं, दूसरे नहीं। आप गौतम बत्तीस महापुरुष-लक्षणोंसे समन्वित, परिपूर्ण हैं।"

"तात ! अम्बष्ट ! क्या श्रमण गौतमके साथ तुम्हारा कुछ कथा संलाप हुआ।"

"हुआ भो ! मेरा श्रमण गौतमके साथ कथा संलाप।"

"तात ! अम्बष्ट ! श्रमण गौतमके साथ कैसा कथा-संलाप हुआ ?"

तब अम्बष्ट माणवकने जितना भगवान्‌के साथ कथा-संलाप हुआ था, सब पौष्करसाति ब्राह्मणको कह दिया। ऐसा कहनेपर ब्राह्मण पौष्करसातिने अम्बष्ट माणवकको कहा—

"अहो रे ! हमारी पंडिताई !! अहो रे ! हमारी बहुश्रुताई !! अहो बत ! रे !! हमारा त्रैविद्यक-पना ! इस प्रकारके नीच कामसे पुरुष, काया छोड़ मरनेके बाद, अपाय=दुर्गति=विनिपात=निरय (=नर्क) में ही उत्पन्न होगा, जो अम्बष्ट ! उन आप गौतमसे इस प्रकार क्षुभित करते हुए तुमने बात की। और आप गौत हम (ब्राह्मणों) को भी ऐसे खोल खोलकर बोले। अहोबत ! रे !! हमारी पंडिताई !!!, अहोबत ! रे !! हमारी बहुश्रुताई; अहोबत ! रे !! हमारा त्रैविद्यकपन !!!···" (ऐसा कह पौष्करसातिने) कुपित, असंतुष्ट हो, अम्बष्ट माणवकको पैदल ही वहाँसे हटाया, और उसी वक्त भगवान्‌के दर्शनार्थ जानेको (तैयार) हुआ। तब उन ब्राह्मणोंने पौष्कर-साति ब्राह्मणको यह कहा—

"भो ! श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जानेको आज बहुत विकाल है। दूसरे दिन आप पौष्करसाति श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जावें।"

इस प्रकार पौष्करसाति ब्राह्मण अपने घरमें उत्तम खाद्य भोज्य तय्यारकर, यानोंपर रखवा, मशाल (=उल्का) की रोशनीमें उक्कट्ठासे निकल, जहाँ इच्छानंगल वन-खंड था, उधर गया। जितनी यानकी भूमि थी, उतनी यानसे जाकर, यानसे उतर पैदल ही जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌के साथ सम्मोदनकर···(कुशल-प्रश्न पूछ) एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे पौष्करसाति ब्राह्मणने भगवान्‌को कहा—

"हे गौतम ! क्या हमारा अन्तेवासी अम्बष्ट माणवक यहाँ आया था ?"

"ब्राह्मण ! तेरा अन्तेवासी अम्बष्ट माणवक यहाँ आया था।"

"हे गौतम ! अम्बष्ट माणवकके साथ क्या कुछ कथा-संलाप हुआ।"

"ब्राह्मण ! अम्बष्ट माणवकके साथ मेरा कुछ कथा-संलाप हुआ।"

"हे गौतम ! अम्बष्ट माणवकके साथ कैसा कथा-संलाप हुआ ?"

तब भगवान्‌ने, अम्बष्ठके साथ जितना कथा-संलाप हुआ था, (वह) सब पौष्कर-साति ब्राह्मणको कह दिया। ऐसा कहनेपर पौष्कर-साति ब्राह्मणने भगवान्‌को कहा—

"बालक है, हे गौतम ! अम्बष्ट माणवक। क्षमा करें, हे गौतम ! अम्बष्ट माण-वकको।"

"सुखी होवे, ब्राह्मण ! अम्बष्ट माणवक।"

तब पौष्करसाति ब्राह्मण भगवान्‌के शरीरमें ३२ महापुरुष-लक्षणोंको ढूँढने लगा०[1]। पौष्करसाति ब्राह्मणको हुआ—श्रमण गौतम बत्तीस महापुरुष-लक्षणोंसे समन्वित, परिपूर्ण है, और भगवान्‌से बोला—

"भिक्षु-संघ-सहित आप गौतम आजका मेरा भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया।

तब पौष्कर-साति ब्राह्मणने भगवान्‌की स्वीकृति जान, भगवान्‌को काल निवेदन किया—(यह भोजनका) काल है, हे गौतम! भात तय्यार है। तब भगवान् पहिनकर पात्र-चीवर ले, जहाँ ब्राह्मण पौष्कर-सातिके परोसनेका स्थान था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठ गये। तब पौष्कर-साति ब्राह्मणने भगवान्‌को अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्य से संतर्पित = संप्रवारित किया; और माणवकोंने भिक्षु-संघको। तब पौष्कर-साति ब्राह्मण भगवान्‌के भोजनकर, पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, एक दूसरे नीचे आसनको ले, एक ओर बैठ गया। *एक ओर बैठे हुये, पौष्कर-साति ब्राह्मणको भगवान्‌ने 'अनुपूर्वी-कथा कही०* पौष्कर-साति ब्राह्मणको उसी आसनपर विरज = विमल धर्म-चक्षु—'जो कुछ समुदय-धर्म है, वह निरोध-धर्म है'—उत्पन्न हुआ।

तब पौष्कर-साति ब्राह्मणने दृष्ट-धर्म० हो भगवान्‌को कहा—

"आश्चर्य! हे गौतम!! ०पुत्र-सहित भार्या-सहित, परिषद्-सहित, अमात्य-सहित, मैं गौतमकी शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी। आजसे आप गौतम मुझे बद्धांजलि उपासक धारण करें। जैसे उक्कट्ठामें आप गौतम दूसरे उपासक-कुलोंमें जाते हैं, वैसे ही पुष्कर-साति-कुलमें भी आवें। वहाँपर माणवक (=तरुण ब्राह्मण) या माणविका आकर भगवान् गौतमको अभिवादन करेंगे, आसन या उदक देंगे या (आपके प्रति) चित्तको प्रसन्न करेंगे। वह उनके लिये चिरकालतक हित-सुखके लिये होगा।"

"सुन्दर (=कल्याण) कहा ब्राह्मण!"

× × ×

(२)

चंकि-सुत्त (ई. पू. ५१४)।

[2]ऐसा मैंने सुना—एक समय महा-भिक्षुसंघके साथ भगवान् कोसलमें चारिका करते जहाँ ओपसाद नामक कोसलोंका ब्राह्मण-ग्राम था, वहाँ भगवान् ओपसादसे उत्तर देववन (नामक) शाल-वनमें विहार करते थे।

उस समय चंकि-ब्राह्मण, जनाकीर्ण तृण-काष्ठ-उदक-धान्य-सम्पन्न राजभोग्य, राजा प्रसेनजित् कोसल-द्वारा प्रदत्त, राज-दायज, ब्रह्मदेय, ओपसादका स्वामी हो, वास करता था।

ओपसादवासी ब्राह्मणोंने सुना—शाक्य-कुलसे प्रव्रजित शाक्य-पुत्र श्रमण गौतम चारिका करते, महा-भिक्षु-संघके साथ ओपसादमें पहुँचे हैं, और ओपसादमें ओपसादसे उत्तर

---

१. पृष्ठ १५२। २. पृष्ठ २५। ३. म. नि. २।५।५।

देवधन शाल-वनमें विहार करते हैं। उन भगवान् गौतमका ऐसा मंगल कीर्तिशब्द उठा हुआ है० 'परिशुद्ध ब्रह्मचर्य प्रकाशित करते हैं, इस प्रकारके अर्हतोंका दर्शन अच्छा होता है।

तब ओपसाद-वासी ब्राह्मण गृहस्थ ओपसादसे निकलकर, झुण्डके झुण्ड उत्तर मुँहकी ओर जहाँ देववन शालवन था, उधर जाने लगे। उस समय चंकि ब्राह्मण, दिनके शयनके लिये प्रासादके ऊपर गया हुआ था। चंकि ब्राह्मणने देखा कि ओपसाद-वासी ब्राह्मण गृहस्थ उत्तर मुँहकी ओर० उधर जा रहे हैं। देखकर क्षत्ता (=महामात्य) को संबोधित किया—

"क्या है, हे क्षत्ता! (कि) ओपसाद-वासी ब्राह्मण गृहस्थ ०जहाँ देववन शाल-वन हैं, उधर जा रहे हैं।

"हे चंकि! शाक्य-कुलसे प्रव्रजित शाक्य-पुत्र, श्रमण गौतम कोसलमें चारिका करते महाभिक्षु-संघके साथ० देववन शालवनमें विहार कर रहे हैं। उन भगवान् गौतमका ऐसा मंगलकीर्ति-शब्द उठा हुआ है०[1]। उन्हीं भागवान् गौतमके दर्शनके लिये जा रहे हैं।"

'तो क्षत्ता!' जहां ओपसादक ब्राह्मण गृहपति हैं, वहां जाओ। जाकर ओपसादक ब्राह्मण गृहपतियोंको ऐसा कहो—चंकि ब्राह्मण ऐसा कह रहा है—'थोड़ी देर आप सब ठहरें, चंकि ब्राह्मण भी श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जायेगा।'"

चंकि ब्राह्मणको "अच्छा भो!" कह, वह क्षत्ता जहाँ ओपसादक ब्राह्मण थे, वहां गया। जाकर० बोला:

—चंकि ब्राह्मण ऐसा कह रहा है—'थोड़ी देर आप सब ठहरें, चंकि ब्राह्मण भी श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जायेगा।"

उस समय नाना देशोंके पाँच सौ ब्राह्मण किसी कामसे ओपसादमें वास करते थे। उन ब्राह्मणोंने सुना कि चंकि ब्राह्मण श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने वाला है। तब वह ब्राह्मण जहाँ चंकि ब्राह्मण था, वहाँ गये। जाकर चंकि ब्राह्मणको बोले—

"सचमुच आप चंकि श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने वाले हैं?"

"हाँ भो! मुझे यह हो रहा है, मैं भी श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाऊँ।"

"आप चंकि गौतमके दर्शनार्थ मत जायें। आपको श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाना उचित नहीं है। श्रमण गौतमको ही आप चंकिके दर्शनार्थ आना योग्य है। आप चंकि दोनों ओरसे सुजात (=कुलीन) हैं, मातासे भी पितासे भी; मातामह-युगलकी सात पीढ़ियों तक, जाति-वादसे अक्षिप्त=अन्-उपक्रुष्ट (=अ-निन्दित) हैं। जो आप चंकि दोनों ओर से सुजात हैं०; इस कारणसे भी आप चंकि श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य नहीं हैं। श्रमण गौतम ही आप चंकिके दर्शनार्थ आने योग्य है। आप चंकि आढ्य, महाधनी, महा-भोगवाले हैं; इस अंगसे भी०। आप चंकि० तीनों वेदोंके पारंगत०। आप चंकि अभि-रूप=दर्शनीय=प्रासादिक परम-वर्ण-सुन्दरतासे युक्त, ब्रह्मवर्णवाले, ब्रह्मवर्चस्वी, दर्शनके लिए अल्प भी अवकाश न रखनेवाले०। आप चंकि शीलवान् वृद्धशील (=बढ़ी हुई शील वाले), से युक्त हैं०। आप चंकि कल्याण-वचन बोलनेवाले=कल्याण-वाक्करण=पौर (=नागरिक, सभ्य) वाणीसे युक्त···०। आप चंकि बहुतोंके आचार्य प्राचार्य हैं, तीन सौ

---

[1] म. नि. २:५:५। [2] पृष्ठ ३३।

माणवकोंको मंत्र पढ़ाते हैं०। आप चूंकि राजा प्रसेनजित् कोसलसे सत्कृत=गुरुकृत=मानित, पूजित=अर्चित हैं०। आप चूंकि पौष्करसाति ब्राह्मणसे० हैं०। आप चूंकि० ओपसादके स्वामी हो बसते हैं। इस अंगसे भी आप चूंकि श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य नहीं हैं। श्रमण गौतम ही आप चूंकिके दर्शनार्थ आने योग्य है।"

"तो भो! मेरी भी सुनो—(कैसे) हमी श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य हैं, वह आप श्रमण गौतम हमारे दर्शनार्थ आने योग्य नहीं हैं। भो! श्रमण गौतम दोनों ओरसे सुजात हैं०; इस अंगसे भी हमी श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य हैं, आप श्रमण गौतम हमारे दर्शनार्थ आने योग्य नहीं हैं। श्रमण गौतम बहुत सा भूमिस्थ और आकाशस्थ हिरण्य सुवर्ण छोड़कर, प्रव्रजित हुए हैं०। श्रमण गौतम बहुत काले केशवाले भद्रयौवनसे संयुक्त अतितरुण प्रथम वयसमें ही घरसे बेघर हो, प्रव्रजित हुये०। श्रमण गौतम माता-पिताको अनिच्छुक अश्रुमुख रोते हुए, (छोड़), शिर-दाढ़ी मुँड़ाकर, काषाय-वस्त्र पहिन, घरसे बेघर प्रव्रजित हुये०। श्रमण गौतम अभिरूप=दर्शनीय० ब्रह्मवर्चस्वी, दर्शनके लिए अल्प भी अवकाश न रखनेवाले०। श्रमण गौतम शीलवान्०। श्रमण गौतम कल्याण-वचन-बोलनेवाले०। श्रमण गौतम बहुतोंके आचार्य-प्राचार्य हैं०। ०काम-राग-विहीन०। प्रपंच-रहित०। श्रमण गौतम कर्मवादी क्रियावादी ब्राह्मण-संतानके निष्पाप अग्रणी हैं०। श्रमण गौतम अदीन क्षत्रिय-कुल, उच्च-कुलसे प्रव्रजित हुये०। ०महाधनी, महाभोगवान् आढ्य-कुलसे प्रव्रजित हुए०। श्रमण गौतमको देशके बाहरसे, राष्ट्रके बाहरसे भी (लोग) पूछनेको आते हैं०। श्रमण गौतमकी अनेक सहस्र देवता (अपने) प्राणोंसे शरणागत हुए हैं०। श्रमण गौतमका ऐसा मंगल कीर्ति-शब्द उठा हुआ है०।०। श्रमण गौतम बत्तीस महापुरुष-लक्षणोंसे युक्त हैं०। श्रमण गौतमकी राजा मागध श्रेणिक बिम्बसार पुत्र-दार-सहित '''ब्राह्मण पौष्करसाति०।०। श्रमण गौतम भो! ओपसादमें प्राप्त हुए हैं, ओपसादमें ०देववन शालवनमें विहार कर रहे हैं। जो कोई श्रमण या ब्राह्मण हमारे गाँव-खेतमें आते हैं, वह अतिथि होते हैं। अतिथि सत्करणीय=गुरुकरणीय=माननीय=पूजनीय है। चूंकि भो! श्रमण गौतम ओपसादमें प्राप्त हुये०। (अतः) हमारे अतिथि हैं। श्रमण गौतम अतिथि हो हमारे सत्करणीय०। इस अंगसे भी०। इतना ही भो! मैं उन आप गौतमका गुण कहता हूँ, लेकिन वह आप गौतम इतने ही गुणवाले नहीं हैं। वह आप गौतम अ-परिमाण-गुणवाले हैं। एक-एक अंगसे भी युक्त होनेपर, आप श्रमण गौतम हमारे दर्शन करनेके लिए आने योग्य नहीं हैं, बल्कि हमीं उन आप गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य हैं। इसलिए हम सभी श्रमण गौतमके दर्शनार्थ चलें।"

तब चंकि ब्राह्मण महान् ब्राह्मणोंके गणके साथ जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्के साथ '''संमोदन कर'''एक ओर बैठ गया।'''उस समय भगवान् वृद्ध वृद्ध ब्राह्मणोंके साथ कुछ (बात करते) बैठे हुये थे।

उस समय कापथिक नामक तरुण, मुंडित-शिर, जन्मसे सोलहवर्षका, '''तीनों वेदोंका पारंगत माणवक परिषद्में बैठा था। वह बूढ़े-बूढ़े ब्राह्मणोंके भगवान्के साथ बातचीत करते समय, बीच बीचमें बोल उठता था। तब भगवान्ने कापथिक माणवकको मना किया।

"आयुष्मान् भारद्वाज! बूढ़े बूढ़े ब्राह्मणोंके बात करनेमें बात मत डालो। आयुष्मान् भारद्वाज! कथा समाप्त होने दो।"

(भगवान्‌के) ऐसा कहनेपर चंकि ब्राह्मणने भगवान्‌को कहा—

"आप गौतम कापथिक माणवकको मत टोकें; कापथिक माणवक कुल-पुत्र(=कुलीन) है०, बहुश्रुत है०, सुवक्ता०, पंडित०। कापथिक माणवक आप गौतमके साथ इस बातमें वाद कर सकता है।"

तब भगवान्‌को हुआ—अवश्य कापथिक माणवककी कथा त्रिवेद-प्रवचन (=वेदाध्ययन) संबंधी होगी, जिससे कि ब्राह्मण इसे आगे कर रहे हैं। उस समय कापथिक माणवकको (विचार) हुआ—'जब श्रमण गौतम मेरी आँखकी ओर आँख लायेगा, तब मैं श्रमण गौतमको प्रश्न पूछूँगा'। तब भगवान्‌ने (अपने) चित्तसे कापथिक माणवकके चित्त-वितर्कको जानकर, जिधर कापथिक माणवक था, उधर (अपनी) आँख फेरी। तब कापथिक माणवकको हुआ—'श्रमण गौतम मुझे देख रहा है, क्यों न मैं श्रमण गौतमको प्रश्न पूछूँ?' तब कापथिक माणवकने भगवान्‌से कहा—

"हे गौतम! जो यह ब्राह्मणोंका पुराना मंत्रपद (=वेद) इस परम्परासे, 'पिटक (=वचन समूह) सम्प्रदायसे है। उसमें ब्राह्मण पूर्णरूपसे निष्ठा (=श्रद्धा) रखते हैं—'यही सत्य है, और सब झूठा'। इस विषयमें आप गौतम क्या कहते हैं?"

"क्या भारद्वाज! ब्राह्मणोंमें एक भी ब्राह्मण है, जो कहे—मैं इसे जानता हूँ, इसे देखता हूँ, यही सच है, और झूठ है?" "नहीं, हे गौतम!"

"क्या भारद्वाज! ब्राह्मणोंका एक आचार्य भी०, एक आचार्य-प्राचार्य भी, परमाचार्यों की सात पीढ़ी तकभी०। ब्राह्मणोंके पूर्वज ऋषि, ०अट्टक, वामक०, उन्होंने भी, क्या कहा—'हम इसको जानते हैं, हम इसको देखते हैं, यही सच है और झूठ है?"

"नहीं, हे गौतम!"

इस प्रकार भारद्वाज! ब्राह्मणोंमें एकभी ब्राह्मण नहीं है, जो कहे०।०। जैसे भारद्वाज! अंध-वेणु-परंपरा (=अंधोंकी लड़कीका ताँता) लगी हो, पहिलेवाला भी नहीं देखता, बीचका भी नहीं देखता, पिछला भी नहीं देखता। ऐसेही भारद्वाज! ब्राह्मणोंका कथन अंध-वेणु (=अंधेकी लड़की) के समान है, पहिलेवालाभी नहीं देखता, बीचका भी नहीं देखता, पिछला भी नहीं देखता। तो क्या मानते हो, भारद्वाज! क्या ऐसा होनेपर ब्राह्मणोंकी श्रद्धा अ-मूलक नहीं हो जाती?"

"हे गौतम! नहीं, ब्राह्मण श्रद्धाहीकी उपासना नहीं करते, अनुश्रव (=श्रुति) की भी उपासना करते हैं।"

"पहिले भारद्वाज! तू श्रद्धा (=निष्ठा) पर पहुँचा था, अब अनुश्रव कहता है। भारद्वाज! यह पाँच धर्म इसी जन्ममें दो प्रकारके विपाक (=फल) देनेवाले हैं। कौनसे पाँच? (१) श्रद्धा, (२) रुचि, (३) अनुश्रव, (४) आकार-परिवितर्क, (५) दृष्टि-निध्यानाक्ष (=दिट्ठिनिज्झानक्खन्ति)। भारद्वाज! यह पाँच धर्म इसी जन्ममें दो प्रकारके विपाक देनेवाले हैं। भारद्वाज! सुन्दर-तौरसे श्रद्धा किया भी रिक्त=तुच्छ और मृषा हो सकता है, सुश्रद्धा

१. अ. क. "(अट्टक आदि ऋषियोंने) दिव्य-चक्षुसे देखकर भगवान् काश्यप सम्यक्-संबुद्धके वचनके साथ मिलाकर, मंत्रोंको पर-हिंसा-शून्य ग्रथित किया था। उसमें दूसरे ब्राह्मणोंने प्राणि-हिंसा आदि डालकर तीन वेद बना, बुद्ध-वचनसे विरुद्ध कर दिया।"

न किया भी यथार्थ=तथ्य=अन्-अन्यथा हो सकता है। सुरुचि किया भी०। सु-अनुश्रुत किया भी०। सु-परिवितर्क किया भी०। सु-निध्यान किया भी० रिक्त=तुच्छ और मृषा हो सकता है। सु-निध्यान न किया भी यथार्थ=तथ्य=अनन्यथा हो सकता है।. भारद्वाज! सत्यानुरक्षक विज्ञ पुरुषको यहाँ एकांशसे (सोलहो आना) निष्ठा करना योग्य नहीं है, कि— 'यही सत्य है, और बाकी मिथ्या है।''

"हे गौतम! सत्यानुरक्षा (=सत्यकी रक्षा) कैसे होती है? सत्यका अनुरक्षण कैसे किया जाता है, हम आप गौतमको सत्यानुरक्षण पूछते हैं?"

"भारद्वाज! पुरुषको यदि श्रद्धा होती है 'यह मेरी श्रद्धा है', कहते सत्यकी अनुरक्षा करता है। किंतु यहाँ एकांशसे निष्ठा नहीं करता—'यही सत्य है और (सब) झूठा।' भारद्वाज! यदि पुरुषको रुचि होती है। 'यह मेरी रुचि है' कहते सत्यकी अनुरक्षा करता है, किंतु यहाँ एकांशसे निष्ठा नहीं करता—'यही सत्य है और झूठा।'

"भारद्वाज! यदि पुरुषको अनुश्रव होता है। 'यह मेरा अनुश्रव है', कहते सत्यकी अनुरक्षा करता है। किंतु यहाँ एकांशसे निष्ठा नहीं करता—'यही सत्य है, और झूठा।' भारद्वाज! यदि पुरुषको आकार-परिवितर्क होता है, 'यह मेरा आकार-वितर्क है' कहते सत्यकी अनुरक्षा करता है। किन्तु यहाँ एकांशसे निष्ठा नहीं करता—'यही सत्य है, और झूठ।' भारद्वाज! यदि पुरुषको दृष्टि-निध्यायनाक्ष होता है, 'यह मेरा दृष्टि-निध्यायनाक्ष' कहते सत्यकी अनुरक्षा करता है। किंतु, यहाँ एकांशसे निष्ठा नहीं करता 'यही सत्य है और झूठा।' इतनेसे भारद्वाज सत्य-अनुरक्षण होता है। इतनेसे सत्यकी अनुरक्षाकी जाती है। इतनेसे हम सत्यका अनुरक्षण (= रक्षण) प्रज्ञापित करते हैं; किंतु (इतनेसे) सत्यका अनुबोध (= बोध) नहीं होता।"

"हे गौतम! *इतनेसे सत्यानुरक्षण होता है, इतनेसे सत्यकी अनुरक्षाकी जाती है;* इतनेसे सत्यका रक्षण हम भी देखते हैं। हे गौतम! सत्यका बोध कितनेसे होता है, कितनेसे सत्य बूझता है। हे गौतम! हम इसे आपसे पूछते हैं।"

"भारद्वाज! भिक्षु किसी ग्राम या निगमको आश्रयकर विहरता है। (कोई) गृहपति (=गृहस्थ) या गृहपति-पुत्र जाकर लोभ, द्वेष, मोह (इन) तीन धर्मोंके विषयमें उसकी परीक्षा करता है—'क्या इस आयुष्मान्‌को वैसा लोभनीय धर्म (=बात) है, जिस प्रकारके लोभ सम्बन्धी धर्मके कारण न जानते 'जानता हूँ' कहे; न देखते 'देखता हूँ' कहे। या वैसा उपदेश करे, जो दूसरोंके लिये दीर्घकाल तक अहित और दुःखके लिये हो। इस आयुष्मान्‌का काय-समाचार (=कायिक-आचरण) (और) वचन-समाचार (=वाचिक-आचरण) वैसा है, जैसा कि अलोभीका। (या) यह आयुष्मान् जिस धर्मका उपदेश करते हैं (क्या) यह धर्म गंभीर, दुर्दर्श=दुर्बोध, शांत, प्रणीत (=उत्तम), अतर्कावचर (=तर्कसे अप्राप्य) निपुण=पंडित-वेदनीय है? यह धर्म लोभी-द्वारा उपदेश करना सुगम (तो) नहीं है?"

"जब जाँचते हुये लोभ-संबंधी धर्मोंसे (उसे) विशुद्ध पाता है। तब आगे द्वेष-सम्बन्धी धर्मोंके विषयमें उसकी परीक्षा करता है—'क्या इस आयुष्मान्‌को वैसा द्वेष-सम्बन्धी धर्म है०; यह धर्म, द्वेषी द्वारा उपदेश करना (तो) सुगम नहीं?"

"जब परीक्षा करते हुये, द्वेष-सम्बन्धी धर्मोंसे उसे विशुद्ध पाता है। तब आगे

मोह-संबन्धी धर्मोंके विषयमें उसको टटोलता है—'क्या इस आयुष्मान्‌को वैसा मोह-संबन्धी धर्म तो है०, वह धर्म०, मोही (=मूढ़) द्वारा उपदेश करना सुगम (तो) नहीं ?

"जब टटोलते हुये उसे लोभनीय, द्वेषनीय, मोहनीय धर्मोंसे विशुद्ध पाता है; तब उसमें श्रद्धा स्थापित करता है। श्रद्धावान् हो पास जाता है, पास जाके परि-उपासन (=सेवन) करता है। पर्युपासना करके कान लगाता है, कान लगाके धर्म सुनता है। सुनकर धर्मको धारण करता है। धारण किये हुये धर्मोंके अर्थकी परीक्षा करता है। अर्थकी परीक्षा करके धर्म निध्यान करने लायक होते हैं। धर्मके निध्यान (=ध्यान) योग्य होनेसे स्मृति रुचि (=छन्द) उत्पन्न होती है। छन्दवाला (= रुचिवाला) उत्साह (= प्रयत्न) करता है। उत्साह करते तोलन करता है। तोलन करते पराक्रम (=पदहन) करता है। पराक्रमी हो, इसी कायामें ही परम-सत्यका साक्षात्कार (=दर्शन) करता है, प्रज्ञासे उसे बेधकर देखता है। इतनेसे भारद्वाज ! सत्य-बोध होता है, इतनेसे सच बूझता है। इतनेसे हम सत्य-अनुबोध बतलाते हैं, किन्तु (इतनेहीसे) सत्य-अनुपत्ति नहीं होती।"

"हे गौतम ! इतनेसे सत्यानुबोध होता है, इतनेसे सच बूझता है, इतनेसे हम भी सत्यानुबोध देखते हैं। परन्तु हे गौतम ! सत्य-अनुपत्ति कितनेसे होती है, कितनेसे सचको पाता है, हम आप गौतमसे सत्यानुपत्ति (=सत्य-प्राप्ति) पूछते हैं ?"

"भारद्वाज ! उन्हीं धर्मोंके सेवने, भावना करने, बढ़ानेसे सत्य की प्राप्ति होती है। इतनेसे भारद्वाज सत्य-प्राप्ति होती है, सचको पाता है, इतनेसे हम सत्य-प्राप्ति बतलाते हैं।"

"इतनेसे हे गौतम ! सत्य-प्राप्ति होती है० हम भी इतनेसे सत्य-प्राप्ति देखते हैं। हे गौतम ! सत्य-प्राप्तिका कौन धर्म अधिक उपकारी (=बहुकार) है, सत्य-प्राप्तिके लिये अधिक उपकारी धर्मको हम आप गौतमसे पूछते हैं।"

'भारद्वाज ! सत्य-प्राप्तिका बहुकारी धर्म 'प्रधान' है। यदि प्रधान (=प्रयत्न) न करे, तो सत्यको (भी) प्राप्त न करे। चूँकि 'प्रधान' करता है।, इसीलिये सचको पता है, इसलिये सत्य-प्राप्तिके लिये बहुकारी धर्म 'प्रधान' है।"

"प्रधानके लिये हे गौतम ! कौन धर्म बहुकारी है। प्रधानके बहुकारी धर्मको हम आप गौतमसे पूछते हैं ?"

"भारद्वाज ! प्रधानका बहुकारी उत्थान है, यदि उत्थान (=उद्योग) न करे, तो प्रधान नहीं कर सकता। चूँकि उत्थान करता है, इसलिये प्रधान करता है। इसलिये उत्थान प्रधानका बहुकारी है।"

"०।० उत्साह उत्थान का बहुकारी।" "०।० छन्द उत्साहका०।" "०।० धम्म-निज्झानक्ख • (=धर्म निध्यानाक्ष) छन्दका०।" "अर्थ उपरीक्षा (= अर्थका परीक्षण) धर्म-निध्यानाक्षका०।" "०।० धर्म-धारण०।" "धर्म-श्रवण०।" "०।० कान लगाना (= श्रोत्र-अवधान) ०।" 'पर्युपासन (= सेवा) ०।" "०।० पास जाना०।" "०।० श्रद्धा०।"

"सत्य-अनुरक्षणको हमने आप गौतमसे पूछा। आप गौतमने सत्यानुरक्षण हमें बतलाया, वह हमें रुचता भी है, = खमता भी है। उससे हम सन्तुष्ट हैं। सत्य-अनुबोध (= सचको बूझना)को हमने आप गौतमसे पूछा।०। सत्य-प्राप्ति०।०। सत्य-प्राप्तिके बहुकारी

भगवान्‌ने, यह कहा—महानाम शाक्यने सन्तुष्ट हो भगवान्‌के भाषणका अभिनन्दन किया ।

× × ×

कुटदन्त-सुत्त (ई. पू. ५१४) ।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय पाँच सौ भिक्षुओंके महान् भिक्षु-संघके साथ भगवान् मगध-देशमें चारिका करते, जहाँ खाणुमत नामका मगधोंका ब्राह्मण-ग्राम था, वहाँ गये । वहाँ भगवान् खाणुमतमें अम्बलट्ठिका (= आम्रयष्टिका) में विहार करते थे ।

उस समय कुटदंत ब्राह्मण, जनाकीर्ण, तृण-काष्ठ-उदक-धान्य-संपन्न राज-भोग्य राजा मागध श्रेणिक बिंबसार-द्वारा दत्त, राज-दाय, ब्रह्मदेय खाणुमतका स्वामी होकर रहता था ।' उस समय कुटदन्त ब्राह्मणको महायज्ञ उपस्थित हुआ था । सात सौ बैल, सात सौ बछड़े सात सौ बछियाँ, सात सौ बकरियाँ, सात सौ भेड़ें यज्ञके लिये स्थूण (=खम्भे) पर लाई गई थीं ।

खाणुमत-वासी ब्राह्मण गृहपतियोंने सुना—शाक्य-कुलसे प्रव्रजित शाक्य-पुत्र श्रमण गौतम० अम्बलट्ठिकामें विहार करते हैं । उन आप गौतमका ऐसा मंगलकीर्ति-शब्द उठा हुआ[2]० । इस प्रकारके अर्हतोंका दर्शन अच्छा होता है । तब खाणुमतके ब्राह्मण गृहपति खाणु-मतसे निकलकर, झुण्डके झुण्ड जिधर अम्बलट्ठिका थी, उधर जाने लगे । उस समय कुटदंत ब्राह्मण प्रासादके ऊपर, दिनके शयनके लिये गया हुआ था । कुटदन्त ब्राह्मणने झुण्डके झुण्ड खाणुमतके ब्राह्मण-गृहस्थोंको खाणुमतसे निकलकर, जिधर अम्बलट्ठिका थी, उधर जाते देखा । देखकर क्षत्ता (=सचिव) को संबोधित किया—

"क्या है, हे क्षत्ता ! (जो) ०खाणुमतके ब्राह्मण-गृहस्थ० अम्बलट्ठिका जा रहे हैं ?"

"भो ! शाक्यकुल-प्रव्रजित० श्रमण गौतम० अम्बलट्ठिकामें विहार कर रहे हैं । उन गौतमका ऐसा मंगल कीर्तिशब्द उठा हुआ है० । उन्हीं आप गौतमके दर्शनार्थ जा रहे हैं ।"

तब कुट-दन्त ब्राह्मणको हुआ—'मैंने यह सुना है, कि श्रमण गौतम सोलह परिष्कारों-वाली त्रिविध यज्ञ-संपदाको जानता है । मैं महायज्ञ यजन करना चाहता हूँ । क्यों न श्रमण गौतमके पास चलकर, सोलह परिष्कारोंवाली त्रिविध यज्ञ-संपदाको पूछूँ ?' तब कुटदंत ब्राह्मणने क्षत्ताको संबोधित किया—

"तो हे क्षत्ता ! जहाँ खाणुमतके ब्राह्मण-गृहपति हैं, वहाँ जाओ । जाकर खाणुमतके ब्राह्मण-गृहपतियोंको ऐसा कहो—कुटदन्त ब्राह्मण ऐसा कह रहा है 'थोड़ी देर आप लोग ठहरें, कुटदन्त ब्राह्मण भी श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जायेगा ।"

"कुटदन्त ब्राह्मणको 'अच्छा भो !' कह क्षत्ता वहाँ गया, जहाँ खाणुमतके ब्राह्मण गृहपति थे । जाकर० यह कहा—'कुटदन्त०' ।

उस समय कई सौ ब्राह्मण कुटदन्तके महायज्ञको भोगनेके लिये खाणुमतमें वास करते

---

१. दी. नि. १।५ । २. पृष्ठ ३३ ।

थे। उन ब्राह्मणोंने सुना—कुटदन्त ब्राह्मण श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जायेगा। तब वह ब्राह्मण जहाँ कुटदन्त था वहाँ गये। जाकर कुटदन्त ब्राह्मणको बोले—

"सचमुच आप कुटदन्त श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जानेवाले हैं?"

"हाँ भो! मुझे यह (विचार) हो रहा है (कि) मैं भी श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाऊँ।"

"आप कुटदन्त श्रमण गौतमके दर्शनार्थ मत जायें। आप कुटदन्तको श्रमण गौतमके दर्शनार्थ नहीं जाने योग्य हैं। यदि आप कुटदन्त श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जायँगे, (तो) आप कुटदन्तका यश क्षीण होगा, श्रमण गौतमका यश बढ़ेगा। क्योंकि आप कुटदन्तका यश क्षीण होगा, श्रमण गौतमका यश बढ़ेगा, इस बात (=अंग) से भी आप कुटदन्त श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य नहीं हैं। श्रमण गौतम ही आप कुटदंतके दर्शनार्थ आने योग्य है०[1]। आप कुटदन्त बहुतोंके आचार्य-प्रचार्य हैं, तीन सौ माणवकोंको मंत्र (=वेद) पढ़ाते हैं। नाना दिशाओंसे, नाना देशोंसे बहुतसे माणवक मंत्रके लिये, मंत्र-पढ़नेके लिये, आप कुटदंतके पास आते हैं०। आप कुटदन्त जीर्ण=वृद्ध=महल्लक=अध्वगत=वयःप्राप्त हैं। यह गौतम तरुण है, तरुण साधु है०। आप कुटदंत राजा मागध श्रेणिक बिंबसारसे सत्कृत=गुरुकृत=मानित=पूजित=अपचित हैं०। आप कुटदंत ब्राह्मण पौष्करसातिसे सत्कृत० हैं०। आप कुटदंत ०खाणुमतके स्वामी हैं। इस अंग(=कारण)से भी आप कुटदन्त श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य नहीं हैं, श्रमण गौतम ही आपके दर्शनार्थ आने योग्य है।"

ऐसा कहनेपर कुटदन्त ब्राह्मणने, उन ब्राह्मणोंको यह कहा—

"तो भो! मेरी भी सुनो, कि क्यों हमीं श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य हैं, आप श्रमण गौतम हमारे दर्शनार्थ आने योग्य नहीं है। श्रमण गौतम भो! दोनों ओरसे सुजात हैं०; इस अंगसे भी हमीं श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य हैं, आप श्रमण गौतम हमारे दर्शनार्थ आने योग्य नहीं हैं। श्रमण गौतम बड़े भारी जाति-संघको छोड़कर प्रब्रजित हुये हैं०[1]। श्रमण गौतम शीलवान् आर्यशील-युक्त कुशल शीली=अच्छे शीलसे युक्त०। श्रमण गौतम सुवक्ता=कल्याण-वाक्करण०। श्रमण गौतम बहुतोंके आचार्य-प्रचार्य०। ०काम-राग-रहित, चपलता-रहित०। ०कर्मवादी क्रियावादी०। ब्राह्मण, संतानके निष्पाप अग्रणी०। ०अभिन्न उच्चकुल क्षत्रियकुलसे प्रब्रजित०। ०आढ्य, महाधनी, महाभोगवान् कुलसे प्रब्रजित०। ०दूसरे राष्ट्रों दूसरे जनपदोंसे पूछनेके लिये आते हैं०। ०अनेक सहस्र देवता प्राणोंसे शरणागत हुये०। श्रमण गौतमके लिये ऐसा मंगल-कीर्ति शब्द उठा हुआ है—कि वह भगवान्०[2]। श्रमण गौतम बत्तीस महापुरुष-लक्षणोंसे युक्त हैं०। श्रमण गौतम 'आओ, स्वागत' बोलनेवाले,... संमोदक, अभ्राकुटिक (=अकुटिलभ्रू), उत्तान-मुख, पूर्वभाषी०। ०चारों परिषदोंमें सत्कृत=गुरुकृत००। श्रमण गौतममें बहुतसे देव और मनुष्य श्रद्धावान् हैं०। श्रमण गौतम जिस ग्राम या नगरमें विहार करते हैं, उसे अ-मनुष्य (=देव, भूत आदि) नहीं सताते०। श्रमण गौतम संघी (=संघाधिपति), गणी, गणाचार्य, बड़े तीर्थंकरों (=संप्रदाय-स्थापकों)में प्रधान कहे जाते हैं०। जैसे किसी किसी श्रमण ब्राह्मणका यश, जैसे कैसे हो जाता है, उस तरह श्रमण गौतमका यश नहीं हुआ है। अनुत्तर (=अनुपम) विद्या-चरण-संपदासे श्रमण

---

१. देखो पृष्ठ २०७। २. पृष्ठ ३३।

गौतमका यश उत्पन्न हुआ । श्रमण गौतमकी, भो ! पुत्र सहित, भार्या सहित, अमात्य सहित राजा मागध श्रेणिक बिंबिसार प्राणोंसे शरणागत हुआ है० । ०राजा प्रसेनजित् कोसल० ।

०ब्राह्मण पौष्करसाति० । श्रमण गौतम राजा० बिंबिसारसे सत्कृत०० । ०राजा प्रसेनजित्०० । ०ब्राह्मण पौष्करसाति०० । श्रमण गौतम खाणुमतमें आये हैं । खाणुमतमें अम्बलट्ठिकामें विहार करते हैं । जो कोई श्रमण या ब्राह्मण हमारे गाँव खेतमें आते हैं, वह (हमारे) अतिथि होते हैं । अतिथि हमारा सत्करणीय=गुरुकरणीय=माननीय=पूजनीय है । चूँकि भो ! श्रमण गौतम खाणुमतमें आये हैं० । श्रमण गौतम हमारे अतिथि हैं । अतिथि हमारा सत्करणीय० है । इस अंगसे भी० । भो ! मैं श्रमण गौतमके इतने ही गुणोंको कहता हूँ, लेकिन यह आप गौतम इतने ही गुणवाले नहीं हैं; आप गौतम अ-परिमाणगुणवाले हैं ।"

इतना कहनेपर उन ब्राह्मणोंने कुटदन्त ब्राह्मणको कहा—

"जैसे आप कुटदन्त श्रमण गौतमका गुण कहते हैं, (तब तो) यदि यह आप गौतम यहाँसे सौ योजनपर भी हों, तो भी पाथेय बाँधकर, श्रद्धालु कुलपुत्रको दर्शनार्थ जाना चाहिये । तो भो ! हम सभी श्रमण गौतमके दर्शनार्थ चलेंगे ।"

तब कुटदन्त ब्राह्मण महान् ब्राह्मण गणके साथ, जहाँ अम्बलट्ठिका थी, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान्‌के साथ संमोदन किया···। खाणुमतके ब्राह्मण गृहपतियोंमें भी कोई कोई भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये; कोई कोई संमोदकर...०। ०जिधर भगवान् थे, उधर हाथ जोड़कर०; ०चुपचाप एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठे हुये कुटदन्त ब्राह्मणने भगवान्‌को कहा—

"हे गौतम ! मैंने सुना है कि—श्रमण गौतम सोलह परिष्कार-सहित त्रिविध यज्ञ-संपदाको जानते हैं । भो ! मैं सोलह परिष्कार-सहित त्रिविध यज्ञ-संपदाको नहीं जानता । मैं महायज्ञ करना चाहता हूँ । अच्छा हो यदि आप गौतम, सोलह परिष्कार-सहित त्रिविध यज्ञ-संपदाका मुझे उपदेश करें ।"

"तो ब्राह्मण ! सुन, अच्छी तरह मनमें कर, कहता हूँ ।"

"अच्छा भो !" कुटदन्त ब्राह्मणने भगवान्‌को कहा । भगवान् बोले—

"पूर्व-कालमें ब्राह्मण ! महाधनी, महाभोगवान्, बहुत-सोना-चाँदीवाला, बहुत-वित्त-उपकरण (=साधन)वाला, बहुधन-धान्यवान्, भरे कोश-कोष्ठागारवाला, महाविजित नामक राजा था । ब्राह्मण ! (उस) राजा महाविजितको एकान्तमें विचारते चित्तमें यह ख्याल उत्पन्न हुआ—'मुझे मनुष्योंके विपुल भोग मिले हैं, (मैं) महान् पृथिवी-मंडलको जीतकर शासन करता हूं । क्यों न मैं महायज्ञ करूँ, जो कि चिरकालतक मेरे हित-सुखके लिये हो ।' तब ब्राह्मण ! राजा महाविजितने पुरोहित ब्राह्मणको बुलाकर कहा—ब्राह्मण ! यहाँ एकांत में बैठ विचारते, मेरे चित्तमें यह ख्याल उत्पन्न हुआ—०क्यों न मैं महायज्ञ करूँ० । ब्राह्मण ! मैं महायज्ञ करना चाहता हूँ । आप मुझे अनुशासन करें, जो चिरकाल तक मेरे हित-सुखके लिये हो ।' ऐसा कहनेपर ब्राह्मण ! पुरोहित ब्राह्मणने राजा महाविजितको कहा—'आप···का देश सकंटक, उत्पीड़ा-सहित है—(नगरमें) ग्राम-घात (=ग्रामोंकी लूट) भी दिखाई पड़ते हैं, बटमारी भी देखी जाती है । आप···ऐसे सकंटक उत्पीड़ा-सहित जनपदमें बलि (=कर) लेते हैं । इससे आप इस (देश)के अकृत्य-कारी हैं । शायद आप···का

(विचार) हो, दस्यु कीलको हम वध, बंधन, हानि, निर्वासनसे उखाड़ देंगे। लेकिन इस दस्यु कील (= लूट-पाट रूपी कील) को, इस प्रकार अच्छी तरह नहीं उखाड़ा जा सकता। जो मारनेसे बच रहेंगे, वह पीछे राजाके जनपदको सतायेंगे। यह दस्युकील इस उपायसे भली प्रकार उन्मूलन होसकता है : राजन्! जो कोई आपके जनपदमें कृषि-गोपालन करनेका उत्साह रखते हैं, उनको आप बीज और भोजन सम्पादित करें। वाणिज्य करनेका उत्साह रखते हैं, उन्हें आप···पूँजी (= प्राभृत) दें। जो राज-पुरुषाई (= राजाकी नौकरी) करनेका उत्साह रखते हैं, उन्हें आप भत्ता-वेतन (= भत्त-वेतन) दें। (इस प्रकार) वह लोग अपने काममें लगे, राजाके जनपदको नहीं सतायेंगे। आप···को महान् (धन-धान्यकी) राशि (प्राप्त) होगी, जनपद (=देश) भी पीड़ा-रहित, कंटक-रहित क्षेम-युक्त होगा। मनुष्य भी गोदमें पुत्रोंको नचातेसे, खुले घर विहार करेंगे।' राजा महाविजितने पुरोहित ब्राह्मणको 'अच्छा भो ब्राह्मण!' कह, जो राजाके जनपदमें कृषि-गोरक्षामें उत्साही थे, उन्हें राजाने बीज भत्ता संपादित किया। जो राजाके जनपदमें वाणिज्यमें उत्साही थे, उन्हें पूँजी सम्पादित की। जो राजाके जनपदमें राज-पुरुषाईमें उत्साही थे, उनको भत्ता-वेतन ठीककर दिया। उन मनुष्योंने अपने अपने काममें लग, राजाके जनपदको नहीं सताया। राजाको महाराशि मिली। जनपद अकंटक अपीडित क्षेम-स्थित होगया। मनुष्य हर्षित, मोदित, गोदमें पुत्रोंको नचातेसे खुले घर विहार करने लगे।

"ब्राह्मण! तब राजा महाविजितने पुरोहित ब्राह्मणको बुलाकर कहा—'भो! मैंने दस्यु-कील उखाड़ दिया। मेरे पास महाराशि है०। हे ब्राह्मण! मैं महायज्ञ करना चाहता हूँ। आप मुझे अनुशासन करें, जो कि चिरकाल तक मेरे हित-सुखके लिये हो'। 'तो आप! ···जो आपके जनपदमें जानपद (=ग्राम के), नैगम (=शहर-कस्बेके) अनुयुक्त क्षत्रिय हैं, आप उन्हें कहें—'मैं भो! महायज्ञ करना चाहता हूँ, आप लोग मुझे अनुज्ञा (= आज्ञा) करें, जो कि मेरे चिरकालतक हित-सुखके लिये हो'। जो आपके जनपदमें जानपद या नैगम अमात्य (=अधिकारी) पारिषद्य (=सभासद्)०। जनपद में जानपद या नैगम ब्राह्मण महाशाल (= प्रतिष्ठित-धनी)०। ०जानपद या नैगम गृहपति (=वैश्य) नैचयिक०। राजा महाविजितने ब्राह्मण पुरोहितको 'अच्छा भो' कहकर, जो राजाके जनपदमें० अनुयुक्त क्षत्रिय०' अमात्य पारिषद्य०, ०ब्राह्मण महाशाल०, ०गृहपति नैचयिक (= धनी) थे, उन्हें आमंत्रित किया—'भो! मैं महायज्ञ करना चाहता हूँ, आप लोग मुझे अनुज्ञा करें, जो कि चिरकाल तक मेरे हित-सुखके लिये हो'। 'राजा! आप यज्ञ करें महाराज यह यज्ञका काल है।' यह चारों अनुमति-पक्ष उसी यज्ञके (चार) परिष्कार होते हैं।

"(वह) राजा महाविजित आठ अंगोंसे युक्त था। (१) दोनों ओरसे सुजात० (२) अभिरूप = दर्शनीय० महावर्णी=महावृद्धि, दर्शनके लिये अवकाश न रखने वाला। (३) ०शील-वान्०। (४) आढ्य महाधनवान् महाभोग-वान्, बहुत चाँदी-सोने वाला, बहुत वित्त उपकरणवाला, बहुत धन-धान्यवाला, परिपूर्ण-कोश-कोष्ठागारवाला, (५) बलवती चतुरंगिनी सेनासे युक्त, अस्सव (=आश्रव) के लिये अववाद-प्रतिकार (= ओवाद-पतिकार) के लिये यशसे मानों शत्रुओंको तपातासा था। (६) श्रद्धालु दायक=दानपति श्रमण-ब्राह्मण दरिद्र-अधिक (= मंगता) वन्दीजन (=पणिब्बक) याचकोंके लिये खुले-द्वार-वाला प्याउ-सा हो, पुण्य

करता था। (७) बहुश्रुत–सुने हुओं, कहे हुओंका अर्थ जानता–था–'इस कथन का यह अर्थ है, इस कथनका यह अर्थ है'। (८) पंडित=व्यक्त मेधावी, भूत-भविष्य-वर्तमान संबंधी बातोंको सोचनेमें समर्थ। राजा महाविजित, इन आठ अंगोंसे युक्त (था)। यह आठ अंग उसी यज्ञके आठ परिष्कार हैं।

"पुरोहित ब्राह्मण चार अंगोंसे युक्त (था)।—(१) दोनों ओरसे सुजात०। (२) अध्यापक मंत्र-धर०। त्रिवेद-पारंगत० (३) शीलवान्०। (४) पंडित=व्यक्त मेधावी० स्रुवा (=दक्षिणा) ग्रहण करने वालोंमें प्रथम या द्वितीय था। पुरोहित ब्राह्मण इन चार अंगोंसे युक्त (था)। यह चार अंग भी उसी यज्ञके परिष्कार होते हैं।

"तब ब्राह्मण! पुरोहित ब्राह्मणने पहिले राजा महाविजितको तीन विधोंका उपदेश किया (१) यज्ञकरनेकी इच्छा वाले आप···को शायद कहीं अफसोस हो—'बड़ी धन-राशि चली जायेगी, सो आप राजाको यह अफसोस न करना चाहिये। (२) यज्ञ करते हुये आप राजाको शायद कहीं अफसोस हो–'बड़ी धन-राशि चली गई,' सो यह अफसोस आपको न करना चाहिये। ब्राह्मण! इस प्रकार पुरोहित ब्राह्मणने राजामहाविजितको यज्ञसे पहिले तीन विध बतलाये।

"तब ब्राह्मण! पुरोहित ब्राह्मणने यज्ञसे पूर्वही राजा महाविजितके (हृदयसे) प्रतिग्राहकों के प्रति (उत्पन्न होनेकी सम्भावना वाले) इस प्रकारके विप्रतिसार (=चित्तको बुरा करना) हटाये-(१) आपके यज्ञमें प्राणातिपाती (=हिंसारत) भी आयेंगे, प्राणातिपात–विरत (=अहिंसारत) भी। जो प्राणातिपाती हैं, (उनका प्राणातिपात) उन्हींके लिये है, जो यह प्राणातिपात विरत हैं, उनके प्रति आप यजन करें, मोदन करें, आप अपने चित्तको भीतरसे प्रसन्न (=स्वच्छ) करें। (२) आपके यज्ञमें अदिन्नादायी (=चोर) भी आयेंगे, अदिन्नादान-विरत (=अचोर) भी। जो यहाँ चोर हैं, वह अपने लिये हैं, जो यहाँ अचोर हैं, उनके प्रति आप यजन करें, मोदन करें, आप अपने चित्तको भीतरसे प्रसन्न करें। (३)० काम-मिथ्याचारी (=व्यभिचारी)० अ-व्यभिचारी भी०। (४) ०मृषावादी (=झूठे)०, मृषावाद–विरत भी०। (५)० पिशुन–वाची (=चुगुल-खोर)०, पिशुन-वचन-विरत भी०। (६)० परुष-वाची (=कटु-वचनवाले)०, परुष-वचन-विरत भी०। (७)० संप्रलापी (=बकवादी)०, संप्रलाप–विरत भी०। (८)० अभिध्यालु (=लोभी)०, अभिध्या-विरत भी०। (९)० व्यापन्न–चित्त (=द्रोही)० अ-व्यापन्न-चित्त-भी०। (१०)० मिथ्यादृष्टि (=झूठे सिद्धांतवादी)०, सम्यग्-दृष्टि (=सत्य-सिद्धांतवादी) भी। जो यहां मिथ्यादृष्टि हैं, अपनेही लिये हैं, जो यहां सम्यग्-दृष्टि हैं, उनके प्रति आप यजन करें, मोदन करें। आप अपने चित्तको भीतरसे प्रसन्न करें। ब्राह्मण! पुरोहित ब्राह्मणने यज्ञसे पूर्वही राजा महाविजितके (हृदयसे) प्रतिग्राहकों (=दानलेने वालों के प्रति (उत्पन्न होनेवाले) इस दस प्रकार के विप्रतिसार (=चित्त-मलिनता) अलग कराये।

"तब ब्राह्मण! पुरोहित ब्राह्मणने यज्ञ करते वक्त राजा महाविजितके चित्तका सोलह प्रकारसे सन्दर्शन=समादपन=समुत्तेजन=संप्रहर्षण किया—(१) शायद यज्ञ करतेहुये आप राजाको कोई कहनेवाला हो–राजा महाविजित महायज्ञ कर रहा है, किंतु उसने नैगम-जानपद अनुयुक्त-क्षत्रियों=मांडलिक या जागीरदार राजाओंको आमंत्रित नहीं किया, तो भी यज्ञ कर रहा है। ऐसा भी आपको धर्मसे कहनेवाला कोई नहीं है। आप···नैगम (=शहरी) जानपद

(=दीहाती) अनुयुक्त-क्षत्रियोंको आमंत्रित कर चुके हैं। इससे भी आप इसको जानें। आप यजन करें, आप मोदन करें, आप अपने चित्तको भीतरसे प्रसन्न करें। (२) शायद० कोई बोलनेवाला हो—०नैगम जानपद आमात्यों (=अधिकारी अफसर), पार्षदों (=सभासद्) को आमंत्रित नहीं किया०। (३)००ब्राह्मण महाशालों०। (४)००नैचयिक गृहपतियों (=धनी, वैश्यों)को०। (५) कोई बोलनेवाला हो—राजा महाविजित यज्ञ कर रहा है, किंतु वह दोनों ओरसे सुजात नहीं है०, तो भी महायज्ञ यजन कर रहा है। ऐसा भी आपको धर्मसे कोई बोलनेवाला नहीं है। आप दोनों ओरसे सुजात हैं। इससे भी आप राजा इसको जानें। आप यजन करें, आप मोदन करें, आप अपने चित्तको भीतरसे प्रसन्न करें। (६)००अभिरूप=दर्श-नीय०।०। (७)००शीलवान्००। (८)०० आढ्य महाभोगवान् बहुत सोना-चांदीवाले, बहुत चित-उपकरण-वान्, बहु-धन-धान्य-वान्, कोश-कोष्ठागार-परिपूर्ण००। (९) ० बलवती चतु-रंगिनी सेनासे०" (१०)००श्रद्धालु दायक००। (११)०० बहुश्रुत००। (१२)००पंडित= व्यक्त, मेधावी००। (१३)०० पुरोहित दोनों ओरसे सुजात००। (१४)०० पुरोहित० अध्यायक मंत्रधर००। (१५)०० पुरोहित० शीलवान्००। (१६) पुरोहित० पंडित=व्यक्त००। ब्राह्मण! महायज्ञ यजन करते हुये, राजा महाविजितके चित्तको पुरोहित ब्राह्मणने इन सोलह विधोंसे समुत्तेजित किया।

"ब्राह्मण! उस यज्ञमें गायें नहीं मारी गईं, बकरे-भेड़े नहीं मारे गये, मुर्गे-सुअर नहीं मारे गये, न नाना प्रकारके प्राणी मारे गये। न [1]यूपके लिये वृक्ष काटे गये। न पर-हिंसाके लिये दर्भ काटे गये। जो भी उसके दास, प्रेष्य (=नौकर), कर्मकर थे, उन्होंने भी दंड-तर्जित, भय-तर्जित हो, अश्रुमुख, रोते हुये सेवा नहीं की। जिन्होंने चाहा उन्होंने किया, जिन्होंने नहीं चाहा उन्होंने नहीं किया। जो चाहा उसे किया, जो नहीं चाहा उसे नहीं किया। घी, तेल, मक्खन, दही, मधु, गुड़, (=फाणित)से ही वह यज्ञ समाप्तिको प्राप्त हुआ।

"तब ब्राह्मण! नैगम-जानपद अनुयुक्त क्षत्रिय, ०अमात्य-पार्षद, ०महाशाल (=धनी) ब्राह्मण,० नैचयिक-गृहपति (=धनी वैश्य) बहुतसा धन-धान्य ले, राजा महाविजितके पास जा कर, ऐसा बोले—'यह देव! बहुतसा धन-धान्य (=सापतेय्य) देवके लिये लाये हैं, इसे देव स्वीकार करें'। 'नहीं भो! मेरे पास भी यह बहुतसा सापतेय्य, धर्मसे उपार्जित है। यह तुम्हारा ही रहे, यहाँसे भी और ले जाओ'। राजाके इन्कार करनेपर एक ओर जाकर, उन्होंने सलाह की—'यह हमारे लिये उचित नहीं, कि हम इस धन-धान्यको फिर अपने घरको लौटा लेजायँ। राजा महाविजित महायज्ञकर रहा है, हन्त! हम भी इसके अनुयायी (=पीछे-पीछे यज्ञ करनेवाले) होवें।

"तब ब्राह्मण! यज्ञवाट (=यज्ञस्थान)के पूर्व ओर नैगम जानपद अनुयुक्त-क्षत्रियोंने अपना दान स्थापित किया। यज्ञवाटके दक्षिण ओर० अमात्य-पार्षदोंने०। पश्चिम ओर० ब्राह्मण महाशालोंने०। ०उत्तर ओर० नैचयिक-वैश्योंने०। ब्राह्मण! उन (अनु)-यज्ञोंमें भी गायें नहीं मारी गईं०। घी, तेल, मक्खन, दही, मधु, खाँडसे ही वह यज्ञ समाप्तिको प्राप्त हुये।

---

१. अ. क. "यूप नामक महा-स्तम्भ खड़ाकर—'अमुक राजा, अमुक अमात्य, अमुक ब्राह्मणने इस प्रकारके नामवाले यागको किया' नाम लिखाकर रखते हैं।"

करता था। (७) बहुश्रुत–सुने हुओं, कहे हुओंका अर्थ जानता–था–'इस कथन का यह अर्थ है, इस कथनका यह अर्थ है'। (८) पंडित=व्यक्त मेधावी, भूत-भविष्य-वर्तमान संबंधी बातों-को सोचनेमें समर्थ। राजा महाविजित, इन आठ अंगोंसे युक्त (था)। यह आठ अंग उसी यज्ञके आठ परिष्कार हैं।

''पुरोहित ब्राह्मण चार अंगोंसे युक्त (था)।—(१) दोनों ओरसे सुजात०। (२) अध्यापक मंत्र-धर०। त्रिवेद-पारंगत० (३) शीलवान्०। (४) पंडित=व्यक्त मेधावी० सुजा (=दक्षिणा) ग्रहण करने वालोंमें प्रथम या द्वितीय था। पुरोहित ब्राह्मण इन चार अंगोंसे युक्त (था)। यह चार अंग भी उसी यज्ञके परिष्कार होते हैं।

''तब ब्राह्मण! पुरोहित ब्राह्मणने पहिले राजा महाविजितको तीन विधोंका उपदेश किया (१) यज्ञकरनेकी इच्छा वाले आप···को शायद कहीं अफसोस हो—'बड़ी धन-राशि चली जायेगी, सो आप राजाको यह अफसोस न करना चाहिये। (२) यज्ञ करते हुये आप राजाको शायद कहीं अफसोस हो–'बड़ी धन-राशि चली गई,' सो यह अफसोस आपको न करना चाहिये। ब्राह्मण! इस प्रकार पुरोहित ब्राह्मणने राजामहाविजितको यज्ञसे पहिले तीन विध बतलाये।

''तब ब्राह्मण! पुरोहित ब्राह्मणने यज्ञसे पूर्वही राजा महाविजितके (हृदयसे) प्रति-ग्राहकों के प्रति (उत्पन्न होनेकी सम्भावना वाले) दस प्रकारके विप्रतिसार (=चित्तको बुरा करना) हटाये-(१) आपके यज्ञमें प्राणातिपाती (=हिंसारत) भी आवेंगे, प्राणातिपात–विरत (=अहिंसारत) भी। जो प्राणातिपाती हैं, (उनका प्राणातिपात) उन्हींके लिये है, जो यह प्राणातिपात विरत हैं, उनके प्रति आप यजन करें, मोदन करें, आप अपने चित्तको भीतरसे प्रसन्न (=स्वच्छ) करें। (२) आपके यज्ञमें अदिन्नादायी (=चोर) भी आयेंगे, अदिन्नादान-विरत (=अचोर) भी। जो यहाँ चोर हैं, वह अपने लिये हैं, जो यहाँ अ-चोर हैं, उनके प्रति आप यजन करें, मोदन करें, आप अपने चित्तको भीतरसे प्रसन्न करें। (३)० काम-मिथ्याचारी (=व्यभिचारी)० अ-व्यभिचारी भी०। (४) ०मृषावादी (=झूठे)०, मृषावाद–विरत भी०। (५)० पिशुन–वाची (=चुगुल-खोर)०, पिशुन-वचन-विरत भी०। (६)० परुष-वाची (=कटु-वचनवाले)०, परुष-वचन-विरत भी०। (७)० संप्रलापी (=बकवादी)०, संप्रलाप-विरत भी०। (८)० अभिध्यालु (=लोभी)०, अभिध्या-विरत भी०। (९)०व्यापन्न-चित्त (=द्रोही)० अ-व्यापन्न-चित्त-भी०। (१०)० मिथ्यादृष्टि (=झूठे सिद्धांतवादी)०, सम्यग्-दृष्टि (=सत्य-सिद्धांतवादी) भी। जो यहा मिथ्यादृष्टि हैं, अपनेही लिये हैं, जो यहां सम्यग्-दृष्टि हैं, उनके प्रति आप यजन करें, मोदन करें। आप अपने चित्तको भीतरसे प्रसन्न करें। ब्राह्मण! पुरोहित ब्राह्मणने यज्ञसे पूर्वही राजा महाविजितके (हृदयसे) प्रतिग्राहकों (=दानलेने वालों के प्रति (उत्पन्न होनेवाले) इन दस प्रकार के विप्रतिसार (=चित्त-मलिनता) अलग कराये।

''तब ब्राह्मण! पुरोहित ब्राह्मणने यज्ञ करते वक्त राजा महाविजितके चित्तका सोलह-प्रकारसे सन्दर्शन=समादपन=समुत्तेजन=संप्रहर्षण किया—(१) शायद यज्ञ करतेहुये आप राजाको कोई बोलनेवाला हो–राजा महाविजित महायज्ञ कर रहा है, किंतु उसने नैगम-जानपद अनुयुक्त-क्षत्रियों=मांडलिक या जागीरदार राजाओंको आमंत्रित नहीं किया, तो भी यज्ञ कर रहा है। ऐसा भी आपको धर्मसे बोलनेवाला कोई नहीं है। आप ··नैगम (=शहरी) जानपद

(=दीहाती) अनुयुक्त-क्षत्रियोंको आमंत्रित कर चुके हैं। इससे भी आप इसको जानें। आप यजन करें, आप मोदन करें, आप अपने चित्तको भीतरसे प्रसन्न करें। (२) शायद० कोई बोलनेवाला हो—०नैगम जानपद आमात्यों (=अधिकारी अफसर), पार्षदों (=सभासद्) को आमंत्रित नहीं किया०। (३)००ब्राह्मण महाशालों०। (४)००नेचयिक गृहपतियों (=धनी, वैश्यों)को०। (५) कोई बोलनेवाला हो—राजा महाविजित यज्ञ कर रहा है, किंतु वह दोनों ओरसे सुजात नहीं हैं०, तो भी महायज्ञ यजन कर रहा है। ऐसा भी आपको धर्मसे कोई बोलनेवाला नहीं है। आप दोनों ओरसे सुजात हैं। इससे भी आप राजा इसको जानें। आप यजन करें, आप मोदन करें, आप अपने चित्तको भीतरसे प्रसन्न करें। (६)००अभिरूप=दर्शनीय०।०। (७)००शीलवान्००। (८)०० आढ्य महाभोगवान् बहुत सोना-चांदीवाले, बहुत वित्त-उपकरण-वान्, बहु-धन-धान्य-वान्, कोश-कोष्ठागार-परिपूर्ण००। (९) ० बलवती चतुरंगिनी सेनासे०।" (१०)००श्रद्धालु दायक००। (११)०० बहुश्रुत००। (१२)००पंडित=व्यक्त, मेधावी००। (१३)०० पुरोहित दोनों ओरसे सुजात००। (१४)०० पुरोहित० अध्यायक मंत्रधर००। (१५)०० पुरोहित० शीलवान्००। (१६) पुरोहित० पंडित=व्यक्त००। ब्राह्मण! महायज्ञ यजन करते हुये, राजा महाविजितके चित्तको पुरोहित ब्राह्मणने इन सोलह विधोंसे समुत्तेजित किया।

"ब्राह्मण! उस यज्ञमें गायें नहीं मारी गईं, बकरे-भेड़े नहीं मारे गये, मुर्गे-सुअर नहीं मारे गये, न नाना प्रकारके प्राणी मारे गये। न [1]यूपके लिये वृक्ष काटे गये। न परहिंसाके लिये दर्भ काटे गये। जो भी उसके दास, प्रेष्य (=नौकर), कर्मकर थे, उन्होंने भी दंड-तर्जित, भय-तर्जित हो, अश्रुमुख, रोते हुये सेवा नहीं की। जिन्होंने चाहा उन्होंने किया, जिन्होंने नहीं चाहा उन्होंने नहीं किया। जो चाहा उसे किया, जो नहीं चाहा उसे नहीं किया। घी, तेल, मक्खन, दही, मधु, गुड़, (=फाणित)से ही वह यज्ञ समाप्तिको प्राप्त हुआ।

"तब ब्राह्मण! नैगम-जानपद अनुयुक्त क्षत्रिय, ०अमात्य-पार्षद, ०महाशाल (=धनी) ब्राह्मण,० नेचयिक-गृहपति (=धनी वैश्य) बहुतसा धन-धान्य ले, राजा महाविजितके पास जा कर, ऐसा बोले—'यह देव! बहुतसा धन-धान्य (=सापतेय्य) देवके लिये लाये हैं, इसे देव स्वीकार करें'। 'नहीं भो! मेरे पास भी यह बहुतसा सापतेय्य, धर्मसे उपार्जित है। वह तुम्हारा ही रहे, यहाँसे भी और ले जाओ'। राजाके इन्कार करनेपर एक ओर जाकर, उन्होंने सलाह की—'यह हमारे लिये उचित नहीं, कि हम इस धन-धान्यको फिर अपने घरको लौटा लेजाँय। राजा महाविजित महायज्ञकर रहा है, हन्त! हम भी इसके अनुयायी (=पीछे-पीछे यज्ञ करनेवाले) होवें।

"तब ब्राह्मण! यज्ञवाट (=यज्ञस्थान)के पूर्व ओर नैगम जानपद अनुयुक्त-क्षत्रियोंने अपना दान स्थापित किया। यज्ञवाटके दक्षिण ओर० अमात्य-पार्षदोंने०। पश्चिम ओर० ब्राह्मण महाशालोंने०। ०उत्तर ओर० नेचयिक-वैश्योंने०। ब्राह्मण! उन (अनु)-यज्ञोंमें भी गायें नहीं मारी गईं०। घी, तेल, मक्खन, दही, मधु, खाँड़से ही वह यज्ञ समाप्तिको प्राप्त हुये।

---

१. अ. क. "यूप नामक महा-स्तम्भ गड़ाकर—'अमुक राजा, अमुक अमात्य, अमुक ब्राह्मणने इस प्रकारके नामवाले यागको किया' नाम लिखाकर रखते हैं।"

"हे गौतम ! आश्चर्य ! हे गौतम ! आश्चर्य ! ०। मैं भगवान् गौतमकी शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी। आप गौतम आजसे मुझे अंजलि-बद्ध उपासक धारण करें। हे गौतम ! यह मैं सातसौ बैलों, सातसौ बछड़ों, सातसौ बछियों, सातसौ बकरों, सातसौ भेड़ोंको छोड़वा देता हूं, जीवन-दान देता हूँ; (वह) हरी घासें खवें; ठंडा पानी पीवें, ठंडी हवा उनके (लिये) चले।"

तब भगवान्‌ने कुटदंत ब्राह्मणको आनुपूर्वी-कथा कही०[1]। कुटदन्त ब्राह्मणको उसी आसनपर विरज = विमल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ—"जो कुछ उत्पत्ति-धर्म है, वह विनाश-धर्म है'। तब कुटदन्त ब्राह्मणने दृष्टधर्म० हो भगवान्‌को कहा—

"भिक्षु-संघके साथ आप गौतम मेरा कलका भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया। तब कुटदन्त ब्राह्मण भगवान्‌की स्वीकृति जान, आसनसे उठकर, भगवान्‌को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया।

तब कुटदन्त ब्राह्मणने उस रातके बीतनेपर, यज्ञवाटमें उत्तम खाद्य-भोज्य तैयारकरा, भगवान्‌को काल सूचित कराया०। भगवान् पूर्वाह्ण-समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, भिक्षुसंघके साथ, जहाँ कुटदंत ब्राह्मणका यज्ञवाट था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठे। कुटदंत ब्राह्मणने बुद्ध-प्रमुख भिक्षुसंघको अपनेहाथसे उत्तम खाद्य-भोज्यसे संतर्पित=संप्रवारित किया। भगवान्‌के भोजनकर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, कुटदन्त ब्राह्मण एक छोटा आसन ले, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये, कुटदन्त ब्राह्मणको भगवान्, धार्मिक कथासे संदर्शन-समादपन, समुत्तेजन, संप्रहर्षणकर, आसनसे उठकर चल दिये।

× × × ×

(६)

सोणदंड-सुत्त। महालि-सुत्त। तेविज्ज-वच्छगोत्त-सुत्त। (ई. पू. ५१४)।

[2]ऐसा मैंने सुना—एक समय पाँच सौ भिक्षुओंके महाभिक्षु-संघके साथ भगवान् [3]अंग (देश)में चारिका करते, जहाँ [4]चम्पा है, वहाँ पहुँचे। वहाँ चम्पामें भगवान् गग्गरापुष्करिणीके तीरपर विहार करते थे।

उस समय सोणदंड (=स्वर्णदंड) ब्राह्मण, जनाकीर्ण, तृण-काष्ठ-उदक-धान्य-सहित राज-भोग्य राजा मागध श्रेणिक बिंबसार-द्वारा दत्त, राजदाय, ब्रह्मदेय, चम्पाका स्वामी था।

चम्पानिवासी ब्राह्मण गृहपतियोंने सुना—शाक्यकुल-प्रव्रजित० श्रमण गौतम चम्पामें गग्गरा पुष्करिणीके तीर विहार कर रहे हैं। उन भगवान् गौतमका ऐसा मंगल-कीर्ति-शब्द उठा हुआ है—०[5]। इस प्रकारके अर्हतोंका दर्शन अच्छा होता है। तब चम्पा-वासी ब्राह्मण-गृहपति चम्पासे निकलकर झुण्डके झुण्ड जिधर गग्गरा पुष्करिणी है, उधर जाने लगे। उस समय सोणदण्ड ब्राह्मण, दिनके शयनके लिये प्रासादपर गया हुआ था। सोणदंड ब्राह्मणने

---

1. पृष्ठ २५।

२. दी. नि. १:४। ३. विहारप्रांतमें भागलपुर-मुंगेर जिलोंका गंगाके दक्षिणका भाग। ४. चंपा-नगर (जि. भागलपुर, विहार)। ५. पृष्ठ ११।

चम्पा-निवासी ब्राह्मण-गृहस्थोंको० जिधर गग्गरा पुष्करिणी है, उधर० जाते देखा। देखकर क्षत्ताको संबोधित किया—०[1]।

उस समय चम्पामें नाना देशोंके पाँच-सौ ब्राह्मण किसी कामसे वास करते थे। उन ब्राह्मणोंने सुना—सोणदण्ड ब्राह्मण श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जायेगा। तब वह ब्राह्मण जहाँ सोणदण्ड ब्राह्मण था, वहाँ गये। जाकर सोणदण्ड ब्राह्मणको बोले – ०[1]।

तब सोणदण्ड ब्राह्मण महान् ब्राह्मण-गणके साथ, जहाँ गग्गरा-पुष्करिणी थी, वहाँ गया। तब वनखंडकी आड़में जानेपर, सोणदंड ब्राह्मणके चित्तमें वितर्क उत्पन्न हुआ—'यदि मैं ही श्रमण गौतमको प्रश्न पूछूँ, तब यदि श्रमण गौतम मुझे ऐसा कहें—ब्राह्मण! यह प्रश्न इस तरह नहीं पूछा जाना चाहिये, ब्राह्मण! इस प्रकारसे यह प्रश्न पूछा जाना चाहिये। तब मुझे यह परिषद् तिरस्कार करेगी—अज्ञ (=बाल)=अव्यक्त है, सोणदण्ड ब्राह्मण; श्रमण गौतमसे ठीकसे (=योनिसो) प्रश्न भी नहीं पूछ सकता। जिसको यह परिषद् तिरस्कार करेगी, उसका यश भी क्षीण होगा। जिसका यश क्षीण होगा, उसके भोग भी क्षीण होंगे। यशसे ही भोग मिलते हैं। और यदि मुझे श्रमण गौतम प्रश्न पूछें, यदि मैं प्रश्नके उत्तरद्वारा उनका चित्त सन्तुष्ट न कर सकूँ। तब मुझे यदि श्रमण गौतम ऐसा कहें - ब्राह्मण! यह प्रश्न ऐसे नहीं उत्तर देना चाहिये; ब्राह्मण! यह प्रश्न इस प्रकारसे व्याकरण (=उत्तर, व्याख्यान) करना चाहिये। तो यह परिषद् मुझे तिरस्कार करेगी०। मैं यदि इतना समीप आकर भी श्रमण गौतमको बिना देखे ही लौट जाऊँ, तो इससे भी यह परिषद् मुझे तिरस्कार करेगी—बाल=अव्यक्त है, सोणदण्ड ब्राह्मण, मानी है, भयभीत है; श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जानेमें समर्थ नहीं हुआ। इतना समीप आकर भी श्रमण गौतमको बिना देखे ही, कैसे लौट गया। जिसको यह परिषद् तिरस्कार करेगी०।"

तब सोणदण्ड ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, जाकर भगवान्‌के साथ ०संमोदन कर० एक ओर बैठ गया। चंपा-निवासी ब्राह्मण-गृहपति भी—कोई कोई भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये, कोई कोई संमोदन कर०, कोई कोई जिधर भगवान् थे, उधर हाथ जोड़ कर०, कोई कोई नामगोत्र सुना कर०, कोई कोई चुपचाप एक ओर बैठ गये।

वहाँ भी कुटदन्त ब्राह्मण (चित्तमें) बहुतसा वितर्क करते हुये बैठा था—'यदि मैं ही श्रमण गौतमको प्रश्न पूछूँ०। अहोवत! यदि श्रमण गौतम (मेरी) अपनी त्रैविद्यक पंडिताईमें (प्रश्न) पूछते, तो मैं प्रश्नोत्तर देकर उनके चित्तको सन्तुष्ट करता।'

तब सोणदण्ड ब्राह्मणके चित्तके वितर्कको भगवान्‌ने (अपने) चित्तसे जानकर सोचा—यह सोणदण्ड ब्राह्मण अपने चित्तसे मारा जा रहा है। क्यों न मैं सोणदण्ड ब्राह्मणको (उसकी) अपनी त्रैविद्यक पंडिताईमें ही प्रश्न पूछूँ। तब भगवान्‌ने सोणदंड ब्राह्मणको कहा—

"ब्राह्मण! ब्राह्मण लोग कितने अंगों (=गुणों) से युक्तको ब्राह्मण कहते हैं, वह 'मैं ब्राह्मण हूँ' कहते हुये सच कहता है, झूठ बोलनेवाला नहीं होता?"

तब सोणदण्ड ब्राह्मणको हुआ—'अहो! जो मेरा इच्छित=आकांक्षित=अभिप्रेत=

---

1. देखो कुटदंत-सुत्त(यज्ञकी बात छोड़कर) पृ० २१६-२४।

प्रार्थित था—अहोवत ! यदि श्रमण गौतम मेरी अपनी त्रैविद्यक पंडिताईमें प्रश्न पूछते०। सो श्रमण गौतम मुझे अपनी त्रैविद्यक पंडिताईमें ही पूछ रहे हैं। मैं अवश्य प्रश्नोत्तरसे उनके चित्तको सन्तुष्ट करूँगा। तब सोणदण्ड ब्राह्मण शरीरको उठाकर, परिषद्की ओर विलोकनकर भगवान्से बोला—

"हे गौतम ! ब्राह्मण लोग पाँच अंगोंसे युक्तको, ब्राह्मण बतलाते हैं०। कौनसे पाँच ? (१) ब्राह्मण दोनों ओरसे सुजात हो०। (२) अध्यायक मंत्रधर० त्रिवेदपारंगत०। (३) अभिरूप = दर्शनीय० वर्णपुष्कलतासे युक्त हो। (४) शीलवान्०। (५) पंडित, मेधावी, यज्ञदक्षिणा (=सुजा) ग्रहण करनेवालोंमें प्रथम या द्वितीय हो। इन पाँच अंगोंसे युक्तको०।"

"ब्राह्मण इन पाँच अंगोंमेंसे एकको छोड़ चार अंगोंसे युक्तको भी ब्राह्मण कहा जा सकता है० ?"

"कहा जा सकता है, हे गौतम ! इन पाँचों अंगोंमेंसे हे गौतम ! वर्ण (३) को छोड़ते हैं। वर्ण (=रूप) क्या करेगा, यदि भो ! ब्राह्मण दोनों ओरसे सुजात हो०। अध्यायक मंत्रधर० ०हो। शीलवान्० हो०। पंडित मेधावी० हो। इन चार अंगोंसे युक्तको, हे गौतम ! ब्राह्मण लोग ब्राह्मण कहते हैं०।"

"ब्राह्मण ! इन चार अङ्गोंमेंसे एक अंगको छोड़, तीन अंगोंसे युक्तको भी ब्राह्मण कहा जा सकता है० ?"

'कहा जा सकता है, हे गौतम ! इन चारोंमेंसे हे गौतम ! मन्त्रों (=वेद)को छोड़ता हूँ। मंत्र क्या करेंगे, यदि भो ! ब्राह्मण दोनों ओरसे सुजात० हो। शीलवान्० हो। पंडित मेधावी० हो। इन तीन अंगोंसे युक्तको हे गौतम !...ब्राह्मण कहते हैं०।"

"ब्राह्मण ! इन तीन अंगोंमेंसे एक अंगको छोड़, दो अङ्गोंसे युक्तको भी ब्राह्मण कहा जा सकता है० ?"

"कहा जा सकता है, हे गौतम ! इन तीनोंमेंसे हे गौतम! जाति (१) को छोड़ता हूँ, जाति (=जन्म) क्या करेगी, यदि भो ! ब्राह्मण शीलवान्० हो। पंडित मेधावी० हो। इन दो अङ्गोंसे युक्तको,...ब्राह्मण कहते हैं।"

ऐसा कहनेपर उन ब्राह्मणोंने सोणदंड ब्राह्मणको कहा—

"आप सोणदंड ! ऐसा मत कहें, आप सोणदंड ऐसा मत कहें। आप सोणदंड वर्ण (=रंग) का प्रत्याख्यान (=अपवाद) करते हैं, मंत्र (=वेद) का प्रत्याख्यान करते हैं, जाति (=जन्म) का प्रत्याख्यान करते हैं, एक अंशमें आप सोणदण्ड श्रमण गौतमके ही वादको स्वीकार कर रहे हैं।"

तब भगवान्ने उन ब्राह्मणोंको कहा—

"यदि ब्राह्मणो ! तुमको यह हो रहा है—सोणदण्ड ब्राह्मण अल्प-श्रुत है, ०अ-सुवक्ता है, ०दुष्प्रज्ञ है, सोणदण्ड ब्राह्मण इस बातमें श्रमण गौतमके साथ वाद नहीं कर सकता। तो सोणदंड ब्राह्मण ठहरें, तुम्हीं मेरे साथ बात करो। यदि ब्राह्मणो ! तुमको ऐसा होता है—सोण-दण्ड ब्राह्मण बहुश्रुत है, ०सुवक्ता है, ०पंडित है, सोणदंड ब्राह्मण इस बातमें श्रमण

गौतमके साथ वाद कर सकता है, तो तुम ठहरो, सोणदंड ब्राह्मणको मेरे साथ बात करने दो।"

ऐसा कहनेपर सोणदंड ब्राह्मणने भगवान्‌को कहा—

"आप गौतम ठहरें, आप गौतम मौन धारण करें, मैं ही धर्मके साथ इनका उत्तर दूंगा।"

तब सोणदंड ब्राह्मण उनको कहा—

"आप लोग ऐसा मत कहें, आप लोग ऐसा मत कहें—आप सोणदंड वर्णका प्रत्याख्यान करते हैं ०। मैं वर्ण या मन्त्र (=वेद) या जाति (=जन्म) का प्रत्याख्यान नहीं करता।"

उस समय सोणदंड ब्राह्मणका भागिनेय अङ्गक नामका माणवक उस परिषद्‌में बैठा था। तब सोणदंड ब्राह्मणने उन ब्राह्मणोंको कहा—

"आप सब हमारे भागिनेय (=भांजे) अङ्गक माणवकको देखते हैं?"

"हां, भो!"

"भो! (१) अङ्गक माणवक अभिरूप=दर्शनीय=प्रासादिक, परमवर्ण (=रूपरङ्ग)-पुष्कलतासे युक्त० है। इस परिषद् में श्रमण गौतमको छोड़कर, वर्णमें इसके बराबरका (दूसरा) कोई नहीं है, (२) अङ्गक माणवक अध्यायक मंत्र-धर (=वेद-पाठी) निघंटु-कल्प-अक्षरप्रभेद सहित तीनों वेद और पांचवें इतिहासका पारंगत है, पदक (=कवि) वैयाकरण लोकायत-महापुरुष लक्षण-(शास्त्रों) में पूर्ण है। मैं ही इसका मन्त्रों (=वेद) का पढ़ानेवाला हूँ। (३) अङ्गक माणवक दोनों ओरसे सुजात है०। मैं इसके माता पिताको जानता हूँ। (यदि) अङ्गक माणवक प्राणोंको भी मारे, चोरी भी करे, परस्त्रीगमन भी करे, मृषा (=झूठ) भी बोले, मद्य भी पीवे। यहां पर अब भो! वर्ण क्या करेगा? मंत्र और जाति क्या (करेगी)? जब कि ब्राह्मण (१) शीलवान् (=सदाचारी) वृद्धशीली (=बड़े शीलवाला), वृद्धशीलसे युक्त होता है, (२) पंडित और मेधावी होता है, सुजा (=यज्ञ-दक्षिणा)-ग्रहण करनेवालोंमें प्रथम या द्वितीय होता है। इन दोनों अङ्गोंसे युक्तको ब्राह्मण लोग ब्राह्मण कहते हैं। (वह) 'मैं ब्राह्मण हूं' कहते, सच कहता है, झूठ बोलनेवाला नहीं होता।"

"ब्राह्मण इन दो अङ्गोंमेंसे एक अङ्गको छोड़, एक अङ्गसे युक्तको भी ब्राह्मण कहा जा सकता है?०"

"नहीं हे गौतम! शीलसे प्रक्षालित है प्रज्ञा (=ज्ञान), प्रज्ञासे प्रक्षालित है शील (=आचार)। जहाँ शील है, वहाँ प्रज्ञा है; जहाँ प्रज्ञा है, वहाँ शील है। शीलवान्‌को प्रज्ञा (होती है), प्रज्ञावान्‌को शील। किन्तु शील लोकमें प्रज्ञाओंका अगुआ (=अग्र) कहा जाता है। जैसे हे गौतम! हाथसे हाथ धोवे, पैरसे पैर धोवे; ऐसे ही हे गौतम! शील-प्रक्षालित प्रज्ञा है०।"

"यह ऐसा ही है, ब्राह्मण! शील-प्रक्षालित प्रज्ञा है, प्रज्ञाप्रक्षालित शील है। जहाँ शील है, वहाँ प्रज्ञा; जहां प्रज्ञा है, वहाँ शील। शीलवान्‌को प्रज्ञा होती है, प्रज्ञावान्‌को शील।

किन्तु लोकमें शील प्रज्ञाओंका सर्दार कहा जाता है। ब्राह्मण! शील क्या है? प्रज्ञा क्या है?"

"हे गौतम! इस विषय में हम इतना ही भर जानते हैं। अच्छा हो यदि आप गौतम ही······(इसे कहें)।"

"तो ब्राह्मण! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ।"

"अच्छा भो!" (कह) सोणदंड ब्राह्मणने भगवान्‌को उत्तर दिया। भगवानने कहा—

"ब्राह्मण! तथागत लोकमें उत्पन्न होते हैं०[1]। इस प्रकार भिक्षु शील-संपन्न होता है। यह भी ब्राह्मण यह शील है।

"०[1] प्रथमध्यान०। ०द्वितीयध्यान०। ०तृतीयध्यान०। ०चतुर्थध्यान०। ०ज्ञान-दर्शन के लिये चित्तको लगाता है०। '०अब कुछ यहाँ करनेको नहीं है' यह जानता है। यह भी उसकी प्रज्ञामें है। ब्राह्मण! यह है प्रज्ञा।"

ऐसा कहने पर सोण-दण्ड ब्राह्मणने भगवान्‌को यह कहा—

"आश्चर्य हे गौतम!! आश्चर्य हे गौतम!!०। आजसे आप गौतम मुझे अंजलि-बद्ध शरणागत उपासक धारण करें। भिक्षु-संघ सहित आप मेरा कलका भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया। तब सोणदण्ड ब्राह्मण भगवान्‌की स्वीकृति जान, आसनसे उठ कर, भगवान्‌को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर चला गया।०।

तब सोणदण्ड ब्राह्मण० भगवान्‌के भोजन कर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, एक छोटा आसन ले, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये सोण-दंड ब्राह्मणने भगवान्‌को कहा—

"यदि हे गौतम! परिषद्‌में बैठे हुये मैं आसनसे उठकर, आप गौतमको अभिवादन करूँ, तो मुझे यह परिषद् तिरस्कृत करेगी। यह परिषद् जिसका तिरस्कार करेगी, उसका यश भी क्षीण होगा। जिसका यश क्षीण होगा, उसका भोग भी क्षीण होगा। यशसे ही तो हमारे भोग मिले हैं। मैं यदि हे गौतम! परिषद्‌में बैठे हाथ जोड़ूँ, उसे आप गौतम मेरा प्रत्युपस्थान समझें। मैं यदि हे गौतम! परिषद्‌में बैठा साफा (=वेठन) हटाऊँ, उसे आप गौतम मेरा शिरसे अभिवादन समझें! मैं यदि हे गौतम! यानमें बैठा हुआ, यानसे उतरकर, आप गौतमको अभिवादन करूँ, उससे यह परिषद् मेरा तिरस्कार करेगी०। मैं यदि हे गौतम! यानमें बैठा ही पतोद-लट्ठी (=कोड़ेका डंडा) ऊपर उठाऊँ। उसे आप गौतम मेरा यानसे उतरना धारण करें। यदि मैं हे गौतम! यानमें बैठा हाथ उठाऊँ, उसे आप गौतम मेरा शिरसे अभिवादन स्वीकार करें।"

तब भगवान् सोणदंड ब्राह्मणको धार्मिक-कथासे० समुत्तेजित० कर, आसनसे उठकर चल दिये।

महालि सुत्त।

[2]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् वैशालीमें महावनकी कूटागारशालामें विहार करते थे।

उस समय बहुतसे कोसलके ब्राह्मण-दूत, मगधके ब्राह्मण दूत वैशालीमें किसी कामसे वास करते थे। उन कोसल-मगधके ब्राह्मण दूतोंने सुना—शाक्यपुत्र-प्रव्रजित शाक्य-

१. पृष्ठ १६०। २. दी. नि. १:६।

पुत्र श्रमण-गौतम वैशालीमें महावनकी कूटागारशालामें विहार करते हैं। उन आप गौतमके लिये ऐसा मंगल कीर्ति-शब्द सुनाई पड़ता है—'०। इस प्रकारके अर्हतोंका दर्शन अच्छा होता है।

तब वह कोसल-मागध-ब्राह्मणदूत जहाँ महावनकी कूटागारशाला थी, वहाँ गये। उस समय आयुष्मान् नागित भगवान्के उपस्थाक (=हजूरी) थे। तब वह० ब्राह्मणदूत जहाँ आयुष्मान् नागित थे, वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् नागित से बोले।—

"हे नागित! इस वक्त आप गौतम कहाँ विहरते हैं? हम उन आप गौतमका दर्शन करना चाहते हैं।"

"आवुसो! भगवान्के दर्शनका यह समय नहीं है। भगवान् ध्यानमें हैं।"

तब वह ०ब्राह्मणदूत वहीं एक ओर बैठ गये—'हम उन आप गौतमके दर्शन करके ही जावेंगे'। ओट्ठद्ध (=आधे ओठवाला) लिच्छवि भी, बड़ी भारी लिच्छवि-परिषद्के साथ, जहाँ आयुष्मान् नागित थे, वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् नागितको अभिवादनकर, एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े हुये ओट्ठद्ध लिच्छविने आयुष्मान् नागितको कहा—

"भन्ते नागित! इस समय वह भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध कहाँ विहार कर रहे हैं। उन भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्धका हम दर्शन करना चाहते हैं।"

"महालि! भगवान्के दर्शनका यह समय नहीं है। भगवान् ध्यानमें हैं।"

ओट्ठद्ध लिच्छवि भी वहीं एक ओर बैठ गया।—'उन भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्धका दर्शन करके ही जाऊँगा'।

तब सिंह श्रमणोद्देश जहाँ आयुष्मान् नागित थे, वहाँ आया। आकर आयुष्मान् नागितको अभिवादनकर, एक ओर खड़ा होगया। ०यह कहा—

"भन्ते काश्यप! यह बहुतसे० ब्राह्मण-दूत भगवान्के दर्शनके लिये यहाँ आये हैं। ओट्ठद्ध लिच्छवि भी महती लिच्छवि-परिषद्के साथ भगवान्के दर्शनके लिये यहाँ आया है। भन्ते काश्यप! अच्छा हो, यदि यह जनता भगवान्का दर्शन पाये।"

"तो सिंह! तूही जाकर भगवान्से कह।"

आयुष्मान् नागितको "अच्छा भन्ते!" कह, सिंह श्रमणोद्देश जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर खड़ा हो० भगवान्को कहा—

"भन्ते! यह बहुतसे०, अच्छा हो यदि यह परिषद् भगवान्का दर्शन पाये।"

"तो सिंह! विहारकी छायामें आसन बिछा।"

"अच्छा भन्ते!" कह, विहारकी छायामें आसन बिछाया। तब भगवान् विहारसे निकलकर, विहारकी छायामें बिछे आसनपर बैठे।

तब वह ०ब्राह्मण दूत जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। आकर भगवान्के साथ संमोदन कर...। ओट्ठद्ध लिच्छवि भी लिच्छवि-परिषद्के साथ, जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये, ओट्ठद्ध लिच्छविने भगवान्को कहा—

---

१. पृष्ठ ३३।

"पिछले दिनों (=पुरिमानि दिवसानि पुरिमतराणि) सुनक्खत्त लिच्छविपुत्त जहाँ मैं था, वहाँ आया। आकर मुझे बोला—महालि! जिसके लिये मैं भगवान्‌के पास ऊन-अधिक तीन वर्ष तक रहा—प्रिय कमनीय रंजनीय० दिव्य-शब्द सुनूँगा; किंतु प्रिय कमनीय रंजनीय दिव्य-शब्द मैंने नहीं सुना।' भन्ते! क्या सुनक्खत्त लिच्छवि-पुत्रने विद्यमान ही ०दिव्यशब्द नहीं सुने, या अविद्यमान?"

"महालि! विद्यमान ही ०दिव्यशब्दोंको सुनक्खत्त०ने नहीं सुना, अ-विद्यमान नहीं।"

"भन्ते! क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है, जिससे कि विद्यमान ही० दिव्यशब्दोंको सुनक्खत्त० ने नहीं सुना०?"

"महालि! भिक्षुको पूर्वदिशामें ०दिव्य रूपोंके दर्शनार्थ एकांश-समाधि भावित होती है, किन्तु ०दिव्य-शब्दोंके श्रवणार्थ नहीं।...वह पूर्व-दिशामें० दिव्य-रूपको देखता है, किन्तु ०दिव्य-शब्दोंको नहीं सुनता। सो किस हेतु? महालि! पूर्व-दिशामें एकांश भावित समाधि होनेसे ०दिव्य-रूपोंके दर्शनके लिये होती है,० दिव्य शब्दोंके श्रवणके लिये नहीं। और फिर महालि! भिक्षुको दक्षिण दिशामें०, ०पश्चिम-दिशामें, ०उत्तर-दिशामें०, ०ऊपर०, ०नीचे०, ०तिर्छे रूपोंके दर्शनार्थ एकांश-भावित समाधि होती है०।

"महालि! भिक्षुको पूर्व-दिशामें० दिव्य-शब्दोंके श्रवणार्थ०। ०दक्षिण-दिशा०। ०पश्चिम-दिशा०। ०उत्तर-दिशा०।

"महालि! भिक्षुको पूर्व-दिशामें ०दिव्य-रूपोंके दर्शनार्थ, और दिव्य-शब्दोंके श्रवणार्थ उभयांश (=दो-तरफी) समाधि भावित होती है।...वह उभयांश समाधिके भावित होनेसे पूर्व-दिशामें *०दिव्य-रूपोंको देखता है, ०दिव्य-शब्दोंको सुनता है...।* ०दक्षिण-दिशामें०। ०पश्चिम-दिशामें० ०उत्तर-दिशामें०। ०ऊपर०। ०नीचे०। ०तिर्छे०...।"

"भन्ते! इन समाधि भावनाओंके साक्षात्कार (=अनुभव) के लियेही, भगवान्‌के पास भिक्षु ब्रह्मचर्य-पालन करते हैं?"

"नहीं महालि! इन्हीं०के लिये (नहीं)०। महालि! दूसरे इनसे बढ़कर, तथा अधिक उत्तम धर्म हैं, जिनके साक्षात्कारके लिये भिक्षु मेरे पास ब्रह्मचर्य-पालन करते हैं।"

"भन्ते! कौनसे इनसे बढ़कर तथा अधिक उत्तम धर्म हैं, जिनके० लिये० ब्रह्मचर्य-पालन करते हैं?"

"*महालि! भिक्षु तीन संयोजनों (=बंधनों) के क्षयसे, न पतित होनेवाला, नियत,* संबोधि (=परमज्ञान) की ओर जानेवाला, स्रोत-आपन्न होता है। महालि! ०यह भी धर्म है०। और फिर महालि! तीनों संयोजनोंके क्षय होनेपर, राग, द्वेष, मोहके निर्बल (=तनु) पड़नेपर, सकृदागामी होता है,=एक ही बार (=सकृद् एव) इस लोकमें फिर आ (=जन्म) कर, दुःखका अन्त करता (=निर्वाण-प्राप्त होता) है। ०यह भी महालि! धर्म है०। और फिर महालि भिक्षु पाँचों अवर-भागीय (=ओरंभागिय=यहीं आवागमनमें रखनेवाले) संयोजनोंके क्षय होनेसे औपपातिक=वहाँ (=स्वर्गलोकमें) निर्वाण पानेवाला=(फिर यहाँ) न लौटकर आनेवाला होता है। ०यह भी महालि! ०धर्म है०। और फिर महालि! आस्रवों (=चित्तमलों) के क्षय होनेसे, आस्रव-रहित चित्तकी मुक्तिको ज्ञान द्वारा

इसी जन्ममें स्वयं जानकर=साक्षात्कार=प्राप्त कर विहार करता है। ०यह भी महालि! ०धर्म है०। यह हैं महालि! ०अधिक उत्तम धर्म, जिनके साक्षात् करनेके लिये, भिक्षु मेरे पास ब्रह्मचर्य-पालन करते हैं।"

"क्या भन्ते! इन धर्मोंके साक्षात् करनेके लिये मार्ग=प्रतिपद् है?"

"है, महालि! मार्ग=प्रतिपद्०।

"भन्ते! कौन मार्ग है, कौन प्रतिपद् है०।"

"यही आर्य-अष्टांगिक-मार्ग, जैसे कि—(१) सम्यग्-दृष्टि, (२) सम्यग्-संकल्प, (३) सम्यग्-वचन, (४) सम्यग्-कर्मान्त, (५) सम्यग्-आजीव, (६) सम्यग्-व्यायाम, (७) सम्यग्-स्मृति (८) सम्यग्-समाधि। महालि! यह मार्ग है, यह प्रतिपद् है; इन धर्मोंके साक्षात् करनेके लिये।"

"एक बार मैं महालि! कौशाम्बीमें घोषितारामर्में विहार करता था। तब दो प्रव्रजित (=साधु)-मंडिस्स परिव्राजक, तथा दारुपात्रिकका शिष्य जालिय—जहाँ मैं था, वहाँ आये। आकर मेरे साथ···संमोदन कर···एक ओर खड़े हो गये। एक ओर खड़े हुये उन दोनों प्रव्रजितोंने मुझे कहा—'आवुस! गौतम! क्या वही जीव है, वही शरीर है, अथवा जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है?' 'तो आवुसो! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ।' 'अच्छा आवुस!' यह उन दोनों प्रव्रजितोंने मुझे कहा। तब मैंने कहा—'आवुसो! लोकमें तथागत उत्पन्न होते हैं०' इस प्रकार आवुसो भिक्षु शील-सम्पन्न होता है। [1]०प्रथम-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। आवुसो! जो भिक्षु ऐसा जानता=ऐसा देखता है, उसको क्या यह कहनेकी जरूरत है—'वही जीव है, वही शरीर है, या जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है?' आवुसो! जो भिक्षु ऐसा जानता है, ऐसा देखता है, क्या उसको यह कहनेकी जरूरत है—वही जीव है०? मैं आवुसो! इसे ऐसे जानता हूँ०, तो भी मैं नहीं कहता—वही जीव है, वही शरीर है, या०'। द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। ०तृतीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। [2]चतुर्थ-ध्यानको० प्राप्त हो विहरता है। आवुसो! जो भिक्षु ऐसा जानता=ऐसा देखता है०। ज्ञान=दर्शनके लिये चित्तको लगाता=झुकाता है०। आवुसो! जो भिक्षु ऐसा जानता=ऐसा देखता है०। '०और अब यहाँ नहीं है'—जानता है। आवुसो! जो भिक्षु ऐसा जानता=ऐसा देखता है०। क्या उसको यह कहनेकी जरूरत है—'वही जीव है, वही शरीर है, या जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है?' आवुसो! जो० ऐसा देखता है, उसे यह कहनेकी जरूरत नहीं है—०। मैं आवुसो! ऐसे जानता हूँ०, तो भी मैं नहीं कहता—'वही जीव है, वही शरीर है, अथवा जीव दूसरा है, शरीर दूसरा'।"

भगवान्‌ने यह कहा—ओट्ठद्ध लिच्छविने सन्तुष्ट हो, भगवान्‌के भाषणको अनुमोदित किया।

तेविज्ज वच्छगोत्त-सुत्त।

[3]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् वैशालीमें महावनकी कूटागारशालामें विहार करते थे।

---

१. पृष्ठ ११८। २. पृष्ठ १६०। ३. म. नि. १:३:१।

उस समय वच्छगोत्त (=वत्सगोत्र) परिव्राजक एकपुण्डरीक परिव्राजकाराममें वास करता था। भगवान् पूर्वाह्न-समय पहिनकर, पात्रचीवर ले, वैशालीमें पिंड-चारके लिये प्रविष्ट हुये। तब भगवान्को ऐसा हुआ—अभी वैशालीमें पिंडचार करनेके लिये बहुत सवेरा है। क्यों न मैं जहाँ एक.पुण्डरीक परिव्राजकाराम है, जहाँ वच्छगोत्त परिव्राजक है, वहाँ चलूँ। तब भगवान्० वहाँ गये।

वच्छगोत्त परिव्राजकने दूरसे ही भगवान्को आते देखा। देखकर भगवान्को बोला—

"आइये भन्ते! भगवान्! स्वागत भन्ते! भगवान्! बहुत दिन होगया भन्ते! भगवान्को यहाँ आये। बैठिये भन्ते! भगवान्!, यह आसन बिछा है।"

भगवान् बिछे आसनपर बैठ गये। वत्सगोत्र परिव्राजक भी एक नीचा आसन लेकर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे वत्सगोत्र परिव्राजकने भगवान्को कहा—

"सुना है भन्ते!—'श्रमण गौतम सर्वज्ञ=सर्वदर्शी हैं, निखिल ज्ञान-दर्शन(=ज्ञानको अनुव करने) का दावा करते हैं। चलते, खड़े सोते, जागते (भी उनको) निरंतर सदा ज्ञान-दर्शन उपस्थित रहता है'। क्या भन्ते! (ऐसा कहनेवाले) भगवान्के प्रति यथार्थ कहनेवाले हैं, और भगवान्को असत्य = आभूतसे निन्दा (= अभ्याख्यान) तो नहीं करते? धर्मके अनुकूल (तो) वर्णन करते हैं, ? कोई सह-धार्मिक (=धर्मानुकूल) वादका अ-ग्रहण, गर्हा (=निंदा) तो नहीं होती।"

"वत्स! जो कोई मुझे ऐसा कहते हैं—'श्रमण गौतम सर्वज्ञ है०।' वह मेरे बारेमें यथार्थ कहनेवाले नहीं हैं। अ-सत्य (=अभूत) से मेरी निंदा करते हैं।"

"कैसे कहते हुये भन्ते! हम भगवान्के यथार्थवादी होंगे, भगवान्को अभूत (=असत्य) से नहीं निन्दित करेंगे०?"

"वत्स!—'श्रमण गौतम त्रैविद्य (=तीन विद्याओंका जाननेवाला) है,—ऐसा कहते हुये, मेरे बारेमें यथार्थवादी होगा०। (१) वत्स! मैं जब चाहता हूँ, अनेक किये पूर्व-निवासों (=पूर्वजन्मों) को स्मरणकर सकता हूँ, जैसे कि—एक जाति (=जन्म)।[1] इस प्रकार आकार (=शरीर आकृति आदि), नाम (=उद्देश) के सहित अनेक पूर्वजन्मोंको स्मरण करता हूँ। (२) वत्स! मैं जब चाहता हूँ, अ-मानुष विशुद्ध दिव्य-चक्षुसे मरते, उत्पन्न होते, नीच-ऊँच, सुवर्ण-दुर्वर्ण, सुगत-दुर्गत० कर्मानुसार (गतिको) प्राप्त सत्वोंको जानता हूँ। (३) वत्स! मैं आस्रवों (=राग-द्वेष आदि) के क्षयसे आस्रव-रहित चित्तकी विमुक्ति (=मुक्ति) प्रज्ञा द्वारा विमुक्तिको इसी जन्ममें स्वयं साक्षात्कार=प्राप्त कर विहरता हूँ।

ऐसा कहनेपर वत्सगोत्र परिव्राजकने भगवान्को कहा—

"हे गौतम! क्या कोई गृहस्थ है, जो गृहस्थके संयोजनों (=बंधनों) को बिना छोड़े, कायाको छोड़ दुःखका अन्त करनेवाला (=निर्वाण प्राप्त करनेवाला) हो?"

"नहीं वत्स! ऐसा कोई गृहस्थ नहीं०।

"हे गौतम! है कोई गृहस्थ, जो गृहस्थके संयोजनोंको बिना छोड़े, काया छोड़ने (=मरने) पर, स्वर्गको प्राप्त होनेवाला हो?"

1. पृष्ठ १६२।

"वत्स ! एक ही नहीं सौ, सौ नहीं दोसौ, ०तीनसौ, ०चारसौ, ०पाँचसौ, और भी बहुतसे गृहस्थ हैं, (जो) गृहस्थके संयोजनोंको बिना छोड़े, मरनेपर स्वर्गगामी होते हैं।"

"हे गौतम ! है कोई आजीवक, जो मरनेपर दुःखका अन्त करनेवाला हो ?"

"नहीं, वत्स !० ।"

"हे गौतम ! है कोई आजीवक जो मरनेपर स्वर्गगामी हो ?"

"वत्स ! यहाँसे एकानबे कल्प तक मैं स्मरण करता हूँ, किसीको भी स्वर्ग जानेवाला नहीं जानता, सिवाय एकके; और वह भी कर्म-वादी=क्रियावादी था ।"

"हे गौतम ! यदि ऐसा है तो यह तीर्थायतन (='पंथ') शून्य ही है, यहाँ तक कि स्वर्ग-गामियोंसे भी ।"

"वत्स ! ऐसा होते यह 'पंथ' शून्य ही है० ।

भगवान्‌ने यह कहा ! वात्सगोत्र परिव्राजकने सन्तुष्ट हो, भगवान्‌के भाषणका अनुमोदन दिया ।

× × × ×

(७)

१५ वाँ वर्षावास । भरंडु-सुत्त । शाक्य-कोलिय-विवाद । महानाम-सुत्त । कीटागिरिमें । कीटागिरि-सुत्त । (ई. पू. ५१४-१३) ।

[1]पंद्रहवीं वर्षा (भगवान्‌ने) कपिलवस्तुमें बिताई ।...

भरंडु-सुत्त ।

[2]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् कोसलमें चारिका करते जहाँ कपिलवस्तु था, वहाँ पहुँचे ।

महानाम शाक्यने सुना—भगवान् कपिलवस्तुमें आये हैं । तब महानाम शाक्य जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर, एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर खड़े हुये, महानाम शाक्यको भगवान्‌ने कहा—

"जा महानाम ! कपिलवस्तुमें ऐसा स्थान देख, जहाँ हम आज एक-रात विहार करें ।"

महानाम०ने भगवान्‌को "भन्ते अच्छा, कह" कपिलवस्तुमें प्रवेश कर, सारे कपिलवस्तुको ढूँढते हुये, ऐसा स्थान नहीं देखा, जिसमें भगवान् एक-रात विहार करते । तब महानाम शाक्य, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया; जाकर भगवान्‌से बोला—

"भन्ते ! कपिलवस्तुमें ऐसा आवसथ (=अतिथिशाला) नहीं है, जहाँ भगवान् एक-रात विहार करें । भन्ते ! यह भरंडु कालाम भगवान्‌का पुराना स-ब्रह्मचारी (=गुरुभाई) है, आज भगवान् एक रात उसके आश्रममें ही विहार करें ।"

"महानाम ! जा आसन (=संथार)• बिछा ।"

---

१. अ. नि. अ. क. २:४:५ । २. अ. नि. ३. ३. ३. ४ ।

"अच्छा भन्ते" ०कह महानाम, जहाँ भरंडु कालामका आश्रम था, वहाँ गया। जाकर आसन बिछा, पैर धोनेके लिये जल रख कर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ आया। आकर भगवान्‌से बोला—

"भन्ते! आसन बिछ गया। पैर धोनेको जल रख दिया। (अब) भगवान् जो उचित समझें (करें)।"

तब भगवान् जहाँ भरंडु कालामका आश्रम था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठकर भगवान्‌ने पैर पखारा। तब महानाम शाक्यको हुआ—आज भगवान्‌की परि-उपासनाका समय नहीं है, भगवान् थके हुये हैं। कल मैं भगवान्‌की परि-उपासना (=सत्संग) करूँगा। यह (सोच) भगवान्‌को अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर, चला गया।

तब महानाम शाक्य उस रातके बीतनेपर जहाँ भगवान् थे, वहाँ आया। आकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे महानाम शाक्यको भगवान्‌ने कहा—

"महानाम! लोकमें तीन प्रकारके शास्ता (=गुरु) विद्यमान...हैं। कौनसे तीन? (१) यहाँ एक शास्ता महानाम! कामोंकी परिज्ञा (=त्याग) का उपदेश करते हैं, (लेकिन) रूपोंकी परिज्ञा०, वेदनाओंकी परिज्ञाको नहीं प्रज्ञापित करते। (२) ०कामोंकी परिज्ञा० रूपोंकी परिज्ञाको प्रज्ञापित करते हैं, (किंतु) वेदनाओंकी परिज्ञाको नहीं०। (३)० कामोंकी परिज्ञाको भी०, रूपोंकी परिज्ञाको भी०, वेदनाओंकी परिज्ञाकोभी प्रज्ञापन (=उपदेश) करते हैं। महानाम! लोकमें यह तीन प्रकारके शास्ता...हैं। इन तीनों शास्ताओंकी, महानाम! क्या एक निष्ठा (=धारणा) है, या अलग अलग निष्ठा है?"

ऐसा कहने पर भरंडु कालामने महानाम शाक्यको कहा—

महानाम! कह—'एक है'।"

ऐसा कहने पर भगवान्‌ने महानाम शाक्यको कहा—

"महानाम! कह 'नाना है'।"

दूसरी बार भी भरंडु कालामने० ।०।०।

तीसरी बार भी० ।०।०।

तब भरण्डु कालामको हुआ—महेसक्ख (=महासमर्थवान्) महानाम शाक्यके सामने श्रमण गौतमको मैंने तीनबार अ-प्रसन्न किया। (अब) मुझे कपिलवस्तुसे चला जाना चाहिये। तब भरंडु कालाम कपिलवस्तुसे चला गया। जो वह कपिलवस्तुसे निकला, तो वैसे चला ही गया कि फिर लौटकर न आया।

शाक्य-कोलिय-विवाद।

"[1]शाक्य और कोलिय, कपिलवस्तु और कोलिय नगरके बीचकी रोहिणी[2] नदीको एकही बाँधसे बाँधकर खेती कराकरते थे। तब जेठ महीनेमें खेतीको मुरझाती देख, दोनों नगरोंके वासी कर्मकर (=मजूर) एकत्रित हुये। वहाँ कोलिय नगर वासियोंने कहा— 'यह पानी दोनों ओर लेजानेपर न तुम्हारा ही पूरा होगा, न हमारा ही। हमारी खेती एक पानीसे ही पूरी हो जायेगी, यह पानी हमें लेने दो'। दूसरोंने भी कहा—'तुम्हें कोठियाँ भरकर

१. धम्मपद अ. क. १५:१। २. वर्तमान रोहिनी नदी 'गोरखपुर'

खड़े देख; रत्न, सुवर्ण, नीलमणि, काले-कार्षापण (=ताँबेके पैसे) लेकर पच्छि (=टोकरा) पसिब्बक (=बोरा) आदि लेकर तुम्हारे द्वारोंपर हम नहीं घूमेंगे। हमारी भी खेती एकही पानीसे होजायेगी, यह पानी हमको लेने दो।' 'हम नहीं देंगे।' 'हम भी नहीं देंगे।' ऐसे बात बढ़ाकर, एकने उठकर एकपर हाथ छोड़ दिया। उसने भी दूसरेपर। इस प्रकार एक दूसरेको मारकर राज-कुलों (शाक्य-कोलिय वंशों)की जातिको बीचमें डाल कलहको बढ़ा दिया। कोलिय कर्मकर कहते थे—

"कपिलवस्तु-वासियोंको हटाओ! जिन्होंने कुत्ते स्यारकी भाँति अपनी बहिनोंके साथ संवास किया, उनके हाथी, घोड़े, ढाल, हथियार हमारा क्या कर सकते हैं?"

शाक्य-कर्मकर बोलते—

"तुम कोढ़ियोंके लड़कोंको हटाओ, जोकि अनाथ निःशरण चिड़ियोंकी भाँति कोल (=बैर) के वृक्षपर वास करते रहे। इनके हाथी घोड़े ढाल-हथियार हमारा क्या कर सकते हैं?"

उन्होंने जाकर इस काममें नियुक्त अमात्योंको कहा। अमात्योंने राज-कुलोंको कहा।

तब शाक्य... (और) कोलिय युद्धके लिये तैय्यार होकर निकले। शास्ता भी सबेरेके वक्त लोकको देखते, जातिवालोंको देखकर,.........अकेलेही आकाशसे जाकर, रोहिणी नदीके बीचमें आकाशमें आसन मारकर बैठे। जातिवालों (=ज्ञातको) ने शास्ताको देख, आयुध रखकर वन्दना की।

तब शास्ता (=बुद्ध) ने कहा।

"किस बातकी कलह है महाराजो?" "भन्ते? हम नहीं जानते।"

"तब कौन जानता है?" "सेनापति जानता है।"

सेनापति ने—"उपराज जानता है।"

इस प्रकार (एकके बाद एकको पूछते) दासों, कर्मकरोंने पूछने पर कहा—"भन्ते! पानीका झगड़ा है।"

"महाराजो! उदकका क्या मोल है?" "भन्ते! कुछ नहीं।"

"क्षत्रियोंका क्या मोल है?" "भन्ते! अनमोल।"

"तुम लोगोंको मुफ्तके पानीके लिये अनमोल क्षत्रियोंका नाश न करना चाहिये।" वह चुप हो गये। तब शास्ताने.........यह गाथायें कहीं—

"हम वैरियोंमें अवैरी हो बहुत सुखसे जीते हैं।
वैरी मनुष्योंमें हम अवैरी हो विहरते हैं॥"

महानाम-सुत्त।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् शाक्य (=देश) में कपिलवस्तुके न्यग्रोधाराम में विहार करते थे।

उस समय महानाम शाक्य बीमारीसे अभी अभी उठा था। उस समय बहुतसे

---

1. अ. नि. ११: २: २।

भिक्षु भगवान्‌का चीवर बना रहे थे—'चीवर बन जाने पर तीन मास बाद भगवान् चारिकाके लिये जायेंगे'।···। तब महानाम शाक्य जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर···एक ओर बैठ, महानाम शाक्यने भगवान्‌को कहा—

"भन्ते ! सुना है—बहुतसे भिक्षु० चीवर बना रहे हैं,० भगवान् चारिका (=रामत) को जायेंगे। सो भन्ते ! नाना विहारों (=ध्यान आदि)से विहरते, हम लोगोंको किस विहारसे विहरना चाहिये ?"

"साधु, साधु, महानाम ! तुम्हारे जैसे कुलपुत्रोंको यह योग्यही है, जो तुम तथागतके पास आकर पूछते हो—'०हमलोगोंको किस विहार०'। महानाम ! आराधक (=साधक=मुमुक्षु) श्रद्धालु होवे, अश्रद्धालु नहीं, ०उद्योगी (=आरद्धविरिय) होवे, अन्-उद्योगी नहीं। ०(सर्वदा) उपस्थित-स्मृतिवाला होवे, नष्ट-स्मृतिवाला नहीं। ०समाहित (=एकाग्र-चित्त) होवे, अ-समाहित नहीं। ०प्रज्ञावान् होवे, दुष्प्रज्ञ नहीं। महानाम ! तुम इन पाँच धर्मों में स्थित होकर, छ उत्तर-धर्मों की भावना करो।

"और फिर महानाम ! तुम अपने त्याग (=दानको) स्मरण करो—मुझे लाभ है, मुझे बड़ा लाभ हुआ, जो मैं मल-मात्सर-लिप्त जनतामें मल-मात्सर-विरहित चित्त हो, मुक्त-दानी, प्रयत-पाणि (=खुले हाथ)···दान-विभाजन-रत हो, गृहस्थमें वास कर रहा हूँ। जिस समय महानाम !···

"महानाम ! तुम तथागतका स्मरण करो—'ऐसे वह भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध, विद्याचरण-सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, अनुपम पुरुष-दम्य सारथी, देव-मनुष्योंके शास्ता हैं'। जिस समय महानाम ! आर्य-श्रावक तथागतको अनुस्मरण करता है, उस समय उसका चित्त न राग-लिप्त होता है,० न द्वेष-लिप्त (=द्वेष-पीर-उत्थित), ० न मोह-लिप्त०। उस समय उसका चित्त अ-कुटिल (=ऋजुगत=सीधा) होता है। तथागतके प्रति अ-कुटिल-चित्त हो आर्य-श्रावक अर्थवेद (=परमार्थ-ज्ञान) को प्राप्त होता है, धर्म-वेद (=धर्म-ज्ञान) को प्राप्त होता है, धर्म-संयुक्त प्रमोद (=चित्तके आनंद) को प्राप्त होता है। प्रमुदित पुरुषको प्रीति उत्पन्न होती है, प्रीतिमान्‌का शरीर स्थिर होता है। स्थिर-काय सुख अनुभव करता है। सुखितका चित्त समाहित (=एकाग्र) होता है। महानाम ! तुम इस बुद्ध-अनुस्मृतिको प्राप्त-कर यह भावना करो। बैठे भी भावना करो, लेटे भी०। कर्मान्त (=खेती) की देख-रेख (=अधिष्ठान) करते भी०। पुत्रोंसे घिरी शय्यापर भी०।

"और फिर महानाम ! तुम धर्मका अनुस्मरण करो—'भगवान्‌का धर्म स्वाख्यात है सान्दृष्टिक (=इसी शरीरमें फलदायक) है अकालिक (=कालान्तरमें नहीं), यहीं दिखाई देनेवाला, विज्ञोंसे अपने आपमें जानने योग्य है'। जिस समय महानाम ! ०धर्मको अनुस्मरण करता है०।

"और फिर महानाम ! तुम संघको अनुस्मरण करो—'भगवान्‌का श्रावक-संघ सुप्रतिपन्न है। भगवान्‌का संघ ऋजु प्रतिपन्न (=सीधे मार्गपर आरूढ़) है,० ठीकसे प्रतिपन्न है, यही भगवान्‌का श्रावक-संघ है, जो कि चार पुरुष-युगल, आठ पुरुष-व्यक्ति। यह आह्वनेय=पाहुनेय (=निमन्त्रित करने योग्य) (भिक्षा-) दान देने योग्य (=दक्षिणेय), अंजलि बाँधने योग्य, और लोकके पुण्य (करने)का क्षेत्र है।

"और फिर महानाम ! तुम अ-खंड=अ-छिद्र, अ-शबल=अ-कल्मष रहित (=निष्पाप)

उचित (=भुजिस्स), विज्ञोंसे प्रशंसित, अ-निंदित, अपने शीलों (=सदाचारों) को अनुसरण करो। जिस समय० शीलका अनुसरण करता है।०

"और फिर महानाम ! तुम देवताओंका अनुसरण करो—(१) चातुर्महाराजिक देवता हैं, (२) त्रयस्त्रिंश देवता हैं, (३) याम०, (४) तुषित०, (५) निर्माणरति०, (६) परनिर्मित-वशवर्ती०, (७) ब्रह्मकायिक०, (८) उनसे ऊपरके देवता हैं। जिस प्रकारकी श्रद्धासे युक्त हो, वह देवता यहाँसे मरकर वहाँ उत्पन्न हुये; मेरे पास भी वैसी श्रद्धा है।० शील०।० श्रुत०। ०मेरे पास भी वैसा त्याग (=दान) है०। ०मेरे पास भी वैसी प्रज्ञा (=ज्ञान) है। जिस समय महानाम ! आर्य-श्रावक अपने और उन देवताओंकी श्रद्धा, शील, श्रुत, त्याग और प्रज्ञाको स्मरण करता है०। ०सुखितका चित्त समाहित (=एकाग्र) होता है। इसे कहते हैं महानाम ! : 'आर्य श्रावक वि-षम (=उल्टी) प्रजामें समता (=सीधापन)को प्राप्त हो, विहर रहा है। द्रोह-युक्त प्रजामें अ-द्रोह-युक्त विहर रहा है। धर्म-स्रोत (=धर्म-प्रवाह) में प्रवृत्त हो, देवता-अनुस्मृतिकी भावना कर रहा है। महानाम ! इस देवतानुस्मृतिको तुम चलते भी भावना करो, खड़े भी०, लेटे भी०, कर्मान्तकका अधिष्ठान करते भी०, पुत्रोंसे घिरी शय्यापर भी०।

+ + + + +

कीटागिरिमें।

[1]तब भगवान् श्रावस्तीमें इच्छानुसार विहार कर, सारिपुत्त, मोग्गलान और पाँच सौ भिक्षुओंके महासङ्घके साथ जहाँ [2]कीटागिरि है, वहाँ चारिकाके लिये चले। अश्वजित् और पुनर्वसु भिक्षुओंने सुना—भगवान् पाँच सौ भिक्षुओंके महाभिक्षु-संघ तथा सारिपुत्र, मौद्गल्यायनके साथ कीटागिरि आ रहे हैं।···

'तो आवुसो ! (आवो) हम सब संघके शयन-आसनको बाँट लें। सारिपुत्र मौद्गल्यायन पाप (=बुरी)-इच्छाओंसे युक्त हैं। हम उन्हें शयन-आसन न देंगे।' यह सोच उन्होंने सभी [3]सांघिक शयन-आसनोंको बाँट लिया।

तब भगवान् क्रमशः चारिका करते, जहाँ कीटागिरि है, वहाँ पहुँचे। तब भगवान्ने बहुतसे भिक्षुओंको कहा—

"जाओ भिक्षुओ ! अश्वजित् पुनर्वसु भिक्षुओंके पास जाकर ऐसा कहो—'आवुसो !० भगवान् आ रहे हैं। आवुसो ! भगवान्के लिये शयन-आसन ठीक करो, संघके लिये भी, और सारिपुत्र मौद्गल्यायनके लिये भी'।"

"अच्छा भन्ते !" कह···उन भिक्षुओंने जाकर अश्वजित् पुनर्वसु भिक्षुओंको यह कहा—"०"। (उन्होंने कहा)—

"आवुसो ! (यहाँ) सांघिक शयन-आसन नहीं है; हमने सभी बाँट लिया। स्वागत है आवुसो ! भगवान्का। जिस विहारमें भगवान् चाहें, उस विहारमें वास करें। (किंतु) पापेच्छु हैं सारिपुत्र मौद्गल्यायन०, हम उन्हें शयनासन नहीं देंगे।"

---

१. विनय० चुल्लवग्ग ६। २. बनारससे अयोध्या (=साकेत)के रास्तेपर वर्तमान केराकत (जौनपुर)। ३. सारे संघकी सम्पत्ति, एक व्यक्तिकी नहीं।

यह अज्ञात, अदृष्ट० होता ऐसा न जाने यदि मैं कहता—इस प्रकारकी सुख-वेदनाको प्राप्तकर विहार करो, तो क्या भिक्षुओ ! यह मेरे लिये उचित होता ?"

"नहीं, भन्ते !"

"चूँकि भिक्षुओ ! यह मुझे ज्ञात, दृष्ट, विदित, साक्षात्कृत, प्रज्ञासे स्पर्शित (है)—यहाँ एकके० अकुशल-धर्म नष्ट होते हैं, कुशल-धर्म बढ़ते हैं'। इस लिये मैं कहता हूँ 'इस प्रकारकी सुख-वेदनाको प्राप्त कर विहार करो'।···

"भिक्षुओ ! मैं सभी भिक्षुओंको नहीं कहता कि—'प्रमादरहित हो करो'। और न मैं सभी भिक्षुओंको 'अप्रमाद-रहित हो न करो' कहता हूँ। भिक्षुओ ! जो भिक्षु अर्हत्=क्षीण-आस्रव (ब्रह्मचर्य) पूराकर चुके, कृत-कृत्य, भार-मुक्त, सच्चे अर्थको प्राप्त, भव-संयोजन (=बंधन)-रहित, अच्छी तरह जानकर मुक्त (=सम्यक्-आज्ञा-विमुक्त) हैं। भिक्षुओ ! वैसोंको मैं 'प्रमाद रहित हो करो' नहीं कहता। सो किस हेतु ? उन्होंने प्रमाद-रहित हो (करणीय) कर लिया, वह प्रमाद (=आलस्य, भूल) कर नहीं सकते। भिक्षुओ ! जो शैक्ष्य=न-प्राप्त-चित्त हैं, अनुपम योग-क्षेम (=निर्वाण)के इच्छुक हो विहरते हैं। भिक्षुओ ! वैसे ही भिक्षुओंको मैं 'प्रमाद-रहित हो करो' कहता हूँ। सो किस हेतु ? शायद यह आयुष्मान् अनुकूल शयन-आसनको सेवन करते, कल्याण-मित्रों (=सुमित्रों)को सेवन करते, इन्द्रियोंको संयम करते; जिसके लिये कुल-पुत्र अच्छी तरह घरसे बेघर हो प्रव्रजित होते हैं उस अनुत्तर (=सर्वोत्तम) ब्रह्मचर्य-फलको इसी जन्ममें स्वयं जानकर, साक्षात्कर, प्राप्तकर विहरें। भिक्षुओ ! उन भिक्षुओंको अप्रमादका यह फल देखते हुये मैं 'प्रमाद-रहित हो' करो, कहता हूँ।

"भिक्षुओ ! सात पुद्गल (=पुरुष) लोकमें···विद्यमान हैं। कौनसे सात ? (१) उभय-तो-भाग-विमुक्त (२) प्रज्ञाविमुक्त, (३) काय-साक्षी, (४) दृष्टि-प्राप्त, (५) श्रद्धा-विमुक्त, (६) धर्म-अनुसारी, (७) श्रद्धा-अनुसारी।

"भिक्षुओ ! कौन पुद्गल (=पुरुष) उभयतो-भाग-विमुक्त है ? भिक्षुओ ! जो प्राणी कि विमोक्षको अतिक्रमण कर रूप (-धातु)में आरूप्य (धातु)को प्राप्त हैं, उन्हें कोई पुद्गल कायासे स्पर्शकर विहार करता है। (उन्हें) प्रज्ञासे देखकर उसके आस्रव (=चित्तमल) नष्ट होजाते हैं। भिक्षुओ ! यह पुद्गल उभयतो-भाग-विमुक्त कहा जाता है। भिक्षुओ ! इस भिक्षुको *'अप्रमादसे करो'* मैं नहीं कहता। किस हेतु ? क्योंकि यह प्रमाद-रहित हो (करणीय) कर चुका। यह प्रमाद नहीं कर सकता।

"*भिक्षुओ ! कौन पुद्गल प्रज्ञा-विमुक्त है ? भिक्षुओ ! जो प्राणी कि विमोक्षको पारकर,* रूप (धातु)में आरूप्यको प्राप्त हैं, उन्हें कोई पुद्गल कायासे छूकर नहीं विहरते, (किंतु) प्रज्ञासे देखकर उनके आस्रव नाश होजाते हैं।० यह पुद्गल *प्रज्ञा-विमुक्त* कहे जाते हैं।० ऐसे भिक्षुको भी 'अप्रमादसे करो' मैं नहीं कहता।०।

"*भिक्षुओ ! कौन पुद्गल काय-साक्षी है ? भिक्षुओ ! जो एक पुद्गल उन्हें कायासे छूकर नहीं विहरता, प्रज्ञासे देखकर उसके कोई कोई आस्रव नष्ट हो जाते हैं।०यह०काय-साक्षी है। इस भिक्षुको भिक्षुओ ! 'अप्रमादसे करो', मैं कहता हूँ। सो किस हेतु ? शायद यह आयुष्मान्० प्राप्त कर विहार करें०।*

"*भिक्षुओ ! कौन पुद्गल दृष्टि-प्राप्त है ? भिक्षुओ !० कायासे छूकर नहीं विहरता,०*

कोई कोई आस्रव नष्ट हो गये हैं, प्रज्ञाद्वारा तथागतके बतलाये धर्म उसके जाने⋯होते हैं।० यह दृष्टि-प्राप्त० है ।०।०।

"भिक्षुओ ! कौन पुद्गल श्रद्धाविमुक्त है ? ०, ०प्रज्ञासे कोई कोई आस्रव उसके नष्ट हो गये हैं, तथागतमें उसकी श्रद्धा प्रतिष्ठित=जड़-पकड़ी = निविष्ट होती है ।० यह श्रद्धा-विमुक्त० ।०।०।

"भिक्षुओ ! कौन पुद्गल धर्मानुसारी है ?०, ०, प्रज्ञाद्वारा तथागतके बतलाये धर्म उसके लिये मात्रशः (=कुछ मात्रामें) निध्यान (= निदिध्यासन)के योग्य हो गये हैं। और उसको यह धर्म प्राप्त हैं, जैसे कि —श्रद्धा-इन्द्रिय, वीर्य-इन्द्रिय, स्मृति-इन्द्रिय, समाधि-इन्द्रिय प्रज्ञा-इन्द्रिय । ०यह धर्मानुसारी० है ।०।०।

"भिक्षुओ ! कौन पुद्गल श्रद्धानुसारी है ?०,०, तथागतमें उसकी श्रद्धा-मात्र=प्रेम-मात्र होता है । और उसको यह धर्म (प्राप्त) होते हैं, जैसे कि—श्रद्धा-इन्द्रिय० प्रज्ञा-इन्द्रिय ।० यह श्रद्धानुसारी०।०।०।

"भिक्षुओ ! मैं आदिसेही 'आज्ञा' (= अञ्ञा)की आराधना नहीं कहता, बल्कि भिक्षुओ ! क्रमशः शिक्षासे, क्रमशः क्रियासे, क्रमशः प्रतिपद्‌से आज्ञाकी आराधना होती है। भिक्षुओ !० क्रमशः प्रतिपद्‌से कैसे आज्ञाकी आराधना होती है ? भिक्षुओ ! श्रद्धावान् हो (नेसे ज्ञानीके) समीप जाता है, समीप जानेसे, परि-उपासना करता है । परि-उपासना करनेसे कान लगाता है । कान लगानेसे धर्म सुनता है । धर्म सुनकर धारण करता है । धारण किये धर्मों की परीक्षा करता है । अर्थकी उप-परीक्षा करने पर धर्म निध्यायन (= निदिध्या-सन)के योग्य होते हैं । धर्मके निध्यायन योग्य होनेपर, छन्द (= रुचि) उत्पन्न होता है। छन्द होनेपर उत्साह करता है । उत्साह करनेपर उत्थान करता है (= तुलेति) । उत्थान-कर प्रधान (=समाधि) करता है । प्रधानात्म (=समाहित-चित्त) हो, (इस) कायासेही परम-सत्यका साक्षात्कार करता है । प्रज्ञासे उसे वेधता है । भिक्षुओ ! वह श्रद्धा भी यदि न हुई । ०वह पास जाना भी (=उप-संक्रमण) न हुआ० ।०।०वह प्रधान भी न हुआ । (तो) विप्रतिपन्न (=अमार्गारूढ) हो भिक्षुओ ! मिथ्या-प्रतिपन्न०, भिक्षुओ ! यह मोघ-पुरुष (=नालायक) इस धर्म-विनयसे बहुत दूर चले गये हैं ।

"भिक्षुओ ! चतुष्पद व्याकरण होता है, जिसके अर्थको करने पर विज्ञपुरुष जल्दही (उसे) प्रज्ञासे जानता है ।⋯⋯भिक्षुओ ! तुम इसे समझते हो ?

"भन्ते ! कहाँ हम और कहाँ धर्मका जानना ?"

"भिक्षुओ ! जो यह शास्ता (=गुरु) आमिष गुरु (=धन, भोगमें बढ़ा), आमिष-दायाद (भोगोंका लेनेवाला), आमिषोंसे लिप्त हो विहरता है , वह भी इस प्रकारकी बाजी (=पण) नहीं लगाता—'यदि हमें ऐसा हो, तो इसे करेंगे, यदि हमें ऐसा न हो, तो नहीं करेंगे।' फिर भिक्षुओ तथागतका तो क्या (कहना है), (जो कि सर्वथा आमिष (= धन, भोग)से अ-लिप्त हो विहार करते हैं । भिक्षुओ ! श्रद्धालु श्रावकको शास्ताके शासन (=धर्म)में परियोग (= योग)के लिये वर्ताव करते हुये यह अनु-धर्म होता है—'भगवान् शास्ता (=गुरु) हैं, मैं श्रावक (=शिष्य) हूँ', 'भगवान् जानते हैं, मैं नहीं जानता' । भिक्षुओ ! श्रद्धालु श्रावक के लिये शास्ताके शासनमें परियोगके लिये वर्तते समय, शास्ता का शासन⋯ओज-

वान् होता है। श्रद्धालु श्रावकको० यह इच्छा होती है।—'चाहे चमड़ा, नस और हड्डी ही बच रहे, शरीरका रक्त-मांस सूख (क्यों न) जाये, (किन्तु), पुरुषके स्थाम=पुरुष-वीर्य=पुरुष-पराक्रम से जो (कुछ) प्राप्य है, उसे बिना पाये (मेरा) उद्योग न रुकेगा।' भिक्षुओ! श्रद्धालु श्रावक को शास्ताके शासनमें परियोगके लिये वर्तते समय, दो फलोंमेंसे एक फलकी उम्मेद (अवश्य) रखनी चाहिये—इसी जन्ममें (परम-ज्ञान) जानूँगा, या उपाधि (=मल) रहने पर अनागामिपन (पाऊँगा)।"

भगवानने यह कहा। संतुष्ट हो, उन भिक्षुओंने भगवानके भाषणका अनुमोदन किया.

× × × ×

(८)

हत्थक-सुत्त । सन्दक-सुत्त । महासकुलुदायि-सुत्त । सिगालोवाद-सुत्त ।
(ई. पू. ५१३-१२)

[1]तब भगवान् कीटागिरिमें इच्छानुसार विहार कर जहाँ [2]आलवी थी, वहाँ चारिका के लिये चले। क्रमशः चारिका करते जहाँ आलवी थी, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् आलवीमें अग्गालव (= अग्रालय) चैत्यमें विहार करते थे।

+ + + +

[3](भगवान्‌ने) सोलहवाँ वर्षा आलवकको दमन कर, आलवीमें (बिताई)।

हत्थक-सुत्त[4]

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् आलवीमें अग्गालव-चैत्यमें विहार करते थे।

तब हत्थक आलवक पाँचसौ उपासकोंके साथ जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये, हत्थक आलवकको भगवान्‌ने कहा—

"हत्थक (=हस्तक)! यह तेरी परिषद् बड़ी भारी है! कैसे हत्थक! तू इस महती परिषद्‌को मिला रखता (=संग्रह करता) है?"

"भन्ते! आपने जो चार संग्रह-वस्तुओंका उपदेश किया है, उसीसे मैं इस महती परिषद्‌को धारण करता हूँ। (१) भन्ते! मैं जिसको जानता हूँ, यह दान(=देना)से संग्रह योग्य है, उसे दानसे संग्रह करता हूँ (२) जिसको जानता हूँ, यह 'पेय्यवज्ज' (=खातिर) से संग्रह-योग्य है, उसे पेय्य-वज्जसे संग्रह करता हूँ। (३) जिसे जानता हूँ, यह अर्थ-चर्या (=प्रयोजन पूरा करने)से संग्रह-योग्य है, उसे अर्थ-चर्यासे संग्रह करता हूँ। (४) जिसको जानता हूँ, यह समान-आत्मतासे संग्रह योग्य है, उसे समानात्मता (= बराबरी)से संग्रह करता हूँ। भन्ते! मेरे कुलमें भोग (=संपत्ति) हैं। दरिद्र होने पर तो यह हमारी नहीं सुनना चाहते।"

१. चुल्लवग्ग ६। २. 'पंचाल-चंडो आलवको' (दी. नि. ३:९) कहनेसे आलवी (=आलंभिकापुरी) पंचाल देशमें थी, जो वर्तमान अर्वल (जि० कानपुर) हो सकती है। ३. अ. नि. अ. क. २:४:५। ४. अ. नि. ८: १: ३: ४।

"साधु, साधु, हस्तक ! महती परिषद् धारण करनेका यही उपाय है। हस्तक ! जिन्होंने पूर्वकालमें महती परिषद् संग्रह की, उन सबोंने इनही चार संग्रह-वस्तुओंसे महती परिषद्को धारण किया। हस्तक ! जो कोई भविष्य-कालमें० करेंगे, वह सभी इन्हीं०। हस्तक ! जो कोई आज-कल० ।०।

तब हस्तक आलवक भगवान्‌ने धार्मिक-कथा-द्वारा संदर्शित=समादपित=समुत्तेजित संप्रहंसित हो आसनसे उठ, भगवान्‌को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर चला गया। तब भगवान्‌ने हत्थक-आलवकको जानेके थोड़ेही देर बाद, भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! हत्थक आलवकको आठ आश्चर्य=अद्‌भुत धर्मोंसे युक्त जानो। कौनसे आठ ? भिक्षुओ ! हत्थक आलवक (१) श्रद्धालु है।० (२) शीलवान् है।० (३) ह्रीमान् (=लज्जाशील) है। ० (४) अवत्रपी (=धर्म-भीरु) है। ० (५) बहुश्रुत है। ० (६) त्यागवान् (=दानी) है। ० (७) प्रज्ञावान् है। ० (८) अल्प-इच्छुक (=अनिच्छुक) है। इन० आठ० अद्‌भुत धर्मोंसे युक्त जानो।"

[1]तब भगवान् आलवीमें इच्छानुसार विहार कर जहाँ राजगृह है, उधर चारिका को चले।

\+ \+ \+ \+

सन्दक-सुत्त

[2]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवन् कौशाम्बीके घोषितारामसें विहार करते थे। उस समय पाँचसौ परिव्राजकोंकी महापरिव्राजक-परिषद्‌के साथ सन्दक परिव्राजक [3]प्लक्षगुहामें वास करता था।

आयुष्मान् आनन्दने सायंकाल ध्यानसे उठकर, भिक्षुओंको संबोधित किया—

"आवुसो ! आओ जहाँ [4]देवकट-सोब्भ (=देवकृत-श्वभ्र=स्वाभाविक अगम-कूप) है, वहाँ देखनेके लिये चलें।"

"अच्छा आवुस !" कह उन भिक्षुओंने आयुष्मान् आनन्दको उत्तर दिया। तब आयुष्मान् आनन्द बहुतसे भिक्षुओंके साथ, जहाँ देवकट-सोब्भ था, वहाँ गये। उस समय सन्दक परिव्राजक राजकथा [5]०आदि निरर्थक कथा कहती, नाद करती, शोर मचाती, बड़ीभारी परिव्राजक-परिषद्‌के साथ, बैठा था। सन्दक परिव्राजकने दूरहीसे आयुष्मान् आनन्दको आते देखा। देखकर अपनी परिषद्‌को कहा—'आप सब चुप हों। मत...शब्द करें। यह श्रमण गौतमका श्रावक श्रमण आनंद आ रहा है। श्रमण गौतमके जितने श्रावक कौशाम्बीमें वास करते हैं, उनमें एक, यह श्रमण आनन्द है। यह आयुष्मान् लोग निःशब्द-प्रेमी, अल्पशब्द-प्रशंसक होते हैं। परिषद्‌को अल्पशब्द देख, संभव है, (इधर) भी आयें।" तब वह परिव्राजक चुप होगये।

तब आयुष्मान् आनंद जहाँ संदक परिव्राजक था, वहाँ गये। संदक परिव्राजकने आयुष्मान् आनन्दको कहा—

---

१. चुल्लवग्ग ६। २. मज्झिम नि. २:३:६। ३. कोसमके पास पभोसा (जि० इलाहाबाद)। ४. पभोसामें कोई प्राकृतिक जल-कुंड था,। ५. पृष्ठ १७६।

वान् होता है। श्रद्धालु श्रावकको० यह इच्छा होती है।—'चाहे चमड़ा, नस और हड्डी ही बच रहे, शरीरका रक्त-मांस सूख (क्यों न) जाये, (किंतु), पुरुषके स्थाम=पुरुष-वीर्य=पुरुष-पराक्रम से जो (कुछ) प्राप्य है, उसे बिना पाये (मेरा) उद्योग न रुकेगा।' भिक्षुओ! श्रद्धालु श्रावक को शास्ताके शासनमें परियोगके लिये वर्तते समय, दो फलोंमेंसे एक फलकी उमेद (अवश्य) रखनी चाहिये—इसी जन्ममें (परम-ज्ञान) जानूँगा, या उपाधि (=मल) रहने पर अनागामिपन (पाऊँगा)।"

भगवानने यह कहा। संतुष्ट हो, उन भिक्षुओंने भगवानके भाषणका अनुमोदन किया,

× × × ×

(८)

हत्थक-सुत्त। सन्दक-सुत्त। महासकुलुदायि-सुत्त। सिगालोवाद-सुत्त।

(ई. पू. ५१३-१२)

[1]तब भगवान् कीटागिरिमें इच्छानुसार विहार कर जहाँ [2]आलवी थी, वहाँ चारिका के लिये चले। क्रमशः चारिका करते जहाँ आलवी थी, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् आलवीमें अग्गालव (= अग्रालय) चैत्यमें विहार करते थे।

\+ + + +

[3](भगवान्ने) सोलहवीं वर्षा आलवकको दमन कर, आलवीमें (बिताई)।

हत्थक-सुत्त[4]

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् आलवीमें अग्गालव-चैत्यमें विहार करते थे।

तब हत्थक आलवक पाँचसौ उपासकोंके साथ जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये, हत्थक आलवकको भगवान्ने कहा—

"हत्थक (=हस्तक)! यह तेरी परिषद् बड़ी भारी है! कैसे हत्थक! तू इस महती परिषद्‌को मिला रखता (=संग्रह करता) है?"

"भन्ते! आपने जो चार संग्रह-वस्तुओंका उपदेश किया है, उन्हींसे मैं इस महती परिषद्‌को धारण करता हूँ। (१) भन्ते! मैं जिसको जानता हूँ, यह दान(=देना)से संग्रह योग्य है, उसे दानसे संग्रह करता हूँ (२) जिसको जानता हूँ, यह 'पेय्यवज्ज' (=प्रीति) से संग्रह-योग्य है, उसे पेय्य-वज्जसे संग्रह करता हूँ। (३) जिसे जानता हूँ, यह अर्थ-चर्या (=प्रयोजन पूरा करने)से संग्रह-योग्य है, उसे अर्थ-चर्यासे संग्रह करता हूँ। (४) जिसको जानता हूँ, यह समान-आत्मतासे संग्रह योग्य है, उसे समानात्मता (=बराबरी)से संग्रह करता हूँ। भन्ते! मेरे कुलमें भोग (=संपत्ति) हैं। दरिद्र होने पर तो यह हमारी नहीं सुनना चाहते।"

---

१. चुल्लवग्ग ६। २. 'पंचाल-चंडो आलवको' (सुं. नि. २: ९) कहनेसे आलवी (=आलंभिकापुरी) पंचाल-देशमें थी, जो वर्तमान अर्वल (जि॰ कानपुर) हो सकती है। ३. अ. नि. अ. क. २:४:५। ४. अ. नि. ८: १: ३: ४।

"साधु, साधु, हस्तक ! महती परिषद् धारण करनेका यही उपाय है। हस्तक ! जिन्होंने पूर्वकालमें महती परिषद् संग्रह की, उन सबोंने इनही चार संग्रह-वस्तुओंसे महती परिषद्को धारण किया। हस्तक ! जो कोई भविष्य-कालमें० करेंगे, वह सभी इन्हीं०। हस्तक ! जो कोई आज-कल०।०।

तब हस्तक आलवक भगवान्‌ने धार्मिक-कथा-द्वारा संदर्शित=समादपित=समुत्तेजित संप्रशंसित हो आसनसे उठ, भगवान्‌को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर चला गया। तब भगवान्‌ने हत्थक-आलवकको जानेके थोड़ेही देर बाद, भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! हत्थक आलवकको आठ आश्चर्य=अद्भुत धर्मोंसे युक्त जानो। कौनसे आठ ? भिक्षुओ ! हत्थक आलवक (१) श्रद्धालु है।० (२) शीलवान् है।० (३) ह्रीमान् (= लज्जाशील) है। ० (४) अवत्रपी (=धर्म-भीरु) है। ० (५) बहुश्रुत है। ० (६) त्यागवान् (=दानी) है। ० (७) प्रज्ञावान् है। ० (८) अल्प-इच्छुक (=अनिच्छुक) हैं। इन० आठ० अद्भुत धर्मोंसे युक्त जानो।"

[1]तब भगवान् आलवीमें इच्छानुसार विहार कर जहाँ राजगृह है, उधर चारिका को चले।

\+ + + +

सन्दक-सुत्त

[2]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवन् कौशाम्बीके घोषितारामसें विहार करते थे। उस समय पाँचसौ परिव्राजकोंकी महापरिव्राजक-परिषद्‌के साथ सन्दक परिव्राजक [3]प्लक्षगुहामें वास करता था।

आयुष्मान् आनन्दने सायंकाल ध्यानसे उठकर, भिक्षुओंको संबोधित किया—

"आवुसो ! आओ जहाँ [4]देवकट-सोब्भ (=देवकृत-श्वभ्र=स्वाभाविक अगम-कूप) है, वहाँ देखनेके लिये चलें।"

"अच्छा आवुस !" कह उन भिक्षुओंने आयुष्मान् आनन्दको उत्तर दिया। तब आयुष्मान् आनन्द बहुतसे भिक्षुओंके साथ, जहाँ देवकट-सोब्भ था, वहाँ गये। उस समय सन्दक परिव्राजक राजकथा [5]०आदि निरर्थक कथा कहती, नाद करती, शोर मचाती, बड़ीभारी परिव्राजक-परिषद्‌के साथ, बैठा था। सन्दक परिव्राजकने दूरहीसे आयुष्मान् आनन्दको आते देखा। देखकर अपनी परिषद्‌को कहा—'आप सब चुप हों। मत...शब्द करें। यह श्रमण गौतमका श्रावक श्रमण आनंद आ रहा है। श्रमण गौतमके जितने श्रावक कौशाम्बीमें वास करते हैं, उनमें एक, यह श्रमण आनन्द है। यह आयुष्मान् लोग निःशब्द-प्रेमी, अल्प-शब्द-प्रशंसक होते हैं। परिषद्‌को अल्पशब्द देख, संभव है, (इधर) भी आयें।" तब वह परिव्राजक चुप होगये।

तब आयुष्मान् आनंद जहाँ संदक परिव्राजक था, वहाँ गये। संदक परिव्राजकने आयुष्मान् आनन्दको कहा—

---

१. चुल्लवग्ग ६। २. मज्झिम नि. २:३:६। ३. कोसम्के पास पभोसा (जि० इलाहाबाद)। ४. पभोसामें कोई प्राकृतिक जल-कुंड था,। ५. पृष्ठ १७६।

"आइये आप आनन्द । स्वागत है आप आनन्दका । चिरकाल-बाद आप आनन्द यहाँ आये । बैठिये आप आनन्द, यह आसन बिछा है ।"

आयुष्मान् आनन्द बिछे आसनपर बैठे । संदक परिव्राजक भी एक नीचा आसन ले, एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे, संदक परिव्राजकको आयुष्मान् आनन्दने कहा—

"संदक ! किस कथामें बैठे थे, बीचमें क्या कथा चल रही थी ?"

"जाने दीजिये इस कथाको, हे आनन्द ! जिस कथामें कि हम इस समय बैठे थे । ऐसी कथा आप आनन्दको पीछे भी सुननेको दुर्लभ न होगी । अच्छा हो, आप आनन्द ही अपने आचार्यक (=धर्म)-विषयक धार्मिक-कथा कहें ।"

"तो सन्दक ! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ ।"

"अच्छा भो !" (कह) संदक परिव्राजकने आयुष्मान् आनन्दको उत्तर दिया । आयुष्मान् आनन्दने कहा—

"सन्दक ! उन जाननहार, देखनहार, सम्यक्-संबुद्ध भगवान्ने चार अ-ब्रह्मचर्य-वास कहे हैं, और चार आश्वासन न देनेवाले ब्रह्मचर्य-वास (=संन्यास) कहे हैं; जिनमें विज्ञ-पुरुष अपनी शक्ति भर ब्रह्मचर्य-वास न करे । वास करनेपर न्याय (=निर्वाण), कुशल (=अच्छे) धर्मको न पा सकेगा ।

"हे आनन्द ! उन० भगवान्ने कौनसे चार अ-ब्रह्मचर्य वास० कहे हैं० ?"

"सन्दक ! यहाँ एक शास्ता (=गुरु, पंथ चलानेवाला) ऐसा वाद (=दृष्टि) रखने वाला होता है—'नहीं है दान (का फल), नहीं है यज्ञ (का फल), नहीं है हवन (का फल) नहीं है सुकृत दुष्कृत कर्मोंका फल=विपाक, यह लोक नहीं है, पर-लोक नहीं है, माता नहीं पिता नहीं । औपपातिक (=अयोनिज, देव आदि) प्राणी नहीं हैं । लोकमें (ऐसे) सत्यको प्राप्त (=सम्यग्-गत) सत्यारूढ़ श्रमण ब्राह्मण नहीं हैं, जोकि इस लोक परलोकको स्वयं जान-कर, साक्षात्कर, (दूसरोंको) जतलायेंगे । यह पुरुष चातुर्महाभूतिक (=चार भूतोंका बना) है । जब मरता है, पृथिवी पृथिवि काय (=पृथिवी)में मिल जाती है, चली जाती है । आप (=पानी) आप-कायमें मिल जाता० है । तेज (=अग्नि) तेज-कायमें मिल जाता० है । वायु वायु-कायमें मिल जाता० है । इन्द्रियाँ आकाशमें (चली) जाती हैं, पुरुष मृत (शरीर) को खाटपर ले जाते हैं । जलाने तक पद (=चिह्न) जान पड़ते हैं । (फिर) हड्डियाँ कपोतके (पंखे) सी (सफेद) हो जाती हैं । (पूर्वकृत) आहुतियाँ राख (हो) रह जाती हैं । यह दान मूर्खोंका प्रज्ञापन (=उपदेश) है । जो कोई आस्तिक-वाद कहते हैं, वह उनका तुच्छ=झूठ है । मूर्ख या पंडित (सभी) शरीर छोड़नेपर उच्छिन्न हो जाते हैं, विनष्ट हो जाते हैं, मरनेके बाद (कोई) नहीं रहता । इस विषयमें विज्ञ पुरुष ऐसे विचारता है—'यह आप शास्ता इस वाद (=दृष्टि) वाले हैं—'नहीं है दान०' । यदि इन आप शास्ताका वचन सत्य है, तो (पुण्य) बिना किये भी, मैंने कर लिया, (ब्रह्मचर्य) बिना वास किये भी, वास कर लिया । नास्तिक गुरु और मैं—हम दोनों ही यहाँ बराबर श्रामण्य (=संन्यास)को प्राप्त हैं; जोकि मैं नहीं कहता, (हम) दोनों काया छोड़ उच्छिन्न=विनष्ट होंगे, मरनेके बाद नहीं रह जायेंगे । (फिर) यह आप शास्ता की (यह) नग्नता, मुंडता, उकडूँ-पन (=उक्कुटिकप्रधान), केश-श्मश्रु-लोचना फजूल है" और जो मैं पुत्राकीर्ण हो, घर (=गृहस्थ) में वास करते, काशीके चंदनका मजा लेते, माला

सुगंध-लेप धारण करते, सोना-चाँदीका रस लेते, मरनेपर इन आप शास्ताके समान गति पाऊँगा। सो मैं क्या समझ कर, क्या देख कर, इन (नास्तिक-वादी) शास्ताके पास ब्रह्मचर्य पालन करूँ।' (इस प्रकार) वह, 'यह अ-ब्रह्मचर्य-वास है' समझ, उस ब्रह्मचर्य (=साधुपन) से उदास हो, हट जाता है। यह सन्दक! उन० भगवान्‌ने प्रथम अ-ब्रह्मचर्य-वास कहा है, जिसमें विज्ञ-पुरुष०।

"और फिर सन्दक! यहाँ एक शास्ता ऐसे वाद (= मत) वाला होता है—'करते करवाते, काटते कटवाते, पकाते पकवाते, शोक कराते, परेशान कराते, मथते मथाते, प्राण मारते, चोरी करते, सेंध लगाते, गाँव लूटते, घर लूटते, रहजनी करते, पर-स्त्री-गमन-करते, झूठ बोलते भी पाप नहीं किया जाता। छुरेसे तेज चक्र-द्वारा जो इस पृथिवीके प्राणियोंका (कोई) एक माँसका खलियान, एक माँसका पुंज बनादे, तो इसके कारण उसे पाप नहीं होगा; पापका आगम नहीं होगा। यदि घात करते-कराते, काटते-कटाते, पकाते-पकवाते, गंगाके दाहिने तीरपर भी जाये;, तो भी इसके कारण उसको पाप नहीं, पापका आगम नहीं होगा। दान देते दान दिलाते, यज्ञ करते यज्ञ कराते, गंगाके उत्तर तीर भी जाये, तो इसके कारण उसको पुण्य नहीं, पुण्यका आगम नहीं होता। दान, (इन्द्रिय-)दम, संयम, सच्चेपन (=सच्च-वज्ज)से पुण्य नहीं, पुण्यका आगम नहीं होता'। सन्दक! विज्ञ-पुरुष ऐसा विचारता है—यह आप शास्ता इस वाद=दृष्टि-वाले हैं—करते करवाते०। यदि इन आप शास्ताका वचन सच है०। तो हम दोनों ही बराबर श्रामण्य (=संन्यास) को प्राप्त हैं,…दोनोंहीके करते पाप नहीं किया जाता'। यह आप शास्ताकी नग्नता०।०। यह सन्दक! उन० भगवान्‌ने द्वितीय अ-ब्रह्मचर्य-वास कहा है०।

"और फिर संदक! यहाँ एक शास्ता ऐसे वाद (=दृष्टि)वाला होता है—'सत्वोंके संक्लेशका कोई हेतु=कोई प्रत्यय नहीं। बिना हेतु, बिना प्रत्ययके प्राणी संक्लेश (=चित्तमालिन्य)को प्राप्त होते हैं। प्राणियोंकी (चित्त-)विशुद्धिका कोई हेतु=प्रत्यय नहीं है। बिना हेतु=प्रत्ययके प्राणी विशुद्ध होते हैं। बल नहीं (चाहिये), वीर्य नहीं, पुरुषका स्थाम (=दृढ़ता) नहीं=पुरुष-पराक्रम नहीं (चाहिये), सभी सत्व=सभी प्राणी=सभी भूत=सभी जीव अ-वश=अ-बल=अ-वीर्य नियति (=भवितव्यता) के वशमें हो, छओं अभिजातियोंमें सुख दुःख अनुभव करते हैं।० यदि० इन आप शास्ताका वचन सत्य है०। तो हम दोनों ही हेतु=प्रत्यय बिना ही शुद्ध हो जायेंगे।०। यह सन्दक! भगवान्‌ने तृतीय अ-ब्रह्मचर्यवास कहा है०।

"और फिर सन्दक! यहाँ एक शास्ता ऐसी दृष्टि-वाला होता है—'यह सात अकृत=अकृतविधि=अ-निर्मित=निर्माता-रहित, अवध्य=कूटस्थ, स्तम्भवत् (अचल) हैं। यह चल नहीं होते, विकारको प्राप्त नहीं होते; न एक दूसरेको हानि पहुँचाते हैं; न एक दूसरेके सुख, दुःख, या सुख-दुःखके लिये पर्याप्त हैं। कौनसे सात? पृथिवी-काय, आप-काय, तेज-काय, वायु-काय, सुख, दुःख, और जीव—यह सात। यह सात काय अकृत० सुख-दुःखके योग्य नहीं हैं। यहाँ न हन्ता (=मारनेवाला) है, न घातयिता (=हनन करानेवाला), न सुननेवाला, न सुनानेवाला, न जाननेवाला न जतलानेवाला। जो तीक्ष्ण-शस्त्रसे शीश भी छेदते हैं, (तो भी) कोई किसीको प्राणसे नहीं मारता। सातो कायोंसे अलग, विवर (=खाली जगह)में शस्त्र

(=हथियार) गिरता है। यह प्रधान-योनि—चौदह-सौ हजार, (दूसरी) साठ-सौ, छियासठ-सौ, और पाँचसौ कर्म, और पाँच कर्म और तीन कर्म, (एक) कर्म, और आधा कर्म, बासठ प्रतिपद्, बासठ अन्तर्-कल्प, छ अभिजाति, आठ पुरुषकी भूमियाँ, उंचास सौ आजीवक, उंचास सौ परिव्राजक, उंचास नागोंके आवास, बीससौ इन्द्रिय, तीससौ नरक, छत्तिस रजो-धातु, सात संज्ञावान् गर्भ, सात असंज्ञी गर्भ, सात निर्ग्रंथी गर्भ, सात देव, सात मनुष्य, सात पिशाच, सात सरोवर, सात गाँठ (=पमुट), सात प्रपात, सातसौ प्रपात, सात स्वप्न, सातसौ स्वप्न—(इनमें) चौरासी हजार महाकल्पों तक दौड़कर=आवागमनमें पड़कर, मूर्ख और पंडित (सभी) दुःखका अंत (=निर्वाण-प्राप्ति) करेंगे। वहाँ (यह) नहीं है—इस शील या व्रत, या तप, ब्रह्मचर्यसे मैं अपरिपक्व कर्मको पचाऊँगा, परिपक्व कर्मको भोग कर अन्त करूँगा। सुख, दुःख, द्रोण (=नाप) से नपे-तुले हुये हैं, संसारमें घटाना बढ़ाना, उत्कर्ष अपकर्ष नहीं होता जैसे कि सूतकी गोली फेंकनेपर उघरती हुई गिरती है, ऐसेही मूर्ख (=बाल) और पण्डित दौड़कर=आवागमनमें पड़कर, दुःखका अंत करेंगे।' वहाँ सन्दक ! विज्ञ-पुरुष ऐसे विचारता है।—यह आप शास्ता ऐसे वाद = दृष्टिवाले हैं०। जैसे कि सूतकी गोली०। यदि इन आप शास्ताका वचन सत्य है, तो बिना किये भी मैंने कर लिया। ० यह आप शास्ताकी नग्नता०। यह सन्दक ! उन० भगवानने चतुर्थ अ-ब्रह्मचर्य-वास कहा है०।

"सन्दक ! उन० भगवानने यह चार अ-ब्रह्मचर्य-वास कहे हैं०।"

"आश्चर्य ! हे आनन्द !! अद्भुत ! हे आनन्द !! जो यह उन० भगवान्ने यह चार अ-ब्रह्मचर्य-वास कहे हैं०। किन्तु, हे आनन्द ! उन० भगवान्ने कौनसे चार अनाश्वासिक ब्रह्मचर्य कहे हैं० ?"

"सन्दक ! यहाँ एक शास्ता(निर्ग्रंथ) सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अशेष-ज्ञान-दर्शन वाला होनेका दावा करता है—'चलते, खड़े होते, सोते, जागते, सदा सर्वदा मुझे ज्ञान-दर्शन मौजूद (=प्रत्युपस्थित) रहता है।' (तो भी) वह सूने घरमें जाता है, (वहाँ) भिक्षा भी नहीं पाता, कुक्कुर भी काट खाता है, चंड-हाथीसे भी सामना पड़ जाता है, चंड घोड़ेसे भी सामना पड़ जाता है, चंड-बैलसे भी०। (सर्वज्ञ होनेपर भी) स्त्री-पुरुषोंके नाम-गोत्रको पूछता है। ग्राम-निगमका नाम और रास्ता पूछता है। '(आप सर्वज्ञ होकर) यह क्या (पूछते हैं)'—पूछनेपर कहता है—'सूने घरमें हमारा जाना बदा था, इसलिये गये। भिक्षा न मिलनी बदी थी, इसलिये न मिली। कुक्कुरका काटना बदा था०। ०हाथीसे मिलना बदा था०।०। वहाँ सन्दक ! विज्ञ-पुरुष यह सोचता है—यह आप शास्ता० दावा करते हैं० (तब) यह—'यह ब्रह्मचर्य (=पंथ) अनाश्वासिक (=मनको संतोष न देने वाला) है'—यह जान, उस ब्रह्मचर्यसे उदास हो हट जाता है। यह सन्दक ! उन० भगवानने प्रथम अनाश्वासिक ब्रह्मचर्य कहा है०।

"और फिर सन्दक ! यहाँ एक शास्ता आनुश्रविक=अनुश्रव (=श्रुति) को सत्य मानने वाला होता है,। '(श्रुतिमें) ऐसा', '(श्रुतिमें) ऐसा', परम्परासे, पिटक-संप्रदाय (=ग्रन्थ-प्रमाण) से धर्मका उपदेश करता है। सन्दक ! आनुश्रविक=अनुश्रवको सत्य मानने वाले शास्ताका अनुश्रव सुश्रुत (=ठीक सुना) भी हो सकता है। दुःश्रुत भी; वैसा (=यथार्थ) भी हो सकता है, उल्टा भी हो सकता है। वहाँ सन्दक ! विज्ञ-पुरुष यह सोचता है-यह आप

शास्ता आनुश्रविक हैं० । वह-'यह ब्रह्मचर्य अनाश्वासिक है'० । ०द्वितीय अनाश्वासिक ब्रह्मचर्य कहा है० ।

"और फिर सन्दक ! यहाँ एक शास्ता तार्किक=विमर्शी होता है । वह तर्कसे = विमर्शसे प्राप्त, अपनी प्रतिभासे ज्ञात, धर्मका उपदेश करता है । सन्दक ! तार्किक=विमर्शक (=मीमांसक) शास्ताका (विचार) सुतर्कित भी हो सकता है, दुःतर्कित भी । वैसे (=यथार्थ) भी हो सकता है, ऊलटा भी हो सकता है ०।०।०।० तृतीय अनाश्वासिक ब्रह्मचर्य कहा है० ।

'और फिर सन्दक ! यहाँ एक शास्ता मन्द=अति मूढ़ (=मोमुह) होता है । वह मन्द होनेसे, अति-मूढ़ होनेसे वैसे वैसे प्रश्न पूछनेपर, वचनसे विक्षेपको=अमरा-विक्षेपको प्राप्त होता है—'ऐसा भी मेरा (मत) नहीं, वैसा (=तथा) भी मेरा नहीं; अन्यथा भी मेरा (मत) नहीं, नहीं भी मेरा (मत) नहीं, न नहीं भी मेरा (मत) नहीं ।' यहाँ सन्दक ! विज्ञ-पुरुप यह सोचता है ०।०।०।० चतुर्थ अनाश्वासिक ब्रह्मचर्य कहा है० ।

"सन्दक ! उन० भगवानने यह चार अनाश्वसिक ब्रह्मचर्य कहे हैं० ।"

"आश्चर्य ! हे आनन्द !! अद्भुत ! हे आनन्द !! जो यह उन० भगवानने चार अनाश्वासिक ब्रह्मचर्य कहे हैं० । किन्तु हे आनन्द ! वह शास्ता किस वाद=किस दृष्टि वाला होना चाहिये, जहाँ विज्ञ-पुरुप स्व-शक्ति भर ब्रह्मचर्य-वास करे, वास कर न्याय = कुशल-धर्म-की आराधना करे० ?"

"सन्दक ! यहाँ तथागत लोकमें उत्पन्न होते हैं० । उस धर्मको गृहपति या गृह-पति-पुत्र सुनता है० । वह संशयको छोड़ संशय-रहित होता है । वह इन पाँच नीवरणोंको हटा चित्तके दुर्बल करनेवाले उपक्लेशों (=चित्तमलों) को जान, कामोंसे अलग हो, अकुशल-धर्मोंसे अलग हो, प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता । सन्दक ? जिस शास्ताके पास श्रावक इस प्रकार के बड़े (=उदार) विशेपको पावे, वहाँ विज्ञ-पुरुप स्वशक्तिभर ब्रह्मचर्य-वास करे० ।

"और फिर सन्दक ! ० द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है० ०। ०तृतीय ध्यान० ।०। ०चतुर्थ ध्यान० ।०। ०पूर्व जन्मोंको स्मरण करता है० ।०। कर्मानुसार जन्मते सत्त्वोंको जानता है० ।०। ० 'अब यहाँ दूसरा कुछ करना नहीं रहा'—जानता है० ।०।"

"हे आनन्द ! वह जो भिक्षु० अर्हत् (=मुक्त) है, क्या वह कर्मोंका भोग करेगा ?"

"सन्दक ! जो वह भिक्षु० अर्हत् है, वह (इन) पाँच बातोंमें असमर्थ है । क्षीण-आस्रव (=अर्हत्, मुक्त) भिक्षु (१) जानकर प्राण नहीं मार सकता । (२) चोरी नहीं कर सकता । (३)० मैथुन···सेवन नहीं कर सकता । (४) जानकर झूठ नहीं बोल सकता । (५) क्षीणास्रव भिक्षु एकत्रित कर (अन्न पान आदि,) काम-भोगोंको भोगकरनेके अयोग्य है, जैसे कि वह पहिले गृही होते भोगता था ।०।"

"हे आनन्द ! जो वह अर्हत्=क्षीणास्रव भिक्षु है, क्या उसे चलते-बैठते, सोते-जागते निरन्तर [1](यह) ज्ञान-दर्शन मौजूद रहता है—'मेरे आस्रव (=चित्तमल) क्षीण हो गये' ।

१. पृष्ठ. १६० ।

(=हथियार) गिरता है। यह प्रधान-योनि—चौदह-सौ हजार, (दूसरी) साठ-सौ, छियासठ-सौ, और पाँचसौ कर्म, और पाँच कर्म और तीन कर्म, (एक) कर्म, और आधा कर्म, बासठ प्रतिपद्, बासठ अन्तर्-कल्प, छ अभिजाति, आठ पुरुषकी भूमियाँ, उँचास सौ आजीवक, उँचास सौ परिव्राजक, उँचास नागोंके आवास, बीससौ इन्द्रिय, तीससौ नरक, छत्तिस रजो-धातु, सात संज्ञावान् गर्भ, सात असंज्ञी गर्भ, सात निर्ग्रंथी गर्भ, सात देव, सात मनुष्य, सात पिशाच, सात सरोवर, सात गाँठ (=पमुट), सात प्रपात, सातसौ प्रपात, सात स्वप्न, सातसौ स्वप्न-(इनमें) चौरासी हजार महाकल्पों तक दौड़कर=आवागमनमें पड़कर, मूर्ख और पंडित (सभी) दुःखका अंत (=निर्वाण-प्राप्ति) करेंगे। वहाँ (यह) नहीं है—इस शील या व्रत, या तप, ब्रह्मचर्यसे मैं अपरिपक्व कर्मको पचाऊँगा, परिपक्व कर्मको भोग कर अन्त करूँगा। सुख, दुःख, द्रोण (=नाप) से नपे-तुले हुये हैं, संसारमें घटाना बढ़ाना, उत्कर्ष अपकर्ष नहीं होता जैसे कि सूतकी गोली फेंकनेपर उधरती हुई गिरती है, ऐसेही मूर्ख (=बाल) और पण्डित दौड़कर=आवागमनमें पड़कर, दुःखका अंत करेंगे।' वहाँ सन्दक! विज्ञ-पुरुष ऐसे विचारता है।—यह आप शास्ता ऐसे वाद=दृष्टिवाले हैं०। जैसे कि सूतकी गोली०। यदि इन आप शास्ताका वचन सत्य है, तो बिना किये भी मैंने कर लिया। ० यह आप शास्ताकी नग्नता०। यह सन्दक! उन० भगवानने चतुर्थ अ-ब्रह्मचर्य-वास कहा है०।

"सन्दक! उन० भगवानने यह चार अ-ब्रह्मचर्य-वास कहे हैं०।"

"आश्चर्य! हे आनन्द!! अद्भुत! हे आनन्द!! जो यह उन० भगवान्‌ने यह चार अ-ब्रह्मचर्य-वास कहे हैं०। किन्तु, हे आनन्द! उन० भगवान्‌ने कौनसे चार अनाश्वासिक ब्रह्मचर्य कहे हैं०?"

"सन्दक! यहाँ एक शास्ता (निर्ग्रंथ) सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अशेष-ज्ञान-दर्शन वाला होनेका दावा करता है—'चलते, खड़े होते, सोते, जागते, सदा सर्वदा मुझे ज्ञान-दर्शन मौजूद (=प्रत्युपस्थित) रहता है।' (तो भी) वह सूने घरमें जाता है, (वहाँ) भिक्षा भी नहीं पाता, कुक्कुर भी काट खाता है, चंड-हाथीसे भी सामना पड़ जाता है, चंड घोड़ेसे भी सामना पड़ जाता है, चंड-बैलसे भी०। (सर्वज्ञ होनेपर भी) स्त्री-पुरुषोंके नाम-गोत्रको पूछता है। ग्राम-निगमका नाम और रास्ता पूछता है। '(आप सर्वज्ञ होकर) यह क्या (पूछते हैं)'—पूछनेपर कहता है—'सूने घरमें हमारा जाना बदा था, इसलिये गये। भिक्षा न मिलनी बदी थी, इसलिये न मिली। कुक्कुरका काटना बदा था०। ०हाथीसे मिलना बदा था०।०। वहाँ सन्दक! विज्ञ-पुरुष यह सोचता है—यह आप शास्ता० दावा करते हैं० (तब) वह—'यह ब्रह्मचर्य (=पंथ) अनाश्वासिक (=मनको संतोष न देने वाला) है'—यह जान, उस ब्रह्मचर्यसे उदास हो हट जाता है। यह सन्दक! उन० भगवानने प्रथम अनाश्वासिक ब्रह्मचर्य कहा है०।

"और फिर सन्दक! यहाँ एक शास्ता आनुश्रविक=अनुश्रव (=श्रुति) को सत्य माननेवाला होता है, । '(श्रुतिमें) ऐसा', '(स्मृतिमें) ऐसा', परम्परासे, पिटक-संप्रदाय (=ग्रन्थ-प्रमाण) से धर्मका उपदेश करता है। सन्दक! आनुश्रविक=अनुश्रवको सत्य माननेवाले शास्ताका अनुश्रव सुश्रुत (=ठीक सुना) भी हो सकता है। दुःश्रुत भी; वैसा (=यथार्थ) भी हो सकता है, अन्यथा भी हो सकता है। वहाँ सन्दक! विज्ञ-पुरुष यह सोचता है—यह आप

शास्ता आनुश्रविक है० । वह-'यह ब्रह्मचर्य अनाश्वासिक है'० । ०द्वितीय अनाश्वासिक ब्रह्मचर्य कहा है० ।

"और फिर सन्दक ! यहाँ एक शास्ता तार्किक=विमर्शी होता है । वह तर्कसे = विमर्शसे प्राप्त, अपनी प्रतिभासे ज्ञात, धर्मका उपदेश करता है । सन्दक ! तार्किक=विमर्शक (=मीमांसक) शास्ताका (विचार) सुतर्कित भी हो सकता है, दुःतर्कित भी । वैसे (=यथार्थ) भी हो सकता है, ऊलटा भी हो सकता है ०।०!०।० तृतीय अनाश्वासिक ब्रह्मचर्य कहा है० ।

'और फिर सन्दक ! यहाँ एक शास्ता मन्द=अति मूढ़ (=मोमुह) होता है । वह मन्द होनेसे, अति-मूढ़ होनेसे वैसे वैसे प्रश्न पूछनेपर, वचनसे विक्षेपको=अमरा-विक्षेपको प्राप्त होता है—'ऐसा भी मेरा (मत) नहीं, वैसा (= तथा) भी मेरा नहीं; अन्यथा भी मेरा (मत) नहीं, नहीं भी मेरा (मत) नहीं, न नहीं भी मेरा (मत) नहीं।' यहाँ सन्दक ! विज्ञ-पुरुष यह सोचता है ०।०।०।० चतुर्थ अनाश्वासिक ब्रह्मचर्य कहा है० ।

"सन्दक ! उन० भगवानने यह चार अनाश्वसिक ब्रह्मचर्य कहे हैं० ।"

"आश्चर्य ! हे आनन्द !! अद्भुत ! हे आनन्द !! जो यह उन० भगवानने चार अनाश्वासिक ब्रह्मचर्य कहे हैं० । किन्तु हे आनन्द ! वह शास्ता किस वाद=किस दृष्टि वाला होना चाहिये, जहाँ विज्ञ-पुरुष स्व-शक्ति भर ब्रह्मचर्य-वास करै, वास कर न्याय = कुशल-धर्म-की आराधना करै० ?"

"सन्दक ! यहाँ तथागत लोकमें उत्पन्न होते[1] हैं० । उस धर्मको गृहपति या गृह-पति-पुत्र सुनता है० । वह संशयको छोड़ संशय-रहित होता है । वह इन पाँच नीवरणोंको हटा चित्तके दुर्बल करनेवाले उपक्लेशों (=चित्तमलों) को जान, कामोंसे अलग हो, अकुशल-धर्मोंसे अलग हो, प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता । सन्दक ? जिस शास्ताके पास श्रावक इस प्रकार के बड़े (=उदार) विशेपको पावे, वहाँ विज्ञ-पुरुष स्वशक्तिभर ब्रह्मचर्य-वास करै० ।

"और फिर सन्दक ! ० द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है० ०। ०तृतीय ध्यान० ।०। ०चतुर्थ ध्यान० ।०। ०पूर्व जन्मोंको स्मरण करता है० ।०। कर्मानुसार जन्मते सत्वोंको जानता है० ।०। ० 'अब यहाँ दूसरा कुछ करना नहीं रहा'—जानता है० ।०।"

"हे आनन्द ! यह जो भिक्षु० अर्हत् (=मुक्त) है, क्या वह कर्मोंका भोग करेगा ?"

"सन्दक ! जो यह भिक्षु० अर्हत् है, वह (इन) पाँच बातोंमें असमर्थ है । क्षीण-आस्रव (=अर्हत्, मुक्त) भिक्षु (१) जानकर प्राण नहीं मार सकता । (२) चोरी नहीं कर सकता । (३)० मैथुन···सेवन नहीं कर सकता । (४) जानकर झूठ नहीं बोल सकता । (५) क्षीणास्रव भिक्षु एकत्रित कर (अन्न पान आदि,) काम-भोगोंको भोगकरनेके अयोग्य है, जैसे कि वह पहिले गृही होते भोगता था ।०।"

"हे आनन्द ! जो यह अर्हत्=क्षीणास्रव भिक्षु है, क्या उसे चलने-बैठने, सोते-जागते निरन्तर ··(यह) ज्ञान-दर्शन मौजूद रहता है—'मेरे आस्रव (=चित्तमल) क्षीण हो गये' ।

[1] पृष्ठ. १६० ।

"तो सन्दक ! तेरे लिये एक उपमा देता हूँ। उपमासे भी कोई कोई विज्ञ-पुरुष कहनेका मतलब समझ लेते हैं। सन्दक ! जैसे पुरुषके हाथ-पैर कटे हों, उसको चलते बैठते, सोते जागते निरंतर (होता है), मेरे हाथ-पैर कटे हैं। इसी प्रकार सन्दक ! जो यह अर्हत् = क्षीणास्रव भिक्षु है, उसके ०निरंतर···आस्रव क्षीण ही हैं, यह उसकी प्रत्यवेक्षा करके जानता है—'मेरे-आस्रव क्षीण हैं।"

"हे आनन्द ! इस धर्म-विनय (= धर्म)में कितने मार्गदर्शक (=नियाँता) हैं ?"

"सन्दक ! एक सौ ही नहीं, दो सौ ही नहीं, तीनसौ०, चारसौ०, पाँचसौ०, बल्कि और भी अधिक नियाँता इस धर्म-विनयमें हैं।"

"आश्चर्य ! हे आनन्द !! अद्भुत ! हे आनन्द !! न अपने धर्मका उत्कर्ष (=तारीफ) करना, न पर-धर्मकी निन्दा करना, (ठीक) जगह (=आयतन) पर धर्म-देशना !! इतने अधिक मार्ग-दर्शक जान पड़ते हैं !! यह आजीवक पुत्र-मरोंके पुत्र तो अपनी बड़ाई करते हैं। तीनको ही मार्गदर्शक (=नियाँता) बतलाते हैं, जैसे कि—नन्द वात्स, कृश सांकृत्य, और मक्खली गोसाल"

तब सन्दक परिव्राजकने अपनी परिषद्को संबोधित किया—

"आप सब श्रमण गौतमके पास ब्रह्मचर्य-वास करें। हमारे लिये तो लाभ-सत्कार प्रशंसा छोड़ना, इस वक्त सुकर नहीं है।'

ऐसे सन्दक परिव्राजकने अपनी परिषद्को भगवान्के पास ब्रह्मचर्य-वास करनेके लिये प्रेरित किया।

[1](भगवान् आलवीसे चलकर) क्रमशः चारिका करते जहाँ राजगृह है, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् राजगृहमें वेणुवन कलन्दक-निवापमें विहार करते थे। उस समय राजगृहमें दुर्भिक्ष था।······

\+ \+ \+ \+

[2]सप्तदशी (वर्षा भगवान्ने) राजगृहमें (बिताई)।···

\+ \+ \+ \+

महासकुलुदायि-सुत्त ।

[3]ऐसा मैने सुना—एक समय भगवान् राजगृह वेणुवन कलन्दकनिवापमें विहार करते थे। उस समय बहुतसे प्रसिद्ध प्रसिद्ध (=अभिज्ञात) परिव्राजक मोरनिवाप परिव्राजकाराममें वास करते थे; जैसे कि—अनुगाम-वरचर और सकुल-उदायी परिव्राजक तथा दूसरे अभिज्ञात अभिज्ञात परिव्राजक।

तब भगवान् पूर्वाह्न-समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, राजगृहमें पिंड-चारके लिये प्रविष्ट हुये। तब भगवान्को यह हुआ—'राजगृहमें पिंड-चारके लिये अभी बहुत सवेरा है, क्यों न मैं जहाँ मोर-निवाप परिव्राजकाराम है, जहाँ सकुल-उदायि परिव्राजक है, वहाँ चलूँ'। तब भगवान् जहाँ मोर-निवाप परिव्राजकाराम था, वहाँ गये। उस समय सकुल-उदायी परिव्रा-

1. बुद्धचर्या ६। 2. अ. नि. अ. क. २।४।५। 3. म. नि. २।३।७।

जक ०[1] बहुत भारी परिव्राजक-परिषद्‌के साथ बैठा था। सकुल-उदायी परिव्राजकने दूरसे ही भगवान्‌को आते देखा। देखकर अपनी परिषद्‌को कहा—०।

भगवान् जहाँ सकुल-उदायी परिव्राजक था, वहाँ गये। सकुल-उदायी परिव्राजकने भगवान्‌को कहा :—

"आइये भन्ते भगवान्! स्वागत है, भन्ते भगवान्! चिरकालपर भगवान् यहाँ आये। भन्ते भगवान्! बैठिये, यह आसन बिछा है।"

भगवान् बिछे आसनपर बैठे। सकुल-उदायी परिव्राजक भी एक नीचा आसन लेकर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे सकुल-उदायी परिव्राजकको भगवान्‌ने कहा—

"उदायी! किस कथामें बैठे थे, क्या कथा बीचमें हो रही थी?"

"जाने दीजिये, भन्ते! इस कथाको, जिस कथामें हम इस समय बैठे थे। ऐसी कथा भन्ते! आपको पीछे भी सुननी दुर्लभ नहीं होगी। पिछले दिनों भन्ते! कुतूहल-शालामें बैठे, एकत्रित हुए, नाना तीर्थों (=पन्थों)के श्रमण ब्राह्मणोंके बीचमें यह कथा उत्पन्न हुई। अङ्ग-मागधोंका लाभ है, अङ्ग-मगधोंको अच्छा लाभ मिला; जहाँपर कि राजगृहमें (ऐसे ऐसे) संघपति=गणी=गणाचार्य ज्ञात=यशस्वी बहुतजनोंके सुसम्मानित, तीर्थंकर (=पंथ-स्थापक) वर्षावासके लिये आये हैं। यह पूर्ण काश्यप संघी, गणी, गणाचार्य, ज्ञात, यशस्वी बहुजन-सुसम्मानित तीर्थंकर हैं, सो भी राजगृहमें वर्षावासके लिये आये हैं। ०यह मक्खली गोसाल ०।० अजित केशकम्बली ०.० प्रकुध कात्यायन ०।० संजय बेलट्ठिपुत्र ०।० निगंठ नाथपुत्त ०। यह श्रमण गौतम भी संघी ०। वह भी राजगृहमें वर्षावासके लिये आये हैं। इन संघी० भगवान् श्रमण ब्राह्मणोंमें कौन श्रावकों (=शिष्यों)से (अधिक) सत्कृत = गुरुकृत = मानित = पूजित हैं? किसको श्रावक सत्कार, गौरव, मान, पूजाकर विहरते हैं?"

"वहाँ किन्हींने ऐसा कहा—यह जो पूर्ण काश्यप संघी० हैं, •सो श्रावकोंसे न सत्कृत ०न पूजित हैं। पूर्ण काश्यपको श्रावक सत्कार, गौरव, मान पूजा करके नहीं विहरते। पहिले (एक समय) पूर्ण काश्यप अनेक-सौकी सभाको धर्म उपदेशकर रहे थे। वहाँ पूर्ण काश्यपके एक श्रावकने शब्द किया—आप लोग इस बातको पूर्ण काश्यपसे मत पूछें। यह इसे नहीं जानते। हम इसे जानते हैं। हमें यह बात पूछें। हम इसे आप लोगोंको बतलायेंगे।' उस वक्त पूर्ण काश्यप बाँह पकड़कर, चिल्लाते थे—'आप सब चुप रहें, शब्द मत करें। यह लोग आप सबको नहीं पूछते। हमको······पूछते हैं। हम इन्हें बतलायेंगे'।—(किंतु) नहीं (चुप करा) पाते थे। पूर्ण काश्यपके बहुतसे श्रावक विवाद करके निकल गये—'तू इस धर्म-विनयको नहीं जानता, मैं इस धर्म-विनयको जानता हूँ'। तू क्या इस धर्मको जानेगा'? 'तू मिथ्या-आरूढ है, मैं सत्य-आरूढ (=सम्यक् प्रतिपन्न) हूँ'। मेरा (वचन) सहित (=सार्थक) है, तेरा अ-सहित है'। 'पहिले कहनेकी (बात तूने) पीछे कही, पीछे कहनेकी (बात) पहिले कही'। 'न किये (=अविचीर्ण)को तूने उलट दिया'। 'तेरा वाद निग्रहमें आगया'। 'वाद छोड़ानेके लिये (यत्न) करो'। 'यदि सकते हो तो खोल

1. पृष्ठ १७६।

रहो' । इस प्रकार पूर्ण काश्यप श्रावकोंसे न सत्कृत ०न पूजित है० । बल्कि पूर्ण काश्यप सभाकी धिक्कार (=धम्मक्कोस)से धिक्कारे गये हैं ।

"किसी किसीने कहा—यह मक्खली गोसाल संघी० भी श्रावकोंसे न सत्कृत० न पूजित है० ।०।०। ०यह अजित केश-कम्बली० भी० ।०। ०यह प्रकुध कात्यायन० भी० ।०। ०यह संजय बेलट्ठिपुत्त० भी० ।०। ०यह निगंठ नाथपुत्त० भी० ।०।

"किसी किसीने कहा—यह श्रमण गौतम संघी०है । और यह श्रावकोंसे ०पूजित है । श्रमण-गौतमको श्रावक सत्कार=गौरव कर, आश्रय ले, विहरते हैं । पहिले एक समय श्रमण गौतम अनेक सौकी सभाको धर्म उपदेश कर रहे थे । वहाँ श्रमण गौतमके एक शिष्यने खाँसा । दूसरे सब्रह्मचारी (=गुरुभाई)ने उसका पैर दबाया—'आयुष्मान् ! चुप रहें, आयुष्मान् ! शब्द मत करें । शास्ता हमें धर्म-उपदेश कर रहे हैं ।' जिस समय श्रमण गौतम अनेकशत परिषद्को धर्म उपदेश देते हैं, उस समय श्रमण गौतमके श्रावकोंका थूकने खाँसनेका (भी) शब्द नहीं होता । उनकी जनता प्रशंसा करती, प्रत्युत्थान करती है—जो हमें भगवान् धर्म उपदेश करेंगे, उसे सुनेंगे । श्रमण गौतमके जो श्रावक सब्रह्मचारियोंके साथ विवाद करके (भिक्षु-) शिक्षा (=नियम) को छोड़, हीन (गृहस्थ-आश्रम) को लौट आते हैं, वह भी शास्ताके प्रशंसक रहते हैं, धर्मके प्रशंसक रहते हैं, संघके प्रशंसक रहते हैं । दूसरेकी नहीं, अपनीही निन्दा करते हैं—'हमहीं' 'भाग्यहीन हैं, जो कि ऐसे स्वाख्यात धर्ममें प्रव्रजित हो, परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्यको जीवनभर पालन नहीं करसके', (और) वह आराम-सेवक (=आरामिक) हो या गृहस्थ (=उपासक) हो, पाँच शिक्षापदोंको ग्रहण करके रहते हैं । इस प्रकार श्रमण गौतम श्रावकोंसे० पूजित हैं । श्रमण गौतमको श्रावक सत्कार=गौरव कर, आश्रय ले विहरते हैं ।"

"उदायी ! तू कितने कितने धर्मोंको देखता है, जिनसे मुझे श्रावक० पूजते हैं०?"

"भन्ते ! भगवान्में मैं पाँच धर्मोंको देखता हूँ, जिनसे भगवान्को श्रावक० पूजते हैं० । कौनसे पाँच ? भन्ते ! भगवान् (१) अल्पाहारी अल्पाहारके प्रशंसक हैं, जो कि भन्ते ! भगवान् अल्पाहारी, अल्पाहार-प्रशंसक हैं; इसको मैं भन्ते ! भगवान्में प्रथम धर्म देखता हूँ, जिससे भगवान्को श्रावक० पूजते हैं० ।० (२) जैसे तैसे चीवर (=वस्त्र) से सन्तुष्ट रहते हैं, 'जैसे तैसे चीवरसे संतुष्टताके प्रशंसक० ।० (३) जैसे तैसे पिंडपात (=भिक्षा-भोजन) से संतुष्ट०, ०संतुष्टता-प्रशंसक० ।१ (४) शयनासन (=घर, बिस्तरा) से संतुष्ट,० संतुष्टता-प्रशंसक० ।० (५) एकान्तवासी, ०एकान्त-वास-प्रशंसक० । भन्ते ! भगवान्में मैं इन पाँच धर्मोंको देखता हूँ० ।"

"उदायी ! 'श्रमण गौतम अल्पाहारी, अल्पाहार-प्रशंसक हैं' इससे यदि मुझे श्रावक० पूजते, ०आश्रय ले विहरते; तो उदायी ! मेरे श्रावक कोसक (=पुरवा) भर आहार करनेवाले, अर्द्ध-कोसक-आहारी, बेल (=बेल बराबर बनाया छोटा बर्तन) भर आहार करनेवाले, आधा बेल-आहारी भी हैं । मैं उदायि ! कभी कभी इस पात्रभर खाता हूँ, अधिक भी खाता हूँ । यदि '०अल्पाहारी, अल्पाहार-प्रशंसक हैं' इससे ०पूजते० तो उदायी ! जो मेरे श्रावक० आधा-बेल आहारी हैं, वह मुझे इस धर्मसे न सत्कार करते० ।

"उदायी ! '०जैसे तैसे चीवरसे सन्तुष्ट० संतुष्टता-प्रशंसक०' इससे यदि मुझे श्रावक०

पूजते०; तो उदायी ! मेरे श्रावक पांसु-कूलिक=रूक्ष चीवर-धारी भी हैं। वह श्मशानसे कूड़ेके ढेरसे लत्ते-चीथड़े बटोरकर संघाटी (=भिक्षुका ऊपरका दोहरा वस्त्र) बना, धारण करते हैं। मैं उदायी ! किसी किसी समय दृढ़ शस्त्र-रूक्ष, लौका जैसे रोम वाले (=मखमल) गृहपतियोंके वस्त्रको भी धारण करता हूँ।०।

"उदायी ! '०जैसे तैसे पिंड-पातसे सन्तुष्ट, ०संतुष्टता-प्रशंसक०' इससे यदि मुझे श्रावक० पूजते०; तो उदायी ! मेरे श्रावक पिंड-पातिक (=मधुकरी-वाले), सपदानचारी (=निरन्तर चलते रह, भिक्षा माँगनेवाले) उंछ-व्रतमें रत भी हैं। वह गांवमें आसनके लिये निमंत्रित होनेपर भी, (निमन्त्रण) नहीं स्वीकार करते। मैं तो उदायी ! कभी कभी निमन्त्रणोंमें धानका भात, कालिमा-रहित अनेक सूप, अनेक व्यञ्जन (=तर्कारी) भी भोजन करता हूँ।०।

"उदायी ! '०जैसे तैसे शयनासनसे सन्तुष्ट, ०सन्तुष्टता-प्रशंसक०' इससे यदि मुझे श्रावक० पूजते०; तो उदायी ! मेरे श्रावक वृक्ष-मूलिक (=पेड़के नीचे सदा रहनेवाले), अभ्योकासिक (=अभ्यवकाशिक=सदा चौड़ेमें रहनेवाले) भी हैं, यह आठ मास (वर्षाके चार मास छोड़) छतके नीचे नहीं आते। मैं तो उदायी ! कभी कभी लिपे-पोते वायु-रहित, किवाड़-खिड़की-बन्द कोठों (=कूटागारों)में भी विहरता हूँ।०।

"उदायी ! '०एकान्तवासी एकान्तवास-प्रशंसक हैं०' इससे यदि ०पूजते; तो उदायी ! मेरे श्रावक आरण्यक (=सदा अरण्यमें रहनेवाले), प्रान्त-शयनासन (=बस्तीसे दूर कुटीवाले) हैं; (वह) अरण्यमें वनप्रस्थ=प्रान्तके शयनासनोंमें रहकर विहरते हैं। वह प्रत्येक अर्द्धमास प्रातिमोक्ष-उद्देश (=अपराध-स्वीकार)के लिये, संघके मध्यमें आते हैं। मैं तो उदायी ! कभी कभी भिक्षुओं, भिक्षुनियों, उपासकों, उपासिकाओं, राजा, राज-महामात्यों, तैर्थिकों, तैर्थिक-श्रावकोंसे आकीर्ण हो विहरता हूँ।०। इस प्रकार उदायी ! 'मुझे श्रावक इन पाँच धर्मोंसे नहीं ०पूजते०।

"उदायी ! दूसरे पाँच धर्म हैं, जिनसे श्रावक मुझे ०पूजते हैं०। कौनसे पाँच ? यहाँ उदायी ! (१) श्रावक मेरे शील (=आचार)से सन्मान करते हैं—श्रमण गौतम शीलवान् हैं, परम शील-स्कन्ध (=आचार-समुदाय) से संयुक्त हैं। जो कि उदायी ! श्रावक मेरे शीलमें विश्वास करते हैं—०; यह उदायी ! प्रथम धर्म है, जिससे०।

"और फिर उदायी ! (२) श्रावक मुझे अभिक्रान्त (=सुन्दर) ज्ञान-दर्शन (=ज्ञान का मनसे प्रत्यक्ष करने)में संमानित करते हैं—जानकर, ही श्रमण गौतम कहते हैं—'जानता हूँ', देखकर ही श्रमण गौतम कहते हैं—'देखता हूँ'। अनुभवकर (=अभिज्ञाय) ही श्रमण गौतम धर्म उपदेश करते हैं, बिना अनुभव किये नहीं। स-निदान (=कारण-सहित) श्रमण गौतम धर्म उपदेश करते हैं, अ-निदान नहीं। स-प्रातिहार्य (=सकारण)०, अ-प्रातिहार्य नहीं।०।

"और फिर उदायी ! (३) श्रावक मुझे प्रज्ञामें संमानित करते हैं—श्रमण गौतम परम-प्रज्ञा-स्कंध (=उत्तम-ज्ञान-समुदाय)से युक्त हैं। उनके लिये अनागत (=भविष्य) के वाद-विवादका मार्ग अन्-देखा है, (वह वर्तमानमें) उत्पन्न दूसरेके प्रवाद (=खंडन)

(४) प्रीति-संबोध्यंग० ।० (५) प्रश्रब्धि-संबोध्यंग० ।० (६) समाधि-संबोध्यंग० ।० (७) उपेक्षा-संबोध्यंग० । ।०

"और फिर० आर्य अष्टांगिक मार्गकी भावना करते हैं। उदायी! यहाँ भिक्षु (१) सम्यग्-दृष्टिकी भावना करते हैं ।० (२) सम्यग्-संकल्प० ।० (३) सम्यग्-वाक्० सम्यग्-कर्मान्त०।० (५) सम्यग्-आजीव०।० (६) सम्यग्-व्यायाम०।०(७) सम्यग्-स्मृति० । (८) सम्यग्-समाधि० ।०।

"आठ विमोक्षोंकी भावना करते हैं। (१) रूपी (=रूपवाला) रूपोंको देखते हैं, यह प्रथम विमोक्ष है। (२) शरीरके भीतर (=अध्यात्म) अ-रूप-संज्ञी (=रूप नहीं है-के ज्ञान वाले), बाहर रूपोंको देखते हैं० । (३) शुभ ही अधिमुक्त (=मुक्त) होते हैं० । (४) सर्वथा रूपसंज्ञा (=रूपके ख्याल) को अतिक्रमण कर, प्रतिहिंसाके ख्यालके लुप्त होनेसे, नानापनके ख्यालको मनमें न करनेसे 'आकाश अनंत है' इस आकाश-आनन्त्यायतनको प्राप्त हो विहरते हैं० । (५) सर्वथा आकाशानन्त्यायतनको अतिक्रमण कर 'विज्ञान (=चेतना) अनन्त है', इस विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरते हैं० । (६) सर्वथा विज्ञानानन्त्यायतनको अतिक्रमण कर 'कुछ नहीं है' इस आकिंचन्य-आयतनको प्राप्त हो० । (७) सर्वथा आकिंचन्यायतनको अतिक्रमण कर नैवसंज्ञा-नासंज्ञा-आयतन (= जिस समाधिका आभास न चेतनाही कहा जा सकता है, न अचेतना ही) को प्राप्त हो० । (८) सर्वथा नैव-संज्ञानासंज्ञायतनको अतिक्रमण कर प्रज्ञा-वेदित निरोध (पञ्ञावेदयित-निरोध) को प्राप्त हो विहरते हैं, यह आठवाँ विमोक्ष है। इससे और इसमें मेरे बहुतसे श्रावक…(अर्हत्-पद-प्राप्त हैं)।

"और फिर उदायी! ०आठ अभिभू-आयतनोंकी भावना करते हैं। (१) एक (भिक्षु) शरीरके भीतर (=अध्यात्म) रूपका ख्यालवाला (= रूपसंज्ञी), बाहर सु वर्ण दुर्वर्ण क्षुद्र-रूपोंको देखता है, उन्हें अभिभूत कर विहरता है। यह प्रथम अभिभ्वायतन है। (२) अध्यात्ममें रूप-संज्ञी, बाहर सु-वर्ण, दुर्वर्ण अ-प्रमाण (= बहुत भारी) रूपोंको देखता है। 'उन्हें अभिभूतकर जानता हूँ देखता हूँ' इस ख्यालवाला होता है ।०। (३) अध्यात्ममें अ-रूप-संज्ञी (='रूप नहीं है' इस ख्यालवाला), बाहर सुवर्ण दुर्वर्ण क्षुद्र-रूपोंको देखता है—०। (४) अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी, बाहर सुवर्ण-दुर्वर्ण अ-प्रमाण रूपोंको देखता है—०। (५) अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी बाहर नील=नीलवर्ण=नील-निदर्शन नील-निभास रूपोंको देखता है। जैसेकि अलसीका फूल नील=वर्ण=नील-निदर्शन=नील-निभास; जैसेकि दोनों ओर से विमृष्ट (कोमल, चिकना) नील० [1]बनारसी (वाराणसेयक) वस्त्र; ऐसेही अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी एक (भिक्षु) बाहर नील० रूपोंको देखता है—'उनको अभिभूतकर जानता हूँ देखता हूँ' इसे जानता है० । (६) अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी एक (भिक्षु) बाहर पीत (=पीला)=पीतवर्ण पीत-निदर्शन=पीत-निभास रूपोंको देखता है। जैसेकि पीत० कर्णिकार फूल या जैसे वह० पीत० बनारसी वस्त्र० ।०। (७) अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी…(पुरुष) लोहित (= लाल)=लोहितवर्ण=लोहित-निदर्शन=लोहित-निभास रूपोंको देखता है। जैसेकि

१. अ. क. "यहाँ(बनारसमें)कपासभी कोमल सूतकातनेवाली तथा जुलाहे भी चतुर, जल भी सु-चि-स्निग्ध (है)। यहाँका वस्त्र दोनों ही ओरसे…कोमल और स्निग्ध होता है।"

को धर्मके साथ न रोक सकेंगे' यह संभव नहीं। तो क्या मानते हो उदायी! क्या मेरे श्रावक ऐसा जानते हुये ऐसा देखते हुये, बीच बीचमें बात रोकेंगे?"

"नहीं भन्ते!"

"उदायी! मैं श्रावकोंके अनुशासनकी आकांक्षा नहीं रखता, बल्कि श्रावक मेरे ही अनुशासनको दोहराते हैं।०।

"और फिर उदायी! (४) दुःखसे उत्तीर्ण, विगत-दुःख हो, श्रावक, मुझे आकर, दुःख आर्य-सत्यको पूछते हैं। पूछे जानेपर उनको मैं दुःख आर्य-सत्य व्याख्यान करता हूँ। प्रश्नके उत्तरसे मैं उनके चित्तको सन्तुष्ट करता हूँ। वह आकर मुझे दुःख-समुदय आर्य-सत्य पूछते हैं०।० दुःख-निरोध०। ०दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् आर्य-सत्य पूछते हैं०।०

"और फिर उदायी! (५) मैंने श्रावकोंको प्रतिपद् (=मार्ग) बतला दी है। जिस पर आरूढ़ हो श्रावक चारों स्मृतिप्रस्थानोंकी भावना करते हैं—भिक्षु कायामें कायानुपश्यी हो विहरते हैं०[1], ०वेदनानुपश्यी०[1], ०चित्तानुपश्यी०, धर्ममें धर्मकी अनुपश्यना (=अनुभव) करते, तत्पर, स्मृति-संप्रजन्य युक्त हो, लोभ=दौर्मनस्यको हटाकर लोकमें विहरते हैं। तिसमें बहुतसे मेरे श्रावक अभिज्ञा-व्यवसान-प्राप्त=अभिज्ञा-पारमिता-प्राप्त (=अर्हत्-पद-प्राप्त) हो विहरते हैं।

"और फिर उदायी! मैंने श्रावकोंको (यह) प्रतिपद् बतला दी है; जिसपर आरूढ़ हो मेरे श्रावक चारों सम्यक्-प्रधानोंकी भावना करते हैं। उदायी! भिक्षु, (१) (धर्ममानमें) अन्-उत्पन्न पाप=अ-कुशल (=बुरे) धर्मोंको न उत्पन्न होने देनेके लिये, छन्द (=रुचि) उत्पन्न करते हैं, कोशिश करते हैं=वीर्य-आरम्भ करते हैं, चित्तको निग्रह=प्रधान करते हैं। (२) उत्पन्न पाप=अ-कुशल-धर्मोंके विनाशके लिये०। (३) अनुत्पन्न कुशल-धर्मोंकी उत्पत्तिके लिये०। (४) उत्पन्न कुशल-धर्मोंकी स्थिति=असंमोष, वृद्धि=विपुलताके लिये, भावना-पूर्ण कर छन्द उत्पन्न करते हैं०। यहाँ भी बहुतसे मेरे श्रावक (अर्हत्-पद) प्राप्त हैं।

"और फिर उदायी! मैंने श्रावकोंको प्रतिपद् बतला दी है, जिसपर आरूढ़ हो मेरे श्रावक चारों ऋद्धि-पादोंकी भावना करते हैं। यहाँ उदायी! भिक्षु (१) छन्द-समाधि-प्रधान-संस्कार-युक्त ऋद्धि-पादकी भावना करते हैं। (२) वीर्य-समाधि-प्रधान-संस्कार-युक्त ऋद्धि-पादकी भावना करते हैं। (३) चित्त-समाधि०। (४) विमर्श-समाधि०। यहाँ भी०।

"और फिर उदायी! ०जिसपर आरूढ़ हो मेरे श्रावक पाँच इन्द्रियोंकी भावना करते हैं। उदायी! भिक्षु (१) उपशम=संबोधिकी ओर ले जानेवाली, श्रद्धा-इन्द्रियकी भावना करते हैं। (२) वीर्य-इन्द्रिय०, (३) स्मृति-इन्द्रिय० (४) समाधि-इन्द्रिय०।०।

"०।० पाँच बलोंकी भावना करते हैं।—० श्रद्धाबल०, वीर्य-बल०, स्मृति बल०, समाधि-बल, प्रज्ञाबल०।

"०।० सात बोधि-अंगोंकी भावना करते हैं।—यहाँ उदायी! भिक्षु विवेक-आश्रित, विराग-आश्रित, निरोध-आश्रित व्यवसर्ग-परिणामी (१) स्मृति-संबोधि-अंगकी भावना करते हैं,० (२) धर्म-विचय-संबोध्यंगकी भावना करते हैं।० (३) वीर्य-संबोध्यंग०।

---

१. देखो पृष्ठ ११०।

(४) प्रीति-संबोध्यंग० ।० (५) प्रश्रब्धि-संबोध्यंग० ।० (६) समाधि-संबोध्यंग० ।० (७) उपेक्षा-संबोध्यंग० । ।०

"और फिर० आर्य अष्टांगिक मार्गकी भावना करते हैं। उदायी! यहाँ भिक्षु (१) सम्यग्-दृष्टिकी भावना करते हैं ।० (२) सम्यग्-संकल्प० ।० (३) सम्यग्-वाक्० सम्यग्-कर्मान्त०।० (५) सम्यग्-आजीव०।० (६) सम्यग्-व्यायाम०।०(७) सम्यग्-स्मृति० । (८) सम्यग्-समाधि० ।०।

"आठ विमोक्षोंकी भावना करते हैं। (१) रूपी (=रूपवाला) रूपोंको देखते हैं, यह प्रथम विमोक्ष है। (२) शरीरके भीतर (=अध्यात्म) अ-रूप-संज्ञी (=रूप नहीं है-के ज्ञान वाले), बाहर रूपोंको देखते हैं०। (३) शुभ ही अधिमुक्त (=मुक्त) होते हैं०। (४) सर्वथा रूपसंज्ञा (=रूपके ख्याल) को अतिक्रमण कर, प्रतिहिंसाके ख्यालके लुप्त होनेसे, नानापनके ख्यालको मनमें न करनेसे 'आकाश अनंत है' इस आकाश-आनन्त्यायनतको प्राप्त हो विहरते हैं०। (५) सर्वथा आकाशानन्त्यायतनको अतिक्रमण कर 'विज्ञान (=चेतना) अनन्त है' इस विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरते हैं०। (६) सर्वथा विज्ञानानन्त्यायतनको अतिक्रमण कर कुछ नहीं है' इस आकिंचन्य-आयतनको प्राप्त हो०। (७) सर्वथा आकिंचन्यायतनको अतिक्रमण कर नैवसंज्ञा-नासंज्ञा-आयतन (= जिस समाधिका आभास न चेतनाही कहा जा सकता है, न अचेतना ही) को प्राप्त हो०। (८) सर्वथा नैव-संज्ञानासंज्ञायतनको अतिक्रमण कर प्रज्ञा-वेदित-निरोध (पज्ञावेदयित-निरोध) को प्राप्त हो विहरते हैं, यह आठवाँ विमोक्ष हैं। इससे और इसमें मेरे बहुतसे श्रावक···(अर्हत् पद-प्राप्त हैं)।

"और फिर उदायी! ०आठ अभिभू-आयतनोंकी भावना करते हैं। (१) एक (भिक्षु) शरीरके भीतर (=अध्यात्म) रूपका ख्यालवाला (= रूपसंज्ञी), बाहर सु वर्ण दुर्वर्ण क्षुद्र-रूपोंको देखता है, उन्हें अभिभूत कर विहरता है। यह प्रथम अभिभ्वायत्न है। (२) अध्यात्ममें रूप-संज्ञी, बाहर सु-वर्ण, दुर्वर्ण अ-प्रमाण (= बहुत भारी) रूपोंको देखता है। 'उन्हें अभिभूतकर जानता हूँ देखता हूँ' इस ख्यालवाला होता है ।०। (३) अध्यात्ममें अ-रूप-संज्ञी (='रूप नहीं है' इस ख्यालवाला), बाहर सुवर्ण दुर्वर्ण क्षुद्र-रूपोंको देखता है—०। (४) अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी, बाहर सुवर्ण-दुर्वर्ण अ-प्रमाण रूपोंको देखता है—०। (५) अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी बाहर नील=नीलवर्ण=नील-निदर्शन नील-निभास रूपोंको देखता है। जैसेकि अलसीका फूल नील=वर्ण=नील-निदर्शन=नील-निभास; जैसेकि दोनों ओर से विमृष्ट (कोमल, चिकना) नील० [1]बनारसी (वाराणसेयक) वस्त्र; ऐसेही अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी एक (भिक्षु) बाहर नील० रूपोको देखता है—'उनको अभिभूतकर जानता हूँ देखता हूँ' इसे जानता है०। (६) अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी एक (भिक्षु) बाहर पीत (=पीला)=पीतवर्ण पीत-निदर्शन=पीत-निभास रूपोंको देखता है। जैसेकि पीत० कर्णिकार फूल या जैसे वह० पीत० बनारसी वस्त्र० ।०। (७) अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी···(पुरुष) लोहित (= लाल)=लोहितवर्ण=लोहित-निदर्शन=लोहित-निभास रूपोंको देखता है। जैसेकि

१. अ. क. "वहाँ (बनारसमें) कपासभी कोमल सूतकातनेवाली तथा जुलाहे भी चतुर, जल भी सु-वि-स्निग्ध (है)। वहाँका वस्त्र दोनों ही ओरसे···कोमल और स्निग्ध होता है।"

लोहित॰ बंधुजीवक (=अंडहुल) का फूल, या जैसे लाल॰ बनारसी वस्त्र॰ ।०। (८) अध्यात्ममें अरूप संज्ञी···अवदात (=सफेद)॰ रूपोंको देखता है। जैसे कि अवदात॰ शुक्रतारा (=ओसधी-तारका), या जैसेकि सफेद॰ बनारसी वस्त्र॰ ।०।

"और फिर उदायी ! ०दस कृत्स्न-आयतन (=कसिणायतन) की भावना करते हैं। (१) एक पुरुष ऊपर, नीचे, तिर्छे, अद्वितीय, अप्रमाण पृथ्वी-कृत्स्न (=पृथ्वी-कसिण=सारी पृथिवी ही) जानता है। (२) ०आप-कृत्स्न (= सारा पानी)०। (३) ०तेजः-कृत्स्न (=सारा तेज)०। (४)॰ ०वायु-कृत्स्न (=सारी हवा ही)०। (५) ०नील-कृत्स्न (=सारा नीला रंग)०। (६) ०पीत-कृत्स्न०। (७) लोहित-कृत्स्न०। (८) ०अवदात-कृत्स्न (=सारा सफेद)०। (९) ०आकाश-कृत्स्न०। (१०) ०विज्ञान-कृत्स्न (=चेतनामय, चिन्मात्र)॰।

"और फिर उदायी ! ०चार ध्यानोंकी भावना करते हैं। उदायी ! भिक्षु, कामोंसे अलग हो, अकुशल धर्मों (=बुरी बातों) से अलग हो वितर्क-विचार-सहित विवेकसे उत्पन्न प्रीति सुख-रूप) प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। वह इसी कायाको, विवेकसे उत्पन्न प्रीति-सुख-द्वारा प्लावित, परिप्लावित करता है, परिपूर्ण=परिस्फरण करता है। (उसकी) इस सारी कायाका कुछ भी (अंश) विवेकज प्रीति सुखसे अछूता नहीं होता। जैसे कि उदायी ! दक्ष (=चतुर) नहापित (=नहलाने वाला), या नहापितका चेला (=अन्तेवासी) काँसेके थालमें स्नानीय-चूर्णको डाल कर, पानी सुभा सुभा हिलावे। सो इसकी नहान-पिंडी स्नेह (= स्वच्छता) अनुगत, स्नेह-परिगत स्नेहसे अन्दर-बाहर लिप्त हो पिघलती है। ऐसेही उदायी ! भिक्षु इसी कायाको विवेकज प्रीति सुखसे प्लावित आप्लावित करता है, परिपूरण = परिस्फरण करता है।०।

"और फिर उदायी ! भिक्षु वितर्क विचारोंके उपशांत होनेसे॰[1] द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। वह इसी कायाको समाधिज प्रीति-सुखसे प्लावित = आप्लावित करता है॰। जैसे उदायी ! पाताल फोड़कर निकला पानीका दह हो। उसके न पूर्व-दिशामें पानीके आनेका मार्ग हो, न पश्चिम-दिशामें, न उत्तर-दिशामें, न दक्षिण-दिशामें॰। देव भी समय समयपर अच्छी तरह धार न बरसावे। तो भी उस पानीके दह (=उदक-दह) से शीतल वारिधारा फूटकर उस उदक दहको शीतल जलसे प्लावित, आप्लावित करे, परिपूरण-परिस्फरण करे; इस सारे उदक दहका कुछ भी (अंश) शीतल जलसे अछूता न हो। ऐसे उदायी ! इसी कायाको समाधिज प्रीति-सुखसे॰।

"और फिर उदायी ! भिक्षु॰[1] तृतीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। वह इसी कायाको निष्प्रीतिक (= प्रीति-रहित) सुखसे प्लावित॰ करता है॰। जैसे उदायी ! उत्पलिनी (=उत्पल समूह), पद्मिनी, पुंडरीकिनीमें, कोई कोई उत्पल, पद्म, पुंडरीक, पानीमें उत्पन्न पानीमें बढ़े, पानीसे (बाहर) न निकले, भीतर डूबेही पोषित, मूलसे सिरा तक शीतल जलसे प्लावित॰ होते हैं॰। ऐसेही उदायी ! भिक्षु इसी कायाको निष्प्रीतिक॰।

"और फिर उदायी !॰ [1]चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। वह इसी कायाको, परिशुद्ध=परि-अवदात चित्तसे प्लावित कर बैठा होता है।०। जैसे कि उदायी ! पुरुष अवदात

१. देखो पृष्ठ १६२।

(= श्वेत)-वस्त्रसे शिर तक लपेटकर बैठा हो। उसकी सारी कायाका कुछ भी (भाग) श्वेत वस्त्रसे अनाच्छादित न हो। ऐसे ही उदायी ! भिक्षु इसी कायाको०। तहाँ भी मेरे बहुतसे श्रावक अभिज्ञा-व्यवसान-प्राप्त, अभिज्ञा-पारमि-प्राप्त हैं।

"और फिर उदायि ! मैंने श्रावकोंको वह मार्ग बतला दिया है, जिस (मार्ग-)पर आरूढ़हो, मेरे श्रावक ऐसा जानते हैं—यह मेरा शरीर रूपवान्, चातुर्महाभूतिक, माता-पितासे उत्पन्न, भात दालसे बढ़ा, अनित्य = उच्छेद = परिमर्दन=भेदन = विध्वंसन धर्मवाला है। यह मेरा विज्ञान (=चेतना) यहाँ बंधा=प्रतिबद्ध है। जैसे उदायी शुभ्र सुन्दर जाति की, अठकोनी, सुन्दर पालिश की (=सुपरिकर्मकृत), स्वच्छ = विप्रसन्न, सर्व-आकार-युक्त वैदुर्य-मणि (= हीरा) हो। उसमें नील, पीत, लोहित, अवदात या पांडु सूत पिराया हो। उसको आँखवाला पुरुष हाथमें लेकर देखे—'यह शुभ्र० वैदुर्यमणि है, ०सूत पिरोया हो। ऐसेही उदायी ! मैंने० बतला दिया है०। तहाँ भी मेरे बहुतसे श्रावक०।

"और फिर उदायी ! ०मार्ग बतला दिया है, जिस मार्गपर आरूढ़ हो मेरे श्रावक, इस कायासे रूपवान् (= साकार), मनोमय, सर्वांग-प्रत्यंग-युक्त अखंडित-इन्द्रियोंयुक्त दूसरी कायाको निर्माण करते हैं। जैसे उदायी ! पुरुष मूंजमेंसे सींक निकाले। उसको ऐसा हो—'यह मूँज है, यह सींक। मूँज अलग है, सींक अलग है। मूँजसे ही सींक निकली है।' जैसे कि उदायी ! पुरुष म्यानसे तलवार निकाले। उसको ऐसाहो—'यह तलवार है, यह म्यान है। तलवार अलग है, म्यान अलग। म्यानसेही तलवार निकली है।' जैसे उदायी ! पुरुष साँपको पिटारीसे निकाले०। ऐसेही उदायी !० मार्ग बतला दिया है०।

"और फिर उदायी ? ०मार्ग बतला दिया है, जिस मार्गपर आरूढ़ हो, मेरे श्रावक अनेक प्रकारके ऋद्धि-विध (= योग-चमत्कार) को अनुभव करते हैं। एक होकर बहुत हो जाते हैं। बहुत होकर एक होते हैं। आविर्भाव, तिरोभाव (करते हैं), जैसे भीत-पार प्राकार-पार पर्वत-पार। आकाशमें जैसे बिना लेप (पार) हो जाते हैं। पृथिवीमें भी डूबना उतराना करते हैं, जैसे कि जलमें। पानीमें भी बिना भीगे चलते हैं, जैसे कि पृथिवीमें। पक्षि (=शकुनी) की भाँति आसन बाँधे आकाशमें चलते हैं। इतने महर्द्धिक=महानुभाव (=तेजस्वी) इन चाँद-सूर्यको भी हाथसे छूते हैं। ब्रह्मलोक तक कायासे वशमें रखते हैं। जैसे उदायी ! चतुर कुंभकार, या कुंभकारका चेला, सिझाई मिट्टीसे जो जो विशेष भाजन चाहे, उसी उसीको बनावे=निष्पादन करे। या जैसे उदायी ! चतुर दन्तकार (=हाथीके दाँतका काम करनेवाला) या दंतकारका चेला, सिझाये दाँतसे जो जो दंत-विकृति (= दाँतकी चीज) चाहे, उसे बनावे,=निष्पादन करे ! या जैसे उदायी ! चतुर सुवर्ण-कार या सुवर्णकारका चेला, सिझाये सुवर्णसे जिस जिस सुवर्ण-विकृतिको चाहे उसे बनावे०। ऐसे ही उदायी ! ०।

"और फिर उदायी ! ०जिस मार्ग पर आरूढ़ हो मेरे श्रावक दिव्य विशुद्ध, अमानुष, श्रोत्र-धातु (=कान) से दिव्य और मानुष, दूरवर्ती और समीपवर्ती' दोनोंही तरहके शब्दोंको सुनते हैं। जैसे कि उदायी ! बलवान् शंख-धमक (=शंख-बजानेवाला) अल्प-प्रयाससे चारों दिशाओंको जतलादे। ऐसेही उदायी०।

"और फिर उदायी !०जैसे मार्ग पर आरूढ़ हो, मेरे श्रावक दूसरे सत्वों=दूसरे पुद्गलों के चित्तको (अपने) चित्तद्वारा जानते हैं। सराग चित्तको 'राग सहित (यह) चित्त है' जानते हैं। वीतराग चित्तको 'वीत-राग चित्त है' जानते हैं। सद्वेष चित्तको 'स-द्वेष चित्त है' जानते हैं। वीत-द्वेष चित्त०। स-मोह चित्तको०। वीत-मोह चित्तको०। संक्षिप्त चित्तको०। विक्षिप्त चित्तको०। महद्गत (=विशाल) चित्तको०। अ-महद्गत चित्तको०। स-उत्तर (=जिससे बढ़कर भी है) चित्तको०। अन्-उत्तर चित्तको०। समाहित (=एकाग्र) चित्तको०। अ-समाहित चित्तको०। विमुक्त (=मुक्त) चित्तको०। अ-विमुक्त चित्तको०। जैसे उदायी! कोई शौकीन स्त्री या पुरुष, बालक या तरुण, परिशुद्ध=पर्यवदात दर्पण (=आदर्श) या स्वच्छ जलभरे पात्रमें अपने मुख-निमित्त (=मुखकी शकल) को देखते हुये, स-कणिक अंग होने पर स-कणिकांग (=सदोष अंग) जाने, अ-कणिकांग होनेपर अ-कणिकांग जाने। ऐसेही उदायी०।०।

"और फिर उदायी! जिस मार्ग पर आरूढ़ हो, मेरे श्रावक अनेक प्रकारके पूर्व-निवासों (=पूर्वजन्मों) को जानते हैं। जैसे कि, एक जाति (=जन्म) भी, दो जातिभी०, तीन जातिभी, चार जातिभी, पाँच जातिभी, बीस जातिभी, तीस जातिभी, चालीस जातिभी, पचास जातिभी, सौ जातिभी, हजार जातिभी, सौ हजार जातिभी, अनेक संवर्त-कल्पों (=महाप्रलयों) को भी अनेक विवर्त-कल्पों (=सृष्टियों) को भी अनेक संवर्त-विवर्त-कल्पों को भी, 'मैं वहाँ इस नाम, इस गोत्र, इस वर्ण, इस आहार-वाला, ऐसे सुख-दुःखको अनुभव करनेवाला इतनी आयु-पर्यन्त था। सो मैं वहाँसे च्युतहो, वहाँ उत्पन्न हुआ। वहाँ भी मैं० इतनी आयुपर्यन्त रहा। सो वहाँसे च्युत (=मृत) हो, यहाँ उत्पन्न हुआ'। इस प्रकार स-आकार (=आकृति-सहित) स-उद्देश (=नाम-सहित) अनेक प्रकारके पूर्व-निवासोंको अनुस्मरण करते हैं। जैसे उदायी! पुरुष अपने ग्रामसे दूसरे ग्राममें जावे। उस ग्रामसे भी दूसरे ग्रामको जावे। वह उस ग्रामसे अपनेही ग्रामको लौट आवे। उसको ऐसाहो—मैं अपने ग्रामसे उस गाँवको गया। वहाँ ऐसे खड़ा हुआ, ऐसे बैठा, ऐसे बोला, ऐसे चुप रहा। उस ग्रामसे भी उस ग्रामको गया। वहाँ भी ऐसे खड़ा हुआ०।

"और फिर उदायी! ०जैसे मार्ग पर आरूढ़ हो मेरे श्रावक दिव्य, विशुद्ध, अ-मानुष चक्षुसे, हीन, प्रणीत (=उत्तम), सुवर्ण दुर्वर्ण, सु-गत दुर्गत प्राणियोंको च्युत होते, उत्पन्न होते देखते हैं। कर्मानुसार (गतिको) प्राप्त प्राणियोंको जानते हैं—यह आप सत्त्व काय-दुश्चरितसे युक्त, वाक्-दुश्चरितसे युक्त, मन-दुश्चरितसे युक्त, आर्योंके निन्दक, मिथ्या-दृष्टि, मिथ्या दृष्टि कर्मको स्वीकार करनेवाले (थे), वह काया छोड़ मरनेके बाद अपाय-दुर्गति-विनिपात नर्कमें उत्पन्न हुये। और यह आप सत्त्व काय-सुचरितसे युक्त० आर्योंके अन्-उपवादक (=अनिन्दक), सम्यक्-दृष्टि, सम्यक्-दृष्टिकर्मको स्वीकार करनेवाले (थे), वह० सुगति=स्वर्गलोकमें उत्पन्न हुये हैं'। इस प्रकार दिव्य० चक्षुसे० देखते हैं। जैसे उदायी! समान द्वारवाले दो घर (हों), वहाँ आँखवाला पुरुष बीचमें खड़ा, मनुष्योंको घरमें प्रवेश करते भी, निकलते भी, अनुसंचरण विचरण करते भी देखे। ऐसे ही उदायी! ०।

"और फिर उदायी! ०जिस मार्गपर आरूढ़हो मेरे श्रावक आस्रवोंके विनाशसे अन्-आस्रव (=निर्दोष) चित्तकी विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्तिको इसी जन्ममें स्वयं जानकर, साक्षात्

कर, प्रासकर, विहरते हैं। जैसे कि उदायी ! पर्वतसे घिरा स्वच्छ = विप्रसन्न = अन्-आविल उदक-ह्रद (=जलाशय) हो। वहाँ आँखवाला पुरुष तीरपर खड़ा सीपको···कंकड़ पत्थरको भी, चलते खड़े मत्स्य-झुंडको भी देखे। ऐसेही उदायी ! ०।

"यह हैं उदायी ! पांच धर्म जिनसे मुझे श्रावक० पूजते हैं। ०।"

भगवान्‌ने यह कहा, सकुल-उदायी परिव्राजकने भगवान्‌के भाषणका अनुमोदन किया।

सिगालोवाद-सुत्त

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् राजगृहमें वेणुवन कलन्द-निवापमें विहार करते थे।

उस समय सिगाल (=शृगाल) नामक गृहपति-पुत्र सवेरेही उठकर, राजगृहसे निकल कर, भीगे-वस्त्र, भीगे-केश, हाथ जोड़े, पूर्व-दिशा, दक्षिण-दिशा, पश्चिम-दिशा, उत्तर-दिशा, नीचेकी दिशा, ऊपरकी दिशा—नाना दिशाओंको नमस्कार कर रहा था।

तब भगवान् पूर्वाह्न-समय चीवर पहिनकर पात्र-चीवर ले, राजगृहमें भिक्षाके लिए प्रविष्ट हुए। भगवान् ने सिगालको० नाना दिशाओंको नमस्कार करते देखा। देखकर सिगाल गृहपति-पुत्रको यह कहा—

"गृहपति-पुत्र ! तू क्या, सवेरे ही उठकर० नमस्कार कर रहा है ?"

"भन्ते ! मेरे पिताने मरते वक्त मुझे यह कहा है—'तात ! दिशाओंको नमस्कार करना।' सो मैं भन्ते ! पिताके वचनका सत्कार करते = गुरुकार करते, मान करते = पूजा करते, सवेरे ही उठकर० नमस्कार कर रहा हूँ।"

"गृहपति पुत्र ! आर्य-विनय (= आर्यधर्म)में इस तरह छ दिशायें नहीं नमस्कार की जातीं ?"

"फिर कैसे भन्ते ! आर्य-विनय में छ दिशायें नमस्कार की जाती हैं ? भन्ते ! अच्छा हो, जैसे आर्य-विनयमें दिशायें नमस्कार की जाती हैं, वैसे भगवान् मुझे धर्म-उपदेश करें।"

"तो गृहपति-पुत्र ! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ।"

"अच्छा भन्ते !"—कह सिगाल गृहपति-पुत्रने भगवान्‌को उत्तर दिया।

भगवान्‌ने यह कहा—

"गृहपति-पुत्र ! जब आर्य-श्रावकके चार कर्म-क्लेश छूट जाते हैं। चार स्थानोंसे (वह) पाप-कर्म नहीं करता। भोगों (=धन)के विनाशके छ कारणों को नहीं सेवन करता। (तब) वह इस प्रकार चौदह पापों (=बुराइयों)से रहित हो, छ दिशाओंको आच्छादित कर, दोनों लोकोंके विजयमें संलग्न होता है। उसका यह लोक भी आराधित होता है, परलोक भी। वह काया छोड़नेपर मरनेके बाद, सुगति स्वर्गलोकमें उत्पन्न होता है।

कैसे इसके चार कर्म-क्लेश छूटते हैं ? गृहपति-पुत्र ! (१) प्राणातिपात (=हिंसा) कर्मक्लेश है। (२) अदत्तादान (=चोरी)०। (३) मृषावाद (=झूठ)०। (४) काम-मिथ्याचार०। उसके यह चारों क्लेश छूट जाते हैं।"

भगवान्‌ने यह कहा। यह कहकर सुगत शास्ताने यह भी कहा—

"प्राणातिपात, अदत्तादान, मृषावाद (जो) कहा जाता है।
और परदार-गमन (इनकी) पंडित प्रशंसा नहीं करते॥

"किन चार स्थानोंसे पापकर्मको नहीं करता ? (१) छंद(=स्वेच्छाचार)के रास्तेमें जाकर पापकर्म करता है। (२) द्वेषके रास्तेमें जाकर०। (३) मोहके०। (४) भयके०। चूँकि गृहपति-पुत्र ! आर्य श्रावक न छन्दके रास्ते जाता है। न द्वेषके०, न मोहके०, न भयके०। (अतः) इन चार स्थानोंसे पापकर्म नहीं करता।—भगवान्‌ने यह कहा। यह कहकर शास्ता सुगतने फिर यह भी कहा—

"छन्द, द्वेष, भय और मोहसे जो धर्मका अतिक्रमण करता है।
कृष्णपक्षके चन्द्रमाकी भाँति, उसका यश क्षीण होता है॥
छन्द द्वेष, भय और मोहसे जो धर्मका अतिक्रमण नहीं करता।
शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भाँति, उसका यश बढ़ता है॥

"कौनसे छ भोगोंके अपायमुख (=विनाशके कारण) हैं। (१) शराब नशा आदिका सेवन…। (२) विकाल (=संध्या)में चौरस्तेकी सैर (=विसिखा-चारिया)में तत्पर होना…। (३) समज्या (=समाज=नाच-तमाशा)का सेवन…। (४) जूआ, (और दूसरी) दिमाग बिगाड़नेकी चीजें…। (५) बुरे मित्र (=पाप-मित्र)की मिताई…। (६) आलस्यमें फँसना…।

"गृहपति-पुत्र ! शराब-नशा आदिके सेवनमें छ दुष्परिणाम हैं। (१) तत्काल धनकी हानि। (२) कलहका बढ़ना। (३) (यह) रोगोंका घर है। (४) अपयश उत्पन्न करनेवाला है। (५) लज्जा नाश करनेवाला है। और छठें (६) बुद्धि (=प्रज्ञा)को दुर्बल करता है।…

"गृहपति-पुत्र ! विकालमें चौरस्तोंकी सैरके छ दुष्परिणाम हैं। (१) स्वयं भी वह अ-गुप्त=अ-रक्षित होता है। (२) उसके स्त्री-पुत्र भी अ-गुप्त=अरक्षित होते हैं। (३) उसकी धन-संपत्ति भी ०अरक्षित होती है। (४) बुरी बातोंकी शंका होती है। (५) झूठी बात उसपर लागू होती है। (६) बहुतसे दुःख कारक कामोंका करनेवाला होता है।…।

"गृहपति-पुत्र ! समज्याभिचरणमें छ दोष (=आदिनव) हैं। (१) (आज) कहाँ नाच है इसकी परेशानी। (२) कहाँ गाना है। (३) कहाँ आख्यान है ? (४) कहाँ पाणिस्वर (हाथसे ताल देकर नृत्य गीत) है ? (५) कहाँ कुम्भ-थून (वादन-विशेष) है ?…

"गृहपति-पुत्र ! द्यूत प्रमाद स्थानके सेवनमें छ दोष हैं। (१) जय (होनेपर) वैर उत्पन्न करता है। (२) पराजित होनेपर (हारे) धनको सोच करता है। (३) तत्काल धनका नुकसान। (४) सभामें जानेपर वचनका विश्वास नहीं रहता। (५) मित्रों और अमात्यों द्वारा तिरस्कृत होता है। (६) शादी-विवाह करनेवाले—यह जुआरी आदमी है, स्त्री का भरण-पोषण नहीं कर सकता—सोच, (कन्या देनेमें) आपत्ति करते हैं।…

"गृहपति-पुत्र ! दुष्ट-मित्रकी मिताईके छ दोष होते हैं। जो (१) धूर्त, (२) शौण्ड, (३) पियक्कड़ (=पियाक), (४) कृतघ्न, (५) वंचक और (६) गुण्डे (=साहसिक, लुच्चे) होते हैं, वही इसके मित्र होते हैं।

"गृहपति-पुत्र ! आलस्यमें पड़नेमें यह छ दोष हैं—(१) '(इस समय) बहुत ठंडा है' (सोच) काम नहीं करता। (२) 'बहुत गर्म है'—(सोच) काम नहीं करता।

(३) 'बहुत शाम हो गई है' (सोच)०। (४) 'बहुत सबेरा है'०। (५) 'बहुत भूखा हूँ'०। (६) 'बहुत खाया हूँ'० इस प्रकार बहुतसी करणीय बातोंको (न करनेसे उसके)···, अनुत्पन्न भोग उत्पन्न नहीं होते, और उत्पन्न भोग नष्ट हो जाते हैं।···।" भगवान्‌ने यह कहा। यह कहकर शास्ता सुगतने फिर यह भी कहा—

'जो (मद्य-)पानमें सखा होता है, (सामने) प्रिय बनता है, (वह मित्र नहीं)।
जो काम हो जानेपर भी, मित्र रहता है, वही सखा है।
अति-निद्रा, पर-स्त्री-गमन, वैर उत्पन्न करना और अनर्थ करना।
बुरेकी मित्रता और बहुत कंजूसी, यह छ मनुष्यों को बर्बाद कर देते हैं॥
पाप-मित्र (=बुरे-मित्रवाला), पाप-सखा और पापाचार में अनुरक्त।
मनुष्य इस लोक और पर(लोक) दोनोंसे ही नष्ट-भ्रष्ट होता है॥
जूआ, स्त्री, वारुणी, नृत्य-गीत, दिनकी निद्रा और अ-समयकी सेवा।
बुरे मित्रोंका होना, और बहुत कंजूसी, यह छ मनुष्यको बर्बाद कर देते हैं॥
(जो) जूआ खेलते हैं, सुरा पीते हैं, परायी प्राण-प्यारी स्त्रियों (का गमन करते हैं)।
नीचका सेवन करते हैं, पंडितका सेवन नहीं, (वह)कृष्ण-पक्षकी चन्द्रमासे क्षीण होते हैं॥
जो वारुणी(-रत), निर्धन, मुहताज, पियक्कड़, प्रमादी (होता है)।
(जो) पानीकी तरह ऋणमें अवगाहन करता है,(वह) शीघ्रही अपनेको व्याकुल करता है।
दिनमें निद्राशील, रातको उठनेमें बुरा माननेवाला।
सदा (नशामें) मस्त-शौंड गृहस्थी (=घर-आवास) नहीं कर सकता॥
'बहुत शीत है', 'बहुत उष्ण है', 'अब बहुत संध्या हो गई'।
इस तरह करते मनुष्य धन-हीन हो जाते हैं॥
जो पुरुष काम करते शीत-उष्णको तृणसे अधिक नहीं मानता।
वह सुखसे वंचित होनेवाला नहीं होता॥

"गृहपति-पुत्र! इन चारोंको मित्रके रूपमें अमित्र (=शत्रु) जानना चाहिये। (१) पर-धन-हारकको मित्र-रूपमें अमित्र जानना चाहिये। (२) केवल बात बनानेवालेको०। (३) (सदा) प्रिय वचन बोलनेवालेको०। (४) अपाय (=हानिकर कृत्योंमें -सहायकको०। गृहपति-पुत्र! चार बातोंसे पर-धन-हारकको०।—

'(१) पर-धन-हारक होता है। (२) थोड़े (धन) द्वारा बहुत (पाना) चाहता है। (३) भय (=विपत्ति) का काम करता है। (४) और स्वार्थके लिये सेवा करता है॥

"गृहपति-पुत्र! चार बातोंसे वचीपरम (=केवल बात बनानेवाले) को०।—

(१) भूत (कालिक वस्तु) की प्रशंसा करता है। (२) भविष्यकी प्रशंसा करता है। (३) निरर्थक (बात) की प्रशंसा करता है! (४) वर्तमानके काममें विपत्ति प्रदर्शन करता है॥

'गृहपति-पुत्र! चार बातोंसे प्रियभाणी (= प्रिय वचन बोलनेवाले) को०।—

'(१) बुरे काममें भी अनुमति देता है (२) अच्छे काममें भी अनुमति देता है। (३) सामने तारीफ करता है। और (४) पीठ-पीछे निन्दा करता है०···

"गृहपति-पुत्र! चार बातोंसे अपाय सहायकको०।—

'(१) सुरा, मेरय, मद्य-पान (जैसे) प्रमादके काममें फँसनेमें साथी होता है। (२) बेवक्त चौरस्ता घूमनेमें साथी होता है (३) समज्या देखनेमें साथी होता है। (४) जूआ खेलने (जैसे) प्रमादके काममें साथी होता है।···

भगवान्‌ने यह···कहकर, फिर···यह भी कहा—

'पर-धन-हारी मित्र, और जो वचीपरम मित्र है।
प्रिय-भाणी मित्र और जो अपायोंमें सखा है॥
यह चारो अमित्र हैं, ऐसा जानकर पंडित (पुरुष)।
खतरे-वाले रास्तेकी भाँति (उन्हें) दूरसे ही छोड़ दे॥

"गृहपति-पुत्र! इन चार मित्रोंको सुहृद् जानना चाहिये।—

(१) उपकारी मित्रको सुहृद् जानना चाहिये। (२) सुख-दुःखको समान भोगनेवाले मित्रको०। (३) अर्थ (की प्राप्तिके उपायको) कहनेवाले मित्रको०। (४) अनुकंपक मित्रको०।

"गृहपति-पुत्र चार बातोंसे उपकारी मित्रको सुहृद् जानना चाहिये—

(१) प्रमत्त (= भूल करनेवाले) की रक्षा करता है। (२) प्रमत्तकी संपत्तिकी रक्षा करता है। (३) भयभीतका रक्षक (=शरण) होता है। (४) काम पड़ आनेपर, उसे दुगुना फल उत्पन्न करवाता है।···

"गृहपति-पुत्र! चार बातोंसे समान-सुख-दुःख मित्रको सुहृद् जानना चाहिये—(१) इसे गुह्य (बात) बतलाता है। (२) इसकी गुह्य-बातको गुह्य रखता है। (३) आपदमें इसे नहीं छोड़ता (४) इसके लिए प्राण भी देनेको तैयार रहता है।···

"गृहपति-पुत्र! चार बातोंसे अर्थ-आख्यायी मित्रको सुहृद् जानना चाहिये—

(१) पापका निवारण करता है। (२) पुण्यका प्रवेश कराता है। (३) अ-श्रुत (विद्या) को श्रुत कराता है। (४) स्वर्गका मार्ग बतलाता है।···

"गृहपति-पुत्र! चार बातोंसे अनुकंपक मित्रको सुहृद् जानना चाहिये—

(१) मित्रके (धन-संपत्ति) होनेपर खुश नहीं होता। (२) होनेपर भी खुश नहीं होता। (३) (मित्रकी) निन्दा करनेवालेको रोकता है। (४) प्रशंसा करनेपर प्रशंसा करता है।···। यह कहकर···फिर यह भी कहा—

'जो मित्र उपकारक होता है, सुख-दुःखमें जो सखा (बना) रहता है।
जो मित्र अर्थ-आख्यायी होता है, और जो मित्र अनुकंपक होता है॥
यही चार मित्र हैं, बुद्धिमान् ऐसा जानकर।
सत्कार-पूर्वक माता-पिता और पुत्रकी भाँति उनकी सेवा करे।
सदाचारी पंडित मधुमक्खीकी भाँति भोगोंको संचय करते।
प्रज्वलित अग्निकी भाँति प्रकाशमान होता है॥
(उसके) भोग (=संपत्ति) जैसे वल्मीक बढ़ता है, वैसे बढ़ते हैं॥
इस प्रकार भोगोंका संचयकर अर्थ-संपन्न कुलवाला (हो) गृहस्थ।
चार भागोंमें भोगोंको विभाजित करे, वही मित्रोंको बाँधता है॥
एक भागका स्वयं भोग, दो भागोंको काममें लगावे।

चौथे भागको अपत्कालमें काम आनेके लिये रख छोड़े ॥

"गृहपति-पुत्र ! यह दिशायें जाननी चाहियें। माता-पिताको पूर्व-दिशा जानना चाहिये। आचार्योंको दक्षिण-दिशा जाननी चाहिये। पुत्र-स्त्रीको पश्चिम-दिशा०। मित्र-अमात्योंको उत्तर-दिशा०। दास-कमकरको नीचेकी दिशा०। श्रमण-ब्राह्मणोंको ऊपरकी दिशा०।

"गृहपति-पुत्र ! पाँच तरहसे माता-पिताका प्रत्युपस्थापन (= सेवा) करना चाहिये। (१) (इन्होंने मेरा) भरण-पोषण किया है, अतः मुझे (इनका) भरण-पोषण करना चाहिये। (२) (मेरा काम किया है, अतः) इनका काम मुझे करना चाहिये। (३) (इन्होंने कुल-वंश कायम रक्खा, अतः) मुझे कुल-वंश कायम रखना चाहिये। (४) इन्होंने मुझे दायज्ज (= वरासत) दिया, अतः मुझे दायज्ज प्रतिपादन करना चाहिये। मृत प्रेतोंके निमित्त श्राद्ध-दान देना चाहिये।...इन पाँच तरहसे सेवित (माता-पिता) पुत्रपर पाँच प्रकारसे अनुकंपा करते हैं—(१) पापसे निवारण करते हैं। (२) पुण्यमें लगाते हैं। (३) शिल्प सिखलाते हैं। (४) योग्य स्त्रीसे संबंध कराते हैं। (५) समय पाकर दायज्ज निष्पादन करते हैं। गृहपति-पुत्र ! इन पाँच बातोंसे पुत्रद्वारा माता-पिता-रूपी पूर्वदिशा प्रत्युपस्थान की जाती है।...इस प्रकार इस (पुत्र) की पूर्वदिशा प्रतिच्छन्न (= ढंकी, रक्षायुक्त) क्षेम-युक्त, भय-रहित होती है।

"गृहपति-पुत्र ! पाँच बातोंसे शिष्यद्वारा आचार्य-रूपी दक्षिण-दिशा प्रत्युपस्थान (= उपासना) की जाती है। (१) उत्थान (= तत्परता) से, (२) उपस्थान (= हाजिरी = सेवा) से, (३) सुश्रूषासे, (४) परिचर्या = सत्संग से, सत्कार-पूर्वक शिल्प सीखनेसे।

"गृहपति-पुत्र ! इस प्रकार पाँच बातोंसे शिष्यद्वारा आचार्य सेवित हो, पाँच प्रकारसे शिष्यपर अनुकंपा करते हैं—(१) सु-विनयसे युक्त करते हैं। (२) सुन्दर शिक्षाको भली-प्रकार सिखलाते हैं। (३) 'हमारी (विद्या) परिपूर्ण रहेगी' सोच सभी शिल्प सभी श्रुत (= विद्या) को सिखलाते हैं। (४) मित्र-अमात्योंको सुप्रतिपादन करते हैं। (५) दिशाकी सुरक्षा करते हैं।

"गृहपति-पुत्र ! पाँच प्रकारसे स्वामि-द्वारा भार्या-रूपी पश्चिम-दिशाका प्रत्युपस्थान करना चाहिये। (१) सम्मानसे, (२) अपमान न करनेसे, (३) अतिचार (पर-स्त्री-गमन आदि) न करनेसे, (४) ऐश्वर्य-प्रदानसे, (५) अलंकार-प्रदानसे। गृहपति-पुत्र ! इन पाँच प्रकारोंसे स्वामिद्वारा भार्यारूपी पश्चिम-दिशा प्रत्युपस्थानकी जानेपर, स्वामिपर पाँच प्रकारसे अनुकंपा करती है—(१) (भार्याद्वारा) कर्मान्त (= काम-काज) भली प्रकार होते हैं। (२) परिजन (= नौकर-चाकर) वशमें रहते हैं। (३) (स्वयं) अतिचारिणी नहीं होती। (४) अर्जितकी रक्षा करती है। (५) सब कामोंमें निरालस्य और दक्ष होती है।...

गृहपति पुत्र ! पाँच प्रकारसे मित्र-अमात्य-रूपी उत्तर-दिशाका प्रत्युपस्थान करना चाहिये—(१) दानसे, (२) प्रिय-वचनसे, (३) अर्थ-चर्या (=काम कर देने)से, (४) समानता (प्रदर्शन)से, (५) विश्वास-प्रदानसे। गृहपति-पुत्र ! इन पाँच प्रकारोंसे प्रत्युपस्थान की गई मित्र-अमात्यरूपी उत्तर-दिशा, पाँच प्रकारसे (उस) कुल-पुत्रपर अनुकंपा करती है—(१) प्रमाद (=भूल, आलस्य) कर देनेपर रक्षा करते हैं। (२) प्रमत्तकी संपत्तिकी रक्षा करते हैं।

(३) भयभीत होनेपर शरण (=रक्षक) होते हैं। (४) आपत्कालमें नहीं छोड़ते। (५) दूसरी प्रजा (=लोग) भी (ऐसे मित्र-अमात्यवाले) इस पुरुषका सत्कार करती है।···

"गृहपति-पुत्र ! पाँच प्रकारोंसे आर्यक (=मालिक) द्वारा दास-कर्मकर रूपी निचली-दिशाका प्रत्युपस्थान करना चाहिये—(१) बलके अनुसार कर्मान्त (= काम) देनेसे, (२) भोजन-वेतन (भत्ता-वेतन)-प्रदानसे, (३) रोगि-सुश्रूषासे, (४) उत्तम रसों (वाले पदार्थों)को प्रदान करनेसे, (५) समयपर छुट्टी (=वोस्सग्ग) देनेसे। गृहपति-पुत्र ! इन पाँचों प्रकारोंसे··· प्रत्युपस्थान किये जानेपर दास-कर्मकर पाँच प्रकारसे मालिकपर अनुकंपा करते हैं—(१) (मालिकसे) पहिले, (बिस्तरसे) उठ जानेवाले होते हैं। (२) पीछे सोनेवाले होते हैं। (३) दियेको (ही) लेनेवाले होते हैं। (४) कामोंको अच्छी तरह करनेवाले होते हैं। (५) कीर्ति-प्रशंसा फैलानेवाले होते हैं।

"गृहपति-पुत्र ! पाँच प्रकारसे कुल-पुत्रको श्रमण-ब्राह्मण रूपी ऊपरकी दिशाका प्रत्युपस्थान करना चाहिये। (१) मैत्री-भाव-युक्त कायिक-कर्मसे, (२) मैत्री-भाव-युक्त वाचिक-कर्मसे, (३) ० मानसिक-कर्मसे, (४) (याचकों-भिक्षुओंके लिये) खुले-द्वारवाला होनेसे, (५) आमिष (खान-पान आदिकी वस्तु)के प्रदान करनेसे। ०गृहपति-पुत्र ! अनुकंपा करते हैं—(१) पाप (बुराई)से निवारण करते हैं। (२) कल्याण (= भलाई)में प्रवेश कराते हैं। (३) कल्याण (-प्रदान)-द्वारा इनपर अनुकंपा करते हैं। (४) अ-श्रुत (विद्या)को सुनाते हैं। (५) श्रुत (विद्या)को दृढ़ करते हैं। (६) स्वर्गका रास्ता बतलाते हैं।···········

ऐसा कहनेपर सिगाल गृहपति-पुत्रने भगवान्‌को यह कहा—"आश्चर्य ! भन्ते !! अद्भुत ! भन्ते !!० आजसे मुझे भगवान् अंजलि-बद्ध शरणागत उपासक धारण करें।"

× × × ×

(९)

चूल-सकुलुदायि-सुत्त (ई. पू. ५१२)

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् राजगृहमें वेणुवन कलन्दक-निवापमें विहार करते थे। उस समय सकुल-उदायी परिव्राजक बड़ी परिषद्‌के साथ परिव्राजकाराममें वास करता था।

"भगवान् पूर्वाह्न समय ०[2]। ०जहाँ सकुल उदायी परिव्राजक, था, वहाँ गये। तब सकुल-उदायी परिव्राजक ने भगवान को कहा—"आइये भन्ते० ।"

०[3] "जाने दीजिये भन्ते ! इस कथाको०[4]। जब मैं भन्ते ! इस परिषद्‌के पास नहीं होता। तब यह परिषद् अनेक प्रकारकी व्यर्थकी कथायें (तिरश्चीन-कथा) कहती बैठती है। और जब भन्ते ! मैं इस परिषद्‌के पास होता हूँ, तब यह परिषद् मेरा ही मुख देखती बैठी होती है—'हमें श्रमण उदायी जो कहेगा, उसे सुनेंगे'। जब भन्ते ! भगवान् इस परिषद्‌के पास होते हैं, तब मैं और यह परिषद् भगवान्‌का मुख ताकती बैठी होती है—'भगवान् हमें जो धर्म उपदेश करेंगे, उसे हम सुनेंगे।'"

१. म. नि. २:३:९। २. पृष्ठ ४७५। ३. पृष्ठ १६०। ४. पृष्ठ १६६।

"उदायी ! तुझे ही जो मालूम पड़े, मुझे कह !"

"पिछले दिनों भन्ते ! (जो वह) सर्वज्ञ=सर्वदर्शी, निखिल-ज्ञान-दर्शन (-ज्ञाता) होनेका दावा रखते हैं—'चलते, खड़े, सोते, जागते भी (मुझे) निरन्तर ज्ञान-दर्शन उपस्थि रहता है'। वह मेरे आरंभ-संबंधी प्रश्न पूछनेपर, इधर-उधर जाने लगे, बाहरकी कथामें जाने लगे। उन्होंने कोप, द्वेष और अविश्वास प्रकट किया। तब भन्ते ! मुझे भगवान् के ही प्रति प्रीति उत्पन्न हुई—'अहो ! निश्चय भगवान् (हैं), अहो ! निश्चय सुगत (हैं), जो इन धर्मोंमें पंडित (=कुशल) हैं।"

"कौन हैं वह उदायी ! सर्वज्ञ=सर्वदर्शी०, जो कि तेरे आरंभ-संबंधी प्रश्न पूछनेपर इधर उधर जाने लगे० अविश्वास प्रकट किये !"

"भन्ते ! निगंठ नाथ-पुत्त।"

"उदायी ! जो अनेक प्रकारके पूर्व-जन्मोंको जानता है०[1], वह मुझे आरम्भ (=पूर्व-अन्त) के विषय में प्रश्न पूछे, और उसको मैं पूर्वान्तके विषयमें प्रश्न पूछूँ। वह मेरे पूर्वान्त-विषयक प्रश्नका उत्तर देकर, मेरे चित्तको प्रसन्न करे और मैं उसके पूर्वान्त विषयक प्रश्नका उत्तर देकर, उसके चित्तको प्रसन्न करूँ। जो, उदायी ! 'दिव्य० चक्षुसे० सत्वोंको च्युत होते, उत्पन्न होते देखता है। वह मुझे दूसरे छोर (=अपर-अन्त) के विषयमें प्रश्न पूछे, मैं उसे दूसरे छोरके विषयमें प्रश्न पूछूँ। वह मेरे० प्रश्नका उत्तर दे, मेरे चित्तको प्रसन्न करे; और० मैं उसके चित्तको०। या उदायी ! जाने दो पूर्व-अन्त, जाने दो अपर-अन्त। मैंने तुझे धर्म बतलाया हूँ—'ऐसा होनेपर, यह होता है, इसके उत्पन्न होनेसे, यह उत्पन्न होता है। इसके न होनेपर, यह नहीं होता। इसके निरोध (=विनाश) होनेपर, यह निरुद्ध होता है।'

"भन्ते ! जो कुछ कि इसी शरीरमें अनुभव किया है, मैं तो उसे भी आकार-उद्देश्य-सहित स्मरण नहीं कर सकता, कहाँसे भन्ते ! मैं अनेक-विहित पूर्व-निवासों (=पूर्व-जन्मों) को स्मरण करूँगा—०, जैसे कि भगवान् भन्ते ! मैं इस वक्त पांसु-पिशाचक (=चुड़ैल) को भी नहीं देखता, कहाँसे फिर मैं दिव्य० चक्षुसे० सत्वोंको च्युत० उत्पन्न होते० देखूँगा०, जैसे कि भगवान् ? भन्ते ! भगवान्ने जो मुझे कहा—'उदायी ! जाने दो पूर्वान्त० इसके निरोध होनेपर यह निरुद्ध होता है।' यह मेरे लिये अधिक पसन्द आता है। क्या भन्ते ! मैं अपने मत (=आचार्यक)के अनुसार प्रश्नोत्तर दे, भगवान्के चित्तको प्रसन्न करूँ।"

"उदायी ! तेरे (अपने) मतमें क्या है ?"

"हमारे मत (=आचार्यक[1])में भन्ते ! ऐसा है—'यह परम-वर्ण (है), यह परम-वर्ण (है)।'

"उदायी ! जो यह तेरे आचार्यकमें ऐसा होता है—यह परम-वर्ण, यह परम-वर्ण' यह कौन सा परम-वर्ण है ?"

"भन्ते ! जिस वर्णसे उत्तर-तर=या प्रणीततर (=उत्तमतर) दूसरा वर्ण नहीं है, वह परम-वर्ण है।"

"कौन है उदायी ! यह वर्ण; जिससे० प्रणीततर दूसरा वर्ण नहीं है ?"

---

१. परिव्राजकोंका सिद्धांत।

"भन्ते ! जिस वर्ण (=रङ्ग)से० प्रणीततर (=अधिक, उत्तम) दूसरा वर्ण नहीं है, वह परम-वर्ण है।"

"उदायी ! यह तेरी (बात) दीर्घ-(कालतक) भी चले—'जिस वर्णसे० प्रणीततर दूसरा वर्ण नहीं०' तो भी तू उस वर्णको नहीं बतला सकता। जैसे कि उदायी ! (कोई) पुरुष ऐसा कहे—मैं जो इस जनपद (=देश)में जो जनपद-कल्याणी (=सुन्दरियोंकी रानी) है, उसको चाहता हूँ[1] तो क्या मानते हो उदायी ! क्या ऐसा होनेपर उस पुरुषका कथन अ-प्रामाणिक नहीं होता ?"

"अवश्य भन्ते ! ऐसा होनेपर उस पुरुषका कथन अप्रामाणिक होता है।"

"इसी प्रकार तू उदायी !—'जिस वर्णसे० प्रणीततर दूसरा वर्ण नहीं, वह परम वर्ण है' कहता है; और उस वर्णको नहीं बतलाता।"

"जैसे भन्ते ! शुभ्र, उत्तम जातिकी अठकोनी, पालिशकी हुई वैडूर्य-मणि (=हीरा), पांडु-कंबल (=लाल-दोशाले)में रखी, भासित होती है, चमकती है, विरोचित होती है; मरनेके बाद भी आत्मा इसी प्रकारके वर्णवाला हो, अरोग (=अ-विनाशी) होता है।"

"तो क्या मानते हो, उदायी ! शुभ्र० वैडूर्य-मणि० विरोचित होती है, और जो यह रातके अन्धकारमें जुगनू कीड़ा है, इन दोनों वर्णों (=रङ्गों)में कौन अधिक चमकीला (=अभिक्रान्ततर) और प्रणीततर है ?"

"जो यह भन्ते ! रातके अन्धकारमें जुगनू कीड़ा है, यही इन दोनों वर्णोंमें अधिक चमकीला० है।"

"तो क्या मानते हो, उदायी ! जो यह रातके अंधकारमें जुगनू कीड़ा है और जो यह रातके अंधकारमें तेलका प्रदीप (है); इन दोनों वर्णोंमें कौनसा अधिक चमकीला या प्रणीततर है ?"

"भन्ते ! यह जो रातके अंधकारमें तेल-प्रदीप है० ।"

"तो क्या मानते हो उदायी ! जो यह रातके अंधकारमें तेल-प्रदीप है, और जो यह रातके अंधकारमें महान् अग्नि-स्कंध (=आगका ढेर) है। इन दोनों वर्णोंमें कौनसा अधिक चमकीला० है ?"

"भन्ते जो यह० अग्नि-स्कंध० ।"

"तो० उदायी ! जो यह रातके अंधकारमें महान् अग्निस्कंध है, और जो यह रातके भिनसारमें मेघ-रहित स्वच्छ आकाशमें ओषधि-तारा (=शुक्र[2]) है, इन दोनों वर्णोंमें कौनसा अधिक चमकीला० है ?"

"भन्ते जो यह !० ओषधि तारा० ।"

"तो० उदायी ! जो यह० ओषधि-तारा है, जो यह आषाढ़के मेघ-रहित स्वच्छ

---

१. देखो पृष्ठ १६६।

२. अ. क. "ओसधि-तारका=शुक्र तारका (=शुक्रतारा) यहीं रातके उदय-स्थानको ओषधका ग्रहण करते भी हैं, पीते भी हैं, इसलिये ओसधि-तारा कहा जाता है"।

आकाशमें उस दिनके उपवासकी पूर्णिमाका चन्द्र है; इन दोनों वर्णोंमें कौनसा अधिक चम-कीला० है ?"

"भन्ते० जो वह चन्द्र० ।"

"तो० उदायी ! जो वह० चन्द्र है, और जो वह वर्षाके पिछले मास, शरद्के साथ मेघ-रहित स्वच्छ आकाशमें मध्याह्नके समय सूर्य है; इन दोनों वर्णोंमें कौनसा अधिक चम-कीला० है ?"

"भन्ते ! जो यह० सूर्य० ।"

"उदायी ! मैं ऐसे बहुतसे देवताओंको जानता हूँ, जिनपर चन्द्र-सूर्यका प्रकाश नहीं लगता । तब भी मैं नहीं कहता—'जिस वर्णसे प्रणीत-तर० दूसरा वर्ण नहीं०' । और तू तो उदायी ! जो यह जुगनू कीड़ेसे भी हीन-तर निकृष्ट-तर वर्ण है, वही परम-वर्ण है, उसीका वर्ण (=तारीफ) बखानता है ।"

"यह कैसा अच्छा भगवान् ! यह कैसा अच्छा सुगत !"

"उदायी ! क्या तू ऐसे कह रहा है—'यह कैसा अच्छा० ।"

"भन्ते ! हमारे आचार्यक (=मत)में ऐसा होता है—'यह परम-वर्ण है', 'यह परम-वर्ण है' । सो हम भन्ते ! भगवान्के साथ अपने आचार्यकके विषयमें पूछने = अवगाहन करने = सम्-अनुभाषण करनेपर रिक्त=तुच्छ = अपराधी (से-) हैं ।"

"क्या उदायी ! लोक एकान्त-सुख (=सुख-मय) है ? एकांत-सुखवाले लोकके साक्षात्कारके लिये क्या (कोई) आकारवती (= सविस्तर) प्रतिपद् (=मार्ग) है ?"

"भन्ते ! हमारे आचार्यकमें ऐसा होता है—एकांत-सुखवाला लोक है, एकांत-सुखवाले लोकके साक्षात्कारके लिये आकार-वती प्रति-पद् भी है ।"

"कौन सी है उदायी !० आकारवती प्रतिपद् ?"

"यहाँ भन्ते ! कोई (पुरुष) प्राणातिपातको छोड़, प्राण-हिंसासे विरत होता है । अदत्तादान (=बिनादिया लेना=चोरी) छोड़, अदत्तादानसे विरत होता है, ०काम मिथ्याचार (=व्यभिचार) से विरत होता है । ०मृषावाद (=झूठ बोलने) से विरत होता है । किसी एक तपोगुणको लेकर रहता है । यह है भन्ते !० आकारवती प्रतिपद् ।"

"तो ०उदायी ! जिस समय प्राणातिपात-विरत होता है, क्या उस समय आत्मा एकांत-सुखी (= केवल सुख अनुभव करनेवाला) होता है, या सुख-दुःखी ?"

"सुख-दुःखी, भन्ते !"

"तो ०उदायी ! जिस समय० अदत्तादान-विरत होता है, क्या उस समय आत्मा एकांत सुखी होता है, या सुख-दुःखी ?"

"सुख-दुःखी, भन्ते !"

"तो ० उदायी ! जिस समय ० काम-मिथ्याचार-विरत० । ० । मृषावाद ० । ० ० किसी एक तपो-गुणसे युक्त होता है । क्या उस समय आत्मा एकांत-सुखी होता है, या सुख-दुःखी ?"

"सुख दुःखी भन्ते !"

"तो क्या मानते हो, उदायी ! क्या व्यवकीर्ण (= मिश्रित) (पुरुष) को सुख-दुःख

(मिश्रित) मार्ग (=प्रतिपद्) को पाकर, एकांत सुखवाले लोकका साक्षात्कार होता है ?"

"यह कैसा अच्छा ! भगवान् !! यह कैसा अच्छा ! सुगत !!"

"उदायी ! क्या तू यह ऐसे कहरहा है—'यह कैसा अच्छा ०।"

"भन्ते ! हमारे आचार्यक (=मत) में ऐसा होता है—एकांत-सुखवाला लोक है, एकांत-सुखवाले लोकके साक्षात्कारके लिये आकार-वती प्रति-पद् है। सो भन्ते ! हम भगवान्के ०भाषण करने पर सुष्ठु ० हैं। क्या भन्ते ! एकांत-सुखवाला लोक है ? एकांत सुखवाले लोकके साक्षात्कारके लिये आकारवती प्रतिपद् है ?"

"है उदायी ! एकांत-सुख लोक, है आकारवती प्रतिपद्।"

"भन्ते ! एकांत-सुखवाले लोकके साक्षात्कारके लिए आकार-वती प्रतिपद् कौनसी है ?"

"यहाँ उदायी ! भिक्षु ०[1] प्रथम-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। ० द्वितीय-ध्यानको ०। ० तृतीय-ध्यानको ०। यह है उदायी ! ० आकारवती प्रतिपद्।"

"भन्ते ! एकांत-सुखवाले लोकके साक्षात्कारके लिये यही आकारवती प्रतिपद् है ? इतने होते भन्ते ! उसको एकान्त-सुख लोकका साक्षात्कार होगया रहता है ?"

"नहीं, उदायी ! इतनेसे एकांत-सुखवाले लोकका साक्षात्कार (नहीं) होगया रहता; यह तो एकांत-सुखलोकके साक्षात्कारकी आकारवती प्रतिपद् है।"

ऐसा कहनेपर सकुल-उदायी परिव्राजककी परिषद् उन्नादिनी=उच्चशब्द—महाशब्द (=कोलाहल) करनेवाली हुई—यहाँ हम अपने मतसे नष्ट होंगे, यहाँ हम भ्रष्ट (=पतित) होंगे। इससे अधिक उत्तम हम नहीं जानते। तब सकुल-उदायी परिव्राजकने उन परिव्राजकोंको चुप करा, भगवान्‌को कहा—

"भन्ते ! कितनेसे इस (पुरुष) को एकान्त-सुखवाले लोकका साक्षात्कार होता है ?"

"यहाँ उदायी ! भिक्षु सुखको भी छोड़०[2] चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है, (तब) जितने देवता एकान्त-सुखलोकमें उत्पन्न हैं, उन देवताओंके साथ रहता है, संलाप करता है, साक्षात्कार करता है। इतनेसे उदायी ! इसको एकांत-सुखवाला लोक साक्षात्कृत (=प्रत्यक्ष) होता है।"

"उदायी ! इसी० के लिए मेरे पास ब्रह्मचर्य नहीं पालन करते। उदायी ! दूसरे उत्तर-तर=प्रणीततर (=इससे भी उत्तम) धर्म हैं, जिनके साक्षात्कारके लिये भिक्षु मेरे पास ब्रह्मचर्य पालन करते हैं।"

"भन्ते ! वह धर्म० कौनसे हैं ?"

"उदायी ! यहाँ लोकमें तथागत उत्पन्न होते हैं०[3] बुद्ध भगवान्०। वह इन पाँच नीवरणोंको छोड़ चित्तके उपक्लेशों (=मलों) को० प्रथम-ध्यान०, ०द्वितीय-ध्यान०, ०तृतीय-ध्यान०, ०चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त हो विहरते हैं। यह भी उदायी ! धर्म उत्तर-तर=प्रणीततर है, जिसके साक्षात्कारके लिये भिक्षु मेरे पास ब्रह्मचर्य पालन करते हैं। वह० 'अनेक प्रकारके पूर्व-निवासको अनुस्मरण करते हैं०।[4] च्युत और उत्पन्न होते प्राणियोंको जानते

१. पृष्ठ १६२, १६०।

२. पृष्ठ १५५-५६। ३. पृष्ठ १६०। ४. पृष्ठ १६२।

हैं० ।०। ०दुःखनिरोध-गामिनी-प्रतिपद्० आस्रव-निरोध-गामिनी-प्रतिपद्को यथार्थतः जानते हैं, ० यहाँ कुछ नहीं है', जानते हैं, यह उदायी ! उत्तरि-तर० धर्म है, जिसके० लिये० मेरे पास ब्रह्मचर्य-पालन करते हैं ।"

ऐसा कहनेपर उदायी परिव्राजकने भगवान्…(से प्रव्रज्या मांगी, तब उसकी परिषद्ने) कहा—

"उदायी ! आप श्रमण गौतमके पास मत ब्रह्मचर्यवास करें (=मत शिष्य हों), मत आप उदायी आचार्य होकर अन्तेवासी (=शिष्य) की तरह वास करें, जैसे करका (=मटकी) होकर पुरवा होवे, इसी प्रकारकी यह सम्पत् (= अवस्था) आप उदायीकी होगी । आप उदायी ! श्रमण गौतम० ।"

इस प्रकार सकुल-उदायी०की परिषद्ने सकुल-उदायी०को भगवान्के पास ब्रह्मचर्य-पालन करनेमें विघ्न डाला ।

× × ×

(१०)

१८ वीं वर्षा चालिय-पर्वतमें । दिट्ठिवज्ज-सुत्त । चूलि-अस्सपुर-सुत्त । कजंगला-सुत्त । (ई. पू. ५११) ।

(भगवान्ने) [1]अठारहवीं (वर्षा) चालिय-पर्वतमें (बिताई) ।

\+ \+ \+ \+

दिट्ठिवज्ज-सुत्त ।

[2]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् चम्पामें गर्गरापुष्करिणीके तीर विहार करते थे ।

तब वज्जियमहित गृहपति भगवान्के दर्शनको चम्पासे निकला । वज्जियमहित (=वज्जि देशमें संमानित) गृहपतिको यह हुआ—यह भगवान्के दर्शनका काल नहीं है, भगवान् ध्यानमें होंगे । मन-भावना करनेवाले भिक्षुओंके भी दर्शनका यह काल नहीं, वह मन-भावना वाले भिक्षु भी (इस समय) ध्यानस्थ होंगे । क्यों न मैं जहाँ अन्य-तैर्थिक (=दूसरे पंथवाले) परिव्राजकोंका आराम है, वहाँ चलूँ ।

तब वज्जियमहित गृहपति, जहाँ अन्य-तैर्थिक परिव्राजकोंका आराम था, वहाँ गया । उस समय अन्य-तैर्थिक परिव्राजक एकत्रित…हो…हल्ला करते,…नाना प्रकारकी व्यर्थ-कथा कहते, बैठे थे । उन अन्य-तैर्थिक परिव्राजकोंने दूरसे ही वज्जिय-महित गृह-पतिको आते देखा । देखकर एकने दूसरेको कहा—आप सब चुप हों, आप सब शब्द मत करें । यह श्रमण गौतमका श्रावक वज्जिय-महित गृह-पति आ रहा है । श्रमण गौतमके जितने गृहस्थ सफेद-वस्त्रधारी श्रावक चंपामें बसते हैं, यह वज्जिय-महित गृहपति उनमेंसे एक है । यह

१. अ. नि. अ. क. २:४:५ । २. अ. नि. १०:२:१:४: ।

तब वज्जिमहित गृहपति भगवान्‌से धार्मिक-कथा द्वारा० सुमुत्तेजित, संप्रशंसित हो, आसनसे उठ, भगवान्‌को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर, चला गया।

तब वज्जिमहित गृह-पतिके चले जानेके थोड़ीही देर बाद, भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया।

"भिक्षुओ! जो भिक्षु इस धर्म-विनयमें अल्प-मल-वाला है, वह भी अन्य-तैर्थिक परिव्राजकोंको धर्मके साथ, इसी प्रकार सुनिग्रहके साथ, सुनिगृहीत (=सुपराजित) करे; जैसे कि वज्जिमहित गृहपतिने निगृहीत किया।

चूल-अस्सपुर-सुत्त।

ऐसा मैंने सुना[1]—एक समय भगवान् अंग (देश)में अंगोंके कस्बे अश्वपुरमें विहार करते थे। वहाँ भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ!"

"भदन्त!" कह उन भिक्षुओंने भगवान्‌को उत्तर दिया। भगवान् ने कहा—

"भिक्षुओ! 'श्रमण' 'श्रमण' लोग नाम धरते हैं। तुम लोग भी, 'तुम कौन हो' पूछनेपर '(हम) श्रमण हैं' उत्तर देते हो। ऐसी संज्ञा, ऐसी प्रतिज्ञावाले तुम लोगोंको ऐसा सीखना चाहिये—जो वह श्रमण को सच करनेवाला मार्ग है, हम उस मार्गपर आरूढ होंगे। इस प्रकार यह हमारी संज्ञा सच होगी, हमारी प्रतिज्ञा (=दावा) यथार्थ होगी। जिनके (दिये) चीवर (=वस्त्र), पिंड-पात (=भिक्षा), शयनासन (=निवास), ग्लान-प्रत्यय-भैषज्य) (=रोगीका औषध-पथ्य) सामग्रीका हम उपभोग करते हैं, उनके (किये) हमारे प्रति यह (दान-) कार्य भी महाफलवाले, महामाहात्म्यवाले होंगे; और हमारी भी यह प्रव्रज्या निर्मल सफल = स-उदय होगी।

"भिक्षुओ! भिक्षु श्रमणको सच करनेवाले मार्ग (= श्रमण-समीची प्रतिपदा)पर कैसे आरूढ नहीं होता? भिक्षुओ! जिस अभिध्यालु (=लोभी) भिक्षुकी अभिध्या नष्ट नहीं होती, द्रोह-सहित चित्तवाले (= व्यापन्नचित्त)का व्यापाद (= द्रोह) नष्ट नहीं हुआ रहता, क्रोधी का क्रोध०, पाखंडी (= उपनाही)का पाखंड०, मर्षीकी कलक (= आमर्ष = अमरख) ०, पलासी (= प्रदाशी = निठुर)का पलास०, ईर्ष्यालु की ईर्ष्या०, मत्सरीका मत्सर (=कृपणता)०, शठकी शठता०, मायावी (=वंचक)की माया०, पापेच्छु (=बद-नीयत)की पापेच्छा०, मिथ्या-दृष्टि (= झूठे सिद्धान्तवाले) की मिथ्या दृष्टि (=झूठी धारणा) नष्ट नहीं हुई रहती। वह इन श्रमण-मलों = श्रमण-दोषों = श्रमण-कसरों, आपायको ले जानेवाले, दुर्गतिको अनुभव करानेवाले कारणोंके अ-विनाशसे 'श्रमण-समीचि-प्रतिपद्‌पर आरूढ नहीं हुआ,' (ऐसा) मैं कहता हूँ। जैसे भिक्षुओ! मजट नामक···तीक्ष्ण दुधारा आयुध (= हथियार) होता है, वह संघाटीमें ढँका लिपटा हो; उसीके समान भिक्षुओ! मैं इस भिक्षुकी प्रव्रज्या को कहता हूँ।

"भिक्षुओ! मैं संघाटी (=भिक्षु-वस्त्र) वालेके संघाटी-धारण मात्रसे, श्रमणत (= श्रामण्य) नहीं कहता। अचेलक (= वस्त्र-रहित)के नंगे रहने मात्रसे श्रामण्य

[1] म. नि. १:४:१०।

(= साधुपन) नहीं कहता। भिक्षुओ! रजोजल्लिक (=कीचड़-धारी साधु)की रजोजल्लिकता मात्रसे श्रामण्य नहीं कहता। ...उदकावरोहक(= जल-वासी)के जलवास मात्रसे०। ०वृक्ष-मूलिक (=सदा वृक्षके नीचे रहनेवाले)के वृक्षके नीचे वास मात्रसे०। ० अभ्यवकाशिक (= चौड़ेमें रहनेवाले)०। ०उब्भट्टक (= सदा खड़ा रहनेवाले)०। ०पर्याय-भक्तिक (बीच बीचमें निराहार रह, भोजन करनेवाले)०। ०मंत्र-अध्यायक (= वेद-पाठी)के मंत्र-अध्ययन मात्रसे मैं श्रामण्य नहीं कहता। ०जटिलकके जटा-धारण मात्रसे०।

"भिक्षुओ! यदि संघाटिकके संघाटी-धारण मात्रसे, अभिध्यालुका लोभ हट जाता, ०व्यापाद हट जाता, ०क्रोध०, ०उपनाह०, ०म्रक्ष०, ०प्रदास०, ०ईर्ष्या०, ०मात्सर्य०, ०शठता०, ०माया०, ०पापेच्छा०, मिथ्या दृष्टिकी मिथ्या दृष्टि हट जाती; तो उसको मित्र-अमात्य ज्ञाति-बन्धु पैदा होते ही, संघाटिक बना देते, संघाटिकताका ही उपदेश करते— 'आ भद्रमुख! तू संघाटिक हो जा। संघाटिक होनेपर संघाटी-धारण मात्रसे, तुझ अभिध्यालुका लोभ नष्ट हो जायगा।०। मिथ्या-दृष्टिकी मिथ्या-दृष्टि नष्ट हो जायगी।' क्योंकि भिक्षुओ! मैं किसी किसी संघाटिकको भी अभिध्यालु, व्यापन्न-चित्त, क्रोधी, उपनाही, म्रक्षी, प्रदासी, ईर्ष्यालु, मत्सरी, शठ, मायावी, पापेच्छु, मिथ्या-दृष्टि देखता हूँ, इसलिए संघाटिकके संघाटी-धारण मात्रसे श्रामण्य नहीं कहता।

"भिक्षुओ! यदि अचेलककी अचेलकता मात्रसे ०। ० रजोजल्लिककी रजोजल्लिकता मात्रसे ०। ० उदकावरोहकके उदकावरोहण मात्रसे ०। ० वृक्ष-मूलिककी वृक्ष-मूलिकता मात्रसे ०। ० अभ्यवकाशिक ०। ० उब्भट्टिक ०। ० पर्याय-भक्तिक ०। ० मंत्र-अध्यायक ०। ० जटिलके जटा-धारण मात्रसे ० अभिध्या ०—० मिथ्या-दृष्टि नष्ट होती ०।

"भिक्षुओ! भिक्षु श्रमण-सामीची-प्रतिपद् (=सच्चा श्रमण बनानेवाले मार्ग) पर कैसे मार्गारूढ़ होता है? भिक्षुओ! जिस किसी अभिध्यालु भिक्षुकी अभिध्या (= लोभ) नष्ट होती है, ०—० मिथ्यादृष्टि नष्ट होती है; (वह) इन श्रमण-मलों०के विनाशसे श्रमण-सामीची-प्रतिपद्पर मार्गारूढ़ होनेसे ही कहता हूँ। (फिर) वह इन सभी पापक अ-कुशल धर्मोंसे, अपनेको विशुद्ध देखता है, अपनेको विमुक्त देखता है। (फिर) इन सभी पापक० धर्मोंसे अपनेको विशुद्ध० विमुक्त देखनेवाले उस (पुरुष)को, प्रमोद उत्पन्न होता है। प्रमुदितको प्रीति उत्पन्न होती है। प्रीतिमान्‌की काया स्थिर होती है। स्थिर शरीर सुख अनुभव करता है। सुखितका चित्त समाहित (=एकाग्र) होता है। वह (१) मैत्रीयुक्त चित्तसे एक दिशाको प्लावित कर विहरता है, और दूसरी दिशा०, और तीसरी०, और चौथी० इसी प्रकार ऊपर, नीचे, तिर्छे, सबकी इच्छासे, सबके अर्थ, सारे लोकको विपुल, महान्, अ-प्रमाण, अ-वैर, द्वेष-रहित मैत्री-युक्त चित्तसे प्लावित कर विहरता है। (२) करुणा-युक्त चित्तसे०। (३) मुदिता-युक्त चित्तसे०। (४) उपेक्षा-युक्त चित्तसे०।

"जैसे भिक्षुओ! स्वच्छ, मधुर, शीतल जलवाली सुन्दर घाटोंवाली पुष्करिणी हो। यदि पूर्व दिशासे भी घाममें तपा (=घर्म-अभितप्त)=घर्म-पीड़ित, थका, तृषित =पिपासित पुरुष आवे, वह उस पुष्करिणीको पाकर उदक-पिपासाको दूर करे, घामके तापको दूर करे। पश्चिम दिशासे भी०। उत्तर दिशासे भी०। दक्षिण दिशासे भी०। जहाँ कहींसे भी०। ऐसे ही भिक्षुओ! यदि क्षत्रिय-कुलसे घरसे बेघर प्रव्रजित होवे, और वह तथागतके

उपदेश किये धर्मको प्राप्त कर, इस प्रकार मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षाकी भावना करे, (तो वह) आध्यात्मिक शांतिको प्राप्त करता है। आध्यात्मिक शांति (= उपशम) से ही 'श्रमण-सामीची-पतिपद्पर मार्गारूढ़ है' कहता हूँ। ०यदि ब्राह्मण-कुलसे०। ०यदि वैश्य-कुलसे०। ० जिस किसी कुलसे भी घरसे बेघर प्रव्रजित०।

"क्षत्रिय-कुलसे भी घरसे बेघर प्रव्रजित हो। और वह आस्रवों (= चित्त-दोषों) के क्षयसे आस्रव-रहित चित्त-विमुक्ति प्रज्ञा-विमुक्तिको इसी जन्ममें स्वयं जानकर = साक्षात् कर = प्राप्त कर विहरता है। आस्रवोंके क्षयसे श्रमण होता है। ब्राह्मण-कुलसे भी०। वैश्य-कुलसे भी०। शूद्र कुलसे भी०। जिस किसी कुलसे भी०।

भगवान्‌ने यह कहा, उन भिक्षुओंने सन्तुष्ट हो भगवान्‌के भाषणको अनुमोदित किया।

\+ + + +

कजंगला-सुत्त।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् [2]कजंगलामें वेणुवनमें विहार करते थे।

तब बहुतसे कजंगलाके उपासक जहाँ कजंगला भिक्षुणी थी, वहाँ गये। जाकर कजंगला भिक्षुणीको अभिवादन कर, एक ओर बैठे। एक ओर बैठे वे उपासक कजंगला भिक्षुणीको बोले—

"अय्या! भगवान्‌ने कहा है—'महाप्रश्नोंमें एक प्रश्न, एक उद्देश्य=एक उत्तर, दो०, तीन०, चार०, पाँच०, छ०, सात०, आठ०, नव०, दस प्रश्न, दस उद्देश्य दस उत्तर (= व्याकरण), हैं। अय्या! भगवान्‌के इस संक्षिप्त कथनका विस्तारसे कैसे अर्थ समझना चाहिये?"

"आवुसो! मैंने इसे भगवान्‌के मुखसे नहीं सुना, ०नहीं ग्रहण किया; और मनकी भावना करनेवाले भिक्षुओंके मुखसे भी नहीं सुना, ०नहीं ग्रहण किया; बल्कि यहाँ जो मुझे समझ पड़ता है, उसको सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहती हूँ।"

"अच्छा अय्या!" कह उपसकोंने''' उत्तर दिया। कजंगला भिक्षुणीने कहा—

"एक प्रश्न, एक उद्देश्य, एक व्याकरण (= उत्तर)' ऐसा जो भगवान्‌ने कहा। सो किस कारण ऐसा कहा? आवुसो! एक वस्तुमें भिक्षु भली प्रकार निर्वेद (= उदासीनता) को प्राप्त हो, भली प्रकार विरागको प्राप्त हो, भली प्रकार विरक्त हो, अच्छी प्रकार अन्त-दर्शी हो, समानताके अर्थको प्राप्त हो, इसी जन्ममें दुःखका अन्त करनेवाला होता है। किस एक धर्ममें? 'सभी सत्त्व (= प्राणी) आहार-स्थितिक (= आहारपर निर्भर) हैं।' आवुसो! इस एक वस्तुमें भिक्षु०। जो भगवान्‌ने 'एक प्रश्न, एक उद्देश्य, एक व्याकरण' कहा, सो इसी कारणसे कहा। सो किस कारणसे ऐसा कहा? आवुसो! दो धर्मोंमें भिक्षु भली प्रकार निर्वेदको प्राप्त०। किन दो धर्मोंमें? नाम और रूपमें।०। 'तीन प्रश्न तीन उद्देश्य तीन व्याकरण' जो भगवान्‌ने ऐसा कहा; (सो) किस कारणसे ऐसा कहा? आवुसो! तीन धर्मोंमें भिक्षु भली प्रकार निर्वेदको प्राप्त०। किन तीन धर्मोंमें? तीनों वेदनाओं (= सुख, दुःख, न सुख-न दुःख) में।०।

---

1. अ. नि. १:१:३:८। 2. कंकजोल (जि० संथाल-पर्गना)। 3. पृष्ठ ११०-१९। 4. पृष्ठ २५०। 5. देखो आगे संगीत-परियाय सुत्त।

"चार प्रश्न, चार उद्देश्य, चार व्याकरण' ऐसा जो भगवान्‌ने कहा, सो किस कारणसे ऐसा कहा ? आवुसो ! चार धर्मोंमें भिक्षु अच्छी प्रकार (=सम्यक्) चित्तको भावना कर (=सुभावित-चित्त) अच्छी तरह अन्त-दर्शी, समानताके अर्थको प्राप्त हो, इसी जन्ममें दुःख का अन्त करनेवाला होता है। किन चार धर्मोंमें ? चार 'स्मृति प्रस्थान०। पाँच धर्मोंमें··· सुभावित-चित्त०। किन पाँच धर्मोंमें ? पाँच 'इन्द्रियोंसे०। छ धर्मोंमें···सुभावित-चित्त०। किन छः धर्मोंमें। छ निःसरणीय धातुओंमें०। ०सात धर्मोंमें ··सुभावित-चित्त०। ०सात 'बोध्यङ्गोंमें०। ०आठ धर्मोंमें सम्यक् निर्वेदको प्राप्त०। ०नव 'सत्वावास (=प्राणियोंके देव मानुष आदि नव आवास)०। ०दस धर्मोंमें सम्यक् सुभावित-चित्त०। ०दस 'कुशल कर्म-पथोंमें०। 'दस प्रश्न, दस उद्देश, दस व्याकरण' ऐसा जो भगवान्‌ने कहा, सो इसी कारणसे कहा। इस प्रकार आवुसो ! भगवान्‌ने 'महाप्रश्नोंमें, एक प्रश्न, एक उद्देश्य, एक व्याकरण०—०दश प्रश्न, दश उद्देश, दश व्याकरण' कहा। आवुसो ! भगवान्‌के इस संक्षिप्त कथनका मैं ऐसा अर्थ जानती हूँ। आवुसो ! यदि चाहो, तो तुम भगवान्‌के पास जाकर इस बातको पूछो, जैसा भगवान् व्याकरण, (=उत्तर) करें, वैसा धारण करो।"

"अच्छा अय्या !" कह, कजंगलाके उपासक कजंगला भिक्षुणीके भाषणको अभिनन्दित कर, कजंगला भिक्षुणीको अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे कजंगला-निवासी उपासकोंने कजंगला भिक्षुणीके साथ जितना कथा-संलाप हुआ था, उस सबको भगवान्‌को कह दिया।

"साधु साधु, गृहपतियो ! कजंगला भिक्षुणी पंडिता है। कजंगला भिक्षुणी महापंडिता है। कजंगला भिक्षुणी महाप्रज्ञा है। यदि गृहपतियो ! तुमने मेरे पास आकर इस बातको पूछा होता; तो मैं भी इसे वैसे ही व्याकरण करता, जैसे कजंगला भिक्षुणीने व्याकरण किया। यही उसका अर्थ (है,) इसीको धारण करना।

× × ×

(११)

इन्द्रिय-भावना-सुत्त। सम्बहुल-सुत्त। उदायि-सुत्त। पंचिय-सुत्त।
(इ. पृ. ५११-१०)।

"हे गौतम ! पारासिविय ब्राह्मण शिष्योंको इन्द्रिय-भावनाका उपदेश करता है।"

"तो उत्तर ! कैसे ०इन्द्रिय-भावनाका उपदेश करता है ?"

"हे गौतम ! आँखसे रूप नहीं देखना, कानसे शब्द नहीं सुनना। इस प्रकार हे गौतम ! पारासिविय ब्राह्मण शिष्योंको इन्द्रिय-भावनाका उपदेश करता है।"

"जैसा पारासविय ब्राह्मणका वचन है, वैसा होनेपर, उत्तर ! अन्धा इन्द्रिय-भावना करनेवाला (=भावितेन्द्रिय) होगा, बधिर भावितेन्द्रिय होगा। क्योंकि उत्तर ! अन्धा आँखसे रूप नहीं देखता, बहिरा कानसे शब्द नहीं सुनता।"

ऐसा कहनेपर पारासवियका अन्तेवासी उत्तर माणवक चुप, मूक, गर्दन झुकाये, अधोमुख, सोचता, प्रतिभाहीन, हो बैठा। तब भगवान्‌ने ०उत्तर माणवकको चुप० जानकर आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया—

"आनन्द ! पारासविय ब्राह्मण श्रावकों (= शिष्यों)को दूसरी तरह (= अन्यथा) इन्द्रिय-भावना उपदेश करता है, और आर्योंके विनयमें दूसरी तरह अनुत्तर (=सर्वोत्कृष्ट) भावना होती है।"

"भगवान् ! इसीका काल है, सुगत ! इसीका काल है, कि भगवान् आर्य-विनय (=बौद्ध-धर्म) के अनुत्तर इन्द्रिय-भावनाका उपदेश करें। भगवान्‌से सुनकर भिक्षु धारण करेंगे।"

"तो आनन्द ! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ।" "अच्छा भन्ते !"···

भगवान्‌ने यह कहा—

"कैसे आनन्द ! आर्य-विनयमें अनुत्तर इन्द्रिय-भावना होती है ? यहाँ आनन्द ! चक्षु(=आँख)से रूपको देखकर भिक्षुको मनाप (=पसन्द मालूम) होता है, अ-मनाप होता है, मनाप-अमनाप होता है। वह ऐसा जानता है—'यह मुझे मनाप उत्पन्न हुआ, अ-मनाप०, मनाप-अ-मनाप०। किन्तु यह संस्कृत (= कृत, कृत्रिम) = औदारिक = प्रतीत्य-समुत्पन्न (=हेतु-जनित) है। यही शान्त, यही प्रणीत (= उत्तम) है, जो कि यह (रूप आदिमें) उपेक्षा। (तब) उसका वह उत्पन्न मनाप, उत्पन्न अ मनाप, ०मनाप-अ-मनाप निरुद्ध (=नष्ट) हो जाता है। उपेक्षा ठहरती है। जैसे आनन्द ! आँखवाला पुरुष पलक चढ़ाकर गिरादे, पलक गिराकर चढ़ादे; इसी तरह आनन्द ! जिस किसीको इतना शीघ्र, इतनी जल्दी, इतनी आसानीसे, उत्पन्न मनाप, उत्पन्न अ-मनाप, उत्पन्न मनाप अ-मनाप दूर होजाते हैं, उपेक्षा ठहरती है। यह आनन्द ! आर्य-विनयमें चक्षुसे जाने जानेवाले (=चक्षुर्विज्ञेय) रूपोंके विषयकी अनुत्तर इन्द्रिय-भावना कही जाती है। और फिर आनन्द ! श्रोत्रसे शब्दको सुन कर०। ०उपेक्षा ठहरती है। जैसे कि आनन्द ! बलवान् पुरुष अनयास चुटकी बजावे; ऐसेही आनन्द ! जिस किसीको इतना शीघ्र०। यह आनन्द ! आर्य-विनयमें श्रोत्र-विज्ञेय शब्दोंके विषयकी अनुत्तर इन्द्रिय-भावना कही जाती है। और फिर आनन्द ! घ्राणसे गंधको सूँघकर०। ०उपेक्षा ठहरती है। जैसे कि आनन्द ! पद्म-पत्रमें थोड़ीसी हवासे पानीके बुल-बुले उठते हैं, ठहरते नहीं; ऐसेही आनन्द ! ०।० यह ०घ्राण-विज्ञेय गंधोंके विषयकी अनुत्तर इन्द्रिय-भावना है। और फिर आनन्द ! जिह्वासे रस चखकर०। ०उपेक्षा ठहरती है। जैसे कि आनन्द ! बलवान् पुरुष जिह्वाके नोकपर खेल-पिंड (=थूक-कफ) जमाकर, अप्रयास ही

फेंकदे; ऐसे ही आनन्द ! ०। यह० जिह्वा-विज्ञेय रसोंके विषयकी अनुत्तर इन्द्रिय-भावना ।
और फिर आनन्द ! काया (=त्वक्)से स्प्रष्टव्यके स्पर्शसे० । ०उपेक्षा ठहरती है। जैसे कि आनन्द ! बलवान् पुरुष समेटी बाँहको फैलावे, फैलाई बाँहको समेटे; ऐसेही आनन्द ! ०। यह० काम-विज्ञेय स्प्रष्टव्योंके विषयकी अनुत्तर इन्द्रिय-भावना है। और फिर आनन्द ! मनसे धर्मको जानकर० । ०उपेक्षा ठहरती है । जैसे कि आनन्द ! बलवान् पुरुष दिनमें तपे लोहेके कड़ाहपर दो-तीन पानीकी बूँद डाले;··· आनन्द ! पानीकी बूँद पड़कर··· तुरन्त ही··· क्षयको प्राप्त हो जाये । ऐसेही आनन्द ! ०। यह मन-विज्ञेय धर्मोंके विषयकी अनुत्तर इन्द्रिय-भावना है ।

"यहाँ आनन्द ! चक्षुसे रूपको देखकर, भिक्षुको मनाप (=प्रिय) उत्पन्न होता है, अ-मनाप उत्पन्न होता है, मनाप-अमनाप उत्पन्न होता है। वह उस उत्पन्न मनाप, ०अमनाप, मनाप-अमनापसे दुःखित होता है, घबराता है, घृणा करता है। श्रोत्रसे शब्द सुनकर०। घ्राणसे गंध सूँघकर० । जिह्वासे रस चखकर० । कायासे स्प्रष्टव्य छूकर० । मनसे धर्म जानकर, भिक्षुको मनाप०, अमनाप०, मनाप-अमनाप उत्पन्न होता है । वह उस उत्पन्न मनाप, अ-मनाप, मनाप-अमनापसे दुःखित होता है, घबराता है, घृणा करता है । इस प्रकार आनन्द ! शैक्ष्य (=जिसको अभी सीखना है, संघ)-प्रतिपद (=पटिपदा) होती है ।

"कैसे आनन्द ! भावितेंद्रिय हो, आर्य (अर्हत्, अशैक्ष्य=अ-सेख) होता है ? यहाँ आनन्द ! चक्षुसे रूपको देखकर० श्रोत्रसे०, घ्राणसे०, जिह्वासे०, कायासे०, मनसे धर्म जानकर, मनाप०, ०अ-मनाप, ०मनाप-अमनाप उत्पन्न होता है । वह यदि चाहता है, कि प्रतिकूलमें अ-प्रतिकूल जान विहार करूँ, अ-प्रतिकूल जानतेही वहाँ विहार करता है । यदि चाहता है, कि अ-प्रतिकूलमें प्रतिकूल जान विहार करूँ; प्रतिकूल जानते ही वहाँ विहार करता है । यदि चाहता है,—प्रतिकूल, अ-प्रतिकूल दोनों वर्जित कर, स्मृति-सम्प्रजन्य-युक्त उपेक्षक हो विहार करूँ; वह स्मृति सम्प्रजन्य-युक्त उपेक्षक हो विहरता है । इस प्रकार आनन्द ! भावितेन्द्रिय आर्य (=मुक्त) होता है ।

"इस प्रकार आनन्द ! मैंने आर्य-विनयकी अनुसार इन्द्रिय-भावना उपदेश कर दी; शैक्ष्य-प्रतिपद भी उपदेश कर दी; भावितेन्द्रिय आर्य भी उपदेश कर दिया । हितैषी, अनुकम्पक शास्ता (=गुरु) को अनुकम्पा (=दया) करके, श्रावकोंके लिए जैसे करना चाहिये, वैसा मैंने तुम लोगोंके लिये कर दिया । आनन्द ! यह वृक्ष मूल (वृक्षके नीचेकी भूमि) हैं, यह शून्य घर हैं, ध्यान करो आनन्द ! मत प्रमाद करो; पीछे अफसोस मत करना । यह तुम्हारे लिये हमारे अनुशासन हैं ।"

भगवानूने यह कहा, आयुष्मान् आनन्दने सन्तुष्ट हो, भगवानूके भाषणको अनुमोदित किया ।

संपदुल-सुत्त ।

'ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् सुम्भ[1] (देश)में शिलावती[2] में विहार करते थे ।

---

१. सं. नि. ४:६:१। २. हजारीबाग और संथाल-परगना जिलोंका [illegible] अंश ।

उस समय भगवान्‌से थोड़ी दूर पर बहुतसे प्रमाद-रहित, उद्योगी, संयमी भिक्षु विहार करते थे। तब पापी मार, बड़ी जटा बढ़ाये, मृग-चर्म पहिने, टोड़े(=गोपानसी) की तरह कमरवाला बूढ़ा बन, टुकुर-टुकुर ताकते, गूलरका दंड लिये, ब्राह्मणका रूप बना, जहाँ वह भिक्षु थे, वहाँ गया। जाकर उन भिक्षुओंको बोला—

"आप सब प्रव्रजित! अति तरुण, बहुत काले-केश-वाले, भद्र (=सुन्दर) प्रथम यौवनसे युक्त,...कामोंमें (अभी) न खेले हुये हैं। आप सब मानुष-कामोंको भोग करें। वर्तमानको छोड़कर मत कालान्तरकी (चीज) के पीछे दौड़ें।"

"ब्राह्मण! हम वर्तमान छोड़कर कालान्तर की (चीज) के पीछे नहीं दौड़ रहे हैं। कालान्तरकी (चीज) छोड़कर ब्राह्मण! हम वर्तमानके पीछे दौड़ रहे हैं। ब्राह्मण! भगवान्‌ने कामोंको बहुत दुःख-वाले, बहुत प्रयास-वाले, दुष्परिणाम-वाले, कालिक (कालांतरका) कहा है। यह धर्म सांदृष्टिक (=वर्तमानमें फलप्रद), न-कालिक, यहीं देखा जानेवाला, पास पहुँचाने वाला, पंडितोंद्वारा प्रतिशरीरमें अनुभव करने योग्य है"

ऐसा कहनेपर पापी मार सिर हिला, जीभ निकाल,...डंडा टेकते चला गया।

उदायि-सुत्त।

[1]ऐसा मैने सुना—एक समय भगवान् सुह्म (देश)में सुह्मोंके कस्बे सेतकण्णिक-में विहार करते थे।

तब आयुष्मान् उदायी जहां भगवान् थे, वहां गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादन-कर, एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् उदायीने भगवान्‌को कहा—

"भन्ते! आश्चर्य!! भन्ते, अद्भुत!! भगवान्‌के विषयमें प्रेम, गौरव, लज्जा, भय मेरे भीतर कितना है। भन्ते! पहिले गृहस्थ होते मुझे धर्मसे बहुत लाभ न मिला था। ०संघसे०। सो मैं भगवान्‌में प्रेम, गौरव, लज्जा, भयके कारण, घरसे बेघर हो प्रव्रजित हुआ। तब मुझे भगवान्‌ने धर्म उपदेश किया—ऐसे रूप हैं, ऐसे रूपोंकी उत्पत्ति (=समुदय) है, ऐसे रूपोंका विनाश है। ऐसी वेदना है, ऐसे वेदनाकी उत्पत्ति है, ऐसे वेदनाका अस्तगमन (=विनाश) है। ऐसे संज्ञा है०। ऐसे संस्कार०। ऐसे विज्ञान०। सो मैंने भन्ते! शून्य-आगारमें रहते, इन पांच [1]उपादान-स्कंधोंको उल्टा सीधा कर दोहराते—"यह दुःख है' इसे यथार्थसे जाना, 'यह दुःख-समुदय है'०, 'यह दुःख-निरोध है'०, 'यह दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपद् है'०। धर्मको मैंने भन्ते! देख लिया, मार्ग मिल गया। वह मेरे द्वारा भावित = बहुलीकृत (हो) वैसा विहार करते—मुझे वैसे भावको ले जायगा; जिससे कि मैं जानूँगा—'जाति (=जन्म) क्षय हो गई, ब्रह्मचर्यवास पूरा हो चुका, करना था, सो कर लिया, (अब) दूसरा यहांके लिये (कुछ करना) नहीं (है)'—[2]स्मृति संबोध्यंग भन्ते! मुझे मिल गया। वह मेरे द्वारा भावित बहुलीकृत हो०। उपेक्षा संबोध्यंग भन्ते! मुझे यह मार्ग मिल गया; वह मेरे द्वारा भावित० हो०।

"साधु, साधु उदायी! उदायी! तुझे यह मार्ग मिल गया। जो तेरे द्वारा भावित = बहुलीकृत हो, वैसे वैसे विहार करते, वैसे भावको ले जायगा, जिससे कि तू जानेगा— जाति-

---

[1]. सं. नि. ४५:३:१०। १. पृष्ठ ११८। २. पृष्ठ २५३।

क्षय होगई, ब्रह्मचर्य-वास पूरा होचुका, करना था सो कर लिया (अब) दूसरा यहाँ (करनेको) नहीं है।'

[1]भगवान्‌ने उन्नीसवीं (वर्षा) भी चालिय-पर्वतमें (बिताई)।

\+ \+ \+ \+

मेघिय-सुत्त।

[2]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् चालिका (चालिय) में चालिका-पर्वतपर विहार करते थे।

उस समय आयुष्मान् मेघिय भगवान्‌के उपस्थाक (=हजूरी) थे। तब आयुष्मान् मेघिय जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर खड़े हो गये। एक ओर खड़े आयुष्मान् मेघियने भगवान्‌को कहा—

"मेघिय! जिसका तू काल समझता है, (वैसा कर)।"

"भन्ते! मैं जन्तु-ग्राममें पिंडके (=भिक्षा) के लिए जाना चाहता हूं।"

तब आयुष्मान् मेघियने पूर्वाह्ण-समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, जन्तुग्राममें पिंड-पातके लिये प्रवेश किया। जन्तु ग्राममें पिंड-चारकर, भोजनके बाद[3] क्रिमिकाला नदीके तीरपर गये। जाकर क्रिमिकाला नदीके तीर चहल-कदमी (=जंघा-विहार) करते, विचरते उन्होंने सुन्दर रमणीय आम्रवन देखा—

"ओहो! यह योगाभिलाषी कुलपुत्रके अभ्यास (= प्रधान) के योग्य स्थान है। यदि भगवान् मुझे आज्ञा दें, तो मैं योगके लिये इस आम्रवनमें आऊँ।"

तब आयुष्मान् मेघिय जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान मेघियने भगवान्‌को कहा—

"भन्ते! मैं पूर्वाह्ण-समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, जन्तु-ग्राम में पिंडके लिये गया।० भोजनके बाद क्रिमिकाला नदीके तीरपर गया। ०सुन्दर रमणीय आम्रवन देखा। देखकर मुझे ऐसा हुआ—ओ हो! यह०। यदि भन्ते! भगवान् मुझे अनुज्ञा दें, तो उस आम्र-वनमें प्रधान (= योग-प्रयत्न) के लिये जाऊँ।"

ऐसा कहनेपर भगवान्‌ने आयुष्मान् मेघियको कहा—

"मेघिय! तब तक ठहरो, जब तक कि दूसरा कोई भिक्षु आ जाये। मैं अकेला हूँ।"

दूसरी बार भी आयुष्मान मेघियने भगवान्‌को यह कहा—

"भन्ते! भगवान्‌को (अब) आगे कुछ करनेको नहीं है। कियेका लोप करना (=प्रतिचय) नहीं है। मुझे भन्ते! आगे करनेको है, कियेका लोप करना है। यदि भन्ते! भगवान् मुझे आज्ञा दें ०।"

दूसरी बार भी भगवान्‌ने आ० मेघियको कहा—"मेघिय! तबतक ठहरो ०।"

तीसरी बार भी ० मेघियने ० यह कहा—भन्ते! भगवान्‌को आगे कुछ करनेको नहीं है।"

---

1. अ. नि. अ. क. २:४:५। २. उदान ४:१। ३. बर्मी नदी 'कुमिर'।

"मेघिय ! 'प्रधान (=योग)' करनेवालेको क्या कहें ? मेघिय ! जिसका तू काल समझे (वैसा कर) ।"

तब आयुष्मान् मेघिय आसनसे उठकर भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर, जहाँ वह आमका बाग था, वहाँ गये। जाकर उस आम्रवनके भीतर घुसकर, एक वृक्षके नीचे दिनके विहारके लिये बैठे। तब आयुष्मान् मेघियको उस आम्रवनमें विहार करते, अधिकतर तीन पाप = अ-कुशल वितर्क (मनमें) पैदा होते थे। जैसे कि काम-वितर्क (= काम-भोग सम्बन्धी-विचार), व्यापाद (=द्वेष)-वितर्क, विहिंसा-(=हिंसा)-वितर्क। तब आयुष्मान् मेघियको हुआ—

'आश्चर्य ! भो ! ! अद्भुत ! भो ! ! श्रद्धासे मैं घरसे बेघर हो प्रव्रजित हुआ हूँ। तो भी मैं तीन पाप ० वितर्कोंमें—काम-वितर्क, व्यापाद-वितर्क, विहिंसा-वितर्कसे युक्त हूँ।

तब आयुष्मान् मेघिय सायंकाल भावनासे उठकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् मेघियने कहा—

आश्चर्य ! भो !!० ।"

"मेघिय ! अ-परिपक्व चित्त-विमुक्तिको परिपक्व करनेके लिये पाँच धर्म (=बातें) हैं। कौनसे पाँच ? (१) मेघिय! भिक्षु कल्याण-मित्र (= अच्छे मित्रोंवाला)= कल्याण-सहाय होना, अपरिपक्वचित्त-विमुक्तिके परिपक्व करनेके लिये यह प्रथम धर्म है। (२) फिर मेघिय। भिक्षु शीलवान् होता है, प्रतिमोक्ष (रूपी) संवर (= रक्षा) से रक्षित, आचारगोचरसे संयुक्त, छोटे दोषोंसे भी भय खानेवाला होता है। शिक्षापदों (= सदाचार-नियमोंको)को ग्रहण कर अभ्यास करता है। मेघिय ! अपरिपक्व चित्त-विमुक्तिके परिपक्व करनेके लिये यह द्वितीय धर्म है। और फिर मेघिय ! जो यह कथायें चुभनेवाली, चित्तको खोलनेमें सहायक; केवल निर्वेद (उदासीनता)· विराग, निरोध = उपशम, अभिज्ञा = संबोध, निर्वाणके लिये हैं, जैसे कि—अल्पेच्छ-कथा, सन्तुष्टि-कथा, प्रविवेक-कथा, अ-संसर्ग-कथा, वीर्यारम्भ (=उद्योग)-कथा, शील-कथा, समाधि-कथा, प्रज्ञा-कथा, विमुक्ति (=मुक्ति)-कथा, विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन-कथा। ऐसी कथाओंको बिना कठिनाईके (सुनने) पाता है। मेघिय ! ० यह तृतीय धर्म है। (४) और फिर मेघिय ! भिक्षु अकुशल-धर्मों के हटानेके लिये, कुशल धर्मों-की प्राप्तिके लिये उद्योगी (= आरब्ध-वीर्य) = स्थामवान् = दृढ़-पराक्रम होता है। कुशल-धर्मों(= अच्छे कामों)में जुआ न फेंकनेवाला०। मेघिय ! यह चतुर्थ धर्म है। (५) और फिर मेघिय ! भिक्षु प्रज्ञावान् हो = उदय-अस्तको जानेवाली, आर्य-निर्वेधिक, भली प्रकार दुःख क्षयकी ओर ले जानेवाली प्रज्ञासे युक्त होता है। मेघिय !० यह पंचम धर्म है।०।

"मेघिय ! कल्याण-मित्र, = कल्याण-सहाय··· भिक्षु के लिये यह आवश्यक है, कि वह शीलवान्० हो। ०यह आवश्यक है, कि कथा चुभनेवाली०। ०यह आवश्यक है, कि कुशल धर्मोंके हटानेके लिये०। ०यह आवश्यक है, कि प्रज्ञावान् हो०।

"मेघिय ! उस भिक्षुको इन पाँच धर्मोंमें स्थित हो, ऊपरके (इन) चार धर्मोंकी भावना करनी चाहिये—(१) रागके प्रहाण (= नाश) के लिये अशुभा (भावना) भावना करनी चाहिये, (२) व्यापाद (=द्वेष)के प्रहाणके लिये मैत्री-(भावना) भावना करनी चाहिये। (३) वितर्कोंके नाशके लिये आनापान स्मृति (= प्राणायाम) करनी चाहिये। (४) अहंकार

(= अभिमान) के विनाशके लिये अनित्य-संज्ञा (= सब क्षणिक अनित्य है, यह ज्ञान)०। अनित्य संज्ञी (=सबको अनित्य समझनेवाले)को मेघिय ! अन्-आत्म संज्ञा ठहरती है। अनात्म-संज्ञीका अभिमान नाशको प्राप्त होता है, वह इसी जन्ममें निर्वाणको (प्राप्त होता है)।"

तब भगवान् इस अर्थको जानकर उसी समय यह उदान बोले—

"मनके उत्पीडक, ऊपर न निकले, जो क्षुद्र वितर्क, सूक्ष्म वितर्क हैं। इन मनके वितर्कोंको न जानकर भ्रांत-चित्त (पुरुष) आवागमनमें दौड़ता है। इन मनके वितर्कोंको जानकर स्मृतिमान् (पुरुष), तत्पर हो संयम करता है। बुद्धने मनके इन अशेष-उद्गत पीड़ाओंका विनाश कर दिया।"

\+ \+ \+ \+

(१२)

(जीवक-चरित्र । ई. पू. ५०९)।

बीसवीं वर्षामें (भगवान्) राजगृह ही में बसे।

\+ \+ \+ \+

जीवक-चरित।

···[2]उस समय वैशाली ऋद्ध=स्फीत (=समृद्धिशाली), बहुजना=मनुष्योंसे आकीर्ण, सुभिक्षा (=अन्नपान-संपन्न) थी। उसमें ७७७७ प्रासाद, ७७७७ कूटागार, ७७७७ आराम, ७७७७ पुष्करिणियाँ थीं। गणिका अम्बपाली अभिरूप=दर्शनीय=प्रासादिक, परम-रूपवती, नाच, गीत और वाद्यमें चतुर थी।···चाहनेवाले मनुष्योंके पास पचास [3]कार्षापण रातपर जाया करती थी। उससे वैशाली और भी अधिक शोभित थी। तब राजगृहका नैगम किसी कामसे वैशाली गया। राजगृहके नैगमने वैशालीको देखा—ऋद्ध०। राजगृहका नैगम वैशालीमें उस कामको खतमकर, फिर राजगृह लौट गया। लौटकर जहाँ राजा मागध श्रेणिक बिंबसार था, वहाँ गया। जाकर राजा० बिंबसारको बोला—

"देव ! वैशाली ऋद्ध=स्फीत० और० भी शोभित है। अच्छा हो देव ! हम भी गणिका खड़ी करें ?"

"तो भणे ! वैसी कुमारी ढूँढो, जिसको तुम गणिका खड़ीकर सको।"

उस समय राजगृहमें सालवती नामक कुमारी अभिरूप दर्शनीय० थी। तब राजगृहके नैगमने सालवती कुमारीको गणिका खड़ी की। सालवती गणिका थोड़े कालमें ही नाच, गीत और वाद्यमें चतुर हो गई। चाहनेवाले मनुष्योंके पास सौ (कार्षापण)में रातभर जाया करती थी। तब वह गणिका न चिरमें ही गर्भवती होगई। तब सालवती गणिकाको यह हुआ—गर्भिणी स्त्री पुरुषोंको नापसंद (=अ-मनाप) होती है, यदि मुझे कोई जानेगा—

---

१. अ. नि. अ. क. २:४:५। २. महावग्ग ८। ३. उस समयका एक ताँबेका चौकोर सिक्का, जिसकी क्रय-शक्ति आजकलके बारह आनेके बराबर थी।

सालवती गणिका गर्भिणी है, तो मेरा सब सत्कार चला जायेगा। क्यों न मैं बीमार बन जाऊँ। तब सालवती गणिकाने दौवारिक (=दर्वान)को आज्ञा दी :—

"भणे! दौवारिक!! कोई पुरुष आवे और मुझे पूछे, तो कह देना—बीमार है।"

"अच्छा आर्ये! (=अय्ये!)" उस दौवारिकने सालवती गणिकाको कहा।

"सालवती गणिकाने उस गर्भके परिपक्व होनेपर एक पुत्र जना। तब सालवती" ने दासीको हुकुम दी—

"हन्द! जे! इस बच्चेको कचरेके सूपमें रखकर कूड़ेके ऊपर छोड़ आ।"

दासी सालवती गणिकाको "अच्छा आर्ये!" कह, उस बच्चेको कचरेके सूपमें रख, लेजाकर कूड़ेके ऊपर रख आई।

उस समय अभय-राजकुमारने सकालमें ही राजाकी हाजिरीको जाते (समय), कौओंसे घिरे उस बच्चेको देखा। देखकर मनुष्योंको पूछा—

"भणे! (=रे!) यह कौओंसे घिरा क्या है।" "देव! बच्चा है"

"भणे, जीता है?" "देव, जीता है!"

'तो भणे! इस बच्चेको ले जाकर, हमारे अन्तःपुरमें दासियोंको पोसनेके लिये दे आओ।"

"अच्छा देव!"...उस बच्चेको अभय-राजकुमारके अन्तःपुरमें दासियोंको पोसनेके लिये दे आये। 'जीता है (जीवति)' करके उसका नाम भी जीवक रक्खा। कुमारने पोसा था, इसलिये कौमार-भृत्य नाम हुआ। जीवक कौमार-भृत्य न-चिरही में विज्ञ हो गया! तब जीवक कौमार-भृत्य जहाँ अभय राजकुमार था, वहाँ गया; जाकर अभय-राजकुमारको बोला—

"देव! मेरी माता कौन है, मेरा पिता कौन है?"

"भणे जीवक! मैं तेरी माँको नहीं जानता, और मैं तेरा पिता हूँ, मैंने तुझे पोसा है।"

तब जीवक कौमार-भृत्यको यह हुआ—

"राजकुल (=राजदर्बार) मानी होता है, यहाँ बिना शिल्पके जीविका करना मुश्किल है। क्यों न मैं शिल्प सीखूँ।"

उस समय तक्ष-शिलामें (एक) दिशा-प्रमुख (=दिगंत-प्रसिद्ध) वैद्य रहता था। तब जीवक अभय राजकुमारको बिना पूछे, जिधर [2]तक्ष-शिला थी, उधर चला। क्रमशः जहाँ तक्ष-शिला थी, जहाँ वह वैद्य था, वहाँ गया। जाकर उस वैद्यको बोला—

"आचार्य! मैं शिल्प सीखना चाहता हूँ।"

"तो भणे जीवक! [1]सीखो।"

---

१. अ. क. "जैसे दूसरे क्षत्रिय आदिके लड़के आचार्यको धन देकर कुछ काम न कर विद्या सीखते हैं, उसने वैसा नहीं (किया)। वह कुछ भी धन न दे धर्म-अन्तेवासी हो, एक समय उपाध्यायका काम करता, एक समय पढ़ता था।" २. शाहजीकी ढेरी, स्टेशन तक्सिला, जि० रावलपिंडी (प० पंजाब)।

जीवक कौमार-भृत्य बहुत पढ़ता था, जल्दी धारणकर लेता था, अच्छी तरह समझता था, पढ़ा हुआ इसको भूलता न था। सात वर्ष बीतनेपर जीवक०को यह हुआ—'बहुत पढ़ता हूँ०, पढ़ते हुये सात वर्ष हो गये, लेकिन इस शिल्पका अन्त नहीं मालूम होता; कब इस शिल्पका अन्त जान पड़ेगा?' तब जीवक० जहाँ वह वैद्य था, वहाँ गया, जाकर उस वैद्यको बोला—

"आचार्य! मैं बहुत पढ़ता हूँ०। कब इस शिल्पका अन्त जान पड़ेगा?"

"तो भणे जीवक! खनती (=खनित्र) लेकर तक्ष-शिलाके योजन-योजन चारों ओर घूमकर जो अ-भैषज्य (=दवाके अयोग्य) देखो उसे ले आओ।"

"अच्छा आचार्य!"...जीवक...ने...कुछ भी अ-भैषज्य न देखा,...(और) आकर उस वैद्यको कहा—

"आचार्य! तक्षशिलाके योजन-योजन चारों ओर मैं घूम आया, (किंतु) मैंने कुछ भी अ-भैषज्य नहीं देखा।"

"सीख चुके, भणे जीवक! यह तुम्हारी जीविकाके लिये पर्याप्त है।" (कह) उसने जीवक कौमार-भृत्यको थोड़ा पाथेय दिया। तब जीवक उस स्वल्प-पाथेय (=राह-खर्च) को ले, जिधर राजगृह था, उधर चला। जीवक०का वह स्वल्प पाथेय रास्तेमें साकेत (=अयोध्या)में खतम हो गया। तब जीवक कौमार-भृत्यको यह हुआ—'अन्न-पान-रहित जंगली रास्ते हैं, बिना पाथेयके जाना सुकर नहीं है; क्यों न मैं पाथेय ढूँढूँ।"

उस समय साकेतमें श्रेष्ठि (=नगर-सेठ)की भार्याको सात वर्षका सिर-दर्द था। बहुतसे बड़े-बड़े दिगंत-विख्यात वैद्य आकर नहीं अ-रोगकर सके, (और) बहुत हिरण्य (=अशर्फी) सुवर्ण लेकर चले गये। तब जीवकने साकेतमें प्रवेशकर आदमियोंको पूछा—

"भणे! कोई रोगी है, जिसकी मैं चिकित्सा करूँ?"

"आचार्य! इस श्रेष्ठि-भार्याको सात वर्षका सिर-दर्द है, आचार्य! जाओ श्रेष्ठि-भार्याकी चिकित्सा करो।"

तब जीवक०ने जहाँ श्रेष्ठि गृहपतिका मकान था, वहाँ...जाकर दौवारिकको हुकुम दिया—

"भणे! दौवारिक! श्रेष्ठि-भार्याको कह—'आर्ये! वैद्य आया है, वह तुम्हें देखना चाहता है।"

'अच्छा आर्य!'...कह दौवारिक...जाकर श्रेष्ठि-भार्याको बोला—

"आर्ये! वैद्य आया है, वह तुम्हें देखना चाहता है।"

"भणे दौवारिक! कैसा वैद्य है?"

"आर्ये! तरुण (=दहरक) है?"

"बस भणे दौवारिक! तरुण वैद्य मेरा क्या करेगा? बहुतसे बड़े-बड़े दिगन्त-विख्यात वैद्य०।"

तब वह दौवारिक जहाँ जीवक कौमार-भृत्य था, वहाँ गया। जाकर......बोला—

"आचार्य! श्रेष्ठि-भार्या (=सेठानी) ऐसे कहती है—बस भणे दौवारिक!०।

"जा भणे दौवारिक ! सेठानीको कह—आर्ये ! वैद्य ऐसे कहता है—अय्या ! पहिले कुछ मत दो, जब अ-रोग हो जाना, तो जो चाहना, सो देना ।"

"अच्छा आचार्य !"……दौवारिकने……श्रेष्ठि-भार्याको कहा—आर्ये ! वैद्य ऐसे कहता है० ।"

"तो भणे ! दौवारिक ! वैद्य आवे ।"

"अच्छा अय्या !"……जीवकको…कहा—"आचार्य ! सेठानी तुम्हें बुलाती है।"

जीवक० सेठानीके पास जाकर,…रोगको पहिचान, सेठानीको बोला—

"अय्या ! मुझे पसर-भर घी चाहिये।"

सेठानीने जीवक०को पसरभर घी दिलवाया। जीवक०ने उस पसरभर घीको नाना दवाइयोंसे पकाकर, सेठानीको चारपाईपर उत्तान लेटवाकर नथनोंमें दे दिया। नाक से दिया वह घी मुखसे निकल पड़ा। सेठानीने पीकदानमें थूककर, दासीको हुक्म दिया—

"हन्द जे ! इस घीको बर्तनमें रख ले।"

तब जीवक कौमार-भृत्यको हुआ—'आश्चर्य ! यह घरनी कितनी कृपण है, जो कि इस फेंकने लायक घीको बर्तनमें रखवाती है। मेरे बहुतसे महार्घ औषधि इसमें पड़े हैं, इसके लिये यह क्या देगी?' तब सेठानीने जीवक०के भावको ताड़कर, जीवक०को कहा—

"आचार्य ! तू किस लिये उदास है?"

"मुझे ऐसा हुआ—आश्चर्य !० ।"

"आचार्य ! हम गृहस्थिनें (=आगारिका) हैं, इस संयमको जानती हैं। यह घी दासों कमकरोंके पैरमें मलने और दीपकमें डालनेको अच्छा है। आचार्य ! तुम उदास मत होओ। तुम्हें जो देना है, उसमें कमी नहीं होगी।"

तब जीवकने सेठानीके सात वर्षके शिर-दर्दको, एक ही नससे निकाल दिया। सेठानीने अरोग हो जीवकको० चार हजार दिया। पुत्रने 'मेरी माताको निरोग कर दिया' (सोच) चार हजार दिया। बहूने 'मेरी सासको निरोग कर दिया' (सोच) चार हजार दिया। श्रेष्ठि गृहपतिने 'मेरी भार्याको निरोग कर दिया' (सोच) चार हजार, एक दास, एक दासी, और एक घोड़ेका रथ दिया। तब जीवक उन सोलह हजार, दास, दासी और अश्वरथको ले जहाँ राजगृह था, उधर चला। क्रमशः जहाँ राजगृह जहाँ अभय-राजकुमार था, वहाँ गया। जाकर अभय-राजकुमारको बोला—

"देव ! यह—सोलह हजार, दास, दासी और अश्व-रथ मेरे प्रथम कामका फल है। इसे देव ! पोसाई (=पोसावनिक) में स्वीकार करें।"

"नहीं, भणे जीवक ! (यह) तेरा ही रहे। हमारे ही अन्तःपुर =हवेलीकी सीमा)में मकान बनवा।"

"अच्छा देव !"…कह…जीवक…ने अभय-राजकुमारके अन्तःपुरमें मकान बनवाया।"

उस समय राजा मागध श्रेणिक बिंबिसारको भगंदरका रोग था। धोतियाँ(=साटक) खूनसे सन जाती थीं। देवियाँ देखकर परिहास करती थीं—'इस समय देव ऋतुमती हैं,

देवको फूल उत्पन्न हुआ है, जल्दी देव प्रसव करेंगे।' इससे राजा मूक होता था। तब राजा···बिंबसारने अभय-राजकुमारको कहा—

"भणे अभय! मुझे ऐसा रोग है, जिससे धोतियाँ खूनसे सन जाती हैं। देवियाँ देखकर परिहास करती हैं०। तो भणे अभय! ऐसे वैद्यको ढूँढो, जो मेरी चिकित्सा करे।"

"देव! यह हमारा तरुण वैद्य जीवक अच्छा है, यह देवकी चिकित्सा करेगा।"

"तो भणे अभय! जीवक वैद्यको आज्ञा दो, वह मेरी चिकित्सा करे।"

तब अभय-राजकुमारने जीवकको हुकुम दिया—

"भणे जीवक! जा राजाकी चिकित्सा कर।"

"अच्छा देव!" कह···जीवक कौमार-भृत्य नखमें दवाले जहाँ राजा···बिंबसार था, वहाँ गया। जाकर राजा···बिंबसारको बोला—

"देव! रोगको देखें।"

तब जीवकने राजा···बिंबसारके भगंदर रोगको एक ही लेपसे निकाल दिया। तब राजा···बिंबसारने निरोग हो, पाँचसौ स्त्रियोंको सब अलंकारोंसे अलंकृत=भूषितकर, (फिर उस आभूषणको) छोड़वा पुंज बनवा, जीवक···को कहा—

"भणे! जीवक! यह पाँचसौ स्त्रियोंका आभूषण तुम्हारा है।"

"यही बस है कि देव मेरे उपकारको स्मरण करें।"

"तो भणे! जीवक! मेरा उपस्थान (=सेवा चिकित्साद्वारा) करो, रनवास और बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघका भी (उपस्थान करो)।"

"अच्छा, देव!" (कह) जीवकने···राजा···बिंबसारको उत्तर दिया।

उस समय राजगृहके श्रेष्ठीको सात वर्षका शिरदर्द था। बहुतसे बड़े बड़े दिगन्त-विख्यात (=दिशा-पामोक्ख) वैद्य आकर निरोग न कर सके, (और) बहुत सा हिरण्य (=अशर्फी) लेकर चले गये। वैद्योंने उसे (दवा करनेसे) जवाब दे दिया था। किन्हीं वैद्योंने कहा—पाँचवें दिन श्रेष्ठी गृहपति मरेगा। किन्हीं वैद्योंने कहा—सातवें दिन०। तब राजगृहके नैगमको यह हुआ—'यह श्रेष्ठी गृहपति राजाका और नैगमका भी बहुत काम करनेवाला है, लेकिन वैद्योंने इसे जवाब दे दिया है०। यह राजाका तरुण वैद्य जीवक अच्छा है। क्यों न हम श्रेष्ठी गृहपतिकी चिकित्साके लिये राजासे जीवक वैद्यको माँगे। तब राज-गृहके नैगमने राजा···बिंबसारके पास···आ···कहा—

"देव! यह श्रेष्ठी गृहपति देवका भी, नैगमका भी बहुत काम करनेवाला है। लेकिन वैद्योंने जवाब दे दिया है०। अच्छा हो, देव जीवक वैद्यको श्रेष्ठी गृहपति की चिकित्साके लिये आज्ञा दें।"

तब राजा···बिंबसारने जीवक कौमार-भृत्यको आज्ञा दी—

"जाओ, भणे जीवक! श्रेष्ठी गृहपति की चिकित्सा करो।"

"अच्छा देव!" कह, जीवक···श्रेष्ठी गृहपतिके विकारको पहिचान कर, श्रेष्ठी गृह-पति को बोला—

"यदि मैं गृहपति! तुझे निरोग करदूँ, तो मुझे क्या दोगे?"

"आचार्य! सब धन तुम्हारा हो, और मैं तुम्हारा दास।"

"क्यों गृहपति ! तुम एक करवटसे सातमास लेटे रह सकते हो ?"

"आचार्य ! मैं एक करवटसे सातमास लेटा रह सकता हूँ ।"

"क्या गृहपति ! तुम दूसरी करवटसे सात मास लेटे रह सकते हो ?"

"आचार्य !''' सकता हूँ ।"

"क्या'''उतान सात मास लेटे रह सकते हो ?" "आचार्य !'''सकता हूँ ।"

तब जीवकने श्रेष्ठी गृहपतिको चारपाई पर लिटाकर, चारपाईसे बाँधकर, शिरके चमड़ेको फाड़कर खोपड़ी खोल, दो जन्तु निकाल लोगोंको दिखलाये—

"देखो यह दो जन्तु हैं—एक बड़ा है, एक छोटा। जो वह आचार्य यह कहते थे—पाँचवें दिन श्रेष्ठी गृहपति मरेगा, उन्होंने इस बड़े जन्तु को देखा था, पाँच दिनमें यह श्रेष्ठी गृहपति की गुद्दी चाट लेता, गुद्दीके चाट लेनेपर श्रेष्ठी गृहपति मर जाता। उन आचार्योंने ठीक देखा था। जो वह आचार्य यह कहते थे—सातवेंदिन श्रेष्ठी गृहपति मरेगा, उन्होंने इस छोटे जन्तु को देखा था०।"

खोपड़ी (=सिब्बनी) जोड़कर, शिरके चमड़ेको सीकर, लेप कर दिया। तब श्रेष्ठी गृहपतिने सप्ताह बीतनेपर जीवक'''को कहा—

"आचार्य ! मैं, एक करवटसे सातमास नहीं लेट सकता।"

"गृहपति ! तुमने मुझे क्यों कहा था—०सकता हूँ।"

"आचार्य ! यदि मैंने कहा था, तो मर भले ही जाऊँ, किंतु मैं एक करवटसे सात मास लेटा नहीं रह सकता।"

"तो गृहपति। दूसरी करवट सात मास लेटो।"

तब श्रेष्ठि गृहपतिने सप्ताह बीतनेपर जीवक'''को कहा—

"आचार्य ! मैं दूसरी करवटसे सातमास नहीं लेट सकता।"०।०।

"तो गृहपति ! उतान सात मास लेटो।"

तब श्रेष्ठी गृहपतिने सप्ताह बीतनेपर'''कहा—

"आचार्य ! मैं उतान सात मास नहीं लेट सकता।"

"गृहपति ! तुमने मुझे क्यों कहा था—'०सकता हूँ'।"

"आचार्य ! यदि मैंने कहा था, तो मर भले ही जाऊँ, किंतु मैं उतान सात मास लेटा नहीं रह सकता।"

"गृहपति ! यदि मैंने यह न कहा होता, तो इतना भी तू न लेटता। मैं तो'''जानता था, तीन सप्ताहोंमें श्रेष्ठी गृहपति निरोग हो जायेगा। उठो गृहपति ! निरोग हो गये। जानते हो, मुझे क्या देना है ?

"आचार्य ! सब धन तुम्हारा और मैं तुम्हारा दास।"

"बस गृहपति ! सब धन मेरा मत हो, और न तुम मेरे दास। राजाको सौ हजार दे दो और सौ हजार मुझे।"

तब गृहपतिने निरोग हो सौहजार राजाको दिया, और सौहजार जीवक कौमार-भृत्यको।

उस समय बनारसके श्रेष्ठी (=नगर-सेठ)के पुत्रको मक्खचिका (= शिरके बल घुमरी काटना) खेलते अँतड़ीमें गाँठ पड़जानेका रोग (होगया) था; जिससे पीई जाउर

(=यागु=यवागू) भी अच्छी तरह नहीं पचती थी, खाया भात भी अच्छी तरह न पचता था। पेसाब, पाखाना भी ठीकसे न होता था। वह उससे कृश, रूक्ष=दुर्वर्ण पीला ठठरी (=धमनि-सन्थत-गात्र) भर रह गया था। तब बनारसके श्रेष्ठीको यह हुआ—'मेरे पुत्रको वैसा रोग है, जिससे जाउर भी०। क्यों न मैं राजगृह जाकर अपने पुत्रकी चिकित्साके लिये, राजासे जीवक वैद्यको माँगू।' तब बनारसका श्रेष्ठी राजगृह जाकर··· राजा···बिंबसारको यह बोला—

"देव! मेरे पुत्रको वैसा रोग है०। अच्छा हो यदि देव मेरे पुत्रकी चिकित्साके लिये वैद्यको आज्ञा दें।"

तब राजा···बिंबसारने जीवक···को आज्ञा दी—

"भणे जीवक! बनारस जाओ, और बनारसके श्रेष्ठीके पुत्रकी चिकित्सा करो।"

"अच्छा देव!" कह···बनारस जाकर, जहाँ बनारसके श्रेष्ठीका पुत्र था, वहाँ गया। जाकर श्रेष्ठी पुत्रके विकारको पहिचान, लोगोंको हटाकर, कनात घेरवा, खंभोंको बँधवा, भार्याको सामने रख, पेटके चमड़ेको फाड़, आँतकी गाठको निकाल, भार्याको दिखलाया—

"देखो अपने स्वामीका रोग, इसीसे जाउर पीना भी अच्छी तरह नहीं पचता था०।"

गाँठको सुलझाकर अँतड़ियोंको (भीतर) डालकर, पेटके चमड़ेको सीकर, लेप लगा दिया। बनारसके श्रेष्ठीका पुत्र थोड़ी ही देरमें निरोग हो गया। बनारसके श्रेष्ठीने 'मेरा पुत्र निरोग कर दिया' (सोच) जीवक कौमार-भृत्यको सोलह हजार दिया। तब जीवक···उन सोलह हजारको ले फिर राजगृह लौट गया।

उस समय राजा प्रद्योतको पांडु-रोगकी बीमारी थी। बहुतसे बड़े-बड़े दिगंत-विख्यात वैद्य आकर निरोग न कर सके; बहुत-सा हिरण्य (=अशर्फी) लेकर चले गये। तब राजा प्रद्योतने राजा मागध श्रेणिक बिंबसारके पास दूत भेजा—

"मुझे देव! ऐसा रोग है, अच्छा हो यदि देव जीवक-वैद्यको आज्ञा दें, कि वह मेरी चिकित्सा करे।"

तब राजा···बिंबसारने जीवक···को हुकुम दिया—

"जाओ भणे जीवक! उज्जैन (=उज्जैनी) जाकर, राजा प्रद्योतकी चिकित्सा करो।"

"अच्छा देव!"···कह···जीवक···उज्जैन जाकर, जहाँ राजा प्रद्योत (=पज्जोत) था, वहाँ गया। राजा प्रद्योतके विकारको पहिचानकर···बोला—

"देव! घी पकाता हूँ, उसे देव पीवें।"

"भणे जीवक! बस, घीके बिना (और) जिससे तुम निरोग कर सको, उसे करो। घी से मुझे घृणा=प्रतिकूलता है।"

तब जीवक···को यह हुआ—'इस राजाका रोग ऐसा है, कि घीके बिना आराम नहीं किया जा सकता; क्यों न मैं घीको कषाय-वर्ण, कषाय-गंध, कषाय-रस पकाऊँ।' तब जीवक···ने नाना औषधोंसे कषाय-वर्ण, कषाय-गंध, कषाय-रस पकाया। तब जीवक···को यह हुआ—'राजाको घी पीकर पचते वक्त उबाल होना जान पड़ेगा। यह राजा चंड

(क्रोधी) है, मुझे मरवा न डाले। क्यों न मैं पहिले ही ठीक कर रक्खूँ। तब जीवक··· जाकर राजा प्रद्योतको बोला—

"देव ! हम लोग वैद्य हैं; वैसे वैसे (विशेष) मुहूर्तमें मूल उखाड़ते हैं, औषध संग्रह करते हैं। अच्छा हो, यदि देव वाहन-शालाओं और नगर-द्वारोंपर आज्ञा दे दें कि जीवक जिस वाहनसे चाहे, उस वाहनसे जावे; जिस द्वारसे चाहे, उस द्वारसे जावे; जिस समय चाहे, उस समय जावे ; जिस समय चाहे, उस समय (नगरके) भीतर आवे।"

तब राजा प्रद्योतने वाहनागारों और द्वारोंपर आज्ञा दे दी—'जिस वाहन से०'। उस समय राजा प्रद्योतकी भद्रवतिका नामक हथिनी (दिनमें) पचास योजन (चलने) वाली थी। तब जीवक कौमार-भृत्य राजाके पास घी ले गया—'देव ! कषाय पियें'। तब जीवक··· राजाको घी पिलाकर हथि-सारमें जा भद्रवतिका हथिनी पर (सवार हो), नगरसे निकल पड़ा। तब राजा प्रद्योतने उस पिये घीको उबांत दिया। तब राजा प्रद्योतने मनुष्योंको कहा—

"भणे ! दुष्ट जीवकने मुझे घी पिलाया है, जीवक वैद्यको ढूँढ़ो।"

"देव ! भद्रवतिका हथिनोपर नगरसे बाहर गया है।"

उस समय अमनुष्यसे उत्पन्न काक नामक राजा प्रद्योतका दास (दिनमें) साठ योजन (चलने)वाला था। राजा प्रद्योतने काक दासको हुकुम दिया—

"भणे काक ! जा जीवक वैद्यको लौटा ला—'आचार्य ! राजा तुम्हें लौटाना चाहते है।' भणे काक ! यह वैद्य लोग बड़े मायावी होते हैं, उस (के हाथ)का कुछ मत लेना।"

तब काकने जीवक कौमार-भृत्यको मार्गमें कौशाम्बीमें कलेवा करते देखा। काक-दासने जीवक···को कहा—

"आचार्य ! राजा तुम्हें लौटवाते हैं।"

"ठहरो भणे काक ! जबतक खा लूँ। हन्त भणे काक ! (तुम भी) खाओ।"

'बस आचार्य ! राजाने आज्ञा दी है—'यह वैद्य लोग मायावी होते हैं, उस (के हाथ) का कुछ मत लेना।"

उस समय जीवक कौमार-भृत्य नखसे दवा लगा आँवला खाकर, पानी पीता था। तब जीवक··ने काक···को कहा—

"तो भणे काक ! आँवला खाओ और पानी पियो।"

तब काकदासने (सोचा) 'यह वैद्य आँवला खा रहा है, पानी पी रहा है, (इसमें) कुछ भी अनिष्ट नहीं हो सकता'—(और) आधा आँवला खाया और पानी पिया। उसका खाया वह आँवला वहीं निकल गया। तब काक (दास) जीवक कौमार-भृत्यको बोला—

"आचार्य ! क्या मुझे जीना है ?"

"भणे काक ! डर मत, तू भी निरोग होगा, राजा भी। वह राजा चंड है, मुझे मरवा न डाले, इसलिये मैं नहीं लौटूँगा।" (—कह) भद्रवतिका हथिनी काकको दे, जहाँ राजगृह था, वहाँको चला। क्रमशः जहाँ राजगृह था, जहाँ राजा···बिंबसार था, वहाँ पहुँचा। पहुँचकर राजा··बिंबसारको यह (सब) बात कह डाली।

"भणे जीवक ! अच्छा किया, जो नहीं लौटा। वह राजा चंड है, तुझे मरवा भी डालता।"

मर्यादाबद्ध, शृङ्गाटक-(=कोनोंका मेल)-बद्ध देखा। देखकर आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया—

"आनन्द! देखते हो मगधके खेतोंको—अचि-बद्ध ०?" "भन्ते! हां।"

"आनन्द! भिक्षुओंके लिये इस प्रकारका चीवर बना सकते हो?"

"भगवान्! (बना) सकता हूँ।"

दक्षिणागिरिमें इच्छानुसार विहारकर भगवान् पुनः राजगृहमें लौट आये। तब आयुष्मान् आनन्द बहुतसे भिक्षुओंके चीवरोंको बनाकर, जहां भगवान् थे वहां गये, जाकर भगवान्को यह बोले—

"भन्ते! भगवान् देखें, मैंने चीवर बनाये हैं।"

भगवान्ने इसी निदान=इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कहकर भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ! आनन्द पंडित है, भिक्षुओ! आनन्द महाप्रज्ञ है, इसने मेरे संक्षेपसे कहे का विस्तारसे अर्थ जान लिया। कुसी भी बनाई, आधी कुसी भी बनाई। मंडल भी बनाया, आधा मंडल भी बनाया। विवर्त भी बनाया, अनु-विवर्त भी बनाया। ग्रैवेयक भी बनाया, जांघेयक भी०। बाहन्त भी०। छिन्नक (=फाड़कर सिला चीवर) सत्थ-लूख (=शस्त्र-रूक्ष) चीवर, श्रमणोंके योग्य, प्रत्यर्थियों (=चोर आदि) के (लिये) बेकामका होगा।"

"भिक्षुओ! छिन्नक-संघाटी, छिन्नक-उत्तरासंग, छिन्नक-अन्तरवासकी अनुज्ञा करता हूँ।"

× × × ×

(१३)

चोरीकी (२) पाराजिका। त्रिचीवर-विधान। मैथुन (१) पाराजिका। (ई. पू. ५०८)।

[1]उस समय भगवान् राजगृहमें गृध्रकूट-पर्वतपर विहार करते थे।

बहुतसे संभ्रान्त = मंडप भिक्षु ऋषिगिरि (=इसिगिलि) की बगलमें तृण-कुटी बना वर्षावास करते थे। आयुष्मान् धनिय कुंभकार-पुत्र भी तृणकुटी बना वर्षावास करते थे। तब वह भिक्षु वर्षावासकर तीन मासके बाद तृण कुटियोंको उजाड़, तृण और काष्ट समेटकर, जनपद-चारिका (=रामत) को चले गये। किंतु आयुष्मान् धनिय कुंभकार-पुत्र, जहाँ वर्षामें बसे, वहीं हेमन्तमें, वहीं ग्रीष्ममें भी। आयुष्मान् धनिय कुम्भकार-पुत्रके गाँवमें पिंडपात (= भिक्षा) के लिये जानेपर, तृण-हारिनियाँ, काष्ट-हारिनियाँ तृण-कुटीको उजाड़कर, तृण और काष्ट लेकर चली गईं। दूसरीबार भी आयुष्मान् धनिय कुम्भकार-पुत्रने तृण और काष्ट जमाकर तृण-कुटी बनाई। दूसरी बारभी आ० धनिय० के गाँवमें०। तब आयुष्मान् धनिय कुम्भकार-पुत्रको यह हुआ—तीन बार भी मेरे गाँवमें पिंडपातके लिये जानेपर ०तृण और काष्ट लेकर चली गईं। मैं अपने आचार्यक (= पेशा) कुम्भकार-

1. पाराजिका। २. (विनय-पिटक)।

कर्ममें सु-शिक्षित…हूँ। क्यों न मैं स्वयं कीचड़ मर्दन कर सारी मट्टी ही की कुटी बनाऊँ। तब आयुष्मान् धनिय कुम्भकारपुत्तने स्वयं कीचड़ मर्दनकर सर्व-मृत्तिका-मय कुटी बना, तृण, गोबर, लकड़ी इकट्ठा कर उस कुटीको पकाया। वह अभिरूप = दर्शनीय = प्रासादिक लाल रंगकी हुई, जैसे कि बीर-बहूटी (= इन्द्र-गोपक)। जैसे किंकिणीका शब्द, वैसे ही उस कुटीका (ठन ठन) शब्द होता था।

भगवान्ने बहुतसे भिक्षुओंके साथ गृध्रकूट-पर्वतसे उतरते उस अभिरूप० लाल कुटियाको देखा। देखकर भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ! यह अभिरूप० लाल बीर-बहूटी जैसी क्या है?" तब भगवान्‌को उन भिक्षुओंने वह (सब) बात कही। भगवान्ने धिक्कारा—

"भिक्षुओ! उस नालायकको यह अन्-अनुच्छविक = अन्-अनुलोम = अ-प्रतिरूप (= अयोग्य), श्रमण-आचारके विरुद्ध, अ-कल्प्य= अ-करणीय है। कैसे भिक्षुओ! उस मोघ पुरुषने सर्व-मृत्तिकामयी कुटी बनाई? भिक्षुओ! मोघ-पुरुषको प्राणियोंपर दया = अनुकम्पा= अ-विहिंसा न होगी। जाओ भिक्षुओ इसे तोड़ डालो, जिसमें आनेवाली जनता प्राणातिपात में न पड़े। और भिक्षुओ! सर्वमृत्तिकामयी कुटी न बनाना चाहिये। जो बनावे उसको दुष्कृतकी आपत्ति।

"अच्छा भन्ते!" भगवान्‌को कह, वह भिक्षु जहाँ वह कुटी थी, वहाँ गये; जाकर (उन्होंने) उस कुटीको फोड़ डाला। तब आयुष्मान् धनिय कुम्भकार-पुत्तने उन भिक्षुओंको कहा—

"आवुसो! तुम मेरी कुटिकाको क्यों फोड़ते हो?"

"आवुस! भगवान् फोड़वा रहे हैं।"

"आवुसो! फोड़ो यदि धर्म-स्वामी फोड़वाते हैं।"

तब आयुष्मान् धनिय कुम्भकार-पुत्रको यह हुआ—'तीन-तीन बार मेरे गाँवमें पिंडपातके लिये जानेपर, तृण हारिणियाँ० तृण, काष्ठ उठा ले गईं। जो मैंने सर्वमृत्तिकामयी कुटी बनाई, वह भी भगवान्ने फोड़वा दी। दारु-गृहमें (= काठ-गोदाम) में गणक (=क्लर्क) मेरा परिचित (= संदिट्ठ) है। क्यों न मैं दारुगृहमें गणकसे लकड़ी माँगकर लकड़ीके भीतवाली कुटी बनाऊँ। तब आयुष्मान् धनिय० जहाँ दारुगृहका गणक था, वहाँ गये। जाकर दारुगृहके गणकको बोले—

"आवुस! तीन बार गाँव में मेरे पिंडपातके लिये जानेपर०। आवुस! मुझे लकड़ी दो, लकड़ीके भीतवाली कुटी बनाना चाहता हूँ।"

"भन्ते! वैसे काष्ट नहीं हैं, जिन्हें मैं आर्यको दूँ। भन्ते, यह राजकीय (= देवगृह) काष्ट [1]नगरकी मरम्मतके लिये रक्खे हैं। यदि राजा दिलवायें, तो भन्ते! उसे ले जाओ।"

---

१. अ. क. "नगरकी मरम्मतके उपकरण। 'आपत्के लिये०' आग लगने या पुराना होने, या शत्रुराजाके घेरा देनेसे, या गोपुर, अट्टालक, राजाका अन्तःपुर, हथसार आदिकी विपत्ति०।

"आवुस ! राजाने (दे) दिया है।"

तब दारुगृहके गणकने—'यह शाक्यपुत्रीय श्रमण (=संन्यासी) धर्म-चारी, समचारी, ब्रह्मचारी, सत्य-वादी, शील-वान् कल्याण-धर्मा होते हैं। राजा भी इनपर अभि-प्रसन्न है। अदिन्न (= न दिये) को दिन्न (= दिया) नहीं कह सकते'—सोच, आयुष्मान् धनिय० को यह कहा—

"भन्ते ! ले जाओ !"

आयुष्मान् धनिय० ने उन काष्ठोंको खंडाखंडी कटा कर, गाड़ीमें ढुलवा कर लकड़ीके भीतकी कुटी बनाई।

तब मगधका महामात्य वर्षकार ब्राह्मण राजगृहमें कर्मान्तों (=कामों) का निरीक्षण (= अनुसन्धान) करते, जहाँ दारु-गृहका गणक था, वहाँ गया। जाकर दारु-गृह-गणकको बोला—

"भणे ! जो वह राजकीय काष्ठ नगरकी मरम्मतके लिये = आपत्के लिये रक्खे थे, वह कहाँ हैं ?"

"स्वामी ! देवने उन काष्ठोंको आर्य धनिय कुम्भकार-पुत्रको दे दिया !"

तब वर्षकार ब्राह्मण मगध-महामात्य रंज हुआ—"कैसे देवने नगरकी मरम्मतके लिये, आपत्के लिये रक्खे राजकीय काष्ठ को धनिय कुम्भकार (=पुत्रको) दे दिया ?" तब वर्षकार मगध-महामात्य जहाँ राजा बिंबसार था, वहाँ गया, जाकर राजा········ बिम्बसारको बोला—

"क्या सच-मुच देवने नगरकी मरम्मतके लिये, आपत्के लिये रक्खे राजकीय काष्ठको धनिय कुम्भकार-पुत्रको दे दिया ?"

"किसने ऐसा कहा ?"

"देव ! दारु-गृहके गणकने।"

"तो दारु-गृह-गणकको आज्ञा दो।"

तब वर्षकार ब्राह्मण मगध-महामात्यने दारु-गृह-गणकको बाँधनेका हुकुम दिया। आयुष्मान् धनिय कुम्भकार-पुत्रने दारु-गृह-गणकको बाँधकर ले जाते देखा। देखकर दारु-गृह-गणकको···पूछा—

"आवुस ! (तुम्हें) क्यों बाँधकर ले जा रहे हैं ?"

"भन्ते ! उन लकड़ियोंके लिये ?"

"चलो आवुस ! मैं भी आता हूँ।"

"भन्ते ! मेरे मारे जानेसे पहिले आना।"

तब आयुष्मान् धनिय कुम्भकार-पुत्र जहाँ राजा···बिंबसारका निवास था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठे। तब राजा···बिंबसार जहाँ आयुष्मान् धनिय" थे, वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् धनिय···को अभिवादन कर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे राजा··· बिंबसारने आयुष्मान् धनिय ··को कहा—

"भन्ते ! क्या मैंने सचमुच •राजकीय काष्ठ आर्यको दिये ?

"हाँ, महाराज !"

"भन्ते ! हम राजा लोग बहुकृत्य = बहुकरणीय (= बहुत कामवाले) होते हैं, देकर भी नहीं स्मरण करते । अच्छा तो (= इंघ) भन्ते ! स्मरण करावें ।"

"महाराज ! याद है, प्रथम अभिषेक होनेपर यह वचन बोले थे—श्रमण-ब्राह्मणोंको तृण काष्ठ-उदक दे दिया, (उनका) परिभोग करें ।"

"भन्ते ! याद करता हूँ, श्रमण-ब्राह्मण लज्जावान्, संदेहवान्, संयम-आकांक्षी (होते हैं), उन्हें थोड़ी-सी (बात) में भी सन्देह उत्पन्न होता है । उनके ख्यालसे मैंने कहा (था) और वह तो जंगलमें बेमालिकके (तृण-काष्ठ-उदक) के विषयमें (था) । सो भन्ते ! तुमने उस बातसे अदिन्न (= बिना दिये) दारु (= काष्ठ) को ले जाना मान लिया । भन्ते ! मेरे जैसा (आदमी) राज्यमें बसते कैसे कोई श्रमण या ब्राह्मणका हनन करे, या बंधन करे, या देशसे निकाले (= पब्बाजेय्य) । भन्ते ! जाओ [1]लोम (= रोयें) से बँच गये, फिर ऐसा मत करना ।"

मनुष्य (इसे सुनकर) सोचते, कुढ़ते धिक्कारते थे—'शाक्य-पुत्रीय श्रमण निर्लज्ज हैं, ०दुःशील (= दुराचारी) मृषावादी हैं । यह (अपने लिये) धर्म-चारी सम-चारी ब्रह्म-चारी, सत्यवादी, शीलवान्, कल्याण-धर्मा (होनेका) दावा करते हैं । इनमें श्रमण-पन (= श्रामण्य) नहीं है, इनमें ब्राह्मण्य नहीं है । इनका श्रामण्य नष्ट हो गया, इनका ब्राह्मण्य नष्ट हो गया । कहाँ है इनको श्रामण्य ? कहाँ है इनको ब्राह्मण्य ? श्रामण्यसे यह दूर हैं । राजाको भी यह ठगते हैं, और मनुष्योंकी तो बात ही क्या ?' भिक्षुओंने उन मनुष्योंको सोचते कुढ़ते, धिक्कारते सुना । तब जो अल्पेच्छ, संतुष्ट, लज्जावान्, चिंतावान् (=कौकृत्यक) संयम-इच्छुक भिक्षु थे, वह सोचने कुढ़ने, धिक्कारने लगे—'कैसे आयुष्मान् धनिय कुम्भकार-पुत्रने बिना दिये राजाके दारु ले लिये ।' तब उन भिक्षुओंने भगवान्को यह बात कही । भगवान्ने इसी निदान = इसी प्रकरणमें भिक्षु-संघको एकत्रित कर आयुष्मान् धनिय कुंभकार-पुत्रको पूछा—

"धनिय ! क्या तूने सचमुच राजाके अदत्त काष्ठका आदान (=ग्रहण) किया ?"

"भगवान्, सच-मुच ।"

भगवान्ने धिक्कारा—"मोघ-पुरुष ! (तूने यह) अन्-अनुच्छविक=अन्-अनुलोमिक =अ-प्रतिरूप (= अयोग्य), अ-श्रामण्य=अ-कल्प्य=अ-करणीय (किया) । मोघ-पुरुष ! राजाके अदत्त-काष्ठको तूने कैसे आदान किया ? मोघ-पुरुष ! यह अ-प्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये नहीं, प्रसन्नों (की प्रसन्नता) को बढ़ानेके लिए नहीं । बल्कि मोघ पुरुष ! अ-प्रसन्नोंको अप्रसन्न करनेके लिये, प्रसन्नोंमें भी कितनोंको अन्यथा (= उलटा) कर देनेके लिये है ।"

---

1. अ. क. "जैसे (कुछ) धूर्त मांस खानेके लिये महार्घ लोमवाली भेड़को पकड़ ले जायें । तब उसको दूसरा विज्ञ-पुरुष देखकर, 'इस भेड़का मांस एक कार्षापण मूल्यका है । लोम (= बाल) तो हर कटाईके समय अनेक कार्षापण मूल्यके हैं' (सोच), दो लोम-रहित भेड़ दे, ले जाये । इस प्रकार यह भेड़ विज्ञ-पुरुषको पा लोमके कारण मुक्त हो जाय । ऐसे ही तुम... इस प्रव्रज्या-चिह्न रूपी लोमसे, भेड़की तरह विज्ञ पुरुषको प्राप्त हो, मुक्त हो गये ।"

उस समय भिक्षुओंमें प्रव्रजित हुआ, एक भूत-पूर्व व्यवहार-अमात्य (=जज, न्यायाधीश) भगवान्‌से अ-विदूर (=समीप) बैठा था। भगवान्‌ने उस भिक्षुको पूछा—

"भिक्षु! राजा मागध श्रेणिक बिंबसार कितने (के अपराध) में चोरको पकड़ कर मारता है, बाँधता है, या देश-निकाला देता है?"

"पादसे भगवान्! या पादके बराबर मूल्य होने से।"

उस समय राजगृहमें पाँच [1]मासक (=मासा) का पाद होता था। तब भगवान्‌ने आयुष्मान् धनिय कुम्भकार-पुत्रको धिक्कार कर—

'जो कोई भिक्षु ग्राम या अरण्यसे चोरी मानी जानेवाली अदत्त (वस्तु) ग्रहण करे; जितनेके अदत्तादानसे राजालोग चोरको पकड़कर—(तू) चोर है, बाल है, मूढ है, स्तेन है (कह) मारें, बाँधें या देश निकाल दें; उतनेके अदत्त-आदान (=बिना दिया लेने) से भिक्षु पाराजिक होता है, (भिक्षुओंके साथ) न वास करने लायक।...

'पाराजिक होता है'=जैसे वृंतसे टूटा पीला पत्ता (फिर) हरा होने लायक नहीं होता, ऐसेही भिक्षु पाद या पाद-मूल्यक या पादसे अधिक चोरी माने जानेवाले अदत्तको आदान कर, अ-श्रमण अ-शाक्य-पुत्रीय होता है, इसलिये कहा 'पाराजिक होता है'।

राजगृहमें यथेच्छ विहार कर भगवान् जहाँ वैशाली है, वहाँ चारिकाके लिये चले। राजगृह और वैशालीके बीचके मार्गमें जाते, भगवान्‌ने बहुतसे भिक्षुओंको चीवरोंकी गठरी—सिरपरभी चीवरकी गठरी, कन्धेपरभी चीवरकी गठरी, कमरमेंभी चीवरकी गठरी—लेकर आते देखा। देखकर भगवान्‌को हुआ—'बहुत जल्दी यह नालायक (=मोघ-पुरुष) बटोरने लग पड़े। क्यों न मैं भिक्षुओंके लिये चीवर-सीमा=चीवर-मर्यादा स्थापित करूँ। क्रमशः चारिका करते भगवान् जहाँ वैशाली है, वहाँ पहुँचे। वहाँ वैशालीमें भगवान् गौतमक-चैत्यमें विहार करते थे। उस समय भगवान् हेमन्त अन्तराष्टक (माघ और फागुनके बीचकी आठ अ. क.) हेमन्तकी रातोंमें हिम-पातके समय खुली जगहमें एक चीवर ले बैठे। भगवान्‌को ठंडक न मालूम हुई। प्रथम-याम बीतजाने पर (=१० बजनेके बाद) भगवान्‌को ठंडक मालूम हुई; भगवान्‌ने दूसरा चीवर ओढ़ा, भगवान्‌को ठंडक न मालूम हुई। मध्यम-याम बीत जानेपर (=२ बजेके बाद) भगवान्‌को ठंडक मालूम हुई, भगवान्‌ने, एक और चीवर ओढ़ा, भगवान्‌को ठंडक न मालूम हुई। पश्चिम (=पिछले) याम (=पहर) के बीतजानेपर, लाली फैलते, रात्रिके नन्दिमुखी होते समय, भगवान्‌को ठंडक मालूम हुई, भगवान्‌ने चौथा चीवर ओढ़ा, भगवान्‌को ठंडक न मालूम हुई। तब भगवान्‌को यह हुआ—जोभी यह शीतालु भी कुल-पुत्र इस धर्ममें प्रव्रजित हुये हैं, वह भी तीन चीवरसे गुजारा कर सकते हैं, क्यों न मैं भिक्षुओंके चीवर की सीमा बाँध, मर्यादा स्थापित करूँ, तीन चीवरकी अनुज्ञा (=आज्ञा) दूँ। तब भगवान्‌ने...भिक्षुओंको आमंत्रित किया...

---

1. अ. क. "पाँच मासेका पाद होता था। उस समय राजगृहमें बीस मासेका कार्षापण (=कहापन) होता था, इसलिये पाँच मासेका पाद। इस लक्षणसे सब जनपदोंमें कहापनका चतुर्थ भाग पाद जानना चाहिये। वह पुराने नील-कहापनके बारेमें है, दूसरे रुद्रदामक आदिके (कहापनोंके बारेमें) नहीं।"

"भिक्षुओ! तीन चीवरकी अनुज्ञा देता हूँ—दोहरी संघाटी, एकहरा उत्तरासंघ (= ऊपरकी चादर), एकहरा अन्तर्वासक (= लुंगी)।"

मैथुन-(१) पाराजिका।

उस समय [1]वज्जीमें दुर्भिक्ष···था।···। तब आयुष्मान् सुदिन्नको यह हुआ—'इस समय वज्जीमें दुर्भिक्ष··है, उंछ-परिग्रहसे (जीवन) यापन करना मुश्किल है। और वैशालीमें मेरी जातिवाले बहुत आढ्य=महाधनी=महाभोगवाले बहुत-सोना-चाँदीवाले, बहुत वित्त-उपकरणवाले, बहुत धन-धान्य-वाले हैं। क्यों न मैं जातिवालोंका आश्रय ले विहार करूँ। जातिवाले मुझे दान देंगे, पुण्य करेंगे, भिक्षुओंका लाभ पायेंगे, मैं भी पिंडसे तकलीफ न पाऊँगा। तब आयुष्मान् सुदिन्न शयनासन सँभाल कर, पात्रचीवर ले, जिधर वैशाली थी, उधर चले। क्रमशः जहाँ वैशाली थी, वहाँ पहुँचे। वैशालीमें आ० सुदिन्न महावनमें विहार करते थे। आयुष्मान् सुदिन्नके जातिवालों (=ज्ञातक) ने सुना—सुदिन्न कलन्द-पुत्त वैशालीमें आये हैं। तब वह आयुष्मान् सुदिन्नके लिये साठ स्थालिपाक भोजनार्थ ले आये। आयुष्मान् सुदिन्न उन साठ स्थालि-पाकोंको भिक्षुओंको देकर, पूर्वाह्ण समय (चीवर) पहिन-कर, पात्र-चीवर हाथमें ले, कलन्द-ग्राममें पिण्ड-चार करते जहाँ अपने पिताका घर था, वहाँ गये।

उस समय आयुष्मान् सुदिन्नकी गृहदासी (=ज्ञाति-दासी) बासी (=अभि-दोषिक) दाल (= कुम्मास, कुल्माष) को फेंकना चाहती थी। आयुष्मान् सुदिन्नने उस दासी को कहा—

"भगिनी! यदि यह फेंकनेको है, तो यहां मेरे पात्रमें डाल दे।"

"आयुष्मान् सुदिन्नकी [2]ज्ञाति-दासी, उस बासी कुल्माषको···पात्रमें डालते वक्त, हाथ, पैर और स्वरकी अनुहारको पहिचान गई। तब···ज्ञाति-दासी...जाकर आयुष्मान् सुदिन्नकी माताको बोली—

"अरे अय्या! जानती हो, आर्य-पुत्र सुदिन्न आ पहुँचे हैं।"

"यदि जे! (=मगही गे!) सच बोलती है, तो तुझे अ-दासी करती हूं।"

"आयुष्मान् सुदिन्न उस बासी कुल्माषको एक भीतकी जड़में बैठकर खाते थे। आयुष्मान् सुदिन्नके पिताने कर्मान्त (=काम) परसे आते, आयुष्मान् सुदिन्नको उस बासी कुल्माषको ० खाते देखा। देखकर जहां आयुष्मान् सुदिन्न थे, वहां गया। जाकर बोला—

"अरे तात सुदिन्न! बासी कुल्माष खा रहे हो? क्या तात सुदिन्न! अपने घर नहीं चलना है?"

"गया था गृहपति! तेरे घर, वहींसे यह बासी कुल्माष (मिला) है!'

तब आयुष्मान् सुदिन्नका पिता···हाथसे पकड़कर···यह बोला—

---

१. पाराजिका १।

२. अ. क. "भगवान् (के बुद्धत्व)के बारहवें वर्षमें सुदिन्न प्रव्रजित हुये, बीसवें वर्ष ज्ञातिकुलमें पिंडके लिये प्रविष्ट हुये, स्वयं प्रव्रज्यामें आठ वर्षके थे इसलिये उसे वह ज्ञाति-दासी देखकर भी नहीं पहिचानती थी।"

"आओ तात सुदिन्न ! घर चलें।"

तब आयुष्मान् सुदिन्न जहाँ उनके पिताका घर था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसन-पर बैठे। तब आयुष्मान् सुदिन्नके पिताने…कहा—

"तात ! सुदिन्न भोजन करो।"

"बस गृहपति ! आज मैं भोजन कर चुका।"

"तात सुदिन्न ! कलका भोजन स्वीकार करो।"

आयुष्मान् सुदिन्नने मौनसे स्वीकार किया। तब आयुष्मान् सुदिन्न आसनसे उठकर चले गये।

आयुष्मान् सुदिन्नकी माताने उस रातके बीतनेपर, हरे गोबरसे पृथिवीको लिपाकर, दो ढेर लगवाये, एक हिरण्य (=अशर्फी) का, और एक सुवर्ण (=सोना) का। इतने बड़े पुंज हुए, कि इधर खड़ा पुरुष, उधर खड़े पुरुषको नहीं देख सकता था; न उधर खड़ा पुरुष इधर खड़े पुरुषको देख सकता था। उन पुंजोंको चटाईसे ढकवा, बीचमें आसन बिछवा, कनात घिरवा, आयुष्मान् सुदिन्न की पुरानी स्त्रीको संबोधित किया—

"तो बहू ! जिस अलंकारसे अलंकृत हो, तू मेरे पुत्र सुदिन्नको प्रिय=मनाप लगा करती थी, उस अलंकार से अलंकृत हो।"

"अच्छा, अय्या !"…

तब आयुष्मान् सुदिन्न पूर्वाह्न समय (चीवर) पहिनकर पात्र-चीवर ले, जहाँ उनके पिताका घर था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठे। तब आयुष्मान् सुदिन्नका पिता जहाँ आयुष्मान् सुदिन्न थे, वहाँ आया। आकर उन पुंजोंको खोलवा कर, आयुष्मान् सुदिन्नको बोला—

"तात सुदिन्न ! यह केवल तेरी माताका स्त्रीधन है; पिताका पितामहका अलग है। तात सुदिन्न ! गृहस्थ बनकर भोगभी भोगनेको मिल सकता है पुण्यभी करने को। आओ तात सुदिन्न ! फिर गृही बनकर भोगोंको भोगो, और पुण्योंको करो।"

"तात ! (मैं) नहीं चाहता, (मैं) नहीं (कर) सकता, मैं अभिरत (=अनुरक्त) हो ब्रह्मचर्य पालन कर रहा हूँ।"

दूसरी बारभी…बोला०। तीसरी बारभी" तात सुदिन्न ! यह तेरा०।

"गृहपति ! यदि बहुत रंज न हो, तो तुझे बोलूँ।"

"तात सुदिन्न ! बोलो।"

"तो तू गृहपति ! बड़े बड़े बोरे बनवा, हिरण्य सुवर्ण भरकर, इन गाड़ियोंसे ढुलवा, गंगाकी धाराके बीचमें डाल दे। सो किस हेतु ? गृहपति ! जो तुझे इसके कारण भय, उद्वेग रोमांच, रखवाली करनी पड़ती वह इससे न होगी।"

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् सुदिन्नका पिता दुःखी हुआ—'पुत्र सुदिन्न ऐसा कैसे कहेगा !' आयुष्मान् सुदिन्नके पिताने आयुष्मान् सुदिन्न की……स्त्रीको बुलाया—

"तो बहू, तू भी कह, क्या जानें पुत्र सुदिन्न तेरा कहना ही माने"

आयुष्मान् सुदिन्न की…स्त्री आयुष्मान् सुदिन्नका पैर पकड़कर, आयुष्मान् सुदिन्न को बोली—

"आर्यपुत्र ! यह कैसी अप्सरायें हैं; जिनकेलिये तुम ब्रह्मचर्य चर रहे हो ?"

"भगिनि ! मैं अप्सराओंकेलिये ब्रह्मचर्य नहीं चर रहा हूँ !"

तब आयुष्मान् सुदिन्न की···स्त्री—'आज आर्यपुत्र सुदिन्न मुझे भगिनि कहकर पुकारते हैं', (सोच) वहीं मूर्छित हो गिर पड़ी। तब आयुष्मान् सुदिन्नने पिताको कहा—

"गृहपति ! यदि मुझे भोजन देना हो, तो दो, तकलीफ मत दो।

"तात सुदिन्न ! खाओ" तब आयुष्मान् सुदिन्नको माता और पिताने······उत्तम खाद्य-भोज्यसे अपने हाथ संतर्पित=संप्रवारित किया। आयुष्मान् सुदिन्नकी माता, आयुष्मान् सुदिन्नके खाकर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर बोली—

"तात सुदिन्न ! यह आढ्य० कुल है; तात सुदिन्न ! गृही बनकर भी भोग भोगने तथा पुण्य करनेको मिल सकता है। आओ तात सुदिन्न ! गृही बन, भोग भोगो और पुण्य करो।"

"अम्मा ! मैं नहीं चाहता, नहीं सकता; अभिरत हो ब्रह्मचर्य चर रहा हूँ।"

दूसरी बार भी०। तीसरी बार भी···माताने···सुदिन्नको कहा—

"तात सुदिन्न ! यह हमारा आढ्य०कुल है। (अच्छा) तात सुदिन्न ! बीजक (=वीर्यसे उत्पन्न पुत्र) ही दो, ऐसा न हो कि हमारी अ-पुत्रक संपत्ति लिच्छवी ले जायें।"

"अम्मा ! (यह) मुझसे किया जा सकता है।"

"तात सुदिन्न ! कहाँ इस वक्त तुम विहार करते हो।"

"अम्मा ! महावनमें।" कह आयुष्मान् सुदिन्न आसनसे उठ चले गये।

आयुष्मान् सुदिन्नकी माताने आयुष्मान् सुदिन्नकी···स्त्रीको आमंत्रित किया—

"(अच्छा) तो बहू ! जब ऋतुनी होना, जब तुझे पुष्प उत्पन्न हो, तो मुझे कहना।"

"अच्छा अय्या !"···।

तब आयुष्मान् सुदिन्नकी पुराण दुतीयिका (=स्त्री) ऋतुनी हुई, उसे पुष्प उत्पन्न हुआ, तब···माताको कहा—

"मैं ऋतुनी हूँ अय्या ! मुझे पुष्प उत्पन्न हुआ है।"

"तो बहू ! जिस अलंकारसे अलंकृत हो मेरे पुत्र सुदिन्नको प्रिय=मनाप लगती थी, उस अलंकारसे अलंकृत होओ।"

"अच्छा अय्या !"···

आयुष्मान् सुदिन्नकी माता० सुदिन्नकी स्त्रीको लेकर जहाँ महावन था, जहाँ आयुष्मान् सुदिन्न थे, वहाँ गई; जाकर आयुष्मान् सुदिन्नको बोली—

"तात सुदिन्न ! यह हमारा आढ्य०कुल है।"

दूसरीवार भी०। तीसरीवार यह बोली—

"तात सुदिन्न ! ०तात सुदिन्न ! बीजक ही दो, ऐसा न हो, कि हमारी अ-पुत्रक संपत्ति[1] लिच्छवी ले जायें।"

---

1. अ. क. "हमलोग लिच्छवी गण-राजाओंके राज्यमें बसते हैं। यह तेरे पिताके मरनेपर इस सम्पत्ति, इस महान् विभवको, रक्षक पुत्र न होनेसे, अ-पुत्रक कुलधनको अपने राज-अन्तः-पुरमें ले जायेंगे।"

"अम्मा ! यह मुझसे किया जा सकता है ।"

(तब आ० सुदिन्नने) स्त्री की बाँह पकड़ महावनके भीतर घुसकर, शिक्षापद (=भिक्षु-नियम) के प्रज्ञापित न होनेके समय, दुष्परिणामको न देख…स्त्रीके साथ तीन बार मैथुन-धर्म सेवन किया । उससे वह गर्भवती हुई ।…।

तब आयुष्मान् सुदिन्नकी स्त्रीने उस गर्भके परिपक्व होनेपर पुत्र प्रसव किया । आयुष्मान् सुदिन्नके मित्रोंने उस पुत्रका नाम बीजक रक्खा । आयुष्मान् सुदिन्नकी स्त्रीका नाम बीजक-माता०, और आयुष्मान् सुदिन्नका नाम बीजक-पिता । पिछले समयमें यह दोनों घरसे बेघर प्रव्रजित हो अर्हत्-पद (=मुक्ति) को प्राप्त हुये ।

तब उन भिक्षुओंने आयुष्मान् सुदिन्नको अनेक प्रकारसे धिक्कारकर, भगवान्‌को यह बात कही ।…। तब भगवान्‌ने…उसके अनुच्छविक=उसके अनुकूल धर्म-कथा कह, भिक्षुओं-को संबोधित किया—

"*अच्छा तो भिक्षुओ ! दस बातोंका ख्यालकर भिक्षुओंके लिये शिक्षापद (=नियम)* प्रज्ञापन करता हूँ—(१) संघकी अच्छाई (=सुष्ठुता) के लिये (२) संघकी फासुता (=आसानी) के लिये । (३) उच्छृङ्खल-पुरुषोंके निग्रहके लिये । (४) अच्छे (=पेशल) भिक्षुओंके आसानीसे विहार करनेके लिये । (५) इस जन्मके आस्रवों (=चित्तमलों) के निवारणके लिये । (६) जन्मान्तर (=सांपरायिक) के आस्रवोंके नाशके लिये । (७) अप्रसन्नों (=समल-चित्तों) के प्रसन्न (= निर्मल-चित्त) होनेके लिये । (८) प्रसन्नोंकी और वृद्धीके लिये । (९) सद्धर्मकी चिरस्थितिके लिये । (१०) विनय (=संयम) की सहायता (=अनुग्रह) के लिये ।…।…

' जो भिक्षु भिक्षुओंकी शिक्षा (=कायदा) और साजीव (=नियम) से युक्त हो, शिक्षाको बिना प्रत्याख्यान (=परित्याग) किये, दुर्बलताको बिना प्रकट किये, अन्ततः (=यहाँ तक कि) पशुमें भी मैथुन-धर्मका सेवन करे; वह पाराजिक होता है, (भिक्षुओंके साथ) सहवासके अयोग्य होता है ।"

× × × ×

(१४)

मनुष्य-हत्या (३) पाराजिका । उत्तर-मनुष्य-धर्म (४)-पाराजिका । (ई. पू. ५०८)

[1]उस समय बुद्ध भगवान् वैशालीमें महावनकी कूटागारशालामें विहार करते थे ।

भगवान् भिक्षुओंको अनेक प्रकारसे अ-शुभ (=शरीरकी अपवित्रता)-कथा कहते थे, अशुभ (भावना करने) की तारीफ करते थे, आदि-आदि अशुभ-समापत्तियों (ध्यानों) की तारीफ करते थे । तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ ! मैं आध-महीना एकान्त ध्यान (= प्रतिसंल्लयन) में रहना चाहता हूँ । पिंड-पात (=भिक्षा) ले जानेवालेको छोड़कर (और) किसीको (मेरे पास) न आना चाहिये ।

1. पाराजिका २ (विनयपिटक) ।

"उन भिक्षुओंने भगवान्‌को अच्छा भन्ते ! कहा। एक पिंड-पात-हारक भिक्षु को छोड़ दूसरा कोई वहाँ नहीं जाता था। भिक्षुओंने (सोचा)—भगवान्‌ने अनेक प्रकारसे अशुभ० की तारीफ की है, (इस लिये वह भिक्षु अनेक) आकार प्रकारकी अशुभ भावनाओंसे युक्त हो, विहार करने लगे। वह कायामें घिना करते, हैरान होते, जुगुप्सा करते थे; जैसे शिरसे नहाया शौकीन तरुण स्त्री या पुरुष मरे साँप, या मरे कुत्ते, या मनुष्य-शवके कंठसे लगने पर घिनाता० है। ऐसेही वह भिक्षु अपनी कायासे घृणा…जुगुप्सा करते, अपनेको अपनेसे मारते थे, एक दूसरेको भी जानसे मारते थे; मृगलंडिक समण-कुत्तकके पास जाकर भी कहते थे—

"आवुस ! अच्छा हो (यदि) हमें जानसे मारदो, यह पात्र-चीवर तुम्हारा होगा।"

तब मिगलंडिक समण-कुत्तक पात्र-चीवरके लोभमें, बहुतसे भिक्षुओंको जानसे मारकर, खूनी तलवारको लेकर जहाँ वग्गुमुदा नदी थी, वहाँ गया।

तब मिगलंडिक समण-कुत्तकको खून-सनी तलवार धोते मनमें पश्चात्ताप हुआ, खेद हुआ—अलाभ है मुझे, लाभ नहीं हुआ मुझे। दुर्लभ है मुझे, सुलाभ नहीं हुआ। मैंने बड़ा ही पाप (=अ-पुण्य) कमाया, जो मैंने शीलवान्, कल्याण-धर्मा भिक्षुओंको प्राणसे मार डाला। तब मार-लोकके किसी देवताने, बिना डूबते पानीपर खड़े होकर० समण-कुत्तकको कहा—

"साधु, साधु सत्पुरुष ! लाभ है तुझे सत्पुरुष, सुलाभ हुआ, तुझे सत्पुरुष। तूने सत्पुरुष ! बहुत पुण्य कमाया, जो तूने अ-तीर्णों (=न उतरों) को (पार) उतार दिया।"

तब ० समण-कुत्तकने (सोचा) 'लाभ है मुझे ०" (और) तीक्ष्ण तलवार लेकर एक विहारसे दूसरे विहार, एक परिवेण (=चौक) से दूसरे परिवेणमें जाकर ऐसा कहता—कौन अतीर्ण है, किसको तारूँ ? वहाँ जो वह अ-वीत राग भिक्षु थे, उन्हें उस समय भय होता था, जड़ता ०, रोमांच होता था। किन्तु जो भिक्षु वीतराग थे, उनको उस समय भय०, जड़ता०, रोमांच न होता था। तब ० समण-कुत्तकने एक दिनमें एक भिक्षुको भी जानसे मारा, ०दो भिक्षुको भी०, ० तीन ०, ० चार ०, ० पाँच ०, ० दस ०, ० बीस ०, ० तीस ०, ० चालीस ०, ० पचास ०, ० साठ ०।

भगवान्‌ने आध मासके बीतनेपर पटिसल्लानसे उठकर, आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

"क्या है आनन्द ! भिक्षुसंघ बहुत कम होगया है ?"

"चूँकि भन्ते ! भगवान्‌ने भिक्षुओंको अनेक प्रकारसे अशुभ-भावना० की तारीफ की। सो भिक्षु०।०। ०समण-कुत्तकने भी० साठ भिक्षुकोभी एक दिनमें मारा। अच्छा हो। भन्ते ! दूसरे पर्याय (=प्रकारान्तर, उपदेश) को भगवान् कहें, जिसमें यह भिक्षुसंघ आज्ञा (=परम-ज्ञान) में स्थित हो।"

"तो आनन्द ! जितने भिक्षु वैशालीमें विहार करते हैं, उन सबको उपस्थानशालामें एकत्रित करो।"

"अच्छा भन्ते !"…आयुष्मान् आनन्दने…एकत्रित कर,…जाकर, भगवान्‌को कहा—"भन्ते ! भिक्षु-संघ एकत्रित होगया। अब भन्ते ! भगवान् जिसका काल समझें

(वैसा करें)।" तब भगवान् जहाँ उपस्थान-शाला थी, वहाँ गये। जाकर बिछे आसन पर बैठे। बैठकर भगवान्‌ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ! यह आणापान-सति (=प्राणायाम) समाधि भावना करनेसे, बढ़ानेसे, शान्त=प्रणीत आसेचनक (=सुंदर) और सुख-विहारवाली होती है, पैदा होनेवाले,पापक=अकुशल (=बुरे) धर्मोंको स्थानपर अन्तर्धान करती है, उपशमन करती है। जैसे भिक्षुओ! ग्रीष्मके पिछले मासमें उठी वर्षा धूलीको, महा-अकाल-मेघ स्थानही पर (=ठांवही) अन्तर्धान कर देता है, उपशमन कर देता है; ऐसेही भिक्षुओ! यह प्राणायाम०। भिक्षुओ! कैसे आणापान-(=प्राणायाम) सति समाधि भावना करने पर बढ़ाने पर शान्त० ? भिक्षुओ! भिक्षु जंगलमें, या वृक्षके नीचे, या शून्य-आगारमें आसन मार, शरीरको सीधा रख, स्मृतिको संमुख रखकर, बैठता है। वह स्मरण रखते श्वास छोड़ता है, स्मरण रखते श्वास लेता है! लम्बी साँस लेते 'लम्बी साँस लेता हूँ' जानता है०[1] विरागकी अनुपश्यना करते (= विरागानुपस्सी) ०, .निरोध-अनुपश्यी०, 'प्रतिनिस्सर्ग (= परित्याग)-अनुपश्यी श्वास छोड़ूँ' सीखता है,० 'प्रति-निस्सर्ग-अनुपश्यी श्वास लूँ' सीखता है। इस प्रकार भिक्षुओ! भावना की गई आणापान-स्मृति-समाधि, इस प्रकार बढ़ाई गई०।"

तब भगवान्‌ने इसी निदान=इसी प्रकरणमें भिक्षुओंको…पूछा—

"भिक्षुओ! क्या भिक्षुओंने सचमुच अपनेको अपनेसे मारा० ?"

"सचमुच भगवान्!"

भगवान्‌ने धिक्कारा।…।

"इस प्रकार भिक्षुओ! इस शिक्षापदको उद्देश (=पाठ, धारण) करना चाहिये।—

"जो पुरुष जानकर मनुष्य-शरीरको प्राणसे मारे, या शस्त्रसे मारे, या मरनेकी तारीफ करे, मरनेके लिये प्रेरित करे—अरे आदमी! तुझे क्या (है) इस पापी दुर्जीवनसे, जीनेसे मरना अच्छा है। इस प्रकारके चित्त-विचारसे, इस प्रकारके चित्त संकल्पसे अनेक प्रकारसे जो मरनेकी तारीफ करे, या मरनेके लिये प्रेरित करे। वह भी पाराजिक होता है, अ-संवास (होता है)।

उत्तर-मनुष्य-धर्म (४) पाराजिका।

'उस समय भगवान् वैशालीमें महावनकी कूटागार-शालामें विहार करते थे।

उस समय बहुतसे संदृष्ट=संभ्रान्त भिक्षु वग्गुमुदा नदीके तीरपर वर्षा-वासके लिये गये। उस समय वज्जीमें दुर्भिक्ष० था०। तब उन भिक्षुओंको यह हुआ—इस समय वज्जीमें दुर्भिक्ष० है०। किस उपायसे एकत्र हो…सुख (पूर्वक) वर्षावास किया जाये…। किन्हीं किन्हींने कहा—हन्त आवुसो! हम गृहस्थोंके कर्मोंको देख-भाल करें, इस प्रकार वह हमें (भोजन) देना पसन्द करेंगे, इस प्रकार हम एकत्र…हो सुखसे वर्षावास करेंगे। किन्हीं किन्हींने कहा—नहीं आवुसो! क्या गृहस्थोंकी कर्मों (=कामोंको)की देख-भाल करना? आवुसो! हम गृहस्थोंका दूतका काम करें, इस प्रकार० ०क्या गृहस्थोंके दूत-कर्मसे? हन्त आवुसो! हम गृहस्थोंके (सम्मुख) एक दूसरेके उत्तर-मनुष्य धर्म (=दिव्य शक्ति,) की तारीफ

१. पृष्ठ ११०।

करें—अमुक भिक्षु प्रथम-ध्यानका. लाभी (=पानेवाला) है, अमुक भिक्षु द्वितिय-ध्यानका०, ०तृतीय०, ०चतुर्थ० । अमुक भिक्षु स्रोतआपन्न है, ०सकृदागामी०, अर्हत् है । अमुक भिक्षु त्रैविद्य है, अमुक भिक्षु षड्-अभिज्ञ (=छः अभिज्ञाओंवाला)। इस प्रकार वह० । आवुसो ! यही सबसे अच्छा है, जो हम एक दूसरेके उत्तर-मनुष्य-धर्मकी तारीफ करें० ।

मनुष्य (सोचते—) हमें लाभ है, हमें सुलाभ हुआ, जो हमारे पास ऐसे शीलवान् भिक्षु वर्षावासके लिये आये। जैसे यह शीलवान् कल्याण-धर्म हैं, ऐसे भिक्षु पहिले हमारे पास वर्षावासके लिये न आये। इसलिये वह वैसा भोजन न अपने खाते, न माता-पिताको देते, न स्त्री बच्चोंको देते, न दास कर्मकर पुरुषोंको०, न मित्र अमात्योंको०, न जाति-बिरादरीको० ; जैसा कि भिक्षुओंको देते थे। वह वैसा० पान न अपने पीते०; जैसा कि भिक्षुओंको देते। तब वह भिक्षु रूपवान् मोटे (=पीण-इन्द्रिय), प्रसन्न-मुख-वर्ण, विप्रसन्न-छविवर्ण (=सुन्दर चमड़ेके रूपवाले) होगये। वर्षावासकी समाप्तिपर भगवान्के दर्शनके लिये जाना, भिक्षुओंका आचार था। तब वह भिक्षु वर्षावास समाप्त कर तीनमास बाद, शयनासन सँभाल-पात्र-चीवर ले जिधर वैशाली थी, उधर चले। क्रमशः जहां वैशाली महावन कूटागार-शाला थी, जहां भगवान् थे, वहां पहुँचे। पहुँचकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। उस समय (और) दिशाओंसे वर्षावास करके आये भिक्षु कृश, रूक्ष, दुर्वर्ण, पीले ठठरीमात्र रह गये थे, किंतु वग्गुमुदा तीरवाले भिक्षु रूपवान्, मोटे० । बुद्ध भगवानोंका आचार है कि आगन्तुक भिक्षुओंके साथ प्रतिसम्मोदन (=कुशल-प्रश्न) करें। तब भगवान् वग्गुमुदा तीरके भिक्षुओंको बोले—

"भिक्षुओ! अनुकूल (=खमनीय) तो था, शरीर-यात्रा-योग्य (=यापनीय) तो था? संमोदन करते अ-विवाद करते अच्छी तरह एकत्र वर्षावास तो बसे; और भिक्षासे तकलीफ तो नहीं पाये?"

तब उन भिक्षुओंने भगवान्को यह बात बतलादी।

"क्या भिक्षुओ! सच था (तुम्हारा उत्तर-मनुष्य-धर्म कहना)?"

"असत्य (=अभूत) भगवान्!"

बुद्ध भगवान्ने धिक्कारा—

"मोघ-पुरुषो! (यह) अन्-अनुच्छविक=अन्-अनुलोमिक=अ-प्रतिरूप (=अनुचित), अ-श्रामणक, अ-कल्प्य = अ-करणीय है। मोघ-पुरुषो! तुमने उदरके लिये गृहस्थोंसे एक दूसरेके उत्तर-मनुष्य-धर्मकी कैसे तारीफ की? गाय काटनेके तेज छुरेसे (अपना) पेट फाड़ लेना अच्छा था, किंतु उदरके कारण एक दूसरेकी दिव्य-शक्तिका कहना (अच्छा) नहीं। सो किस हेतु? उस (छुरा मारने)से मोघ पुरुषो! तुम मरण पाते, या मरण-समान दुःखको। उसके कारण शरीर छोड़ मरनेके बाद अपाय=दुर्गति नर्कमें तो न उत्पन्न होते।...।"

...धिक्कार कर धार्मिक कथा कह, भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ! लोकमें यह पाँच महाचोर...हैं। कौनसे पाँच? भिक्षुओ! (१) (जैसे) एक महाचोरको ऐसा होता है—मैं कुदस्यु (=छोटा डाकू) हूँ, सौ या हजारके साथ हत्या करते कराते, काटते कटवाते, पकाते पकवाते, ग्राम, निगम, राजधानीको मथन करूँ। तब वह दूसरे समय सौ, हजारके साथ० मथन करे। ऐसेही भिक्षुओ! यहाँ किसी

पाप-भिक्षुको ऐसा होता है—मैं कुहस्सु नामक हूँ,० सौ, हजारके साथ ग्राम, निगम राजधानीमें गृहस्थों और प्रव्रजितोंसे सत्कृत = गुरु-कृत = मानित = पूजित = अपचित हो विचरते, चीवर, पिंडपात, शयनासन, ग्लान-प्रत्यय-भैषज्य (= पथ्य, औषध)-परिष्कारका पाने वाला होऊँ । भिक्षुओ ! लोकमें यह प्रथम महाचोर…है । (२) और फिर भिक्षुओ ! एक पाप-भिक्षु (=दुष्ट-भिक्षु) तथागत-प्रवेदित (=साक्षात्कृत) धर्म-विनयको सीखकर अपने पास रखता है, (और उसे) अपना (आविष्कार) बतलाता है । यह…द्वितीय महा-चोर…है । (३) ०एक भिक्षु परिशुद्ध ब्रह्मचर्य पालन करते शुद्ध ब्रह्मचारीको, झूठही अ-ब्रह्मचर्यका कलंक लगाता है । यह…तृतीय महाचोर…है । (४) ०एक भिक्षु जो यह संघके बड़े भाण्ड = बड़े परिष्कार (=सामान) हैं, जैसे कि—आराम (बाग), आरामके मकान (= आरामवस्तु), विहार (=मठ), विहार-वस्तु, मंच (= चारपाई), पीठ, गद्दा, तकिया, लोहेका घड़ा, लोह-भानक, लोह-वारक, लोह-कटाह, बँसूला, फरसा, कुल्हाड़ी, कुदाल, खंती बल्ली, बाँस, मूँज, बल्वज (=रस्सी बटनेका) तृण, मट्टी, लकड़ीकी चीज (=दारु-भाण्ड), मट्टीकी चीज (= मृत्तिका-भाण्ड) हैं, उनसे गृहस्थोंको खुश करता है, …………यह… चतुर्थ महाचोर…है । (५) भिक्षुओ ! देव-मार-ब्रह्मा सहित लोकमें, श्रमण-ब्राह्मण-देव-मनुष्य (सहित) जनतामें यह अग्र (= सर्वोपरि) महाचोर है, जो कि अविद्यमान, अ-सत्य उत्तर-मनुष्य-धर्म (=दिव्य शक्ति) को बखानता है । सो किस लिये ? भिक्षुओ ! चोरीसे (उसने) राष्ट्र-पिंड (राष्ट्रके अन्न) को खाया ।—

'अपने दूसरी प्रकार होते (जो) अपनेको दूसरी प्रकार प्रकट करे ।
उसका यह, जुआरीकी तरह ठगकर, चोरीसे खाना हुआ ।
कंठमें काषाय डाले बहुतसे ऐसे असंयमी पाप-धर्मी हैं;
वह पापी पाप कर्मोंसे नर्कमें उत्पन्न होते हैं ।

जो दुःशील असंयमी (मनुष्य) राष्ट्र-पिंडको खाये, इससे आगकी लौकी तरह दह-कते लोहेके गोलेका खाना अच्छा है ।' तब भगवान् वग्गुमुदा तीरके भिक्षुओंको अनेक प्रकारसे धिक्कार कर…।…

'इस प्रकार भिक्षुओ ! इस शिक्षापदको उद्देश (= पठन, धारण,) करना—

"जो भिक्षु अविद्यमान (= अन्-अभिज्ञात) उत्तर-मनुष्य-धर्म = अलम्-आर्य-ज्ञान-दर्शनको अपनेमें वर्तमान कहता है—'ऐसा जानता हूँ' = 'ऐसा देखता हूँ' । तब दूसरे समय पूछे जाने पर या न पूछे जाने पर, बद्-आपत्ति (=आपन्न) हो, या विशुद्धापेक्षी हो (कहे)—आवुस ! न जानते 'जानता हूँ' कहा, न देखते 'देखता हूँ' कहा, तुच्छ = मृषा (=झूठ) ऐसे कहा । वह पाराजिक अ-संवास होता है, [1]अभिमानसे यदि न (कहा) हो ।'…

उत्तर-मनुष्य धर्म=(१) ध्यान, (२) विमोक्ष, (३) समाधि, (४) समापत्ति, (५) ज्ञान-दर्शन, (६) मार्ग-भावना, (७) फल-साक्षात्कार, (८) क्लेश-प्रहाण (९) चित्तविवरणता, (१०) चित्तका शून्यागारमें अभिरति (=अनुराग) ।…अलम्-आर्य-ज्ञान=सीम विद्याएँ = दर्शन । जो ज्ञान है वही दर्शन है, जो दर्शन है वही ज्ञान है ।…

---

१. वस्तु प्राप्त कर लेने पर 'मैंने पा लिया' समझना, कहना, अभिमान कहा जाता है।

विशुद्धापेक्षी=गृही होनेकी इच्छासे, या उपासक होनेकी इच्छासे, या आरामिक (= आराम-सेवक) होनेकी इच्छासे, या श्रामणेर होनेकी इच्छासे।···

ध्यान=(१) प्रथमध्यान, (२) द्वितीयध्यान, (३) तृतीयध्यान, (४) चतुर्थध्यान।

विमोक्ष = (१) शून्यता-विमोक्ष, (२, अनिमित्त-विमोक्ष, (३) अ-प्रणिहित-विमोक्ष।

समाधि=(१) शून्यता-समाधि, (२) अनिमित्त०, (३) अप्रणहित०।

समापत्ति=(१) शून्यता-समापत्ति, (२) अनिमित्त० (३) अप्रणिहित०।

ज्ञान = तीन विद्यायें।

मार्ग-भावना=(१) चार स्मृति-प्रस्थान, (२) चार सम्यक्-प्रधान (३) चार ऋद्धिपाद, (४) पाँच इन्द्रिय, (५) पाँच बल, (६) सात बोध्यंग, (७) आर्य-अष्टांगिक मार्ग।

फल-साक्षात्कार=(१) स्रोत आपत्ति फलका साक्षात् करना, (२) सकृद् आगामी०, (३) अनागामी०, (४) अर्हत्०।

क्लेश-प्रहाण = (१) रागका प्रहाण (= विनाश) (२) द्वेष-प्रहाण, (३) मोह-प्रहाण।

विनीवरणता=(१) रागसे चित्तकी विनीवरणता (=शुद्धि) (२) द्वेषसे चित्त-विनीवरणता, (३) मोहसे चित्त-विनीवरणता।

शून्यागारमें अभिरति = (१) प्रथमध्यानसे शून्य स्थानमें संतोष (२) द्वितीयध्यानसे० (३) तृतीयध्यानसे०, (४) चतुर्थध्यानसे०,

---

चतुर्थ—खण्ड

आयु-वर्ष ५५—७५

(ई. पू. ५०८–४८८)

चतुर्थ खण्ड

(१)

चीवर-विषय । विशाखा-चरित । विशाखाको आठ वर । (ई. पू. ५०८)

तब वैशालीमें यथेच्छ विहारकर भगवान् जिधर वाराणसी (=बनारस) थी, उधर चारिकाके लिये चले । क्रमशः चारिका करते जहाँ वाराणसी थी, वहाँ पहुँचे । वहाँ वाराणसी में भगवान् ऋषिपतन मृगदावमें विहार करते थे ।

उस समय एक भिक्षुके-अन्तर्वासक (= लुंगी) में छिद्र था । तब उस भिक्षुको यह हुआ—भगवान्ने तीन चीवरोंकी अनुज्ञा दी है (१) दोहरी संघाटी, (२) एकहरा उत्तरासंग, (३) एकहरा अन्तर्वासक । यह मेरा अन्तर्वासक छेदवाला है, क्यों न मैं पेंवद (= अग्गल) लगाऊँ, चारों ओर दोहरा होगा, बीचमें एकहरा । तब वह भिक्षु पेंवँद लगाने लगा । भगवान्ने शयनासन-चारिका (= मठ देखनेके लिये घूमना) करते, उस भिक्षुको पेवँद लगाते देखा । देखकर जहाँ वह भिक्षु था, वहाँ गये । जाकर उस भिक्षुसे यह बोले —

"भिक्षु ! तू क्या कर रहा है ?"

"भगवान् ! पेवँद लगा रहा हूँ ।

"साधु, साधु भिक्षु ! अच्छा है, भिक्षु ! तू पेवँद लगा रहा है ।"

तब भगवान्ने इसी निदान=इसी प्रकरणमें, धार्मिक-कथा कह, भिक्षुओंको संबोधित किया—

"अनुज्ञा करता हूँ भिक्षुओ ! नये कपड़े या नये जैसे कपड़ेकी दोहरी संघाटी, एकहरे उत्तरासंग, एकहरे अन्तर्वासक की । पुराने कपड़ेकी चौहरी संघाटी, दोहरे उत्तरासंग और दोहरे अन्तर्वासक; पांसुकूल (= फेंके चीथड़े) में यथेच्छ । बाजारी टुकड़ोंको खोजना चाहिये । भिक्षुओ ! बटे या बुने पेवँद, (सीनेकी) सुंदरी, और दड्ढकर्म (=रफू) करनेकी अनुज्ञा करता हूँ ।"

तब वाराणसीमें इच्छानुसार विहारकर भगवान् जहाँ श्रावस्ती थी, वहाँ चारिकाके लिये चले । क्रमशः चारिका करते जहाँ श्रावस्ती थी, वहाँ पहुँचे । वहाँ भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ-पिंडकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

तब [1]विशाखा मिगारमाता जहाँ भगवान् थे वहाँ आई, आकर, भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गई । एक ओर बैठी विशाखा मिगार-माताको भगवान्ने धार्मिक-

---

१. अ. नि. अ. क. १: ७: २ । (देखो टिप्पणी पृष्ठ १४१-१४२) ।—

विशाखा चरित "श्रावस्तीसे कोसल-राजाने बिंबसारके पास (पत्र) भेजा—'मेरे आज्ञावर्ती देशमें अमित-भोग-वाला कुल नहीं है, हमारे लिये एक अमित-भोग कुल भेजो' । राजाने अमात्योंके साथ सलाह की । अमात्योंने "महाकुलको नहीं भेजा जा सकता, एक

कथासे···समुत्तेजित, संप्रशंसित किया । तब···विशाखा मृगार-माताने भगवान्‌को यह कहा—

श्रेष्ठि-पुत्रको भेजें ।'' कह, मेंडक श्रेष्ठिके पुत्र धनंजय सेठका (नाम) लिया । राजाने उनके वचनको सुनकर, उसे (धनंजय सेठको) भेजा । तब कोसल-राजाने श्रावस्तीसे सात योजनके ऊपर, साकेत नगरमें उसे श्रेष्ठीका पद देकर बसा दिया ।

श्रावस्तीमें मृगार-श्रेष्ठीका पुत्र पूर्णवर्द्धन कुमार वयःप्राप्त (=जवान) था, तब उसके पिताने—'मेरा पुत्र वयःप्राप्त है, अब गृहस्थके बंधनमें बाँधनेका समय है'—सोच, —'हमारे समान जाति-कुलकी कन्या खोजो'—(कह), कारण अकारण-जाननेमें कुशल पुरुषोंको भेजा । वह श्रावस्तीमें अपनी रुचिकी कन्याको न देख, साकेत (= अयोध्या) गये । उस दिन विशाखा अपनी समवयस्का पाँच सौ कुमारियोंके साथ, उत्सव मनानेके लिये एक महावापी पर गई थी । वह पुरुष भी नगरके भीतर अपनी रुचिकी कन्या न देख, बाहर नगरके द्वारपर खड़े थे । उसी समय पानी बरसना शुरू हुआ । तब विशाखाके साथ गई कन्यायें, भीगनेके डरसे वेगसे दौड़कर शालामें घुस गईं । उन पुरुषोंने उन (कन्याओं) में भी किसीको अपनी रुचिके अनुसार न देखा । उन सबके पीछे विशाखा, मेघ बरसनेकी पर्वाह न कर मन्दगतिसे भीगती हुई शालामें प्रविष्ट हुई । उन पुरुषोंने उसे देख सोचा—"दूसरी भी इतनी ही रूपवतियाँ होंगी । रूप किसी किसीका पके नारियल (=करक फल) की तरह भी होता है । बात चलाकर जानें, कि मधुर-वचना है । या नहीं" बोले—

"अम्म ! तू बड़ी-बूढ़ी स्त्रीकी तरह मालूम होती है ?"

"तातो ! क्या देखकर (ऐसा) कहते हो ?"

"तेरे साथ खेलनेवाली दूसरी कुमारियाँ भीगनेके भयसे जल्दीसे आकर शालामें घुस गईं, और तू बुढ़ियाकी तरह चलना छोड़कर नहीं आती, साड़ी भीगनेकी भी पर्वाह नहीं करती । यदि हाथी या घोड़ा पीछा करे, तो भी क्या ऐसा ही करेगी ?"

"तातो ! साड़ियाँ दुर्लभ नहीं हैं, मेरे कुलमें साड़ियाँ सुलभ हैं । तरुण-स्त्री (=वयः-प्राप्त-मातृग्राम) बिकाऊ बर्तनकी तरह है ; हाथ या पैर टूटनेपर, विकल-अंगवाली स्त्रीसे (लोग) घृणा करते (हैं), (और) नहीं पसन्द करते । इसलिये धीरे-धीरे आई हूँ ।

उन्होंने—"जम्बूद्वीपमें इसके समान स्त्री नहीं है । रूपमें जैसी, मधुर-भाषणमें भी वैसीही है । कारण-अकारणको जानकर कहती है ।"—(सोच) उसके ऊपर घुँघराला माला फेंकी । तब विशाखा—"मैं पहिले अपरिगृहीत (=सगाई बिना) थी, अब परिगृहीत हूँ"— (सोच) विनय-सहित भूमिपर बैठ गई । तब उसे वहीं कनातसे घेर दिया । वह दासीगण-सहित घर गई ।

मृगार-श्रेष्ठीके आदमी भी उन्हींके साथ धनंजय-श्रेष्ठीके घर गये ।

"तातो ! तुम किस गाँवके रहनेवाले हो ?"

"हम श्रावस्ती नगरके मृगार-श्रेष्ठीके आदमी हैं ।···तुम्हारे घरमें वयःप्राप्त कन्या है, सुनकर हमारे सेठने हमें भेजा है ।"

"अच्छा, तातो ! तुम्हारा सेठ धनमें हमारे सदृश ही समान है, किन्तु जातिमें

बराबर है । सब तरहसे समान तो मिलना मुश्किल है जाओ सेठको हमारी स्वीकृतिकी बात कहो ।"

उन्होंने उसकी बात सुनकर, श्रावस्ती जा, मृगार-श्रेष्ठीको तुष्टि और वृद्धि निवेदन-कर—'स्वामी ! हमें साकेतमें धनंजय श्रेष्ठीके घरमें कन्या मिली है'—कहा । उसको सुन-कर मृगार सेठने—'महाकुल-घरमें हमें कन्या मिली' (जान), संतुष्ट चित्त हो उसी समय धनंजय श्रेष्ठीको पत्र (=शासन) भेजा—"इसी समय हम कन्याको लावेंगे, प्रबन्ध करना हो सो करें ।" उसने भी उत्तर (=प्रतिशासन) भेजा—यह हमारे लिये भारी नहीं है, श्रेष्ठी अपना प्रबन्ध करना हो सो करें ।"

उस (=मृगार सेठ)ने कोशल-राजाके पास जाकर कहा—

"देव ! मेरे यहाँ एक मंगल काम है । आपके दास पुण्ड्र-वर्धनके लिये धनंजय-श्रेष्ठी की कन्या विशाखाको लाने जाना है, मुझे साकेत नगर जानेकी आज्ञा दें ।"

"अच्छा महाश्रेष्ठी ! क्या हमें भी चलना है ?"

"देव ! तुम्हारे जैसोंका जाना कहाँ मिल सकता है ?' राजा, महाकुल-पुत्रको संतुष्ट करनेकी इच्छासे 'श्रेष्ठी ! मैं भी चलूँगा'—स्वीकार कर मृगार सेठके साथ साकेत-नगर गया । धनंजय सेठ—'मृगार सेठ कोशल-राजाको लेकर आता है' सुन अगवानी कर, राजाको अपने घर ले गया । उसी समय राजा प्रसेनजित् कोसल, राज-बल (=राजाके नौकर-चाकर आदि) और मृगार सेठके लिये वास-स्थान और माला, गंध, वस्त्र, आदि उपस्थित किये । 'यह इसको मिलना चाहिये' 'यह इसको मिलना चाहिये', यह श्रेष्ठी सब स्वयं जानता था । प्रत्येक आदमी सोचता था—श्रेष्ठी हमाराही सत्कार कर रहा है ।

तब एक दिन राजाने धनंजय सेठको शासन (=पत्र) भेजा—

"चिरकाल तक श्रेष्ठी हमारा भरण-पोषण नहीं कर सकते, कन्याकी बिदाईका समय बतलावें ।

उसने भी राजाको शासन भेजा—

"इस समय वर्षाकाल आगया, चार मास चलना नहीं हो सकता । आपके बल-काय (=लोग-बाग) को जो जो चाहिये, यह सब भार मेरे ऊपर है, देव ! मेरे भेजनेपर जाँये ।"

तबसे साकेत नगर, नित्य महोत्सववाला गाँव होगया । इसी प्रकार तीन मास व्यतीत हुये । धनंजय सेठकी लड़कीका महालता आभूषण तब तक भी तय्यार न हुआ था । उसके कारपदाज (=कम्मन्ताधिट्ठायक) आकर बोले—

"और तो किसी की कमी नहीं है, किन्तु बलकायके भोजन बनानेके लिये लकड़ी पूरी नहीं है ।"

'तातो ! जाओ हस्तिशाला, अश्वशाला, गोशाला उजाड़कर भोजन पकाओ ?"

ऐसे पकाते भी आध महीना बीता । उन्होंने फिर कहा—

"स्वामी ! लकड़ी पूरी नहीं पड़ती ।"

"तातो ! इस समय लकड़ी नहीं मिल सकती । कपड़ेके गोदाम (=दुस्स-कोट्ठागार) खोलकर मोटी मोटी साड़ियों (= साटक)को लेकर बत्ती बना तेलमें भिगो भोजन पकाओ ।"

इस प्रकार पकाते हुये चार मास पूरा हुये। तब धनंजय सेठने कन्याके महालता प्रसाधनको तय्यार जानकर—'कल कन्याको भेजूँगा'—(सोच) कन्याको पासमें बैठा—'अम्म, पतिकुलमें वास करनेके लिये यह यह आचार सीखना चाहिये'—उपदेश देने लगा। मृगार सेठ भी घरके भीतर बैठे धनंजय सेठके उपदेशको सुनता रहा। धनंजय सेठ बोला—

"अम्म! श्वसुर-कुलमें वास करते (१) भीतरकी आग बाहर न ले जानी चाहिये, (२) बाहरकी आग भीतर न ले जानी चाहिये। (३) देते हुयेको देना चाहिये, (४) न देते हुये को न देना चाहिये। (५) देते हुये, न देते हुयेको भी देना चाहिये। (६) सुखसे बैठना चाहिये। (७) सुखसे खाना चाहिये। (८) सुखसे लेटना चाहिये। (९) अग्नि-परिचरण करना चाहिये। (१०) भीतरके देवताओंको नमस्कार करना चाहिये।"

इन दस प्रकारके उपदेशोंको दे, सभी श्रेणियों (=वणिक्-सभाओं)को जमाकर राजसेनाके बीचमें आठ कुटुम्बियों (=पंचों) की जामिन (=प्रतिभोग) लेकर—'यदि गये स्थान पर मेरी कन्याका अपराध हो तो तुम परिशोध करना"—कह नव करोड़ मूल्यके महालता आभूषणसे कन्याको आभूषित कर, स्नान-चूर्णके मूल्यके लिये चौवन सौ (=५४००) गाड़ी धन दे कन्याके साथ अनुरक्त पाँच सौ दासियाँ, पाँच सौ उत्तम (=आजन्य) रथ, और सब सत्कार सौ सौ दे, कोसल-राजा और मृगार सेठको विसर्जित (किया)।"।

विशाखाने (श्रावस्ती) नगरके द्वार पर पहुँचनेके समय सोचा—ढँके यानमें बैठ कर, नगरमें प्रवेश करूँ, या रथ पर खड़ी हो कर। तब उसको यह हुआ—ढँके यानमें बैठ कर प्रवेश करने पर महालता-प्रसाधनकी विशेषता न जान पड़ेगी। इस लिये वह सारे नगर को अपनेको दिखाती रथपर बैठ नगरमें प्रविष्ट हुई। श्रावस्ती वासियोंने विशाखाको देखकर कहा—

"यही विशाखा है। यह रूप और यह संपत्ति इसीके योग्य है।"

इस प्रकार वह महान् ऐश्वर्यके साथ मृगार सेठके घरमें प्रविष्ट हुई।

आनेके दिनही सारे नगरवासियोंने—'धनंजय सेठने अपने नगरमें आनेपर, हमारा बड़ा सत्कार किया—(सोच) यथाशक्ति = यथाबल भेंट भेजी। विशाखाने भेजी हुई सभी भेंटें उसी नगरमें एक दूसरे कुलोंमें बटवा (= सर्वाधिक) दे दिया। तब उसके आनेकी रात के ही भागमें, एक आजन्य (= उत्तम घोड़ी) घोड़ीको गर्भ-वेदना हुई। तब दासियोंके दंडदीपिका (= मशाल) ग्रहण करवा वहाँ जा घोड़ीको गर्म पानीसे नहलवा, तेलसे मालिश करवा, अपने वासमें गई।

मृगार सेठने भी एक सप्ताह (तक) पुत्रका विवाह-सत्कार (= उत्सव) करते, पुर-विहार (=निरन्तर विहार करनेके स्थान)में बसते हुये तथागतको मानो न कर, सातवें दिन सब घरको भरते नंगे श्रमणोंको बैठा कर विशाखाके पास सन्देश भेजा—

"आवे मेरी कन्या, अर्हत् भगवानोंकी वन्दना करे।"

वह स्रोत-आपन्न आर्य-श्राविका 'अर्हत्' शब्द सुन हृष्ट-तुष्ट हो, उनके बैठनेकी जगह आ, उन्हें देख—'ऐसे भी अर्हत् होते हैं! मेरे श्वसुरने इन लज्जा-संकोच-विरहितोंके पास मुझे

क्यों बुलवाया ?' (कह), 'धिक्-धिक् !' से धिक्कारकर, अपने वास-स्थानको चली गई। नग्न श्रमणोंने उसे देखकर एकबारगी सेठको धिक्कारा—

"गृहपति ! क्या तुझे दूसरी कन्या नहीं मिली ? श्रमण गौतम की श्राविका (इस) महाकुलक्षणा (=महाकालकर्णी) को क्यों इस घरमें प्रविष्ट किया ? इसे इस घरसे जल्दी निकाल।"

तब सेठने—'इनकी बातसे इसे घरसे नहीं निकाल सकते, महाकुलकी कन्या है'—सोच, "आचार्यो ! बच्चे जो जान या बेजान करें, तो आप लोग क्षमा करें।" कह नंगोंको विदाकर, बड़े आसन पर बैठ, सोनेकी करछी ले सोनेकी थालीमें परोसा जाता निर्जल मधुर खीर भोजन करने लगा। उसी समय एक पिंडचारी स्थविर (भिक्षु) पिंड-चार करते सेठके द्वारपर पहुँचा। विशाखा उसे देख, 'श्वसुरको कहना उचित नहीं' सोच, जैसे वह स्थविरको देख सके, वैसे हटकर खड़ी हो गई। वह बाल (=मूर्ख) स्थविरको देखकर भी नहीं देखता हुआ सा हो, नीचे मुँहकर, पायस खाता रहा। विशाखाने—मेरा श्वशुर स्थविरको देखकर भी इशारा नहीं करता है—जान, स्थविरके पास जा—'आगे जाइये भन्ते ! मेरा ससुर पुराना खा रहा है'—बोली।

मृगार तो 'निगंठों' (=जैन साधुओं) के कहनेके समयहीसे (बुरा) मान गया था; 'पुराना खा रहा है' सुनते ही भोजनपरसे हाथ खींचकर (भृत्योंसे) बोला—

'इस पायसको यहाँसे ले जाओ, इसे भी इस घरसे निकालो। यह मुझे ऐसे मंगल घरमें अशुचि-खादक बना रही है।"

उस घरमें सभी दास-कर्मकर विशाखाके अधिकारमें थे, हाथ और पैरसे पकड़नेकी तो दूर मुखमे भी कोई न बोल सकता था। तब विशाखा ससुरकी बात सुनकर बोली—

"तात ! मैं इतने वचनसे नहीं निकलती। तुम मुझे पनघटसे कुम्भदासी (=पनभरनी दासी) की तरह नहीं लाये हो। जीते माता-पिताकी कन्यायें इतनेसे नहीं निकला करतीं। इसी कारण मेरे पिताने यहाँ आनेके दिन आठ कुटुम्बिकोंको बुलाकर—'यदि मेरी कन्याका अपराध हो तो तुम शोध करना' कहकर, उनके हाथमें सौंपा था। उनको बुलवाकर मेरे दोपा-दोषकी शोध करो।"

सेठने—'यह अच्छा कह रही है',—(सोच), आठों कुटुंबिकों (पंचों) को बुलवाकर—'यह लड़की सातवें दिनके पूरा होनेसे भी पहले, मंगल घरमें बैठे मुझे अशुचि-खादक कहती है ?'—कहा।

"अम्म ! क्या ऐसा (कहा) ?"

"तातो ! मेरा ससुर अशुचि-खादक (होना) चाहता होगा, मैंने तो इस प्रकार नहीं कहा। एक पिंडपातिक (मधूकरी माँगनेवाले) स्थविरके घरके द्वारपर खड़े होनेपर (भी) यह निर्जल पायस खाते थे; उसका ख्याल न करते थे। मैंने इस कारण—भन्ते ! आगे जाँय, मेरा ससुर इस शरीरमें पुण्य नहीं करता, पुराने पुण्यको खा रहा है—इतना मात्र कहा।"

"आर्य ! यह दोष नहीं है, हमारी बेटी कारण बतलाती है, कि तुम क्यों केवल खाते हो।"

"आर्यो ! यह दोष न सही, यह लड़की आनेके दिन ही मेरे पुत्रका ख्याल न कर अपनी ज्ञातिके स्थानपर चली गई।"

"अम्म ! क्या ऐसा है ?"

"तातो ! अपनी ज्ञातिके स्थानपर मैं नहीं गई। इसी घरमें आजन्य घोड़ीके जननेका ख्याल न कर, बैठे रहना अनुचित था, इसलिये मशाल लिवाकर दासियोंके साथ वहाँ जाकर मैंने घोड़ीका प्रसव-उपचार करवाया।"

"आर्य ! हमारी बेटीने तुम्हारे घरमें दासियोंके भी न करनेका काम किया, तुम यहाँ क्या दोष देखते हो ?"

"आर्यो ! यह चाहे गुण हो। इसके पिताने यहाँ आनेके दिन, उपदेश देते 'घरकी आग बाहर न ले जानी चाहिये' कहा। क्या दोनों ओर पड़ोसियोंके घर बिना आगके रह सकते हैं ?"

"अम्म ! ऐसा है ?"

"तातो ! मेरे पिताने इस आगको लेकर नहीं कहा था। बल्कि जो घरके भीतर सासु आदि स्त्रियोंकी गुप्त बात पैदा होती है, वह दास-दासियोंको नहीं कहनी चाहिये। ऐसी बात बढ़कर कलह कराती है, इसका ख्यालकर, तातो ! मेरे पिताने कहा था।"

"आर्यो ! यह भी चाहे (दोष न) हो, इसके पिताने—'बाहरसे आग भीतर न लानी चाहिये'—कहा, क्या भीतर आग बुझ जानेपर, बाहरसे आग लाये बिना (काम) चल सकता है ?"

"अम्म ! ऐसा ?"

"तातो ! मेरे पिताने इस आगको लेकर नहीं कहा था। बल्कि, जो दोष दास कर्म-कर कहते हैं, उसे भीतरके आदमियोंको नहीं कहना चाहिये।"

"...'देते हैं उन्हींको देना चाहिये'—यह जो कहा वह मँगनीकी चीजका ख्याल करके...कहा।"

"...जो नहीं देते हैं, यह भी मँगनीको लेकर, 'जो नहीं लौटाते उन्हें न देना चाहिये' ख्यालकर कहा।"

"'देनेवालेको भी न देनेवालेको भी देना चाहिये' यह गरीब, अमीर जाति मित्रोंको, चाहे वह प्रतिदान (=बदलेमें देना) कर सकें या नहीं, देनाही चाहिये' इसका ख्याल करके कहा।"

"'सुखसे बैठना चाहिये' यह भी सास-ससुरको देखकर उठनेके स्थानपर बैठना नहीं चाहिये', ख्याल करके कहा।"

"'सुखसे खाना चाहिये'—यह भी सास-ससुर-स्वामीके भोजन करनेसे पहिले ही भोजन न कर, उनको परोसकर सबको मिले न मिलेका ध्यान जानकर, पीछे स्वयं भोजन करना चाहिये' ख्याल करके कहा।"

"...'सुखसे सोना चाहिये'—यह भी सास-ससुर-स्वामीसे पहिले बिस्तरे पर न

लेटना चाहिये, उनके लिये करने योग्य सेवा-टहल (=व्रत-प्रव्रत) करके, तब स्वयं लेटना उचित है, यह ख्याल कर कहा।"

"अग्नि-परिचरण करना चाहिये'—यह 'अम्म ! सास-ससुर-स्वामीको अग्नि-पुञ्जकी भाँति, नाग-राजकी भाँति देखना चाहिये'—ख्यालकर कहा।"

'यह इतने सब चाहे गुण होवें; इसका पिता 'भीतरके देवताओंको नमस्कार' करवाता है, इसका क्या अर्थ है ?"

"ऐसा, अम्म ?"

"हाँ, तातो ! यह भी मेरे पिताने यही ख्याल करके कहा—'अम्म ! परम्परागत गृहस्थ (आश्रम)-वाससे लेकर अपने घर-द्वारपर आये प्रव्रजितको देखकर, जो घरमें खाद्य-भोज्य हो, उसमेंसे प्रव्रजितों (=सन्यासियों) को देकर ही खाना चाहिये।"

तब उन्होंने उस (मृगार सेठ) को कहा—

"महाश्रेष्ठी ! तुझे मालूम होता है, प्रव्रजितको देखकर न देना ही पसन्द है ?"

वह दूसरा उत्तर न देख, नीचे मुखकर बैठ रहा। तब कुटुम्बियोंने पूछा—

"क्या श्रेष्ठी ! और भी हमारी बेटीका कोई दोष है ?"

"आर्यो, नहीं !"

"तो क्यों इसे निर्दोष अ-कारण घरसे निकलवाते थे ?"

"उस समय विशाखाने कहा—पहिले अपने ससुरके कहनेसे मेरा जाना उचित न था। मेरे आनेके दिन मेरे पिताने दोषादोष शोधनेके लिये (मुझे) तुम्हारे हाथ सौंपा था। लेकिन अब मेरा जाना उचित है' कह, दासी दासोंको "सवारियाँ तय्यार करो" कहा।

तब सेठने उन कुटुम्बियोंको लेकर कहा—"अम्म ! मैंने अनजाने कहा था, मुझे क्षमा कर।"

"तात ! क्षमा करती हूँ, तुम्हारा क्षंतव्य (दोष) क्षमा करती हूँ। परन्तु मैं बुद्ध-धर्ममें अत्यन्त अनुरक्त कुलकी कन्या हूँ, हम भिक्षु-संघ (की सेवा) के विना नहीं रह सकते। यदि अपनी रुचिके अनुसार भिक्षु-संघकी सेवा करने पाऊँ, तो रहूँगी।"

"अम्म ! तू यथा-रुचि अपने श्रमणों की सेवा कर।"

तब विशाखाने दश-बल (=बुद्ध) को निमंत्रित कर, दूसरे दिन घरको भरते हुये, बुद्ध-प्रमुख भिक्षु संघको बैठाया। नंगोंकी जमात (=नग्न-परिषद्) भी भगवान्‌के मृगार-सेठके घर जानेकी बात सुन वहाँ जाकर घरको घेरकर बैठी। विशाखाने दानका जल (= दक्षिणोदक) दे, शासन (= संदेश) भेजा—'सब सत्कार होगया, मेरे ससुर आकर दश-बलको परोसें'। उसने—'निगंठोंकी बात सुनकर मेरी बेटी 'सम्यक् संबुद्धको परोसें' कह रही है। विशाखाने भोजन समाप्त हो जानेपर, फिर शासन भेजा—'मेरे ससुर आकर दश-बलका धर्म-उपदेश सुनें।' तब 'अब न जाना बहुतही अनुचित होगा, (सोचकर) जाते हुये उसे नग्न श्रमणोंने कहा-'श्रमण गौतमका धर्म-उपदेश कनातके बाहरही रहकर सुनना'। मृगारसेठ आकर, कनातके बाहरही बैठा। तथागतने—'तू (चाहे, कनातके बाहर बैठ (चाहे) भीतकी आड़में या पहाड़की आड़में या चक्रवालके पार बैठे; मैं बुद्ध हूँ, तुझे अपना

"भन्ते ! भिक्षु संघके साथ भगवान् मेरा कलका भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया। तब विशाखा मृगार-माता भगवान्‌की स्वीकृति जान, आसनसे उठ भगवान्‌को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर चली गई। उस समय उस रातके बीतने पर, चारों द्वीपवाला महामेघ बरसा। तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ ! यह जैसे जेत-वनमें बरस रहा है, वैसेही (यह) चारों द्वीपोंमें बरस रहा है, भिक्षुओ ! वर्षा स्नान करो, यह अंतिम चातुर्द्वीपिक महामेघ है।"

"अच्छा भन्ते !" कह भिक्षु भगवान्‌को उत्तर दे, चीवरको अलग कर, शरीरसे वर्षा-स्नान करने लगे। तब विशाखा मृगार-माताने उत्तम खाद्य भोज्य तैयार कर, दासीको आज्ञा दिया—

"जे ! जा, आराममें जाकर काल सूचित कर—(भोजनका) काल है, भन्ते ! भोजन तय्यार होगया।"

"अच्छा आर्ये !" कह... उस दासीने आराममें जा, उन भिक्षुओंको चीवर फेंक, वर्षा-स्नान करते देखा। देखकर—'आराममें भिक्षु नहीं हैं, आजीवक वर्षा स्नान कर रहे हैं' (सोच) जहाँ विशाखा मृगार-माता थी, वहाँ गई; जाकर विशाखाको कहा—

"आर्ये ! आराममें भिक्षु नहीं हैं, आजीवक वर्षा-स्नान कर रहे हैं।"

तब पंडिता=व्यक्त मेधाविनी विशाखाको यह हुआ—'निःसंशय आर्य चीवरको छोड़ वर्षा-स्नान कर रहे हैं, सो इस बाला (=मूर्ख) ने समझा—आराममें भिक्षु नहीं हैं०।' फिर दासीको कहा—'जे जा०।' तब वह भिक्षु गात्रको ठंढाकर... चीवरले, अपने अपने विहारों (=कोठरियों) में चले गये थे। तब उस दासीने आराममें जा, भिक्षुओंको न देख—'आराममें भिक्षु नहीं हैं, आराम सूना है।' (सोच)...जाकर विशाखा...को कहा—

"आर्ये ! आराममें भिक्षु नहीं हैं, आराम शून्य है।"

तब पंडिता=मेधाविनी विशाखाको यह हुआ—'निःसंशय आर्य गात्रको ठंढा कर...चीवरले अपने अपने विहारमें चले गये। सो इस बालाने समझा—'आराममें भिक्षु नहीं हैं'। फिर दासीको कहा—"जे ! जा०।"

तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको कहा—

"भिक्षुओ ! पात्र-चीवर तय्यार करो, भोजनका समय है।

"अच्छा भन्ते !"........

तब भगवान् पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्र-चीवरले, जैसे बलवान् पुरुष समेटी बाँहको फैलावे, फैली बाँहको समेटे, वैसे ही (अन्तर्धान) जेतवनमें अन्तर्धान हो, विशाखा मृगार-

---

उसे सुना सकता हूँ।' (सोच) मृगारने, पहले, वहीं बैठे बैठे भगवान्‌की वाणी सुनकर ... धर्म-उपदेश किया। उपदेशके समाप्त होनेपर सेठने स्रोतआपत्तिफलमें स्थित हो, भगवान्‌को हाथ जोड़ पाँवों (भगों) को (मुखमें) प्रतिष्ठितकर शास्ताके पैरोंको चूमकर, शास्ताके सामने ही—'अम्ब ! तू आजसे मेरी माता है' कह, विशाखाको माताके स्थानपर प्रतिष्ठित किया। तबसे विशाखा 'मृगार-माता' नामवाली हुई।

माताके कोठेपर प्रादुर्भूत हुये। भिक्षु-संघके साथ भगवान् बिछे आसनपर बैठे। तब **विशाखा मृगारमाताने**—'आश्चर्य रे! अद्भुत रे!! तथागतकी महाऋद्धिमत्ता=महानुभावता जो जाँघभर''', कमर भर पानीकी बाढ़ होनेपर भी एक भिक्षुका पैर या चीवर भी नहीं भीगा है—हृष्ट=उदग्र हो बुद्ध-प्रमुख भिक्षुसंघको, उत्तम खाद्य भोज्यसे अपने हाथ सन्त-र्पित संप्रवारित कर, भगवान्‌को भोजन करा, भगवान्‌के भोजनकर, पात्रसे हाथ हटा लेनेपर एक ओर बैठ गई। एक ओर बैठी हुई विशाखा मृगार-माताने भगवान्‌से कहा—

"भन्ते! मैं भगवान्‌से (कुछ) वरोंको माँगती हूँ।"

"विशाखे! तथागत वरोंसे परे हैं।"

"जो भन्ते! कल्प्य हैं=निर्दोष हैं।"

"बोल, विशाखे!"

"भन्ते! मैं संघको यावत्-जीवन वर्षाकी लुङ्गी (=वस्सिक-साटी) देना चाहती हूँ, आगन्तुक (=नवागत)को भोजन देना०, यात्रापर जानेवाले (=गमिक)को भोजन०, रोगीको भोजन०, रोगीपरिचारकको भोजन०, रोगीको औषध०, सर्वदा यागू (=खिचड़ी)०, और भिक्षुणी-संघको उदक साटी (=ऋतुमतीका कपड़ा) देना०।"

"विशाखे! तू किस कारणसे तथागतसे आठ वर माँगती है?"

"भन्ते! मैंने दासीको आज्ञा दी—'जे! आराम जाकर कालकी सूचना दे, काल है भन्ते! भोजन तय्यार है'। तब भन्ते! वह आकर मुझसे बोली—'आर्ये! आराममें भिक्षु नहीं हैं, आजीवक शरीरसे वर्षा-स्नान कर रहे हैं। भन्ते! नंगापन गंदा, घृणित, विरुद्ध (मल) है, इस कारणको देख, भन्ते! संघको यावज्जीवन वार्षिक-शाटी देना चाहती हूँ। और फिर भन्ते! आगन्तुक (=नवागत) भिक्षु गली, और गन्तव्य स्थानसे अपरिचित हो थके-माँदे पिंडचार करते हैं। वह मेरा आगन्तुक-भोजन ग्रहणकर वीथि-कुशल, गोचर-कुशल, थकावट-रहित हो पिंडचार करेंगे०। और फिर भन्ते! गमिक भिक्षु अपने भोजनकी तलाशमें भगवान्‌का साथ छोड़ देते हैं, या जहाँ मंजिल करना है, वहाँ विकालमें थके रास्ता जाते हैं। यह मेरा गमिक भात भोजनकर भगवान्‌को न छोड़ेंगे, या जहाँ टिकान करना है, वहाँ कालसे पहुँचेंगे, अ-क्लान्त हो रास्तेमें जायेंगे०। और फिर भन्ते! रोगीको अनुकूल भोजन न मिलनेसे रोग बढ़ता है, या मरण होता है, मेरे ग्लान-भक्त (=रोगि-भोजन)को भोजन करनेसे न उसका रोग बढ़ेगा, न मरण होगा०। और फिर भन्ते! रोगिपरिचारक भिक्षु अपने भोजनके प्रबंधमें रोगीको देरसे भात लाते हैं (या) उपवास (=भक्तच्छेद) पड़ जाते हैं०। और फिर भन्ते! रोगी भिक्षुको अनुकूल औषध न पानेसे रोग बढ़ता है, या मरण होता है०। और फिर भन्ते! भगवान्‌ने 'अन्धकविन्दमें[1] दस गुण देख यवागू (=पतली खिचड़ी) की अनुज्ञाकी थी। उन गुणोंको देखती हुई, मैं जीवन भर संघको निरन्तर (=ध्रुव) यवागू देना चाहती हूँ। भन्ते! (एक समय) भिक्षुणियाँ अचिरवती नदीमें वेश्याओंके साथ नंगी एक घाट (=तीर्थ)पर नहाती थीं। भन्ते! वेश्यायें भिक्षुणियोंको बात मारती थीं—'क्या है, अय्या! तरुणी तरुणी तुम लोगोंको ब्रह्मचर्य-सेवनमें। (अभी)

---

१. राजगृहके पास कोई गाँव था।

कामोंको भोगो, जब बुढ़ी होना तो ब्रह्मचर्य सेवन करना। इस प्रकार तुम्हें (दोनों) अर्थ प्राप्त होंगे।' सो वह भिक्षुणियाँ वेश्याओंके बात मारनेसे मूक होगईं। स्त्रियोंकी बचना भन्ते! अशुचि, जुगुप्सित और विरुद्ध (=प्रतिकूल) है०।......

\+ + + +

(२)

आनन्द-चरित। चिंचाकांड। रोगि-सुश्रूषक बुद्ध। पूर्वाराम-निर्माण (ई. पू. ५०७)।

[1]...(आनन्द) हमारे बोधिसत्वके साथ तुषित (स्वर्ग)-पुरमें उत्पन्न हो, वहाँसे च्युत हो, अमृतोदन शाक्यके घरमें पैदा हुये। सब ज्ञातिको आनन्दित, प्रमुदित करते हुये उत्पन्न होनेसे नाम आनन्द रक्खा गया। वह क्रमशः भगवान्‌के अभिनिष्क्रमण (=गृहत्याग) कर, संबोधि प्राप्त हो, पहिली बार कपिलवस्तु आकर, फिर वहाँसे चले जानेपर; भगवान्‌के पास, भगवान्‌के अनुचर होनेके लिये जब शाक्य राजकुमार लोग प्रव्रजित हो रहे थे, तो [2]भद्दिय आदिके साथ निकलकर, भगवान्‌के पास प्रव्रजित हो, आयुष्मान् मैत्रायणी-पुत्र (=मंतानी-पुत्त) के धर्म-उपदेशको सुन, थोड़े ही दिनोंमें स्रोतआपत्ति फलमें स्थित हुये। उस समय बुद्धत्व-प्राप्ति (=बोधि) के प्रथम बीस वर्षोंमें भगवान्‌के उपस्थाक (=परिचारक) नियत न थे। कभी नागसमाल पात्र-चीवर लेकर चलते थे; कभी नागित, कभी उपवान, कभी सुनक्षत्र, कभी चुन्द श्रमणोद्देश, कभी स्वागत, कभी राध, कभी मेघिय। एक समय भगवान् नागसमाल स्थविरके साथ रास्तेमें जा रहे थे। जहाँ (रास्ता) दो (ओर) फटा था; (वहाँ) स्थविर मार्गसे हटकर भगवान्‌से बोले—"भगवान्! मैं इस मार्गसे जाऊँगा।" तब भगवान्‌ने उन्हें कहा—'आ, भिक्षु! हम रास्तेसे चलें।' उन्होंने—'हन्त! भगवान्! आपका पात्र-चीवर लें, मैं इस मार्गसे जाता हूँ'—कह, पात्र-चीवर भूमिपर रखना चाहा। तब भगवान्—"लाओ भिक्षु!"—कह, पात्र-चीवर लेकर चले। इधर उधरके रास्तेसे जाते समय, चोरोंने स्थविरका चीवर भी छीन लिया, और पात्र भी फोड़ दिया। तब—'भगवान् ही अब मेरे शरण हैं, दूसरा नहीं' सोच, रक्त बहते भगवान्‌के पास आये। 'यह क्या भिक्षु!' पूछनेपर, उन्होंने सब हाल कह दिया।" एक समय भगवान् [3]मेघिय स्थविरके साथ प्राचीन-वंसदायमें जंतुग्रामको गये। वहाँ मेघियने जंतु-ग्राममें पिंडचार करके, नदीके तटपर सुन्दर आम्र-वन देख—'भगवान्! आपका पात्र चीवर लें, मैं उस आमके बागमें श्रमण-धर्म करूँगा'—कह, भगवान्‌के तीन बार मना करनेपर भी गया, फिर बुरे वितर्कोंसे तंग होनेपर, लौटकर उस बातको भगवान्‌से कहा।—'यही कारण देखकर मैंने मना किया था'—कहकर, भगवान् क्रमशः श्रावस्ती पहुँचे।

वहाँ भिक्षु-संघसे घिरे (भगवान्‌ने) गंध-कुटीके परिवेण (=आँगन) में बिछे उत्तम बुद्धासनपर बैठ, भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

१. अ. नि. अ. १:४:१। २. देखो पृष्ठ ५९, ६९। ३. देखो पृष्ठ १०३-४०।

"भिक्षुओं ! अब मैं वृद्ध (५६ वर्षका) हूँ । कोई-कोई भिक्षु 'इस मार्गसे चलो' कहनेपर दूसरेसे जाते हैं, कोई-कोई मेरा पात्र-चीवर भूमिपर रख देते हैं। मेरे लिये एक नियत उपस्थाक (= परिचारक) भिक्षु खोजो ।"

(सुननेपर) भिक्षुओंको खेद हुआ । तब आयुष्मान् सारिपुत्रने उठकर, भगवान्‌को वन्दनाकर कहा—

"भन्ते ! मैंने तुम्हारी ही चाहसे सौहजार कल्पोंसे भी अधिक (समय तक), असंख्य पारमितायें पूरी कीं । ऐसा महाप्राज्ञ सेवक (=उपस्थाक) मौजूद है, मैं सेवा करूँगा ।"

उन्हें भगवान्‌ने कहा—"नहीं सारिपुत्र ! जिस दिशामें तू विहरता है, वह दिशा मुझसे अ-शून्य होती है । तेरा धर्म-उपदेश बुद्धोंके धर्म-उपदेशके समान है । इसलिये मुझे तेरे उपस्थाक (बनाने) से काम नहीं है ।"

इसी प्रकारसे महामौद्गल्यायन आदि अस्सी महाश्रावक खड़े हुये। सबको भगवान्‌ने इन्कार कर दिया। आनन्द स्थविर चुप-चाप ही बैठे रहे। तब उन्हें भिक्षुओंने कहा—'आवुस ! भिक्षु-संघ उपस्थाक-पद माँग रहा है, तुम भी माँगो' । 'आवुसो ! माँगकर स्थान पाया तो क्या पाया ? क्या भगवान् मुझे देख नहीं, रहे हैं ? यदि रुचैगा तो—'आनन्द मेरा उपस्थान करें' बोलेंगे' । भगवान्‌ने कहा—'भिक्षुओ ! आनन्दको दूसरा कोई उत्साहित मत करें, स्वयं जानकर वह मेरा उपस्थान करेगा ।" तब भिक्षुओंने कहा—'उठो आवुस ! आनन्द ! दश-बलसे उपस्थाक-स्थान माँगो ।' तब स्थविर (आनन्द) ने उठकर, चार प्रतिक्षेप (= इन्कार) और चार याचनायें—आठ वर माँगे । चार प्रतिक्षेप यह हैं—यदि भगवान् अपने पाये उत्तम, (१) चीवरको मुझे न दें, (२) पिंडपातको न दें, (३) एक गन्धकुटीमें निवास न दें, (४) निमंत्रणमें लेकर न जायें, तो मैं भगवान्‌का उपस्थान करूँगा ।"

"आनन्द ! इनमें तूने क्या दोष देखा ?"

'भन्ते ! यदि मैं इन वस्तुओंको पाऊँगा, तो (इस बातके) कहनेवाले होंगे—आनन्द दशबलको मिले उत्तम चीवर परिभोग करता है० । इस प्रकारके लोभके लिये ही तथागतकी सेवा करता है ।"··· । चार आयाचनायें यह हैं—यदि भन्ते ! भगवान् (१) मेरे स्वीकार किये निमंत्रणमें जायँ, (२) दूसरे राष्ट्र या दूसरे जनपदसे भगवान्‌के दर्शनको आई परिषद्‌को आनेके समय ही भगवान्‌का दर्शन करा पाऊँ, (३) जब मुझे इच्छा हो उसी समय भगवान्‌के पास आने पाऊँ, (४) और जो भगवान् मेरे परोक्षमें धर्म-उपदेश करें, उसे आकर मुझे भी उपदेश कर दें । तब मैं भगवान्‌का उपस्थान करूँगा ।'

भगवान्‌ने (इन आठ वरोंको) दिया । इस प्रकार आठ वरोंको लेकर (आनन्द) नियत-उपट्ठाक हुये ।······

[1]बीस वर्ष (भगवान्) अ-नियत (वर्षा-) वास करते, जहाँ जहाँ ठीक हुआ, वहीं बसे । इससे आगे दो ही शयनासन (= निवास-स्थान) ध्रुव-परिभोग (= सदा रहनेके) किये । कौनसे दो ? जेतवन और पूर्वाराम ।

---

१. अ. नि. अ. क. २:४:६ ।

चिंचा-कांड

[1]प्रथम बोधिमें (=बोधिके बाद बीस वर्षोंमें) दश-बलको…महालाभ सत्कार उत्पन्न हुआ। सूर्योदय होनेपर जुगनूकी भाँति, तैर्थिक लोग लाभ-सत्कार-विरहित हुये।…। (तब वह) एकान्तमें एकत्रित होकर सोचने लगे—श्रमण गौतमका लाभ सत्कार किस उपायसे नाश किया जाय? उस समय श्रावस्तीमें चिंचा माणविका नामक एक परिव्राजिका, उत्तम रूपवती, सौभाग्य-प्राप्ता देवी अप्सराकी भाँति (थी)। उसके शरीरसे किरणें निकलती थीं। तब उनमें एक तेजने…कहा—'चिंचा माणविकाके द्वारा श्रमण गौतमकी अपकीर्ति करा, लाभ-सत्कार-नाश करावें'। उन्होंने 'यह उपाय है' करके स्वीकार किया। उस समय वह (माणविका) तैर्थिक आराममें जाकर वन्दनाकर खड़ी हुई। तैर्थिकोंने उसके साथ बात न की। वह—'मेरा क्या दोष है? तीन बार आर्यो! वन्दना करती हूँ'—कह—'आर्यो! मेरा क्या दोष है, क्यों मेरे साथ नहीं बोलते?' बोली। "भगिनी! (क्या तू) श्रमण गौतमको हमारा लाभ-सत्कार विनाशकर विचरते, नहीं देख रही है?"

"आर्यो! नहीं जानती। फिर यहाँ मुझे क्या करना है?"

"यदि भगिनी! तू हम लोगोंका सुख चाहती है, तो अपने कारणसे श्रमण गौतमकी अपकीर्ति कर, श्रमण गौतमके लाभ-सत्कारको विनाश कर।"

"आर्यो! अच्छा यह भार मुझपर है, चिन्ता मत करो।"

बोलकर, स्त्री-मायामें चतुर होनेसे, तबसे लेकर जब श्रावस्ती-वासी धर्म-कथा सुनकर जेतवनसे निकलने लगते, तब बीर-बहूटीके रंगका वस्त्र पहिन, गंध, माला आदि हाथमें ले, जेतवनकी ओर जाती थी। 'इस समय कहाँ जा रही है?' पूछनेपर—'तुम्हें मेरे जानेकी जगहसे क्या काम?' कह जेतवनके समीप तैर्थिकाराममें वास कर, सबेरे प्रथम वन्दनाकी इच्छासे नगरसे निकलते उपासकोंको, जेतवनके भीतर निवास करके आई हुई सी दिखा नगरमें प्रवेश करती थी। '(रातको) कहाँ रही?' पूछनेपर,—'तुम्हें मेरे (रात्रि) वास, स्थानसे क्या काम?' कहती। मास आधा मास बीत जानेपर पूछनेसे—'जेतवनमें श्रमण गौतमके साथ एकही गंध-कुटीमें रही' (कह), पृथग्जनोंमें 'यह सच है, या नहीं'—इस प्रकारका संशय उत्पन्नकर, तीन-चार मास बाद कपड़ेसे पेटको बाँध, गर्भिणी जैसा दिखला, ऊपरसे लाल कपड़ा पहिन—'श्रमण गौतमसे गर्भ उत्पन्न हुआ'…आठ नव मास बाद पेटपर लकड़ीकी मंडलिका बाँध, ऊपरसे कपड़ा लपेट, गायके जबड़ेसे हाथ, पैर, पीठ, कुटवाकर, फूलासा बना, शिथिल-इन्द्रिय हो, सायंकाल धर्मासनपर बैठकर धर्म-उपदेश करते समय, धर्म-सभामें जा, तथागतके सामने खड़ी हो—

'महाश्रमण! लोगोंको धर्म-उपदेश करते हो? तुम्हारा शब्द मधुर है। ओठ सुन्दर-स्पर्शयुक्त है। अब मैं तुमसे गर्भवती हो, परिपूर्ण-गर्भा हो गई हूँ। न मुझे प्रसूति-घर बनवाते (हो)। न स्वयं(हो) घी तेल आदिका प्रबंध करते हो। उपासकोंसे—कोशलराज, अनाथपिंडक वा विशाखा महा-उपासिकाको ही बोल देते—इस माणविकाके लिये करने योग्य करो। अभिरमण ही जानते हो, गर्भ-परिहार नहीं जानते?'—इस प्रकार गूथपिंड

---

१. ध. प. अ. क. १३:९।

(=पाखानेका पिंड) ले, चंद्रमंडलको दूषित करनेके लिये कोशिश करती सी उसने, परिषद्‌के बीचमें तथागतपर आक्षेप किया। तथागतने धर्म-कथाको रोककर सिंहकी भाँति गर्जते (अभिनंदन करते)—'भगिनी ! तेरे कहनेकी सचाई झुठाईको मैं या तूही जानते हैं'—कहा। "हाँ, महाश्रमण ! तेरे और मेरे जानेको कौन नहीं जानते ?" उसी समय इन्द्रका आसन गर्म जान पड़ा। वह सोचते हुए—'चिंचा माणविका तथागतपर झूठा दोष लगा रही है' जान, इस बातका शोध करूँगे (सोच), चार देवपुत्रोंके साथ आया। देवपुत्रोंने चूहेके बच्चोंका रूप धारणकर एकही बेरमें दारु-मंडलिकाके बाँधनेकी रस्सीको काट दिया, ओढ़नेके कपड़ेको हवाने उड़ा दिया। दारु-मंडलिका गिरते वक्त उसके पैरपर गिरी। दोनों पैरोंके पंजे कट गये। मनुष्योंने—'धिक् ! धिक् !! कलमुखी (=कालकर्णी), सम्यक् संबुद्धपर दोष लगा रही थी', (कह), शिरपर थूक, ढेला-डंडा हाथमें ले, जेतवनसे बाहर निकाल दिया। तब तथागतके लोचन-पथसे बाहर जाते ही धरतीने फटकर उसे जगह दी।…

रोगि-सुश्रूषक बुद्ध।

× × × ×

'उस समय एक भिक्षुको पेटकी बीमारी थी। वह अपने पेशाब पाखानेमें पड़ा हुआ था। तब भगवान् आयुष्मान् आनन्दको पीछे लिये घूमते, जहाँ उस भिक्षुका विहार था, वहाँ पहुँचे।…। जहाँ वह भिक्षु था, वहाँ गये। जाकर उस भिक्षुको पूछा—'भिक्षु ! तुझे क्या रोग है ?'। पेटकी बीमारी है, भगवान् !' 'भिक्षु तेरा कोई परिचारक है ?' 'नहीं भगवान् !' 'क्यों तेरी सेवा नहीं करते ?' 'भन्ते ! मैं भिक्षुओंका कुछ न करनेवाला हूँ, इसलिये।…।' तब भगवान्‌ने आयुष्मान आनन्दको कहा—'जा आनन्द ! पानी ला, इस भिक्षुको नहलायेंगे।'…आनन्द पानी लाये। भगवान्‌ने पानी डाला, आयुष्मान् आनन्दने धोया। भगवान्‌ने शिरसे पकड़ा, आयुष्मान् आनन्दने पैरसे। उठाकर चारपाईपर लिटाया। तब भगवान्‌ने… इसी प्रकरणमें भिक्षुओंको इकट्ठाकर…।…'भिक्षुओ ! तुम्हारी माता नहीं, पिता नहीं, जोकि तुम्हारी सेवा करेंगे। यदि तुम एक दूसरेकी सेवा न करोगे, तो कौन सेवा करेगा ? जो रोगीकी सेवा करता है, वह मेरी सेवा करता है। यदि उपाध्याय हो, उपाध्यायको जीवनभर उपस्थान (=सेवा) करना चाहिये।…यदि आचार्य…।…शिष्य…।…गुरु-भाई… यदि न उपाध्याय है न आचार्य…, तो संघको सेवा करनी चाहिये। सेवा न करे तो दुष्कृतकी आपत्ति है।'[1]

पूर्वाराम-निर्माण।

…एक[2] उत्सवके दिन लोगोंको मंडित=प्रसाधित हो, धर्म-श्रवणके लिये विहार जाते देख विशाखाने भी निमन्त्रित स्थानपर भोजनकर, महालता-प्रसाधनसे अलंकृत हो, लोगोंके साथ विहार जा, आभरण उतार दासीको दिया।…।

'अम्म ! इन प्रसाधनों (=जेवरों)को रख, शास्ताके पाससे लौटते समय इन्हें पहनूँगी।' उसको देकर…शास्ताके पास जा धर्म-उपदेश सुना। धर्म-श्रवणके बाद भगवान्‌को वन्दना

१. महावग्ग। २. ध. प. अ. क. ४:४४।

कर, उठ कर चल पड़ी। वह उसकी दासी भी भूषणोंको भूल गई। धर्म सुनकर परिषद्के चले जानेपर जो कुछ भूला होता, उसे आनन्द स्थविर सँभालते थे। इस प्रकार उन्होंने उस दिन महालता-प्रसाधनको देख शास्ताको कहा—

"भन्ते! विशाखाका प्रसाधन छूट गया है।"

"एक ओर रख दो आनन्द!"

स्थविरने उसे उठाकर सीढ़ीके पास लगाकर रख दिया। विशाखा भी सुप्रिय (दासी) के साथ, आगन्तुक, गमिक, रोगी आदिके कामको जाननेके लिये विहारके भीतर विचरती रही।···दूसरे द्वारसे निकलकर विहारके पास खड़ी हो—'अम्म! प्रसाधन ला, पहिनूँगी।' उस समय वह दासी भूल आनेकी बात जान—'आर्ये! भूल आई हूँ'—बोली। 'तो जाकर ले आ, लेकिन यदि मेरे आर्य आनन्द स्थविरने उठाकर दूसरे स्थानपर रक्खा हो, तो मत लाना, आर्यहीको मैंने उसे दिया'···। स्थविर भी दासीको देखकर—'किसलिये आई'—पूछकर, 'अपनी आर्याका जेवर भूल गई हूँ'—बोलनेपर, 'मैंने इस सीढ़ीके पास रख दिया है, जा उसे लेजा' बोले। उसने—'आर्य! तुम्हारे हाथके छूनेसे उसे मेरी आर्याके पहिननेके अयोग्य बना दिया'—कहकर, खाली हाथही जा, 'अम्म, क्या है!' विशाखाके पूछनेपर, उस बातको कह दिया। 'अम्म! मैं अपने आर्यकी छूई चीजको नहीं पहनूँगी, मैंने आर्योंको दे दिया। किन्तु आर्योंको रखवालीमें तकलीफ होगी, उसको बेंचकर योग्य (= कल्प्य) चीज लाऊँगी। जा उसे ले आ।' वह जाकर ले आई।

विशाखाने उसे न पहिन कर्मारों (= सुनारों) को बुलाकर दाम करवाया। 'नव करोड़ मूल्यका हुआ, और बनवाई सौ हजार।'—कहने पर···'तो, इसको बेंच दो' बोली। 'इतना धन देकर कोई खरीद न सकेगा।' तब विशाखाने स्वयं उसका दाम दे, नवकरोड़ सौ हजार गाड़ियों पर रखवा, विहारमें लाकर शास्ताकी वन्दना कर—

"भन्ते! मेरे आर्य आनन्द स्थविरने मेरा आभूषण हाथसे छू दिया, उनके छूनेके समयहीसे मैं उसे नहीं पहिन सकती थी, 'उसको बेंचकर कल्प्य (= भिक्षुओंको ग्राह्य) लाऊँगी, (सोचा)। उसे बेंचते वक्त दूसरेको उसके लेनेमें समर्थ न देख मैं ही उसका दाम उठवाकर लाई हूँ। भन्ते! भिक्षुओंके चारो प्रत्ययों (= ग्राह्य वस्तुओं) में मैं किसको लाऊँ।"

"विशाखे! संघके लिये पूर्व द्वारे पर वास-स्थान बनवाना युक्त है।"

"भन्ते! ठीक" (कह) सन्तुष्ट हो विशाखाने नव करोड़में भूमि ही खरीदा। दूसरे नवकरोड़ से [1]विहार बनाना आरंभ किया।

तब एक दिन शास्ता प्रत्यूष समय लोकावलोकन करते, देवलोकसे च्युत हो भद्दिय (मुँगेर) नगरमें श्रेष्ठी-कुलमें उत्पन्न हुये, भद्दिय श्रेष्ठी-पुत्रको···(आगम) देख, अनाथ-

---

1. चुल्ल वग्ग ६। "उस समय विशाखा मृगारमाता संघके लिये आलिन्द (= बरांडा)-सहित हस्तिनख (= हाथीके नख या नखूँ जैसी आकृतिका) प्रासाद बनवाना चाहती थी। तब भिक्षुओंको यह हुआ—क्या भगवान्‌ने प्रासादका परिभोग (= ग्रहण, सेवन) अनुज्ञात किया है? भगवान्‌से इस बातको पूछा।—'भिक्षुओ! सभी (प्रकार) के प्रासादोंके परिभोगकी अनुज्ञा करता हूँ।'

पिंडकके घर भोजनकर, उत्तरद्वारकी ओर हुये। स्वभावतः शास्ता विशाखाके घर भिक्षा ग्रहणकर, दक्षिणद्वारसे निकल, 'जेतवनमें वास करते थे, अनाथपिंडकके घर भिक्षा ग्रहण कर, पूर्वद्वारसे निकलकर, पूर्वाराममें वास करते थे। उत्तर-द्वारकी ओर भगवान्‌को जाते देखकर ही (लोग) जान जाते (कि) चारिकाके लिये जा रहे हैं। विशाखा भी उस दिन 'उत्तरद्वारकी ओर गये' यह सुनकर जल्दीसे जाकर वन्दनाकर बोली—

'भन्ते! चारिकाके लिये जाना चाहते हैं?"

"हाँ, विशाखे!"

"भन्ते! आपके लिये इतना धन देकर विहार बनवाती हूँ; भन्ते! लौट चलें।"

"विशाखे! यह गमन लौटनेका नहीं है।"

"तो भन्ते! मेरे लिये कृत-अकृतका जानकार एक भिक्षु लौटाकर जायें।"......

"विशाखे! उस (भिक्षु) का पात्र ग्रहण कर"। उसके दिलमें कुछ तो आनन्द स्थविर की इच्छा हुई। (फिर)—'महामौद्गल्यायन स्थविर ऋद्धिमान् हैं, उनके द्वारा मेरा काम जल्दी समाप्त हो जायगा'—सोचकर, स्थविरके पात्रको ग्रहण किया। स्थविरने शास्ताकी ओर देखा। शास्ताने—'अपने परिवारके पाँच सौ भिक्षु ले, मोग्गलान! लौट जाओ'—कहा उन्होंने ऐसाही किया। उनकी महिमासे, पचास साठ योजनपर वृक्ष या पाषाण के लिये गये (मनुष्य) बड़े-बड़े वृक्षों और पाषाणोंको लेकर उसी दिन लौट आते थे, गाड़ियोंपर वृक्षों और पाषाणोंको रखनेमें, तकलीफ नहीं पाते थे, न धुरा टूटता था। उन्होंने जल्दी ही दो तलका प्रासाद बना डाला। नीचेके तलपर पाँच सौ गर्भ (=कोठरियाँ) और ऊपरके तलपर पाँच सौ गर्भ,—एक हजार गर्भसे मंडित (वह) प्रासाद था।

× × × ×

(३)

देवदह-सुत्त (ई. पू. ५०७)

'ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् शाक्य (देश) में, शाक्योंके निगम देवदहमें विहार करते थे।

वहाँ भगवान्‌ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ!" "भदन्त!"।...

भगवान्‌ने कहा—"भिक्षुओ! कोई-कोई श्रमण ब्राह्मण इस वाद=इस दृष्टिवाले हैं—'जो' कुछ भी यह पुरुष = पुद्गल सुख, दुःख, या अदुःख असुख अनुभव करता है, यह सब पहिले किये हेतुसे। इस प्रकार पुराने कर्मोंका तपस्यासे अन्त करनेसे, नये कर्मोंके न

१. म. नि. ३:१:१। अ. क. 'देव कहते हैं, राजाओं को। वहाँ शाक्य राजाओंकी सुन्दर मंगल-पुष्करिणी थी, जिस पर पहरा रहता था। वह देवोंका दह (=पुष्करिणी) होनेके कारण देवदह कही जाती थी। उसीको लेकर वह निगम (= कस्बा) भी देवदह कहा जाता था। भगवान् उस निगमके सहारे लुम्बिनी वनमें वास करते थे।" २ निगंठ नाथपुत्तका वाद।

करनेसे, भविष्यमें परिणाम-रहित (= अन्-अवस्रव) (होता है)। परिणाम-रहित होनेसे कर्मक्षय, कर्मक्षयसे दुःख-क्षय, दुःख-क्षयसे वेदना-क्षय, वेदना-क्षयसे सभी दुःख जीर्ण हो जाते हैं।'

"भिक्षुओ! यह निगंठ मेरे ऐसा पूछनेपर 'हाँ' कहते हैं। उनको मैं यह कहता हूँ—'आवुसो निगंठो! क्या तुम जानते हो—हम पहले थे ही, हम नहीं न थे?' 'नहीं आवुस!' 'क्या तुम आवुसो निगंठो! जानते हो—हमने पूर्वमें पाप कर्म किया ही है, नहीं नहीं किया है?' 'नहीं आवुस!' 'क्या तुम आवुसो निगंठो! जानते हो ऐसा ऐसा पाप-कर्म किया है?' 'नहीं आवुस!' 'क्या० जानते हो—इतना दुःख नाश हो गया, इतना दुःख नाश करना है, इतना दुःख नाश हो जानेपर, सब दुःख नाश हो जायेगा?' 'नहीं आवुस!' 'क्या० जानते हो—इसी जन्ममें अकुशल (बुरे) धर्मोंका प्रहाण (विनाश) और कुशल धर्मोंका लाभ (होना है)?' 'नहीं आवुस!' 'इस प्रकार आवुसो निगंठो! तुम नहीं जानते—हम पहिले थे, या नहीं० इसी जन्ममें अकुशल धर्मोंका प्रहाण होना है, और कुशल धर्मोंका लाभ। ऐसा होनेपर आयुष्मान् निगंठोंका यह कथन युक्त नहीं—जो कुछ भी यह पुरुष=पुद्गल० अनुभव करता है०। यदि आवुसो निगंठो! तुम जानते होते—'हम पहिले थे ही०।' ऐसा होनेपर आयुष्मान् निगंठोंका यह कथन युक्त होता—'जो कुछ भी यह पुरुष०। आवुसो! जैसे (कोई) पुरुष विषमें उपलिप्त गाढ़ शल्य (= शरके फल) से विद्ध हो। वह शल्यके कारण दुःखद, कटु, तीव्र वेदना अनुभव करता हो। उसके मित्र = अमात्य जाति-बिरादरी उसे शल्य चिकित्सकके पास ले जायें। वह शल्य-चिकित्सक शस्त्रसे उसके व्रण (= घाव) के मुखको काटे। वह शस्त्रसे व्रण-मुख काटनेसे भी दुःखद, कटु, तीव्र वेदनाको अनुभव करे। शल्य-चिकित्सक खोजनेकी शलाकासे शल्यको खोजे। वह ०शलाकासे शल्यके खोजनेके कारण भी दुःखद० वेदना अनुभव करे। वह शल्य-चिकित्सक उसके शल्यको निकाले, वह शल्यके निकालनेके कारण भी० वेदना अनुभव करे। शल्य-चिकित्सक उसके व्रण-मुखपर दवाई रक्खे,०। वह दूसरे समय घावके भर जानेसे निरोग, सुखी…स्वयंवशी, इच्छानुसार फिरनेवाला हो जाये। उसको यह हो—मैं पहिले ०शल्यसे विद्ध था० दवाई रखनेके कारण भी दुःखद० वेदना अनुभव करता था। सो मैं अब ०निरोग, सुखी० हूँ। ऐसे ही आवुसो निगंठो! यदि तुम जानते हो—'हम पहिले थे०। नहीं नहीं थे०। ऐसा होनेपर आयुष्मान् निगंठोंका यह कथन युक्त होता—'जो कुछ भी०'। चूँकि आवुसो निगंठो! तुम नहीं जानते—'हम पहिले थे०' इसलिये आयुष्मान् निगंठोंका यह कथन युक्त नहीं—'जो कुछ भी०।'

"ऐसा कहने पर भिक्षुओ! उन निगंठोंने मुझसे कहा—'आवुस! निगंठ नाथपुत्र सर्वज्ञ=सर्वदर्शी, अखिल ज्ञान=दर्शनको जानते हैं। चलते, खड़े, सोते, जागते, सदा निरंतर (उन्हें) ज्ञान = दर्शन उपस्थित रहता है, वह ऐसा कहते हैं—'आवुसो निगंठो! जो तुम्हारा पहिलेका किया हुआ कर्म है, उसे इस कड़वी दुष्कर कारिका (=तपस्या) से नाश करो, और जो इस वक्त यहाँ काय-वचन-मनसे रक्षित (= संवृत) हो, यह भविष्यके लिये पापका न करना हुआ। इस प्रकार पुराने कर्मोंका तपस्यासे अन्त होनेसे, और नये कर्मोंके न करनेसे, भविष्यमें (तुम) अन्-अवस्रव (होंगे)। भविष्यमें अवस्रव न होनेसे, कर्मका क्षय, कर्मके

क्षयसे दुःख-क्षय; दुःख-क्षयसे वेदना-क्षय; वेदना-क्षयसे सभी दुःख नष्ट = निर्जीर्ण होजायेंगे।' यह हमको रुचता है = खमता है। इससे हम संतुष्ट हैं।"

"ऐसा कहनेपर भिक्षुओ! मैंने उन निगंठोंको यह कहा आवुसो निगंठों! यह पाँच धर्म इसी जन्ममें दो प्रकारके विपाकवाले हैं। कौनसे पाँच? (१) श्रद्धा, (२) रुचि, (३) अनुश्रव, (४) आकार-परिवर्तन, (५) दृष्टि-निध्यान-क्षान्ति। आवुसो निगंठो! यह पाँच धर्म इसी जन्ममें दो प्रकारके विपाकवाले हैं। यहाँ आयुष्मान् निगंठोंके अतीत-अंश-वादी शास्ता (=निगंठ नाथपुत्र) में आपकी क्या श्रद्धा, क्या रुचि, क्या-अनुश्रव, क्या आकार-परिवर्तक, क्या दृष्टि-निध्यान-क्षान्ति है?' भिक्षुओ! निगंठोंके पास ऐसा कहकर भी मैं धर्मसे कोई भी वाद-परिहार (=उत्तर) नहीं देखता।"

'और फिर भिक्षुओ! मैं उन निगंठोंको यह कहता हूँ—तो क्या मानते हो, आवुसो निगंठो! जिस समय तुम्हारा उपक्रम (=आरम्भ) तीव्र होता हैं =प्रधान तीव्र (होता है)। उस समय (उस) उपक्रम-संबन्धी दुःखद, तीव्र, कटुक, वेदना अनुभव करते हो, जिस समय तुम्हारा उपक्रम तीव्र नहीं होता=प्रधान तीव्र नहीं (होता), उस समय ०वेदना अनुभव नहीं करते?' 'जिस समय० उपक्रम तीव्र नहीं होता है०, उस समय ०तीव्र० वेदना अनुभव करते हैं। जिस समय० उपक्रम तीव्र नहीं होता०, ०तीव्र० वेदना अनुभव नहीं करते।'

"इस प्रकार आवुसो निगंठो! जिस समय तुम्हारा उपक्रम=प्रधान तीव्र होता है, उस समय, तीव्र वेदना अनुभव करते हो; जिस समय तुम्हारा उपक्रम० तीव्र नहीं होता, ०तीव्र वेदना अनुभव नहीं करते।। ऐसा होनेपर आयुष्मान् निगंठोंका यह कथन युक्त नहीं—'जो कुछ भी यह पुरुष = पुद्गल०। यदि आवुसो निगंठो! जिस समय तुम्हारा उपक्रम तीव्र० होता है, उस समय दुःखद० वेदना रहती है; जिस समय तुम्हारा उपक्रम तीव्र० नहीं होता, उस समय दुःखद० वेदना नहीं रहता; ऐसा होनेपर० यह कथन युक्त नहीं—जो कुछ भी०।

"चूँकि आवुसो! जिस समय तुम्हारा उपक्रम तीव्र० होता है, उस समय दुःखद० वेदना अनुभव करते हो; जिस समय ०उपक्रम ०तीव्र नहीं होता, ०तीव्र वेदना अनुभव नहीं करते; सो तुम स्वयंही उपक्रम-संबन्धी दुःखद० वेदना अनुभव करते, अविद्यासे, अज्ञानसे, मोहसे उलटा समझ रहे हो—'जो कुछ भी०'। भिक्षुओ! निगंठोंके पास ऐसा कहकर भी मैं धर्मसे कोई भी वाद-परिहार (उनकी ओरसे) नहीं देखता।

"और फिर भिक्षुओ! मैं उन निगंठोंको ऐसा कहता हूँ—तो० क्या मानते हो आवुसो निगंठो! 'जो यह इसी जन्ममें वेदनीय (=भोगा जानेवाला) कर्म है, वह उपक्रमसे= या प्रधानसे संपराय (= दूसरे जन्ममें) वेदनीय किया जा सकता है?' 'नहीं, आवुस!' 'और जो यह जन्मान्तर (=संपराय)-वेदनीय कर्म है, वह—उपक्रमसे० इस जन्ममें वेदनीय—किया जा सकता है?' 'नहीं आवुस!' 'तो क्या मानते हो आवुसो! निगंठो! जो यह सुख-वेदनीय (= सुख भोग करनेवाला) कर्म है, क्या वह उपक्रमसे=या प्रधानसे दुःख-वेदनीय किया जा सकता है?' 'नहीं आवुस'। '०जो यह दुःखवेदनीय कर्म है, क्या वह उपक्रमसे० सुख-वेदनीय किया जा सकता है?' 'नहीं आवुस!'। 'तो क्या मानते हो आवुसो निगंठो! जो यह परिपक्व (=अवस्था=बुढ़ापा) में वेदनीय कर्म है, क्या

वह उपक्रमसे० अपरिपक्व-वेदनीय किया जा सकता है?' 'नहीं आवुस!' '०जो यह अ-परिपक्व (=शैशव, जवानी)-वेदनीय कर्म है, क्या वह० परिपक्व-वेदनीय किया जा सकता है?' 'नहीं आवुस!' 'तो क्या मानते हो, आवुसो निगंठो! जो यह बहु-वेदनीय कर्म है०?' 'नहीं आवुस!' 'तो क्या मानते हो आवुसो निगंठो! जो यह वेदनीय (=भोगानेवाला) कर्म है, क्या वह० उपक्रमसे० अ-वेदनीय किया जा सकता है?' 'नहीं आवुस!' '०अवेदनीय कर्म० वेदनीय किया जा सकता है?' 'नहीं०'। 'इस प्रकार आवुसो निगंठो! जो यह दूसरी जन्ममें वेदनीय कर्म है०। ०अवेदनीय कर्म है, वह भी वेदनीय नहीं किया जा सकता। ऐसा होनेपर आयुष्मान् निगंठोंका उपक्रम निष्फल हो जाता है, प्रधान निष्फल हो जाता है।

"भिक्षुओ! निगंठ लोग इस वाद (के माननेवाले) वाले हैं। ऐसे वादवाले निगंठोंके वाद=अनुवाद धर्मानुसार दस स्थानोंमें निंदनीय (=अयुक्त) होते हैं। यदि भिक्षुओ! प्राणी पहिले किये (कर्मों)के कारण सुख-दुःख भोगते हैं तो भिक्षुओ! निगंठ लोग अवश्य पहिले बुरे काम करनेवाले थे, जो इस वक्त इस प्रकार दुःखद, तीव्र, कटु वेदनायें भोग रहे हैं। यदि भिक्षुओ! प्राणी ईश्वरके बनानेके कारण (=ईश्वर-निर्माण-हेतु) सुख दुःख भोगते हैं, तो अवश्य भिक्षुओ! निगंठ लोग पापी (=बुरे) ईश्वर द्वारा बनाये गये हैं, जोकि इस वक्त०, दुःखद० वेदनायें भोग रहे हैं। यदि भिक्षुओ! प्राणी संगति (=भावी)के कारण सुख दुख भोगते हैं, तो अवश्य भिक्षुओ! निगंठ लोग पाप (=बुरी) संगति (=भावी) वाले थे, जो इसवक्त०। यदि भिक्षुओ! प्राणी अभिजातिके कारण०। यदि० इसी जन्मके उपक्रमके कारण सुख दुःख भोगते हैं, तो अवश्य भिक्षुओ! निगंठोंका इस जन्मका उपक्रम बुरा (=पाप) है, जोकि इसवक्त० दुःखद० वेदनायें भोग रहे हैं।

"यदि भिक्षुओ! प्राणी पूर्व किये (कर्मों)के कारण सुख दुःख भोग रहे हैं, तो निगंठ गर्हणीय हैं, यदि० ईश्वरके निर्माणके कारण०, भवितव्यता (=संगति)के कारण०, ०अभिजातिके कारण०, ०इसी जन्मके उपक्रमके कारण सुख दुःख भोगते हैं, तो निगंठ गर्हणीय हैं। भिक्षुओ! निगंठ ऐसा मत (=वाद) रखते हैं। ऐसे वादवाले निगंठोंके वाद=अनुवाद धर्मानुसार दस स्थानोंमें निन्दनीय होते हैं। इस प्रकार भिक्षुओ! (उनका) उपक्रम निष्फल होता है, प्रधान निष्फल होता है।

"भिक्षुओ! पाँच उपक्रम सफल हैं, प्रधान सफल हैं। भिक्षुओ! (1) भिक्षु दुःखसे अन्-अभिभूत (=अ-पीड़ित) शरीरको दुःखसे अभिभूत नहीं करता। (2) धार्मिक सुखका परित्याग नहीं करता। (3) उस सुखमें अधिक दुष्ट (=मूर्छित) नहीं हो जाता। (4) वह ऐसा जानता है—इस दुःख-कारणके संस्कारके अभ्यास करनेवालेको, संस्कारके अभ्यास से, विराग होता है। (5) इस दुःख-निदानकी उपेक्षा करनेवालेको उपेक्षाकी भावना करनेसे, विराग होता है। वह जिस दुःख-निदानके संस्कारके अभ्यास करनेसे संस्कारके अभ्याससे विराग होता है, उस संस्कारको अभ्यास करता है। जिस दुःखनिदानकी उपेक्षा करनेसे, उपेक्षाकी भावना करनेसे, विराग होता है, उस उपेक्षाकी भावना करता है। उस उस दुःख-निदानके…संस्कारके अभ्याससे विराग होता है, इस प्रकार भी दुःख

वह दुःख जीर्ण होता है। उस उस दुःख-निदानकी उपेक्षाकी भावना करनेवालेको विराग होता है; इस प्रकार भी इसका वह दुःख जीर्ण होता है।

"भिक्षुओ! जैसे पुरुष (किसी) स्त्रीमें अनुरक्त हो, प्रतिबद्धचित्त तीव्र-रागी=तीव्र-अपेक्षी हो। वह उस स्त्रीको दूसरे पुरुषके साथ खड़ी, बात करती, जग्घन करती=हँसती देखे। तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! उस स्त्रीको दूसरे पुरुषके साथ० हँसती देख, क्या उस पुरुषको शोक=परिदेव, दुःख=दौर्मनस्य=उपायास उत्पन्न नहीं होंगे?"

"हाँ, भन्ते!"

"सो किस लिये?"

"वह पुरुष भन्ते! उस स्त्रीमें अनुरक्त० है। इस लिये उस स्त्रीको दूसरे पुरुषके साथ० हँसती देख, उस पुरुषको शोक० उत्पन्न होंगे।"

"तब भिक्षुओ! उस पुरुषको ऐसाहो—मैं इस स्त्रीमें अनुरक्त० हूँ। सो इस स्त्रीको दूसरे पुरुषके साथ० हँसते देख शोक० उत्पन्न होते हैं। क्यों न मैं जो मेरा इस स्त्रीमें छन्द=राग है, उसको छोड़ दूँ। वह (फिर) जो उस स्त्रीमें उसका छन्द=राग है, उसे छोड़ दे। फिर दूसरे समय वह उस स्त्रीको दूसरे पुरुषके साथ० हँसते देखे; तो क्या मानते हो भिक्षुओ! क्या उस स्त्रीको दूसरे पुरुषके साथ० हँसते देख, उस पुरुषको शोक० उत्पन्न होंगे?"

"नहीं भन्ते!"

"सो किस लिये?"

"वह पुरुष भन्ते! उस स्त्रीसे वीत-राग है, इसलिये उस स्त्रीको० हँसते देख, उस पुरुषको शोक० उत्पन्न नहीं होते।"

"ऐसे ही भिक्षुओ! भिक्षु दुःखसे अन्-अभिभूत शरीरको दुःखसे अभिभूत नहीं करता० इस प्रकार भी इसका वह दुःख जीर्ण होता है। इस प्रकार भिक्षुओ! उपक्रम सफल होता है, प्रधान सफल होता है।

"और फिर भिक्षुओ! भिक्षु ऐसा सोचता है—सुख-पूर्वक विहार करते भी मेरे अ-कुशल धर्म बढ़ते हैं, कुशल-धर्म क्षीण होते हैं; (लेकिन) अपनेको दुःखमें लगाते अकुशल-धर्म क्षीण होते हैं, कुशल-धर्म बढ़ते हैं, क्यों न मैं दुःखमें अपनेको लगाऊँ। इस प्रकार वह अपनेको दुःखमें लगाता है; दुःखमें अपनेको लगाते हुए उसके अकुशल-धर्म क्षीण होते हैं, कुशल-धर्म बढ़ते हैं। वह उसके बाद दुःखमें अपनेको नहीं लगाता। सो किस लिये? भिक्षुओ! वह भिक्षु जिसके लिये दुःखमें अपनेको लगाता था, वह उसका मतलब पूरा हो गया; इसलिये दूसरे समय दुःखमें अपनेको नहीं लगाता। जैसे भिक्षुओ! इषुकार (= बाण बनानेवाला लोहार) दो अंगारों (= अलात) पर तेजन (= बाण-फल) को तपाता...है, सीधा करता है...। जब भिक्षुओ! इषुकारका तेजन दो अंगोंपर आतापित = परितापित (हो चुका) होता है, सीधा (हो गया)...होता है। तो फिर दूसरी बार वह इषुकार तेजनको दो अंगारोंपर आतापित परितापित नहीं करता, सीधा (नहीं) करता......। सो किस लिये? भिक्षुओ! जिस मतलबसे इषुकार...आतापित परितापित कर रहा था...। वह उसका मतलब पूरा हो गया। इसलिये दूसरी बार ०। ऐसे ही भिक्षुओ! भिक्षु ऐसा

सोचता है—सुख-पूर्वक विहार करते मेरे अकुशल-धर्म बढ़ते हैं, कुशल-धर्म क्षीण होते हैं ० इसलिये दूसरे समय दुःखमें अपनेको नहीं लगाता। इस प्रकार भी भिक्षुओ ! उपक्रम सफल होता है, प्रधान सफल होता है।

"और फिर भिक्षुओ ! यहाँ लोकमें तथागत अर्हत, सम्यक्-संबुद्ध विद्या-आचरण-युक्त सुगत० [1]उत्पन्न होते हैं। ०धर्म-उपदेश करते हैं।०। (जिसे सुन कोई) घर छोड़ बेघर हो प्रव्रजित होता है।०। वह इस आर्य-शील-स्कंधसे संयुक्त हो, अपनेमें निर्दोष सुख अनुभव करता है। ० वह इस आर्य-इन्द्रिय-संवरसे युक्त होता है।०। वह इस आर्य-शील-स्कंधसे युक्त हो, इस आर्य इन्द्रिय-संवरसे०, इस आर्य स्मृति-संप्रजन्यसे युक्त हो, एकान्त-वास-स्थान, वृक्षके नीचे, पर्वत, कंदरा, गिरिगुहा, श्मशान, वन-प्रस्थ, मैदान, पुआलका ढेर सेवन करता है। वह भोजनके बाद···आसन मार शरीरको सीधा रख, स्मृतिको संमुख उपस्थित कर बैठता है। वह लोकमें लोभ (=अभिध्या) को छोड़, अभिध्या-रहित चित्तसे विहरता है, अभिध्यासे चित्तको परिशुद्ध करता है। व्यापाद=प्रद्वेष (द्वेष) को छोड़, अ-व्यापन्न चित्त हो, सब प्राणियोंका हित = अनुकम्पक हो विहरता है। स्त्यान-मृद्ध छोड़०, औद्धत्य-कौकृत्य छोड़०, विचिकित्सा छोड़०। वह इन पाँच चित्तके नीवरणोंको छोड़० प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। उसका भिक्षुओ ! उपक्रम सफल होता है०।

"और फिर भिक्षुओ ! ० द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो०।० उपक्रम सफल होता है०।

"और फिर०। तृतीय ध्यानको प्राप्त हो०। इस प्रकार भी०।

"और फिर०। ०चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त हो०। इस प्रकार भी०।

"वह इस प्रकार समाहित चित्त०[2] अनेक प्रकारके पूर्व-निवासोंको अनुस्मरण करता है। इस प्रकार भी०।

"वह इस प्रकार समाहित-चित्त० दिव्य चक्षुसे प्राणियोंको च्युत होते, उत्पन्न होते० जानता है। इस प्रकार भी०।

"वह इस प्रकार समाहित चित्त० 'जन्म खतम हो गया०' जानता है। इस प्रकार भी०।

"भिक्षुओ ! तथागत ऐसे वाद (के मानने) वाले हैं। ऐसे वादवाले तथागतकी धर्मानुसार (= न्यायानुसार) प्रशंसाके दस स्थान होते हैं। (१) यदि भिक्षुओ ! प्राणी पूर्व किये कर्मोंके कारण सुख-दुःख भोगते हैं, तो अवश्य भिक्षुओ ! तथागत पहिलेके पुण्य करनेवाले रहे हैं, जो कि इस समय आस्रव (= मल)-विहीन सुख-वेदनाको अनुभव करते हैं। (२) यदि भिक्षुओ ! ०ईश्वर-निर्माणके कारण० ; तो अवश्य भिक्षुओ ! तथागत अच्छे ईश्वरसे निर्मित हैं, जो कि इस समय०। (३) ०भवितव्यताके कारण० ; तथागत उत्तम भवितव्यतावाले हैं०। (४) ०अभिजातिके कारण० ; तथागत उत्तम अभिजातिवाले०। (५) ०इसी जन्मके उपक्रमके कारण० ; ०तथागत इस जन्मके सुन्दर उपक्रमवाले०। (६) यदि भिक्षुओ ! प्राणी पूर्वकृत (कर्मों) के कारण सुख-दुःख नहीं अनुभव करते हैं, तो तथागत प्रशंसनीय हैं ; यदि पूर्वकृत (कर्मों) के कारण सुख-दुःख नहीं अनुभव करते, तो (भी)

१. पृष्ठ १६०।   २. पृष्ठ १६२।

तथागत प्रशंसनीय हैं। (७) यदि भिक्षुओ! प्राणी ईश्वर-निर्माणके कारण०, ईश्वर निर्माणके कारण नहीं०। (८) भवितव्यताके कारण०; भवितव्यताके कारण नहीं०। (९) अभिजातिके कारण नहीं०। (१०) ०इस जन्मके उपक्रमके कारण०; इस जन्मके उपक्रमके कारण नहीं०। भिक्षुओ! तथागत इस वाद (के मानने) वाले हैं।०।"

भगवान्‌ने यह कहा। संतुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान्‌के भाषणका अभिनन्दन किया।

\+ \+ \+ \+

(४)

केसपुत्तिय-सुत्त। पूर्वाराममें प्रथम वर्षावास। आलवक-सुत्त

(ई. पू. ५०७–५०६)।

ऐसा[1] मैंने सुना—एक समय भगवान् कोसलमें चारिका करते बड़े भारी भिक्षु-संघके साथ जहाँ [2]कालामों का केस-पुत्त नामक निगम था, वहाँ पहुँचे।

केसपुत्तिय (= केशपुत्रीय) कालामोंने सुना—शाक्य-पुत्र० श्रमण गौतम केस-पुत्तमें प्राप्त हुए हैं। उन भगवान् गौतमका ऐसा मंगल कीर्ति-शब्द फैला हुआ—[3]०। इस प्रकारके अर्हतोंका दर्शन अच्छा होता है। तब केसपुत्तिय कालाम जहाँ भगवान् थे वहाँ आये। आकर कोई कोई भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये, कोई कोई भगवान्‌को संमोदन कर…एक ओर बैठ गये। कोई कोई जिधर भगवान् थे उधर हाथ जोड़कर०। कोई कोई नाम-गोत्र सुनाकर एक ओर बैठ गये। कोई कोई चुपचाप एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे केसपुत्तिय कालामोंने भगवान्‌को यह कहा—

"भन्ते! कोई कोई श्रमण ब्राह्मण केस-पुत्तमें आते हैं, अपने ही वाद (= मत) को प्रकाशित करते हैं, द्योतित करते हैं, दूसरेके वादपर नाराज होते हैं (=खुंसेन्ति) निन्दा करते हैं, परित्यक्त कराते हैं। भन्ते! दूसरे भी कोई कोई श्रमण ब्राह्मण केस-पुत्तमें आते हैं, वह भी आपने ही वादको०। तब भन्ते! हमको कांक्षा = विचिकित्सा (= संशय) होती है—कौन इन आप श्रमण ब्राह्मणोंमें सच कहता है; कौन झूठ?"

"कालामो! तुम्हारी कांक्षा = विचिकित्सा ठीक है, कांक्षनीय स्थानमें ही तुम्हें सन्देह उत्पन्न हुआ है। आओ कालामो! मत तुम अनुश्रव (=श्रुत) से, मत परंपरासे, मत 'ऐसाही है' से, मत पिटक-संप्रदान (= अपने मान्य शास्त्रकी अनुकूलता) से, मत तर्कके कारणसे, मत नय (= न्याय)-हेतुसे, मत (वक्ताके) आकारके विचारसे, मत अपने चिर-विचारित मतके अनुकूल होनेसे, मत (वक्ताके) भव्य रूप होनेसे, मत 'श्रमण हमारा गुरु (=बड़ा) है' से, (विश्वास करो)। जब कालामो तुम अपने ही जानो—यह धर्म अकुशल, यह धर्म सदोष, यह धर्म विज्ञ-निंदित (है), यह लेने, ग्रहण करनेपर अहित=दुःखके लिए होता है, तब कालामो! तुम (उसे) छोड़ देना। तब क्या मानते हो कालामो! पुरुषके भीतर उत्पन्न हुआ लोभ हितके लिए होता है, या अहितके लिए?" "अहितके लिए, भन्ते!"

---

१. अ. नि. ३:७:५। २. अ. क. 'कालाम नामक क्षत्रिय'। ३. पृष्ठ ३३।

"कालामो ! यह लुब्ध (=लोभमें पड़ा) पुरुष=पुद्गल, लोभसे अभिभूत(=लिप्त) =परिगृहीत-चित्त, प्राण भी मारता है, चोरी भी करता है, पर-स्त्री-गमन भी करता है, झूठ भी बोलता है, दूसरेको भी वैसा करनेको प्रेरित करता है; जो कि चिरकाल तक उसके अहित= दुःखके लिए होता है ?" "हाँ, भन्ते !"

"तो क्या मानते हो कालामो ! पुरुषके भीतर उत्पन्न हुआ'''द्वेष हितके लिए होता है, या अहितके लिए ?" "अहितके लिए भन्ते !"

"कालामो ! द्वेष-युक्त पुरुष० ।" "हाँ भन्ते !"

"०मोह० ।" "हाँ भन्ते !"

"तो क्या मानते हो कालामो ! यह धर्म कुशल है, या अकुशल ?"

"अकुशल, भन्ते !"

"सावद्य (=सदोष) है, या निरवद्य (=निर्दोष) ?"

"सावद्य, भन्ते !"

"*विज्ञ-गर्हित या विज्ञ-प्रशंसित ?" "विज्ञ-गर्हित, भन्ते !*"

"प्राप्त करनेपर = ग्रहण करनेपर अहितके लिए = दुःखके लिए है, या नहीं ?"

"०ग्रहण करनेपर भन्ते ! अहित० के लिए है, ऐसा हमें होता है ।"

"इस प्रकार कालामो ! जो यह मैंने कहा—'आओ कालामो ! मत तुम अनुश्रवसे०', यह जो मैंने कहा, यह इसी कारण कहा । इसलिए कालामो ! मत तुम अनुश्रवसे० । जब तुम कालामो ! अपने ही समझो,—'यह धर्म कुशल (=अच्छे), यह धर्म अनवद्य (=निर्दोष), यह धर्म विज्ञ-प्रशंसित, यह धर्म प्राप्त करनेपर=ग्रहण करनेपर, हित=सुखके लिए है', तब तुम कालामो ! (उन्हें) प्राप्त कर विहरो । तो क्या मानते हो कालामो ! पुरुषके भीतर उत्पन्न हुआ अ-लोभ हितके लिए होता है, या अहितके लिए ?"

"हितके लिए, भन्ते !"

"कालामो ! लोभ-रहित पुरुष=पुद्गल लोभसे अन्-अभिभूत = अ-गृहीत चित्त हो, प्राण नहीं मारता है० ?" "हाँ भन्ते !"

"०अद्वेष० ?" ० । ० । "०अमोह० ?" ० । ० ।

"तो क्या मानते हो कालामो ! यह धर्म कुशल (=अच्छे) है, या अकुशल ?" ० । ० ।

"सो कालामो ! आर्य-श्रावक इस प्रकार अभिध्या (=लोभ)-रहित व्यापाद (=द्वेष)-रहित, अ-संमूढ़ (=मोहरहित) स्मृति और संप्रजन्यके साथ मैत्री-युक्त चित्तसे०, करुणायुक्त चित्तसे०, मुदिता-युक्त-चित्तसे०, उपेक्षा-युक्त चित्तसे, एक दिशा प्लावित कर विहरता है, वैसेही दूसरी, वैसेही तीसरी, वैसेही चौथी, इसी तरह ऊपर, नीचे, टेढ़े, सबके ख्यालसे, सबके अर्थ, सभी लोकको 'उपेक्षायुक्त विपुल = महद्गत = अप्रमाण, अ-वैर = अ-व्यापन्न चित्तसे प्लावित कर विहरता है । कालामो ! (जो) यह आर्य-श्रावक, ऐसा अ-वैर-चित्त= ऐसा अ-व्यापन्न-चित्त, ऐसा अ-संक्लिष्ट-चित्त=ऐसा विशुद्ध-चित्त है, उसको इसी जन्ममें चार आश्वास (=आश्वासन) मिले होते हैं ।—(१) 'यदि परलोक है, यदि सुकृत दुष्कृत कर्मोंका

---

१. पृष्ठ १६२ ।

फल = विपाक है, तो निश्चय ही मैं काया छोड़ मरनेके बाद सुगति = स्वर्गलोकमें उत्पन्न होऊँगा, यह उसे प्रथम आश्वास प्राप्त हुआ रहता है। (२) यदि परलोक नहीं है, यदि सुकृत दुष्कृत कर्मोंका फल = विपाक नहीं है, तो इसी जन्ममें इस वक्तमें अ-वैर = अ-व्यापन्न······सुखपूर्वक अपनेको रखता हूँ, यह उसको दूसरा आश्वास० ०। (३) यदि (कर्म) करते पाप (=बुरा) किया जाये, तो भी मैं किसीका बुरा नहीं चाहता, बिना किये फिर पापकर्म मुझे क्यों दुःख पहुँचायेगा? यह उसे तीसरा ०। (४) यदि करते हुये पाप न किया जाय, (तो) इस समय मैं दोनोंसे ही मुक्त अपनेको देखता हूँ' यह उसे चौथा ०। सो कालामो! वह आर्य-श्रावक ऐसा अ-वैर चित्त ० है, उसको इसी जन्ममें यह चार आश्वास मिले होते हैं।"

"यह ऐसाही है, भगवान्! यह ऐसाही है, सुगत! भन्ते! वह आर्यश्रावक ऐसा अवैर-चित्त ० चार आश्वास ०। ० प्रथम आश्वास ०। ० द्वितीय आश्वास ०। ० तृतीय आश्वास ०। ० चतुर्थ आश्वास ०। ० उसको इसी जन्ममें यह चार आश्वास ०। आश्चर्य! भन्ते!! अद्भुत! भन्ते!! ० आजसे भन्ते! भगवान् हमें अञ्जलिबद्ध शरणागत उपासक धारण करें।"

पूर्वाराममें प्रथम वर्षावास।

[1]भगवान् (=शास्ता) नव मासमें चारिका करके पुनः श्रावस्ती आये। विशाखाके प्रासादका काम भी नव मासमें समाप्त हुआ।···। 'शास्ता जेतवन जाते हैं'—सुनकर अगवानी कर शास्ताको अपने विहारमें ले जाकर वचन लिया—'भन्ते! भगवान् इस चातुर्मासमें भिक्षु-संघको लेकर यहीं वास करें, मैं प्रासादका उत्सव करूँगी।' शास्ताने स्वीकार किया। वह (विशाखा) तबसे बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको विहारमें ही (भिक्षा-) दान देती थी। तब उसकी सखी (=सहायिका) सहस्रके मूल्यका एक वस्त्र ले आकर बोली—"सहायिके! मैं इस वस्त्रको तेरे प्रासादमें···फर्श बिछाना चाहती हूँ, बिछानेका स्थान मुझे बतला।"

"सहायिके! यदि मैं तुझे कहूँ—'अवकाश नहीं है', तो तू समझेगी—'तू मुझे अवकाश देना नहीं चाहती।' स्वयं ही प्रासादके दोनों तल, और हजार कोठरियोंको देखकर बिछानेका स्थान ढूँढ ले।"

वह सहस्र मूल्यके वस्त्रको लेकर वहाँ विचरण करती, उससे अल्प-मूल्यका वस्त्र न देख—'मैं इस प्रासादमें पुण्य-भाग नहीं पा रही हूँ' (सोच) दुखित हो, एक जगह रोती खड़ी थी। तब आनन्द स्थविरने उसे देख पूछा—"क्यों रोती है?" उसने यह बात कह दी। स्थविरने 'सोच मत कर, मैं तुझे बिछानेका स्थान बताऊँगा' कह, 'सीढ़ी और पैर धोनेके बीच पाद पोंछनक बनाकर बिछा दे, भिक्षु पैर धोकर पहिले वहाँ पोंछकर भीतर जायँगे, इस प्रकार तुझे महाफल होगा' कहा। विशाखाने उस स्थानका ख्याल न किया था। विशाखाने चतुर्मास भर विहारके भीतर बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको दान (= भोजन) दिया। अन्तिम दिन भिक्षु-संघको चीवर-शाटक दिये। संघमें सबसे नये भिक्षुको दिये चीवर सहस्र मूल्यके थे। सबके पात्रोंको भरकर भैषज्य (= घी, गुड़ आदि) दिया। दान देनेमें

[1]. धम्मपद अ. क. ४:४४।

करोड़ खर्च हुए। इस प्रकार विहारकी भूमि लेनेमें नव करोड़, विहार बनवानेमें नव करोड़, विहार-उत्सवमें नव (करोड़), सब सत्ताईस करोड़ उसने बुद्ध-शासनमें दान दिये। स्त्री हो, मिथ्यादृष्टिके घरमें वास करते किसी दूसरेका ऐसा दान नहीं है…।

आलवक-सुत्त

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् आलवीमें गायोंके मार्ग (= गो-मग्ग) में सिरस-वन (सिंसपा-वन) में पत्तोंके बिछौनेपर विहार करते थे।

तब हस्तक आलवकने जंघाविहार (= चहलकदमी) के लिए टहलते विचरते हुये, भगवान्‌को गोमार्ग शिंसपा-वनमें पर्ण-संस्तरपर बैठे देखा। देखकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ पहुँचकर भगवान्‌को अभिवादन कर, एक ओर बैठा। एक ओर बैठे हस्तक आलवकने भगवान्‌को कहा—

"भन्ते! भगवान् सुखसे तो सोये?"

"हाँ कुमार! सुखसे सोया, जो लोकमें सुखसे सोते हैं, मैं उनमेंसे एक हूँ।"

"भन्ते! (यह) हेमन्तकी शीतल रात, हिम-पातका समय [2]अन्तराष्टक है। [3]गो-कंटक-हत कड़ी भूमि है, पर्णासन पतला है, वृक्षके पत्र विरल हैं, काषाय वस्त्र शीतल हैं, वेरम्भ वायु शीतल है, तब भी भगवान् ऐसा कहते हैं—'हाँ कुमार! सुखसे सोया०।'"

"तो कुमार! तुझे ही पूछता हूँ, जैसा तुझे ठीक लगे, वैसा मुझे उत्तर दे। तो क्या … कुमार! (किसी) गृहपति (वैश्य) या गृहपति-पुत्रका लीपा-पोता, वायु-रहित, द्वारबंद, खिड़की-बन्द कूटागार (= कोठा) हो, वहाँ चार अंगुल पोस्तीनका बिछा (= गोणकाथत), पट्टी-बिछा, कालीन-बिछा, उत्तम कादली मृगचर्म बिछा, दोनों (=सिरहाने-पैरहने) ओर लाल तकियोंवाला, ऊपर वितानवाला पलंग हो; तैल-प्रदीप भी जल रहा हो। चार भार्यायें सुन्दर-सुन्दर (सेवाओं) के साथ हाजिर हों, तो क्या मानते हो, कुमार! वह सुखसे सोवेगा या नहीं, यहाँ तुम्हें कैसा होता है?"

"भन्ते! वह सुखसे सोवेगा। जो लोकमें सुखसे सोते हैं, वह उनमेंसे एक होगा।"

"तो क्या मानते हो कुमार! यदि उस गृहपति या गृहपति-पुत्रको, रागसे उत्पन्न होनेवाले कायिक या मानसिक परिदाह (= जलन) उत्पन्न हों; तो उन रागज परिदाहोंसे जलते हुये क्या वह दुःखसे सोवेगा?"

"हाँ, भन्ते!"

"कुमार! वह गृहपति या गृहपति-पुत्र जिन रागज-परिदाहोंसे = जलते दुःखसे सोते हैं, तथागतका वह (रागज परिदाह) नष्ट = उच्छिन्न-मूल = मस्तक छिन्न तालकी तरह किया = अभाव-प्राप्त, भविष्यमें न उत्पन्न होने लायक (हो गया है); इसलिए मैं सुखसे

---

1. अ. नि. ३ : ४ : ५। 2. अ. क. "माघके अन्तके चार दिन और फागुनके आदिके चार दिन अंतराष्टक कहे जाते हैं।" 3. अ. क. "वर्षा बरसनेपर गायोंके जाने आनेके स्थानपर खुरोंसे कीचड़ उभड़ आता है, वह धूप-हवासे सूखकर आरेके दाँतकी तरह दुःस्पर्श होता है, उसीको लक्ष्यकर गोकंटक-हत…कहा।"

सोया। तो क्या मानते हो, कुमार! यदि उस गृहपति ० को द्वेषसे उत्पन्न (=द्वेषज) ०। ०। ० मोहसे उत्पन्न (=मोहज) कायिक या मानसिक परिदाह उत्पन्न हों ० ?"

"हाँ, भन्ते!"

"कुमार! ० इसलिए मैं सुखसे सोया।

"परिनिर्वृत्त (= मुक्त) ब्राह्मण सर्वदा सुखसे सोता है।

जो कि शीतल स्वभाव, उपधि (=राग आदि)-रहित, कामोंमें लिप्त नहीं है।

सब आसक्तियोंको छिन्न कर हृदयसे भयको हटा कर।

मनमें शांति प्राप्त कर, उपशान्त हो (वह) सुखसे सोता है।"

\+ \+ \+

(५)

रट्ठपाल-सुत्त (ई. पू. ५०६)

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् कुरु (देश) में महाभिक्षुसंघके साथ चारिका करते, जहाँ थुल्लकोट्ठित नामक कुरुओंका निगम (=कस्बा) था, वहाँ पहुँचे।

थुल्लकोट्ठित (= स्थूलकोष्ठित) वासी ब्राह्मण गृहपतियोंने सुना—शाक्यपुत्र०[1] श्रमण गौतम थुल्लकोट्ठितमें प्राप्त हुए हैं०। ० [2]इस प्रकारके अर्हतोंका दर्शन अच्छा होता है। तब थुल्लकोट्ठितके ब्राह्मण-गृहपति जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर कोई कोई अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। ०कोई कोई चुपचाप एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे थुल्लकोट्ठित-वासी ब्राह्मण-गृहपतियोंको भगवान्‌ने धार्मिक कथासे संदर्शित, प्रेरित, समुत्तेजित, सम्प्रशंसित किया।

उस समय उसी थुल्लकोट्ठितके अग्रकुलिक का पुत्र राष्ट्रपाल उस परिषद्‌में बैठा था। तब राष्ट्रपालको ऐसा हुआ: जैसे भगवान् धर्म उपदेश कर रहे हैं, यह अत्यन्त परिशुद्ध संखसा धुला ब्रह्मचर्य-पालन गृहमें वास करते सुकर नहीं है। क्यों न मैं केश-श्मश्रु मुँडा कर, काषाय वस्त्र पहिन कर, घरसे बेघर हो प्रव्रजित हो जाऊँ। तब थुल्लकोट्ठित-वासी ब्राह्मण-गृहपति भगवान्‌से धार्मिक कथा द्वारा ०समुत्तेजित संप्रशंसित हो, भगवान्‌के भाषणको अभिनंदन, अनुमोदन कर, आसनसे उठ; भगवान्‌को अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर, चले गये। तब राष्ट्रपाल कुलपुत्र ०ब्राह्मणोंके चले-जानेके थोड़ी ही देर बाद जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे राष्ट्रपाल कुल-पुत्रने भगवान्‌को कहा—

"भन्ते! जैसे जैसे मैं भगवान्‌के उपदेश किये धर्मको समझता हूँ, यह० शंख-लिखित ब्रह्मचर्य-पालन गृहमें वास करते सुकर नहीं है। भन्ते? मैं भगवान्‌के पास प्रव्रज्या पाऊँ उपसंपदा पाऊँ।"

"राष्ट्रपाल! क्या तूने मातापितासे घरसे बेघर प्रव्रज्याके लिए आज्ञा पाई है?"

"भन्ते! ० आज्ञा नहीं पाई।"

"राष्ट्रपाल! माता-पितासे बिना आज्ञा पायेको तथागत प्रव्रजित नहीं करते।"

---

१. म. नि. २: ४: २। २. पृष्ठ ३३।

"भन्ते ! तो मैं वैसा करूँगा, जिसमें माता-पिता मुझे ० प्रव्रज्याके लिए आज्ञा दें।"

तब राष्ट्रपाल कुल-पुत्र आसनसे उठकर, भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर जहाँ माता-पिता थे, वहाँ गया। जाकर माता-पिताको कहा—

"अम्मा ! तात ! जैसे जैसे मैं भगवान्‌के उपदेश किये धर्मको समझता हूँ, यह० शंख-लिखित (= छिले शंखकी तरह निर्मल श्वेत) ब्रह्मचर्य-पालन, गृहमें वास करते सुकर नहीं है। मैं ० प्रव्रजित होना चाहता हूँ। घरसे बेघर हो प्रव्रजित होनेके लिए मुझे आज्ञा दो।"

ऐसा कहने पर राष्ट्रपाल कुल-पुत्रके माता-पिताने राष्ट्रपाल ० को कहा—

"तात राष्ट्रपाल ! तुम हमारे [1]प्रिय = मनाप, सुखमें बढ़े, सुखमें पले एकलौते पुत्र हो। तात राष्ट्रपाल ! तुम दुःख कुछ भी नहीं जानते। आओ तात राष्ट्रपाल ! खाओ, पियो, विचरो। खाते पीते विचरते, कामोंका परिभोग करते, पुण्य करते रमण करो। हम तुम्हें ० प्रव्रज्याके लिए आज्ञा न देंगे। मरने पर भी हम तुमसे बे-चाह न होंगे, तो फिर कैसे हम तुम्हें जीते जी० प्रव्रजित होनेकी आज्ञा देंगे ?"

दूसरी बार भी ०। तीसरी बार भी०।

तब राष्ट्रपाल कुलपुत्र माता-पिताके पास प्रव्रज्या (की आज्ञा) को न पा, वहीं नंगी धरतीपर पड़ गया।—'यहीं, मेरा मरण होगा, या प्रव्रज्या'। तब ०माता-पिताने राष्ट्रपाल ० को कहा—

"तात राष्ट्रपाल ! तुम हमारे प्रिय० एकलौते पुत्र हो०।"

ऐसा कहनेपर राष्ट्रपाल कुल-पुत्र चुप रहा।

०दूसरी बार भी०।०। ०तीसरी बार भी राष्ट्रपाल कुल पुत्र चुप रहा।

तब राष्ट्रपाल०के माता-पिता जहाँ राष्ट्रपाल कुलपुत्रके मित्र थे, वहाँ गये। जाकर…कहा—

"तातो ! यह राष्ट्रपाल कुलपुत्र नंगी धरतीपर पड़ा है—'यहीं मरण होगा या प्रव्रज्या'। आओ तातो ! जहाँ राष्ट्रपाल है, वहाँ जाओ। जाकर राष्ट्रपाल०को कहो—सौम्य राष्ट्रपाल ! तुम माता-पिताके प्रिय० एकलौते पुत्र हो०।"

तब राष्ट्रपाल०के मित्र राष्ट्रपाल०के माता-पिता (की बात)को सुनकर, जहाँ राष्ट्रपाल० था, वहाँ गये; जाकर० कहा—

"सौम्य राष्ट्रपाल ! तुम माता-पिताके प्रिय० एकलौते पुत्र हो०।"

ऐसा कहनेपर राष्ट्रपाल० चुप रहा। दूसरी बार भी०।०। तीसरी बार भी०।०।

तब राष्ट्रपाल०के मित्रों (= सहायक)ने० राष्ट्रपाल०के माता-पिताको कहा—

"अम्मा ! तात ! यह राष्ट्रपाल० वहीं नंगी धरतीपर पड़ा है—'यहीं मेरा मरण होगा, या प्रव्रज्या।' यदि तुम राष्ट्रपाल०को ०अनुज्ञा न दोगे, तो वहीं उसका मरण होगा; यदि तुम ०आज्ञा दोगे, प्रव्रजित हुये भी उसे देखोगे; यदि राष्ट्रपाल० प्रव्रज्यामें मन न लगा

१. तुलना करो—पृष्ठ ११६-२०।

सका, तो उसकी और दूसरी क्या गति होगी? यहीं लौट आयेगा। (अतः) राष्ट्रपाल०को प्रव्रज्याकी अनुज्ञा दो।"

"तातो! हम राष्ट्रपाल० की ०प्रव्रज्याकी अनुज्ञा (=स्वीकृति) देते हैं; लेकिन प्रव्रजित हो, माता-पिताको दर्शन देना होगा।"

तब राष्ट्रपाल कुल-पुत्रके सहायक०, जाकर राष्ट्रपाल०को बोले—

"सौम्य राष्ट्रपाल! तू माता-पिताका प्रिय० एकलौता पुत्र है०। माता-पितासे ०प्रव्रज्या के लिये तू अनुज्ञात है। लेकिन प्रव्रजित हो माता-पिताको दर्शन देना होगा।"

तब राष्ट्रपाल० उठ कर, बल ग्रहण कर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर० एक ओर बैठे हुये० भगवान्‌को कहा—

"भन्ते! मैं माता-पितासे० प्रव्रज्याके लिए अनुज्ञात हूँ। मुझे भगवान् प्रव्रजित करें।"

राष्ट्रपाल०ने भगवान्‌के पास प्रव्रज्या और उपसम्पदा प्राप्त की। तब आयुष्मान् राष्ट्रपालके उपसम्पन्न (=भिक्षु) होनेके थोड़ी ही देरके बाद, आधामास उपसम्पन्न होनेपर, भगवान् थुल्लकोट्ठितमें यथेच्छ विहार कर जिधर श्रावस्ती थी, उधर चारिकाके लिए चल पड़े। क्रमशः चारिका करते जहाँ श्रावस्ती थी, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल ···० आत्म-संयमी हो [1]विहरते जल्दी ही, जिसके लिए कुल-पुत्र ठीकसे घरसे बेघर हो प्रव्रजित होते हैं, उस सर्वोत्तम ब्रह्मचर्य-फलको इसी जन्ममें स्वयं अभिज्ञान कर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरने लगे। 'जाति (=जन्म) क्षीण हो गई, ब्रह्मचर्य-पालन हो चुका, करना था सो कर लिया, और यहाँ करनेको नहीं है'—जान लिया। आयुष्मान् राष्ट्रपाल अर्हतोंमें एक हुये।

तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल जहाँ भगवान् थे,···जा कर, भगवान्‌को अभिवादन कर··· एक ओर बैठे···भगवान्‌को बोले—

"भन्ते! यदि भगवान् अनुज्ञा दें, तो मैं माता-पिताको दर्शन देना चाहता हूँ।"

तब भगवान्‌ने मनसे राष्ट्रपालके मनके विचारको जाना। जब भगवान्‌ने जान लिया, राष्ट्रपाल कुल-पुत्र (भिक्षु-) शिक्षाको छोड़, गृहस्थ बननेके अयोग्य है, तब भगवान्‌ने आयुष्मान् राष्ट्रपालको कहा—

"राष्ट्रपाल! जिसका इस वक्त समय समझे, (वैसा कर)।"

तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल आसनसे उठ भगवान्‌को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर, शयनासन संभाल (=जिम्मे लगा), पात्र-चीवर ले, जिधर थुल्लकोट्ठित था, उधर चारिकाके लिये चल पड़े। क्रमशः चारिका करते जहाँ थुल्ल-कोट्ठित था, वहाँ पहुँचे। वहाँ आयुष्मान् राष्ट्रपाल थुल्लकोट्ठितमें राजा कौरव्यके मिगाचीर (नामक उद्यान) में विहार करते थे।

तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल पूर्वाह्न-समय पहन कर पात्र-चीवर ले, थुल्ल-कोट्ठितमें पिंडके लिए प्रविष्ट हुये। थुल्लकोट्ठितमें बिना ठहरे पिंडचार करते, जहाँ अपने पिताका घर था, वहाँ पहुँचे। उस समय आयुष्मान् राष्ट्रपालका पिता बिचली द्वारशालामें बाल बनवा रहा

[1] अ. क. "बारह वर्ष विहरते।"

था। पिताने दूरसे ही आयुष्मान् राष्ट्रपालको आते देखा। देखकर कहा—'इन मुंडकों श्रमणकोंने मेरे प्रिय=मनाप एकलौते पुत्रको प्रव्रजित कर लिया।' तब आयुष्मान् राष्ट्रपालने अपने पिताके घरसे न दान पाया, न प्रत्याख्यान (=इन्कार), बल्कि फट्कार ही पाई। उस समय आयुष्मान् राष्ट्रपालकी ज्ञाति-दासी बासी कुल्माष (=दाल) फेंकना चाहती थी। तब आयुष्मान् राष्ट्रपालने उस ज्ञाति-दासी (=जातिवालोंकी दासी)को कहा—

"भगिनी! यदि बासी कुल्माषको फेंकना चाहती है, तो यहाँ मेरे पात्रमें डाल दे।"

तब ०ज्ञाति-दासीने उस बासी कुल्माषको आयुष्मान् राष्ट्रपालके पात्रमें डालते समय, हाथों, पैरों, और स्वरको पहिचान लिया। तब ०ज्ञाति-दासी जहाँ आयुष्मान् राष्ट्रपालकी माता थी, वहाँ गई; जाकर आयुष्मान् राष्ट्रपालकी माताको बोली—

"अरे! अय्या!! जानती हो, आर्यपुत्र राष्ट्रपाल आये हैं?"

"जे! यदि सच बोलती है, तो अदासी होगी।"

तब आयुष्मान् राष्ट्रपालकी माता जहाँ आयुष्मान् राष्ट्रपालका पिता था, वहाँ… जाकर…बोली—

"अरे! गृहपति!! जानते हो, राष्ट्रपाल कुल-पुत्र आया है?"

उस समय आयुष्मान् राष्ट्रपाल उस बासी कुल्माषको किसी भीतके सहारे (बैठ कर) खा रहे थे। आयुष्मान् राष्ट्रपालका पिता जहाँ आयुष्मान् राष्ट्रपाल थे, वहाँ गया, जाकर आयुष्मान् राष्ट्रपालको बोला—

"तात राष्ट्रपाल! बासी दाल खाते हो। तो तात राष्ट्रपाल! घर चलना चाहिये।"

"गृहपति! घर छोड़ बेघर हुये हम प्रव्रजितोंका घर कहाँ? गृहपति! हम बेघरके हैं। तुम्हारे घर गया था, वहाँ न दान पाया न प्रत्याख्यान, बल्कि फट्कार ही पाई।"

"आओ, तात राष्ट्रपाल! घर चलें।"

"बस गृहपति! आज मैं भोजन कर चुका।"

"तो तात राष्ट्रपाल! कलका भोजन स्वीकार करो।"

आयुष्मान् राष्ट्रपालने मौनसे स्वीकार किया।

तब आयुष्मान् राष्ट्रपालका पिता, आयुष्मान् राष्ट्रपालकी स्वीकृतिको जान कर, जहाँ अपना घर था, वहाँ…जाकर, हिरण्य (=अशर्फी), सुवर्णकी बड़ी राशि करवा, चटाईसे ढँकवा कर, आयुष्मान् राष्ट्रपालकी स्त्रियोंको आमंत्रित किया—

"आओ बहुओ! जिन अलंकारोंसे अलंकृत हो पहिले, राष्ट्रपाल कुल-पुत्रको तुम प्रिय=मनाप होती थी, उन अलंकारोंसे अलंकृत होओ।" तब आयुष्मान् राष्ट्रपालके पिताने उस रातके बीत जानेपर, अपने घरमें उत्तम खाद्य भोज्य तय्यार कर, आयुष्मान् राष्ट्रपालको काल सूचित किया—'काल है तात राष्ट्रपाल! भोजन तय्यार है'। तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल पूर्वाह्न-समय पहिन कर पात्र-चीवर ले जहाँ उनके पिताका घर था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसन पर बैठे। तब आयुष्मान् राष्ट्रपालके पिता हिरण्य, सुवर्णकी राशियें खोल कर आयुष्मान् राष्ट्रपालसे बोला—

"तात राष्ट्रपाल! यह तेरी माताका (=मातृक) धन है, पिताका पितामहका

अलभ है। तात राष्ट्रपाल ! भोग भी भोग सकते हो, पुण्य भी कर सकते हो। आओ तुम तात राष्ट्रपाल ! (भिक्षु-) शिक्षा (=दीक्षा) को छोड़ गृहस्थ बन, भोगोंको भोगो, और पुण्योंको करो।"

"यदि गृहपति ! तू मेरी बात करे, तो इस हिरण्य-सुवर्ण-पुंजको गाड़ियोंपर रखवा, ढुलवाकर गंगा नदीकी बीच धारमें डाल दे। सो किस लिए ? गृहपति ! इसके कारण तुझे शोक = परिदेव, दुःख=दौर्मनस्य=उपायास न उत्पन्न होंगे।"

तब आयुष्मान् राष्ट्रपालकी प्रत्येक भार्या पैर पकड़ आयुष्मान् राष्ट्रपालको बोलीं—

"आर्यपुत्र ! कैसी वह अप्सरायें हैं, जिनके लिए तुम ब्रह्मचर्य पालन कर रहे हो ?"

"बहिनो ! हम अप्सराओंके लिए ब्रह्मचर्य नहीं पालन कर रहे हैं।"

भगिनी (= बहिन) कहकर हमें आर्य-पुत्र राष्ट्रपाल पुकारते हैं (सोच), वह वहीं मूर्छित हो गिर पड़ीं। तब आयुष्मान् राष्ट्र-पालने पिताको कहा—

"गृहपति ! यदि भोजन देना है, तो दे। हमें कष्ट मत दे।"

"भोजन करो तात राष्ट्रपाल ! भोजन तय्यार है।"

तब आयुष्मान् राष्ट्रपालके पिताने उत्तम खाद्य-भोज्यसे अपने हाथ आयुष्मान् राष्ट्रपालको संतर्पित-संप्रवारित किया। तब आयुष्मान् राष्ट्रपालने भोजन कर पात्रसे हाथ हटा, खड़े-खड़े यह गाथायें कहीं—

"देखो (इस) विचित्र बने बिंब (= आकार) को; (जो) व्रणपूर्ण, सज्जित।
आतुर, बहु-संकल्प (है); जिसकी स्थिति स्थिर (= ध्रुव) नहीं है॥
देखो विचित्र बने रूपको, (जो) मणि और कुण्डलके साथ,
हड्डी-चमड़ेसे बँधा, वस्त्रके साथ शोभता है॥
महावर लगे पैर, चूर्णक (=पौडर) पोता मुँह।
बालक (= मूर्ख) को मोहनेमें समर्थ है, पार-गवेषीको नहीं।
बल पड़े केश, अंजन-अंजित नेत्र।
बालकको मोहनेमें समर्थ हैं, पार-गवेषीको नहीं।
नई विचित्र अंजन-नालीकी भाँति अलंकृत (यह) सड़ा शरीर।
बालकको०।
व्याधाने जाल फैलाया, (किंतु) मृग जालमें नहीं आया।
चाराको खाकर व्याधोंको रोते (छोड़) जा रहा हूँ॥"

तब आयुष्मान् राष्ट्रपालने खड़े-खड़े इन गाथाओंको कह कर, जहाँ कौरव्यका मिगाचीर (उद्यान) था, वहाँ गये। जाकर एक वृक्षके नीचे दिनके विहारके लिए बैठे।

तब राजा कौरव्यने मिगव (नामक माली) को संबोधित किया—

"सौम्य मिगव (= मृगयु)! मिगाचीरको साफ करो, उद्यान-भूमि=सुभूमि देखनेके लिए जाऊँगा।"

मिगवने राजा कौरव्य को "अच्छा देव !" कहकर, मिगाचीरको साफ करते, एक

वृक्षके नीचे दिनके विहारके लिए बैठे आयुष्मान् राष्ट्रपालको देखा। देखकर जहाँ राजा कौरव्य था, वहाँ गया; जाकर कौरव्यको बोला—

"देव! मिगाचीर साफ है, और वहाँ इसी थुल्लकोट्ठितके अग्रकुलिकका राष्ट्रपाल नामक कुल-पुत्र, जिसकी कि आप हमेशा तारीफ करते रहते हैं, एक वृक्षके नीचे दिनके विहारके लिये बैठा है"।

"तो सौम्य मिगव! आज अब उद्यान भूमि जाने दो, आज उन्हीं आप राष्ट्रपालकी उपासना (=सत्संग) करेंगे।"

तब राजा कौरव्य, जो कुछ खाद्य-भोज्य तय्यार था, सबको 'छोड़ दो!' कह, अच्छे अच्छे यान जुड़वा, (एक) अच्छे यानपर चढ़, अच्छे अच्छे यानोंके साथ बड़े राजसी ठाटसे आयुष्मान् राष्ट्रपालके दर्शनके लिये, थुल्लकोट्ठितसे निकला। जितनी यानकी भूमि थी, उतना यानसे जा, (फिर) यानसे उतर पैदल ही छोटी मंडलीके साथ जहाँ आयुष्मान् राष्ट्रपाल थे, वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् राष्ट्रपालके साथ...संमोदन किया...(और) एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े हुये राजा कौरव्यने आयुष्मान् राष्ट्रपालको कहा—

"आप राष्ट्रपाल यहाँ गलीचे (=हत्थत्थर) पर बैठें।"

"नहीं महाराज! तुम बैठो, मैं अपने आसनपर बैठा हूँ।"

राजा कौरव्य बिछे आसनपर बैठ गया। बैठ कर राजा कौरव्यने आयुष्मान् राष्ट्रपालको कहा—

"हे राष्ट्रपाल! यह चार हानियाँ (= पारिजुञ्ञ) हैं, जिन हानियों से युक्त कोई कोई पुरुष केश-श्मश्रु मुँड़वा, काषाय वस्त्र पहिन, घरसे बेघर हो प्रव्रजित होते हैं। कौनसे चार? जरा-हानि, व्याधि-हानि, भोग-हानि, ज्ञाति-हानि। कौन है हे राष्ट्रपाल जराहानि?

(१) हे राष्ट्रपाल! कोई (पुरुष) जीर्ण=वृद्ध=महल्लक=अध्वगत=वयःप्राप्त होता है। वह ऐसा सोचता है: मैं इस समय जीर्ण=वृद्ध० हूँ, अब मेरे लिये अप्राप्त भोगोंका प्राप्त करना या प्राप्त भोगोंको भोगना सुकर नहीं है। क्यों न मैं केश-श्मश्रु मुँड़ाकर काषाय वस्त्र पहिन ०प्रव्रजित हो जाऊँ। वह उस जरा-हानिसे युक्त हो० प्रव्रजित होता है। हे राष्ट्रपाल! यह जराहानि कही जाती है। लेकिन आप राष्ट्रपाल तरुण, बहुत काले केशोंवाले, सुन्दर यौवनसे युक्त, प्रथम वयसके हैं। सो आप राष्ट्रपालको जराहानि नहीं है। आप राष्ट्रपाल क्या जानकर, देखकर, सुनकर, घरसे बेघर हो प्रव्रजित हुये?

(२) हे राष्ट्रपाल! व्याधि-हानि क्या है? हे राष्ट्रपाल! कोई (पुरुष) रोगी दुःखी सख्त बीमार होता है, वह ऐसा सोचता है—'मैं अब रोगी दुःखी सख्त बीमार हूँ, अब मेरे लिये अप्राप्त भोगोंका प्राप्त०। यह व्याधि-हानि कही जाती है; लेकिन आप राष्ट्रपाल इस समय, व्याधि-रहित आतंक-रहित, न अतिशीत, न अति-उष्ण, सम-विपाकवाली पाचनशक्ति (=ग्रहणी) से युक्त हैं। सो आप राष्ट्रपालको व्याधि-हानि नहीं है०?

(३) हे राष्ट्रपाल! भोग-हानि क्या है? हे राष्ट्रपाल! कोई (पुरुष) आढ्य, महाधनी महाभोगवान् होता है। उसके वह भोग-क्रमशः क्षय हो जाते हैं। वह ऐसा सोचता है—मैं पहिले आढ्य० था, सो मेरे वह भोग क्रमशः क्षय हो गये, अब

मेरे लिये अप्राप्त भोगोंका प्राप्त करना०। आप राष्ट्रपाल तो इसी थुल्लकोट्ठितमें अग्रकुलिकके पुत्र हैं। सो आप राष्ट्रपालको भोग हानि नहीं है० ?

"(४) हे राष्ट्रपाल ! ज्ञाति-हानि क्या है ! हे राष्ट्रपाल ! किसी (पुरुष) के बहुतसे मित्र, अमात्य, ज्ञाति (=जाति), सालोहित (=रक्तसंबंधी) होते हैं। उसके वह जातिवाले क्रमशः क्षयको प्राप्त होते हैं। वह ऐसा सोचता है—पहिले मेरे बहुतसे मित्र-अमात्य जाति-बिरादरी थी, वह मेरी जातिवाले क्रमशः क्षय हो गये। अब मेरे लिये अप्राप्त भोगोंका प्राप्त करना०। लेकिन आप राष्ट्रपालके तो इसी थुल्लकोट्ठितमें बहुतसे मित्र-अमात्य, जाति-बिरादरी हैं। सो आप राष्ट्रपालको ज्ञाति-हानि नहीं है। आप राष्ट्रपाल क्या जानकर, देखकर, सुनकर, घरसे बेघर हो प्रव्रजित हुये ? हे राष्ट्रपाल ! यह चार हानियां हैं, जिन हानियोंसे युक्त कोई कोई (पुरुष) केश-श्मश्रु मुँडा काषाय-वस्त्र पहिन घरसे बेघर हो प्रव्रजित होते हैं, वह आप राष्ट्रपालको नहीं हैं। आप राष्ट्रपाल क्या जानकर, देखकर, सुनकर घरसे बेघर हो प्रव्रजित हुये ?"

"महाराज ! उन भगवान् जाननहार, देखनहार, अर्हत् सम्यक्-संबुद्धने चार धर्म-उद्देश कहे हैं, जिनको जानकर, देखकर, सुनकर मैं घरसे बेघर हो प्रव्रजित हुआ। कौनसे चार ? (१) (यह लोक (=संसार) अध्रुव (है), उपनीत हो रहा है, उस भगवान्०ने प्रथम धर्म-उद्देश कहा है, जिसको देखकर० मैं प्रव्रजित हुआ। (२) लोक त्राण-रहित, आश्वासन-रहित है०। (३) लोक अपना नहीं है, सब छोड़कर जाना है०। (४) लोक कमतीवाला तृष्णाका दास है०। यह महाराज ! उन भगवान्०ने चार धर्म-उद्देश कहे हैं, जिनको जान-कर० मैं प्रव्रजित हुआ।"

"उपनीत हो रहा (=ले जाया जा रहा) है, लोक अध्रुव है, आप राष्ट्रपालके इस कथनका अर्थ कैसे जानना चाहिये ?"

"तो क्या मानते हो, महाराज ! थे तुम (कभी) बीस वर्षके, पचीस-वर्षके ? (जब तुम) संग्राममें हाथीकी सवारीमें होशियार, घोड़ेकी सवारीमें होशियार, रथकी सवारीमें होशियार, धनुषमें होशियार, तलवारमें होशियार, उरसे बलिष्ट, बाहुसे बलिष्ट थे ?"

"बल्कि हे राष्ट्रपाल ! मानो एक समय ऋद्धिमान् हो मैं अपने बलके समान (किसीको) देखता ही न था।"

"तो क्या मानते हो महाराज ! आज संग्राममें तुम वैसे ही० उरु-बली, बाहु-बली, सामर्थ्य-युक्त हो ?"

"नहीं हे राष्ट्रपाल ! इस वक्त मैं जीर्ण-वृद्ध० हूँ, अस्सी-वर्षकी मेरी उम्र है। बल्कि एक समय हे राष्ट्रपाल ! मैं 'यहां तक पैर (= पाद) रक्खूँ' (विचार) दूसरे (समय) चौथाई ही (दूर तक) रख सकता हूँ।"

"महाराज ! उन भगवान्०ने इसीको सोच कर कहा—'उपनीत हो रहा है, लोक अध्रुव है, जिसको जानकर० मैं० प्रव्रजित हुआ।"

"आश्चर्य ! हे राष्ट्रपाल !! अद्भुत ! हे राष्ट्रपाल !! जो यह उन भगवान्०का सुभाषित—'उपनीत हो रहा है०'(=ले जाया जा रहा है), लोक अध्रुव है।' हे राष्ट्रपाल !

इस राज-कुलमें हस्ति-काय (काय=समुदाय) भी हैं, अश्व-काय भी, रथ-काय भी, पदाति-काय भी, जो हमारी आपत्तियोंमें युद्धके लिए हैं । 'लोक त्राण-रहित, आश्वासन-रहित है' यह (जो) आप राष्ट्रपालने कहा ? हे राष्ट्रपाल ! इस कथनका अर्थ कैसे जानना चाहिये ?"

"तो क्या मानते हो महाराज ! है तुम्हें कोई आनुशयिक (=साथ रहनेवाली) बीमारी ?"

"हे राष्ट्रपाल ! मुझे आनुशयिक वातरोग है । बल्कि एकबार तो मित्र-अमात्य जाति-बिरादरी घेर कर खड़ी थी,—'अब राजा कौरव्य मरेगा' । 'अब राजा कौरव्य मरेगा' ।

"तो क्या मानते हो महाराज ! क्या तुमने मित्र-अमात्यों जाति-बिरादरीको पाया—'आयें आप मेरे मित्र-अमात्य०, सभी सत्व (=प्राणी), इस पीड़ाको बाँट लें, जिसमें मैं हलकी पीड़ा पाऊँ', या तुमने ही उस वेदनाको सहा ?

"राष्ट्रपाल ! उन मित्र अमात्यों० को मैंने नहीं पाया०, बल्कि मैं ही उस वेदनाको सहता था ।"

"महाराज ! इसीको सोचकर उन भगवान्० ने० ।

"आश्चर्य ! हे राष्ट्रपाल !! अद्भुत ! हे राष्ट्रपाल !!०। हे राष्ट्रपाल ! इस राजकुलमें बहुतसा हिरण्य (=अशर्फी) सुवर्ण भूमि और आकाशमें है । 'लोक अपना नहीं (=अस्वक) है, सब छोड़कर जाना है' यह आप राष्ट्रपालने कहा । हे राष्ट्रपाल ! इस कथनका अर्थ कैसे जानना चाहिये ?"

"तो क्या मानते हो महाराज ! जैसे तुम आजकल पाँच कामगुणोंसे युक्त=समंगीभूत विचरते हो, बाद (जन्मान्तर) में भी तुम (उन्हें) पाओगे—'ऐसेही मैं पाँच कामगुणोंसे युक्त० विचरूँ', या दूसरे इस भोगको पायेंगे; और तुम अपने कर्मानुसार जाओगे ?

"राष्ट्रपाल ! जैसे मैं इस वक्त पाँच काम-गुणोंसे युक्त० विचरता हूँ, बाद (=जन्मान्तर) में भी ऐसेही मैं इन काम-गुणोंसे युक्त० विचरने न पाऊँगा । बल्कि दूसरे इस भोगको लेंगे, मैं अपने कर्मानुसार जाऊँगा ।"

"महाराज इसीको सोचकर उन भगवान्० ने० ।"

"आश्चर्य ! हे राष्ट्रपाल !! अद्भुत ! हे राष्ट्रपाल !!०। 'लोक कमतीवाला तृष्णाका दास है' यह आप राष्ट्रपालने जो कहा । हे राष्ट्रपाल ! इस कथनका कैसे अर्थ समझना चाहिये ?"

"तो क्या मानते हो महाराज ! समृद्ध कुरु (देश) का स्वामित्व कर रहे हो ?"

"हाँ हे राष्ट्रपाल ! समृद्ध कुरुका स्वामित्व कर रहा हूँ ।"

"तो क्या मानते हो महाराज ! तुम्हारा एक श्रद्धेय विश्वास-पात्र पुरुष पूर्व दिशासे आवे । वह तुम्हारे पास आकर ऐसा बोले—हे महाराज ! जानते हो, मैं पूर्व-दिशासे आ रहा हूँ । वहाँ मैंने बहुत समृद्ध=स्फीत बहुत जनोंवाला, मनुष्योंसे आकीर्ण जनपद (=देश) देखा । वहाँ बहुत हस्तिकाय, अश्वकाय, रथकाय, पत्ति (=पैदल)-काय है । वहाँ बहुत धन, धनधान्य है । वहाँ बहुत सा कृषित अकृषित हिरण्य, सुवर्ण है । वहाँ बहुत सी स्त्रियाँ प्राप्त होती हैं । वह इतनी ही सेनासे जीता जा सकता है; जीतिये महाराज !' तो क्या करोगे ?"

"हे राष्ट्रपाल ! उसे भी जीतकर मैं स्वामित्व करूँगा ।"

"तो क्या मानते हो महाराज ! ०विश्वासपात्र पुरुष पश्चिम-दिशासे आवे० ।"०।

"०उत्तर दिशासे० ।"०। "दक्षिण दिशासे० ।"०।

"महाराज ! इसीको सोच कर उन भगवान्० ने० ० ।"

"आश्चर्य ! हे राष्ट्रपाल !! अद्भुत ! हे राष्ट्रपाल !!"

आयुष्मान् राष्ट्रपालने यह कहा । यह कहकर फिर यह भी कहा—

"लोकमें धनवान् मनुष्योंको देखता हूँ, (जो) वित्त पाकर मोहसे दान नहीं करते । लोभी ही धनका संचय करते हैं, तथा और भी अधिक कामों (=भोगों)की चाह करते हैं ॥१॥

"राजा बलपूर्वक पृथ्वीको जीत, सागर-पर्यन्त महीपर शासन करते । समुद्रके इस पारसे तृप्त न हो, समुद्रके उस पारको भी चाहता है ॥ २ ॥

"राजाही की भाँति दूसरे बहुतसे पुरुष भी तृष्णा-रहित न हो मरण पाते हैं । कमतीवाले होकरही शरीर छोड़ते हैं, लोकमें (किसीकी) कामोंसे तृप्ति नहीं है ॥ ३ ॥

"ज्ञाति बाल बिखेरकर क्रन्दन करती है, और कहती है 'हाय हमारा मर गया' वस्त्रसे ढाँककर उसे लेजाकर, चितापर रख कर जला देते हैं ॥ ४ ॥

"वह शूलसे कूँचा जाता, भोगोंको छोड़ एक वस्त्रके साथ जलाया जाता है । मरनेवालेके ज्ञाति-मित्र = सहाय रक्षक नहीं होते ॥ ५ ॥

"दायाद उसके धनको हरते हैं, प्राणी तो जहाँ कर्म है (वहाँ) जाता है । मरते हुएके पीछे, पुत्र, दारा, धन और राज्य नहीं जाता ॥ ६ ॥

"धन द्वारा लम्बी आयु नहीं पा सकता, और न वित्त द्वारा जराको नाशकर सकता है । धीरोंने इस जीवनको स्वल्प, अ-शाश्वत, भंगुर कहा है ॥ ७ ॥

"धनी और दरिद्र (काम)- स्पर्शोंको छूते हैं, बाल और धीर (= पंडित) भी वैसेही हैं । बाल (= मूर्ख) मूर्खतासे विचलित हो पड़ता है, किन्तु धीर स्पर्श-स्पृष्ट हो नहीं विचलित होता ॥ ८ ॥

"इसलिये धनसे प्रज्ञाही श्रेष्ठ है, जिससे कि (तत्त्व-)निश्चयको प्राप्त होता है । मुक्त न होनेसे वह मोहवश आवागमनमें (पड़े) पाप कर्मोंको करते हैं ॥ ९ ॥

"(वह) लगातार संसार (= भवसागर) में पड़कर गर्भ और परलोकको पाता है । अल्प-प्रज्ञावान् उसपर विश्वास कर गर्भ और परलोकको पाता रहता है ॥१०॥

"सेंधके ऊपर पकड़ा गया पापी चोर, जैसे अपने कामसे मारा जाता है । इसी प्रकार पापी जनता मर कर दूसरे लोकमें अपने कामसे मारी जाती है ॥११॥

"विचित्र मधुर मनोरम काम (= भोग) नाना रूपसे चित्तको मथते हैं । इसलिए काम भोगोंके दुष्परिणामको देखकर, हे राजन् ! मैं प्रव्रजित हुआ हूँ ॥१२॥

"वृक्षके फलकी भाँति तरुण और वृद्ध मनुष्य शरीर छोड़कर गिरते हैं । ऐसेभी देख-कर प्रव्रजित हुआ; (क्योंकि) न गिरनेवाला भिक्षुपन (= श्रामण्य) ही श्रेष्ठ है ॥ १३ ॥

× × × ×

(६)

सुन्दरी-सुत्त । कृशागौतमी-चरित । ब्राह्मण-धम्मिय-सुत्त ।

(ई. पू. ५०५–४४७) ।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

उस समय भगवान् सत्कृत = गुरुकृत=मानित=पूजित = अपचित थे, चीवर पिंड पात शयनासन ग्लान-प्रत्यय-भैषज्यके लाभी (=पानेवाले) थे । भिक्षु-संघ भी० पूजित० चीवर० का लाभी था । दूसरे तीर्थ (=पंथ) वाले परिव्राजक असत्कृत = अ-गुरुकृत = अ-मानित= अ-पूजित=अन्-अपचित थे, चीवर०के अ-लाभी थे । तब वह तैर्थिक भगवान् और भिक्षु-संघके सत्कारको न सहनकर, जहाँ सुन्दरी परिव्राजिका थी वहाँ गये । जाकर सुन्दरी परिव्राजिकाको बोले—

"भगिनी ! क्या ज्ञातिकी भलाई करना चाहती हो ?'

"आर्यो ! क्या मैं करूँ ? मैं क्या नहीं कर सकती ? ज्ञातिके लिये मैंने तो जीवन ही दे दिया है ।"

"तो भगिनी ! बराबर जेतवन जाया करो ।"

"अच्छा आर्यो !" कह…सुन्दरी परिव्राजिका…बराबर जेतवन जाने लगी । जब उन अन्य तैर्थिक परिव्राजकोंने जाना—'बहुत लोगोंने सुन्दरी परिव्राजिकाको बराबर जेतवन जाते देख लिया ।' तब उसे जानसे मारकर उन्होंने वहीं जेतवनकी खाईमें कुआँ खोदकर दबा दिया, और जहाँ राजा प्रसेनजित् कोसल था, वहाँ गये । जाकर प्रसेनजित् कोसलको बोले—

"महाराज ! जो वह सुन्दरी परिव्राजिका थी, वह हमें दिखाई नहीं पड़ रही है ।"

"तुम्हें कहाँ सन्देह है ?"

"जेतवनमें, महाराज !"

"तो जेतवनमें तलाश करो ।"

तब वह अन्यतैर्थिक परिव्राजक जेतवनमें ढूँढ तलाश करते, खोदे परिखा-कूपसे निकालकर चारपाईपर रख, श्रावस्तीमें ले जा, (एक) सड़कसे (दूसरी) सड़कपर, चौराहेसे चौराहेपर जाकर लोगोंको कहने लगे—

"देखो आर्यो ! शाक्य-पुत्रीय श्रमणोंका कर्म !! यह शाक्यपुत्रीय श्रमण निर्लज्ज, दुःशील, पापी, मिथ्या-वादी, अब्रह्मचारी हैं । यह धर्म-चारी, सम-चारी, ब्रह्मचारी, सत्यवादी शीलवान् , पुण्यात्मा होनेका दावा करते हैं । इनको श्रामण्य नहीं, ब्राह्मण्य नहीं । कहाँसे इन्हें श्रामण्य, कहाँसे इन्हें ब्राह्मण्य ? यह श्रामण्य (=श्रमणोंके धर्म)से पतित हैं, यह ब्राह्मण्य (=ब्राह्मण-धर्म)से पतित हैं । कैसे पुरुष पुरुषका काम करके, स्त्रीको जानसे मार डालेगा !"

---

१. उदान ४:८ ।

उस समय श्रावस्तीमें लोग भिक्षुओं को देखकर अ-सभ्य, परुष (=कड़ी) वचनोंसे धिक्कारते, फटकारते, कोप करते, पीड़ित करते थे।—

"यह शाक्यपुत्रीय श्रमण निर्लज्ज०।"

तब बहुतसे भिक्षु पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, श्रावस्तीमें पिंडके लिये गये। श्रावस्तीमें पिंड-चार करके भोजनके बाद…जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादन कर…एक ओर बैठ…बोले—

"भन्ते! इस समय श्रावस्तीमें लोग भिक्षुओंको देखकर अ-सभ्य, परुष वचनोंसे धिक्कारते हैं०—'यह शाक्यपुत्रीय श्रमण निर्लज्ज०।'"

"भिक्षुओ! यह शब्द देर तक नहीं रहेगा, [1]सप्ताह ही भर रहेगा, सप्ताह बीतनेपर अन्तर्धान हो जायगा। तो भिक्षुओ! जो लोग भिक्षुओंको देखकर असभ्य० वचनोंसे धिक्कारते० हैं, उन्हें इस गाथासे तुम जवाब दो—

'अ-भूत (=अ-यथार्थ)-वादी नरकको जाता है, और वह भी जो कि करके 'नहीं किया' कहता है। दोनों ही नीचकर्मवाले मनुष्य मरकर परलोकमें समान होते हैं।'

तब भिक्षु भगवान्के पाससे इस गाथाको सीखकर, जो मनुष्य भिक्षुओंको देखकर असभ्य० वचनोंसे० धिक्कारते थे, उन मनुष्योंको इस गाथासे जवाब देते थे—"अभूत-वादी०"।

लोगोंको हुआ—

"यह शाक्य-पुत्रीय श्रमण अ-कारक हैं, इन्होंने नहीं किया। यह शाक्यपुत्रीय श्रमण शपथ कर रहे हैं।"

वह शब्द देर तक न रहा, सप्ताह भर रहा, सप्ताह बीतनेपर अन्तर्धान [2]होगया। तब बहुतसे भिक्षु जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादन कर, एक ओर…बैठ भगवान्को बोले—

"आश्चर्य! भन्ते!! अद्भुत! भन्ते!! भन्ते! भगवानका सुभाषित (=ठीक कहना)

---

१. तुलना करो आगे भी।

२. अ. क. "राजाने…सुन्दरीको मारा, उनके पता लगानेको आदमियोंको हुकुम दिया। तब वह (मारनेवाले) बदमाश (= धूर्त) उन कार्षापणोंसे शराब पीते आपसमें झगड़ बैठे। उनमेंसे एकने एकको कहा—

"तू सुन्दरीको एक ही प्रहारसे मारकर मालाके कूड़ेके भीतर फेंक, उससे मिले पैसेसे सुरा पीता है? हो! हो!!"

राज-पुरुषोंने उसे सुन उन बदमाशोंको पकड़कर राजाको दिखलाया। राजाने पूछा—"तुमने उसे मारा?" "हाँ, देव!" "किसने मरवाया?" "देव! दूसरे तैर्थिकोंने" राजाने तैर्थिकोंको बुलवाकर उस बातको स्वीकार करवा, आज्ञा दी—"जाओ नगरमें यह कहते घूमो—'इन श्रमण गौतमकी बदनामी करनेके लिये यह सुन्दरी हमने मरवाई, गौतम या गौतम-श्रावकोंका दोष नहीं है' हमारा ही दोष है।"

उन्होंने वैसा किया।

(६)

सुन्दरी-सुत्त । कृशागौतमी-चरित । ब्राह्मण-धम्मिय-सुत्त ।

(ई. पू. ५०५–४४७) ।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

उस समय भगवान् सत्कृत = गुरुकृत=मानित=पूजित = अपचित थे, चीवर पिंड पात शयनासन ग्लान-प्रत्यय-भैषज्यके लाभी (=पानेवाले) थे । भिक्षु-संघ भी० पूजित० चीवर० का लाभी था । दूसरे तीर्थ (=पंथ) वाले परिव्राजक असत्कृत = अ-गुरुकृत = अ-मानित= अ-पूजित = अन्-अपचित थे, चीवर०के अ-लाभी थे । तब वह तैर्थिक भगवान् और भिक्षु-संघके सत्कारको न सहनकर, जहाँ सुन्दरी परिव्राजिका थी वहाँ गये । जाकर सुन्दरी परिव्राजिकाको बोले—

"भगिनी ! क्या ज्ञातिकी भलाई करना चाहती हो ?"

"आर्यो ! क्या मैं करूँ ? मैं क्या नहीं कर सकती ? ज्ञातिके लिये मैंने तो जीवन ही दे दिया है ।"

"तो भगिनी ! बराबर जेतवन जाया करो ।"

"अच्छा आर्यो !" कह…सुन्दरी परिव्राजिका…बराबर जेतवन जाने लगी । जब उन अन्य-तैर्थिक परिव्राजकोंने जाना—'बहुत लोगोंने सुन्दरी परिव्राजिकाको बराबर जेतवन जाते देख लिया ।' तब उसे जानसे मारकर उन्होंने वहीं जेतवनकी खाईमें कुआँ खोदकर दबा दिया; और जहाँ राजा प्रसेनजित् कोसल था, वहाँ गये । जाकर प्रसेनजित् कोसलको बोले—

"महाराज ! जो वह सुन्दरी परिव्राजिका थी, वह हमें दिखाई नहीं पड़ रही है ।"

"तुम्हें कहाँ सन्देह है ?"

"जेतवनमें, महाराज !"

"तो जेतवनमें तलाश करो ।"

तब वह अन्य-तैर्थिक परिव्राजक जेतवनमें उसे तलाश करते, खोदे परिखा-कूपसे निकालकर चारपाईपर रख, श्रावस्तीमें लेजा, (एक) सड़कसे (दूसरी) सड़कपर, चौरास्तेसे चौरास्तेपर जाकर लोगोंको कहने लगे—

"देखो आर्यो ! शाक्य-पुत्रीय श्रमणोंका कर्म !! यह शाक्यपुत्रीय श्रमण निर्लज्ज, दुःशील, पापी, मिथ्या-वादी, अब्रह्मचारी हैं । यह धर्म-चारी, सम-चारी, ब्रह्मचारी, सत्यवादी शीलवान्, पुण्यात्मा होनेका दावा करते हैं । इनको श्रामण्य नहीं, ब्राह्मण्य नहीं । कहाँसे इन्हें श्रामण्य, कहाँसे इन्हें ब्राह्मण्य ? यह श्रामण्य (=संन्यासीके धर्म)से पतित हैं, यह ब्राह्मण्य (=ब्राह्मण-पन)से पतित हैं । कैसे पुरुष पुरुषका काम करके, स्त्रीको जानसे मार डालेगा ?"

---

[1] उदान ४:८ ।

उस समय श्रावस्तीमें लोग भिक्षुओं को देखकर अ-सभ्य, परुष (=कड़ी) वचनोंसे धिक्कारते, फट्कारते, कोप करते, पीड़ित करते थे।—

"यह शाक्यपुत्रीय श्रमण निर्लज्ज०।"

तब बहुतसे भिक्षु पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, श्रावस्तीमें पिंडके लिये गये। श्रावस्तीमें पिंड-चार करके भोजनके बाद…जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादन कर…एक ओर बैठ…बोले—

"भन्ते! इस समय श्रावस्तीमें लोग भिक्षुओंको देखकर अ-सभ्य, परुष वचनोंसे धिक्कारते हैं०—'यह शाक्यपुत्रीय श्रमण निर्लज्ज०।'"

"भिक्षुओ! यह शब्द देर तक नहीं रहेगा, 'सप्ताह ही भर रहेगा, सप्ताह बीतनेपर अन्तर्धान हो जायगा। तो भिक्षुओ! जो लोग भिक्षुओंको देखकर असभ्य० वचनोंसे धिक्कारते० हैं, उन्हें इस गाथासे तुम जवाब दो—

'अ-भूत (=अ-यथार्थ)-वादी नरकको जाता है, और वह भी जो कि करके 'नहीं किया' कहता है। दोनों ही नीचकर्मवाले मनुष्य मरकर परलोकमें समान होते हैं।'

तब भिक्षु भगवान्के पाससे इस गाथाको सीखकर, जो मनुष्य भिक्षुओंको देखकर असभ्य० वचनोंसे० धिक्कारते थे, उन मनुष्योंको इस गाथासे जवाब देते थे—"अभूत-वादी०"।

लोगोंको हुआ—

"यह शाक्य-पुत्रीय श्रमण अ-कारक हैं, इन्होंने नहीं किया। यह शाक्यपुत्रीय श्रमण शपथ कर रहे हैं।"

वह शब्द देर तक न रहा, सप्ताह भर रहा, सप्ताह बीतनेपर अन्तर्धान होगया। तब बहुतसे भिक्षु जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादन कर, एक ओर…बैठ भगवान्को बोले—

"आश्चर्य! भन्ते!! अद्भुत! भन्ते!! भन्ते! भगवानका सुभाषित (=ठीक कहना)

---

१. तुलना करो आगे भी।

२. अ. क. "राजाने…सुन्दरीको मारा, उनके पता लगानेको आदमियोंको हुकुम दिया। तब वह (मारनेवाले) बदमाश (=धूर्त) उन कार्षापणोंसे शराब पीते आपसमें झगड़ बैठे। उनमेंसे एकने एकको कहा—

"तू सुन्दरीको एक ही प्रहारसे मारकर मालाके कूड़ेके भीतर फेंक, उससे मिले पैसेसे सुरा पीता है? हो! हो!!"

राज-पुरुषोंने उसे सुन उन बदमाशोंको पकड़कर राजाको दिखलाया। राजाने पूछा—"तुमने उसे मारा?" "हाँ, देव!" "किसने मरवाया?" "देव! दूसरे तैर्थिकोंने" राजाने तैर्थिकोंको बुलवाकर उस बातको स्वीकार करवा, आज्ञा दी—"जाओ नगरमें यह कहते घूमो—'उन श्रमण गौतमकी बदनामी करनेके लिये यह सुन्दरी हमने मरवाई, गौतम या गौतम-श्रावकोंका दोष नहीं है' हमारा ही दोष है।"

उन्होंने वैसा किया।

यज्ञ उपस्थित होनेपर वह गायको नहीं मारते थे ॥१२॥
जैसे माता पिता भ्राता और दूसरे बन्धु हैं।
(वैसेही) गायें हमारी परम-मित्र हैं, जिनमें कि औषध उत्पन्न होते हैं ॥१३॥
यह अन्न-दा, बल-दा, वर्ण-दा तथा सुख-दा (हैं)।
इस बातको जानकर, वह गायको नहीं मारते थे ॥१४॥
सुकुमार, महाकाय, [1]वर्ण-वान् यशस्वी,
ब्राह्मणगन इन धर्मोंके साथ, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्यमें तत्पर हो,
जबतक लोकमें वर्तमान थे, तबतक यह प्रजा सुखसे रही ॥१५॥
शनैः शनैः राजाकी सम्पत्ति—समलंकृत स्त्रियों,
उत्तम घोड़े जुते सुन्दर रचना-वाले विचित्र सिलाईयुक्त रथों,
खण्डोंमें बँटे मकानों और कोठों—को देखकर उनमें उलटापन आया ॥१६,॥१७॥
गोमंडलसे आकीर्ण सुन्दर-स्त्री-गण-सहित।
बड़े मानुष-भोगोंका ब्राह्मणोंने लोभ किया ॥१८॥
तब वह मंत्रोंको रचकर इक्ष्वाकु (= ओक्काक) के पास गये।
'तू बहुत धन-धान्यवाला है, तेरे पास वित्त बहुत है, यज्ञ कर' ॥१९॥
ब्राह्मणोंसे चेताये जानेपर तब रथर्षभ राजाने
'अश्व-मेध', 'पुरुष-मेध', 'वाजपेय', 'निरर्गल' (=सर्वमेध)'
एक एक यज्ञको करके ब्राह्मणोंको धन दिया ॥२०॥
गायें, शयन, वस्त्र, अलंकृत स्त्रियाँ,
उत्तम-घोड़े-जुते, सुन्दर रचना-वाले विचित्र सिलाईयुक्त रथ, खंडोंमें बँटे मकान और कोठे,
—नाना धान्योंसे भरकर ब्राह्मणोंको दान दिया ॥२१, २२॥
उन्होंने धन-संग्रह करना पसन्द किया।'
लोभमें पड़े उन (ब्राह्मणों) की [2]तृष्णा और भी बढ़ी।
वह मंत्र रचकर फिर इक्ष्वाकुके पास गये ॥२३॥
जैसे पानी, पृथिवी, हिरण्य, धन, धान्य हैं।
ऐसेही गायें मनुष्योंके लिए हैं, वह प्राणियोंकी परिष्कार (=उपभोग-वस्तु) हैं,
तेरे पास बहुत धन है, यज्ञ कर,० बहुत वित्त है, यज्ञ कर ॥२४॥
तब ब्राह्मणोंसे प्रेरित होकर रथर्षभ राजाने।
अनेक सौ हजार गायें यज्ञमें हनन कीं ॥२५॥
(जो) न पैरसे न सींगसे न किसी (अंग) से ही मारती हैं।

---

१. अ. क. "सुवर्ण-वर्ण"।

२. अ.क. "दूध आदि पाँच गोरस······गायों' के स्वादिष्ट हैं, इनका मांस निश्चय और भी स्वादिष्ट होगा। इस प्रकार मांसके लिए 'तृष्णा और भी बढ़ी। (तब उन्होंने) सोचा—'यदि इसे मारकर खायेंगे, तो निन्दाके पात्र होंगे, क्यों न मंत्र रचें'। तब फिर वेदको तोड़-मरोड़कर उसके अनुरूप मंत्र बना वह इक्ष्वाकु राजाके पास फिर गये"।

(जो) गायें भेड़के समान प्रिय और घड़े भर दूध देनेवाली हैं ।
उन्हें सींगसे पकड़कर राजाने शस्त्रसे मारा ॥२६॥
तब देवता, पितर, इन्द्र, असुर, राक्षस,
चिल्ला उठे 'अधर्म (हुआ) जो गायके ऊपर शस्त्र गिरा' ॥२७॥
पहिले तीन ही रोग थे—इच्छा, क्षुधा और जरा ।
पशुकी हिंसा (=समारंभ) से अट्ठानवे हो गये ॥२८॥
यह अधर्म पुराने (धर्म-) दंडोंसे रहित था ।
याजक (=पुरोहित) निर्दोषको मारते हैं, धर्मका ध्वंस करते हैं ॥२९॥
इस प्रकार यह पुराने विज्ञोंसे निन्दित नीच कर्म है ।
लोग जहाँ ऐसे याजकको पाते हैं, निन्दा करते हैं ॥३०॥
इस प्रकार धर्मके बिगड़नेपर शूद्र और वैश्य फूट गये ।
क्षत्रिय भी छिन्न-भिन्न हो गये; भार्या पतिका अपमान करने लगी ॥३१॥
क्षत्रिय, ब्रह्म-बंधु (=ब्राह्मण-जातिके) और जो दूसरे गोत्रसे रक्षित थे ।
जातिवादका नाशकर, (सभी) स्वेच्छाचारी हो गये ॥३२॥"

ऐसा कहनेपर ब्राह्मण महाशालोंने भगवान्‌को यह कहा—

"आश्चर्य ! हे गौतम !! अद्भुत ! हे गौतम !! ०यह हम आप गौतमकी शरण जाते हैं, धर्म और भिक्षुसंघकी भी । आजसे आप गौतम हमें अंजलि-बद्ध शरणागत उपासक समझें ।

\+ + + +

(७)

अंगुलिमाल-सुत्त (ई. पू. ५०४) ।

"[1]ऐसा मैने [2]सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

उस समय राजा प्रसेनजित्‌के राज्यमें रुद्र, लोहित-पाणि मार-काट-संलग्न, प्राणि-भूतोंमें दया-रहित अंगुलिमाल नामक डाकू (= चोर) था । उसने ग्रामोंको भी अ-ग्राम कर दिया था, निगमोंको भी अ-निगम ०, जन-पदकोभी अ जनपद ०। तब भगवान् पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्र-चीवरले श्रावस्तीमें पिंडकेलिए प्रविष्ट हुए । श्रावस्तीमें पिंड-चार करके भोजन बाद···शयनासन संभाल, पात्र-चीवर ले जहाँ डाकू अंगुलि-माल रहता था, उसी रास्ते चले । गोपालकों, पशुपालकों, कृषकों, राहगीरोंने भगवान्‌को, जिधर डाकू अंगुलि-माल था, उसी रास्तेपर (जाते) हुये देखा । देखकर भगवान्‌को यह कहा—

"मत श्रमण ! इस रास्ते जाओ । इस मार्गमें श्रमण ! ०अंगुलि-माल नामक डाकू रहता है । उसने ग्रामोंको भी अ-ग्राम० । वह मनुष्योंको मार मारकर अंगुलियोंकी माला

---

१. चौबीसवाँ (ई. पू. ५०४) वर्षावास पूर्वाराममें, पचीसवाँ (ई. पू. ५०३) जेतवनमें । २. म. नि. २: ४: ६ ।

पड़ता है। इस मार्गपर श्रमण! बीस पुरुष, तीस पुरुष चालीस०, पचास पुरुष तक इकट्ठा होकर जाते हैं, वह भी अंगुलिमालके हाथमें पड़ जाते हैं।"

ऐसा कहनेपर भगवान् मौन धारणकर चलते रहे।

दूसरी बार भी गोपालकों०। तीसरी बार भी गोपालकों०।

डाकू अंगुलिमालने दूरसे ही भगवान्‌को आते देखा। देखकर उसको यह हुआ—'आश्चर्य है जी! अद्भुत है जी (= भो)!! इस रास्ते दस पुरुष भी,० पचास पुरुष भी इकट्ठा होकर चलते हैं, वह भी मेरे हाथमें पड़ जाते हैं। और यह श्रमण अकेला = अद्वितीय मानो मेरा तिरस्कार करता आ रहा है। क्यों न मैं इस श्रमणको जानसे मार दूँ।' तब डाकू अंगुलि-माल ढाल-तलवार (= असि-चर्म) लेकर तीर-धनुष चढ़ा, भगवान्‌के पीछे चला। तब भगवान्‌ने इस प्रकारका योग-बल प्रकट किया, कि डाकू अंगुलिमाल मामूली चालसे चलते भगवान्‌को सारे वेगसे दौड़कर भी न पा सकता था। तब डाकू अंगुलिमालको यह हुआ—'आश्चर्य है जी! अद्भुत है जी!! मैं पहिले दौड़ते हुये हाथीको भी पीछा करके पकड़ लेता था, ०घोड़ेको भी०, ०रथको भी०, ०मृगको भी पीछा करके पकड़ लेता था। किन्तु, मामूली चालसे चलते इस श्रमणको, सारे वेगसे दौड़कर भी नहीं पा सकता हूँ।' खड़ा होकर भगवान्‌को बोला—

"खड़ा रह, श्रमण!"

"मैं स्थित (=खड़ा) हूँ अंगुलिमाल! तू भी स्थित हो।"

तब डाकू अंगुलि-मालको यह हुआ—'यह शाक्य-पुत्रीय श्रमण सत्यवादी सत्य-प्रतिज्ञ (होते हैं); किन्तु यह श्रमण जाते हुये भी ऐसा कहता है—'मैं स्थित हूँ०।' क्यों न मैं इस श्रमणको पूछूँ। तब ०अंगुलिमालने गाथाओंमें भगवान्‌को कहा—

"श्रमण! जाते हुये 'स्थित हूँ०।' कहता है, मुझ खड़े हुयेको अस्थित कहता है।
श्रमण! तुझे यह बात पूछता हूँ 'कैसे तू स्थित और मैं अस्थित हूँ?' ॥१॥
"अंगुलिमाल! सारे प्राणियोंके प्रति दंड छोड़नेसे मैं सर्वदा स्थित हूँ।
तू प्राणियोंमें अ-संयमी है, इसलिये मैं स्थित हूँ, और तू अ-स्थित है ॥२॥"
"मुझे महर्षिका पूजन किये देर हुई, यह श्रमण महावनमें मिल गया।
सो मैं धर्मयुक्त गाथाको सुनकर चिरकालके पापको छोड़ूँगा" ॥३॥
इस प्रकार डाकूने तलवार और हथियार खोह, प्रपात और नालेमें फेंक दिये।
डाकूने सुगतके पैरोंकी वन्दनाकी, और वहीं उनसे प्रव्रज्या माँगी ॥४॥
बुद्ध करुणामय महर्षि, जो देवोंसहित लोकके शास्ता (= गुरु) हैं।
उसको 'आ भिक्षु' बोले, यही उसका संन्यास हुआ ॥५॥

तब भगवान् आयुष्मान् अंगुलिमालको अनुगामी-श्रमण बना जहाँ श्रावस्ती थी वहाँ चारिकाकेलिये चले। क्रमशः चारिका करते जहाँ श्रावस्ती थी, वहाँ पहुँचे। श्रावस्तीमें भगवान् अनाथ-पिंडकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। उस समय राजा प्रसेनजित् कोसलके[१]

---

१. नगरके भीतरी भागमें राजाके महल आदि होते थे, इसीको अन्तःपुर, या राजकुल कहा जाता था।

अन्तःपुरके द्वार पर बड़ा जन-समूह एकत्रित था। कोलाहल (=उच्च शब्द, महाशब्द) हो रहा था—'देव ! तेरे राज्यमें अंगुलि-माल नामक डाकू है। उसने ग्रामोंको भी अ-ग्राम०। वह मनुष्योंको मारकर अंगुलियोंकी माला पहनता है। देव ! उसको रोक।"

तब राजा प्रसेनजित् कोसल पांच सौ घोड़-सवारोंके साथ मध्याह्नको श्रावस्तीसे निकला (और) जिधर आराम था, उधर गया। जितनी यानकी भूमि थी, उतनी यानसे जा, यानसे उतर पैदल जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवानको अभिवादनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे राजा प्रसेनजित् कोसलको भगवानने कहा—

"क्या महाराज ! तुझपर राजा मगध श्रेणिक बिंबसार बिगड़ा है, या वैशालिक लिच्छवि, या दूसरे विरोधी राजा ?"

"भन्ते ! न मुझपर राजा मागध० बिगड़ा है०। भन्ते ! मेरे राज्यमें० अंगुलि-माल नामक डाकू०। भन्ते ! मैं उसीको निवारण करने जा रहा हूँ।"

"यदि महाराज ! तू अंगुलि-मालको केश-श्मश्रु मुँड़ा काषाय-वस्त्र पहिन, घरसे बेघर प्रव्रजित हुआ, प्राण-हिंसा-विरत, अदत्तादान-विरत, मृषावाद-विरत, एकाहारी, ब्रह्मचारी, शीलवान्, धर्मात्मा देखे, तो उसको क्या करे ?"

"हम भन्ते ! प्रत्युत्थान करेंगे, आसनके लिए निमंत्रित करेंगे, चीवर, पिंड-पात शयनासन ग्लान-प्रत्यय भेषज्य परिष्कारोंसे निमंत्रित करेंगे, और उनकी धर्म धार्मिक रक्षा=आवरण=गुप्ति करेंगे। किन्तु भन्ते ! उस दुःशील पापीको ऐसा शील-संयम कहाँसे होगा।'

उस समय आयुष्मान् अंगुलि-माल भगवान्के अ-विदूर बैठे थे। तब भगवान्ने दाहिनी बाँहको पकड़ कर राजा प्रसेनजित् कोसलको कहा—

"महाराज ! यह है अंगुलिमाल

तब राजा प्रसेनजित् कोसलको, भय हुआ, स्तब्धता हुई, रोमांच हुआ। तब भगवान्ने राजा प्रसेनजित् कोसलको यह कहा—

"मत डरो, महाराज ! मत डरो महाराज। (अब) इससे तुझे भय नहीं है।"

तब राजा प्रसेनजित् कोसलका जो भय० था, वह विलीन हो गया।

तब राजा प्रसेनजित् कोसल जहाँ आयुष्मान् अंगुलिमाल थे, वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् अंगुलि-मालको बोला—

"आर्य अंगुलिमाल हैं ?"

"हाँ, महाराज !"

"आर्यके पिता किस गोत्रके, और माता किस गोत्रकी ?"

"महाराज ! पिता गार्ग्य, माता मैत्रायणी।"

"आर्य गार्ग्य मैत्रायणीपुत्र अभिरमण करें। मैं आर्य गार्ग्य मैत्रायणी-पुत्रकी चीवर, पिंड-पात, शयनासन, ग्लान-प्रत्यय-भेषज्य परिष्कारोंसे सेवा करूँगा।"

उस समय आयुष्मान् अंगुलिमाल आरण्यक, पिंडपातिक, पांसु-कूलिक, त्रैचीवरिक थे। तब आयुष्मान् अंगुलिमालने राजा प्रसेनजित् कोसलको कहा—

"महाराज ! मेरे तीनों चीवर पूरे हैं।"

तब राजा प्रसेनजित् कोसल जहां भगवान् थे, वहां गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठा। एक ओर बैठ···भगवान्‌को यह बोला—

"आश्चर्य भन्ते! अद्भुत भन्ते!! कैसे भन्ते? भगवान् अदान्तोंको दमन करते, अशांतोंको शमन करते, अ-परिनिर्वृतोंको परिनिर्वाण कराते हैं। भन्ते! जिसको हम दंडसे भी, शस्त्रसे भी दमन न कर सके, उसको भन्ते! भगवान्‌ने बिना दंडके, बिना शस्त्रके दमन कर दिया। अच्छा, भन्ते! हम जाते हैं, हम बहु-कृत्य = बहु-करणीय (= बहुत कामवाले) हैं।"

"जिसका महाराज! तू काल समझता है (वैसा कर)।"

तब राजा प्रसेनजित् कोसल आसनसे उठकर भगवान्‌को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर चला गया।

तब आयुष्मान् अंगुलिमाल पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्र-चीवर ले श्रावस्तीमें पिंडके लिये प्रविष्ट हुये। श्रावस्तीमें बिना ठहरे पिंड-चार करते आयुष्मान् अंगुलिमालने एक स्त्रीको मूढ़-गर्भा = विघात-गर्भा (= मरे गर्भवाली) देखा। देखकर उनको यह हुआ—'हा! प्राणी दुःख पा रहे हैं!! हा! प्राणी दुःख पा रहे हैं।' तब आयुष्मान् अंगुलिमाल श्रावस्तीमें पिंड-चार करके भोजनोपरान्त···जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादन-कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् अंगुलिमालने भगवान्‌को कहा—

"मैं भन्ते! पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्र-चीवर ले श्रावस्तीमें पिंडके लिए प्रविष्ट हुआ। श्रावस्तीमें० मैंने एक स्त्रीको मूढ़-गर्भा० देखा। '०हा! प्राणी दुःख पा रहे हैं'।"

"तो अंगुलिमाल! जहाँ वह स्त्री है, वहाँ जा। जाकर उस स्त्रीको कह—भगिनी! यदि मैं जन्मसे, जानकर प्राणि-वध करना नहीं जानता, (तो) उस सत्यसे तेरा मंगल हो; गर्भका मंगल हो।"

"भन्ते! यह तो निश्चय मेरा जानकर झूठ बोलना होगा। भन्ते! मैंने जानकर बहुतसे प्राणि-वध किये हैं।"

"अंगुलिमाल! तू जहाँ वह स्त्री है वहाँ···जाकर यह कह—'भगिनी! यदि मैंने आर्य-जन्ममें पैदा हो (कर) जानकर प्राणि-वध करना नहीं जाना, (तो) इस सत्य से०।"

"अच्छा भन्ते!"···आयुष्मान् अंगुलिमालने···जाकर उस स्त्रीको कहा—

"भगिनि! यदि मैंने आर्य-जन्ममें पैदा हो, जानकर प्राणि-वध०।"

तब स्त्रीका मंगल होगया, गर्भका भी मंगल होगया।

आयुष्मान् अंगुलिमाल एकाकी···अप्रमत्त=उद्योगी संयमी हो विहार करते न-चिरमें ही, जिसके लिए कुल-पुत्र···प्रव्रजित होते हैं, उस सर्वोत्तम ब्रह्मचर्य-फलको इसी जन्ममें स्वयं जानकर = साक्षात्कारकर = प्राप्तकर विहार करने लगे। 'जन्म क्षय होगया ब्रह्मचर्य-पालन हो चुका, करना था सो कर लिया, अब और कामेको यहाँ नहीं है' (इसे) जान लिया। आयुष्मान् अंगुलिमाल अर्हतोंमें एक हुये।

आयुष्मान् अंगुलिमाल पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, श्रावस्तीमें भिक्षाके लिए प्रविष्ट हुये। किसी दूसरेका फेंका ढला आयुष्मान्‌के शरीरपर लगा, दूसरेका फेंका

डंडा०; दूसरेका फेंका कंकड़० । तब आयुष्मान् अंगुलिमाल बहते-खून, फटे-शिर, टूटे-पात्र, फटी संघाटीके साथ जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । भगवान्‌ने दूरसे ही आयुष्मान् अंगुलिमाल-को आते देखा । देखकर आयुष्मान् अंगुलिमालको कहा—

"ब्राह्मण ! तूने कबूल कर लिया । ब्राह्मण ! तूने कबूल कर लिया । जिस कर्म-फलके लिये अनेक सौ वर्ष, अनेक हजार वर्ष, नर्कमें पचना पड़ता, उस कर्म-विपाकको ब्राह्मण ! तू इसी जन्ममें भोग रहा है ।"

तब आयुष्मान् अंगुलिमालने एकान्तमें ध्यानावस्थित हो विमुक्ति-सुखको अनुभव करते, उसी समय यह उदान कहा—

"जो पहिले अर्जित कर पीछे, उसे मार्जित करता है ।
वह मेघसे मुक्त चन्द्रमाकी भाँति इस लोकको प्रभासित करता है ॥१॥
जिसका किया पाप-कर्म पुण्य (= कुशल) से ढँक जाता है ।
वह मेघसे मुक्त० ॥२॥
जो संसारमें तरुण भिक्षु बुद्ध-शासनमें जुटता है । वह० ॥३॥
दिशायें मेरी धर्म-कथाको सुनें, दिशायें मेरे बुद्ध-शासनमें जुटें ।
वह संत पुरुष दिशाओंको सेवन करें, जो धर्मके लिए ही प्रेरित करते हैं ॥४॥
दिशायें मेरे शांति-वादियों, मैत्री-प्रशंसकोंके धर्मको;
समयपर सुनें, और उसके अनुसार चलें ॥५॥
वह मुझे या दूसरे किसीको भी नहीं मारेगा ।
(वह) परम शांतिको पाकर स्थावर जंगमकी रक्षा करेगा ॥६॥
(जैसे) नाली वाले पानी ले जाते हैं, इषु-कार शरको सीधा करते हैं ।
बढ़ई लकड़ीको सीधा करते हैं, (वैसेही) पंडित अपनेको दमन करते हैं ॥७॥
कोई दंडसे दमन करते हैं, (कोई) शस्त्र और कोड़ासे भी ।
तथागत-द्वारा बिना दंड बिना शस्त्रके ही मैं दमन किया गया हूँ ॥८॥
पहिलेके हिंसक मेरा नाम आज अहिंसक है ।
आज मैं यथार्थ-नाम वाला हूँ, किसीकी हिंसा नहीं करता ॥९॥
पहिले मैं 'अंगुलि-माल नामसे प्रसिद्ध चोर था ।
बड़ी बाढ़ (= महा-ओघ) में डूबते बुद्ध की शरण आया ॥१०॥

---

१. अ. क. "कोसल राजाके पुरोहितकी मैत्रायणी नामक भार्याकी कोखमें जन्म ग्रहण किया'''नाम रखते वक्त'''अहिंसक'''नाम रक्खा । उसको विद्या (=शिल्प) सीखने के समय तक्षशिला भेजा । वह धर्मान्तेवासी (= निःशुल्क-शिष्य) हो विद्या पढ़ने लगा । वह व्रत-संपन्न, आज्ञाकारी, प्रिय-आचारी, प्रियवादी था । दूसरे माणवक—'अहिंसक माणवकके आगमनके दिनसे हम नहीं समझ पाते, कैसे इसे फोड़ें'—बैठकर सलाह करते—'सबसे अधिक प्रज्ञावान् होनेसे यह दुष्प्रज्ञ नहीं कहा जा सकता, व्रत-युक्त होनेसे दुर्वृत्त नहीं कहा जा सकता, (सु) जाति वाला होनेसे कुजात नहीं कहा जा सकता, क्या करें' ? तब एकने सलाह दी—'आचार्य-पत्नीको बीचमें लेकर इसे नष्ट करें ।'

उसने [1]अस्सकके राज्यमें अल्लक की सीमापर ।
गोदावरी नदीके तीर:उ`छ और फलके सहारे वास किया ॥ २ ॥
उसीके समीप एक विपुल गाँव था ।
जिससे पैदा हुई आयसे उसने महायज्ञ रचा ॥ ३ ॥
महायज्ञ करके फिर वह आश्रमके भीतर चला गया ।
उसके भीतर चले जानेपर दूसरा ब्राह्मण आया ॥ ४ ॥
घिसे-पैर प्यासा, दाँतमें-पंक-लगा धूसर-शिर ।
वह उसके पासजा पाँच सौ माँगने लगा ॥ ५ ॥
उसको देखकर बावरीने आसनसे निमंत्रित किया ।
कुशल आनंद, पूछा, (और) यह बात कही ॥ ६ ॥—
"जो कुछ मुझे देना था, वह सब मैंने दे डाला ।
हे ब्राह्मण ! जानो, कि मेरे पास पाँच सौ नहीं हैं ॥ ७ ॥
"यदि मांगते हुये मुझे तुम न दोगे ।
तो सातवें दिन तुम्हारा शिर (= मूर्धा) सात टुकड़े हो जाये" ॥ ८ ॥
अभिसंस्कार (= मंत्रविधि) करके उस पाखंडीने (वह) भीषण शब्द कहा ।
उसके उस वचनको सुनकर बावरी दुःखित हुआ ॥ ९ ॥
शोक-शल्यसे युक्त हो निराहार सूखने लगा ।
तथापि चित्तके ध्यानसे मन रमित होता था ॥ १० ॥
भयभीत और दुःखित देख हिताकांक्षी एक देवताने ।
बावरीके पास जाकर वचन कहा ॥ ११ ॥ —
"वह पाखंडी धन-लोभी मूर्धा नहीं जानता ।
मूर्धा या मूर्धा-पातके विषयमें उसको ज्ञान नहीं है ॥ १२ ॥"
"तो तुम जानती होगी, सो मुझे इस मूर्धा, मूर्धापातको ।
बताओ, (मैं) तुम्हारे इस वचनको सुनना चाहता हूँ । ॥ १३ ॥"
मैं भी उसे नहीं जानती, मुझे भी उस विषयका ज्ञान नहीं है ।
मूर्धा और मूर्धा-पात यह बुद्धोंका ही दर्शन (= ज्ञान) है" ॥ १४ ॥
"तो फिर इस वक्त इस पृथिवी-मंडलमें (जो) मूर्धापातको,
जानता है, हे देवता ! उसे मुझे बताओ ?" ॥ १५ ॥
"पूर्व समय जो कपिल-वस्तुसे लोकनायक,
इक्ष्वाकु-राजाकी संतान, प्रभाकर, शाक्य-पुत्र (प्रव्रजित हुये) ॥ १६ ॥

---

1. अ-क. "अस्सक (= अश्मक) और अल्लक (= आर्यक)···दोनों अन्धक (= आन्ध्र)राजाओंके···समीपवर्ती राज्यमें ।···दोनों राजाओंके बीचमें···,गोदावरी नदीके तीरपर,·· जहाँ गोदावरी दोधारमें फटकर भीतर तीन योजनका द्वीप बनाती है ।···। जहाँ पहिले शरभंग आदिने वास किया था ।···।" अस्सक, अल्लक आजकल हैदराबाद राज्यके औरंगाबाद और बीदरके दो जिले तथा आस पासके भाग हो सकते हैं ।

ब्राह्मण ! वही संबुद्ध, सर्व-धर्म-पारंगत,
सब अभिज्ञाओंके बलको प्राप्त, (राग आदि) उपधिके क्षय होनेसे विमुक्त हैं ॥१७॥
वह चक्षु-मान् भगवान् बुद्ध, धर्म-उपदेश करते हैं।
उनके पास जाकर पूछो, वह इसे तुम्हें बतलायेंगे ॥ १८ ॥"
"बुद्ध" यह वचन सुन बावरी बहुत हर्षित हुआ।
उसका शोक कम हो गया, और (उसे) विपुल प्रीति (= खुशी) उत्पन्न हुई ॥१९॥
वह बावरी सन्तुष्ट, हर्षित, प्रफुल्लित हो उस देवताको पूछने लगा।—
"किस गाँव, किस निगम या किस जनपदमें लोकनाथ (वास करते) हैं;
जहाँ जाकर हम पुरुषोत्तम बुद्धको नमस्कार करें ? ॥२०॥"
"वह जिन बहु-प्रज्ञ, वर-भूरि-मेधावान् शाक्यपुत्र;
अ-संग, अन्-आस्रव, नरर्षभ, मूर्धा-पातज्ञ कोसल-मंदिर श्रावस्तीमें (वास करते) हैं ॥२१॥"

तब मंत्र (= वेद) पारंगतने शिष्य ब्राह्मणोंको संबोधित किया—
"आओ माणवको ! कहता हूँ, मेरा वचन सुनो ॥२२॥
जिसका सदा प्रादुर्भाव लोकमें दुर्लभ है।
वह प्रसिद्ध 'बुद्ध' आज लोकमें पैदा हुये हैं॥
शीघ्र श्रावस्ती जाकर पुरुषोत्तमका दर्शन करो ॥२३॥
"हे ब्राह्मण ! तो कैसे हम देखकर जानेंगे—यह 'बुद्ध हैं'।
न जानते हम जैसे उन्हें जानें, वह हमें बतलाओ ॥२४॥
"हमारे मंत्रोंमें महापुरुष-लक्षण आये हैं।
(वह) बत्तीस कहे गये हैं; धारो ओर क्रमशः ॥२५॥
जिसके शरीरमें यह महापुरुष-लक्षण हों।
दो ही उसकी गतियाँ हैं, तीसरी नहीं ॥२६॥
यदि घरमें वास करता है, (तो) इस पृथिवीको
बिना दंड, बिना शस्त्रके जीतकर, धर्मके साथ शासन करता है ॥२७॥
यदि वह घरसे बेघर हो, प्रव्रजित होता है।
तो पट-खुला, बुद्ध, सर्वोत्तम अर्हत् होता है ॥२८॥
(वहाँ जाकर) जाति, गोत्र, लक्षण, मंत्र, शिष्य तथा।
मूर्धा, और मूर्धापातको मनसे ही पूछना ॥२९॥
यदि छिपेको खोलकर देखनेवाले बुद्ध होंगे।
तो मनसे पूछे प्रश्नोंको वचनसे उत्तर देंगे ॥३०॥
बावरीका वचन सुनकर सोलह ब्राह्मण शिष्य—
अजित, तिष्य मैत्रेय, पूर्ण और मेत्रगु ॥३१॥
धयनक, उपशिव, नन्द और हेमक।
तोदेयकप्प (= तोदेयकल्प), दूभय, और पंडित जातुकर्णी ॥३२॥

उसने [1]अस्सकके राज्यमें अल्लक की सीमापर।
गोदावरी नदीके तीर उंछ और फलके सहारे वास किया ॥ २ ॥
उसीके समीप एक विपुल गाँव था।
जिससे पैदा हुई आयसे उसने महायज्ञ रचा ॥ ३ ॥
महायज्ञ करके फिर वह आश्रमके भीतर चला गया।
उसके भीतर चले जानेपर दूसरा ब्राह्मण आया ॥ ४ ॥
घिसे-पैर प्यासा, दाँतमें-पंक-लगा धूसर-शिर।
वह उसके पासजा पाँच सौ माँगने लगा ॥ ५ ॥
उसको देखकर बावरीने आसनसे निमंत्रित किया।
कुशल आनंद, पूछा, (और) यह बात कही ॥ ६ ॥—
"जो कुछ मुझे देना था, वह सब मैंने दे डाला।
हे ब्राह्मण ! जानो, कि मेरे पास पाँच सौ नहीं हैं ॥ ७ ॥
"यदि माँगते हुये मुझे तुम न दोगे।
तो सातवें दिन तुम्हारा शिर (= मूर्धा) सात टुकड़े हो जाये" ॥ ८ ॥
अभिसंस्कार (= मंत्रविधि) करके उस पाखंडीने (यह) भीषण शब्द कहा।
उसके उस वचनको सुनकर बावरी दुःखित हुआ ॥ ९ ॥
शोक-शल्यसे युक्त हो निराहार सूखने लगा।
तथापि चित्तके ध्यानसे मन रमित होता था ॥ १० ॥
भयभीत और दुःखित देख हिताकांक्षी एक देवताने।
बावरीके पास जाकर वचन कहा ॥ ११ ॥—
"वह पाखंडी धन-लोभी मूर्धा नहीं जानता।
मूर्धा या मूर्धा-पातके विषयमें उसको ज्ञान नहीं है ॥ १२ ॥"
"तो तुम जानती होगी, सो मुझे इस मूर्धा, मूर्धापातको।
बताओ, (मैं) तुम्हारे इस वचनको सुनना चाहता हूँ ॥ ॥ १३ ॥"
मैं भी उसे नहीं जानती, मुझे भी उस विषयका ज्ञान नहीं है।
मूर्धा और मूर्धा-पात यह बुद्धोंका ही दर्शन (= ज्ञान) है" ॥ १४ ॥
"तो फिर इस वक्त इस पृथिवी-मंडलमें (जो) मूर्धापातको,
जानता है, हे देवता ! उसे मुझे बताओ ?" ॥ १५ ॥
"पूर्व समय जो कपिल-वस्तुसे लोकनायक,
इक्ष्वाकु-राजाकी संतान, प्रभाकर, शाक्य-पुत्र (प्रव्रजित हुये) ॥ १६ ॥

---

१. अ-क. "अस्सक (= अश्मक) और अल्लक (= आर्यक)...दोनों अन्धक (= आन्ध्र) राजाओंके...समीपवर्ती राज्यमें।...दोनों राजाओंके बीचमें...,गोदावरी नदीके तीरपर,...जहाँ गोदावरी दोधारमें फटकर भीतर तीन योजनका द्वीप बनाती है।...। जहाँ पहिले शरभंग आदिने वास किया था।...।" अस्सक, अल्लक आजकल हैदराबाद राज्यके औरंगाबाद और बीदरके दो जिले तथा आस पासके भाग हो सकते हैं।

ब्राह्मण ! वही संबुद्ध, सर्व-धर्म-पारंगत,
सब अभिज्ञाओंके बलको प्राप्त, (राग आदि) उपधिके क्षय होनेसे विमुक्त हैं ॥१७॥
वह चक्षु-मान् भगवान् बुद्ध, धर्म-उपदेश करते हैं।
उनके पास जाकर पूछो, वह इसे तुम्हें बतलायेंगे ॥ १८ ॥"
"बुद्ध" यह वचन सुन बावरी बहुत हर्षित हुआ।
उसका शोक कम हो गया, और (उसे) विपुल प्रीति (= खुशी) उत्पन्न हुई ॥१९॥
वह बावरी सन्तुष्ट, हर्षित, प्रफुल्लित हो उस देवताको पूछने लगा।—
"किस गाँव, किस निगम या किस जनपदमें लोकनाथ (वास करते) हैं;
जहाँ जाकर हम पुरुषोत्तम बुद्धको नमस्कार करें ? ॥२०॥"
"वह जिन बहु-प्रज्ञ, वर-भूरि-मेधावान् शाक्यपुत्र;
अ-संग, अन्-आस्रव, नरर्षभ, मूर्धा-पातज्ञ कोसल-मंदिर श्रावस्तीमें (वास करते) हैं ॥२१॥"

तब मंत्र (= वेद) पारंगतने शिष्य ब्राह्मणोंको संबोधित किया—
"आओ माणवको ! कहता हूँ, मेरा वचन सुनो ॥२२॥
जिसका सदा प्रादुर्भाव लोकमें दुर्लभ है।
वह प्रसिद्ध 'बुद्ध' आज लोकमें पैदा हुये हैं॥
शीघ्र श्रावस्ती जाकर पुरुषोत्तमका दर्शन करो ॥२३॥
"हे ब्राह्मण ! तो कैसे हम देखकर जानेंगे—यह 'बुद्ध हैं'।
न जानते हम जैसे उन्हें जानें, वह हमें बतलाओ ॥२४॥
"हमारे मंत्रोंमें महापुरुष-लक्षण आये हैं।
(वह) बत्तीस कहे गये हैं; चारों ओर क्रमशः ॥२५॥
जिसके शरीरमें यह महापुरुष-लक्षण हों।
दो ही उसकी गतियाँ हैं, तीसरी नहीं ॥२६॥
यदि घरमें वास करता है, (तो) इस पृथिवीको
बिना दंड, बिना शस्त्रके जीतकर, धर्मके साथ शासन करता है ॥२७॥
यदि वह घरसे बेघर हो, प्रव्रजित होता है।
तो पट-खुला, बुद्ध, सर्वोत्तम अर्हत् होता है ॥२८॥
(वहाँ जाकर) जाति, गोत्र, लक्षण, मंत्र, शिष्य तथा।
मूर्धा, और मूर्धापातको मनसे ही पूछना ॥२९॥
यदि छिपेको खोलकर देखनेवाले बुद्ध होंगे।
तो मनसे पूछे प्रश्नोंको वचनसे उत्तर देंगे ॥३०॥
बावरीका वचन सुनकर सोलह ब्राह्मण शिष्य—
अजित, तिष्य मैत्रेय, पूर्ण और मेत्तगु ॥३१॥
धोतक, उपशिव, नन्द और हेमक।
तोदेयकप्प (= तोदेयकल्प), दूभय, और पंडित जातुकर्णी ॥३२॥

भद्रायुध, उदय, और ब्राह्मण पोसाल।
    और मेधावी मोघराज और महाऋषि पिंग्य ॥३३॥
सभी अलग अलग गणी (= जमात-वाले), सर्वलोकप्रसिद्ध।
    ध्यायी=ध्यान-रत, और पूर्वकालसे (आश्रम) वासके वासी ॥३४॥
बावरीको अभिवादनकर, और उसकी प्रदक्षिणाकर।
    सभी जटा-मृग-चर्म-धारी, उत्तरकी ओर चले ॥३५॥

अळकसे प्रतिष्ठान[1], तथा प्रथम [2]माहिष्मती।
    [3]उज्जयिनी और फिर गोनर्द[4], [5]विदिशा [6]वनसाह्वय ॥३६॥
[7]कौशाम्बी और [8]साकेत, और पुरोंमें उत्तम [9]श्रावस्ती।
    [10]सेतव्या, [11]कपिलवस्तु, [12]कुसीनारा और मन्दिर ॥३७॥
[13]पावा और भोगनगर, वैशाली, और मगध-पुर (= [14]राजगृह)।
    और रमणीय मनोरम पाषाणक [15]चैत्य (में पहुँचे) ॥३८॥

जैसे प्यासा ठण्डे पानीको, जैसे बनिया लाभको,
    धूपमें तपा जैसे छायाको, (वैसेही वह) जल्दीसे पर्वतपर चढ़ गये ॥३९॥
भगवान् उस समय भिक्षु-संघको सामने किये,
भिक्षुओंको धर्म उपदेश कर रहे थे, वनमें सिंह जैसे गरज रहे थे ॥४०॥

---

१. गोदावरीके उत्तर किनारे पर औरङ्गाबादसे अट्ठाईस मील दक्षिण, वर्तमान पैठन जिला औरङ्गाबाद (हैदराबाद राज्य)। २. इन्दौरसे चालीस मील दक्खिन नर्मदाके उत्तर तटपर वर्तमान महेश्वर।

३. वर्तमान उज्जैन (मध्यभारत)।

४. वर्तमान भोपालके पास कोई स्थान। अ. क. "गोधपुरी भी"

५. वर्तमान भिलसा (म. भारत)।

६. अ. क. "तुम्बवनगर (=वनसनगर)………वन-श्रावस्ती भी………।" बीना (जिला सागर ?)।

७. इलाहाबादसे प्रायः ३० मील पश्चिम, जमुनाके बाँयें किनारे वर्तमान कोसम (जिला इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश)

८. वर्तमान अयोध्या (जिला फैजाबाद, उ. प्र.)।

९. बलरामपुरसे १० मील वर्तमान सहेट-महेट (जिला गोंडा, उ. प्र.)।

१०. श्वेताम्बी।

११. तौलिहवा बाजारसे प्रायः दो मील उत्तर वर्तमान तिलौरा (नेपाल तराई)।

१२. गोरखपुरसे सैंतीस मील पूर्व वर्तमान कसया (जिला गोरखपुर उ. प्र.)।

१३. पडरौना (कसयासे १२ मील उत्तर-पूर्व) या पासका पपउर गाँव।

१४. राजगिर (जिला पटना, बिहार)।

१५. संभवतः गिर्यक् पर्वत (राजगिरिसे छः मील)।

अजितने बुद्धको शत-रश्मि सूर्य जैसा,
पूर्णता-प्राप्त पूर्णिमाके चन्द्रमा जैसा देखा ॥४१॥
तब उनके शरीरमें पूरे व्यञ्जनों (=लक्षणों) को देखकर,
हर्षित हो एक ओर खड़े हुये मनसे प्रश्न पूछा ॥४२॥
"(हमारे आचार्यके) जन्म आदिको बतलाओ, और लक्षणके साथ गोत्र बतलाओ ।
मंत्रोंमें पारंगत-पन बतलाओ, और कितने ब्राह्मणोंको पढ़ाता है (इसे भी) ?"॥४३॥
"एक सौ बीस वर्ष आयु है, और वह गोत्रसे बावरि है ।
उसके शरीरमें तीन लक्षण, और तीनों वेदोंमें पारंगत है ॥४४॥
निघण्टु-सहित कैटुभ (=कल्प)-सहित लक्षण, इतिहास,
पाँच सौको पढ़ाता है, अपने धर्ममें पारंगत है ॥४५॥
"हे नरोत्तम ! हे तृष्णा-छेदक ! बावरीके लक्षणोंका विस्तार,
करो, (जिसमें) हम लोगोंको शंका न रह जाये ? ॥४६॥"
"ऊर्णा (उसकी) भौंके बीचमें (है) मुँहको जिह्वा ढाँक लेती है ।
कोषसे ढँका वस्त्र-गुह्य (= लिंग) है, यह जानो हे माणवक ! ॥४७॥"
प्रश्न कुछ भी न सुनते, और प्रश्नोंका उत्तर देते;
(देख), आश्चर्यान्वित हो, हाथ जोड़ लोग सोचते थे ॥४८॥
कौन देवता है, ब्रह्मा, या इन्द्र सुजाम्पति है ।
मनसे पूछे प्रश्नोंका (उत्तर) किसे भासित हो रहा है ? ॥४९॥
"बावरि मूर्धा (=शिर) और मूर्धा-पातको पूछता है ।
हे भगवन् ! उसे व्याख्यान करें, हे ऋषि ! हमारे संशयको मिटावें ॥५०॥"
"अविद्याको मूर्धा जानो, और मूर्धा-पातिनी,
श्रद्धा, स्मृति, समाधि, छन्द, (और) वीर्यके साथ विद्याको (जानो) ॥५१॥"
तब अत्यन्त प्रसन्नतासे स्तंभित हो माणवक,
मृगचर्मको एक कन्धेपर कर शिरसे पैरोंमें पड़ गया ॥५२॥
"हे मार्ष, हे चक्षु-मान् ! शिष्योंसहित बावरि ब्राह्मण,
हृष्ट-चित्त, सुमन हो, आपके पैरोंमें वन्दना करता है ॥५३॥"
"ब्राह्मण ! शिष्यों-सहित बावरि सुखी होवे ।
हे माणवक ! तू भी सुखी हो, चिरंजीवी हो ॥५४॥"
संबुद्धके अवकाश देनेपर बैठकर हाथ जोड़,
वहाँ अजितने तथागतको प्रथम प्रश्न पूछा ॥५५॥

१. अजित-माणव-पुच्छा

(अजित)—"लोक किससे ढँका है ? किससे प्रकाशित नहीं होता ?
किसे इसका अभिलेपन कहते हो ? क्या इसका महाभय है" ? ॥५६॥
(भगवान्)—"अविद्यासे लोक ढँका है, प्रमाद (= आलस्य)से नहीं प्रकाशित होता ।
तृष्णाको अभिलेपन कहता हूँ, (जन्म आदि) दुःख इसका महाभय है ॥५७॥"

भगवान्—"जिस ब्राह्मणको तू ज्ञानी, अकिंचन (= परिग्रह-रहित) काम-भवसे अ-सक्त जाने। अवश्य ही वह इस भवसागरको पार हो गया है, पार हो वह सबसे निरपेक्ष है ॥८३॥ जो नर यहाँ विद्वान् = वेदगू, भव-अभवमें संगको छोड़कर विचरता है; वह तृष्णा-रहित, राग-आदि-रहित, आशा-रहित है। 'उसे मैं जन्म जरा पार हो गया'—कहता हूँ ॥८४॥"

५. धोतक-माणव-पुच्छा

(धोतक)—"हे भगवान्! तुम्हें यह पूछता हूँ, महर्षि! तुम्हारा वचन (सुनना) चाहता हूँ। तुम्हारे निर्घोष (=वचन) को सुनकर अपने निर्वाण (= मुक्ति) को सीखूँगा॥८५॥"

(भगवान्)—तो तत्पर हो, पंडित (हो), स्मृति-मान् हो; यहाँसे वचन सुन अपने निर्वाणको सीखो ॥८६॥"

(धोतक)—"मैं (तुम्हें) देव-मनुष्य लोकमें अ-किंचन (= निर्लोभ) विहरनेवाला ब्राह्मण देखता हूँ। हे समन्त-चक्षु (= चारों ओर आँखवाले)! ऐसे तुम्हें नमस्कार करता हूँ। हे शक्र! मुझे कथंकथा (वाद-विवाद) से छुड़ाओ ॥८७॥"

(भगवान्)—हे धोतक! लोकमें मैं किसी कथंकथीको छुड़ाने नहीं आऊँगा। इस प्रकार श्रेष्ठ धर्मको जानकर, तुम इस ओघ (= भवसागर) को तर जाओगे ॥८८॥"

(धोतक)—"हे ब्रह्म! करुणाकर, विवेक-धर्मको मुझे उपदेश करो। जिसे मैं जानूँ। जिसके अनुसार······न लिप्त हो, यहीं शान्त, अ-बद्ध हो विचरण करूँ ॥८९॥"

(भगवान्)—"धोतक! इसी शरीरमें प्रत्यक्ष धर्मको बतलाता हूँ; जिसको जानकर (मनुष्य स्मरण कर, आचरण कर लोकमें अ-शांतिको तर जाये ॥९१॥"

"जो कुछ ऊपर, नीचे, आड़े या बीचमें, जानता है; लोकमें इसे 'संग है' समझकर, भव-अभवमें तृष्णा मत करो ॥९२॥"

६. उपसीव-माणव-पुच्छा

(उपसीव)—"हे शक्र! मैं अकेले महान् ओघ (= संसारप्रवाह) को निराश्रित हो तरनेकी हिम्मत नहीं रखता। हे समन्त-चक्षु! आलम्ब बतलाओ, जिसका आश्रय ले मैं इस ओघको तरूँ॥"

(भगवान्)—"आकिंचन्य (= कुछ नहीं) को देख, स्मृतिमान् हो, '(कुछ) नहीं है' को आलंबन कर ओघको पार करो। कामोंको छोड़, कथाओंसे विरत हो, रात-दिन तृष्णा-क्षयको देखो ॥९४॥"

(उपसीव)—"जो सब कामों (= भोगों) में विरागी, और (सब) छोड़, 'कुछ नहीं (= आ-किंचन्य) को अवलम्बन किये, (सात) परम संज्ञा-विमोक्षोंमें विमुक्त (रहे), वह वहीं (= अकिंचन्य) अचल हो ठहरेगा न?" ॥९५॥

(भगवान्)—"जो सब कामोंमें विरागी•, वह वहीं अचल हो ठहरता है ॥९६॥"

(उपसीव)—"हे समन्त-चक्षु! यदि वह वहीं अचल (= अन्-अनुयायी) हो बहुत वर्षोंतक ठहरता है; (तो) क्या वह वहीं मुक्त = शीतल हो ठहरता है, या वहाँसे उसका विज्ञान (= जीव) च्युत होता है? ॥९७॥

(भगवान्)—"वायुके वेगसे क्षिप्त अर्चि (=लौ) जैसे अस्त हो जाती है (और इस दिशामें गई आदि) व्यवहारको प्राप्त नहीं होती। इसी प्रकार मुनि नाम-कायसे मुक्त हो अस्त हो जाता है, व्यवहारको प्राप्त नहीं होता ॥९८॥"

(उपसीव)—"वह अस्तंगत है, या नहीं है, या वह हमेशाके लिये अरोग है? हे मुनि! इसे मुझे अच्छी प्रकार बताओ, क्योंकि आपको यह धर्म विदित है ॥९९॥"

(भगवान्)—"अस्तंगत (=निर्वाण-प्राप्तके रूप आदि)का प्रमाण नहीं है; जिससे इसे कहा जाये,...। सभी धर्मोंके नष्ट हो जानेपर, कथन-मार्गसे भी सब (धर्म) नष्ट हो गये ॥१००॥

७. नन्द-माणव-पुच्छा

(नन्द)—"लोग 'लोकमें मुनि हैं' कहते हैं, सो यह कैसे? उत्पन्न-ज्ञानको मुनि कहते हैं, या (=कठिन तपयुक्त) जीवनसे युक्तको? ॥१०१॥"

(भगवान्)—"न दृष्टि (=मत)से, न श्रुतिसे, न ज्ञानसे, नन्द! कुशल (=पंडित) जन (किसीको) 'मुनि' कहते हैं; जो विपसा मानकर लोभ-रहित, आशा-रहित हो विचरते हैं, उन्हें मैं मुनि कहता हूँ ॥१०२॥"

(नन्द)—"कोई कोई श्रमण ब्राह्मण इष्ट (=मत) या श्रुत (=वेद, विद्याध्ययन)से शुद्धि कहते हैं; शील और व्रतमें भी शुद्धि कहते हैं, अनेक रूपसे शुद्धि कहते हैं। हे मार्ष! भगवान्! वैसा आचरण करते, क्या वह जन्म-जरासे तर गये होते हैं? भगवान्! तुम्हें पूछता हूँ, इसे मुझे बतलाओ ॥१०३॥"

(भगवान्)—"जो कोई श्रमण ब्राह्मण०। 'वह जन्म-जरासे नहीं तरे', कहता हूँ ॥१०४॥"

(नन्द)—"जो कोई श्रमण ब्राह्मण० अनेक रूपसे शुद्धि कहते हैं। यदि मुनि! (उन्हें) ओघसे अ-तीर्ण (=न पार हुआ) कहते हैं; तो देव-मनुष्य-लोकमें कौन जन्म-जराको पार हुआ?—हे मार्ष! भगवान्, तुम्हें पूछता हूँ, इसे मुझे बतलाओ ॥१०४,१०५॥"

(भगवान्)—"मैं सभी श्रमण ब्राह्मणोंको जन्म-जरासे निवृत्त नहीं कहता। जो कि इष्ट, श्रुत, स्मृत, शील, व्रत सब छोड़; सभी अनेक रूप छोड़, तृष्णाको त्याग अनास्रव (=राग आदि-रहित) हैं, मैं उन नरोंको 'ओघ पार' कहता हूँ ॥१०६॥"

(नन्द)—"हे गौतम! महर्षिके उपधि-रहित, सुभाषित इन प्रवचनोंका मैं अभिनन्दन करता हूँ; जो कि इष्ट, श्रुत, स्मृत, शील, व्रत सब छोड़, सभी अनेक रूप छोड़, तृष्णाको त्याग अनास्रव हैं, मैं भी उन्हें ओघ-तीर्ण (=भवसागर-पार) कहता हूँ ॥१०७॥"

८. हेमक-माणव-पुच्छा

(हेमक)—"पहिलोंने जो मुझे गौतम-उपदेशसे पृथक् बतलाया—'ऐसा था,' 'ऐसा होगा,' यह सब 'ऐसा ऐसा (=इति इति ह)' है; वह सब तर्क बढ़ानेवाला है ॥१०८॥ हे मुनि! मेरा मन उनमें नहीं रमा, हे मुनि! तुम तृष्णा-विनाशक धर्म मुझे बतलाओ, जिसको जानकर, स्मरणकर, आचरणकर, लोकमें तृष्णाको पार होऊँ ॥१०९॥"

(भगवान्)—हे हेमक! यहाँ इष्ट, श्रुत, स्मृत और विज्ञातमें छन्द=रागका हटाना (ही)

अच्युत निर्वाण पद है ॥११०॥ इसे जान, स्मरणकर लोग इसी जन्ममें निर्वाण-प्राप्त, उपशांत होते हैं, और लोकमें तृष्णाको पार हो गये होते हैं ॥१११॥"

९. तोदेय्य-माणव-पुच्छा

(तोदेय)—"जिसमें काम नहीं बसते, जिसको तृष्णा नहीं है, वाद विवादसे जो पार होगया, उसका विमोक्ष, कैसा होता है ? ॥११२॥

(भगवान्)—"जिसमें काम नहीं०, उसका विमोक्ष नहीं ॥११३॥"

(तोदेय)—"वह आश्वासन-सहित है या आश्वासन-रहित ? प्रज्ञावान् है, या प्रज्ञा (वान्)-सा है ? हे मुनि ! शक ! समन्त-चक्षु ! जैसे मैं इसे जान सकूँ वैसे बतलाओ ॥११४॥"

(भगवान्)—"वह आश्वास-रहित है, आश्वास-सहित नहीं, वह प्रज्ञावान् है, प्रज्ञा-(वान्) सा नहीं। हे तोदेय ! जो काम-भव (=कामना और संसार)में अ-सक्त, ऐसे मुनिको अ-किंचन जानो ॥११५॥"

१०. कप्प-माणव-पुच्छा

(कप्प)—"बड़ी भयानक बाढ़में सरोवरके बीचमें खड़े, मुझे तुम द्वीप (=शरण-स्थान) बतलाओ, जिसमें यह (संसार-दुःख) फिर न हो ॥११६॥"

(भगवान्)—"हे कप्प ! बड़ी भयानक० । तुझे द्वीप बतलाता हूँ ॥११७॥
आकिंचन = अन्-आदान (=न ग्रहण करना), यह सर्वोत्तम द्वीप है।
इसे मैं जरा-मृत्यु-विनाश (रूप) निर्वाण कहता हूँ ॥११८॥
यह जानकर, स्मरणकर इसी जन्ममें जो निर्वाण-प्राप्त हो गये,
वह मारके वशमें नहीं होते, न वह मारके अनुचर (होते हैं) ॥११९॥"

११. जतुकण्णि-माणव-पुच्छा

(जतुकण्णि)—"भवसागर-पारंगत, कामना-रहित (तुम्हें) सुनकर मैं अकाम (=निर्वाण) पूछनेको आया हूँ, हे सहज-नेत्र ! मुझे शान्तिपद बतलाओ। हे भगवान् ! ठीकसे इसको मुझे कहो ॥१२०॥ भगवान् कामोंको तिरस्कारकर, सूर्यकी तरह तेजसे तेजको (तिरस्कृतकर) तुम पृथ्वीपर विहरते हो। हे महा-प्रज्ञ ! मुझ अल्प-प्रज्ञको धर्म बतलाओ, जिसको मैं जानूँ, और यहाँ जन्म, जराका विनाश करूँ) ॥१२१॥"

(भगवान्)—"कामोंमें लोभको हटा, नैष्काम्य (=निष्कामता) को क्षेम समझ, यह कुछ भी तुझे ग्राह्य या त्याज्य न रह जाये ॥१२२॥ जो पहिलेका है, उसे सुखा दे, पीछे कुछ मत (पैदा) हो; मध्यमें भी यदि ग्रहण न करे, तो पद उपशांत हो विचरेगा ॥१२३॥ हे ब्राह्मण ! (जो) नाम-रूपमें सर्वथा लोभ-रहित है, (उसे) आस्रव (=चित्त-मल) नहीं होते, जिनके कारण कि वह मृत्युके वशमें जाये ॥१२४॥"

१२. भद्रावुध-(=भद्रायुध) माणव-पुच्छा

(भद्रावुध)—"ओघ-त्यागी, तृष्णा-छेदी, इच्छा-रहित=नन्दी-रहित, ओघ पारंगत, विमुक्त, कल्प-त्यागी ! (आप) सुमेध (से) याचना करता हूँ; नागसे (उसे) सुनकर (हम) यहाँसे जायेंगे ॥१२५॥ हे वीर ! तुम्हारे वचन (के सुनने)की इच्छासे हम नाना जन

(नाना) देशोंसे इकट्ठे हुये हैं। उन्हें तुम अच्छी प्रकार व्याख्यान करो, क्योंकि तुम्हें वह धर्म विदित है ॥१२४॥

(भगवान्)-"ऊपर, नीचे, तिर्यक्, और मध्यमें सारी संग्रह करनेकी तृष्णाको छोड़ दो। लोकमें जो संग्रह करता है, उसीसे मार जंतुओंका पीछा करता है ॥१२५॥ संग्रह करनेवालोंको 'मृत्युके हाथमें फँसी प्रजा' समझ, सारे लोकमें कुछ भी संग्रह न करो ॥१२६॥"

१३. उदय-माणव-पुच्छा

(उदय)—"ध्यानी, विरज (=विमल), कृत-कृत्य, अनास्रव, सर्व-धर्म-पारंगत, (आप)के पास प्रश्न लेकर आया हूँ, प्रज्ञासे अविद्याको विनाश करनेवाले! प्रज्ञा-विमोक्षको बतलाओ? ॥ १२७ ॥"

(भगवान्)—"कामोंमें छन्द (=राग) और दौर्मनस्यका प्रहाण (=विनाश), स्त्यान (=चित्त-आलस्य) का हटाना, कौकृत्यका निवारण, उपेक्षासे स्मृति-परिशुद्ध, तर्क-पूर्वक धर्मको ०आज्ञा-विमोक्ष कहता हूँ ॥ १२८,१२९ ॥"

(उदय)—"लोकमें संयोजन (=बंधन) क्या है, उसकी विचारणा क्या है? कौनसे (धर्म)के प्रहाणसे निर्वाण है? ॥ १३० ॥"

(भगवान्)—"लोकमें तृष्णा संयोजन है, वितर्क उसकी विचारणा है। तृष्णाका विनाश 'निर्वाण' कहा जाता है ॥ १३१ ॥"

(उदय)—"कैसे (क्या) स्मरणकर विचरते विज्ञान निरुद्ध होता है, यह भगवान्को पूछने आये हैं, सो (हम) आपके वचनको सुनें ॥ १३१ ॥"

(भगवान्)—"भीतर और बाहरकी देवनाओंको न अभिनन्दनकर, ऐसा स्मरणकर विचरते इस मुमुक्षुका विज्ञान निरुद्ध होता है ॥ १३२ ॥

१४. पोसाल-माणव-पुच्छा

(पोसाल)—"जो अतीतको कहता है, (जो) अचल, संशय-रहित सर्व-धर्म-पारंगत है, (उसके पास) प्रश्न लेकर आया हूँ। रूप-संज्ञा-विगतहुये, सर्व कामोंको छोड़ने-वाले, 'भीतर और बाहर कुछ नहीं' ऐसा देखनेवाले ज्ञानको, हे शक्र! पूछता हूँ। उस प्रकारका (पुरुष) कैसे लेजाने लायक (=नेय) है ॥ १३२, १३३ ॥"

(भगवान्)—"सारी विज्ञान-स्थितियोंको जानते हुये, ठहरे हुये, विमुक्त, तथागत, इसे तम-परायण जानते हैं। 'अ-किंचन्य-जनकका उत्पादक (अल्पराग) नन्दि-संयोजन है'—ऐसा इसे जानकर तब वहाँ देखता है। उस चिर-अभ्यास-शील ब्राह्मणका यह ज्ञान तथ्य (=सत्य)है ॥१३३, १३४॥"

१५. मोघराज-माणव-पुच्छा

(मोघराज)—"मैंने दो बार शाक्यको प्रश्न पूछे, परन्तु चक्षुमान्ने मुझे व्याख्यान नहीं किया। मैंने सुना है, देव-ऋषि (=बुद्ध) तीनही बारतक व्याकरण (=उत्तर) करते हैं ॥१३५॥ यह लोक, परलोक, देवों-सहित ब्रह्मलोक, तुम यशस्वी गौतमकी दृष्टि (=मत)

नहीं जान सकता ॥१३६॥ ऐसे अग्रदर्शीके पास प्रश्नके साथ आया हूँ, कैसे लोकको देखनेवालेको मृत्यु-राज नहीं देखता ॥ १३७ ॥

(भगवान्)—"मोघराज ! सदा स्मृति रखते, लोकको शून्य समझकर देखो । इस प्रकार आत्माकी दृष्टिको छोड़(ने वाला) मृत्युसे तर जाता है। लोकको ऐसे देखते हुयेकी ओर मृत्युराज नहीं ताकता ॥ १३८ ॥"

१६. पिंगिय-माणव-पुच्छा

(पिंगिय)—"मैं जीर्ण, अ-बल, विरूप हूँ । (मेरे) नेत्र शुद्ध नहीं, श्रोत्र ठीक नहीं । मैं मोहमें पड़ा बीचमें ही न नष्ट होजाऊँ (इस लिये) धर्मको बतलाओ, जिससे मैं यहाँ जन्म-जराके विनाशको जानूँ ॥ १३९ ॥"

(भगवान्)—"रूपोंमें (प्राणियोंको) मारे जाते देख, प्रमत्तजन पीड़ित होते हैं । इसलिये पिंगिय ! तू संसारमें न जन्मनेके लिये रूपको छोड़ ॥ १४० ॥"

(पिंगिय)—"चार दिशायें; तुम्हें अदृष्ट, अश्रुत, या अस्मृत नहीं, और लोकमें कुछ भी तुम्हें अविज्ञात नहीं है । धर्मको बतलाओ, जिसमें मैं···जन्म-जराके विनाशको जानूँ ॥१४१॥"

(भगवान्)—"तृष्णा-लिप्त मनुष्योंको संतप्त, जरा-पीड़ित, देखते हुये, हे पिंगिय ! तू अ-प्रमत्तहो अ-पुनर्भवके लिये तृष्णाको छोड़ ॥१४२॥"

मगधमें पाषाणक-चैत्यमें विहार करते भगवान्‌ने यह कहा···। यह पार लेजाने-वाले (= पारंगमनीय) धर्म है, इसलिये इस धर्म-पर्यायका नाम 'पारायण' है।

+ + + +

सुनक-सुत्त । दोण-सुत्त । सहस्सभिक्खुनी-सुत्त । सुन्दरिका-भारद्वाज-सुत्त । अत्तदीप-सुत्त । उदान-सुत्त । मल्लिका-सुत्त । (ई. पू. ५०२–५००) ।

'ऐसा मैंने [1]सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडके आराम जेत-वनमें विहार करते थे ।···

"भिक्षुओ ! यह पाँच पुराण ब्राह्मण-धर्म इस समय कुत्तोंमें दिखाई देते हैं । कौनसे पाँच ? पहले भिक्षुओ ! ब्राह्मण ब्राह्मणीके पास जाते थे, अ-ब्राह्मणीके पास नहीं । भिक्षुओ ! इस समय ब्राह्मण ब्राह्मणीके पास भी जाते हैं, अ-ब्राह्मणीके पास भी । (किंतु) भिक्षुओ ! कुत्ते कुतियोंके ही पास जाते हैं, अ-कुतियोंके पास नहीं। यह भिक्षुओ! प्रथम पुराण ब्राह्मण-धर्म है, जो इस समय कुत्तोंमें दिखाई देता है ।

"पहिले भिक्षुओ ! ब्राह्मण ऋतुमती ब्राह्मणीके पास ही जाते थे, अ-ऋतु-मतीके पास नहीं । आजकल···अ-ऋतुमतीके पास भी···।०।

"पहिले भिक्षुओ ! ब्राह्मण ब्राह्मणीको न खरीदते थे, न बेचते थे, परस्पर प्रेमके साथ

1. सत्ताईसवाँ (ई. पू. ५०१) वर्षावास श्रावस्ती (जेतवन) में । २. अ. नि. ५:१९१ ।

ही सहवास···करते थे। आजकल···ब्राह्मण ब्राह्मणीको खरीदते भी हैं, बेचते भी हैं, परस्पर प्रेमके साथ भी···अ-प्रेमके साथ भी···।०।

"पहिले···ब्राह्मण, सन्निधि—धनका, धान्यका, चाँदी-सोने (=रजत-जातरूप) का संग्रह नहीं करते थे। इस समय···संग्रह करते हैं।०।

"पहिले भिक्षुओ! ब्राह्मण सायंकालके भोजनके लिये सायं, प्रातःकालके भोजनके लिये प्रातः, खोज करते थे। इस समय भिक्षुओ! ब्राह्मण इच्छाभर, पेटभर खा, बाकी (घर) ले जाते हैं। इस समय भिक्षुओ! कुत्ते संध्याको संध्याके भोजनके लिये०। यह भिक्षुओ! पाँचवाँ पुराण ब्राह्मण धर्म इस समय कुत्तोंमें दिखाई देता है, ब्राह्मणोंमें नहीं। भिक्षुओ! यह पाँच पुराण ब्राह्मण-धर्म इस समय कुत्तोंमें दिखाई देते हैं।"

दोण-सुत्त

ऐसा[1] मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें···जेतवनमें विहार करते थे।

तब द्रोण ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्के साथ···(कुशल-प्रश्नकर)···एक ओर बैठकर, भगवान्को बोला—

"हे गौतम! मैंने सुना है—श्रमण गौतम जीर्ण=वृद्ध=महल्लक=अध्वगत=वयःप्राप्त ब्राह्मणोंको न अभिवादन करता, न प्रत्युत्थान करता, न आसनसे निमंत्रित करता है। सो हे गौतम! क्या (यह) ठीक है? आप गौतम ०ब्राह्मणोंको अभिवादन नहीं करते०? सो हे गौतम! यह ठीक नहीं है।"

"तू भी द्रोण! ब्राह्मण होनेका दावा करता है?"

"हे गौतम!···ब्राह्मण (वह है जो) दोनों ओरसे सुजात—मातासे भी विशुद्ध···, पितामह-मातामहकी सात पीढ़ियों तक जातिसे अ-पतित, अनिन्दित हो। अध्यायी, मंत्र (=वेद)-धर० तीनों वेदोंका पारंगत०। सो यह ठीक बोलते हुये, मुझे ही (ब्राह्मण) बोलेगा। हे गौतम! मैं ब्राह्मण हूँ, दोनों ओरसे सुजात०।"

"द्रोण! जो तेरे पूर्वके ऋषि, मंत्रोंके कर्ता, मंत्रोंके प्रवक्ता (थे), जिनके पुराने मंत्रपदको इस समय ब्राह्मण गीतके अनुसार गान करते हैं, प्रोक्तके अनुसार प्रवचन करते हैं···भाषितके अनुसार भाषण करते हैं; स्वाध्यायितके अनुसार स्वाध्याय करते हैं, वाचितके अनुसार वाचन करते हैं; जैसे कि—अट्टक, वामक, वामदेव, विश्वमित्र, यमदग्नि,[2] अंगिरा, भरद्वाज, वशिष्ट, कश्यप, भृगु, उन्होंने पांच तरहके ब्राह्मण बतलाये हैं—(१) ब्रह्म-सम, (२) देव सम (३) मर्याद, (४) संभिन्न-मर्याद, (५) पांचवां ब्राह्मण-चाण्डाल। उनमें द्रोण! तू कौन ब्राह्मण है?"

"हे गौतम! हम इन पांचो ब्राह्मणोंको नहीं जानते; तब 'हम ब्राह्मण हैं' यह जानते हैं। अच्छा हो! आप गौतम मुझे ऐसा धर्म-उपदेश करें, जिसमें मैं इन पांचो ब्राह्मणोंको जानूं।"

"तो ब्राह्मण! सुनो, और अच्छी तरह धारण करो; कहता हूँ।"

"अच्छा भो!···

---

१. अ. नि. ५ : ४ : ५ : २। २. देखो टिप्पणी पृष्ठ २०१।

···"कैसे द्रोण ! ब्राह्मण-सम होता है। यहां द्रोण ब्राह्मण दोनों ओरसे सुजात होता है० जातिवादसे० अनिंदित। वह अड़तालीस (वर्ष) तक मंत्रोंको पढ़ते कौमार-ब्रह्मचर्य धारण करता है। अड़तालीस वर्ष तक कौमार-ब्रह्मचर्य धारणकर मंत्रोंको पढ़कर आचार्यके लिये आचार्य-धन खोजता है, धर्मसे ही, अधर्मसे नहीं। द्रोण ! धर्म क्या है ? कृषिसे नहीं, वाणिज्यसे नहीं, गोरक्षासे नहीं इषु-अस्त्रसे नहीं, राज-पुरुषता (=सर्कारी नौकरी)से नहीं, किसी एक शिल्पसे नहीं; कपालको न अधिक मानते हुये केवल भिक्षाचर्यासे। वह आचार्यको आचार्य-धन (= गुरुदक्षिणा) देकर, केश-श्मश्रु मुंड़ा, काषाय-वस्त्र धारणकर, घरसे बेघर हो प्रव्रजित होता है। वह इस प्रकार प्रव्रजित हो (१) मैत्री-युक्त चित्तसे एक दिशाको आप्लावितकर विचरता है, तथा दूसरी[१]०, तीसरी०, चौथी०। इसी प्रकार ऊपर, नीचे, तिर्यग्, सब बुद्धिसे सर्वार्थ, सभी लोकको मैत्री-युक्त विपुल=महद्गत=अ-प्रमाण, अवैर, अ-लोभी चित्तसे प्लावित कर, विहरता है। (२) करुणा-युक्त चित्तसे एक दिशा०। (३) मुदिता-युक्त चित्तसे० (४) उपेक्षा-युक्त चित्तसे० अलोभी चित्तसे० विहरता है। वह इन चार ब्रह्म-विहारोंकी भावनाकर, काया छोड़, मरनेके बाद सुगति ब्रह्मलोकमें उत्पन्न होता है। इस प्रकार द्रोण ! ब्राह्मण ब्रह्म-सम होता है।

"और द्रोण ! कैसे ब्राह्मण देव-सम होता है।···द्रोण ! ब्राह्मण दोनों ओरसे सुजात होता है०[१]। वह अड़तालीस वर्ष कौमार-ब्रह्मचर्य पालन करता है। अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य पालनकर मंत्रोंको पढ़०, आचार्य-धन खोजता है०। आचार्यको आचार्य-धन देकर, भार्या (=दारा) खोजता है, धर्मसे अधर्मसे नहीं। द्रोण ! क्या धर्म है ? न क्रयसे न विक्रयसे, (केवल) जलसहित दत्त ब्राह्मणी ही को खोजता है। वह ब्राह्मणीहीके पास जाता है, न क्षत्रियाणीके पास, न वैश्याणीके पास, न शूद्राणीके पास, न चांडालिनीके पास, न निषादिनीके पास, न वेणवीके पास, न रथकारिणीके पास, न पुक्कसीके पास जाता है। न गर्भिणीके पास०, न (दूध) पिलानेवाली०, न अन्-ऋतुमती०। द्रोण ! ब्राह्मण गर्भिणीके पास क्यों नहीं जाता ? पिलानेवालीके पास क्यों नहीं जाता ? यदि द्रोण ! ब्राह्मण गर्भिणीके पास जाते तो (पैदा होनेवाला) माणवक, या माणविका, अति-मीढ़ज (= अति शुक्र)से उत्पन्न होता है। इसलिये द्रोण ! ब्राह्मण गर्भिणीके पास नहीं जाता। द्रोण ! ब्राह्मण पिलानेवालीके पास क्यों नहीं जाता ? यदि द्रोण ! ब्राह्मण० जाये, तो माणवक या माणविका अशुचि-प्रति-पीत नामक होता है०। ०अन्-ऋतुमतीके पास क्यों नहीं जाता ? ब्राह्मण ऋतुमतीके पास जाता, तो वह ब्राह्मणी उसके लिये न कामार्थ, न दव-अर्थ (=मद-अर्थ), न रति-अर्थ, बल्कि प्रजार्थ ही···होती है। वह मिथुन (= पुत्र या पुत्री) उपजाकर, केश-श्मश्रु मुंडा० प्रव्रजित होता है। वह इस प्रकार प्रव्रजित हो[२]० प्रथम ध्यान०, ०द्वितीय ध्यान०, ०तृतीय ध्यान०, चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। वह इन चारों ध्यानोंकी भावना करके, शरीर छोड़, मरनेके बाद, सुगति स्वर्गलोकमें उत्पन्न होता है। इस प्रकार द्रोण ! ब्राह्मण देव-सम होता है।

'कैसे द्रोण ! ब्राह्मण मर्याद होता है ? द्रोण !···ब्राह्मण दोनों ओरसे सुजात होता

१. पृष्ठ १६४। २. पृष्ठ १६०।

है० । वह० अड़तालीस वर्ष कौमार-ब्रह्मचर्य पालनकर, मंत्रोंको पढ़०, आचार्यको आचार्य-धन देकर, भार्या खोजता है, धर्मसे ही अधर्मसे नहीं । ०ब्राह्मणीके पासही जाता है० । वह मिथुन उत्पन्नकर, उसी पुत्र-आनन्दकी इच्छासे कुटुम्बमें बस रहता है, ०प्रव्रजित नहीं होता । जितनी पुराने ब्राह्मणोंकी मर्यादा है, उसमें ही ठहरा रहता है, (उसका) अतिक्रमण नहीं करता,··· इसी लिये···(वह) ब्राह्मण मर्याद कहा जाता है ।

"कैसे द्रोण ! ब्राह्मण संभिन्न-मर्याद होता है ? ०ब्राह्मण दोनों ओरसे सुजात होता है० । ०अड़तालीस वर्ष कौमार-ब्रह्मचर्य पालन करता है० । ०आचार्य-धन देकर भार्या खोजता है० । धर्मसे भी अधर्मसे भी, क्रयसे भी विक्रयसे भी । वह ब्राह्मणीके पास भी जाता है०, क्षत्रियाणीके पास भी, जाता है । अन्-ऋतुमतीके पास भी जाता है । उसकी ब्राह्मणी कामार्थ भी होती है, क्रीडार्थ (= दवार्थ) भी० । पुराने ब्राह्मणोंकी जितनी मर्यादा है, वह उनमें···नहीं ठहरता; उसको अतिक्रमण करता है;···इसलिये (वह) ब्राह्मण संभिन्न-मर्याद कहा जाता है० ।

"कैसे द्रोण ! ब्राह्मग ब्राह्मण-चांडाल होता है ? यहाँ द्रोण ! ब्राह्मण दोनों ओरसे सुजात होता है० । ०अड़तालीस वर्ष कौमार-ब्रह्मचर्य पालन करता है० । ०आचार्य-धन खोजता है, धर्मसे भी अधर्मसे भी, कृषिसे भी, वाणिज्यसे भी०, किसी एक शिल्पसे भी, केवल भिक्षासे भी···।···आचार्य-धन देकर, भार्या खोजता है, धर्मसे भी अधर्मसे भी० । वह ब्राह्मणीके पास भी जाता है० । अन्-ऋतुमतीके पास भी० । उसकी ब्राह्मणी कामार्थ भी होती है० । वह सब कामोंसे जीविका करता है । उसको जब ब्राह्मण ऐसा पूछते हैं—'आप ब्राह्मण होनेका दावा करते, सब कामोंसे जीविका क्यों करते हैं' ? वह ऐसा उत्तर देता है—'जैसे आग शुचिको भी जलाती है, अशुचिको भी जलाती है, और आग उससे लिप्त नहीं होती । ऐसे ही भो ! ब्राह्मग सब कामोंसे जीविका करता है, और उससे लिप्त नहीं होता' । द्रोण ! चूँकि सब कामोंसे जीविका करता है, इसलिये···(वह) ब्राह्मण ब्राह्मण-चांडाल कहा जाता है । इस प्रकार द्रोण ! ब्राह्मण ब्राह्मण-चांडाल होता है । द्रोण !···ब्राह्मणोंके पूर्वज ऋषि० अष्टक० भृगु, यह पाँच ब्राह्मण वर्णन करते हैं—ब्रह्म-सम० पाचवाँ ब्राह्मण-चांडाल । उनमें द्रोण ! तू कौन है ?"

"ऐसा होनेपर हे गौतम ! हम ब्राह्मण-चांडाल भी न उतरेंगे। आश्चर्य ! हे गौतम !!० आजसे आप गौतम मुझे अंजलिबद्ध शरणागत उपासक स्वीकार करें ।

सहस्स-भिक्खुनी-सुत्त

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें [2]राजकाराममें विहार करते थे।

---

१. सं. नि. ५४:२:२ ।

२. अ. क. "राजकाराम = राजाका बनवाया आराम । किस राजाका ? प्रसेनजित् कोसलका । प्रथम-बोधि (बुद्धत्वप्राप्तिसे २० वर्ष, ई.पू. ५२८-८ तक)में शास्ताको उत्तम लाभ-यश प्राप्त देख तैर्थिकोंने सोचा—'श्रमण गौतम उत्तम लाभ यश-प्राप्त है, किसी दूसरे शील, समाधिके कारण उसे ऐसा लाभ-अग्र-प्राप्त नहीं है । उसने भूमिका सार पकड़ा है । यदि हम भी जेत-वनके पास आराम बनवा सकें, तो भारी लाभ-यश प्राप्त होंगे । (आगे भी)

भार (= घटि-भार) है, क्रोध धुआँ है, मिथ्या-भाषण भस्म है, जिह्वा सुवा है, और हृदय ज्योतिका स्थान है। आत्माके दमन करनेपर पुरुषको ज्योति (प्राप्त) होती है ॥८॥ ब्राह्मण! शील-तीर्थ (= घाट) वाला, संतजनोंसे प्रशंसित निर्मल धर्म-ह्रद (= सरोवर) है…। जिसमें कि वेदगू नहाकर बिना भीगे गात्रके पार उतरते हैं ॥९॥ ब्रह्म (= श्रेष्ठ) प्राप्त, सत्य, धर्म, संयम, ब्रह्मचर्यपर आश्रित है। सो तू (ऐसे) हवन समाप्त कियों (मुक्तों)को नमस्कारकर, उनको मैं दम्य-सारथी (= चाबुक-सवार) कहता हूँ ॥१०॥

ऐसा कहनेपर सुन्दरिक भारद्वाज…ने भगवान्‌को यह कहा—"आश्चर्य! हे गौतम!! अद्‌भुत! गौतम!! ०[1]आयुष्मान् भारद्वाज अर्हतोंमें एक हुये।

अत्तदीप-सुत्त

[2]ऐसा मैंने सुना—[3]एक समय भगवान् श्रावस्तीमें…जेतवनमें विहार करते थे।…

"भिक्षुओ! आत्म-द्वीप = आत्म-शरण (= स्वावलंबी) धर्म-द्वीप = धर्म-शरण, अन्-अन्य-शरणहो विहार करो। आत्म-द्वीप० अनन्य-शरण हो विहरनेवालोंको कारणके साथ परीक्षा करना चाहिये—'शोक=परिदेव, दुःख=उपायास किस जातिके हैं, किससे उत्पन्न होते हैं?'…।…भिक्षुओ! आर्योंका अ-दर्शी, आर्य-धर्ममें अ-पंडित, आर्य-धर्ममें अ-प्रविष्ट= सत्पुरुषोंका अदर्शी, सत्पुरुष धर्ममें अ-कोविद, सत्पुरुष-धर्ममें अ-प्रविष्ट (= अविनीत) = अशिक्षित, पृथग्जन रूपको आत्माके तौरपर, या रूपवान्‌को आत्मा; या आत्मामें रूप, या रूपमें आत्माको देखता है। उसका यह रूप निहत होता है, बिगड़ता है। उसका यह रूप विपरिणत = अन्यथा होता है।…। (तब) उसे शोक, परिदेव० उत्पन्न होते हैं'। वेदनाको आत्माके तौरपर०। संज्ञाको०। संस्कारको०। विज्ञानको०। भिक्षुओ! रूपकी ही तो अनित्यता=विपरिणाम, विराग, निरोधको जानकर, 'पूर्वके और इस समयके सभी रूप अनित्य, दुःख, विपरिणाम-धर्म (= बिगड़नेवाले) हैं; इसप्रकार इसे ठीकठीक अच्छी तरह जानकर देखते हुये जो शोक परिदेव० हैं, वह प्रहीण होजाते हैं। उनके प्रहाण (=विनाश) से त्रासको नहीं प्राप्त होता। अ-परित्रस्त हो वह सुखसे विहरता है। सुख-विहारी भिक्षु इस कारणसे निर्वृत (=मुक्त) कहा जाता है। भिक्षुओ! वेदनाकीही तो अनित्यता०। ०संज्ञाकी० संस्कारोंकी०। ०विज्ञानकी०।"

उदान-सुत्त

[4]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें……जेतवनमें विहार करते थे। वहाँ भगवान्‌ने उदान कहा—

"[5]न होता, तो मुझे न होता, न होगा तो मुझे न होगा—इससे मुक्त हो भिक्षु

१. देखो पृष्ठ १९५।

२. अट्ठाईसवाँ वर्षावास भगवान्‌ने श्रावस्ती (= पूर्वाराम) में बिताया, बाकी (जेतवनमें) ३. सं० नि. २१ : ५ : १।

४. सं. नि. २१ : १ : ३।

५. आत्मदृष्टिवाली निकली भावनाएँ।

अवरभागीय संयोजनोंको छेदन करता है।" ऐसा कहनेपर एक भिक्षुने भगवान्‌को यह कहा—

"कैसे भन्ते ! 'न होता तो मुझे न होता, न होगा तो मुझे न होगा ०?'"

"यहाँ भिक्षुओ ! ०'अशिक्षित पृथग्जन रूपको आत्माके तौरपर ०। वेदनाको०। संज्ञाको ०। संस्कारको ०। विज्ञानको ०। आत्माके तौरपर, या विज्ञानवान् को आत्मा, या आत्मामें विज्ञान, या विज्ञानमें आत्माको देखता है। वह 'रूप अनित्य है इसे यथार्थसे नहीं जानता। 'वेदना अनित्य है,' इसे यथार्थसे नहीं जानता। संज्ञा अनित्य ०। 'संस्कार अनित्य ०'। 'विज्ञान अनित्य ०'। 'रूप दुःख है, रूप दुःख है' इसे यथार्थसे नहीं जानता। वेदना ०। संज्ञा ०। संस्कार ०। विज्ञान ०। 'रूप अनात्म (=आत्मा नहीं) है, रूप अनात्म है, इसे यथार्थसे नहीं जानता। वेदना ०। संज्ञा ०। संस्कार ०। 'विज्ञान अनात्म है, विज्ञान अनात्म है' इसे यथार्थसे नहीं जानता। 'रूप संस्कृत (=कृत, बनावटी) है, रूप संस्कृत है' इसे यथार्थसे नहीं जानता। वेदना ०। संज्ञा ०। संस्कार ०। विज्ञान०। 'रूप नाश हो जायेगा, रूप नाश हो जायेगा' इसे यथार्थसे नहीं जानता। वेदना ०। संज्ञा ०। संस्कार०। विज्ञान ०। भिक्षु! श्रुतवान् आर्य-श्रावक रूपको आत्माके तौरपर ० नहीं देखता। न वेदनाको ० न संज्ञाको ०। न संस्कारको ०। न विज्ञानको ०। वह 'रूप अनित्य है, रूप अनित्य है', इसे यथार्थसे जानता है[१]। 'रूप दुःख है ०' ० जानता है। ०। 'रूप अनात्म है ०' ० जानता है। ०। 'रूप संस्कृत है ०'। ०। 'रूप नाश हो जायेगा ०। ०। वह रूपके नाशसे, वेदनाके नाशसे, संज्ञाके नाशसे संस्कारके नाशसे 'न होता तो मुझे न होता, न होगा तो मुझे न होगा' इससे मुक्तहो, भिक्षु अवर-भागीय (=ओरंभागिय) संयोजनोंको छेदन करता है।"

"भन्ते ! इस प्रकार मुक्त भिक्षु अवरभागीय संयोजनोंको छेदन करता है। लेकिन भन्ते ! कैसे जानने=कैसे देखनेपर आस्रवों (=चित्त मलों) का क्षय होता है?"

"यहाँ भिक्षु ! अशिक्षित पृथग्जन अ-त्रासके स्थानमें त्रास (= भय) खाता है। अशिक्षित पृथग्जनको यह त्रास होता है—'न होता तो मुझे न होता; न होगा, तो मुझे न होगा।'···शिक्षित आर्य-श्रावक अत्रासके स्थानमें त्रास नहीं खाता। शिक्षित आर्य-श्रावक को यह त्रास नहीं होता—'न होता तो मुझे न होता; न होगा, तो मुझे न होगा।' भिक्षु ! रूपसे युक्त (=उपगत), रूपके आलम्बसे, रूपपर प्रतिष्ठित=ठहरते हुए, विज्ञान ठहरता है। तृष्णाको उपसेचन (= तर्कारी) पा, वृद्धि = विरूढि = विपुलताको प्राप्त होता है। भिक्षु ! वेदनासे उपगत० वेदनापर प्रतिष्ठित हो, विज्ञान (= चेतना, जीव)० ठहरता है, तृष्णा (=नन्दी) को उपसेचन पा०। ०संज्ञा०। ०संस्कार। भिक्षु ! यह ऐसा कहे—'मैं, रूपसे अलग, वेदनासे अलग, संज्ञासे अलग, संस्कारसे अलग, विज्ञानके गमन-आगमन, च्युति (=मरण)-उत्पाद (=जन्म), वृद्धि=विरूढि=विपुलताको बतलाता हूँ'—इसकी जगह = गुंजाइश नहीं। भिक्षु ! यदि रूप-धातुसे भिक्षुका राग नष्ट हो गया रहता है (तो) रागके प्रहाण (=नाश) से आलम्बन (=इन्द्रिय-विषय) छिन्न हो जाता है, विज्ञानकी प्रतिष्ठा

---

१. देखो पृष्ठ ३६६।

(=आधार) नहीं रहता।० यदि वेदना-धातुसे भिक्षुका राग नष्ट हो गया रहता है०। ०संज्ञा-धातुसे०। ०संस्कार-धातुसे०। यदि विज्ञान-धातुसे भिक्षुका राग नष्ट हो गया रहता है। रागके प्रहाणसे आलम्बन (=आश्रय) छिन्न हो जाता है, विज्ञानका आधार (=प्रतिष्ठा) नहीं रहता। वह अप्रतिष्ठित (आधार-रहित) विज्ञान न बढ़कर संस्कार-रहित (हो) विमुक्त (हो जाता है)। विमुक्त होनेसे स्थिर होता है। स्थिर होनेसे संतुष्ट (=संतुपित) होता है। संतुष्ट होनेसे त्रास नहीं खाता। त्रास न खानेपर प्रत्यात्म (=इसी शरीर)में परिनिर्वाणको प्राप्त होता है। 'जातिक्षीण हो गई०, इसे जानता है। भिक्षु इस प्रकार जानने देखनेपर आस्रवोंका क्षय होता है।"

मल्लिका-सुत्त

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्ती···जेतवनमें, विहार करते थे।

तब राजा प्रसेनजित् कोसल जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। तब एक पुरुष (ने) जहाँ राजा प्रसेनजित् कोसल था, वहाँ···जा राजा प्रसेनजित् कोसलके कानमें कहा— देव! मल्लिकादेवीने कन्या प्रसव किया।" (उसके) ऐसा कहनेपर राजा प्रसेनजित् कोसल खिन्न हुआ। तब भगवान्ने राजा प्रसेनजित् कोसलको खिन्न जान, उसी वेलामें यह गाथायें कहीं—

"हे जनाधिप! कोई स्त्री पुरुषसे भी श्रेष्ठ होती है, (जोकि) मेधाविनी, शीलवती, श्वशुर-देवा (=ससुरको देववत् माननेवाली), पतिव्रता होती है ॥१॥ उससे जो पुरुष उत्पन्न होता है, वह शूर, दिशाओंका पति होता है। ऐसी सौभाग्यवतीका पुत्र राज्य पर शासन करता है ॥२॥"

× × × ×

(१०)

सोण-सुत्त। सोणकुटि-कण्ण भगवान्के पास। जटिल-सुत्त पियजातिक-सुत्त। पुण्ण-सुत्त। (ई. पू. ४९९–९८)।

[2]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें, अनाथपिण्डिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे।

उस समय आयुष्मान् महाकात्यायन [3]अवन्ती (देश)में कुररघरके प्रपात (नामक) पर्वतपर वास करते थे। उस समय सोण-कुटिकण्ण (=स्वर्ण कोटिकर्ण) उपासक आयुष्मान् महाकात्यायनका उपस्थाक (=सेवक) था। एकान्तमें स्थित, विचारमें डूबे सोण-कुटिकण्ण उपासकके मनमें ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—

"जैसे जैसे आर्य महाकात्यायन धर्म उपदेश करते हैं, (उससे) इस सर्वथा परिपूर्ण सर्वथा परिशुद्ध शंखसे धुले ब्रह्मचर्यका, गृहमें बसते पालन करना सुकर नहीं है। क्यों न मैं० प्रव्रजित हो जाऊँ।"

१. सं. नि. ३: १: ६।
२. उदान ५ : ६। ३. वर्तमान मालवा।

तब सोण-कुटिकण्ण उपासक, जहां आयुष्मान् महाकात्यायन थे, वहां गया,···जाकर ···अभिवादनकर एक ओर···बैठ···यह बोला—

भन्ते ! एकान्तमें स्थित हो विचारमें डूबे मेरे मनमें ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—०। भन्ते ! आर्य महाकात्यायन मुझे प्रव्रजित करें।"

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् महाकात्यायनने सोण०को यह कहा—

"सोण ! जीवनभर एकाहार, एक शय्यावाला ब्रह्मचर्य दुष्कर है। अच्छा है, सोण ! तू गृहस्थ रहते ही बुद्धोंके शासन (=उपदेश)का अनुगमन कर; और कालयुक्त (पर्वदिनोंमें) एक-आहार, एक-शय्या (=अकेला रहना) रख।"

तब सोण-कुटिकण्ण उपासकका जो प्रव्रज्याका उछाह था, सो ठंढा पड़ गया।

दूसरी बार भी० मनमें ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—०।०। तीसरी बार भी०। '०भन्ते आर्य महाकात्यायन मुझे प्रव्रजित करें।

तब आयुष्मान् महाकात्यायनने सोण-कुटिकण्ण उपासकको प्रव्रजित किया (=श्रामणेर बनाया)। उस समय अवन्ति-दक्षिणापथमें बहुत थोड़े भिक्षु थे। तब आयुष्मान् महाकात्यायन ने तीन वर्ष बीतनेपर बहुत कठिनाईसे जहाँ-तहाँसे दशवर्ग (= दशभिक्षुओंका) भिक्षु-संघ एकत्रित कर, आयुष्मान सोणको उपसंपन्न किया (= भिक्षु बनाया)। वर्षावास बस एकान्तमें स्थित, विचारमें डूबे आयुष्मान सोणके चित्तमें ऐसा परिवितर्क उत्पन्न हुआ—'मैंने उन भगवान्‌को सामने नहीं देखा, बल्कि मैंने सुनाही है,—वह भगवान् ऐसे हैं, ऐसे हैं। यदि उपाध्याय मुझे आज्ञा दें, तो मैं भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्धके दर्शनके लिये जाऊँ।'

तब आयुष्मान् सोण सायंकाल ध्यानसे उठ, जहाँ आयुष्मान् महाकात्यायन थे, वहाँ जाकर···अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे···आयुष्मान् महाकात्यायनको कहा—

"भन्ते ! एकांत स्थित विचारमें डूबे मेरे चित्तमें ऐसा परिवतर्क उत्पन्न हुआ है—यदि उपाध्याय मुझे आज्ञा दें, तो मैं भगवान्०के दर्शनके लिये जाऊँ।"

"साधु ! साधु !! सोण ! जाओ सोण ! उन भगवान्, अर्हत्, सम्यक् संबुद्धके दर्शनको। सोण ! उन भगवान्‌को तुम प्रासादिक (= सुन्दर), प्रसादनीय (=प्रसन्नकर), शांतेन्द्रिय=शान्त-मानस उत्तम-शम-दम-प्राप्त, दान्त, गुप्त, जितेन्द्रिय, नाग देखोगे। देखकर मेरे वचनसे भगवान्‌के चरणोंको सिरसे वन्दना करना। निरोग···सुख-विहार (=कुशल क्षेम) पूछना—भन्ते मेरे उपाध्याय आयुष्मान् महाकात्यायन भगवान्‌के चरणोंको सिरसे वन्दना करते हैं०।"

"अच्छा भन्ते !" (वह) आयुष्मान् सोण आयुष्मान् महाकात्यायनके भाषणको अभिनंदन कर, आसनसे उठ कर···अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर, शयनासन संभाल, पात्र-चीवर ले, जहाँ श्रावस्ती थी, वहाँ चारिका करते चले। क्रमशः चारिका करते जहाँ श्रावस्ती जेतवन अनाथ-पिंडकका आराम था, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये।

भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् सोणने भगवान्‌को कहा—

"भन्ते ! मेरे उपाध्याय आयुष्मान् महाकात्यायन भगवान्‌के चरणोंको सिरसे वन्दना करते हैं० ।"

"भिक्षु ! अच्छा (=खमनीय) तो रहा ? यापनीय (=शारीरकी अनुकूलता) तो रहा ? अल्प कष्टसे यात्रा तो हुई ? पिंडका कष्ट तो नहीं हुआ ?"

"खमनीय (रहा) भगवान् ! यापनीय (रहा) भगवान् ! यात्रा भन्ते ! अल्प कष्टसे हुई; पिंड (भोजन)का कष्ट नहीं हुआ ।"

तब भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

'आनन्द ! इस आगंतुक (= नवागत) भिक्षुको शयनासन दो ।'

तब आयुष्मान् आनन्दको हुआ—'भगवान् जिसके लिये कहते हैं—'आनन्द ! इस आगंतुक भिक्षुको शयनासन दो ।' भगवान् उसे एक ही विहारमें साथमें रखना चाहते हैं, (और) जिस विहार (=कोठरी)में भगवान् विहार करते थे, उसी विहारमें आयुष्मान् सोणको शयनासन (=वास-बिछौना) दिया । भगवान्‌ने बहुत रात खुली जगहमें बिताकर, पैर धो विहारमें प्रवेश किया । तब रातको भिनसार (=प्रत्यूष) में उठकर भगवान्‌ने आयुष्मान् सोणको कहा—

"भिक्षु ! धर्म भाषण करो ।"

"अच्छा भन्ते !" कह...आयुष्मान् सोणने...सभी सोलह 'अट्ठक-वग्गिकों'[1] स्वर-सहित भणन किया । तब भगवान्‌ने आयुष्मान् सोणके स्वर-सहित भणन (=स्वर-भण्य)के समाप्त होनेपर अनुमोदन किया—

"साधु ! साधु !! भिक्षु ! अच्छी तरह सीखा है । भिक्षु ! तूने सोलह 'अट्ठक-वग्गिक', अच्छी तरह मनमें किया है, अच्छी तरह धारण किया है । कल्याणी, विशद, अर्थ-विज्ञापन-योग्य वाणीसे तू युक्त है । भिक्षु ! तू कितने वर्ष (=उपसंपदाका वर्ष) का है ?"

"भगवान् ! एक-वर्ष ।"

"भिक्षु ! तूने इतनी देर क्यों लगाई ?"

"भन्ते ! देरसे कामोंके दुष्परिणामको देख पाया । और गृहवास बहु-कार्य = बहु-करणीय संबाध (=बाधायुक्त) होता है ।"

भगवान्‌ने इस अर्थको जानकर उसी समय इस उदानको कहा—

"लोकके दुष्परिणामको देख और उपधि-रहित धर्मको जान कर, आर्य पापमें नहीं रमता, शुचि (=पवित्रात्मा) पापमें नहीं रमता ।"

सोणकुटिकण्ण भगवान्‌के पास ।

[2]उस समय आयुष्मान् महाकात्यायन अवन्ती (देश) में कुररघरके प्रपात पर्वतपर वास करते थे । उस समय सोणकुटिकण्ण [3]उपस्थाक था० ।—

"साधु ! साधु ! सोण ! जाओ सोण० भगवान्‌के चरणोंमें वन्दना करना'[4]—'भन्ते ! मेरे उपाध्याय भगवान्‌के चरणोंमें सिरसे वन्दना करते हैं । और यह भी कहता—'भन्ते अवन्ती-

१. देखो पाँचवें पारायण वग्ग ।

२. महावग्ग ५।३. देखो पृष्ठ ३६१ । ४. देखो पृष्ठ ३६१ ।

दक्षिणापथमें बहुत कम भिक्षु हैं। तीन वर्ष व्यतीत कर बड़ी मुश्किलसे जहाँ तहाँसे दशवर्ग भिक्षुसंघ एकत्रित कर मुझे उपसंपदा मिली। अच्छा हो भगवान् अवन्ती दक्षिणापथमें (१) अल्पतरगणसे उपसंपदा की अनुज्ञा दें। अवन्ती-दक्षिणापथमें भन्ते ! भूमि काली (=कण्हुत्तरा), कड़ी, गोकंटकोंसे भरी है। अच्छा हो भगवान् अवन्ती-दक्षिणापथमें (२) (भिक्षु) गणको गण वाले उपानह (=पनही) की अनुज्ञा दें। अवन्ती-दक्षिणापदमें भन्ते ! मनुष्य स्नानके प्रेमी, उदकसे शुद्धि माननेवाले हैं; अच्छा हो भन्ते ! अवन्ती-दक्षिणा-पथमें (३) नित्य स्नानकी अनुज्ञा दें। अवन्ती-दक्षिणापथमें भन्ते ! चर्ममय आस्तरण (=बिछौने) होते हैं; जैसे मेष-चर्म, अज-चर्म, मृग-चर्म।० (४) चर्ममय आस्तरणकी अनुज्ञा दें। भन्ते ! इस समय सीमासे बाहर गये भिक्षुओंको (मनुष्य) चीवर देते हैं—'यह चीवर अमुक नामकको दो।' वह आकर कहते हैं—'आवुस ! इस नामवाले मनुष्यने तुझे चीवर दिया है'। वह सन्देहमें पड़ उपभोग नहीं करते, कहीं हमें निस्सर्गीय (=छोड़नेका प्रायश्चित) न होजाय। अच्छा हो भगवान् (५) चीवर-पर्याय कर दें।"

"अच्छा भन्ते !" कह ......सोणकुटिकण्ण......आयुष्मान् महाकात्यायनको अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर जहाँ श्रावस्ती थी वहाँको चले।[७]। तब भगवान्‌ने इस अर्थको जानकर उसी समय इस उदानको कहा—

"लोकके दुष्परिणाम ०[१]।"

तब आयुष्मान् सोणने—'भगवान् मेरा अनुमोदन कर रहे हैं, यही इसका समय है'......(सोच) आसनसे उठ, उत्तरासंग एक कन्धेपर कर भगवान्‌के चरणोंपर शिरसे पड़कर, भगवान्‌को कहा—

"भन्ते ! मेरे उपाध्याय आयुष्मान् महाकात्यायन भगवान्‌के चरणोंमें सिरसे वन्दना करते हैं, और यह कहते हैं—

"भन्ते ! अवन्ती-दक्षिणपथमें बहुत कम भिक्षु हैं[२] ०, अच्छा हो भगवान् चीवर-पर्याय (= विकल्प) कर दें ?"

तब भगवान्‌ने इसी प्रकरणमें धार्मिक-कथा कहकर भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ ! अवन्ति-दक्षिणापथमें बहुत कम भिक्षु हैं। भिक्षुओ ! सभी प्रत्यन्त जनपदोंमें विनयधरको लेकर पाँच (कोरमवाले) भिक्षुओंके गणसे उपसंपदा (करने) की अनुज्ञा देता हूँ। यहाँ यह प्रत्यन्त (= सीमान्त) जनपद (= देश) हैं—पूर्व दिशामें [३]कजंगल नामक निगम (= कसबा) है, उसके बाद बड़े शाल (के जङ्गल) हैं, उसके परे 'इधरसे बीचमें' प्रत्यन्त जनपद हैं। पूर्व-दक्षिण दिशामें [४]सललवती नामक नदी है, उससे परे, इधरसे बीचमें (ओरतो मज्झे) प्रत्यन्त जनपद हैं। दक्षिण दिशामें [५]सेतकण्णिक नामक निगम है ०। पश्चिम दिशामें [६]थूण नामक ब्राह्मण-ग्राम०। उत्तर दिशामें उसीरध्वज नामक पर्वत, उससे परे० प्रत्यन्त जनपद हैं। भिक्षुओ ! इस प्रकारके प्रत्यन्त जनपदोंमें अनुज्ञा देता हूँ—विनयधर-सहित पाँच भिक्षुओंके गणसे उपसंपदा करने

१. देखो पीछे पृष्ठ. २७०. २. देखो पृष्ठ. २७०-७१. ३. वर्तमान कंकजोल (जिला-संथाल पर्गना, बिहार) ४. वर्तमान सिलई नदी (जिला हजारीबाग और वीरभूम)। ५. हजारीबाग जिलेमें कोई स्थान था। ६. थानेश्वर (करनाल)।

थी ।······। सब सीमान्त-देशोंमें······गणवाले—उपानह ०।० नित्य-स्नान ०।० सब चर्म—मेष-चर्म, अज-चर्म, मृग-चर्म ०।" अनुज्ञा देता हूँ···(चीवर) उपभोग करनेकी, वह तब तक (तीन चीवरमें) न गिना जाय, जब तक कि हाथमें न आजाय।"

जटिल-सुत्त[1]।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें मृगारमाताके[2] प्रासाद पूर्वाराममें विहार करते थे।

उस समय भगवान् सायंकालको ध्यानसे उठकर, फाटक (=द्वारकोष्ठक) के बाहर बैठे थे। तब राजा प्रसेनजित् कोसल जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। उस समय सात जटिल, सात निगंठ, सात अचेलक, सात एकसाटक, और सात परिव्राजक, कख (=कांख)-नख-लोम बढ़ाये, खरिया (=झोरी) बहुत सी लिये, भगवान्‌के [3]अविदूरसे जा रहे थे। तब राजा प्रसेनजित् कोसलने आसनसे उठकर, उत्तरासंग (=चद्दर)को एक (बायें) कंधेपर कर, दाहिने जानु-मंडल (=घुटने) को भूमिपर टेक, जिधर वह सात जटिल० सात परिव्राजक थे, उधर अंजलि जोड़, तीन बार नाम सुनाया—'भन्ते ! मैं राजा प्रसेनजित् कोसल हूँ। भन्ते०। भन्ते०।"

तब उन सात जटिलों०के चले जानेके थोड़ी देर बाद, राजा प्रसेनजित् कोसल जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ···भगवान्‌को बोला—

"भन्ते ! लोकमें जो अर्हत् या अर्हत्-मार्गपर आरूढ़ हैं, ये उनमेंसे हैं।"

"महाराज ! गृही, काम-भोगी, पुत्रोंसे घिरे बसते, काशीके चन्दनका रस लेते, माला-गंध-विलेपन धारण करते, सोना-चाँदीको भोगते, तुम्हारे लिये यह दुर्ज्ञेय है—'यह अर्हत् हैं, या अर्हत्-मार्गपर आरूढ़ हैं'। महाराज ! शील (=आचरण) सहवाससे जाना जाता है। और वह चिरकालमें, जल्दी दम नहीं, मनमें करनेसे (जाना जाता है), बिना मनमें किये नहीं। प्रज्ञावालेको (ज्ञेय है) दुष्प्रज्ञको नहीं। महाराज ! व्यवहारसे (आचार)-शुद्धता जानी जा सकती है; और वह चिरकालमें, जल्दी दम नहीं; मनमें करनेसे०। महाराज ! साक्षात्कारसे प्रज्ञा जानी जा सकती है; और वह दीर्घकालमें, जल्दी नहीं, मनमें करनेसे०, प्रज्ञावान्‌को०।"

"आश्चर्य ! भन्ते !! अद्भुत ! भन्ते !! भगवान्‌का सुभाषित कैसा है !!!—'महाराज० दुर्ज्ञेय है०। यह भन्ते ! मेरे चर, अपचारक (=गुप्तचर) पुरुष, जनपद (=देहात)में (पता लगानेके लिये) घूमकर आते हैं। उनकी प्रथम खोजको मैं पीछेसे सफाई कराता हूँ। तब भन्ते ! वह धूल जाला धोकर सुस्नात हो, सुविलिप्त हो, केश-श्मश्रु (दाढ़ी) ठीक कर, श्वेत वस्त्रधारी, पाँच काम गुणोंसे युक्त" हो, विचरते हैं।"

---

१. सं. नि. ३:२:१ उदान ६:२। २. अ. क. "वह प्रासाद लोहप्रासाद (=अनुराधपुर, लंका) की भांति चारों ओर चार फाटकसे युक्त प्राकारसे घिरा था। उनमेंसे पूर्वके फाटकके बाहर प्रासादकी छायामें पूर्व···की ओर देखते, बिछे बुद्धासनपर बैठे थे।"

३. अ. क. "अविदूर (=समीप)के मार्गसे नगरमें प्रवेश कर रहे थे।"

तब भगवान्‌ने इसी अर्थको जानकर, उसी समय यह गाथायें कहीं—

"वर्ण (= रंग)-रूपसे नर सुज्ञेय नहीं होता। तुरंत (= इत्वर) दर्शनसे ही विश्वास न कर लेना चाहिये। रूप रंगसे सु-संयमी भी (मालूम होते), (वस्तुतः) अ-संयमी हो इस लोकमें विचरते हैं ॥१॥ नकली मिट्टीके कुण्डकी तरह या सुवर्णसे ढँके ताँबे (= लोह)के आधे मासे (= अर्ध मापक सिक्का)की तरह, लोकमें (वह) परिवार (= जमात)से ढँके, भीतरसे अशुद्ध (किंतु) बाहरसे शोभायमान हो विचरते हैं" ॥२॥

पियजातिक-सुत्त।

[1]ऐसा मैंने [2]सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें…जेतवनमें विहार करते थे।

उस समय एक गृहपति (= वैश्य)का प्रिय = मनाप एकलौता-पुत्र मर गया था। उसके मरनेसे (उसे) न काम (=कर्मान्त) अच्छा लगता था, न भोजन अच्छा लगता था—'कहाँ हो (मेरे) एकलौते-पुत्रक ! कहाँ हो (मेरे) एकलौते-पुत्रक ?' तब वह गृहपति जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया।…अभिवादन कर एक ओर बैठे उस गृहपतिको भगवान्‌ने कहा—

'गृहपति ! तेरी इन्द्रियाँ (=चेष्टायें) चित्तमें स्थित नहीं जान पड़तीं; क्या तेरी इन्द्रियोंमें कोई खराबी (=अन्यथात्व) तो नहीं है ?"

"भन्ते ! क्यों न मेरी इन्द्रियाँ अन्यथात्वको प्राप्त होंगी ? भन्ते ! मेरा प्रिय = मनाप एकलौता-पुत्र मर गया। उसके मरनेसे न काम अच्छा लगता है, न भोजन अच्छा लगता है। सो मैं आदान (=चिता)के पास जाकर क्रंदन करता हूँ— 'कहाँ हो एकलौते-पुत्रक (=पुतवा) !'

"ऐसा ही है गृहपति ! प्रिय-जातिक = प्रियसे उत्पन्न होनेवाले ही हैं, गृहपति ! (यह) शोक, परिदेव (= क्रंदन), दुःख = दौर्मनस्य, उपायास (= परेशानी) ?"

"भन्ते ! यह ऐसा क्यों होगा—'प्रिय जातिक० हैं शोक० उपायास ?"

वह गृहपति भगवान्‌के भाषणको न अभिनन्दन कर, निंदा कर आसनसे उठकर चला गया।

उस समय बहुतसे जुआरी (=अक्ष-धूर्त) भगवान्‌के अदूरमें जुआ खेल रहे थे। तब वह गृहपति जहाँ वह जुआरी थे, वहाँ गया, जाकर उन जुआरीओंसे बोला—

'जी ! जहाँ श्रमण गौतम है, वहाँ…जाकर…अभिवादन कर एक ओर बैठे मुझे श्रमण गौतमने कहा—'गृहपति ! तेरी इन्द्रियाँ (=चेष्टायें) अपने चित्तमें स्थितसी नहीं हैं० प्रियजातिक० शोक० हैं'। प्रियजातिक = प्रियसे उत्पन्न तो, आनन्द=सौमनस्य हैं। तब मैं श्रमण गौतमके भाषणको न अभिनन्दन कर० चला आया।"

"यह ऐसा ही है गृहपति ! प्रिय-जातिक=प्रियसे उत्पन्न तो हैं गृहपति ! आनन्द= सौमनस्य।"

तब वह गृहपति 'जुआरी भी मुझसे सहमत हैं' (सोच) चला गया। यह कथा-

---

1. इकतीसवाँ वर्षा-वास ४९७ ई. पू. श्रावस्ती (जेतवन)में। 2. म. नि. २:४:७।

वस्तु (= चर्चा) क्रमशः राज-अन्तःपुरमें चली गई। तब राजा प्रसेनजित् कोसलने मल्लिका देवीको आमंत्रित किया—

"मल्लिका! तेरे श्रमण गौतमने यह भाषण किया है—'प्रिय-जातिक=प्रिय-उत्पन्न हैं शोक० उपायास'।"

"यदि महाराज! भगवान्‌ने ऐसा भाषण किया है, तो यह ऐसा ही है।"

"ऐसा ही है मल्लिका! जो जो श्रमण गौतम भाषण करता है, उस उसको ही तू अनुमोदन करती है—'यदि महाराज! भगवान्‌ने०'। जैसेकि आचार्य जो जो अन्तेवासीको कहता है, उस उसको ही उसका अन्तेवासी अनुमोदन करता है— यह ऐसा ही है आचार्य। ०आचार्य!' ऐसे ही तू मल्लिका! जो जो श्रमण०। चल परे हट मल्लिका!"

तब मल्लिका देवीने नालीजंघ ब्राह्मणको आमंत्रित किया—

"आओ तुम ब्राह्मण! जहाँ भगवान् हैं, वहाँ जाओ। जाकर मेरे वचनसे भगवान्‌के चरणोंमें शिरसे वन्दना करना;···(कुशलक्षेम) पूछना—'भन्ते! मल्लिकादेवी भगवान्‌के चरणोंमें शिरसे वन्दना करती है;—(=कुशलक्षेम) पूछती है।' और यह भी कहना—'क्या भन्ते! भगवान्‌ने यह वचन कहा है—'प्रियजातिक० हैं, शोक० उपायास'। भगवान् जैसा तुम्हें उत्तर दें, उसे अच्छी तरह सीख कर, मुझे आ कर कहना; तथागत व्यर्थ नहीं बोलते।"

"अच्छा भवती!"···नालीजंघ ब्राह्मण···जहाँ भगवान् थे, वहाँ···जाकर, भगवान्‌के साथ संमोदन कर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे नालीजंघ ब्राह्मणने भगवान्‌को कहा—

"हे गौतम! मल्लिका देवी! आप गौतमके चरणोंमें शिरसे वन्दना करती है०। और यह पूछती है—क्या भन्ते! भगवान्‌ने यह वचन कहा है—'प्रिय जातिक० हैं, शोक० उपायास'?"

"यह ऐसा ही है ब्राह्मण! ऐसा ही है ब्राह्मण! प्रिय जातिक=प्रिय-उत्पन्न हैं ब्राह्मण! शोक० उपायास। इसे इस प्रकारसे भी जानना चाहिये कि कैसे—प्रिय जातिक० शोक'? पहिले समयमें (= भूतपूर्व) ब्राह्मण! इसी श्रावस्तीकी एक स्त्रीकी माता मर गई थी; वह उसकी मृत्युसे उन्मत्त=विक्षिप्त-चित्त हो एक सड़कसे दूसरी सड़कपर, एक चौरस्तेसे दूसरे चौरस्तेपर जाकर, ऐसा कहती थी—'क्या मेरी माको देखा, क्या मेरी माको देखा।' इस प्रकारसे भी ब्राह्मण! जानना चाहिये कि कैसे०। पहिले समयमें ब्राह्मण! इसी श्रावस्तीमें एक स्त्रीका पिता मर गया था०। ०भाई मर गया था०। ०भगिनी मर गई थी०। पुत्र मर गया था०। ०दुहिता मर गई थी०। ०स्वामी (=पति) मर गया था०।

"पूर्व कालमें० एक पुरुषकी माता०—० भार्या०।"

"पूर्वकालमें ब्राह्मण! इसी श्रावस्तीकी एक स्त्री पीहर गई। उसके भाई-बन्धु उसे उसके पतिसे छीन कर, दूसरेको देना चाहते थे, और वह नहीं चाहती थी। तब उस स्त्रीने पतिको यह कहा—'आर्यपुत्र! यह मेरे भाई-बन्धु मुझे तुमसे छीनकर दूसरेको देना चाहते हैं, और मैं नहीं चाहती।' तब उस पुरुषने—'दोनों मरकर इकट्ठा होंगे' (सोच) उस स्त्रीको दो टुकड़ेकर, अपनेको भी मार डाला। इस प्रकारसे भी ब्राह्मण! जानना चाहिये।"

तब नालि-जंघ ब्राह्मण भगवान्‌के भाषणको अभिनन्दन कर, अनुमोदन कर आसनसे उठ कर, जहाँ मल्लिकादेवी थी, वहाँ गया। जाकर भगवन्‌के साथ जो कथा-संलाप हुआ था, वह सब मल्लिकादेवीको कह सुनाया। तब मल्लिकादेवी जहाँ राजा प्रसेनजित् था, वहाँ गई; जाकर राजा प्रसेनजित् कोसलको बोली—

"तो क्या मानते हो महाराज तुम्हें वजिरा[1] (= वज्रा) कुमारी प्रिय है न?"

"हाँ, मल्लिका! वजिरा कुमारी मुझे प्रिय है।"

"तो क्या मानते हो महाराज! यदि तुम्हारी वजिरा कुमारीको कोई विपरिणाम (= संकट) या अन्यथात्व होवे, तो क्या तुम्हें शोक ०उपयास उत्पन्न होंगे?'

'मल्लिका! वजिरा कुमारीके विपरिणाम-अन्यथात्वसे मेरे जीव का भी अन्यथात्व हो सकता है, 'शोक० उत्पन्न होगा' की तो बात ही क्या।"

"महाराज! उन भगवान् जाननहार, देखनहार अर्हत् सम्यक् संबुद्धने यही सोचकर कहा है—'प्रिय-जातिक०।' तो क्या मानते हो महाराज! वासभ क्षत्रिया तुम्हें प्रिय है न?

"हाँ, मल्लिका! वासभ-क्षत्रिया मुझे प्रिय है।"

"तो क्या मानते हो महाराज! वासभ क्षत्रियाको कोई विपरिणाम = अन्यथात्व हो, तो क्या तुम्हें शोक० उत्पन्न होंगे?"

"मल्लिका! ० जीवन का भी अन्यथात्व हो सकता है ०।"

"महाराज! ० यही सोच कर० कहा है ०। तो क्या मानते हो महाराज! विडूडभ सेनापति तुम्हें प्रिय है न?" ०। ०।

"०। तो क्या मानते हो महाराज! मैं तुम्हें प्रिय हूँ न?"

"हाँ मल्लिके! तू मुझे प्रिय है?"

"तो क्या मानते हो, महाराज! मुझे कोई विपरिणाम, अन्यथात्व हो, तो क्या तुम्हें शोक० उत्पन्न होंगे?"

'मल्लिका!० जीवनका भी अन्यथात्व हो सकता है०।"

"महाराज! ०यही सोचकर कहा है०। तो क्या मानते हो महाराज! काशी और कोसल (के निवासी) तुम्हें प्रिय हैं न?"

"हाँ मल्लिके! काशी कोसल मेरे प्रिय हैं। काशी-कोसलोंके अनुभाव (=बरकत) से ही तो हम "काशिकचन्दनको भोगते हैं, माला, गंध, विलेपन (= उबटन) धारण करते हैं।"

"तो ०महाराज! काशी-कोसलोंके विपरिणाम=अन्यथात्व (=संकट) से, क्या तुम्हें शोक० उत्पन्न होंगे?"

"०जीवनका भी अन्यथात्व हो सकता है०।"

"महाराज! उन भगवान्० ने यही सोचकर कहा है—'प्रिय-जातिक=प्रियसे उत्पन्न हैं, शोक०।"

"आश्चर्य! मल्लिके!! आश्चर्य! मल्लिके!! कैसे वह भगवान् हैं!!! मानो प्रज्ञासे बेधकर देखते हैं। आओ, मल्लिके! हम दोनों···।"

---

1. अ. क. "वजिरा नामक राजाकी एकलौती पुत्री।"

तब राजा प्रसेनजित् कोसलने आसनसे उठकर, उत्तरासंग (=चद्दर) को एक (बायें) कंधे पर रख, जिधर भगवान् थे, उधर अंजली जोड़ तीन बार उदान कहा—

"[1]उन भगवान, अर्हत्, सम्यक् संबुद्धको नमस्कार है; उन भगवान् अर्हत् सम्यक् संबुद्धको नमस्कार है, उन भगवान् अर्हत्, सम्यक् संबुद्धको नमस्कार है।"

पुण्ण-सुत्त।

[2]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्ती० जेतवनमें विहार करते थे।

तब आयुष्मान् [3]पूर्ण जहाँ भगवान थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् पूर्णने भगवान्से कहा—

"अच्छा हो भन्ते! भगवान् मुझे संक्षिप्तसे धर्म-उपदेश करें, जिस धर्मको भगवान्से सुन कर मैं एकाकी, एकान्ती, अप्रमादी, उद्योगी, संयमी हो विहार करूँ।"

"पूर्ण! चक्षुसे विज्ञेय रूप इष्ट=कान्त=मनाप, प्रियरूप=कामोपसंहित, रंजनीय होते हैं। यदि भिक्षु उन्हें अभिनन्दन करता=स्वागत करता, अध्यवसाय करता है। अभिनन्दन करते, ०अध्यवसाय करते हुये उसको, नन्दी (=तृष्णा) उत्पन्न होती है। पूर्ण! नन्दीकी उत्पत्ति (=समुदय)से दुःखका समुदय कहता हूँ। पूर्ण! जिह्वासे विज्ञेय रस इष्ट०। पूर्ण! चक्षुसे विज्ञेय रूप इष्ट० हैं। यदि भिक्षु उन्हें अभिनन्दन० नहीं करता।०। उसकी नन्दी (तृष्णा) निरुद्ध (=विलीन) हो जाती है। पूर्ण! नन्दीके निरोधसे दुःखका निरोध कहता हूँ।०। पूर्ण! मनसे विज्ञेय (=ज्ञातव्य) धर्म इष्ट० हैं।०। पूर्ण! मेरे इस संक्षिप्तमें कथित अववाद (=उपदेश)से उपदिष्ट हो, कौनसे जनपदमें तू विहार करेगा?"

"भन्ते! सूनापरान्त नामक जनपद है, मैं वहाँ विहार करूँगा।"

"पूर्ण! सूनापरान्तके मनुष्य चण्ड हैं, ०परुष (=कठोर) हैं। जो पूर्ण! तुझे सूनापरान्तके मनुष्य आक्रोशन=परिभाषण (=कुवाच्य) करेंगे, तो···तुझे क्या होगा?"

---

१. "नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा संबुद्धस्स। २. सं. नि. ३४:४:६।

३. अ. क. "सूनापरान्त (=वर्तमान थाना और सूरतके जिले तथा कुछ आस-पासके भाग) राष्ट्रमें एक वणिक्-ग्राममें दो भाई (बसते थे)। उनमें कभी बड़ा पाँच सौ गाड़ियाँ ले जनपद जाकर माल लाता था, कभी छोटा। इस समय कनिष्ठ (भाई)को घरपर छोड़, ज्येष्ठ भ्राता पाँच सौ गाड़ियाँ ले घूमते हुये क्रमशः श्रावस्तीमें प्राप्त हो, जेतवनके नातिदूर शकट-सार्थ (=गाड़ीके कारवाँ)को ठहराकर; कलेऊ कर नौकरोंके साथ अनुकूल स्थानपर बैठा। उसी समय श्रावस्ती-वासी कलेऊकर शुद्ध उत्तरासंग ओढ़े, हाथमें गंध-पुष्प लिये (श्रावस्तीके) दक्षिणद्वार (=सदरका बाजार-दरवाजा)से निकलकर, जेतवनको जाते थे। ···। (पूर्ण) ने भी अपनी मंडलीके साथ, उसी परिषद्के संग विहारमें जा···धर्म सुन प्रव्रज्याका संकल्प किया।···। (फिर) भंडारीको बुलाकर···"यह धन मेरे कनिष्ठ (भ्राता)को देना" सब समझा, शास्ताके पास प्रव्रजित हो योग-अभ्यास परायण हुये। तब योगाभ्यास करते चित्त (मन) ठीकसे नहीं ठहरता था। तब सोचा—'यह जनपद मेरे अनुकूल नहीं है, क्यों न मैं शास्ताके पाससे कर्म-स्थान (=योगविधि) ग्रहण कर, अपने देशमें ही जाऊँ···।"

"यदि भन्ते! सूनापरान्तके मनुष्य मुझे आक्रोशन=परिभाषण करेंगे, तो मुझे ऐसा होगा—'सूनापरान्तके मनुष्य भद्र हैं०, सुभद्र हैं; जोकि वह मुझपर हाथसे प्रहार नहीं करते'—मुझे भगवान्! (ऐसा) होगा, सुगत! ऐसा होगा।"

"यदि पूर्ण! सूनापरान्तके मनुष्य तुझपर हाथसे प्रहार करें, तो पूर्ण! तुझे क्या होगा?"

"०भन्ते! मुझे ऐसा होगा—"सूनापरान्तके मनुष्य भद्र हैं, ०सुभद्र हैं; जोकि वह मुझे डंडेसे नहीं मारते०।"

०।० डंडेसे नहीं मारते।० ०।० शस्त्रसे नहीं मारते।० ०।० शस्त्रसे मेरा प्राण नहीं ले लेते।०

"यदि पूर्ण! सूनापरान्तके मनुष्य तुझे तीक्ष्ण शस्त्रसे मार डालें। तो पूर्ण! तुझे क्या होगा?"

"०वहाँ मुझे भन्ते! ऐसा होगा—'उन भगवान्‌के कोई कोई श्रावक (शिष्य) हैं, जो जिन्दगीसे तंग आकर, ऊबकर, घृणाकर, (आत्म-हत्यार्थ) शस्त्र-हारक (=शस्त्र लगा लेना) खोजते हैं। सो मुझे यह शस्त्र-हारक बिना खोजे ही मिल गया। भगवान्! मुझे ऐसा होगा। सुगत! मुझे ऐसा होगा।"

"साधु! साधु!! पूर्ण!!! पूर्ण! तू इस प्रकारके शम, दमसे युक्त हो, सूनापरान्त जनपदमें वास कर सकता है। जिसका तू काल समझे (वैसा कर)।"

तब आयुष्मान् पूर्ण भगवान्‌के वचनको अभिनन्दन कर अनुमोदन कर, आसनसे उठ, भगवान्‌को अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर शयनासन सँभाल, पात्र-चीवर ले, जिधर सूनापरान्त जनपद था, उधर चारिकाको चल पड़े। क्रमशः चारिका करते जहाँ सूनापरान्त जनपद था, वहाँ पहुँचे। आयुष्मान् पूर्ण सूनापरान्त जनपदमें विहार करते थे। तब वहाँ आयुष्मान् पूर्ण ने उसी वर्षाके भीतर पाँचसौ उपासकोंको ज्ञान कराया। उसी वर्षाके भीतर उन्होंने (स्वयं) भी विद्यायें साक्षात् (= प्रत्यक्ष) कीं। और उसी वर्षाके भीतर 'परिनिर्वाणको प्राप्त हुये[1]।

× × + ×

(११)

मखादेव-सुत्त। सारिपुत्त-सुत्त। थपति-सुत्त। विसाखा-सुत्त। पधानीय-सुत्त। जरा-सुत्त। (ई. पू. ४९६–९३)।

[3]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् मिथिलामें मखादेव-आम्रवनमें विहार करते थे।

---

१. आवागमनरहित हो मरना।

२. अ. क. "(पूर्णने) कहाँ कहाँ विहार किया? चार स्थानोंमें···अज्ज-हुत्थ-पर्वत..., वहाँसे समुद्रगिरि-विहार,···वहाँसे मातुगिरि,'' वहाँसे मंकुलकाराम नामक विहारको गये।···(सूनापरान्तमें स्थान) सच्चबद्ध-पर्वत,'' नर्मदा नदीके तीर''पदचैत्य···।"

३. म. नि. २ : ४ : ३।

एक जगह पर भगवान् मुस्कुरा उठे। तब आयुष्मान् आनन्दको यह हुआ—'भगवान्‌के मुस्कुरानेका क्या कारण है? क्या वजह है? तथागत बिना कारणके नहीं मुस्कुराते। तब आयुष्मान् आनन्द चीवरको एक कंधेपर कर, जिधर भगवान् थे, उधर हाथ जोड़ भगवान्‌को बोले—

"भन्ते! भगवान्‌के मुस्कुरानेका क्या कारण है०?"

"आनन्द! पूर्वकालमें इसी मिथिलामें मखादेव नामक धार्मिक धर्म-राजा राजा हुआ था। (वह) धर्ममें स्थित महाराजा, ब्राह्मणोंमें, गृहपतियोंमें, निगमोंमें, (=कस्बों, नगरों)में जनपदों (=दीहातों)में धर्मसे वर्तता था। चतुर्दशी (=अमावस्या), पंचदशी, पूर्णिमा, और पक्षकी अष्टमियोंको उपोसथ (=उपवासव्रत) रखता था।…

"(उसने अपने सिरमें पके बाल देख) ज्येष्ठ पुत्र कुमारको "बुलवा कर कहा—

"तात कुमार! मेरे देवदूत प्रकट होगये, सिरमें पके केश दिखाई पड़ रहे हैं। मैंने मानुष-काम (=भोग) भोग लिये, अब दिव्य-भोगोंके खोजनेका समय है। आओ तात कुमार! इस राज्यको तुम लो। मैं केश-श्मश्रु मुंडा, काषाय-वस्त्र पहिन, घरसे बेघर हो प्रव्रजित होऊँगा। सो तात! जब तुम भी सिरमें पके बाल देखना, हजामको एक गाँव इनाम (= वर) दे, ज्येष्ठ-पुत्र कुमारको अच्छी प्रकार राज्यपर अनुशासन कर, केशश्मश्रु मुंडा, वस्त्र पहिन ०प्रव्रजित होना। जिसमें यह मेरा स्थापित कल्याणवर्त्म (कल्याण-पथ) अनुप्रवर्तित रहे; तुम मेरे अन्तिम पुरुष मत होना। तात कुमार! जिस पुरुषयुगलके वर्तमान रहते इस प्रकारके कल्याण-वर्त्म (=मार्ग)का उच्छेद होता है, वह उनका अन्तिम पुरुष होता है।

"तब आनन्द! राजा मखादेव नाईको एक गाँव इनाम दे, ज्येष्ठ-पुत्र कुमारको अच्छी तरह राज्यानुशासन कर, इसी मखादेव-अम्बवनमें सिर दाढ़ी मुंडा०प्रव्रजित हुआ।…वह चार ब्रह्म-विहारोंकी[1] भावना कर शरीर छोड़ मरनेके बाद ब्रह्मलोकको प्राप्त हुआ।…

"आनन्द! राजा मखादेवके पुत्रने भी… …, राजा मखादेवकी… परम्परामें पुत्र पौत्र आदि…… इसी मखादेव-अम्बवनमें केश-श्मश्रु मुंडा……प्रव्रजित हुये।……। निमि उन राजाओंका अन्तिम धार्मिक, धर्म-राजा, धर्ममें स्थित महाराजा हुआ।……।

"आनन्द! पूर्वकालमें सुधर्मा नामक सभामें एकत्रित हुये त्रायस्त्रिंश देवोंके बीचमें यह बात उत्पन्न हुई—'लाभ है अहो! विदेहों[2]को, सुन्दर लाभ हुआ है विदेहोंको, जिनका… निमि जैसा धार्मिक, धर्मराजा, धर्ममें स्थित महाराजा है,… …निमिभी आनन्द!… इसी मखादेव-अम्ब-वनमें……प्रव्रजित हुआ……।

"आनन्द! राजा निमिका कलार-जनक नामक पुत्र हुआ। वह घर छोड़ बेघर प्रव्रजित नहीं हुआ। उसने उस कल्याण वर्त्मको उच्छिन्न कर दिया। वह उनका अन्तिम-पुरुष हुआ।………

"आनन्द! इस समय मैंने भी यह कल्याण-वर्त्म स्थापित किया है, (जो कि)

---

1. मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा नामक चार भावनायें।
2. गंगा, गण्डक, कोसी, हिमालयके बीचका प्रदेश (तिरहुत)।

एकांतनिर्वेदके लिये, विरागके लिये, निरोधके लिये=उपशमके लिये, अभिज्ञाके लिये, संबोधि (=बुद्धज्ञान)के लिये, निर्वाणके लिये है—(वह) यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है—जैसे कि—सम्यग्-दृष्टि, सम्यक्-संकल्प, सम्यक्-वाक् ० कर्मान्त, ० आजीव ० व्यायाम, ० स्मृति, सम्यक्-समाधि । यह आनन्द ! मैंने कल्याण-वर्त्म स्थापित किया है ० । सो आनन्द ! मैं यह कहता हूँ जिसमें तुम इस मेरे स्थापित कल्याण मार्गको अनुप्रवर्तित करना (=चलाते रहना), तुम मेरे अन्तिम पुरुष मत होना ।

भगवान्‌ने यह कहा, संतुष्ट हो आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌के भाषणका अभिनन्दन किया ।

सारिपुत्त-सुत्त

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्ती ०जेतवनमें विहार करते थे ।

तब आयुष्मान् सारिपुत्र जहाँ भगवान् थे,···वहाँ···जाकर अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे आयुष्मान् सारिपुत्रको भगवान्‌ने यह कहा—

"सारिपुत्त ! 'स्रोत-आपत्ति-अंग स्रोत-आपत्ति अंग कहा जाता है । सारिपुत्त ! स्रोत-आपत्ति-अंग क्या है ?"

"सत्पुरुष-सेवा भन्ते ! स्रोत-आपत्तिका अंग है । सद्धर्म-श्रवण स्रोत-आपत्ति-अंग है । [3]योनिशः मनसिकार स्रोत-आपत्तिका अंग है । धर्मानुधर्म-प्रतिपत्ति (= धर्मानुसार चलना)० ।"

"सारिपुत्त ! 'स्रोत, स्रोत' कहा जाता है । सारिपुत्र ! स्रोत क्या है ?"

"भन्ते ! यही आर्य-अष्टांगिक मार्ग स्रोत है; जैसे—सम्यक् दृष्टि० ?"

"साधु ! साधु !! सारिपुत्र !!! सारिपुत्र ! यही आर्य-अष्टांगिक मार्ग स्रोत है, जैसे कि० ।"—

"सारिपुत्र ! 'स्रोत-आपन्न, स्रोत-आपन्न' कहा जाता है । सारिपुत्र ! स्रोत-आपन्न क्या है ?"

"भन्ते ! जो इस आर्य-अष्टांगिक-मार्गसे युक्त है, वही स्रोत-आपन्न कहा जाता है; यही आयुष्मान् इस नामका इस गोत्रका है ।"

"साधु ! साधु !! सारिपुत्र !!! जो इस आर्य-अष्टांगिक-मार्गसे युक्त है० ।"

थपति-सुत्त ।

[4]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें० जेतवनमें विहार करते थे ।

उस समय बहुतसे भिक्षु भगवान्‌का चीवर-कर्म (=चीवर-सीना) करते थे—'चीवर (सीना) समाप्त हो जानेपर, तीनमास बाद भगवान् चारिकाको जायेंगे' । उस समय

---

१. बत्तीसवाँ वर्षावास ४९६ ई. पू. श्रावस्ती (पूर्वाराम)में किया, तैंतीसवाँ जेतवनमें ।

२. सं. नि. ५४:१:५ ।

३. ठीकसे मनमें करना ।

४. सं. नि. ५४ : १ : ६ ।

(विसाखा)-सुत्त ।

[1]ऐसा [2]मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें मृगारमाताके प्रासाद [3]पूर्वाराममें विहार करते थे ।

उस समय विशाखा मृगारमाताका प्रिय=मनाप नाती मर गया था । तब विशाखा मृगारमाता भीगे-वस्त्र, भीगे-केश मध्याह्नमें जहाँ भगवान् थे, वहाँ गई । जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठी ।... विशाखा मृगारमाताको भगवान्‌ने कहा—

"हन्त (=हैं) ! विशाखे ! तू भीगे-वस्त्र, भीगे-केश, मध्याह्नमें कहाँसे आरही है ?"

"भन्ते ! मेरा प्रिय=मनाप नाती मर गया, इसलिये मैं भीगे वस्त्र, भीगे-केश मध्याह्नमें आरही हूँ ?"

"विशाखा ! श्रावस्तीमें जितने मनुष्य हैं, तू उतने पुत्र, नाती (=पौत्र) चाहेगी ?"

"भन्ते ! श्रावस्तीमें जितने मनुष्य हैं, मैं उतने बेटे-पोते चाहूँगी ।"

"विशाखे ! श्रावस्तीमें प्रतिदिन कितने मनुष्य मरा करते हैं ?"

"भन्ते ! श्रावस्तीमें प्रतिदिन दस मनुष्य भी काल करते हैं । नव भी० । आठ भी० । सात भी० । छ० । पाँच० । चार० । तीन० । दो० । एक० । भन्ते ! श्रावस्ती मनुष्योंके मरे बिना (एक दिन भी) नहीं रहती ."

"तो क्या मानती है, विशाखा ! क्या तू बिना-भीगे-वस्त्र, बिना-भीगे-केश रह सकेगी ?"

"नहीं, भन्ते ! मेरे जितने बेटे-पोते हैं,... उतने ही बस ."

"(इसीलिये) विशाखे ! जिनके सौ प्रिय होते हैं, उनके सौ दुःख होते हैं । जिनके नब्बे प्रिय०, उनके नब्बे दुःख० । ०अस्सी० । ०सत्तर० । ०साठ० । ०पचास० । ०चालीस० । ०तीस० । ०बीस० । ०दस० । ०नव० । ०आठ० । ०सात० । ०छ० । ०पाँच० । ०चार० । ०तीन० । ०दो० । जिनको एक प्रिय होता है, उनको एक दुःख होता है । जिनको प्रिय नहीं होता, उनको दुःख नहीं होता । वह शोक-रहित रज (=राग आदि)-रहित, उपायास (=परेशानी)-रहित हैं—कहता हूँ ।"

तब भगवान्‌ने इस अर्थको जान उसी बेलामें यह उदान कहा—

'लोकमें जो शोक, परिदेव नाना प्रकारके दुःख हैं, वह प्रियके कारण होते हैं, प्रिय (वस्तु) न होनेपर वह नहीं होते ॥१॥

"इसलिये वही सुखी शोक रहित हैं, जिनको लोकमें कहीं भी प्रिय नहीं । इसलिये जो अ-शोक, विरज होना चाहे, वह लोकमें कहीं प्रिय न बनावे ॥२॥"

बधातीय-सुत्त ।

[4]ऐसा [5]मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें जेतवनमें विहार करते थे ।

---

१. चौंतीसवाँ वर्षावास ५४५ ई. पू. भगवान्‌ने श्रावस्ती (पूर्वाराम)में बिताया ।

२. उदान ८:८ । ३. वर्तमान हनुमनवाँ (गोंडा बहरैचके समीप) ।

४. पैंतीसवाँ वर्षावास (५४४ ई. पू.) श्रावस्ती जेतवनमें बिताया । ५. म. नि. ३:१:९:७ ।

तब भगवान् सायंकालको प्रतिसंलयन (=ध्यान) से उठकर, जहाँ उपस्थान-शाला थी, वहाँ गये; जाकर बिछे आसनपर बैठे। आयुष्मान् सारिपुत्र भी सायंकाल ध्यानसे उठ, जहाँ उपस्थान-शाला थी, वहाँ गये; जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर, एक ओर बैठ गये। आयुष्मान् मौद्गल्यायन भी०। ०महाकाश्यप भी० ०महाकात्यायन भी०। महाकोट्ठित ०महाचुन्द०। ०महाकप्पिन०। ०अनुरुद्ध०। ०रेवत०। आयुष्मान् आनन्द भी०। तब भगवान् बहुत रात तक बैठकीमें बिता, आसनसे उठ विहारमें चले गये। वह (दूसरे) आयुष्मान् भी भगवान्‌के जानेके थोड़ीही देर बाद, आसनसे उठकर अपने अपने विहार (=यथाविहार) को चले गये। जो कि वहाँ नये भिक्षु, थोड़ेही दिनके प्रव्रजित, इस धर्म-विनय (=धर्ममें) अभी आये थे, वह सूर्योदय तक खर्राटे ले सोते रहे। भगवान्‌ने दिव्य, विशुद्ध, अमानुष चक्षुसे उन भिक्षुओंको खर्राटे मार सोते देखा। देखकर जहाँ उपस्थान-शाला थी, वहाँ गये; जाकर रक्खे आसनपर बैठे। बैठकर भगवान्‌ने उन भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ! सारिपुत्र कहाँ है?० आनन्द कहाँ है? भिक्षुओ! वह स्थविर श्रावक कहाँ गये?"

"भन्ते! वह भी भगवान्‌के जानेके थोड़ी ही देर बाद आसनसे उठकर, अपने-अपने विहारमें चले गये।"

"तो भिक्षुओ! तुम स्थविर (=वृद्ध)से लेकर नये तक, सूर्योदय तक खर्राटे मारकर सोते हो? तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! क्या तुमने देखा या सुना है, मूर्धाभिषिक्त (=अभिषेक-प्राप्त) क्षत्रिय राजाको इच्छानुसार शयन-सुख, स्पर्श-सुख, मृद्ध (=आलस)-सुखके साथ विहार करते, जीवनपर्यन्त राज्य करते, या देशका प्रिय = मनाप होते?"

"नहीं भन्ते!"

"साधु भिक्षुओ! भिक्षुओ! मैंने भी नहीं देखा, नहीं सुना—राजा=मूर्धाभिषिक्त क्षत्रियको०। तो क्या मानतेहो, भिक्षुओ! क्या तुमने देखा या सुना है [1]राष्ट्रिक (=रट्ठिक) ०।०[2] पेत्तणक ०। ० सेनापतिक ०। ०[3]ग्राम-ग्रामणिक ०। (=गाम-गामिक) ० [4]पूग-गामणिकको इच्छानुसार शयन-सुख०के साथ विहार करते, जीवन-पर्यन्त पूग-ग्रामणिकत्व करते, या पूगका प्रिय=मनाप होते?" "नहीं भन्ते!"

"साधु, भिक्षुओ! भिक्षुओ! मैंने भी नहीं देखा ०। तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! क्या तुमने देखा या सुना है, शयन-सुख स्पर्श-सुख, मृद्ध-सुखसे युक्त, इन्द्रियोंके द्वारों-को न रोकनेवाले, भोजनकी मात्राको न जाननेवाले, जागरणमें न तत्पर, श्रमण ब्राह्मणको इच्छानुसार कुशल (=अच्छे) धर्मोंकी विपश्यना न करते पूर्वरात्र (=रातके पहिले भाग) और अपर-रात्र (=रातके पिछले) में बोधि-पक्षीय-धर्मोंकी भावना न करते, आस्रवोंके क्षयसे आस्रव-रहित चित्तकी विमुक्ति (=मुक्ति), प्रज्ञा-विमुक्तिको इसी जन्ममें स्वयं अभिज्ञान कर, साक्षात्कारकर, प्राप्तकर, विहरते?" "नहीं भन्ते!"

"साधु भिक्षुओ! मैंने भी भिक्षुओ! नहीं देखा ०। इसलिये भिक्षुओ! ऐसा

---

१. गवर्नर=प्रदेशाधिकारी। २. नगराधिकारी, मेयर (?)। ३. ग्रामका अफसर। ४. एक समुदायका अफसर।

सीखना चाहिये—इन्द्रिय-द्वारको सुरक्षित रक्खूँगा। भोजनकी मात्रा (=परिमाण) का जाननेवाला होऊँगा। जागनेवाला ० कुशल-धर्मोंका विपश्यक ० पूर्व-रात्र अपर-रात्रमें बोधि-पक्षीय धर्मोंकी भावनामें लग्न रहकर विहरूँगा। भिक्षुओ! तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये।"

जरा-सुत्त

[1]ऐसा [2]मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें मृगारमाताके प्रासाद पूर्वाराम में विहार करते थे।

उस समय भगवान् अपराह्णकालमें (=सायाह्न समय) ध्यानसे उठकर [3]पिछवाड़े धूपमें बैठे थे। तब आयुष्मान् आनंद जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर, भगवान्‌के शरीरको हाथसे मींजते हुये, भगवान्‌को बोले—

"आश्चर्य! भन्ते!! अद्भुत! भन्ते!! भन्ते! भगवान्‌के चमड़ेका रंग उतना परिशुद्ध, उतना पर्यवदात (=उज्ज्वल) नहीं है। गात्र (=अंग) शिथिल हैं, सब झुर्रियाँ पड़ी हैं। शरीर आगेकी ओर झुका (=प्राग्भार=सामनेकी ओर लटका) है। इन्द्रियोंमें भी विकार (=अन्यथात्व) दिखाई पड़ता है—चक्षु-इन्द्रियमें, श्रोत्र०, घ्राण०, जिह्वा०, काय-इन्द्रियमें।"

"आनन्द! यह ऐसा ही होता है। यौवनमें जरा-धर्म (=बुढ़ापा) है, आरोग्यमें व्याधिधर्म है, जीवनमें मरण-धर्म है।

भगवान्‌ने यह कहा। सुगतने यह कहकर फिर शास्ता (=बुद्ध) ने यह भी कहा—

"हे दुर्वर्ण करनेवाली जरे! तुझ जराको धिक्कार है। चाहे सौ वर्ष भी जीयें। सभी मृत्यु-परायण हैं। (यह जरा) किसीको नहीं छोड़ती, सभीको मर्दन करती है।"

× × × ×

(१२)

बोधि-राजकुमार-सुत्त (ई. पू. ४९२)।

[4]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् भर्ग (देश) में [5]सुंसुमारगिरिके भेसकलावन, मृगदावमें विहार करते थे। उस समय बोधि-राजकुमारने श्रमण या ब्राह्मण या किसी भी मनुष्यसे न भोगे कोकनद नामक प्रासादको हालहीमें बनवाया था। तब बोधि-राजकुमारने संजिकापुत्र [6]माणवकको सम्बोधित किया—

"आओ तुम सौम्य! संजिकापुत्र! जहाँ भगवान् हैं, वहाँ जाओ। जाकर मेरे वचनसे भगवान्‌के चरणोंमें शिरसे वन्दनाकर, आरोग्य, अन्-आतंक, लघु-उत्थान (=शारीरिक कार्य-

---

१. भगवान्‌ने छयालिसवाँ (वि पू. ४१६) वर्षावास श्रावस्ती (पूर्वाराम) में किया। २. सं. नि. ४७:५:१:१। ३. अ. क. "प्रासादकी छायामें पूर्व दिशामें, इसके होनेसे प्रासादके पश्चिमवाले भागमें धूप थी"। ४. म. नि. २:४:५ (सुत्तसंख्या ८५. में भी)। ५. चुनार (जि. मिर्जापुर)। ६. माणवक=तरुण।

क्षमता) बल, अनुकूल विहार, पूछो—'भन्ते ! बोधि-राजकुमार भगवान्‌के चरणोंमें शिरसे वन्दनाकर आरोग्य० पूछता है'। और यह भी कहो—'भन्ते ! भिक्षु-संघसहित भगवान् बोधि-राजकुमारका कलका भोजन स्वीकार करें।"

"अच्छा हो (=भो)' कह संजिका-पुत्र माणवक जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्‌से···(कुशल प्रश्न)···पूछ, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठकर संजिका-पुत्र माणवकने भगवान्‌से कहा—"हे गौतम ! बोधि-राजकुमार आपके चरणोंमें०। ०बोधिराज-कुमारका कलका भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्‌ने मौनद्वारा स्वीकार किया। तब संजिका-पुत्र माणवक भगवान्‌की स्वीकृति जान, आसनसे उठ जहाँ बोधि-राजकुमार था, वहाँ गया। जाकर बोधि राजकुमारसे बोला—

"आपके वचनसे मैंने उन गौतमको कहा—'हे गौतम ! बोधि-राजकुमार०। श्रमण गौतमने स्वीकार किया।"

तब बोधि-राजकुमारने उस रातके बीतनेपर अपने घरमें उत्तम खादनीय भोजनीय (पदार्थ) तैयार करवा, कोकनद-प्रासादको सफेद (=अवदात) धुस्सोंसे सीढ़ीके नीचे तक बिछवा, संजिकापुत्र माणवकको संबोधित किया—

"आओ सौम्य ! संजिकापुत्र ! जहाँ भगवान् हैं, वहाँ जाकर भगवान्‌को काल कहो—'भन्ते ! काल है, भात (=भोजन) तय्यार होगया।"

'अच्छा भो !"···काल कहा···।

तब भगवान् पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्रचीवर ले, जहाँ बोधि-राजकुमारका घर (=निवेसन) था, वहाँ गये। उस समय बोधि-राजकुमार भगवान्‌की प्रतीक्षा करता हुआ, द्वारकोष्टक (=नौबतखाना)के बाहर खड़ा था। बोधि-राजकुमारने दूरसे भगवान्‌को आते देखा। देखते ही अगवानी कर भगवान्‌की वन्दना कर, आगे आगे करके जहाँ कोकनद-प्रासाद था, वहाँ ले गया। तब भगवान् निचली सीढ़ीके पास खड़े होगये। बोधि-राजकुमारने भगवान्‌से कहा—"भन्ते ! भगवान् धुस्सोंपर चलें, सुगत ! धुस्सोंपर चलें, ताकि (यह) चिरकाल तक मेरे हित और सुखके लिये हो।"

ऐसा कहनेपर भगवान् चुप रहे।

दूसरी बार भी बोधि-राजकुमारने०। तीसरी बार भी०।

तब भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दकी ओर देखा। आयुष्मान् आनन्दने बोधि-राज-कुमारको कहा—

"राजकुमार ! धुस्सोंको समेट लो। भगवान् पाँवड़े (=चैल-पंक्ति) पर न चढ़ेंगे। तथागत आनेवाली जनता का ख्याल कर रहे हैं।"

बोधि-राजकुमारने धुस्सों को समेटवा कर, कोकनद प्रासादके ऊपर आसन बिछवाये। भगवान् कोकनदप्रासादपर चढ़, संघके साथ बिछे आसनपर बैठे। तब बोधिराजकुमार ने बुद्ध-प्रमुख भिक्षुसंघको अपने हाथसे उत्तम खादनीय भोजनीय (पदार्थों) से संतर्पित किया, संतुष्ट किया। भगवान्‌के भोजन कर पात्रसे हाथ खींच लेनेपर, बोधिराजकुमार एक नीचा आसन ले, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए बोधिराजकुमारने भगवान्‌से कहा—

भन्ते ! मुझे ऐसा होता है, कि सुख सुखसे प्राप्य नहीं, सुख दुःखसे प्राप्य है।"

"राजकुमार ! संबोधिसे पहिले = बुद्ध न हो बोधि-सत्त्व होते समय, मुझे भी यही होता था—'सुख सुखमें प्राप्य नहीं है, सुख दुःखमें प्राप्य है।' इसलिये राजकुमार ! मैं उस समय दहर (=नव वयस्क) हो, बहुत काले काले केशवाला, सुन्दर (= भद्र) यौवन के साथ हो, प्रथम वयसमें, माता-पिताके अश्रुमुख होते, घरसे बेघर हो ,प्रव्रजित हुआ। इस प्रकार प्रव्रजित हो, जहाँ आलार-कालाम था, वहाँ गया। जाकर आलार कालामसे कहा—'आवुस कालाम ! इस धर्मविनयमें मैं ब्रह्मचर्य-वास करना चाहता हूँ।' ऐसा कहनेपर राजकुमार ! आलार-कालामने मुझे कहा—'विहरो आयुष्मान् ! यह ऐसा धर्म है, जिसमें विज्ञ (=जानकार) पुरुष जल्द ही अपने आचार्यत्वको स्वयं जानकर = साक्षात्कर, = प्राप्तकर विहार करेगा।' सो मैंने जल्द ही = क्षिप्र ही उस धर्म (बात) को पूरा कर लिया। तब मैं उतने ही ओठ-छुये मात्र = कहने-कहाने मात्रसे, ज्ञानवाद और स्थविरवाद (= वृद्धोंका सिद्धान्त) कहने लगा—'मैं जानता हूँ, देखता हूँ...'। तब मेरे मनमें ऐसा हुआ : आलार-कालामने 'इस धर्मको केवल श्रद्धासे स्वयं जानकर = साक्षात् कर = प्राप्तकर मैं विहरता हूँ' यह मुझे नहीं बतलाया। जरूर आलार-कालाम इस धर्मको जानता देखता विहरता होगा। तब मैं जहाँ आलार-कालाम था, वहाँ गया। जाकर आलार-कालामसे पूछा—'आवुस कालाम ! तुम इस धर्मको स्वयं जानकर = साक्षात् कर = प्राप्त कर (= उपसंपद्य) कहाँ पर्यन्त बतलाते हो ?' ऐसा कहनेपर राजकुमार ! आलार-कालामने 'आकिंचन्यायतन' बतलाया।

तब मुझे ऐसा हुआ—'आलार-कालाम हीके पास श्रद्धा नहीं है, मेरे पास भी श्रद्धा है। आलार-कालाम ही के पास वीर्य नहीं है०। ०स्मृति०। ०समाधि०। ०प्रज्ञा०। क्यों न, जिस धर्मको आलार-कालाम—'स्वयं जानकर = साक्षात् कर = प्राप्त कर विहरता हूँ' कहता है; उस धर्मको साक्षात्कार करनेके लिये मैं उद्योग करूँ। सो मैं बिना देर किये = क्षिप्र ही उस धर्मको स्वयं जानकर = साक्षात् कर = प्राप्त कर विहरने लगा। तब मैंने राजकुमार !...आलार कालामको कहा—'आवुस कालाम ! तुम इतना ही इस धर्मको स्वयं जानकर० हमलोगोंको बतलाते हो ?'—'आवुस ! मैं इतना ही इस धर्मको स्वयं जानकर० बतलाता हूँ।' 'आवुस ! इतना तो मैं भी इस धर्मको स्वयं जानकर० विहरता हूँ।' आवुस ! हमें लाभ है, आवुस ! हमें सुलाभ मिला, जो हम आयुष्मान् जैसे स-ब्रह्मचारी (=गुरु-भाई) को देखते हैं। ...मैं जिस धर्मको स्वयं जान कर० बतलाता (=उपदेश करता) हूँ, तुम भी उसी धर्मको स्वयं जान० विहरते हो, तुम जिस धर्मको स्वयं०, मैं भी उसी धर्मको०। इस प्रकार मैं जिस धर्मको जानता हूँ, उस धर्मको तुम जानते हो। जिस धर्म को तुम जानते हो, उस धर्मको मैं जानता हूँ। इस प्रकार जैसे तुम वैसा मैं; जैसा मैं, वैसे तुम हो। आवुस ! आओ अब हम दोनों ही इस गण (= जमात) को धारण करें।' इस तरह मेरा आचार्य होते हुए भी, आलार-कालामने मुझ अन्तेवासी (= शिष्य) को अपने बराबरके स्थानपर स्थापित किया; बड़े सत्कार (= पूजा) से सत्कृत किया। तब मुझे यों हुआ—'यह धर्म न निर्वेद (= उदासीनता) के लिये है, न वैराग्यके लिये, न निरोधके लिये, न उपशम (= शांति) के लिये, न अभिज्ञा (= दिव्य-शक्ति) के लिये, न संबोधि (= परमज्ञान) के लिये, न निर्वाण के लिये है; 'आकिंचन्यायतन' तक उत्पन्न होने हीके लिये (यह) है। सो मैंने राजकुमार ! उस धर्मको अपर्याप्त मान, उस धर्मसे उदास हो चल दिया।

"सो राजकुमार ! मैं 'क्या कुशल (= अच्छा) है' की गवेषणा करता, सर्वोत्तम श्रेष्ठ शांतिपदको खोजता, जहाँ उद्दक राम-पुत्र था, वहाँ गया। जाकर उद्दक (= उद्रक) राम-पुत्रसे बोला—'आवुस ! इस धर्म-विनयमें मैं ब्रह्मचर्य पालन करना चाहता हूँ।' ऐसा कहनेपर राजकुमार ! उद्दक राम-पुत्र मुझसे बोला—

"विहरो आयुष्मान् ! यह वैसा धर्म है, जिसमें विज्ञ पुरुष जल्द ही अपने आचार्यत्वको, स्वयं जानकर = साक्षात् कर = प्राप्त कर विहार करेगा।' सो मैंने तुरन्त क्षिप्र ही उस धर्मको पूरा कर लिया। सो मैं उतने ही ओठ-छुये-मात्र = कहने-कहानेमात्रसे ज्ञानवाद, और स्थविर-वाद कहने लगा—'मैं जानता हूँ, देखता हूँ····' तब मुझे ऐसा हुआ – रामने मुझे यह न बतलाया "मैं इस धर्मको केवल श्रद्धासे, स्वयं जान कर = साक्षात् कर=प्राप्त कर विहरता हूँ।" जरूर राम इस धर्मको जानते देखते विहरता होगा। तब···उद्रक रामपुत्रसे मैंने पूछा—'आवुस रामपुत्र ! इस धर्मको स्वयं जान० ०बतलाते हो ?' ऐसा कहनेपर ! उद्रक राम-पुत्रने "नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतन' बतलाया। तब मेरे (मन) में हुआ—'उद्रक रामपुत्रके पास ही श्रद्धा नहीं है, मेरे पास भी श्रद्धा है० । क्यों न० । इस तरह मेरा आचार्य होते हुये उद्रक रामपुत्रने मुझ अन्तेवासीको अपने बराबरके स्थानपर स्थापित किया० । ०सो मैंने उस धर्मसे उदास हो चल दिया।

"राजकुमार ! 'क्या अच्छा है' की गवेषणा करता (= किंकुसल-गवेसी), सर्वोत्तम, श्रेष्ठ शांतिपदको खोजते हुए, मगधमें क्रमशः चारिका करते, जहाँ उरुवेला सेनानी-निगम (= कस्बा) था, वहाँ पहुँचा। वहाँ मैंने रमणीय भूमि-भाग, सुन्दर वन-खंड, बहती नदी, श्वेत···सुप्रतिष्ठित, चारों ओर रमणीय [2]गोचर-ग्राम देखा। तब मुझे राजकुमार ! ऐसा हुआ—'रमणीय है, हो ! यह भूमि-भाग० । प्रधान-इच्छुक कुल-पुत्रके [3]प्रधानके लिये यह बहुत ठीक (स्थान) है' सो मैं 'प्रधानके लिये यह अलं (= ठीक) है, (सोच), वहीं बैठ गया। मुझे (उस समय) अद्भुत, अ-श्रुत-पूर्व, तीन उपमायें भान हुईं।—

'जैसे ! गीला काष्ट भीगे (= सस्नेह) पानीमें डाला जाये। (कोई) पुरुष 'आग बनाऊँगा', 'तेज प्रादुर्भाव करूँगा' (सोच), [4]उत्तरारणी लेकर आये। तो क्या वह पुरुष गीले पानीमें पड़ी गीले काष्टकी उत्तरारणीको लेकर मथकर अग्नि बना सकेगा, तेज प्रादुर्भूत कर सकेगा ?"

"नहीं भन्ते !"

"सो किस लिये ?" "(एक तो वह) स्नेह-युक्त गीला काष्ट है, फिर वह पानीमें डाला है। ···ऐसा करनेवाला वह पुरुष सिर्फ थकावट, पीड़ाका ही भागी होगा।"

"ऐसे ही राजकुमार ! जो ब्राह्मण काया द्वारा काम-वासनाओंमें लग्न हो विचरते हैं। जो कुछ भी इनका काम (= वासनाओं) में काम-रुचि = काम-स्नेह = काम-मूर्छा = काम-पिपासा = काम-परिदाह है, वह यदि भीतरसे नहीं छूटा है, नहीं शमित हुआ है, तो

---

१. एक ध्यान।

२. भिक्षाटन-योग्य पार्श्ववर्ती ग्राम। ३. निर्वाण-प्राप्ति करानेवाली योग-युक्ति। ४. रगड़कर आग निकालनेकी लकड़ी।

प्रयत्नशील होनेपर भी यह श्रमण-ब्राह्मण दुःख (=द) तीव्र कटु, वेदना (मात्र) सह रहे हैं। यह ज्ञान-दर्शन अनुत्तर-संबोध (= परम-ज्ञान) के अयोग्य है।

"राजकुमार! यह मुझे पहिली अद्भुत अ-श्रुत-पूर्व उपमा भान हुई।"

"और भी राज-कुमार! मुझे दूसरी अद्भुत अ-श्रुत-पूर्व उपमा भान हुई। राज-कुमार! जैसे स्नेह-युक्त गीला काष्ठ जलके पास स्थलपर फेंका हो और कोई पुरुष उत्तरारणी लेकर आये—'अग्नि बनाऊँगा' 'तेज प्रादुर्भूत करूँगा'। तो क्या समझते हो राजकुमार! क्या वह पुरुष अग्नि बना सकेगा, तेज प्रादुर्भूत कर सकेगा?"

"नहीं भन्ते"

"सो किस लिये?"

"(एक तो) यह काष्ठ स्नेह युक्त है, और पानीके पास स्थलपर फेंका हुआ भी है। " वह पुरुष सिर्फ थकावट, पीड़ा (मात्र) का ही भागी होगा।"

"ऐसे ही राजकुमार! जो कोई श्रमण या ब्राह्मण कायाके द्वारा वासनाओंसे अलग हो विहरते हैं। ०अयोग्य हैं। राजकुमार! मुझे यह दूसरी०।

"और भी राजकुमार! तीसरी अद्भुत अ-श्रुत-पूर्व उपमा भान हुई।—जैसे नीरस शुष्क काष्ठ जलसे दूर स्थलपर फेंका है। और कोई पुरुष उत्तरारणी लेकर आये—'आग बनाऊँगा', 'तेज प्रादुर्भूत करूँगा।' तो क्या ''' वह पुरुष नीरस-शुष्क, जलसे दूर फेंके काष्ठको, उत्तरारणीसे मथन करके अग्नि बना सकेगा, तेज प्रादुर्भूत कर सकेगा?

"हाँ, भन्ते!"

"सो किसलिये?"

"भन्ते! वह नीरस सूखा काष्ठ है, और पानीसे दूर स्थलपर फेंका है।"

"ऐसे ही राजकुमार! जो कोई श्रमण-ब्राह्मण, कायाद्वारा काम-वासनाओंसे अलग हो विहरते हैं। और जो उनका काम-वासनाओंमें ०काम-परिदाह है; वह भीतरसे भी सुप्र-हीण (= अच्छी तरह छूट गया) है, सुशमित है। तो वह प्रयत्नशील श्रमण-ब्राह्मण दुःख (=द), तीव्र, कटु वेदना नहीं भोगते। वह ज्ञान-दर्शन = अनुत्तर-संबोधके पात्र हैं। यदि वह प्रयत्नशील श्रमण-ब्राह्मण दुःख, तीव्र, कटु वेदना को भोगें भी, (तो भी) वह ज्ञान-दर्शन= अनुत्तर संबोधके पात्र हैं। यह राजकुमार तीसरी०।

"तब राजकुमार! मेरे (मनमें) हुआ—"क्यों न मैं दाँतोंके ऊपर दाँत रख, जिह्वा-द्वारा तालूको दबा, मनसे मनको निग्रह करूँ, दबाऊँ, संतापित करूँ। तब मैंने दाँतपर दाँत रखने, जिह्वासे तालू दबाने, मनसे मनको पकड़ने, तपानेसे; काँखसे पसीना निकलता था; जैसे कि राजकुमार! बलवान् पुरुष शीशमें पकड़कर, कंधेमें पकड़कर, दुर्बलतर पुरुष को पकड़े, दबाये, तपाये; ऐसे ही राजकुमार! मेरे दाँतपर दाँत० काँखसे पसीना निकलता था। उस समय मैंने न दबने वाला वीर्य (=उद्योग) आरम्भ किया हुआ था, मेरी स्मृति बनी थी, काया भी तत्पर थी।

"तब मुझे यह हुआ—क्यों न मैं श्वास-रहित ध्यान धरूँ? सो मैंने राजकुमार! मुख और नासिका से श्वासका आना जाना रोक दिया। तब राजकुमार! मेरे मुख और नासिका से आश्वास-प्रश्वासके रुक जानेपर, कानके छिद्रोंसे निकलते वातों (=हवाओं) का बहुत अधिक

शब्द होने लगा। जैसे कि—लोहारकी धौंकनीसे धौंकनेसे बहुत अधिक शब्द होता है; ऐसे ही०। ०न दबनेवाला वीर्य आरम्भ किया हुआ था०।"

"तब मुझे यह हुआ—क्यों न मैं श्वास-रहित ध्यान धरूँ ? सो मैंने राजकुमार ! मुख से०। तब मेरे मुख, नासा और कर्णसे आश्वास-प्रश्वासके रुक जानेसे, मूर्धामें बहुत अधिक वात टकराते। जैसे बलवान् पुरुष तीक्ष्ण शिखरसे मूर्धा (=शिर)को मथे, ऐसे ही राजकुमार ! मेरे ०।

"तब मुझे यह हुआ—क्यों न श्वास-रहित ध्यान धरूँ ?—सो मैंने मुख, नासा, कर्णसे आश्वास-प्रश्वास को रोक दिया। तब मुख, नासा, कर्णसे आश्वास-प्रश्वासके रुक जानेसे मेरे सीसमें बहुत अधिक सीस-वेदना (=सिर दर्द) होती थी। ०न दबाने वाला०।...

"तब राजकुमार ! मुझे यह हुआ—क्यों न श्वास-रहित ही ध्यान धरूँ ?—सो मैंने०। ०रुक जानेपर बहुत अधिक वात पेट (=कुक्षि) को छेदते थे। जैसे कि दक्ष (=चतुर) गो-घातक या गो-घातकका अन्तेवासी तेज गो-विकर्त्तन(=छुरा)से पेट को काटे; ऐसेही०। न दबनेवाला०।

"तब मुझे यह हुआ, 'क्यों न श्वास-रहित ही ध्यान (फिर) धरूँ'०। राजकुमार०। ०कायामें अत्यधिक दाह होता था। जैसे कि दो बलवान् पुरुष दुर्बलतर पुरुषको अनेक बाहोंमें पकड़कर अंगारोंपर तपावें; ऐसेही०। न दबते०।

"देवता भी मुझे कहते थे—'श्रमण गौतम मर गया।' कोई कोई देवता यों कहते थे—'श्रमण गौतम नहीं मरा, न मरेगा; श्रमण गौतम अर्हत् है। अर्हत्का तो इस प्रकारका विहार होता ही है।

"...मुझे यह हुआ—"क्यों न आहारको बिलकुल ही छोड़ देना स्वीकार करूँ। तब देवताओंने मेरे पास आकर कहा—मार्ष ! तुम आहारका बिल्कुल छोड़ना स्वीकार करो। हम तुम्हारे रोम-कूपोंद्वारा दिव्य-ओज डाल देंगे; उसीसे तुम निर्वाह करोगे।...। तब मुझे यह हुआ—मैं (अपनेको) सब तरहसे निराहारी जानूँगा और यह देवता रोमकूपों द्वारा दिव्य ओज मेरे रोम-कूपोंके भीतर डालेंगे; मैं उसीसे निर्वाह करूँगा। यह मेरा मृषा (ढोंग) होगा। सो मैंने उन देवताओंका प्रत्याख्यान किया—'रहने दो।'

"तब मुझे यह हुआ—क्यों न मैं थोड़ा थोड़ा आहार ग्रहण करूँ—पसर भर मूँग का जूस, या कुलथीका जूस या मटर का जूस, या अरहरका जूस—। सो मैं थोड़ा-थोड़ा पसर-पसर मूँगका जूस० ग्रहण करने लगा। थोड़ा थोड़ा पसर पसर भर मूँग का जूस ०ग्रहण करते हुये, मेरा शरीर (दुर्बलताकी) चरम सीमाको पहुँच गया। जैसे आसीतिक (=वन-स्पति विशेष) की गाँठें,...वैसेही उस अल्प आहारसे मेरे अंग प्रत्यंग हो गये। उस अल्प आहारसे जैसे ऊँट का पैर, वैसे ही मेरा कूल्हा (=आनिसद) हो गया, ०जैसे सूओंकी पोती (=बट्टनावली) वैसे ही ऊँचे नीचे मेरे पीठके काँटे हो गये। ०जैसे पुरानी शालाकी कड़ियाँ (=ढोंढे=गोपानसी) टेढ़ी-मेढ़ी (=ओलुग्ग-विलुग्ग) होती हैं, ऐसी ही मेरी पंसुलियाँ हो गई थीं। जैसे गहरे कूएँ(=उदपान)में पानी का तारा (=उदक-तारा) गहराई में, बहुत दूर दिखाई देता है, उसी०। जैसे कच्चा तोड़ा कड़वा लौका हवा धूपसे चिचुक (=संपुटित) जाता है, मुर्झा जाता है; ऐसे ही मेरे शिरकी खाल चिचुक गई थी, मुर्झा गई थी।......

राजकुमार ! यदि मैं पेट की खालको मसलता, तो पीठके काँटोंको पकड़ लेता था, पीठके काँटों को मसलता तो पेटकी खालको पकड़ लेता। उस अल्पाहारसे मेरे पीठके काँटे और पेटकी खाल बिल्कुल सट गई थी।···यदि मैं पाखाना या मूत्र करता, वहीं भहराकर (=उपकुज्ज) गिर पड़ता था। जब मैं कायाको सहलाते (=अस्सासेन्तो) हुये, हाथ से गात्र को मसलता तो हाथसे गात्र मसलते वक्त, कायासे सड़ी जड़ वाले (=पूति-मूल) रोम झड़ पड़ते।··· मनुष्य भी मुझे देखकर कहते थे—'श्रमण गौतम काला है'। कोई कोई मनुष्य कहते थे—"श्रमण गौतम काला नहीं है, श्याम है।" कोई कोई मनुष्य यों कहते "श्रमण गौतम काला नहीं है, न श्याम ही है, मंगुर-वर्ण (='मंगुरच्छवि) है'। राजकुमार ! मेरा वैसा परि-शुद्ध परि-अवदात (=सफेद, गोरा) छवि-वर्ण (=चमड़ेका रंग) नष्ट हो गया था।

"तब मुझे यों हुआ—अतीत काल में जिन किन्हीं श्रमणों-ब्राह्मणोंने घोर दुःख तीव्र और कटु वेदनायें सहीं, इतने ही पर्यन्त, (सही होंगी) इससे अधिक नहीं; भविष्य कालमें जो कोई श्रमण-ब्राह्मण घोर दुःख तीव्र और कटु वेदनायें सहेंगे, इतने ही पर्यन्त, इससे अधिक नहीं। आजकल भी जो कोई श्रमण ब्राह्मण घोर दुःख, तीव, और कटु वेदना सह रहे हैं०। लेकिन राजकुमार ! मैंने उस दुष्कर कारिकासे उत्तर मनुष्य-धर्म 'अलमार्य-ज्ञान-दर्शन-विशेष न पाया। (मुझे विचार हुआ) बोधके लिये क्या कोई दूसरा मार्ग है?

"तब राजकुमार ! मुझे यों हुआ—"मालूम है मैंने पिता (शुद्धोदन) शाक्यके खेतपर जामुनकी ठंढी छायाके नीचे, बैठ, काम और अकुशल-धर्मोंको हटाकर प्रथम ध्यान को प्राप्त हो, विहार किया था। शायद यह मार्ग बोधिका हो। तब राजकुमार ! मुझे यह हुआ—क्या मैं उस सुखसे डरता हूँ, जो सुख काम और अकुशल-धर्मोंसे भिन्न है। फिर मुझे राजकुमार यह हुआ—मैं उस सुखसे नहीं डरता, जो सुख०। तब मुझे राजकुमार, यह हुआ इस प्रकार अत्यन्त कृश, पतले कायासे यह सुख मिलना सुकर नहीं, क्यों न मैं स्थूल आहार भात-दाल (=कुल्माष) ग्रहण करूँ। सो मैं राजकुमार ! स्थूल आहार ओदन-कुल्माष ग्रहण करने लगा। उस समय राजकुमार ! मेरे पास पाँच भिक्षु (इस आशासे) रहा करते थे, कि श्रमण गौतम जिस धर्मको प्राप्त करेगा, उसे हम लोगों को (भी) बतलायेगा। लेकिन जब मैं स्थूल आहार ओदन-कुल्माष ग्रहण करने लगा; तब वह पाँचों, भिक्षु, 'श्रमण गौतम बाहुलिक (=बहुत संग्रह करनेवाला), प्रधानसे विमुख, बाहुल्य-परायण हो गया' (समझ) उदासीन हो, चले गये।

"तब राजकुमार ! मैं स्थूल आहार ग्रहणकर, सबल हो काम और अकुशल-धर्मोंसे वर्जित, वितर्क तथा विचारसहित, एकान्तताले उत्पन्न (=विवेकज), प्रीति-सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगा। वितर्क और विचार के उपशमित होने पर, भीतरके संप्रसाद (=प्रसन्नता)=चित्त की एकाग्रता-युक्त, वितर्क-विचार-रहित, समाधिसे उत्पन्न प्रीति-सुख वाले द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगा।······प्रीति और विरागसे उपेक्षाकर स्मृति और संप्रजन्यके साथ, कायासे सुखको अनुभव (=प्रतिसंवेदन) करता हुआ, विहरने

१. मंगुर मछली।
२. पहल,गाथ।   ३. देखो स्मृति प्रस्थान-व

लगा। जिसको कि आर्यजन उपेक्षक स्मृतिमान् और सुख-विहारी कहते हैं; ऐसे तृतीय ध्यान को प्राप्त हो विहार करने लगा।···।

"सुख और दुःखके विनाश (=प्रहाण) से, पहिले ही, सोमनस्य और दौर्मनस्यके पहिले ही अस्त हो जानेसे, दुःख-रहित, सुख-रहित उपेक्षक हो, स्मृतिकी परिशुद्धतासे युक्त चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहार करने लगा।

"तब इस प्रकार चित्तके परिशुद्ध=परि-अवदात,=अंगणरहित=उपक्लेश-रहित, मृदु हुये, काल-लायक, स्थिर=अचलताप्राप्त=समाधिप्राप्त हो जाने पर, पूर्वजन्मों की स्मृतिके ज्ञान (=पूर्वनिवासानुस्मृति-ज्ञान) के लिये चित्तको मैंने झुकाया। फिर मैं पूर्वकृत अनेक पूर्व-निवासों (=जन्मों) को स्मरण करने लगा—जैसे एक जन्म भी, दो जन्म भी,···।

"आकार-सहित उद्देश्य-सहित पूर्वकृत अनेक पूर्व-निवासोंको स्मरण करने लगा। इस प्रकार प्रमाद-रहित, तत्पर, हो आत्म-संयमयुक्त विहरते हुये, मुझे रातके पहिले याममें प्रथम विद्या प्राप्त हुई; अविद्या गई, विद्या आई; तम नष्ट हुआ, आलोक उत्पन्न हुआ।

"सो इस प्रकार चित्तके परिशुद्ध॰ समाहित होनेपर, प्राणियोंके जन्म-मरणके ज्ञान (=च्युति-उत्पाद-ज्ञान) के लिये मैंने चित्तको झुकाया। सो मनुष्य (के नेत्रों) से परेकी दिव्य विशुद्ध चक्षुसे, मैं अच्छे-बुरे, सुवर्ण-दुर्वर्ण, सु-गत-दुर्गत, मरते-उत्पन्न होते, प्राणियों को देखने लगा। सो॰ ···कर्मानुसार जन्म को प्राप्त प्राणियोंको जानने लगा। रातके बिचले पहर (= याम) में यह द्वितीय विद्या उत्पन्न हुई। अविद्या गई॰।

"सो इस प्रकार चित्तके॰। आस्रवों (=मल-दोष) के ज्ञानके लिये मैंने चित्तको झुकाया—सो 'यह 'दुःख है' इसे यथार्थसे जान लिया; 'यह दुःख-समुदय है' इसे यथार्थसे जान लिया; 'यह 'दुःख-निरोध है' इसे यथार्थसे जान लिया; 'यह दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपद् है' इसे यथार्थसे जान लिया। 'यह आस्रव हैं' इन्हें यथार्थसे जान लिया; 'यह आस्रव-समुदय हैं' इसे॰, 'यह आस्रव-निरोध॰' 'यह आस्रव-निरोध = गामिनी-प्रतिपद् है' इसे॰। सो इस प्रकार जानते, इस प्रकार देखते मेरा चित्त कामास्रवोंसे मुक्त हो गया, भवास्रवोंसे मुक्त हो गया, अविद्यासे भी विमुक्त हो गया। छूट (= विमुक्त) जानेपर 'छूट गया (विमुक्त)' ऐसा ज्ञान हुआ। 'जन्म खतम हो गया, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, करना था सो कर लिया, अब यहाँके लिये कुछ (करणीय) नहीं' इसे जाना। राजकुमार! रातके पिछले याममें यह तृतीय विद्या प्राप्त हुई। अविद्या चली गई॰। [3]॰।

"तब राजकुमार! पंचवर्गीय भिक्षु मेरे द्वारा इस प्रकार उपदेशित हो,=अनुशासित हो, अचिर ही में जिसके लिये कुल-पुत्र घरसे बेघर हो प्रव्रजित होते हैं, उस उत्तम ब्रह्मचर्य-फलको, इसी जन्ममें स्वयं जानकर = साक्षात् कर=उपलाभ कर विहरने लगे।'

ऐसा कहनेपर बोधि राजकुमारने भगवान्‌से कहा—

दुष्प्रज्ञ॰, प्रज्ञावान्॰। सो राजकुमार! क्या यह पुरुष तेरे पास हाथीवानी - अंकुश-ग्रहण शिल्पको सीखेगा?"

---

१. देखो पटिच्च-समुप्पाद-सुत्त। २. देखो पृष्ठ ११५। ३. पृष्ठ २१-२४।

"भन्ते ! कितनी देरमें तथागत (को) विनायक (= नेता) पा, भिक्षु जिसके लिये कुल-पुत्र घरसे बेघर हो प्रव्रजित होते हैं, उस उत्तम ब्रह्मचर्य फलको इसी जन्ममें स्वयं जानकर = साक्षात् कर = उपलाभ कर, विहरने लगेगा ?"

"राजकुमार ! तुझसे ही यहाँ पूछता हूँ, जैसा तुझे ठीक लगे, वैसा बतला । हाथी-वानी = अंकुशग्रहणके शिल्प (= कला) में तू चतुर है न ?"

"भन्ते ! हाँ मैं हाथीवानी० में चतुर हूँ ।"

"तो राजकुमार ! यदि कोई पुरुष—'बोधि-राजकुमार हाथीवानी = अंकुश-ग्रहण शिल्प जानता है, उसके पाससे हाथीवानी = अंकुश ग्रहण शिल्पको सीखूँगा' (सोचकर) आये । और वह हो श्रद्धारहित, (तो क्या) जितना श्रद्धा-सहित (मनुष्य) द्वारा पाया जा सकता है, (उतना) वह पायेगा । ०शठ मायावी०, अशठ मायावी, ०आलसी०, ०निरालस० ।

"एक दोषसे भी युक्त पुरुष मेरे पास हाथीवानी = अंकुश-ग्रहण शिल्प नहीं सीख सकता, पाँचों दोषोंसे युक्तके लिये तो कहना ही क्या ?"

"तो राजकुमार ! यदि कोई मनुष्य 'बोधि-राजकुमार' हाथीवानी० जानता है० शिल्पको सीखूँगा' (सोचकर) आवे । वह हो श्रद्धावान्०; ०अल्प-रोगी०; ०अशठ = अमायावी०; निरालस० । तो राजकुमार ! क्या वह पुरुष तेरे पास हाथीवानी = अंकुश-ग्रहण शिल्प सीख सकेगा ?"

"भन्ते ! एक बातसे युक्त भी पुरुष मेरे पास० ।"

"इसी प्रकार राजकुमार ! निर्वाण-साधना (= प्रधान) के भी पाँच अंग हैं । कौनसे पाँच ?—(१) भिक्षु श्रद्धालु हो, तथागतकी बोधि (= परमज्ञान) पर श्रद्धा करता हो—'कि वह भगवान् , अर्हत् , सम्यक्-संबुद्ध, विद्या-आचरण-संपन्न, सुगत, लोक विद्, अनुत्तर-पुरुष दम्य-सारथी, देव-मनुष्यके शास्ता, बुद्ध भगवान् हैं । (२) अल्प-रोगी = अल्प-आतङ्की, न बहुत शीत, न बहुत उष्ण, साधनायोग्य, सम-विपाकवाली मध्यम प्रकृति (= ग्रहणी) से युक्त हो ; (३) अ-शठ = अ-मायावी हो; शास्ता (= गुरु) और विज्ञ स-ब्रह्मचारियोंमें, कुशल धर्मों के उत्पादनमें निरालस हो; कुशल धर्मोंमें कंधेसे जुआ न हटानेवाला, दृढ़-पराक्रमी बलिष्ठ हो । (५) उदय-प्रज्ञावान् हो, उदय-अस्त-गामिनी, आर्य-नैर्वेधिक सम्यक् दुःख-क्षय-गामिनी, प्रज्ञासे युक्त हो । राजकुमार ! प्रधानके यह पाँच अंग हैं ।

"राजकुमार ! इन पाँच प्रधानीय अंगोंसे युक्त भिक्षु तथागतको विनायक (=नेता) पा, अनुत्तर ब्रह्मचर्य फलको इसी जन्ममें सात वर्षोंमें, स्वयं जानकर = साक्षात् कर=लाभ कर विहरेगा ।"

"राजकुमार ! छोड़ो सात वर्ष, इन पाँच प्रधानीय अंगोंसे युक्त भिक्षु०, छ वर्षोंमें । ०पाँच वर्षोंमें । ०चार वर्षोंमें । ०तीन वर्षोंमें । ०दो वर्षोंमें । ०एक वर्षमें । ०सात मासमें । ०छ मासमें । ०पाँच मासमें । ०चारमासमें । ०तीन मासमें । ०दो मासमें । ०एक मास-में । ०सात रात दिनमें । ०छ रात-दिनमें । ०पाँच रात-दिनमें । ०चार रात-दिनमें । ०तीन रात-दिनमें । ०एक रात-दिनमें ।

"छोड़ो राजकुमार ! एक रात दिन; इन पाँच प्रधानीय अंगोंसे युक्त भिक्षु, तथागतको

विनायक पा, सायंकालको अनुशासन किया, प्रातःकाल विशेष (=निर्वाणपद) को प्राप्त कर सकता है, प्रातः अनुशासित सायं विशेष प्राप्त कर सकता है।"

ऐसा कहनेपर बोधि-राजकुमार बोला—अहो ! बुद्ध !!, अहो ! धर्म !! अहो ! धर्म का 'स्वाख्यात-पन !! जहाँ कि सायं अनुशासित प्रातः विशेषको पा जाये, प्रातः अनुशासित सायं विशेष पा जाये।"

ऐसा बोलनेपर संजिका-पुत्रने बोधि-राजकुमारको कहा—"ऐसा ही है, भवान् बोधि !—'अहो ! बुद्ध !! अहो ! धर्म !!, अहो ! धर्मका स्वाख्यात-पन।' (यह) तुम कहते हो; तो भी उस धर्म और भिक्षु-संघ की शरण नहीं जाते ?"

'सौम्य ! संजिका-पुत्र ! ऐसा मत कहो। सौम्य ! संजिका-पुत्र ! ऐसा मत कहो। सौम्य संजिका-पुत्र ! मैंने अय्या[2] (=आर्या) के मुँहसे सुना, (उन्हींके) मुखसे ग्रहण किया है। सौम्य ! संजिका-पुत्र एकबार भगवान् कौशाम्बीमें घोषितारामर्में विहार करते थे। तब मेरी गर्भवती अय्या जहाँ भगवान् थे, वहाँ गई, जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गई। एक ओर बैठी मेरी अय्याने भगवान् को यों कहा - 'भन्ते ! जो मेरे कोखमें यह कुमार या कुमारी है, वह भगवान्‌की, धर्मकी और भिक्षु-संघकी शरण जाती है। आजसे भगवान् इसे सांजलि शरणागत उपासक धारणा करें।

"सौम्य ! संजिकापुत्र ! एकबार भगवान् यहीं भर्ग (देश) में सुंसुमार-गिरिके भेसकलावन मृगदावनमें विहरते थे, तब मेरी धाई (=धात्री) मुझे गोदमें लेकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गई। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर खड़ी होगई। एक ओर खड़ी हुई मेरी धाईने भगवान्‌को कहा—भन्ते ! यह बोधि-राजकुमार भगवान्‌की, धर्मकी, और भिक्षु-संघकी०।

"सौम्य ! संजिकापुत्र ! यह मैं तीसरी बार भी भगवान्‌की, धर्मकी और भिक्षु-संघकी शरण जाता हूँ। आजसे भगवान् मुझे सांजलि शरणागत उपासक धारण करें।"

---

१. उत्तम-वर्णन। २. आप

३. म. नि. अ. क. २:४:५···कौशाम्बीनगरमें परन्तप नामक राजा राज्य करता था। (एक समय) गर्भिणी राज-महिषी आकाशके नीचे राजाके साथ धूप लेती, लाल कम्बल ओढ़े बैठी थी। एक हाथीकी सूरत (=हत्थिलिङ्ग) का पक्षी (उसे) मांसका टुकड़ा जान लेकर आकाशमें उड़ गया। 'कहीं मुझे छोड़ न दे'—इस डरसे वह चुप रही। उसने उसे पर्वतकी जड़में लगे एक वृक्षके ऊपर रख दिया। तब उसने हाथसे ताली बजाकर बड़ा हल्ला किया। पक्षी भाग गया। उसको वहाँ प्रसव-वेदना शुरू हुई, (तो भी) देवके बरसते तीन यामकी सारी रात, कम्बल ओढ़े बैठी रही। वहाँसे पास हीमें एक तापस रहता था। वह उसका शब्द सुन, लाली उठते (= अरुणोद्गमे) ही वृक्षके नीचे आया। जाति पूछ, सीढ़ी बाँध उसे उतारकर अपने स्थानपर ले जा, उसे खिचड़ी (=यागू) पिलायी। बालक मेघ-ऋतु तथा पर्वत-ऋतुको लेकर पैदा हुआ था, इसलिये उसका नाम उदयन रक्खा। तापसने फल-फल लाकर दोनों जनोंको पोसा। उसने एक दिन तापसके आनेके समय अगवानीकर···तापसके व्रतको भंग कर दिया।

(९२)

(ई. पू. ४९२-८८) कण्णत्थलक-सुत्त । संघभेदक-खंधक ! (देवदत्त) सुत्त । सकलिक-सुत्त । देवदत्त-विद्रोह । विसाखा-सुत्त । जटिल-सुत्त ।

'ऐसा मैंने सुना'—एक समय भगवान् उजुञा ([१]=उजुञ्जा = उरुञ्जा) में कण्णत्थलक (=कर्ण-स्थलक) मृग-दायमें विहार करते थे।

उस समय राजा प्रसेनजित् कोसल किसी कामसे उजुञा (= ऋजुका) में आया हुआ था, राजा प्रसेनजित् कोसलने एक आदमीको आमंत्रित किया—

उनके बहुत कालतक एक साथ रहते रहते परंतप राजा मर गया। तापसने राजाके नक्षत्र देखकर राजाकी मृत्युको जान पूछा—"तेरा राजा मर गया, (अब) तेरा पुत्र क्या यहाँ बसना चाहता है, या पैतृक राज्यमें छत्रधारण करना (चाहता है , ?" । उसने पुत्रको आदिसे (अन्त तक) सब कथा कह, उसकी छत्र-धारण करनेकी इच्छा सुन, तापससे कहा। तापस हस्ति-ग्रन्थ शिल्प जानता था। (...उसने यह शिल्प) शक्रके पाससे, (पाया था)। पहिले शक्रने इसके पास आकर—'क्या चीजकी तकलीफ है ?'—पूछा। उसने 'हाथियोंका घेरा है' कहा। उसको शक्रने हस्ति-ग्रन्थ और वीणा दे—'भगानेके लिये वीणा बजा इस श्लोक को बोलना, बुलानेके लिये वीणा बजाकर इस श्लोक को बोलना" कहा। तापसने वह शिल्प कुमारको दिया। कुमारने बरगदके वृक्षपर चढ़ हाथियोंके आनेपर वीणा बजा श्लोक कहा, हाथी डरकर भाग गये। उसने शिल्पके माहात्म्यको देख, दूसरे दिन बुलानेका शिल्प-प्रयोग किया। हाथियोंके सर्दारने आकर कंधेको नवा दिया। वह उसके कंधेपर चढ़, युद्धके लायक तरुण हाथियों को चुन, कम्बल और अँगूठी ले माता पिताको वन्दना कर, निकल क्रमशः...गाँवमें प्रवेश कर—'मैं राजाका पुत्र हूँ, संपत् चाहनेवाले आवें'—इस प्रकार आदमियोंको जमाकर, नगरको घेरकर,—'मैं राजाका पुत्र हूँ, मुझे छत्र दो' (कहा)। न विश्वास करनेवालोंको कम्बल और अँगूठी दिखा, छत्र धारण किया। वह हाथीका शौकीन होनेसे—"अमुक स्थानपर सुन्दर हाथी है"—कहनेपर जाकर पकड़ता था।

चण्डप्रद्योत राजाने 'उसके पाससे शिल्प सीखूँगा (विचार) काठका हाथी भेज, उसके भीतर योधाओंको बैठा, उस हाथीको पकड़नेके लिये आये हुये (उदयन) को पकड़, उसके साथ-(अनुराग) हो, उसे ले अपने नगरमें चला गया। उसके पास शिल्प सीखनेके लिये अपनी लड़कीको भेजा। उदेनकी कोसाम्बी उत्पन्न इस बोधि राजकुमारने अपने पिताके पास (यह) शिल्प सीखा था। + + +

१. सैंतीसवाँ वर्षावास (४९१ ई. पू.) भगवान्‌ने श्रावस्ती (जेतवन) में बिताया, और अड़तीसवाँ (४९० ई. पू.) राजगृहमें। म. नि. २:४:१० । २. अ. क. "उस राष्ट्रका और नगरका भी यही नाम (था)।......उस नगरके अविदूर (= समीप) कण्णत्थलक नामक एक रमणीय भूभाग था......।

"आओ हे पुरुष ! जहां भगवान् हैं, वहां जाओ। जाकर मेरे वचनसे भगवान्‌के चरणोंमें शिरसे वन्दना करना। अल्पाबाध (= आरोग्य)=अल्पातंक लघु-उत्थान (=फुर्ती) बल, प्राशु-विहार (= सुख पूर्वक विहरना) पूछना—'भन्ते ! राजा प्रसेनजित् कोसल भगवान्‌के चरणोंमें शिरसे वन्दना करता है०। और यह भी कहना—भन्ते ! आज भोजनोपरांत, कलेऊ करनेपर, राजा प्रसेनजित् कोसल भगवान्‌के दर्शनार्थ आयेगा।"

"अच्छा देव !"

सोमा और सुकुला (=दोनों) बहिनोंने सुना—'आज राजा···भगवान्‌के दर्शनार्थ जायेगा। तब [1]सोमा, सुकुला बहिनोंने राजा प्रसेनजित्० के पास, परोसनेके समय जाकर कहा—

"तो महाराज ! हमारे भी वचनसे भगवान्‌के चरणोंमें शिरसे वन्दना करना। अल्पाबाध० पूछना—०।

तब राजा प्रसेनजित् कोसल कलेऊ करके भोजनोपरान्त जहां भगवान् थे, वहां गया; जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर···एक ओर बैठ भगवान्‌को बोला—

"भन्ते ! सोमा और सुकुला (दोनों) बहिनें भगवान्‌के चरणोंको शिरसे वन्दना करती हैं०।"

"क्या महाराज ! सोमा और सुकुला बहिनोंको दूसरा दूत नहीं मिला ?"

"भन्ते ! सोमा और सुकुला बहिनोंने सुना, कि आज राजा···भगवान्‌के दर्शनार्थ जायेगा···। आकर मुझे यह कहा···।"

"सुखिनी होवें महाराज ! सोमा और सुकुला (दोनों) बहिनें।"

तब राजा प्रसेनजित् कोसलने भगवान्‌को यह कहा—

"भन्ते ! मैंने सुना है, कि श्रमण गौतम ऐसा कहता है—'ऐसा (कोई) श्रमण या ब्राह्मण नहीं है, जो सर्वज्ञ=सर्वदर्शी (हो), निःशेष ज्ञान दर्शनको जाने, यह संभव नहीं है।' भन्ते ! जो ऐसा कहते हैं कि श्रमण गौतम ऐसा कहता है—'ऐसा (कोई)०।' क्या भन्ते ! वह भगवान्‌के बारेमें सच कहते हैं ? भगवान्‌को असत्य=अभूतसे लांछन तो नहीं लगाते ? धर्मके अनुसार कहते हैं, कोई धर्मानुसारी कथन (=वादानुवाद) गर्हणीय (=निंदनीय) तो नहीं होता ?"

"महाराज ! जो ऐसा कहते हैं कि श्रमण गौतम ऐसा कहता है—'ऐसा (कोई) श्रमण या ब्राह्मण नहीं है, जो सर्वज्ञ=सर्वदर्शी (होगा); निःशेष ज्ञान-दर्शनको जानेगा, यह संभव नहीं है।' वह मेरे बारेमें सच नहीं कहते, वह अ-सत्य=अभूतसे मुझे लांछन लगाते हैं।"

तब राजा प्रसेनजित्० ने विडूडभ सेनापतिको आमंत्रित किया—

"सेनापति ! आज राजान्तःपुरमें किसने बात (=कथावस्तु) कही थी ?"

"महाराज ! आकाश-गोत्र संजय ब्राह्मणने।"

तब राजा प्रसेनजित्ने० एक पुरुषको आमंत्रित किया—

"आओ, रे पुरुष ! मेरे वचनसे ०संजय ब्राह्मणको कहो—'भन्ते ! तुम्हें राजा प्रसेनजित् बुलाते हैं'।"

---

१. अ. क. "यह दोनों बहिनें राजाकी स्त्रियां थीं।"

"अच्छा देव !"...

तब राजा प्रसेनजित्० ने भगवान्‌को कहा—

"भन्ते ! शायद आपने कुछ और सोच (यह) वचन कहा हो, आदमी अन्यथा... न कहेगा ।"

"तो भन्ते ! जो वचन कहा कैसे भगवान् जानते हैं ।" "महाराज ! मैं जानता हूँ—जो वचन (मैंने) कहा ।"

"महाराज ! मैंने जो वचन कहा उसे इस प्रकार जानता हूँ—'ऐसा श्रमण ब्राह्मण नहीं, जो एक ही बार (= सकृद् एव) सब जानेगा=सब देखेगा, यह संभव नहीं' ।"

"भन्ते ! भगवान्‌ने हेतु-रूप कहा; सहेतु-रूप भन्ते ! भगवान्‌ने कहा—'ऐसा श्रमण ब्राह्मण नहीं जो एक ही बार सब जानेगा=सब देखेगा, यह संभव नहीं ।' भन्ते ! यह चार वर्ण हैं—क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र । भन्ते ! इन चारों वर्णोंमें है कोई विभेद, है कोई नाना-कारण ?"

"महाराज ! ०इन चार वर्णोंमें अभिवादन-प्रत्युत्थान, हाथ जोड़ने (= अंजलि-कर्म) = सामीचि-कर्ममें दो वर्ण अग्र (= श्रेष्ठ) कहे जाते हैं—क्षत्रिय और ब्राह्मण ।"

"भन्ते ! मैं भगवान्‌को इस जन्मके सब धर्मोंको नहीं पूछता, मैं...परलोकके संबन्ध (= सांपरायिक) में पूछता हूँ... ।"

"महाराज ! यह पाँच प्रधानीय अंग हैं । कौनसे पाँच ? महाराज ! भिक्षु (१) श्रद्धालु होता है । तथागतकी बोधि (=बुद्ध-ज्ञान) पर श्रद्धा करता है—'ऐसे वह भगवान् अर्हत्० ।' (२) अल्पाबाध (=अरोग)० होता है । (३) शठ=मायावी नहीं होता० । (४) ०आरब्ध-वीर्य (=उद्योगशील) होता है । (५) प्रज्ञावान् होता है० । महाराज ! यह पाँच प्रधानीय अंग हैं । तो यह उनके दीर्घ-रात्रि (= चिरकाल) तक हित-सुखके लिये होता ।"

"भन्ते ! चार वर्ण० हैं । और यदि वह प्रधानीय-अंगोंसे युक्त हों । तो भन्ते ! क्या उनमें भेद = नानाकरण नहीं होता ?"

"महाराज ! उनका प्रधान, नानात्व (= भेद) नहीं कहता । जैसे कि महाराज ! दो दमनीय हाथी, दमनीय घोड़े, ०बैल, सु-दान्त=सु-विनीत अच्छी प्रकार सिखलाये हों । दो दमनीय हाथी, ०घोड़े, ०बैल, अदान्त=अ-विनीत (=बिना सिखलाये) हों । तो महाराज ! जो वह० सु-दान्त, सु-विनीत हैं, क्या वह दान्त होनेसे दान्त-पदको पाते हैं=दान्त होनेसे दान्त-भूमिको प्राप्त होते हैं ?" "हाँ भन्ते !"

"और जो महाराज ! अ-दान्त अविनीत हैं, क्या वह अदान्त (बिना सिखाये)० ही, दान्त-पदको पाते हैं, अदान्त हो दान्तभूमिको प्राप्त हो सकते हैं ? जैसे कि वह दो० सुदान्त=सुविनीत ?"

"नहीं, भन्ते !"

"ऐसेही महाराज ! जो कि श्रद्धालु, निरोग, अशठ=अमायावी, आरब्ध-वीर्य, प्रज्ञावान् द्वारा प्राप्य (वस्तु) है, उसे अ-श्रद्ध, बहुरोगी, शठ=मायावी, आलसी, दुष्प्रज्ञ पायेगा, यह संभव नहीं है ।"

---

१ म० नि० २:४:१० ।

"भन्ते ! भगवान्‌ने हेतु-रूप (=ठीक) कहा०। भन्ते ! चारों वर्ण क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र हैं, और वह यदि इन प्रधानीय अंगोंसे युक्त हों=सम्यक् प्रधानवाले हों। तो भन्ते ! क्या उनमें (कुछ) भेद नहीं होगा=कुछ नानाकरण नहीं होगा ?"

"महाराज ! मैं उनमें कुछ भी 'यह जोकि विमुक्तिका विमुक्तिसे भेद (=नानाकरण) है' नहीं कहता। जैसे महाराज ! (एक) पुरुष सूखे शाककी लकड़ी को लेकर अग्नि तैयार करे, तेज प्रादुर्भूत करे, और दूसरा पुरुष सूखे शाल (=साखू)-काष्ठसे आग तैयार करे०; और दूसरा पुरुष सूखे आमके काष्ठसे०; और दूसरा पुरुष सूखे गूलर-काष्ठसे०; तो क्या मानते हो महाराज ! क्या उन नाना काष्ठोंसे बनाई आगों का, लौसे लौका, रंगसे रंगका, आभासे आभाका कोई भेद होगा ?" "नहीं, भन्ते !"

"ऐसेही महाराज ! जिस तेज (=मुक्ति) को वीर्य (=उद्योग) तैयार करता है। उसमें, इस विमुक्तिसे दूसरी विमुक्तिमें कुछभी भेद मैं नहीं कहता।"

'भन्ते ! भगवान्‌ने हेतुरूप (=ठीक) कहा०। क्या भन्ते ! देव (=देवता) हैं ?"

"महाराज ! तू क्या ऐसा कह रहा है—'भन्ते ! क्या देव हैं।"

"कि भन्ते ! क्या देवता मनुष्यलोकमें आनेवाले होते हैं, या मनुष्यलोकमें आनेवाले नहीं होते ?"

"महाराज ! जो वह देवता लोभ-सहित हैं, वह मनुष्यलोक (=इत्थत्त) में आनेवाले होते हैं, जो लोभ-रहित हैं, वह० नहीं आनेवाले होते हैं।"

ऐसा कहनेपर विडूडभ सेनापतिने भगवान्‌को कहा—

"भन्ते ! जो वह देवता लोभ-रहित मनुष्य-लोकमें न आनेवाले हैं, क्या वह देवता अपने स्थानसे च्युत होंगे=प्रव्रजित होंगे ?"

तब आयुष्मान् आनन्दको यह हुआ—"यह विडूडभ सेनापति राजा प्रसेनजित् कोसलका पुत्र है, मैं भगवान्‌का पुत्र हूँ; यह समय है, जब पुत्र पुत्रको निमंत्रित करे।" और आयुष्मान् आनन्दने विडूडभ सेनापतिको आमंत्रित किया—

"तो सेनापति ! तुम्हें ही पूछता हूँ, जैसा तुम्हें ठीक जँचे वैसा कहो। तो सेनापति ! जितना राजा प्रसेनजित् कोसलका राज्य (विजित) है, जहाँपर कि राजा प्रसेनजित्० ऐश्वर्य =आधिपत्य करता है; राजा प्रसेनजित्० श्रमण या ब्राह्मणको, पुण्य-वान् या अपुण्यवान्‌को, ब्रह्मचर्यवान् या अब्रह्मचर्यवान्‌को, क्या उस स्थानसे हटा या निकाल सकता है ?" "

"०सकता है।"

"तो क्या मानते हो सेनापति ! जितना राजा प्रसेनजित्० का अ-विजित (=राज्यसे बाहर) है, जहाँ० आधिपत्य नहीं करता है, ०क्या उस स्थानसे हटा या निकाल सकता है ?"

"०नहीं सकता।"

"तो क्या मानते हो सेनापति ! क्या तुमने त्रयस्त्रिंश देवोंको सुना है ?"

'हाँ, भो ! मैंने त्रयस्त्रिंश देव सुने हैं, आप राजा-प्रसेनजित् कोसलने भी त्रयस्त्रिंश देव सुने हैं।"

"तो क्या मानते हो सेनापति ! क्या राजा-प्रसेनजित् कोसल त्रयस्त्रिंश देवोंको उनके स्थानसे हटा सके ?"

"ऐसे ही सेनापति ! जो देवता लोभ सहित हैं, वह मनुष्य-लोकमें आते हैं, जो लोभ-रहित हैं, वह० नहीं आते। वह देखनेको भी नहीं पाये जा सकते, कहाँसे उस स्थानसे हटाये या निकाले जायेंगे ?"

तब राजा प्रसेनजित् कोसलने भगवान्को कहा—

"भन्ते ! यह कौन नामवाला भिक्षु है ?"

"आनन्द नामक महाराज !"

"अहो ! आनन्द हैं !! अहो ! आनन्द-रूप हैं !! भन्ते ! आयुष्मान् आनन्द ठीक कहते हैं। भन्ते ! क्या ब्रह्मा है ?"

"तू क्या महाराज ! ऐसे कहता है—भन्ते ! क्या ब्रह्मा है ?"

"भन्ते ! क्या वह ब्रह्मा मनुष्यलोकमें आता है, या मनुष्य-लोकमें नहीं आता ?"

"महाराज ! जो ब्रह्मा लोभ-सहित है० आता है, लोभ रहित० नहीं आता।"

तब एक पुरुषने राजा प्रसेनजित्०को कहा—

"महाराज ! आकाश-गोत्र संजय ब्राह्मण आ गया।"

तब राजा प्रसेनजित्०ने०संजय ब्राह्मणको कहा—

"ब्राह्मण ! किसने इस बात (= कथा-वस्तु) को राजान्तःपुरमें कहा था ?"

"महाराज ! विडूडभ सेनापतिने।"

"विडूडभ सेनापतिने कहा—"महाराज ! आकास-गोत्त संजय ब्राह्मणने।"

तब एक पुरुषने राजा प्रसेनजित्को कहा—

"जानेका समय है, महाराज !"

तब राजा प्रसेनजित्० भगवान्को यह बोला—

"हमने भन्ते ! भगवान्को सर्वज्ञता पूछी, भगवान्ने सर्वज्ञता बतलाई, वह हमको रुचती है, पसन्द है, उससे हम सन्तुष्ट हैं। चारों वर्णोंकी शुद्धि (= चातुर्वर्णी शुद्धि)० पूछी०। देवोंके विषयमें० पूछा०। ब्रह्माके विषयमें० पूछा०। जो जो ही भन्ते ! हमने भगवान्को पूछा, वही वही भगवान्ने बतलाया; और वह हमको रुचता है, पसन्द है, उससे हम सन्तुष्ट हैं। अच्छा तो भन्ते ! अब हम जायेंगे, हम बहु-कृत्य हैं, बहु-करणीय हैं।"

"जिसका महाराज ! तू (इस समय) काल समझे !"

तब राजा प्रसेनजित्० भगवान्के भाषणको अभिनन्दित कर अनुमोदित कर आसनसे उठ भगवान्को अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर चला गया।

× × ×

संघभेदक-खंधक।

वहाँ भगवान् कौशाम्बीमें घोषितारामसें विहार करते थे[2]। उस समय देवदत्तको एकान्तमें बैठे विचारमें बैठे, चित्तमें ऐसा विचार उत्पन्न हुआ—'किसको मैं प्रसादित करूँ,

१. कण्णकत्थल-सुत्त (ई. पू. ४८९) भगवान्ने अपनी [illegible] किया।
२. चुल्लवग्ग (संघभेदक खंधक) ७।

जिसके प्रसन्न होनेपर मुझे बड़ा लाभ, सत्कार, पैदा हो' । तब देवदत्तको हुआ—यह अजात-शत्रु कुमार तरुण है, और भविष्यमें बड़ा (=भद्र) होगा; क्यों न मैं अजात-शत्रु कुमारको प्रसादित करूँ, उसके प्रसन्न होनेपर मुझे बड़ा लाभ, सत्कार पैदा होगा ।' तब देवदत्त शयनासन संभालकर पात्र-चीवर ले जिधर राजगृह था, उधर चला । क्रमशः जहाँ राजगृह था वहाँ पहुँचा । तब देवदत्त अपने रूप (=वर्ण)को अन्तर्धान कर कुमार, (=बालक) का रूप बना, सांकली मेखला (=तगाड़ी) पहिन, अजात-शत्रु कुमारकी गोदमें प्रादुर्भूत हुआ । अजातशत्रु कुमार भीत = उद्विग्न, उत्शंकित=उत्-त्रस्त हो गया । तब देवदत्तने अजातशत्रु कुमारको कहा—

"कुमार ! तू मुझसे भय खाता है ?"

"हाँ, भय खाता हूँ; तुम कौन हो ?"

"मैं देवदत्त हूँ ।"

"भन्ते ! यदि तुम आर्य देवदत्त हो, तो अपने रूप (=वर्ण)से प्रकट होओ ।"

तब देवदत्त कुमारका रूप छोड़, संघाटी, पात्र-चीवर धारण किये अजातशत्रु कुमारके सामने खड़ा हुआ । तब अजातशत्रु कुमार, देवदत्तके इस दिव्य-चमत्कार (= ऋद्धि-प्रातिहार्य)से प्रसन्न हो पाँचसौ रथोंके साथ सायं प्रातः उसके उपस्थान (=हाजिरी)को जाने लगा । पाँच सौ स्थालीपाक भोजनके लिये भेजने लगा ।

[1]तब भगवान् कौशाम्बीमें इच्छानुसार विहार कर···चारिका करते जहाँ राजगृह है वहाँ पहुँचे । वहाँ भगवान् राजगृहमें कलन्दकनिवापके वेणुवनमें विहार करते थे ।

(देवदत्त)-सुत्त

[2]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् राजगृहमें कलन्दकनिवापके वेणुवनमें विहार करते थे ।

उस समय अजातशत्रु कुमार सायं-प्रातः पाँचसौ रथोंके साथ देवदत्तके उप-स्थानको जाता था । पाँचसौ स्थालीपाक भोजनके लिये ले जाये जाते थे । तब बहुतसे भिक्षु जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठे । एक ओर बैठे उन भिक्षुओंने भगवान्को कहा—

"भन्ते ! अजातशत्रु कुमार सायंप्रातः पाँच सौ रथोंके साथ० ।"

"भिक्षुओ ! देवदत्तके लाभ, सत्कार, श्लोक (= तारीफ) की मत स्पृहा करो । जब तक भिक्षुओ ! अजातशत्रु कुमार सायं प्रातः० उपस्थानको जायेगा ; पाँचसौ स्थाली-पाक भोजनके लिये जायेंगे, देवदत्तकी (उससे) कुशल-धर्मों (=धर्मों) में हानि ही समझनी चाहिये, वृद्धि नहीं । भिक्षुओ ! जैसे चंड कुक्कुरके नाकपर पित्त घरे,···इस प्रकार वह कुक्कुर और भी पागल हो, अधिक चंड हो ।"

तब लाभ, सत्कार, श्लोकसे अभिभूत=आदत्त-चित्त देवदत्तको इस प्रकारकी इच्छा उत्पन्न हुई—मैं भिक्षु-संघकी (महन्ताई) ग्रहण करूं । यह (विचार) चित्तमें आते ही देवदत्तका (वह) योग-बल (=ऋद्धि) नष्ट हो गया ।

\+ \+ \+

1. चुल्लवग्ग (संघ-भेदक-खंधक) ७ । २. स. नि. १६:४:६ ।

उस समय राजासहित बड़ी परिषद्‌से घिरे भगवान् धर्म-उपदेश कर रहे थे। तब देवदत्त आसनसे उठ एक कंधेपर उत्तरासंग करके, जिधर भगवान् थे, उधर अंजलि जोड़ भगवान्‌से यह बोला—

"भन्ते! भगवान् अब जीर्ण=वृद्ध=महल्लक अध्वगत=वयःअनुप्राप्त हैं। भन्ते! अब भगवान् निश्चिन्त हो इस जन्मके सुख-विहारके साथ विहरें। भिक्षु-संघको मुझे दें, मैं भिक्षु-संघको ग्रहण करूंगा।"

"अलम् (=बस, ठीक नहीं) देवदत्त! मत तुझे भिक्षुसंघका ग्रहण रुचे।"

दूसरी बार भी देवदत्तने०। ०। तीसरी बार भी देवदत्तने०। ०

"देवदत्त! सारिपुत्र मौद्गल्यायनको भी मैं भिक्षु-संघको नहीं देता, तुझ मुर्दे, थूकको तो क्या दूँगा!"

तब देवदत्तने—'राजासहित परिषद्‌में मुझे भगवान्‌ने फेंका थूक कहकर अपमानित किया और सारिपुत्र, मौद्गल्यायनको बढ़ाया' (सोच) कुपित, असंतुष्ट हो भगवान्‌को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर चला गया।⋯तब भगवान्‌ने भिक्षुसंघको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ! संघ राजगृहमें देवदत्तका प्रकाशनीय-कर्म करे—'पूर्वमें देवदत्त अन्य प्रकृतिका था, अब अन्य प्रकृतिका, अब देवदत्त जो (कुछ) काय, वचनसे करेगा उसका बुद्ध, धर्म, संघ जिम्मेदार नहीं।'

तब देवदत्त जहाँ अजात-शत्रु कुमार था, वहाँ गया। जाकर अजातशत्रु कुमारको बोला—

"कुमार! पहिलेके मनुष्य दीर्घायु (होते थे), अब अल्पायु। हो सकता है, कि तुम कुमार रहते ही मर जाओ। इसलिये कुमार! तुम पिताको मारकर राजा हो जाओ; मैं भगवान्‌को मारकर बुद्ध होऊँगा।"

⋯तब अजातशत्रु कुमार जाँघमें छुरा बाँधकर भीत, उद्विग्न, शंकित, त्रस्त (की तरह) मध्याह्नमें सहसा अन्तःपुरमें प्रविष्ट हुआ। अन्त:पुरके उपचारक (=रक्षक) महामात्योंने ०अजातशत्रु कुमारको० अन्तःपुरमें प्रविष्ट होते देख लिया। देखकर पकड़ लिया और कुमारसे कहा—

"कुमार! तुम क्या करना चाहते थे?"

"पिताको मारना चाहता था।"

"किसने उत्साहित किया?"

"आर्य देवदत्तने।"

तब वह महामात्य अजातशत्रुको ले जहाँ राजा मागध श्रेणिक बिंबिसार था, वहाँ गये। जाकर राजा०को यह बात कह सुनाई।⋯ ? तब राजा०ने अजातशत्रु कुमारको कहा—

"कुमार! किसलिये तू मुझे मारना चाहता था?"

"देव! राज्य चाहता हूँ।"

"कुमार! यदि राज्य चाहता है, तो ले, यह तेरा राज्य है।"—कह अजातशत्रु कुमारको राज्य दे दिया।

तब देवदत्त जहाँ अजात-शत्रु कुमार था, वहाँ गया। जाकर'''बोला—

"महाराज! आदमियोंको हुकुम दो, कि श्रमण गौतमको जानसे मार दें।"

तब अजातशत्रु कुमारने मनुष्योंको कहा—

"भणे! जैसा आर्य देवदत्त कहें, वैसा करो।"

तब देवदत्तने एक पुरुषको हुकुम दिया—

"जाओ आवुसे! श्रमण गौतम अमुक स्थानपर विहार करता है। उसको जानसे मारकर, इस रास्तेसे आओ।"

उस रास्तेमें दो आदमियोंको बैठाया—'जो दो पुरुष इस रास्तेसे आवें, उन्हें जानसे मारकर, इस मार्गसे आओ।"

उस रास्तेमें चार आदमियोंको बैठाया—"जो दो पुरुष इस रास्तेसे आयें, उन्हें जानसे मारकर, इस मार्णसे आओ।"

उस मार्गमें आठ आदमी बैठाये—"जो चार पुरुष०।"

उस मार्गमें सोलह आदमी बैठाये—०।

तब वह अकेला पुरुष ढाल तलवार ले तीर कमान चढ़ा, जहां भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌के अविदूरमें भीत, उद्विग्न० शून्य-शरीर खड़ा हुआ। भगवान्‌ने उस पुरुषको भीत० शून्य-शरीर खड़े हुये देखा। देखकर उस पुरुषको कहा—

"आओ, आवुस! मत डरो।"

तब वह पुरुष ढाल-तलवार एक ओर (रख) तीर-कमान छोड़कर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्‌के चरणोंमें शिरसे पड़कर भगवान्‌को बोला—

"भन्ते! बाल (=मूर्ख) सा मूढ़सा, अकुशल (=अ-चतुर) सा मैंने जो अपराध किया है, जो कि मैं दुष्टचित्त हो वधचित्त हो यहाँ आया, उसे क्षमा करें। भन्ते भगवान्! भविष्यमें संवर (=संयम) के लिये, मेरे उस अपराध (=अत्यय) को अत्यय (=बीते) के तौरपर स्वीकार करें।"

"आवुस! जो तूने अपराध किया,० वध-चित्त हो यहां आया। चूँकि आवुस! अत्यय (=अपराध) को अत्ययके तौरपर देखकर धर्मानुसार प्रतीकार करता है; (इसलिये) उसे हम स्वीकार करते हैं।'''।"

तब भगवान्‌ने उस पुरुषको आनुपूर्वी-कथा कही०[1]। (और) उस पुरुषको उसी आसनपर० धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ।०।

तब वह पुरुष...भगवान्‌को बोला—

"आश्चर्य! भन्ते!! ० भन्ते! आजसे भगवान् मुझे अन्जलिबद्ध शरणागत उपासक धारण करें।"

तब भगवान्‌ने उस पुरुषको—

"आवुस! तुम इस मार्गसे मत जाओ; इस मार्गसे जाओ" (कह) दूसरे मार्गसे भेज दिया।

---

1. पृष्ठ २५।

तब उन दो पुरुषों ने—'क्यों वह पुरुष देर कर रहा है' (सोच) ऊपरकी ओर जाते, भगवान्‌को एक वृक्षके नीचे बैठे देखा। देखकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ······जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर, एक ओर बैठ गये। उन्हें भगवान्‌ने आनुपूर्वी-कथा कही०।०। "आवुसो! मत तुम लोग इस मार्गसे जाओ; इस मार्गसे जाओ" ।०।

तब उन चार पुरुषोंने ०।०। तब उन आठ पुरुषोंने ०।०। तब उन सोलह पुरुषोंने ०।१

"आजसे भन्ते! भगवान् हमें अञ्जलि-बद्ध शरणागत उपासक धारण करें।"

तब वह अकेला पुरुष जहाँ देवदत्त था, वहाँ गया। जाकर देवदत्तको कहा—

"भन्ते! मैं उन भगवान्‌को जानसे नहीं मार सकता। वह भगवान् महा-ऋद्धिक = महानुभाव हैं।"

"जाने दे आवुस! तू श्रमण गौतमको जानसे मत मार, मैं ही···जान से मारूँगा।"

उस समय भगवान् गृध्रकूट पर्वतकी छायामें टहलते थे। तब देवदत्तने गृध्रकूट पर्वतपर चढ़कर—'इससे श्रमण गौतमको जानसे मारूँ'—(सोच) एक बड़ी शिला फेंकी। दो पर्वत कूटोंने आकर उस शिलाको रोक दिया। उससे (निकली) पपड़ीके उछलकर (लगनेसे) भगवान्‌के पैरसे रुधिर बह निकला।···

\+ + + +

सकलिक-सुत्त।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् राजगृहमें मद्दकुच्छि (= मद्रकुक्षि) मृगदावमें विहार करते थे।

उस समय भगवान्‌का पैर पत्थर (=[2]सक्खलिका=शर्करिका) से क्षत हो गया था। भगवान्‌को बहुत तीव्र, दुःखद, खर=कटुक=अ-मात=अ-मनाप शारीरिक वेदना होती थी। उनको भगवान् बिना शोक करते, स्मृति-संप्रजन्यसे सहन करते थे। तब भगवान्‌ने चौपेती संघाटीको बिछवा, दाहिनी बगलसे लेटकर पैरके ऊपर पैर रख, स्मृति-संप्रजन्यके साथ सिंह-शय्या की।···

देवदत्त-विद्रोह।

[3]उस समय राजगृहमें नालागिरि नामक मनुष्य-घातक, चंड हाथी था। देवदत्तने राजगृहमें प्रवेश कर हथसारमें जा फीलवानोंको कहा—

---

१. सं. नि. १:४:८।

२. अ. क.—"देवदत्त···बड़ी···शिला फेंकी।···दो शिलाओंके टकरानेसे पाषाण-शकलिका (=पत्थरके टुकड़े) ने उड़कर भगवान्‌के पैरकी पीठकी आघात कर दिया। पैर बड़े कष्टसे आहतकी भाँति लोहू बहाता, लाक्षा-रससे रंजितसा हो गया।······ भगवान्‌को पीड़ा उत्पन्न हुई। भिक्षुओंने सोचा—'यह विहार अंतर (उजाड़), विषम, बहुतसे क्षत्रिय आदि-और प्रव्रजितोंके पहुँचने लायक नहीं है। (और वह) तथागतको मंच-शिविका (=डोली) में रख, मद्दकुच्छि ले गये।

३. चुल्लवग्ग (संघभेदक खंध) ७।

"...जब श्रमण गौतम इस सड़कपर आये, तब तुम नाला-गिरि हाथीको खोलकर, इस सड़कपर कर देना।"

"अच्छा भन्ते!"...

भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्रचीवर ले, बहुतसे भिक्षुओंके साथ राजगृहमें पिंडचारके लिये प्रविष्ट हुये। तब भगवान् उसी सड़कपर आये। फीलवानोंने भगवान्को उस सड़कपर आते देखा। देखकर नालागिरि हाथीको छोड़कर, सड़कपर कर दिया। नालागिरि हाथीने दूरसे भगवान्को आते देखा। देखकर सूँडको खड़ाकर, प्रहृष्ट हो, कान चलाते जहाँ भगवान् थे, उधर दौड़ा। उन भिक्षुओंने दूरसे नालागिरि हाथीको आते देखा। देखकर भगवान्को कहा—

"भन्ते! यह चंड, मनुष्य-घातक नालागिरि हाथी इस सड़कपर आ रहा है, हट जायें भन्ते भगवान्! हट जायें सुगत!"

दूसरी बार भी०। तीसरी बार भी०।

उस समय मनुष्य प्रासादोंपर, हर्म्योंपर, छतोंपर, चढ़ गये थे। उनमें जो अश्रद्धालु=अप्रसन्न, दुर्बुद्धि (=मूर्ख) मनुष्य थे, वह ऐसा कहते थे—"अहो! महाश्रमण अभिरूप (था, सो) नागसे मारा जायेगा।" और जो मनुष्य श्रद्धालु=प्रसन्न, पंडित थे, उन्होंने ऐसा कहा—"देर तक जी! नाग नाग (=बुद्ध) से, संग्राम करेगा!"

तब भगवान्ने नालागिरि हाथीको मैत्री (भावना) युक्त चित्तसे आप्लावित किया। तब नालागिरि हाथी भगवान्के मैत्री (पूर्ण) चित्तसे स्पृष्ट हो, सूँडको नीचे करके, जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर खड़ा हुआ। तब भगवान्ने दाहिने हाथसे नालागिरीके कुम्भको स्पर्श (किया)...। तब नालागिरि हाथीने सूँडसे भगवान्की चरण-धूलिको ले, सिरपर डाला।...। नालागिरि हाथी हथसारमें जाकर अपने थानपर खड़ा हुआ।......

तब देवदत्त जहाँ कोकालिक कटमोर-तिस्सक- और खंडदेवी-पुत्र समुद्रदत्त थे, वहाँ गया। जाकर...बोला—

"आओ आवुसो! हम श्रमण गौतमका संघ-भेद (=फूट)=चक्रभेद करें। आओ ...हम श्रमण गौतमके पास चलकर पाँच वस्तुयें माँगे।...—'अच्छा हो भन्ते! भिक्षु (१) जिन्दगी भर आरण्यक रहें, जो गाँवमें बसे, उसे दोष हो। (२) जिन्दगी भर पिंडपातिक (=भिक्षा मांगकर खानेवाले) रहें, जो निमन्त्रण खाये, उसे दोष हो। (३) जिन्दगी भर पांसुकूलिक (= फेंके चीथड़े सीकर पहननेवाले) रहें, जो गृहस्थके (दिये) चीवरको उपभोग करे, उसे दोष हो, (४) जिन्दगी भर वृक्ष-मूलिक (= वृक्षके नीचे रहनेवाले) रहें, जो छायाके नीचे जाये, वह दोषी हो (५) जिन्दगी भर मछली-मांस न खायें, जो मछली-मांस खाये, उसे दोष हो।, श्रमण गौतम इसे नहीं स्वीकार करेगा। तब हम इन पांच बातोंसे लोगोंको समझायेंगे।..."

तब देवदत्त परिषद्-सहित जहां भगवान् थे, वहां गया। जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे देवदत्तने भगवान्को कहा—

"...अच्छा हो भन्ते! भिक्षु (१) जिन्दगीभर आरण्यक हों।......"

"अच्छा (बस) देवदत्त ! जो चाहे पांसुकूलिक हो, जो चाहे 'ग्राममें रहे। जो चाहे पिंडपातिक हो, जो चाहे निमंत्रण खाये। जो चाहे पांसुकूलिक हो, जो चाहे गृहस्थके (दिये) चीवरको पहिने। देवदत्त ! आठ मास मैंने वृक्षके नीचे वास (= वृक्ष = शयनासन) की अनुज्ञा दी है। [1]अदृष्ट, [2]अ-श्रुत, [3]अ-परिशंकित, इन तीन कोटिसे परिशुद्ध मांसकी भी मैंने अनुज्ञा दी है।..."

तब देवदत्तने उस दिन [4]उपोसथको आसनसे उठकर [5]शलाका (= वोटकी लकड़ी) पकड़वाई—"हमने आवुसो ! श्रमण-गौतमको जाकर पांच वस्तुयें मांगीं—०। उन्हें श्रमण गौतमने नहीं स्वीकार किया। सो हम (इन) पांच वस्तुओंको लेकर वर्तेंगे। जिस आयुष्मान् को यह पांच बातें पसन्द हों, वह शलाका ग्रहण करें।"

उस समय वैशालीके पांच सौ वज्जिपुत्तक नये भिक्षु असली बातको न समझने वाले थे। उन्होंने—'यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ताका शासन (=गुरु उपदेश) है'—(सोच) शलाका ले ली। तब देवदत्तने संघको फोड़ (= भेद) कर, पांच सौ भिक्षुओंको ले, जहां [6]गयासीस था, वहांको चल दिया।

आयुष्मान् सारिपुत्र और मौद्गल्यायन जहां भगवान् थे, वहां गये।...। आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्को कहा—

"भन्ते ! देवदत्त संघको फोड़कर, पांच सौ भिक्षुओंको लेकर जहां गयासीस है, वहां चला गया।"

"सारिपुत्र ! तुम लोगोंको उन नये भिक्षुओंपर दया भी नहीं आई ? सारिपुत्र ! तुम लोग उन भिक्षुओंके आपद्में पड़नेसे पूर्वही जाओ।"

"अच्छा भन्ते !"

उस समय बड़ी परिषद्के बीच बैठा देवदत्त धर्म-उपदेश कर रहा था। देवदत्तने दूरसे सारिपुत्र मौद्गल्यायनको आते देखा। देखकर भिक्षुओंको आमंत्रित किया।—

"देखो भिक्षुओ ! कितना सु-आख्यात (= सु-उपदिष्ट) मेरा धर्म है। जो श्रमण गौतमके अग्रश्रावक सारिपुत्र मौद्गल्यायन हैं, वह भी मेरे पास आ रहे हैं, मेरे धर्मको मानते हैं।"

ऐसा कहनेपर कोकालिकने देवदत्तको कहा—

"आवुस देवदत्त ! सारिपुत्र मौद्गल्यायनका विश्वास मत करो। सारिपुत्र मौद्गल्यायन बदनीयत (= पापेच्छ) हैं, पापक (= बुरी) इच्छाओंके वश में हैं।"

"आवुस ! नहीं, उनका स्वागत है, क्योंकि वह मेरे धर्म को पसन्द करते हैं।"

तब देवदत्तने आयुष्मान् सारिपुत्रको आधा आसन (देनेको) निमंत्रित किया—

"आओ आवुस ! सारिपुत्र ! यहाँ बैठो।"

---

१. 'मेरे लिये मारा गया'—यह देखा न हो। २. 'मेरे लिये मारा गया'—यह सुना न हो। ३. 'मेरे लिये मारा गया'—यह सन्देह न हो। ४. (पुन्ना चतुर्दशी या पूर्णिमा)। ५. पोर (= बांस, काठ, ताड़) लेखेकी आदमियोंके लिये जैसा आजकल पर्ची (वोट) चलती, वैसेही पूर्वकालमें छन्द-शलाका चलती थी। ६. ब्रह्मयोनि-पर्वत (गया)।

"आवुस ! नहीं" (कह) आयुष्मान् सारिपुत्र दूसरा आसन लेकर एक ओर बैठ गये। आयुष्मान् महामौद्गल्यायन भी एक आसन लेकर० बैठ गये। तब देवदत्त बहुत रात तक भिक्षुओंको धार्मिक कथा···(कहता) आयुष्मान् सारिपुत्रको बोला—

"आवुस सारिपुत्र ! (इस समय) भिक्षु आलस-प्रमाद-रहित हैं, तुम आवुस सारिपुत्र ! भिक्षुओंको धर्म-देशना करो, मेरी पीठ अगिया रही है, सो मैं लम्बा पड़ूँगा।"

"अच्छा आवुस !"

तब देवदत्त चौपेती संघाटीको बिछवाकर दाहिनी बगलसे लेट गया। स्मृति-रहित संप्रजन्य-रहित उसे मुहूर्तभरमें ही निद्रा आगई। तब आयुष्मान् सारिपुत्रने आदेशना-प्रातिहार्य (=व्याख्यानके चमत्कार) और अनुशासनीय-प्रातिहार्यके साथ, तथा आयुष्मान् महामौद्गल्यायनने ऋद्धि-प्रातिहार्य (=योग-बलके चमत्कार) के साथ भिक्षुओंको धर्म-उपदेश किया, अनुशासन किया। तब उन भिक्षुओंको···विरज = विमल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ—जो कुछ समुदय-धर्म (= उत्पन्न होनेवाला) है, वह निरोध-धर्म (= विनाश होनेवाला) है०।

आयुष्मान् सारिपुत्रने भिक्षुओंको निमंत्रित किया—

"आवुसो ! चलो भगवान्‌के पास चलें, जो उस भगवान्‌के धर्मको पसन्द करता है, वह आवे।"

तब सारिपुत्र मौद्गल्यायन उन पांच सौ भिक्षुओंको लेकर जहां वेणुवन था, वहां चले गये। तब कोकालिकने देवदत्तको उठाया—

"आवुस देवदत्त ! उठो मैंने कहा न—आवुस देवदत्त ! सारिपुत्र मौद्गल्यायनका विश्वास मत करो। ०।"

तब देवदत्तको वहीं मुखसे गर्म खून निकल पड़ा।······

विसाखा-सुत्त।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें मृगारमाताके प्रासाद पूर्वाराममें विहार करते थे।

उस समय विशाखा ० का [2]कोई काम राजा प्रसेनजित् ०के साथ फँसा हुआ था। उसे राजा प्रसेनजित् ० इच्छानुसार निर्णय नहीं करता था। तब विशाखा मृगारमाता मध्याह्न में जहां भगवान् थे, वहां गई।······एक ओर बैठी विशाखा ० को भगवान्‌ने यह कहा—

"हैं ! विशाखे ! तू मध्याह्नमें कहाँसे आ रही है ?"

"भन्ते ! मेरा कोई काम राजा प्रसेनजित् ०।"

तब भगवान्‌ने इस अर्थको जानकर उसी वेलामें यह उदान कहा—

"(जो कुछ) पर-वश है, (वह) सब दुःख है, ऐश्वर्य्य (= प्रभुता, स्ववश) सुख

---

१. चालिसवां (४८८ ई. पू.) वर्षावास भगवान्‌ने श्रावस्ती (पूर्वाराम) में किया—
२. उदान २:९।

३. अ. क. "विशाखाके पीहरसे मणिमुक्तादि रचित···वस्तु उसकी भेंटके लिये आई थी। उसके नगर द्वारपर पहुँचनेपर, चुङ्गीवालोंने अधिक महसूल ले लिया।······।

है। साधारण (बात)में भी (प्राणी) पीड़ित होते हैं; क्योंकि काम-भोग आदिके दोषोंका अतिक्रमण करना मुश्किल है।"

जटिल-सुत्त

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् गयामें गयासीस पर विहार करते थे।

उस समय बहुतसे जटिल, [2]अन्तराष्टक हिम-पात समयवाली हेमन्तकी ठंडी रातोंमें गयामें डूबते उतराते थे, ···पानीमें भीगते थे, अग्निमें हवन भी करते थे—'इस प्रकार (पाप) शुद्धि होगी'। भगवान्ने उन बहुतसे जटिलोंको ० देखा। तब भगवान्ने इस अर्थको जानकर उसी समय यह उदान कहा—

"बहुतसे जन यहाँ नहा रहे हैं, (किन्तु) पानीमें शुद्धि नहीं होती।
जिसमें सत्य और धर्म है, वही शुचि है, वही ब्राह्मण है।"

× × × ×

---

१. उदान १ : ९।
२. माघमासके अंतिम चार दिन, और फागुनके आदिम चार दिन।

पञ्चम-खण्ड

आयु-वर्ष ७५-८०

(ई. पू. ४८८-८३)

लिया। तब राजा प्रसेनजित् कोसलको ऐसा हुआ—'यद्यपि यह राजा ०अजातशत्रु० द्रोह न करनेवाले मुझसे द्रोह करता है, तब भी तो यह मेरा भान्जा है। क्यों न मैं राजा ०अजातशत्रु०के सब हस्तिकाय (=हाथी झुण्ड)को लेकर, सब अश्व०, ०सब रथ०, ०पदाति (=पैदल सैनिक) कायको लेकर जीताही छोड़ दूँ। तब राजा प्रसेनजित्ने० लेकर उसे जीताही छोड़ दिया।

तब बहुतसे भिक्षु० भगवान्को बोले—०।

भगवान्ने इस बातको जानकर, उसी समय इन गाथाओंको कहा—'

"जो उसकी बुराई करता है, (जो पुरुष) उसे विलुप्त करता है,
जब दूसरे विलुप्त करते हैं, तो वह विलुप्त हो विलोप (को प्राप्त) होता है ॥२॥
बाल (=मूर्ख जन) तब तक नहीं समझता, जबतक पापमें नहीं पचता,
जब पापमें पचने लगता है, तब बाल (मनुष्य) समझता है ॥३॥
हत्यारा हत्या पाता है, जेता जय पाता है, निन्दक निन्दा पाता है,
और रोष करनेवाला रोष।
तब कर्मके फेर (=विवर्त) से वह विलुप्त हुआ विलोप हो जाता है ॥४॥

× × × ×

कोसल-सुत्त।

'ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्ती० जेतवनमें विहार करते थे।

उस समय राजा प्रसेनजित्० संग्राम जीत कर, मनोरथ-प्राप्त कर वहाँसे लौटा था। तब राजा प्रसेनजित्० जहाँ आराम था, वहाँ गया। जितना यानका रास्ता था, उतना यानसे जाकर, यानसे उतर पैदलही आराममें प्रविष्ट हुआ। उस समय बहुतसे भिक्षु खुली जगहमें टहल रहे थे। तब राजा०ने ···उन भिक्षुओंसे यह पूछा—

"भन्ते! इस समय वह भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध कहाँ विहार करते हैं? भन्ते! हम उन भगवान्०का दर्शन करना चाहते हैं।"

"महाराज! यह द्वार-बन्द विहार (=कोठरी) है, चुपकेसे धीरे-धीरे वहाँ जाकर बरांडे (=आलिंद)में प्रवेशकर, खाँसकर जंजीर (=अर्गल) खट-खटाओ। भगवान् तुम्हारे लिये द्वार खोलेंगे।"

······भगवान्ने द्वार खोल दिया। तब राजा प्रसेनजित्० विहारमें प्रविष्ट हो, सिरसे भगवान्के पैरोंमें गिरकर, भगवान्के पैरोंको मुखसे चूमता था, हाथसे (पैरोंको) संवाहन (=दबाना) करता था, और नाम सुनाता था—'भन्ते! मैं राजा प्रसेनजित् कोसल हूँ २।"

"महाराज! तुम किस बातको देखते इस शरीरमें इतनी परम शुश्रूषा करते हो, मैत्रीका उपहार दिखाते हो?"

"भन्ते! कृतज्ञता, कृत-वेदिताको देखते हुए मैं भगवान्की इस प्रकारकी परम शुश्रूषा करता हूँ, मैत्री-उपहार दिखाता हूँ। भन्ते! भगवान् बहुजनोंके हित, बहु जनोंके

१, अ. नि. १०।३।१०।

सुखके लिये हैं। भगवान्‌ने बहुत जनोंको आर्य-न्याय--जो कि यह कल्याण-धर्मता कुशल धर्मता है—(उसमें) प्रतिष्ठित किया।

× × × ×

बाहीतिक-सुत्त।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्ती०जेतवनमें विहार करते थे।

तब आयुष्मान् आनन्द पूर्वाह्ण समय (चीवर) पहिनकर पात्रचीवर ले, श्रावस्तीमें··· पिंडचार करके · दिनके विहारके लिये जहाँ मृगार-माताका प्रासाद पूर्वाराम था, वहाँ चले। उस समय राजा प्रसेनजित्० एकपुंडरीक नाग (= हाथी)पर चढ़कर, मध्याह्नमें श्रावस्तीसे बाहर जा रहा था। राजा प्रसेनजित्‌ने दूरसे आयुष्मान् आनन्दको आते देखा। देखकर सिरिवड्ढ (श्रीवर्द्ध) महामात्यको आमंत्रित किया—

"सौम्य सिरिवड्ढ ! यह आयुष्मान् आनन्द हैं न ?"

"हाँ महाराज ! ···।"···

तब राजा०ने एक आदमीको आमंत्रित किया—

"आओ, हे पुरुष ! जहाँ आयुष्मान् आनन्द हैं, वहाँ जाओ, जाकर मेरे वचनसे आयुष्मान् आनन्दके पैरोंमें वंदना करना···, और यह भी कहना—'भन्ते ! यदि आयुष्मान् आनन्दको कोई बहुत जरूरी काम न हो, तो भन्ते ! आयुष्मान् आनन्द कृपाकर एक मिनट (=मुहूर्त) ठहर जायें।"

"अच्छा देव !"

आयुष्मान् आनन्दने मौनसे स्वीकार किया।

तब राजा प्रसेनजित् जितना नागका रास्ता था, उतना नागसे जाकर, नागसे उतर पैदल ही···जाकर···अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो, आयुष्मान् आनन्दको बोला—

"भन्ते ! यदि आयुष्मान् आनन्दको कोई अत्यावश्यक काम न हो, तो अच्छा हो भन्ते ! आयुष्मान् आनन्द जहाँ अचिरवती नदीका तीर है, कृपा कर वहाँ चलें।"

आयुष्मान् आनन्दने मौनसे स्वीकार किया।

तब आयुष्मान् आनन्द, जहाँ अचिरवती नदीका तट था, वहाँ गये। जाकर एक वृक्षके नीचे बिछे आसनपर बैठे। तब राजा प्रसेनजित्० जाकर, नागसे उतर पैदलही··· जा कर···अभिवादन कर एक ओर खड़ा हुआ। एक ओर खड़े हुये राजा०ने···यह कहा—

"भन्ते ! आयुष्मान् आनन्द यहाँ कालीनपर बैठें।"

"नहीं महाराज ! तुम बैठो, मैं अपने आसनपर बैठा हूँ।"

राजा प्रसेनजित्० बिछे आसनपर बैठा। बैठकर···बोला—

"भन्ते ! क्या वह भगवान् ऐसा कायिक आचरण कर सकते हैं, जो कायिक आचरण, श्रमणों, ब्राह्मणों और विज्ञोंसे निन्दित (=उपारम्भ) है ?"

"नहीं महाराज ! वह भगवान्० !"

---

1. म. नि. २:४:८

लिया। तब राजा प्रसेनजित् कोसलको ऐसा हुआ—'यद्यपि यह राजा ०अजातशत्रु० द्रोह न करनेवाले मुझसे द्रोह करता है; तब भी तो यह मेरा भान्जा है। क्यों न मैं राजा ०अजातशत्रु०के सब हस्तिकाय (= हाथी झुण्ड)को लेकर, सब अश्व०, ०सब रथ०, ०पदाति (=पैदल सैनिक) कायको लेकर जीताही छोड़ दूँ। तब राजा प्रसेनजित्ने० लेकर उसे जीताही छोड़ दिया।

तब बहुतसे भिक्षु० भगवान्को बोले—०।

भगवान्ने इस बातको जानकर, उसी समय इन गाथाओंको कहा—

"जो उसकी बुराई करता है, (जो पुरुष) उसे विलुप्त करता है;
जब दूसरे विलुप्त करते हैं, तो वह विलुप्त हो विलोप (को प्राप्त) होता है ॥३॥
बाल (= मूर्ख जन) तब तक नहीं समझता, जबतक पापमें नहीं पचता,
जब पापमें पचने लगता है, तब बाल (मनुष्य) समझता है ॥३॥
हत्यारा हत्या पाता है, जेता जय पाता है; निन्दक निन्दा पाता है;
और रोष करनेवाला रोष।
तब कर्मके फेर (= विवर्त) से वह विलुप्त हुआ विलोप हो जाता है ॥४॥

× × × ×

कोसल-सुत्त।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्ती० जेतवनमें विहार करते थे।

उस समय राजा प्रसेनजित्० संग्राम जीत कर, मनोरथ-प्राप्त कर चढ़ाईसे लौटा था। तब राजा प्रसेनजित्० जहाँ आराम था, वहाँ गया। जितना यानका रास्ता था, उतना यानसे जाकर, यानसे उतर पैदलही आराममें प्रविष्ट हुआ। उस समय बहुतसे भिक्षु खुली जगहमें टहलते थे। तब राजा०ने ...उन भिक्षुओंसे यह पूछा—

"भन्ते! इस समय वह भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध कहाँ विहार करते हैं? भन्ते! हम उन भगवान्०का दर्शन करना चाहते हैं।"

"महाराज! यह द्वार-बन्द विहार (= कोठरी) है, चुपकेसे धीरे-धीरे वहाँ जाकर बरांडे (= आलिंद)में प्रवेशकर, खाँसकर जंजीर (= अर्गल) खट-खटाओ। भगवान् तुम्हारे लिये द्वार खोलेंगे।"

......भगवान्ने द्वार खोल दिया। तब राजा प्रसेनजित्० विहारमें प्रविष्ट हो, सिरसे भगवान्के पैरोंमें गिरकर, भगवान्के पैरोंको मुखसे चूमता था, हाथसे (पैरोंको) संवाहन (= दबाना) करता था, और नाम सुनाता था—'भन्ते! मैं राजा प्रसेनजित् कोसल हूँ ३।"

"महाराज! तुम किस बातको देखते इस शरीरमें इतनी परम शुश्रूषा करते हो, मैत्रीका उपहार दिखाते हो?"

"भन्ते! कृतज्ञता, कृत-वेदिताको देखते हुए मैं भगवान्की इस प्रकारकी परम शुश्रूषा करता हूँ, मैत्री-उपहार दिखाता हूँ। भन्ते! भगवान् बहुजनोंके हित, बहु जनोंके

1. अ. नि. १०:१:१० ।

सुखके लिये हैं। भगवान्‌ने बहुत जनोंको आर्य-न्याय—जो कि यह कल्याण-धर्मता कुशल धर्मता है—(उसमें) प्रतिष्ठित किया।

× × × ×

वाहीतिक-सुत्त।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्ती०जेतवनमें विहार करते थे।

तब आयुष्मान् आनन्द पूर्वाह्ण समय (चीवर) पहिनकर पात्रचीवर ले, श्रावस्तीमें··· पिंडचार करके · दिनके विहारके लिये जहाँ मृगार-माताका प्रासाद पूर्वाराम था, वहाँ चले। उस समय राजा प्रसेनजित्० एकपुंडरीक नाग (= हाथी)पर चढ़कर, मध्याह्नमें श्रावस्तीसे बाहर जा रहा था। राजा प्रसेनजित्‌०ने दूरसे आयुष्मान् आनन्दको आते देखा। देखकर सिरिवड्ढ (श्रीवर्द्ध) महामात्यको आमंत्रित किया—

"सौम्य सिरिवड्ढ! यह आयुष्मान् आनन्द हैं न?"

"हाँ महाराज! ···।"···

तब राजा०ने एक आदमीको आमंत्रित किया—

"आओ, हे पुरुष! जहाँ आयुष्मान् आनन्द हैं, वहाँ जाओ, जाकर मेरे वचनसे आयुष्मान् आनन्दके पैरोंमें वंदना करना···, और यह भी कहना—'भन्ते! यदि आयुष्मान् आनन्दको कोई बहुत जरूरी काम न हो, तो भन्ते! आयुष्मान् आनन्द कृपाकर एक मिनट (=मुहूर्त) ठहर जायें।"

"अच्छा देव!"

आयुष्मान् आनन्दने मौनसे स्वीकार किया।

तब राजा प्रसेनजित् जितना नागका रास्ता था, उतना नागसे जाकर, नागसे उतर पैदल ही···जाकर···अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो, आयुष्मान् आनन्दको बोला—

"भन्ते! यदि आयुष्मान् आनन्दको कोई अत्यावश्यक काम न हो, तो अच्छा हो भन्ते! आयुष्मान् आनन्द जहाँ अचिरवती नदीका तीर है, कृपा कर वहाँ चलें।"

आयुष्मान् आनन्दने मौनसे स्वीकार किया।

तब आयुष्मान् आनन्द, जहाँ अचिरवती नदीका तट था, वहाँ गये। जाकर एक वृक्षके नीचे बिछे आसनपर बैठे। तब राजा प्रसेनजित्० जाकर, नागसे उतर पैदलही··· जा कर···अभिवादन कर एक ओर खड़ा हुआ। एक ओर खड़े हुये राजा०ने···यह कहा—

"भन्ते! आयुष्मान् आनन्द यहाँ कालीनपर बैठें।"

"नहीं महाराज! तुम बैठो, मैं अपने आसनपर बैठा हूँ।"

राजा प्रसेनजित्० बिछे आसनपर बैठा। बैठकर···बोला—

'भन्ते! क्या वह भगवान् ऐसा कायिक आचरण कर सकते हैं, जो कायिक आचरण, श्रमणों, ब्राह्मणों और विज्ञोंसे निन्दित (=उपारम्भ) है?"

"नहीं महाराज! वह भगवान्० !"

---

1. म. नि. २:४:८

"०पूर्ण मैत्रायणी-पुत्रको० ?" ०। "०सभी० धर्मकथिक० ।"

"०उपालिको० ?" ०। "०सभी०विनय(= भिक्षुनियम)-धर० ।"

"०आनन्दको० ?" ०। "०सभी० बहुश्रुत० ।

"देख रहे हो तुम भिक्षुओ ! देवदत्तको बहुतसे भिक्षुओंके साथ टहलते ?" "हाँ भन्ते !"

"भिक्षुओ ! यह सभी भिक्षु पापेच्छुक (=बद-नीयत) हैं। भिक्षुओ ! प्राणी, धातु (=चित्त-वृत्ति = प्रकृति) के अनुसार (परस्पर) मेल करते हैं, साथ पकड़ते हैं। हीन-अधिमुक्तिक (= नीच-प्रकृतिवाले) हीनाधिमुक्तिकोंके साथ मेल करते हैं, साथ पकड़ते हैं। कल्याण (= अच्छे, उत्तम)-अधिमुक्तिक कल्याणाधिमुक्तिकोंके साथ० । पूर्वकालमें भी भिक्षुओ ! प्राणी धातुके अनुसार मेल करते थे, साथ पकड़ते थे। हीनाधिमुक्तिक० । कल्याणाधिमुक्तिक० । अनागत (=भविष्य)कालमें भी० । ० । इस समय भी० ।०।"

उपालि-सुत्त (ई. पू. ४८७) ।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् नालन्दामें प्रावारिकके आम्रवनमें विहार करते थे।

उस समय निगंठ नात-पुत्त निगंठों (= जैन-साधुओं) की बड़ी परिषद् (=जमात) के साथ नालन्दामें विहार करते थे। तब दीर्घतपस्वी निर्ग्रंथ (=जैन साधु) नालन्दामें भिक्षाचार कर, पिंडपात खतमकर, भोजनके पश्चात् जहाँ प्रावारिक-आम्रवन (में) भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्के साथ संमोदन (कुशलप्रश्न पूछ) कर, एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े हुये दीर्घ-तपस्वी निर्ग्रंथको भगवान्ने कहा—

"तपस्वी ! आसन मौजूद है, यदि इच्छा हो तो बैठ जाओ ?"

ऐसा कहनेपर दीर्घ-तपस्वी निर्ग्रंथ एक मोटा आसनले एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे दीर्घ-तपस्वी निर्ग्रंथसे भगवान् बोले—

"तपस्वी ! पापकर्मके करनेके लिये, पाप-कर्मकी प्रवृत्तिके लिये निर्ग्रंथ ज्ञातपुत्र कितने कर्मोंका विधान करते हैं ?"

"आवुस ! गौतम ! 'कर्म' 'कर्म' विधान करना निर्ग्रंथ ज्ञातपुत्रका कायदा (= आचिण्ण) नहीं है। आवुस ! गौतम ! 'दंड' 'दंड' विधान करना निगंठ नाथ-पुत्तका कायदा है।"

"तपस्वी ! तो फिर पाप-कर्मके करनेके लिये=पाप-कर्मकी प्रवृत्तिके लिये निगंठ नाथ-पुत्त कितने 'दंड' विधान करते हैं ?"

"आवुस ! गौतम ! पापकर्मके हटानेके लिये० निगंठ नात-पुत्त तीन दंडोंका विधान करते हैं। जैसे—'काय-दंड', 'वचन-दंड', 'मन-दंड' ।"

"तपस्वी ! तो क्या काय-दंड दूसरा है, वचन-दंड दूसरा है, मन-दंड दूसरा है ?"

"आवुस गौतम ! (हाँ) ! काय-दंड दूसरा ही है, वचन-दंड दूसरा ही, मन-दंड दूसरा ही है।

"तपस्वी ! इस प्रकार भेद किये, इस प्रकार विभक्त, इन तीनों दंडोंमें निगंठ नात-

---

1. म. नि. २:१:६ ।

पुत्त, पाप कर्मके करनेके लिये, पापकर्मकी प्रवृत्तिके लिये, किस दंडको महादोष-युक्त विधान करते हैं, काय-दंडको, या वचन-दंडको, या मन-दंडको ?"

"आवुस गौतम ! इस प्रकार भेद किये, इस प्रकार विभक्त, इन तीनों दंडोंमें निगंठ नात-पुत्त, पाप कर्मके करनेके लिये० काय-दंडको महादोष-युक्त विधान करते हैं; वैसा वचन-दंडको नहीं, वैसा मन-दंडको नहीं।"

"तपस्वी ! काय-दंड कहते हो ?"

"आवुस गौतम ! काय-दंड कहता हूँ।"

"तपस्वी ! काय-दंड कहते हो ?"

"आवुस गौतम ! काय-दंड कहता हूँ।"

"तपस्वी ! काय-दंड कहते हो ?"

"आवुस गौतम ! काय-दंड कहता हूँ।"

इस प्रकार भगवान्‌ने दीर्घ-तपस्वी निगंठको इस कथा-वस्तु (=बात) में तीनवार प्रतिष्ठापित किया।

ऐसा कहनेपर दीर्घ-तपस्वी निगंठने भगवान्‌को कहा—

"तुम आवुस ! गौतम ! पाप-कर्मके करनेके लिये० कितने दंड-विधान करते हो ?"

"तपस्वी ! 'दंड' 'दंड' कहना तथागतका कायदा नहीं है, 'कर्म' 'कर्म' कहना तथागतका कायदा है।"

"आवुस गौतम ! तुम ०कितने कर्म विधान करते हो ?"

"तपस्वी ! मैं ०तीन कर्म बतलाता हूँ—जैसे काय-कर्म, वचन-कर्म, मन-कर्म।"

"आवुस गौतम ! काय-कर्म दूसरा ही है, वचन-कर्म दूसरा ही है, मन-कर्म दूसरा ही है।"

"तपस्वी ! काय-कर्म दूसरा ही है, वचन-कर्म दूसरा ही है, मन-कर्म दूसरा ही है।"

"आवुस गौतम ! ०इस प्रकार विभक्त० इन तीन कर्मोंमें, पाप-कर्म करनेके लिये० किसको महादोषी ठहराते हो—काय-कर्मको, या वचन-कर्मको, या मन-कर्मको ?"

"तपस्वी ! ०इस प्रकार विभक्त० इन तीनों कर्मोंमें मन-कर्मको मैं महादोषी बतलाता हूँ।"

"आवुस गौतम ! मन-कर्म बतलाते हो ?"

"तपस्वी ! मन-कर्म बतलाता हूँ।"

"आवुस गौतम ! मन-कर्म बतलाते हो ?"

"तपस्वी ! मन-कर्म बतलाता हूँ।"

"आवुस गौतम ! मन-कर्म बतलाते हो ?"

"तपस्वी ! मन-कर्म बतलाता हूँ।"

इस प्रकार दीर्घ-तपस्वी निगंठ भगवान्‌को इस कथा-वस्तु (=विवाद-विषय) में तीनवार प्रतिष्ठापित करा, आसनसे उठ जहाँ निगंठ नात-पुत्त थे, वहाँ चला गया।

उस समय निगंठ नात-पुत्त, बालक (-लोणकार)-निवासी उपालि आदिकी

वही गृहस्थ-परिषद्के साथ बैठे थे। तब निगंठ नात-पुत्तने दूरसे ही दीर्घ-तपस्वी निगंठको आते देख, पूछा—

"हे! तपस्वी! मध्याह्नमें तू कहाँसे (आ रहा है)?"

"भन्ते! श्रमण गौतमके पाससे आ रहा हूँ।"

"तपस्वी! क्या तेरा श्रमण गौतमके साथ कुछ कथा-संलाप हुआ?"

"भन्ते! हाँ! मेरा श्रमण गौतमके साथ कथा-संलाप हुआ।"

"तपस्वी! श्रमण गौतमके साथ तेरा क्या कथा-संलाप हुआ।"

तब दीर्घ-तपस्वी निगंठने भगवान्‌के साथ जो कुछ कथा-संलाप हुआ था, वह सब निगंठ नात-पुत्तको कह दिया।

"साधु! साधु!! तपस्वी! जैसा कि शास्ता (=गुरु)के शासन (=उपदेश)को अच्छी प्रकार जाननेवाले, बहुश्रुत श्रावक दीर्घतपस्वी निगंठने श्रमण गौतमको बतलाया। यह शुद्र मन-दंड, इस महान् काय-दंडके सामने क्या शोभता है? पाप-कर्मके करने=पाप-कर्मकी प्रवृत्तिके लिये काय-दंड ही महादोषी है, वचन-दंड वैसे नहीं।"

ऐसा कहनेपर उपालि गृहपतिने निगंठ नातपुत्त को यह कहा—

"साधु! साधु!! भन्ते तपस्वी! जैसा कि शास्ताके शासनके मर्मज्ञ, बहुश्रुत श्रावक भदन्त दीर्घ-तपस्वी निगंठने श्रमण गौतमको बतलाया। यह शुद्र०। तो भन्ते! मैं जाऊँ, इसी कथा-वस्तुमें श्रमण गौतमके साथ विवाद रोपूँ? यदि मेरे (सामने) श्रमण गौतम वैसे (ही) टहरा रहा, जैसा कि भदन्त दीर्घ तपस्वीने (उसे) टहराया। तो जैसे बलवान् पुरुष लम्बे बालवाली भेड़को बालोंसे पकड़कर निकाले, घुमावे, डुलावे; उसी प्रकार मैं श्रमण गौतमके वादको...निकालूँगा,...डुलाऊँगा। (अथवा) जैसे कि बलवान् शौंडिक-कर्मकर (=शराब बनानेवाला) भट्ठीके बड़े टोकरे (=सोंडिका-किलंज) को गहरे पानी (वाले) तालाबमें फेंककर, कानोंको पकड़के निकाले, घुमावे, डुलावे, ऐसे ही मैं। (अथवा) जैसे कि साठ वर्षका पट्ठा हाथी गहरी पुष्करिणीमें घुसकर सन-धोवन नामक खेलको खेले, ऐसे ही मैं, श्रमण गौतमको सन-धोवन०। हाँ! तो भन्ते! मैं जाता हूँ। इस कथा-वस्तुमें श्रमण गौतमके साथ वाद रोपूँगा।"

"जा गृहपति! जा, श्रमण गौतमके साथ इस कथा-वस्तुमें वाद रोप। गृहपति! श्रमण गौतमके साथ मैं वाद रोपूँ, या दीर्घ-तपस्वी निगंठ रोपे, या तू।"

ऐसा कहनेपर दीर्घ-तपस्वी निगण्ठने निगण्ठ नात-पुत्तको कहा—

"भन्ते! (आपको) यह मत रुचे, कि उपालि गृहपति श्रमण गौतमके पास जाकर वाद रोपे। भन्ते! श्रमण गौतम मायावी है, (मति) फेरनेवाली माया जानता है, जिससे दूसरे तैर्थिकों (=पंथाइयों) के श्रावकों (को अपनी ओर) फेर लेता है।"

"तपस्वी! यह संभव नहीं, कि उपालि गृहपति श्रमण गौतमका श्रावक हो जाय। संभव है कि श्रमण गौतम (ही) उपालि गृहपतिका श्रावक हो जाय। जा गृहपति! श्रमण गौतमके साथ इस कथा-वस्तुमें वाद रोप। गृहपति! श्रमण गौतमके साथ मैं वाद रोपूँ, या दीर्घ-तपस्वी निगंठ रोपे, या तू।"

दूसरी बार भी दीर्घ-तपस्वी निगंठने०। तीसरी बार भी०।

'अच्छा भन्ते !' कह, उपालि गृहपति निगंठ नात-पुत्तको अभिवादनकर प्रदक्षिणा-कर, जहाँ प्रावारिक आम्रवन था, जहाँ भगवान् थे, वहां गया । जाकर भगवान्को अभिवादन-कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुये उपालि गृहपतिने भगवान्से कहा—

'भन्ते ! क्या दीर्घतपस्वी निगंठ यहाँ आये थे ?"

"गृहपति ! दीर्घतपस्वी निगंठ यहां आया था ।"

"भन्ते ! दीर्घतपस्वी निगंठके साथ आपका कुछ कथा-संलाप हुआ ?"

"गृहपति ! दीर्घ-तपस्वी निगंठके साथ मेरा कुछ कथा-संलाप हुआ ।"

"तो भन्ते ! दीर्घ तपस्वी निगंठके साथ क्या कुछ कथा-संलाप हुआ ?"

तब भगवान्ने दीर्घतपस्वी निगंठके साथ जो कुछ कथा-संलाप हुआ था, उस सबको उपाली गृहपतिसे कह दिया । ऐसा कहनेपर उपाली गृहपतिने भगवान्से कहा—

"साधु ! साधु ! भन्ते तपस्वी ! जैसाकि शास्ताके शासनके मर्मज्ञ, बहु-श्रुत, श्रावक दीर्घतपस्वी निगंठने भगवान्को बतलाया !! यह मुर्दा मन-दंड इस महान् काय-दंडके सामने क्या शोभता है ? पाप-कर्मकी प्रवृत्तिके लिये काय-दंडही महा-दोषी है; वैसा वचन-दंड नहीं है, वैसा मन-दंड नहीं है ।"

"गृहपति ! यदि तू सत्यमें स्थिर हो मंत्रणा (= विचार) करे, तो हम दोनोंका संलाप हो ।"

"भन्ते ! मैं सत्यमें स्थिर हो मंत्रणा करूँगा । हम दोनोंका संलाप हो ।"

"क्या मानते हो गृहपति ! (यदि) यहाँ एक बीमार=दुःखित भयंकर रोग-ग्रस्त शीत-जल-त्यागी उष्ण-जल-सेवी निगंठ''' '''शीत जल न पानेके कारण मर जाये, तो निगंठ नात-पुत्त उसकी (पुनः) उत्पत्ति कहां बतलायेंगे ?"

"भन्ते ! (जहाँ) मनः सत्त्व नामक देवता हैं । वह वहाँ उत्पन्न होगा ।"

"सो किस कारण ?"

"भन्ते ! वह मनसे बँधा हुआ मरा है ।"

"गृहपति ! गृहपति ! मनमें (सोच) करके कहो । तुम्हारा पूर्व (पक्ष)से पश्चिम (पक्ष) नहीं मिलता, तथा पश्चिमसे पूर्व नहीं ठीक खाता । और गृहपति ! तुमने यह बात (भी) कही है—भन्ते ! मैं सत्यमें स्थिर हो मंत्रणा करूँगा, हम दोनोंका संलाप हो ।"

"और भन्ते ! भगवान्नेभी ऐसा कहा है । पापकर्म करनेकेलिये ०काय-दंडही महादोषी है, वैसा वचन-दंड''''''(और)मन-दंड नहीं ?"

"तो क्या मानते हो गृह-पति ! यहाँ एक [1]चातुर्याम-संवरसे संवृत (=गोपित, रक्षित), सब [2]वारिसे निवारित, सब वारि (=वारितों)को निवारण करनेमें तत्पर, सब (पाप-) वारिसे धुला हुआ, सब (पाप) वारिसे छूटा हुआ, निर्ग्रंथ (=जैन-साधु) है । वह आते

---

(१) प्राण-हिंसा न करना, न कराना न अनुमोदन करना, (२) चोरी न० । (३) झूठ न० । (४) भावित (=काम भोग) न चाहना० यह चातुर्यामसंवर नातपुत्त का मुख्य सिद्धांत था; जिसे अब पार्श्वनाथका समझा जाता है ।

(२) निषिद्ध शीतल जल या पापरूपी जल ।

जाते बहुतसे छोटे-छोटे प्राणि-समुदायको मारता है। गृहपति ! निगंठ नात-पुत्त इसका क्या विपाक (=फल) बतलाते हैं ?"

"भन्ते ! अनजानेको निगंठ नात-पुत्त महादोष नहीं कहते।"

"गृहपति ! यदि जानता हो।" "(तब) भन्ते ! महादोष होगा।"

"गृहपति ! जाननेको निगंठ नात-पुत्त किसमें कहते हैं ?" "भन्ते ! मन-दंडमें"

"गृहपति ! गृहपति ! मनमें (सोच) करके कहो।०।"

"और भन्ते ! भगवान्‌ने भी०।"

"तो गृहपति ! क्या है न यह नालन्दा सुख-संपत्ति-युक्त, बहुत जनोंवाली, (बहुत) मनुष्योंसे भरी ?" "हाँ भन्ते !"

"तो···गृहपति ! (यदि) यहाँ एक पुरुष (नंगी) तलवार उठाये आये, और कहे—इस नालन्दामें जितने प्राणी हैं, मैं एक क्षणमें एक मुहूर्तमें, उन (सब)का एक मांस का खलियान, एक माँसका ढेर कर दूँगा। तो क्या गृहपति ! वह पुरुष···एक मांसका ढेर कर सकता है ?"

"भन्ते ! दसभी पुरुष, बीसभी पुरुष, तीस० चालीस०, पचास भी पुरुष, एक माँसका ढेर नहीं कर सकते, वह एक तुच्छ क्या" है।"

"तो···गृहपति ! यहाँ एक ऋद्धिमान्, चित्तको वशमें किया हुआ, श्रमण या ब्राह्मण आये, वह ऐसा बोले—मैं इस नालंदाको एक ही मनके क्रोधसे भस्मकर दूँगा। तो क्या···गृहपति ! वह० श्रमण या ब्राह्मण० इस नालंदाको (अपने) एक मनके क्रोधसे भस्म कर सकता है ?"

"भन्ते ! दस नालन्दाओंको भी० पचास नालन्दाओंको भी० वह श्रमण या ब्राह्मण० (अपने) एक मनके क्रोधसे भस्मकर सकता है। एक तुच्छ नालन्दा क्या है।"

"गृहपति ! गृहपति ! मनमें (सोच)कर···कहो०।"

"और भगवान्‌ने भी०।"

"तो···गृहपति ! क्या तुमने दंडकारण्य, कलिंगारण्य, मेध्यारण्य (=मेज्झ-रञ), मातङ्गारण्यका अरण्य होना सुना है ?" "हाँ, भन्ते ! ०।"

"तो···गृहपति ! तुमने सुना है, कैसे दण्डकारण्य० हुआ ?"

"भन्ते ! मैंने सुना है—ऋषियोंके मनके-कोपसे दंडकारण्य० हुआ।"

"गृहपति ! गृहपति ! मनमें (सोच)कर···कहो०। तुम्हारा पूर्वसे पश्चिम नहीं मिलता, पश्चिमसे पूर्व नहीं मिलता। और तुमने गृहपति ! यह बात कही है—'सत्यमें स्थिर हो मैं भन्ते ! संवाद (=वाद) करूँगा, हमारा संलाप हो।'

"भन्ते ! भगवान्‌की पहिली उपमासे ही मैं संतुष्ट और अभिरत हो गया था। विचित्र प्रश्नोंके व्याख्यान (=प्रतिभान)को और भी सुननेकी इच्छासे ही मैंने भगवान्‌को प्रतिवादी बनाना पसन्द किया। आश्चर्य ! भन्ते !! आश्चर्य ! भन्ते !! जैसे औंधेको सीधाकर दे० आजसे भगवान् मुझे सांजलि शरणागत उपासक धारण करें।"

---

१. दिगम्बरों जैन 'उपासकदशा' (सूत्र)।

गृहपति ! सोच-समझकर (काम) करो। तुम्हारे जैसे मनुष्योंका सोच-समझकर ही करना अच्छा होता है।"

"भन्ते ! भगवान्‌के इस कथनसे मैं और भी प्रसन्न मन, सन्तुष्ट और अभिरत हुआ; जो कि भगवान्‌ने मुझे कहा—'गृहपति ! सोच-समझकर करो०।' भन्ते ! दूसरे तैर्थिक (=पंथाई) मुझे श्रावक पाकर, सारे नालन्दामें पताका उड़ाते—'उपाली गृहपति हमारा श्रावक (चेला) होगया'। और भगवान् मुझे कहते हैं—'गृहपति ! सोच-समझकर करो०। भन्ते ! यह दूसरी बार मैं भगवान्‌की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु संघकी भी०।"

"गृहपति ! दीर्घ-कालसे तुम्हारा कुल (=कुल) निगंठोंके लिये प्याउकी तरह रहा है, उनके जानेपर 'पिंड नहीं देना चाहिये' यह मत समझना।"

"भन्ते ! इससे और भी प्रसन्न-मन, सन्तुष्ट और अभिरत हुआ, जो मुझे भगवान्‌ने कहा—दीर्घकालसे तेरा घर०। भन्ते ! मैंने सुना था कि श्रमण गौतम ऐसा कहता है—'मुझे ही दान देना चाहिये, दूसरोंको दान न देना चाहिये। मेरे ही श्रावकोंको दान देना चाहिये, दूसरोंको दान न देना चाहिये। मुझे ही देनेका महा-फल होता है, दूसरोंको देनेका महा-फल नहीं होता। मेरे ही श्रावकोंको देनेका महाफल होता है, दूसरोंके श्रावकोंको देनेका महाफल नहीं होता।' और भगवान् तो मुझे निगंठोंको भी दान देनेको कहते हैं। भन्ते ! हम भी इसे युक्त समझेंगे। भन्ते ! यह मैं तीसरी बार भगवान्‌की शरण जाता हूँ०।"

तब भगवान्‌ने उपालि गृहपतिको आनुपूर्वी-कथा कही०[1]। जैसे कालिमा-रहित शुद्ध वस्त्र अच्छी प्रकार रंगको पकड़ता है, इसी प्रकार उपालि गृहपतिको उसी आसनपर विरज=विमल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ—'जो कुछ समुदय-धर्म है, वह सब निरोध-धर्म है'। तब उपालि गृहपतिने दृष्टधर्म०[1] हो भगवान्‌से कहा—

"भन्ते ! अब हम जाते हैं, हम बहुकृत्य=बहुकरणीय हैं"

"गृहपति ! जैसा तुम काल (=उचित) समझो (वैसा करो)।"

तब उपालि गृह-पति भगवान्‌के भाषणको अभिनन्दनकर, अनु-मोदनकर, आसनसे उठ, भगवान्‌को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर, जहाँ उसका घर था, वहाँ गया। जाकर द्वारपालको बोला—

"सौम्य ! दौवारिक ! आजसे मैं निगंठों और निगंठियोंके लिये द्वार बन्द करता हूँ, भगवान्‌के भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक और उपासिकाओंके लिये द्वार खोलता हूँ। यदि निगंठ आये, तो कहना 'ठहरें भन्ते ! आजसे उपालि गृह-पति श्रमण गौतमका श्रावक हुआ। निगंठों, निगंठियोंके लिये द्वार बन्द है; भगवान्‌के भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिकाओंके लिये द्वार खुला है। यदि भन्ते ! तुम्हें पिंड (=भिक्षा) चाहिये, यहीं ठहरें, (हम) यहीं ला देंगे।"

"भन्ते ! अच्छा" (कह) दौवारिकने उपालि गृहपतिको उत्तर दिया।

दीर्घ-तपस्वी निगंठने सुना—'उपालि गृह-पति श्रमण गौतमका श्रावक हो गया'। तब दीर्घतपस्वी निगंठ, जहाँ निगंठ नातपुत्त थे, वहाँ गया। जाकर निगंठ नातपुत्तको बोला—

---

१. देखो पृष्ठ २५।

तक हित-सुख होगा। भन्ते ! आपको उपमा कहता हूँ, उपमासे भी कोई कोई विज्ञ पुरुष भाषणका अर्थ समझ जाते हैं—

"पूर्वकालमें भन्ते ! किसी जीर्ण=वृद्ध=महल्लक ब्राह्मणकी एक नव-वयस्का (=दहर) माणविका (=तरुण ब्राह्मणी) भार्या गर्भिणी आसन्न-प्रसवा हुई। तब भन्ते ! उस माणविकाने ब्राह्मणको कहा—ब्राह्मण ! जा बाजारसे एक बानरका बच्चा (खिलौना) खरीद ला, वह मेरे कुमारका खिलौना होगा।'

'ऐसा बोलनेपर, भन्ते ! उस ब्राह्मणने उस माणविका को कहा—भवती (=आप) ! ठहरिये, यदि आप कुमार जनेंगी, तो उसके लिये मैं बाजारसे मर्कट-शावक (खिलौना) खरीद कर ला दूँगा, जो आपके कुमारका खेल होगा। दूसरी बार भी भन्ते ! उस माणविकाने०। तीसरी बारभी०। तब भन्ते ! उस माणविकामें अति-अनुरक्त=प्रतिबद्ध-चित्त उस ब्राह्मणने बाजारसे मर्कट-शावक खरीदकर, लाकर, उस माणविका को कहा—'भवती ! बाजारसे यह तुम्हारा मर्कट-शावक खरीदकर लाया हूँ, यह तुम्हारे कुमारका खिलौना होगा।' ऐसा कहनेपर भन्ते ! उस माणविकाने उस ब्राह्मणको कहा—'ब्राह्मण ! इस मर्कट-शावकको लेकर, वहाँ जाओ जहाँ रक्त-पाणि रजक-पुत्र (=रंगरेजका बेटा) है। जाकर रक्त-पाणि रजक-पुत्रको कहो—सौम्य ! रक्तपाणि ! मैं इस मर्कट-शावकको पीतावलेपन रंगसे रंगा, दोनों ओर चालित किया हुआ चाहता हूं। तब भन्ते ! उस माणविकामें अति-अनुरक्त=प्रतिबद्ध-चित्त वह ब्राह्मण उस मर्कट-शावकको लेकर जहाँ रक्त-पाणि रजक-पुत्र था, वहाँ गया, जाकर रक्त-पाणि रजक-पुत्रसे कहा—सौम्य ! रक्तपाणि ! इस०। ऐसा कहनेपर, रक्त-पाणि रजक-पुत्रने उस ब्राह्मणको कहा—'भन्ते ! यह तुम्हारा मर्कट-शावक न रँगने योग्य है, न मलने योग्य है, न माँजने योग्य है।' इसी प्रकार भन्ते ! बाल (अज्ञ=) निगंठोंका वाद (सिद्धान्त) बालों (=अज्ञों) को रंजन करने लायक है, पंडितको नहीं। (यह) न परीक्षा (=अनुयोग) के योग्य है, न मीमांसाके योग्य है। तब भन्ते ! वह ब्राह्मण दूसरे समय नया धुस्सेका जोड़ा ले, जहाँ रक्त-पाणि रजकपुत्र था, वहाँ गया। जाकर रक्त-पाणि रजक-पुत्रको कहा—'सौम्य ! रक्त-पाणि ! धुस्सेका जोड़ा पीतावलेपन (=पीले) रंगसे रंगा, मला, दोनों ओरसे माँजा (=चालित किया) हुआ चाहता हूँ'। ऐसा कहनेपर भन्ते ! रक्त-पाणि रजक-पुत्रने उस ब्राह्मणको कहा—'भन्ते ! यह तुम्हारा धुस्सा-जोड़ा रँगने योग्य भी है, मलने योग्य भी है, माँजने योग्य भी है।' इसी तरह भन्ते ! उस भगवान् अर्हत् सम्यक् संबुद्धका वाद, पंडितोंको रंजन करने योग्य है, बालों (=अज्ञों) को नहीं। (यह) परीक्षा और मीमांसाके योग्य है।"

"गृहपति ! राजा-सहित सारी परिषद् जानती है, कि उपालि गृह-पति निगंठ नात-पुत्रका श्रावक है। (अब) गृहपति ! तुझे किसका श्रावक समझें ?"

ऐसा कहने पर उपालि गृहपति आसनसे उठकर, उत्तरासंग (=चद्दर) को (दाहिने कन्धेको खोलकर), एक कंधेपर कर, जिधर भगवान् थे उधर हाथ जोड़ निगंठ नातपुत्रसे बोला—"भन्ते ! सुनो मैं किसका श्रावक हूँ ?"

धीर विगत-मोह खंडित-कील विजित-विजय,

निर्दुःख सम-चित्त वृद्ध-शील सुन्दर-प्रज्ञ,
विश्वके तारक, वि-मल, उस भगवान्‌का मैं श्रावक हूँ ॥१॥
अकथं-कथ, संतुष्ट, लोक-भोगको वमन करनेवाले, मुदित,
श्रमण-हुये-मनुज अंतिम-शरीर-नर,
अनुपम, वि-रज उस भगवान्‌का मैं श्रावक हूँ ॥२॥
संशय-रहित, कुशल, विनय-युक्त-बनानेवाले, श्रेष्ठ-सारथी,
अनुत्तर (=सर्वोत्तम), रुचिर-धर्म-वान्, निराकांक्षी, प्रभाकर,
मान-छेदक, वीर, उस भगवान्‌का मैं श्रावक हूँ ॥३॥
उत्तम (=निसभ) अ-प्रमेय, गम्भीर, मुनित्व-प्राप्त,
क्षेमंकर, ज्ञानी, धर्मार्थ-वान्, संयत-आत्मा,
संग-रहित, मुक्त, उस भगवान्‌का मैं श्रावक हूँ ॥ ४ ॥
नाग, एकान्त-आसन-वान्, संयोजन (=बन्धन)-रहित, मुक्त,
प्रति-मंत्रक (=वाद-दक्ष), धौत, प्राप्त-ध्वज, वीत-राग,
दान्त, निष्प्रपंच, उस भगवान्‌का मैं श्रावक हूँ ॥५॥
ऋषि-सत्तम, अ-पाखंडी, त्रि-विद्या-युक्त, ब्रह्म(=निर्वाण)-प्राप्त,
स्नातक, पदक (=कवि), प्रश्रब्ध, विदित-वेद,
पुरन्दर, शक्र, उस भगवान्‌का मैं श्रावक हूँ ॥६॥
आर्य, भावितात्मा, प्राप्तव्य-प्राप्त वैयाकरण,
स्मृतिमान्, विपश्यी, अन्-अभिमानी, अन्-अवनत,
अ-चंचल, वशी, उस भगवान्‌का मैं श्रावक हूँ ॥७॥
सम्यग्-गत, ध्यानी, अ-लग्न-चित्त (=अन्-अनुगत-अन्तर), शुद्ध ।
अ-सित (=अ०कृष्ण), अ-प्रहीण, प्रविवेक-प्राप्त, अग्र-प्राप्त,
तीर्ण, तारक, उस भगवान्‌का मैं श्रावक हूँ ॥८॥
शांत, भूरि(=बहु)-प्रज्ञ, महा-प्रज्ञ विगत लोभ,
तथागत, सुगत, अ-प्रति-पुद्गल (=अ-तुलनीय)=अ-सम,
विशारद, निपुण, उस भगवान्‌का मैं श्रावक हूँ ॥९॥
तृष्णा-रहित, बुद्ध, धूम-रहित, अन्-उपलिप्त,
पूजनीय, यक्ष, उत्तम-पुद्गल, अ-तुल,
महान् उत्तम-यश-प्राप्त, उन भगवान्‌का मैं श्रावक हूँ ॥१०॥"

"गृहपति ! श्रमण-गौतमके (ये) गुण तुझे कबसे सूझे ?"

"भन्ते ! जैसे नाना पुष्पोंकी एक महान् पुष्प-राशि (ले) एक चतुर माली, या मालीका अन्तेवासी (=शिष्य) विचित्र माला गूँथे : उसी प्रकार भन्ते ! वह भगवान् अनेक वर्ण (=गुण)वाले, अनेक-शत-वर्ण-वाले हैं । भन्ते ! प्रशंसनीयकी प्रशंसा कौन न करेगा ?"

निगंठ नात-पुत्तने भगवान्‌के सत्कारको न सहनकर, वहीं मुँहसे गर्म लोहू फेंक दिया।

× × × ×

(२)

अभयराजकुमार सुत्त (ई. पू. ४८७)।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् राजगृहमें वेणुवन कलन्दक-निवापमें विहार करते थे।

तब अभय-राजकुमार जहाँ निगंठ नातपुत्त थे, वहाँ गया। जाकर निगंठ नातपुत्तको अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे अभय-राजकुमारको निगंठ नात-पुत्तने कहा—

"आ, राजकुमार! श्रमण गौतमके साथ वाद (=शास्त्रार्थ)कर। इससे तेरा सुयश (=कल्याणकीर्ति शब्द) फैलेगा—'अभय राजकुमारने इतने महर्द्धिक=इतने महानु-भाव श्रमण गौतमके साथ वाद रोपा'।"

'किस प्रकारसे भन्ते! मैं इतने महानुभाव श्रमण गौतमके साथ वाद रोपूँगा?"

"आ तू राजकुमार! जहाँ श्रमण गौतम हैं, वहाँ जा। जाकर श्रमण गौतमको ऐसा कह—'क्या भन्ते! तथागत ऐसा वचन बोल सकते हैं, जो दूसरोंको अ-प्रिय=अ-मनाप हो'। यदि ऐसा पूछनेपर श्रमण गौतम तुझे कहें—'राजकुमार! बोल सकते हैं०।' तब उसे तुम यह बोलना—'तो फिर भन्ते! पृथग्जन (=अज्ञ, संसारीजीव)से (तथागतका) क्या भेद हुआ, पृथग्जन भी वैसा वचन बोल सकता है०'। यदि ऐसा पूछनेपर तुझे श्रमण गौतम कहें—'राजकुमार!० नहीं बोल सकते हैं।' तब तुम उसे बोलना, 'तो भन्ते! आपने देवदत्तके लिये भविष्यद्वाणी क्यों की है—'देवदत्त अपायिक (=दुर्गतिमें जानेवाला) है, देवदत्त नैरयिक (=नरकगामी) है, देवदत्त कल्पस्थ (=कल्पभर नरकमें रहनेवाला) है, देवदत्त अचिकित्स्य (=लाइलाज) है'। आपके इस वचनसे देवदत्त कुपित=असंतुष्ट हुआ।' राजकुमार! (इस प्रकार) दोनों ओरके प्रश्न पूछनेपर श्रमण गौतम न उगिल सकेगा, न निगल सकेगा। जैसे कि पुरुषके कंठमें लोहेकी वंसी (=अंकुड़ा) लगी हो, वह उसे न निगल सके न उगल सके; ऐसे ही०।"

"अच्छा भन्ते!" कह...अभय राजकुमार...आसनसे उठ, निगंठ नात-पुत्तको अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये अभय राजकुमारको सूर्य (=समय) देखकर हुआ—'आज भगवान्से वाद रोपनेका समय नहीं है। कल अपने घरपर भगवान्के साथ वाद करूँगा।' (और) भगवान्से कहा—

"भन्ते! भगवान् अपने सहित चार आदमियोंका कलको मेरा भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया। तब अभय राजकुमार भगवान्की स्वीकृति जान, भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया।

उस रातके बीतनेपर भगवान् पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्र चीवर ले, जहाँ अभय राज-कुमारका घर था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठे। तब अभय राजकुमारने भगवान्को

---

1. म. नि. २:१:८।

उत्तम खाद्य भोज्यसे अपने हाथसे तृप्त किया, पूर्ण किया। तब अभय राजकुमार, भगवान्‌के भोजनकर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, एक नीचा आसन ले, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये, अभय राजकुमारने भगवान्‌को कहा—

"क्या भन्ते! तथागत ऐसा वचन बोल सकते हैं, जो दूसरेको अ-प्रिय=अ-मनाप हो।"

"राजकुमार! यह एकांशसे (=सर्वथा=बिना अपवादके) नहीं (कहा जा सकता)।"

"भन्ते! नाश होगये निगंठ।"

"राजकुमार! क्या तू ऐसे बोल रहा है—'भन्ते! नाश हो गये निगंठ'?"

"भन्ते! मैं जहाँ निगंठ नात-पुत्त हैं, वहाँ गया था। जाकर निगंठ नात-पुत्तको अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे मुझे निगंठ नात-पुत्तने कहा—'आ राजकुमार!०' ०। इसी प्रकार राजकुमार! दुधारा प्रश्न पूछनेपर श्रमण गौतम न उगल सकेगा, न निगल सकेगा'।"

उस समय अभय राजकुमारकी गोदमें, एक छोटा, मन्द, उत्तान सोने लायक (=बहुत ही छोटा) बच्चा, बैठा था। तब भगवान्‌ने अभय राजकुमारको कहा—

"तो क्या मानता है, राजकुमार! क्या तेरे या दाईके प्रमाद (=गफलत)से यदि यह कुमार मुखमें काठ या ढला डाल ले, तो तू इसको क्या करेगा?"

"निकाल लूँगा, भन्ते! यदि भन्ते मैं पहिले ही न निकाल सका, तो बायें हाथसे सीस पकड़कर, दाहिने हाथसे अँगुली टेढ़ीकर, खून-सहित भी निकाल लूँगा।"

"सो किस लिये?"

"भन्ते! मुझे कुमार (=बच्चे)पर दया है।"

"ऐसे ही, राजकुमार! तथागत जिस वचनको अभूत=अ-तथ्य, अन्-अर्थ-युक्त (=व्यर्थ) जानते हैं, और वह दूसरोंको अ-प्रिय अ-मनाप है, उस वचनको तथागत नहीं बोलते। तथागत जिस वचनको भूत=तथ्य अनर्थक जानते हैं, और वह दूसरोंको अ-प्रिय=अ-मनाप है; उस वचनको तथागत नहीं बोलते। तथागत जिस वचनको भूत=तथ्य सार्थक जानते हैं। कालज्ञ तथागत उस वचनको बोलते हैं। तथागत जिस वचनको अभूत=अतथ्य तथा अनर्थक जानते हैं, और वह दूसरोंको प्रिय और मनाप है, उस वचनको भी तथागत नहीं बोलते। जिस वचनको तथागत भूत=तथ्य (=सच)=सार्थक जानते हैं, और वह यदि दूसरोंको प्रिय=मनाप होती है, कालज्ञ तथागत उस वचनको बोलते हैं। सो किसलिये? राजकुमार! तथागतको प्राणियोंपर दया है।"

"भन्ते! जो यह क्षत्रिय-पंडित, ब्राह्मण-पंडित, गृहपति-पंडित, श्रमण-पंडित, प्रश्न तैयारकर तथागतके पास आकर पूछते हैं। भन्ते! क्या भगवान् पहिलेहीसे चित्तमें सोचे रहते हैं—'जो मुझे ऐसा आकर पूछेंगे, उनके ऐसा पूछनेपर, मैं ऐसा उत्तर दूँगा?"

"तो राजकुमार! तुझे ही यहां पूछता हूँ, जैसे तुझे जँचे, वैसे इसका उत्तर देना। तो ...राजकुमार! क्या तू रथके अङ्ग-प्रत्यंग में चतुर है?"

"हां, भन्ते! मैं रथके अङ्ग-प्रत्यंग में चतुर हूँ।"

"सो राजकुमार ! जो तेरे पास आकर यह पूछे—'यह रथका कौनसा अंग-प्रत्यङ्ग है ?' तो क्या तू पहिलेहीसे यह सोचे रहता है—जो मुझे आकर ऐसा पूछेंगे, उनके ऐसा पूछनेपर, मैं ऐसा उत्तर दूँगा।' अथवा मौके ही पर यह तुझे भासित होता है ?"

"भन्ते ! मैं रथिक हूँ, रथके अंग-प्रत्यंगका मैं प्रसिद्ध (जानकार), चतुर हूँ। रथके सभी अंग-प्रत्यंग मुझे सुविदित हैं। (अतः) उसी क्षण (=स्थानतः) मुझे यह भासित होगा"

"ऐसे ही राजकुमार ! जो वह क्षत्रिय-पंडित,० श्रमण पंडित प्रश्न तय्यार कर, तथागतके पास आकर पूछते हैं। उसी क्षण वह तथागतको भासित होता है। सो किस हेतु ? राजकुमार ! तथागतकी धर्मधातु (=मनका विषय) अच्छी तरह सध गई है; उस धर्म-धातुके अच्छी तरह सधी होनेसे, उसी क्षण (वह) तथागतको भासित होता है।"

ऐसा कहनेपर अभय राजकुमारने भगवान्‌को कहा—

"आश्चर्य ! भन्ते !! अद्भुत ! भन्ते !! ०आजसे भगवान् मुझे अंजलि-बद्ध शरणागत उपासक धारण करें।"

× × × ×

(४)

सामञ्ञफल-सुत्त (ई. पू. ४८७)।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् [2]राजगृहमें [3]जीवक कौमार-भृत्यके आम्र-वनमें, साढ़े बारहसौ भिक्षुओंके महाभिक्षु-संघके साथ विहार करते थे।

उस समय चतुर्दशीके उपोसथके दिन चातुर्मासकी कौमुदी (=चंद्रप्रकाश) से पूर्ण पूर्णिमाकी रातको, राजा मागध [4]अजातशत्रु वैदेहीपुत्र, राजामात्योंसे घिरा, उत्तम प्रासाद-के ऊपर बैठा हुआ था। तब राजा ०अजातशत्रु०ने उस दिन उपोसथ (=पूर्णिमा) को उदान कहा—

"अहो ! *कैसी रमणीय चाँदनी रात है ! कैसी अभिरूप (=सुन्दर) चाँदनी रात है !! कैसी दर्शनीय चाँदनी रात है !!! कैसी प्रासादिक चाँदनी रात है !!! कैसी लक्षणीय चाँदनी रात है !!!* किस श्रमण या ब्राह्मणकी उपासना करें, जो हमसे परि-उपासित हो हमारे चित्तको

---

१. दी. नि. १ः १ः २ः । २. अ. क. "यह बुद्धके समय और चक्रवर्तीके समय नगर होता है, बाकी समय सूना यक्षोंका डेरा हो जाता है।" ३. अ. क. "...जीवकने एक समय भगवान्‌को...विरेचन दे शिविके दुशालेको देकर, वस्त्र (-दान) के अनुमोदनके अन्तमें स्रोत-आपत्तिफल में प्रतिष्ठित हो सोचा—'मुझे दिनमें दो तीन बार बुद्ध-दर्शनको जाना पड़ता है। यह वेणुवन अतिदूर है, मेरा आम्रवन समीपतर है, क्यों न मैं यहाँ भगवान्‌के लिये विहार बनवाऊँ'। (तब) वह उस आम्रवनमें रात्रि-स्थान, दिवा-स्थान, लयन, कुटी, मंडप आदि तैयार करा, भगवान्‌के अनुरूप गंध-कुटी बनवा, आम्रवनको अठारह हाथ ऊँची भीतसे घेरके, [illegible] खिलाकर, चीवर-भोजन दानके साथ बुद्धप्रमुख भिक्षु-संघके हाथमें दक्षिणा-जल छोड़ विहार अर्पित किया।"

प्रसन्न करे ।"...किसीने कहा—पूर्ण काश्यप...मक्खली गोसाल,...अजित केस-कम्बली..., पकुध कच्चायन,...निगंठ नातपुत्त...संजय बेलट्ठपुत्त...।

जीवक कौमार-भृत्यने (कहा[1])—

"देव ! भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध...हमारे आम्रवनमें ०विहार करते हैं । उन भगवान् गौतमका ऐसा कल्याणकीर्ति शब्द फैला हुआ है० । देव उस भगवान्० की परि-उपासना करें० ।"

---

१. अ. क. "इस (अजातशत्रु)के पेटमें होते देवीको...दोहद उत्पन्न हुआ ।...राजाने... वैद्यको बुलाकर सुनहली छुरीसे (अपनी) बाँह चिरवा सुवर्णके प्यालेमें लोहूले पानीमें मिलाकर पिला दिया । ज्योतिषियोंने सुनकर कहा—'यह गर्भ राजाका शत्रु होगा; इससे राजा मारा जायगा ।' देवीने सुनकर" गर्भ गिरानेके लिये बागमें जाकर पेट मँडवाया, गर्भ न गिरा ।...। जन्मके समय भी" रक्षक मनुष्य बालकको हटा ले गये । तब दूसरे समय होशियार होनेपर देवीको दिखलाया । उसको पुत्र-स्नेह उत्पन्न हुआ; इससे वह मार न सकी । राजाने भी क्रमशः उसे युवराज-पद दिया ।...राज्य दे दिया । उसने...देवदत्तको कहा । तब उसने उसे कहा—"...थोड़े ही दिनोंमें राजा तुम्हारे किये अपराधको सोच स्वयं राजा बनेगा । ...। चुपकेसे मरवा डालो ।" "किन्तु भन्ते ! मेरा पिता है न ? शस्त्र-वध्य नहीं ।" "भूखा रखकर मार दो ।" उसने पिताको तापन-गेहमें डलवा दिया । तापनगेह कहते हैं, (लोह-) कर्म करनेके लिये (बने) धूमघरको । और कह दिया—मेरी माताको छोड़कर दूसरेको मत देखने देना । देवी सुनहले कटोरे (=सरक) में भोजन रख, उत्संगमें (छिपा) प्रवेश करती थी । राजा उसे खाकर निर्वाह करता था । उसने" यह हाल सुन—'मेरी माताको उत्संग (=ओइछा) बाँधके मत जाने दो ।" तब जूड़ेमें डालकर...तब सुवर्ण पादुकामें...। तब देवी गंधोदकसे स्नान किये शरीरपर चार मधुर (रस) मलकर, कपड़ा पहिन कर जाने लगी। राजा उसके शरीरको चाटकर निर्वाह करता था ।... "अबसे मेरी माताका जाना रोक दो" । देवी दर्वाजेके पास खड़ी हो कर बोली—"स्वामि बिंबसार ! बचपनमें मुझे इसे मारने नहीं दिया, अपने शत्रुको अपने ही पाला । यह अब अन्तिम दर्शन है । इसके बाद अब न तुम्हें देखने पाऊँगी । यदि मेरा (कोई) दोष हो, तो क्षमा करना' (और) रोती-काँदती लौट गई ।

उसके बादसे राजाको आहार नहीं मिला । राजा (स्रोतआपत्ति)-मार्गफल (की भावना) के सुखसे टहलते हुये निर्वाह करता था ।...। 'मेरे पिताके पैरोंको छुरेसे फाड़कर नून-तेलसे लेपकर खैरके अंगारमें चिटचिटाते हुये पकाओ—(कह) नापितको भेजा । ...पका दिया 'राजा मर गया' । उसीदिन राजा (अजातशत्रु) को पुत्र उत्पन्न हुआ । पुत्रके जन्म और पिताके मरणके दो लेख एक साथ ही निवेदन करनेके लिये आये । अमात्योंने पहिले पुत्र-जन्मके" लेखको ही राजाके हाथमें रक्खा । उसी क्षण पुत्र-स्नेह राजाको उत्पन्न हो सकल शरीरको व्यापकर, अस्थि-मज्जा तक व्याप गया । उस समय पिताके गुणको जान—'मेरे पैदा होनेपर भी मेरे पिताको ऐसा ही स्नेह उत्पन्न हुआ होगा ।' 'जाओ भणे ! मेरे पिताको मुक्त करो, मुक्त करो' बोला । 'किसको मुक्त कराते हो देव !' (कहकर) दूसरा लेख हाथमें रख दिया । वह उस समाचारको सुनकर रोते हुये माताके पास जाकर

"तो जीवक ! हस्ति-काय (=हाथी-समुदाय) तैयार कराओ ।"

"अच्छा देव !"...

तब राजा० अजातशत्रु० पाँच-सौ हथिनियोंपर एक एक स्त्री चढ़ाकर, आरोहणीय नागपर (स्वयं) चढ़कर, जलते मशालोंकी (रोशनीमें) बड़े राजसी ठाटसे 'राजगृहसे निकल, जहाँ जीवक कौमारभृत्यका आम्रवन था, वहाँको चला । राजा०को भय हुआ, स्तब्धता हुई, लोमहर्ष हुआ । तब राजा०ने भीत उद्विग्न रोमांचित हो, जीवक०को कहा—

"सौम्य जीवक ! कहीं मुझसे वंचना तो नहीं करते हो ? सौम्य जीवक ! कहीं मुझे धोखा (=प्रलंभन) तो नहीं दे रहे हो ? सौम्य जीवक ! कहीं मुझे शत्रुओंको तो नहीं दे रहे हो ? कैसे साढ़े बारह सौ भिक्षुओंका न खाँसनेका शब्द होगा, न थूकनेका शब्द होगा, न निर्घोष ही होगा ?"

"महाराज ! डरो मत, महाराज ! डरो मत । देव ! तुम्हें वंचना नहीं करता हूँ० । महाराज ! चलो, महाराज ! चलो, यह मंडल-माल (=मंडप)में दीपक जल रहे हैं ।"

तब राजा० जितना नागका रास्ता था, नागसे जाकर, नागसे उतर, पैदल ही जहाँ मंडल-मालका द्वार था, वहाँ गया । जाकर जीवक०को पूछा—

"सौम्य जीवक ! भगवान् कहाँ हैं ?"

"महाराज ! भगवान् यह हैं; महाराज ! भगवान् यह हैं, भिक्षुसंघको सामने करके बिचले खम्भेके सहारे पूर्वाभिमुख बैठे हैं"

तब राजा० जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर एक ओर खड़ा हुआ । एक ओर खड़े राजा०ने स्वच्छ सरोवर समान मौन हुये भिक्षुसंघको देखकर उदान कहा—

बोला—'अम्मा ! पिताका मेरे ऊपर स्नेह था ?' उसने कहा—'बाल (=अज्ञ) पुत्र ! क्या कहता है ? बचपनमें तेरी अंगुलीमें फोड़ा हुआ । तब रोते रोते तुझे न समझा सकनेके कारण, कच-हरी (=विनिश्चय-शाला) में बैठे, तेरे पिताके पास ले गये । पिताने तेरी अंगुली मुँहमें रक्खी । फोड़ा मुखमें ही फूट गया । तब तेरे स्नेहसे उस खून मिले पीबको न थूककर, घोंट गये । इस प्रकारका तेरे पिताका स्नेह था ।' उसने रो-पीटकर पिताकी शरीर-क्रिया की ।...

देवदत्तने सारिपुत्र मौद्गल्यायनके परिषद् लेकर चले जानेपर मुँहसे गर्म खून फेंक, नव-मास बीमार पड़ा रहकर खिन्न हो (पूछा)—"आजकल शास्ता कहाँ हैं ?" "जेत-वनमें" कहनेपर "मुझे खाटपर ले चलकर शास्ताका दर्शन कराओ" कहकर, ले आये जाते हुये, दर्शनके अयोग्य काम करनेसे, जेतवन पुष्करिणीके समीप ही...वहीं पृथ्वीमें धँसकर नर्कमें जा लिप्त हुआ ।...। यह (अजातशत्रु) कोसल-राजाकी पुत्रीका पुत्र था, विदेह-राजाकी (का) नहीं । वैदेही पंडिताको कहते हैं, जैसे 'वैदेहिका गृहपत्नी', 'आर्य आनन्द वैदेह मुनि' ।...वेद=ज्ञान..., उससे ईहन (=प्रयत्न) करता वैदेही...।

१. अ. क. "राजगृहमें बत्तीस बड़े द्वार, और चौसठ छोटे द्वार (थे) । जीवकका आम्रवन प्राकार और गृध्रकूटके बीचमें था । वह पूर्व-द्वारसे निकलकर, पर्वत-छायामें प्रविष्ट हुआ । वहाँ पर्वत-कूटसे चंद्र छिप गया था ।"

"मेरा (पुत्र) उदायिभद्र, इस [1]उपशम (=शांति)से युक्त हो। मेरा उदायिभद्र इस उपशमसे युक्त हो; जिस (उपशम)से युक्त इस समय भिक्षु-संघ है।"

"महाराज ! तूने प्रेमके अनुसार पाया ?"

"भन्ते ! मुझे उदायिभद्र कुमार प्रिय है। भन्ते ! मेरा उदायिभद्र कुमार इस शांतिसे युक्त हो, जिस उपशमसे युक्त कि इस समय भिक्षु-संघ है"

तब राजा० भगवान्‌को अभिवादनकर, भिक्षुसंघको हाथ जोड़, एक ओर बैठ गया।... भगवान्‌को यह बोला—

"भन्ते ! यदि भगवान् प्रश्नोत्तर करनेकी (=प्रश्न पूछनेकी) आज्ञा दें, तो भगवान्‌को कुछ पूछूं ?"

"पूछो महाराज ! जो चाहते हो।"

"जैसे भन्ते ! यह भिन्न भिन्न शिल्प-स्थान (=विद्या, कला) हैं, जैसे कि हस्ति-आरोहण (=हाथीकी सवारी), अश्वारोहण, रथिक, धनुर्ग्राह, चेलक (=युद्धध्वज-धारण) चलक (= व्यूह-रचन), पिंडदायिक (=पिंड काटनेवाले), उग्र राजपुत्र (=वीर राजपुत्र) महानाग (= हाथीसे युद्ध करनेवाले), शूर, चर्म (=ढाल)-योधी, दासपुत्र, आलारिक (=बावर्ची), कल्पक (= हजाम), नहापक (=नहलानेवाले), सूद (=पाचक), मालाकार, रजक, पेशकार (= रंगरेज), नलकार, कुंभकार, गणक, मुद्रिक (= हाथसे गिननेवाले), और जो दूसरे भी इस प्रकारके भिन्न भिन्न शिल्प हैं, (लोग) इसी शरीरमें प्रत्यक्ष (इनके) शिल्पफलसे जीविका करते हैं, उससे अपनेको सुखी करते हैं, तृप्त करते हैं। पुत्र स्त्रीको सुखी करते हैं, तृप्त करते हैं। मित्र अमात्योंको०। ऊपर लेजानेवाला, स्वर्गको लेजानेवाला, सुख-विपाकवाला, स्वर्ग-मार्गीय, श्रमण-ब्राह्मणोंकेलिये दान, स्थापित करते हैं। क्या भन्ते ! इसी प्रकार श्रामण्य (= भिक्षुपनका)-फलभी इसी जन्ममें प्रत्यक्ष बतलाया जा सकता है ?"

"महाराज ! इस प्रश्नको दूसरे श्रमण ब्राह्मणको भी पूछ (उत्तर) जाना है ?"

"भन्ते ! जाना है ०।"

"यदि तुम्हें भारी न हो, तो कहो महाराज ! कैसे उन्होंने उत्तर दिया था ?"

"भन्ते ! मुझे भारी नहीं है, जहां कि भगवान् या भगवान्‌के समान कोई बैठा हो।"

"तो महाराज ! कहो।"

"एक बार मैं भन्ते ! जहां पूर्ण काश्यप थे, वहां गया। जाकर पूर्ण काश्यपके साथ मैंने संमोदन किया...एक ओर बैठकर.. यह पूछा—'हे काश्यप ! यह भिन्न भिन्न शिल्प-स्थान हैं ०। ऐसा पूछनेपर भन्ते ! पूर्ण काश्यपने ! मुझे कहा—'महाराज ! करते कराते,

---

[1] अ. क. "पुत्र से आशंका करके, उसके लिये उपशम चाहता हुआ ऐसा बोला।...। (अंतमें) उसको पुत्रने मारा ही। इस वंशमें पितृवध पांच पीढ़ी तक गया। अजातशत्रुने बिंबसारको मारा। उदयने अजातशत्रुको, उसके पुत्र महामुंडने उदयको, अनुरुद्धने महामुंडको। उसके पुत्र नागदासने अनुरुद्धको। नागदासको 'यह वंश-छेदक राजा हैं, इनसे क्या, (सोच) कुपित हो, राष्ट्रवासियोंने मार डाला।"

छेदन करते, छेदन कराते, पकाते, पकवाते, शोक करते परेशान होते, परेशान करते, चलते, चलाते, प्राण मारते, अदत्त ग्रहण करते, सेंध काटते, गाँव लूटते, चोरी करते, बटमारी करते, परस्त्रीगमन करते, झूठ बोलते भी, पाप नहीं किया जाता ०[1]। दान, दम, संयमसे, सत्य बोलनेसे न पुण्य है, न पुण्यका आगम है।' इस प्रकार भन्ते! पूर्णने मेरे सांदृष्टिक (=प्रत्यक्ष) श्रामण्य-फल पूछनेपर अक्रिया वर्णन किया। जैसे कि भन्ते! पूछे आम, जवाब दे कटहल; पूछे कटहल, जवाब दे आम; ऐसेही भन्ते! पूर्ण काश्यपने मेरे सांदृष्टिक श्रामण्य-फल पूछनेपर अक्रिया (=अक्रिय-वाद) उत्तर दिया।"

"एक बार भन्ते! मैं जहाँ मक्खलि गोसाल थे, वहाँ गया—०। मेरे ऐसा कहने पर...मुझे कहा—'महाराज! प्राणियोंके क्लेश (=दोष आदि मल) के लिये (कोई) हेतु नहीं, प्रत्यय नहीं। बिना हेतु बिना प्रत्यय ही प्राणी क्लेश पाते हैं। प्राणियोंकी (पापसे) शुद्धिका कोई हेतु=प्रत्यय नहीं है, बिना ०प्रत्यय ही प्राणी विशुद्ध होते हैं। न आत्मकार (=अपना किया पाप पुण्य कर्म) है, न पर-कार है; न पुरुषकार (=पौरुष) है, न बल है, न वीर्य (=प्रयत्न) है, न पुरुष-स्थाम (=पराक्रम) है, न पुरुष-पराक्रम है। सभी सत्व=सभी प्राण=सभी भूत=सभी जीव अ-(स्व)वश हैं, बल वीर्य-रहित हैं। नियति (=तकदीर) से निर्मित अवस्थामें परिणत हो, छ ही अभिजातियोंमें सुख दुःख अनुभव करते हैं। यह चौदह सौ हजार प्रमुख योनियाँ हैं, (दूसरी) साठ सौ, (दूसरी) छ सौ। पाँच सौ कर्म हैं, (दूसरे) पाँच कर्म, ०तीन कर्म, एक कर्म और आधा कर्म। बासठ प्रतिपद्, बासठ अन्तर्कल्प, छ अभिजातियाँ, आठ पुरुष-भूमियाँ, उनचास सौ आजीवक, उनचास सौ परिव्राजक, उनचास सौ नागावास, बीस सौ इन्द्रिय, तीस सौ निरय (=नर्क), छत्तीस रजोधातु, सात संज्ञी गर्भ, सात असंज्ञी गर्भ, सात निर्ग्रंथी गर्भ, सात देव, सात मनुष्य, सात पिशाच, सात सर, पवुट (=गाँठ), सात सौ पवुट, सात प्रपात, सात सौ प्रपात, सात स्वप्न, सात सौ स्वप्न। बाल भी, पंडित भी, चौरासी हजार महाकल्प (इनमें) भटककर=आवागमनमें पड़कर, दुःखका अन्त करेंगे ०[1]। ०इस प्रकार० संसार-शुद्धि जवाब दिया०।०।

"०अजित केशकम्बलीने मुझे यह कहा—'महाराज! इष्ट (=यज्ञ किया) कुछ नहीं है, हुत कुछ नहीं है०'[2]। ०उच्छेदवाद जवाब दिया०।०।

"०प्रकुध कात्यायन०'। ०अन्यसे अन्य जवाब दिया०।०।

"०निगंठ नातपुत्त०'। चातुर्याम-संवर जवाब दिया०।०।

"०संजय बेलट्ठिपुत्त०'[3]। ०(अमरा०) विक्षेप जवाब दिया०।०।

"सो भन्ते! मैं भगवानको भी पूछता हूँ, जैसे कि भन्ते! यह भिन्न भिन्न शिल्प हैं० ?"

"तो क्या मानते हो महाराज! यहाँ (एक) पुरुष तुम्हारा दास, कमकर (=नौकर), पूर्व उठनेवाला, पीछे सोनेवाला, 'क्या-काम'-सुननेवाला, प्रिय-चारी प्रिय-वादी, मुख अव-लोकक है। उसको ऐसा हो—

१. देखो पृष्ठ २४५ । २. पृष्ठ २४७ । ३. पृष्ठ २४६ ।

"आश्चर्य है जी ! अद्भुत है जी ! पुण्योंकी गति = पुण्योंका विपाक । यह राजा० अजात-शत्रु मनुष्य है, मैं भी मनुष्य हूँ । यह राजा० पाँच कामगुणोंसे संयुक्त मानों देवताकी तरह विचरता है; लेकिन मैं इसका दास० हूँ । सो मैं पुण्य करूँ । क्यों न मैं केश-श्मश्रु मुँडाकर० प्रव्रजित होजाऊँ ।०। वह उस प्रकार प्रव्रजित हो कायासे संवृत (=सुरक्षित) हो, विहरे, वचनसे०, मनसे० । खाने-ढाँकने मात्रसे संतुष्ट हो, प्रविवेक (=एकांत)में रत हो० । यदि तुम्हारे पुरुष तुम्हें ऐसा कहें—'देव ! जानते हो, जो पुरुष तुम्हारा दास० था, वह ०प्रव्रजित हो प्रविवेकमें रत है। क्या तुम कहोगे—'आवे वह पुरुष, फिर मेरा दास ०होवे ?"

"नहीं भन्ते ! बल्कि उसे हम अभिवादन करेंगे, प्रत्युत्थान करेंगे० ।"

"तो क्या मानते हो महाराज ! यदि ऐसा हो तो यह सांदृष्टिक श्रामण्य-फल होता है, या नहीं ?"

"अवश्य भन्ते ! ऐसा हो तो सांदृष्टिक० ।"

"महाराज ! यह इसी जन्ममें प्रथम प्रत्यक्ष श्रामण्य-फल है ।"

"क्या भन्ते ! अन्य भी इसी जन्ममें प्रत्यक्ष श्रामण्य फल कहे जा सकते हैं ?"

"(कहे जा) सकते हैं महाराज ! तो महाराज ! तुम्हें ही यहाँ पूछता हूँ, जैसा तुम्हें पसन्द हो, इसका जवाब दो । तो···महाराज ! यहाँ तुम्हारा एक पुरुष कृषक=गृहपतिक, कार्य-कारक, राशिवर्द्धक हो । उसको ऐसा हो—'पुण्योंकी गति, पुण्योंका विपाक आश्चर्य है जी ! अद्भुत है जी !० । क्या तुम कहोगे—'आवे यह पुरुष फिर मेरा कृषक० हो ?"

"नहीं भन्ते !० ।" ०।०।

"महाराज ! यह···दूसरा० प्रत्यक्ष श्रामण्य-फल है ।"

"०अन्य भी० ?"

"महाराज ! लोकमें तथागत अर्हत्०[1] उत्पन्न होते हैं ।० धर्म उपदेश करते हैं । (कोई) [2]सुनकर ०प्रव्रजित होता है ।० शिक्षापदोंमें सीखता है । ०। परिशुद्ध आजीविकावाला (परिशुद्धाजीव) शील-संपन्न, इन्द्रियोंमें गुप्तद्वार, भोजनमें मात्रा जाननेवाला; संप्रजन्यसे युक्त, संतुष्ट (हो)० । महाराज ! भिक्षु कैसे शील-संपन्न होता है ? यहाँ महाराज ! प्राणातिपात (प्राण-हिंसा) छोड़ प्राणातिपातसे विरत होता है, निहित (=त्यक्त)-दंड, निहित-शस्त्र, लज्जी, दयालु, सर्व-प्राणि-भूत-अनुकंपक हो विहरता है, यह भी उसके शीलोंमें है । अदत्तादान छोड़ अदत्तादान (=चोरी)से विरत होता है, दत्त-आदायी, दत्त-प्रतिकांक्षी होता है । तब इस शुद्ध-भूत आत्मासे विहार करता है, यह भी उसके शीलोंमें है । अब्रह्मचर्यको छोड़कर ब्रह्मचारी होता है, एकांत-चारी, मैथुन=ग्राम्यधर्मसे विरत, यह भी० । मृषावादको छोड़ मृषावाद-विरत होता है, सत्यवादी=सत्यसंध, थेत (=स्थाता, बातपर ठहरनेवाला), लोकका प्रत्ययिक (=विश्वासपात्र) =अविसंवादक (होता है) । यह भी० । पिशुनवचन

---

१. देखो ब्रह्मजाल सुत्त भी ।

२. पृष्ठ १६० ।

छेदन करते, छेदन कराते, पकाते, पकवाते, शोक करते परेशान होते, परेशानकरते, चलते, चलाते, प्राण मारते, अदत्त ग्रहण करते, सेंध काटते, गाँव लूटते, चोरी करते, बटमारी करते, परस्त्रीगमन करते, झूठ बोलते भी, पाप नहीं किया जाता ०[१]। दान, दम, संयमसे, सत्य बोलनेसे न पुण्य है, न पुण्यका आगम है।' इस प्रकार भन्ते! पूर्ण०ने मेरे सांदृष्टिक (=प्रत्यक्ष) श्रामण्य-फल पूछनेपर अक्रिया वर्णन किया। जैसे कि भन्ते! पूछे आम, जवाब दे कटहल; पूछे कटहल, जवाब दे आम; ऐसेही भन्ते! पूर्ण काश्यपने मेरे सांदृष्टिक श्रामण्य-फल पूछनेपर अक्रिया (=अक्रिय-वाद) उत्तर दिया।"

"एक बार भन्ते! मैं जहाँ मक्खलि गोसाल थे, वहाँ गया—०। मेरे ऐसा कहने पर···मुझे कहा—'महाराज! प्राणियोंके क्लेश (=रोग आदि मल) के लिये (कोई) हेतु नहीं, प्रत्यय नहीं। विना हेतु विना प्रत्यय ही प्राणी क्लेश पाते हैं। प्राणियोंकी (पापसे) शुद्धिका कोई हेतु=प्रत्यय नहीं है; विना ०प्रत्यय ही प्राणी विशुद्ध होते हैं। न आत्मकार (=अपना किया पाप पुण्य कर्म) है, न पर-कार है; न पुरुषकार (=पौरुष) है, न बल है, न वीर्य (=प्रयत्न) है, न पुरुष-स्थाम (=पराक्रम) है, न पुरुष-पराक्रम है। सभी सत्त्व=सभी प्राण=सभी भूत=सभी अ-(स्व)-वश हैं, बल-वीर्य-रहित हैं। नियति (=तकदीर) से निर्मित अवस्थामें परिणत हो, छ ही अभिजातियोंमें सुख दुःख अनुभव करते हैं। यह चौदह सौ हजार प्रमुख योनियाँ हैं, (दूसरी) साठ सौ, (दूसरी) छ सौ। पाँच सो कर्म हैं, (दूसरे) पाँच कर्म, ०तीन कर्म, एक कर्म और आधा कर्म। बासठ प्रतिपद्, बासठ अन्तर्कल्प, छ अभिजातियाँ, आठ पुरुष-भूमियाँ, उंचास सौ आजीवक उंचास सौ परिव्राजक, उंचास सौ नागावास, बीस सौ इन्द्रिय, तीससौ निरय (=नर्क), छत्तीस रजोधातु, सात संज्ञी गर्भ, सात असंज्ञी गर्भ, सात निगंठी गर्भ, सात देव, सात मनुष्य, सात पिशाच, सात शर, पमुट (=गाँठ), सात सौ पमुट, सात प्रपात, सात सौ प्रपात, सात स्वप्न, सात सौ स्वप्न। बाल भी, पंडित भी, चौरासी हजार महाकल्प (इनमें) भरमकर=आवागमनमें पड़कर, दुःखका अन्त करेंगे ०[१]। ०इस प्रकार० संसार-शुद्धि जवाब दिया० ।०।

"०अजित केशकम्बलीने मुझे यह कहा—'महाराज! इष्ट (=यज्ञ किया) कुछ नहीं है, हुत कुछ नहीं है०[१]। ०उच्छेदवाद जवाब दिया०।०।

"०पकुध कच्चायन०[१]। ०अन्यसे अन्य जवाब दिया० ।०।

"०निगंठ नातपुत्त०[१]। चातुर्याम-संवर जवाब दिया० ।०।

"०संजय बेलट्ठिपुत्त०[१]। ०(अमर-) विक्षेप जवाब दिया० ।०।

"सो भन्ते! मैं भगवान्‌को भी पूछता हूँ, जैसे कि भन्ते! यह भिन्न भिन्न शिल्प हैं० ?"

"तो क्या मानते हो महाराज! यहाँ (एक) पुरुष तुम्हारा दास, कमकर (=नौकर), पूर्व उठनेवाला, पीछे सोनेवाला, 'क्या-काम'-सुननेवाला, प्रिय-चारी प्रिय-वादी, मुख-अव-लोकक है। उसको ऐसा हो—

१. देखो पृष्ठ २४५। २. पृष्ठ २४४। ३. पृष्ठ २४६।

"'आश्चर्य है जी ! अद्भुत है जी ! पुण्योंकी गति = पुण्योंका विपाक । यह राजा० अजात-शत्रु मनुष्य है, मैं भी मनुष्य हूँ । यह राजा० पाँच कामगुणोंसे संयुक्त मानों देवताकी तरह विचरता है; लेकिन मैं इसका दास० हूँ । सो मैं पुण्य करूँ । क्यों न मैं केश-श्मश्रु मुँडाकर० प्रव्रजित होजाऊँ ।०। वह उस प्रकार प्रव्रजित हो कायासे संवृत (=सुरक्षित) हो, विहरे, वचनसे०, मनसे० । खाने-ढाँकने मात्रसे संतुष्ट हो, प्रविवेक (=एकांत)में रत हो० । यदि तुम्हारे पुरुष तुम्हें ऐसा कहें—'देव ! जानते हो, जो पुरुष तुम्हारा दास० था, वह ०प्रव्रजित हो प्रविवेकमें रत है । क्या तुम कहोगे—'आवे वह पुरुष, फिर मेरा दास ०होवे ?"

"नहीं भन्ते ! बल्कि उसे हम अभिवादन करेंगे, प्रत्युत्थान करेंगे० ।"

"तो क्या मानते हो महाराज ! यदि ऐसा हो तो यह सांदृष्टिक श्रामण्य-फल होता है, या नहीं ?"

"अवश्य भन्ते ! ऐसा हो तो सांदृष्टिक० ।"

"महाराज ! यह इसी जन्ममें प्रथम प्रत्यक्ष श्रामण्य-फल है ।"

"क्या भन्ते ! अन्य भी इसी जन्ममें प्रत्यक्ष श्रामण्य फल कहे जा सकते हैं ?"

"(कहे जा) सकते हैं महाराज ! तो महाराज ! तुम्हें ही यहाँ पूछता हूँ, जैसा तुम्हें पसन्द हो, इसका जवाब दो । तो'''महाराज ! यहाँ तुम्हारा एक पुरुष कृषक=गृहपतिक, कार्य-कारक, राशिवर्द्धक हो । उसको ऐसा हो—'पुण्योंकी गति, पुण्योंका विपाक आश्चर्य है जी ! अद्भुत है जी !० । क्या तुम कहोगे—'आवे वह पुरुष फिर मेरा कृषक० हो ?"

"नहीं भन्ते !० ।" ०।०।

"महाराज ! यह'''दूसरा० प्रत्यक्ष श्रामण्य-फल है ।"

"०अन्य भी० ?"

"महाराज ! लोकमें तथागत अर्हत्०[1] उत्पन्न होते हैं ।० धर्म उपदेश करते हैं । (कोई) ०सुनकर ०प्रव्रजित होता है ।० शिक्षापदोंमें सीखता है । ०। परिशुद्ध आजीविकावाला (परिशुद्धाजीव) शील-संपन्न, इन्द्रियोंमें गुप्तद्वार, भोजनमें मात्रा जाननेवाला; संप्रजन्यसे युक्त, संतुष्ट (हो)० । महाराज ! भिक्षु कैसे शील-संपन्न होता है ? यहाँ महाराज ! प्राणा-तिपात (प्राण-हिंसा) छोड़ प्राणातिपातसे विरत होता है, निहित (=त्यक्त)-दंड, निहित-शस्त्र, लज्जी, दयालु, सर्व-प्राणि-भूत-अनुकंपक हो विहरता है, यह भी उसके शीलोंमें है । अदत्तादान छोड़ अदत्तादान (=चोरी)से विरत होता है, दत्त-आदायी, दत्त-प्रतिकांक्षी होता है । सब इस शुद्ध-भूत आत्मासे विहार करता है, यह भी उसके शीलोंमें है । अब्रह्मचर्यको छोड़कर ब्रह्मचारी होता है, एकांत-चारी, मैथुन=ग्राम्यधर्मसे विरत, यह भी० । मृषावादको छोड़ मृषावाद-विरत होता है, सत्यवादी=सत्यसंध, थेत (=स्थाता, बातपर ठहरनेवाला), लोकका प्रत्ययिक (=विश्वासपात्र) =अविसंवादक (होता है) । यह भी० । पिशुनवचन

1. देखो ब्रह्मजाल सुत्त भी ।
2. पृष्ठ १६० ।

(=चुगली)को छोड़ पिशुन-वचनसे विरत०। यह भी०। परुष वचनको छोड़०। संप्रलाप छोड़०, संप्रलापसे विरत होता है, काल-वादी भूत-वादी, अर्थ-वादी, धर्म-वादी, विनय-वादी, (होता है)[1]। कालसे सप्रयोजन=पर्यन्तवती अर्थ सहित=निधानवाली वाणीका बोलनेवाला होता है। यह भी०। बीज-ग्राम, भूत-ग्रामके नाश (हत्या)से विरत होता है। एकाहारी (=एकभक्तिक) रातको (भोजनसे) विरत, विकाल भोजनसे विरत होता है, नृत्य, गीत, वाद्य, विसूकदस्सनसे विरत होता है। माला गंध, विलेपन के धारण, मंडन विभूषण" से विरत होता है। उच्चशयन, महाशयनसे विरत होता है। सोना चाँदीके स्वीकारसे विरत होता है। कच्चा अन्न (धान्य) ग्रहण करनेसे विरत होता है। स्त्री-कुमारिकाके०। दासी-दासके ग्रहणसे०। भेड़-बकरीके ग्रहणसे०। मुर्गी-सुअरके०। हाथी-गाय, घोड़ा-घोड़ीके०। खेत, मकान (=वस्तु)के०। दूतके कामसे०। क्रय-विक्रयसे०। तुलाकूट (=खोटी तौल), कंस-कूट (=खोटी), प्रमाण-कूट (=खोटी नाप) से०। उक्कोटक (=रिश्वत), वंचना, निकति (=कृतघ्नता), साचि-योगसे०। छेदन, वध, बन्धन, लूट आलोप (=डाका), सहसाकार (खूनआदि) से०, यहभी०।

"जैसे कि कोई कोई श्रमण ब्राह्मण श्रद्धासे दिये भोजनको खाकर, वह इसप्रकारसे बीज-ग्राम, भूत-ग्रामके विनाशमें लगे विहरते हैं, जैसे कि—मूल-बीज, स्कंध-बीज (=डाली जिसकी बीजका काम देती है), फल-बीज, अग्र-बीज, और पाँचवां बीज-बीज। वह या इस प्रकारके बीज-ग्राम=भूतग्रामके विनाशसे विरत होता है। यहभी०।

"जैसे कि कोई कोई श्रमण ब्राह्मण श्रद्धासे दिये भोजनको खाकर, वह इस प्रकारके संनिधि-कारक भोगोंको भोग करते विहरते हैं, जैसे कि अन्न-सन्निधि (=अन्न जमा करना) पान-सन्निधि, वस्त्र-सन्निधि, यान-सन्निधि, शयन-सन्निधि, गंध-सन्निधि, आमिष (=भोग)-सन्निधि, यह या इस प्रकारके०।

"०वह इस प्रकारके विसूक-दस्सन (=बुरे तमाशे)में लगे विहरते हैं, जैसे कि—नृत्य, गीत, वादित (=बाजा बजाना), प्रेक्ष्य (=नाटक आदि), आख्यान (=कथा) पाणि-स्वर (=ताली बजाना), वैताल।०।

"०। वह इस प्रकारकी तिरश्चान विद्याओंसे मिथ्या-जीविका करनेसे विरत होता है, यहभी उसके शीलमें होता है।

"सो महाराज! वह भिक्षु इसप्रकार शील-संपन्न शीलसंवर-युक्त हो कहीं भी भय नहीं देखता; जैसे कि महाराज! शत्रु-पराजित-किये मूर्धाभिषिक्त (=अभिषिक्त) क्षत्रिय, कहींसे भी शत्रुसे भय नहीं देखता...। वह इस आर्य शील-स्कंध (=उत्तम शील-समूह) से संयुक्त हो, अपने भीतर अनवद्य (=विमल)-सुखको अनुभव करता है। इस प्रकार महाराज! भिक्षु शील-संपन्न होता है।

"कैसे महाराज! भिक्षु इन्द्रियोंमें गुप्त-द्वार होता है? यहाँ महाराज! भिक्षु, चक्षु (आँख)से रूप देखकर, निमित्त-ग्राही=अनुव्यंजन-ग्राही नहीं होता०[1]। मनसे धर्म

1. पृष्ठ ११०।

जानकर ०। इस आर्य इन्द्रिय-संवरसे युक्त हो अपने भीतर अमिट सुखको अनुभव करता है। इस प्रकार महाराज ! भिक्षु इन्द्रियोंमें गुप्तद्वार होता है।"

"महाराज ! भिक्षु कैसे स्मृति-संप्रजन्यसे युक्त होता है ? महाराज ! भिक्षु जानते हुये (=चित्तवृत्तिको उधर लगाये हुए) गमन-आगमन करता है। आलोकन-विलोकनमें संप्रज्ञान (=जानकर) कारी होता है। समेटने, फैलाने०। संघाटी, पात्र, चीवरके धारणमें०। अशन-पान, खादन, आस्वादनमें ०। पाखाना पेशावके काममें ०। गमन, खड़े होते, बैठते, सोते, जागते, भाषण करते, चुप रहते में०। इस प्रकार महाराज ! भिक्षु स्मृति-संप्रजन्यसे युक्त होता है।

"महाराज ! भिक्षु कैसे संतुष्ट होता है ?'

"वह इस आर्य शील-स्कन्धसे युक्त, इस आर्य इन्द्रिय-संवरसे युक्त, इस आर्य स्मृति-संप्रजन्यसे युक्त, और इस आर्य सन्तुष्टिसे युक्त हो, एकान्त शयनासन (= निवास) सेवन करता है—अरण्यको, वृक्ष-मूल (= वृक्षके नीचे) को, पर्वत-कंदराको, गिरि-गुहाको, श्मशानको, वन-प्रान्तको, अभ्यवकाश (=खुली जगह) को, पयालके पुंजको। वह भोजनो-परान्त पिंड-पातसे अलग हो, आसन मारकर शरीरको सीधाकर स्मृतिको सामने रखकर, बैठता है। वह लोकमें अभिध्या (=लोभ,को छोड़, अभिध्यारहित चित्तसे विहरता है, अभिध्यासे चित्तको शोधता है। व्यापाद=प्रद्वेष (=द्वेष)को छोड़ अव्यापन्न-चित्त हो सर्व प्राणी=भूतों में अनुकम्पक हो विहरता है। व्यापाद=प्रद्वेषसे चित्तको परिशुद्ध करता है। स्त्यान-मृद्ध (=मनके आलस्य) को छोड़ स्त्यान-मृद्ध-रहित हो विहरता है। आलोक-संज्ञी स्मृतिसंप्रजन्य-युक्त हो, स्त्यान-मृद्धसे चित्तको परिशुद्ध करता है। औद्धत्य कौकृत्य छोड़, अन्-उद्धत हो विहरता है, अध्यात्ममें (=अपने भीतर) शांत-चित्त हो औद्धत्य-कौकृत्यसे चित्तको परिशुद्ध करता है। विचिकित्सा (=संशय) को छोड़ विचिकित्सा-रहित हो विहरता है। कुशल (=उत्तम) धर्मोंमें अकथंकथी (=निर्विवादी) हो, विचिकित्सासे चित्तको परिशुद्ध करता है। जैसे महाराज ! पुरुष ऋण लेकर खेती (=कर्मान्त)में लगाये, उसकी वह खेती अच्छी (= समृद्ध) उतरे। जो पुराने ऋण हैं, वह उन्हें भी दे डाले, और उसको ऊपरसे बच्चोंके पोसनेकेलिये भी बाकी बच रहे। उसको ऐसा हो—'मैंने पहिले ऋण लेकर खेतीमें लगाया, मेरी वह खेती अच्छी उतरी। जो पुराने ऋण थे, मैंने उन्हें भी दे डाला, और मेरे पास उसके ऊपर बच्चोंको पोसनेकेलिये बाकी बचा है'। वह इसके कारण प्रसन्नता (=प्रामोद्य) पाये, खुशी (=सौमनस्य) पाये। महाराज ! जैसे पुरुष आबाधिक=दुःखित = बहुत बीमार हो, उसको भोजन अच्छा न लगे और उसके शरीरमें बल-मात्रा न हो। वह दूसरे समय उस बीमारीसे मुक्त होवे, उसको भोजन (=भक्त) अच्छा लगे। उसके शरीरमें बल-मात्रा भी होवे। उसको ऐसा हो—'मैं पहिले आबाधिक० था, ०शरीरमें बल-मात्रा भी न थी। सो मैं उस बीमारीसे मुक्त हूँ, मुझे भोजन भी अच्छा लगता है, मेरे शरीरमें बल-मात्रा भी है। वह इसके कारण प्रामोद्य पाये=सौमनस्य पाये। महाराज ! जैसे पुरुष बन्धनागार (=जेल) में बँधा हो, वह दूसरे समय स्वस्ति (=मङ्गल)-पूर्वक, बिना हानिके—उस बन्धनसे मुक्त हो; और उसके भोगोंकी कुछ भी हानि न हो। उसको ऐसा हो—'मैं पहिले जेलमें०।

०सौमनस्य पाये। जैसे महाराज! पुरुष दास हो, पराधीन, न-इच्छा-गामी। वह दूसरे समय उस दासत्वसे मुक्त, स्वाधीन, अ-पराधीन=भुजिस्स हो, जहाँ तहाँ इच्छा-गामी (=कामङ्गम) हो०। ०। महाराज! जैसे धन-सहित, भोगी पुरुष, दुर्भिक्ष (=अन्न-दुर्लभ) भययुक्त कांतार (=बयाबान्) के रास्तेमें पड़ा हो। वह दूसरे समय उस कांतारको पार कर जाये, स्वस्तिके साथ, क्षेम-युक्त, भय-रहित किसी ग्राममें पहुँच जाये। उसको ऐसा हो०। ०।

"इसी प्रकार महाराज! भिक्षु इन पाँच नीवरणोंके न प्रहीण होनेपर अपनेमें ऋणकी तरह, रोगकी तरह बंधनागारकी तरह, दासताकी तरह, कान्तार-मार्गकी तरह देखता है। और महाराज! इन पांच नीवरणोंके प्रहीण (=नष्ट) होने पर, भिक्षु अपनेमें उऋण-पन० आरोग्य बंधन-मोक्ष०, अदासता०, क्षेमयुक्त-भूमिसा देखता है। अपने भीतरसे इन पाँच नीवरणोंको प्रहीण देखकर, उसे प्रामोद्य (=खुशी) उत्पन्न होता है। प्रमुदित (पुरुष) को प्रीति उत्पन्न होती है। प्रीतियुक्त मनवालेकी काया प्रश्रब्ध (=स्थिर) होती है। प्रश्रब्ध-काया (=पुरुष) सुख अनुभव करता है। सुखीका चित्त समाहित (=एकाग्र) होता है। वह० [1]प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। ०जैसे महाराज! दक्ष (=चतुर) स्नापक (=नहला-नेवाला) या स्नापकका अन्तेवासी, काँसेके थालमें छींटकर स्नानीय-चूर्णको पानीसे तर करते तर करते घोले। सो वह स्नानीय पिंडी स्नेह (=नमी)-अनुगत, स्नेह-परिगत=अंदर बाहर स्नेहसे व्याप्त हो रहती नहीं; इसी प्रकार महाराज! भिक्षु इसी कायाको विवेकसे उत्पन्न प्रीति-सुखसे आप्लावित परिप्लावित करता है, परिपूर्ण करता है। उसके शरीरका कोई अंश भी विवेकज प्रीति सुखसे अ-व्याप्त नहीं होता। यह भी महाराज! सांदृष्टिक श्रामण्य-फल पूर्वके श्रामण्यफलोंसे उत्कृष्टतर=-प्रणीततर है।

"और महाराज! फिर [1]०द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। वह इसी कायाको समाधिज (=समाधिसे उत्पन्न) प्रीति सुखसे०। जैसे महाराज! उदक-ह्रद (=पानीका दह) ०'यह भी० प्रणीततर है।

"और फिर महाराज! ०तृतीयध्यान०। वह इसी कायाको निष्प्रीतिक सुखसे०। जैसे कि महाराज! उत्पलिनी (=उत्पलोंका समूह)०। यह भी प्रणीततर है।

"और फिर महाराज!० [1]चतुर्थ-ध्यान०। वह इसी कायाको परिशुद्ध=परि-अवदात चित्तसे०[1]! महाराज जैसे पुरुष सिरतक सफेद (=अवदात) वस्त्रसे ढाँककर बैठा हो० यह भी० प्रणीततर है।

"इस प्रकार चित्तके समाहित (=एकाग्र), परिशुद्ध [2]परि-अवदात=अन्-अंगण= उपक्लेश-रहित, मृदुभूत=कर्मणीय, स्थित (अचल)=आनेञ्जप्राप्त होनेपर, वह चित्तको ज्ञान=दर्शनके लिये झुकाता है'०। जैसे'० वैडूर्य (=हीरा) मणि०। यह भी० प्रणीततर०।

"इस प्रकार चित्तके समाहित० [2]होनेपर वह चित्तको मनोमय कायके निर्माणके लिये झुकाता है०। जैसे [2]मूंजमेंसे कंडा निकाले०। यह भी०।

"इस प्रकार चित्तके समाहित[2]० होनेपर, वह नाना ऋद्धियों (=योगबलों) के लिये

---

१. पृष्ठ १६१। २. पृष्ठ २५४।

चित्तको झुकाता है० । जैसेकि महाराज ! चतुर कुंभकार या कुंभकारका अन्तेवासी (=शिष्य)०। यह भी० । *

"इस प्रकार चित्तके समाहित० होनेपर, वह चित्तको दिव्य-श्रोत्र-धातु (=कानोंसे दूरकी बातोंके सुनने) के लिये झुकाता है० । जैसेकि महाराज ! पुरुष रास्तेमें जा रहा हो० । यह भी० ।

"इस प्रकार चित्तके समाहित० होनेपर वह चित्तको पर-चित्त-ज्ञानके लिये झुकाता है०। जैसे कि महाराज ? शौकीन स्त्री या पुरुष, बालक या युवा० यह भी० ।

"इस प्रकार चित्तके समाहित० होनेपर, वह चित्तको पूर्व-निवास (=पूर्वजन्म)-ज्ञान-अनुस्मृतिके लिये झुकाता है[1]० । जैसे कि महाराज ! पुरुष अपने गाँवसे दूसरे गाँवको जाये, उस गाँवसे भी दूसरे गाँवको जाये । यह भी० ।

"इस प्रकार चित्तके समाहित होनेपर वह चित्तको प्राणियोंकी च्युति (=मरण)-उत्पाद (=जन्म) के-ज्ञानके लिये झुकाता है०[2] । जैसे कि महाराज ! चौरस्तेके बीचमें प्रासाद हो ! उसपर खड़ा पुरुष०। यह भी० ।"

"इस प्रकार चित्तके समाहित होनेपर वह चित्तको आस्रव-क्षय-ज्ञान (=राग आदि चित्तमलोंके विनाशके ज्ञान) के लिये चित्तको झुकाता है०[2] । जैसे कि महाराज ! पर्वतके घेरेमें स्वच्छ=विप्रसन्न=अनाविल उदक-ह्रद (=पानीका दह) हो, वहाँ तीरपर खड़ा चक्षुमान् (=आंखवाला) पुरुष० । यह भी० ।"

ऐसा कहनेपर राजा मागध अजातशत्रु वैदेही-पुत्रने भगवान्को कहा...

"आश्चर्य ! भन्ते !! अद्भुत ! भन्ते !!० भन्ते ! मैं भगवान्की शरण जाता हूं, धर्म और भिक्षु-संघकी भी । आजसे भगवान् मुझे अञ्जलि-बद्ध शरणागत उपासक समझें । ·

"भन्ते ! मैंने बाल (=मूर्ख) की तरह, मूढ़की तरह, अ-कुशल (=अचतुर) की तरह, अपराध किया; जो मैंने ऐश्वर्यके कारण धार्मिक धर्म-राजा पिताको जानसे मारा; भन्ते ! भगवान् मेरे अपराधको अपराधके तौरपर ग्रहण करें, भविष्यमें (अपराधके) संवर (=न करनेके) लिये ।"

"तो महाराज ! जो तुमने० अपराध किया, जो० धर्म-राजा [3]पिताको जानसे मारा । चूंकि, तुम महाराज ! अपराधको अपराधके तौरपर देखकर धर्मानुसार प्रतिकार करते हो, वह तुम्हारा हम ग्रहण करते हैं । महाराज ! आर्य-विनय (=सत्पुरुषोंकी रीति) में यह वृद्धि (=लाभ) ही है, जो कि यह अपराधको अपराधके तौरपर देखकर धर्मानुसार प्रतीकार करना भविष्यमें संवर (=संयम) रखना ।"

ऐसा कहनेपर राजा० अजातशत्रु ०ने भगवान्को कहा—

"हन्त ! भन्ते ! अब हम जायेंगे, हम बहु-कृत्य बहु-करणीय हैं ।"

"महाराज ! जिसका तुम काल समझो (वह करो) ।"

---

१. पृष्ठ १६२ । २. पृष्ठ १६३ ।

३. बिंबिसार ।

तब राजा० भगवान्‌के भाषणको अभिनन्दनकर, अनुमोदन कर, आसनसे उठ भगवान्‌को अभिनन्दनकर प्रदक्षिणाकर चला गया।

राजा०के जानेके थोड़ी ही देर बाद भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित (=आमंत्रित) किया—

"भिक्षुओ! यह राजा (भाग्य-)हत है, ०उपहत है। भिक्षुओ! इस राजाने यदि धार्मिक धर्मराजा पिताको जानसे न मारा होता, तो इसी आसनपर इसे विरज=विमल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ होता।"

भगवान्‌ने यह कहा। सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान्‌के भाषणका अभिनन्दन किया।

× × × ×

(५)

एतदग्गवग्ग (ई. पू. ४८५)

[1]ऐसा [2]मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्ती ०जेतवनमें विहार करते थे।

(१) "भिक्षुओ! मेरे रत्तञ्ञ (=अनुरक्तिज्ञ) भिक्षु श्रावकोंमें यह आज्ञा-कौण्डिन्य[1] अग्र (=श्रेष्ठ) है।

(२) "महाप्रज्ञोंमें यह [2]सारिपुत्र अग्र है।

(३) "...ऋद्धि-मानोंमें यह [3]महामौद्गल्यायन अग्र है।

(४) "...धुतवादियोंमें यह [4]महाकाश्यप अग्र है।

(५) "...दिव्य चक्षुकोंमें यह [5]अनुरुद्ध अग्र है।

(६) "...उच्च-कुलीनोंमें यह [6]भद्दिय कौलिगोधा-पुत्र अग्र है।

(७) "...मंजु (=कोमल) स्वर (से उपदेश करने)वालोंमें [7]लकुंटक भद्दिय०।

(८) "...सिंहनादियोंमें [8]पिंडोल भारद्वाज०।

(९) "...धर्म-कथिकोंमें [9]पूर्ण मैत्रायणीपुत्र०।

---

१. सैंतालीसवाँ वर्षावास (४८५ ई. पू.) भगवान्‌ने श्रावस्ती (जेतवन)में बिताया। २. अं. नि. १:१: १–७।

(१) शाक्य देशमें कपिलवस्तु नगरके पास द्रोण-वस्तु ग्राममें ब्राह्मण-कुलमें जन्म।

(२) मगध-देशमें राजगृह-नगरके अविदूर उपतिष्य ग्राम=नालकग्राम (=वर्तमान सारिचक वड़गाँव=नालन्दाके समीप, जि० पटना)में ब्राह्मण-कुलमें जन्म।

(३) मगध-देशमें राजगृहके अविदूर कोलित ग्राममें ब्राह्मण-कुलमें जन्म।

(४) मगध-देशमें महातीर्थ ब्राह्मण-ग्राममें ब्राह्मण कुलमें जन्म।

(५) शाक्य-देशमें कपिलवस्तु-नगरमें भगवान्‌के चचा अमृतोदन शाक्यके पुत्र क्षत्रिय कुलमें जन्म।

(६) शाक्य-देशमें कपिलवस्तु-नगरमें क्षत्रिय-कुलमें।

(७) कोसल-देश श्रावस्ती-नगरमें धनी (=महाभोग) कुलमें। (८) मगध, राजगृहमें ब्राह्मण-कुलमें। (९) शाक्य, कपिलवस्तुके समीप द्रोणवस्तु ब्राह्मण ग्राममें ब्राह्मण-कुल।

(१०)···संक्षिप्तसे कहेका विस्तारसे अर्थ करनेवालोंमें महाकात्यायन०।
(११)···मनोमय काय निर्माण करनेवालोंमें चुल्ल पंथक०।
···चित्त-विवर्त्त चतुरोंमें चुल्लपंथक०।
(१२)···संज्ञा-विवर्त्त-चतुरोंमें महापंथक०।
(१३)···अरण-विहारियोंमें सुभूति०।
दक्षिणेयोंमें (=दानपात्रों)में सुभूति०।
(१४)···आरण्यकोंमें रेवत खदिर वनिय०।
(१५)···ध्यानियोंमें कंखा रेवत०।
(१६)···आरब्ध-वीर्य (=परिश्रमियों) में सोण कोडिवीस (=कोटिविंश)०।
(१७)···सुवक्ताओं (=कल्याणवाक्करणों) में सोणकुटिकण्ण०।
(१८)···लाभियों (=पानेवालों) में सीवली०।
(१९)···श्रद्धावानों (=श्रद्धाधिमुक्तों) में वक्कलि०।
(२०)···शिक्षा-कामों (=भिक्षु नियमके पाबन्दों) में राहुल०।
(२१)···श्रद्धासे प्रव्रजितोंमें राष्ट्रपाल०।
(२२)···प्रथम शलाका ग्रहण करनेवालोंमें कुंडधान०।
(२३)···प्रतिभावलों (=कवियों)में वंगीस०।
(२४)···समन्तप्रासादिकों (=सब ओरसे सुन्दरों)में उपसेन वंगन्तपुत्त०।
(२५)···शयनासन-प्रज्ञापकों (=गृह-प्रबन्धकों)में द्रव्य-मल्लपुत्र०।
(२६)···देवताओंके प्रियों=मनापोंमें पिलिन्दि वात्स्य०।
(२७)··· क्षिप्राभिज्ञों (=प्रखर-बुद्धियों)में वाहिय दारुचीरिय०।
(२८)···चित्रकथिकों (=विचित्र वक्ताओं)में कुमार काश्यप०।
(२९)··· प्रतिसंवित्-प्राप्तोंमें महाकोट्ठित (=महाकोष्ठित)०।

---

(१०) अवन्तीदेश, उज्जयिनीमें ब्राह्मणकुलमें। (११) मगध, राजगृह, श्रेष्ठि-कन्यापुत्र। (१२) मगध, राजगृह, श्रेष्ठि-कन्यापुत्र। (१३) कोसल, श्रावस्ती, वैश्यकुलमें।

(१४) मगध, नालक ब्राह्मण-ग्राममें (सारिपुत्रके अनुज)। (१५) कोसल, श्रावस्ती, महाभोगकुलमें। (१६) अङ्गदेश, चम्पानगरमें श्रेष्ठिकुलमें। (१७) अवन्तीदेश, कुररघरमें वैश्यकुलमें। (१८) शाक्य, कुंडिया (कोलिय-दुहिता सुप्रवासाका पुत्र), क्षत्रिय-कुलमें। (१९) कोसल, श्रावस्ती, ब्राह्मणकुलमें। (२०) शाक्य, कपिलवस्तु, (सिद्धार्थ-कुमारके पुत्र) क्षत्रियकुलमें। (२१) कुरुदेश, थुल्लकोट्ठित, वैश्यकुल। (२२) कोसल श्रावस्ती, ब्राह्मणकुल। (२३) कोसल श्रावस्ती, ब्राह्मणकुल। (२४) मगध, नालक ब्राह्मणग्राम (सारिपुत्रके अनुज) ब्राह्मणकुल। (२५) मल्लदेश, अनूपिया नगर, क्षत्रिय-कुल। (२६) कोसल, श्रावस्ती, ब्राह्मणकुल। (२७) वाहिय राष्ट्र (=सतलज-व्यासका द्वाबा, जलन्धर, होशियारपुरके जिले और कपूरथला राज्य)में कुल-पुत्र। (२८) मगध, राजगृह,··· (२९) कोसल, श्रावस्ती, ब्राह्मण-कुल।

(३०)...बहुश्रुतोंमें आनन्द०।...गतिमानोंमें आनन्द०।...स्थितिमानोंमें ...आनन्द०। उपस्थाकोंमें आनन्द।

(३१)...महापरिषद् (=बड़ी जमात)वालोंमें उरुवेल काश्यप०।

(३२)...कुल प्रसादकों (=कुलोंको प्रसन्न करनेवालों)में काल उदायी०।

(३३)...अल्पाबाधों (=निरोगों)में बक्कुल०।

(३४)...पूर्वजन्म स्मरण करनेवालोंमें शोभित०।

(३५)...विनयधारियोंमें उपालि०।

(३६)...भिक्षुणियोंके उपदेशकोंमें नन्दक०।

(३७)...जितेन्द्रियोंमें नन्द०।

(३८)...भिक्षुओंके उपदेशकोंमें महाकप्पिन०।

(३९)...तेज-धातु-कुशलोंमें स्वागत०।

(४०)...प्रतिभाशालियों (=पटिभानेय्यक)में राध०।

(४१)...रूक्ष चीवर-धारियोंमें मोघराज।

(४२)...भिक्षुओ! मेरी रत्तञ्ञु भिक्षुणी-श्राविकाओंमें महाप्रजापती गौतमी अग्र है।

(४३)...महाप्रज्ञाओंमें खेमा०।

(४४)...ऋद्धि-मतियोंमें उत्पलवर्णा०।

(४५)...विनयधरोंमें पटाचारा०।

(४६)...धर्मकथिकाओंमें धम्मदिन्ना०।

(४७)...ध्यानियोंमें नन्दा०।

(४८)...आरब्ध-वीर्योंमें सोणा०।

(५०)...क्षिप्राभिज्ञाओंमें भद्रा कुंडलकेशा०।

(५१)...पूर्व-जन्म-अनुस्मृति-वालियोंमें भद्रा कापिलायनी०।

---

(३०) शाक्य, कपिलवस्तु, अमृतौदन-पुत्र, क्षत्रिय-कुल। (३१) काशीदेश, वाराणसी नगर, ब्राह्मण कुल। (३२) शाक्य, कपिलवस्तु, अमात्यगेहमें। (३३) वंसदेश, कौशाम्बी, वैश्यकुल। (३४) कोसल, श्रावस्ती, ब्राह्मणकुलमें।

(३५) शाक्य, कपिलवस्तु, नाई-कुल। (३६) कोसल, श्रावस्ती, कुल गेह। (३७) शाक्य, कपिलवस्तु, (महाप्रजापतीपुत्र) क्षत्रिय-कुमार (३८) सीमान्त (=प्रत्यंत) देश, कुक्कुटवती नगर, राजवंश। (३९) कोसल, श्रावस्ती, ब्राह्मणकुल। (४०) मगध, राजगृह, ब्राह्मणकुल। (४१) कोसल, श्रावस्ती (बावरी-शिष्य) ब्राह्मणकुल। (४२) शाक्य, कपिलवस्तु, शुद्धोदनभार्या, क्षत्रियकुल। (४३) मद्रदेश सागल (=स्यालकोट) नगर, राजपुत्री, मगधराज बिंबिसारकी भार्या, (४४) कोसल, श्रावस्ती, श्रेष्ठिकुल। (४५) कोसल, श्रावस्ती, श्रेष्ठिकुल। (४६) मगध, राजगृह, विशाख-श्रेष्ठीकी भार्या। (४७) शाक्य, कपिलवस्तु, महाप्रजापती गौतमीकी पुत्री। (४८) कोसल, श्रावस्ती, कुलगेह। (४९) कोसल, श्रावस्ती, कुलगेह। (५०) मगध, राजगृह, श्रेष्ठिकुल। (५१) मद्रदेश, सागल नगर, ब्राह्मणकुल (महाकाश्यप भार्या)।

(५२)...महा-अभिज्ञा-प्राप्तोंमें भद्रा कात्यायनी० ।

(५३)...रूक्ष चीवर धारिणियोंमें कृशा गौतमी० ।

(५४)...श्रद्धा-युक्तोंमें शृगाल-माता० ।

(५५, ५६)...भिक्षुओ ! मेरे उपासक श्रावकोंमें प्रथम शरण आनेवालोंमें तपस्सु, और भल्लुक वणिक् अग्र हैं ।

(५७...दायकोंमें अनाथपिंडक सुदत्त गृहपति० ।

(५८) धर्मकथिकोंमें मच्छिकाषण्डवासी चित्र गृहपति० ।

(५९)...चार संग्रह-वस्तुओंसे परिषद् (=जमात)को मिलाकर रखनेवालोंमें हस्तक आलवक० ।

(६०)...उत्तम (= प्रणीत) दायकोंमें महानाम शाक्य० ।

(६१)...मनाप (= प्रिय) दायकोंमें वैशालीका उग्र गृहपति० ।

(६२)...संघ-सेवकोंमें उग्गत (= उद्गत) गृहपति० ।

(६३)...अत्यन्त प्रसन्नोंमें शूर अम्बष्ट० ।

(६४)...पुद्गल (=व्यक्तिगत)-प्रसन्नोंमें जीवक कौमारभृत्य० ।

(६५)...विश्वासकोंमें नकुल-पिता गृहपति० ।

(६६)...भिक्षुओ ! मेरी उपासिका श्राविकाओंमें प्रथम शरण आनेवालियोंमें सेनानी-दुहिता सुजाता अग्र है ।

(६७)...दायिकाओंमें विशाखा मृगारमाता० ।

(६८)...बहुश्रुताओंमें खुज्ज(= कुब्ज) उत्तरा० ।

(६९)...मैत्री विहार प्राप्तोंमें सामावती० ।

(७०)...ध्यानियोंमें उत्तरा नन्दमाता ० ।

---

(५२) शाक्य, कपिलवस्तु, राहुलमाता, (देवदहवासी सुप्रबुद्ध शाक्यकी पुत्री), क्षत्रिय । (५३) कोसल, श्रावस्ती (वैश्य) । (५४) मगध, राजगृह, श्रेष्ठिकुल । (५५, ५६) असितंजना नगर, कुटुम्बिक गेहमें । (५७) कोसल, श्रावस्ती, सुमन श्रेष्ठि-पुत्र ।

(५८) मगध, मच्छिकासंड, श्रेष्ठिकुल । (५९) पञ्चाल देश, आलवी (= अर्वल, जि० फर्रुखाबाद), राजकुमार । (६०) शाक्य, कपिलवस्तु, (अनुरुद्धका ज्येष्ठ भ्राता) क्षत्रिय । (६१) वज्जीदेश, वैशाली, श्रेष्ठिकुल । (६२) वज्जीदेश, हस्तिग्राम, श्रेष्ठिकुल । (६३) कोसल, श्रावस्ती, श्रेष्ठि-कुल । (६४) मगध, राजगृह, अभय-कुमारसे सालवतिका गणिकामें उत्पन्न । (६५) भग्ग (= भर्ग देश), संसुमारगिरि, श्रेष्ठिकुल । (६६) मगध, उरुवेलाके सेनानी-ग्राम, सेनानी कुटुम्बिककी पुत्री । (६७) कोसल, श्रावस्ती, (वैश्य) । (६८) वत्स, कौशाम्बी, घोषक श्रेष्ठिकी धाईकी पुत्री ।

(६९) भद्दवतीराष्ट्र, भद्दिया (=भद्रिका) नगर, भद्दवतिक श्रेष्ठि-पुत्री; (पश्चात् वत्स, कौशाम्बी, घोषित श्रेष्ठिकी धर्मपुत्री), वत्स-राज उदयनकी महिषी ।

(७०) मगध, राजगृह, सुमनश्रेष्ठीके आधीन पूर्णसिंहकी पुत्री ।

(७१)...प्रणीत-दायिकाओंमें सुप्रवासा कोलिय-दुहिता ०।
(७२)...रोगी-सुश्रूषिकाओंमें सुप्रिया उपासिका ०।
(७३)...अतीव प्रसन्नोंमें कात्यायनी (=कातियानी) ०।
(७४)...विश्वासिकाओंमें नकुल-माता गृहपत्नी (=गहपतानी) ०।
(७५)...अनुश्रव प्रसन्नोंमें कुररघरवाली काली उपासिका ०।

(६)

धम्मचेतिय-सुत्त (ई. पू. ४८५)।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् शाक्य (देश)में, मेतलूप (=मेतलुम्प) नामक शाक्योंके निगममें विहार करते थे।

उस समय राजा प्रसेनजित् कोसल किसी कामसे नगरकमें आया हुआ था। तब राजा प्रसेनजित् कोसलने [2]दीर्घ कारायणको आमंत्रित किया—

---

(७१) शाक्य, कुंडिया, सीवलीमाता, क्षत्रियकुल।
(७२) काशीदेश, वाराणसी, कुलगेह (वैश्यकुल)।
(७३) अवन्ती, कुररघर, (वैश्यकुल), सोणकुटकण्णकी माता।
(७४) भर्गदेश, सुंसुमारगिरि, नकुलपिता गृहपतिकी भार्या।
(७५) मगध, राजगृह, कुलगेहमें पैदाहुई, अवन्ती कुररघरमें ब्याही।

१. म. नि. २:२: ९।

२. धम्मपद. अ. क. (४: ३)—श्रावस्तीके महाकोसल राजाका पुत्र प्रसेनजित् कुमार, वैशालीका लिच्छवी कुमार महालि, कुसीनाराका मल्ल-राजपुत्र बंधुल, यह तीनों ही दिशा प्रामोक्ष आचार्यके पास शिल्प (=विद्या) ग्रहण करनेके लिये तक्षशिला···(गये)। (वहाँ) नगरके बाहर (धर्म-)शालामें भेंट हुई। एक दूसरेके आनेका कारण, कुल और नाम पूछकर, मित्र बन एक साथ ही आचार्यके पास जा, शीघ्र ही विद्या समाप्तकर, आचार्यसे आज्ञा ले एक साथ ही निकलकर अपने अपने स्थानको गये। उनमें प्रसेनजित् कुमारने पिताको विद्या दिखा प्रसन्नकर पितासे राज्य अभिषेक पाया; लिच्छवियोंको अपनी विद्या दिखाते समय बहुत उत्साह (=बल)के साथ दिखानेके कारण, महालि कुमारकी आँखें फूटकर निकल गईं। लिच्छवी राजाओं (=प्रजातन्त्र-सभासदों)ने—'ओहो! हमारे आचार्यकी आँखें फूट गईं, इन्हें नहीं त्यागना चाहिये, इनकी सेवा करनी चाहिये' (सोच) (शुल्कमें) एक लाख आयवाला एक (नगर-) द्वार देदिया। वह वहीं रह पाँचसौ लिच्छवी-राजकुमारोंको विद्या ग्रहण कराने रहने लगा।

बंधुल राजकुमारको मल्लराज-कुलने प्रत्येक बाँसमें लोहेकी शलाका डाल लगाकर, साठ-साठ बाँसोंके साठ कलापोंको (तलवारसे) काटनेको कहा। वह आकाशमें अस्सी हाथ उछलकर तलवारसे काटने लगा, अन्तिम कलापमें, उसने लोहेकी शलाकाके 'कटाक्' शब्द सुना। पूछनेपर सभी कलापोंमें लोह-शलाका रखी होनेकी बात सुन तलवारको फेंक, रोते हुये (बोला)—'मेरे इतने जाति-सुहृदोंमेंसे एकने भी स्नेहयुक्त हो, इस बातको न

"सौम्य कारायण ! सुन्दर यानोंको जुड़वाओ, सुभूमि देखनेके लिये उद्यानभूमि जायेंगे।"

बतलाया। यदि मैं जानता तो लोह-शलाकाके शब्द हुये बिना ही काटता'। फिर अब 'इन सबको मारकर राज्य करूँगा'—मातापितासे कहा। उन्होंने—'तात ! यह प्रवेणी (=वंशानुगत) राज्य है, यहाँ ऐसा करनेको नहीं मिलेगा'—कह निवारित किया। तब—'तो मैं अपने मित्रके पास जाऊँगा' (कह) श्रावस्ती गया। प्रसेनजित् कोसल-राजाने उसके आगमनकी बात सुन, अगवानीकर बड़े सत्कारसे नगरमें प्रवेश करा, उसे सेनापतिके पदपर स्थापित किया। बंधुल माता-पिताको बुलवाकर वहीं बस गया।'

···तथागतके सारिपुत्र, महामौद्गल्यायन स्थविर दो अग्रश्रावक (=प्रधान शिष्य); क्षेमा (=खेमा), उत्पलवर्णा दो अग्रश्राविकायें; उपासकोंमें चित्र गृहपति और हत्थक आलवक दो अग्र-श्रावक उपासक; उपासिकाओंमें वेलु-कंटकी (नगर-वासिनी) नन्दमाता, और खुज्ज-उत्तरा दो अग्रश्राविका उपासिकायें, यह आठ जने···थे-···

···राजा (प्रसेनजित्)ने—भिक्षु-संघके साथ मुझे विश्वास (समीपता) पैदा करना चाहिये, (सोच)···एक कन्या मुझे दो' (ऐसा) संदेश शाक्योंके पास भेजा···। उन्होंने एकत्रित हो—'राजा प्रबल है, यदि न देंगे, तो हमारा नाश कर देगा, कुलमें हमारे समान नहीं है, किन्तु क्या करना चाहिये ?'—सोचा। तब महानामने—'मेरी दासीके कोखसे उत्पन्न वासभखत्तिया (=वार्षभक्षत्रिया) नामक अत्यन्त सुन्दरी कन्या है, उसे देंगे'।···दूतोंसे कहलाया—'अच्छा, राजाको कन्या देंगे'। 'वह किसकी कन्या है ?' 'सम्यक्-संबुद्धके छोटे चाचाके पुत्र महानाम शाक्यकी वासभखत्तिया नामक पुत्री है।' उन्होंने जाकर राजासे कहा। राजाने—'यदि ऐसा है तो अच्छा, जल्दी ले आओ। क्षत्रिय बड़े छली (=मायावी) होते हैं, दासी-कन्या भी भेज सकते हैं, पिताके साथ एक भोजनमें खाती देखकर लाना' (कहला) भेजा।···। महानामने···उसे अलंकृत करा, अपने भोजनके समय बुलवाकर उसके साथ एक जगह भोजन करते सा दिखला दूतोंको प्रदान किया। उन्होंने उसे लेकर श्रावस्ती आ यह बात राजासे कही। राजाने संतुष्ट हो उसे पाँचसौ स्त्रियोंकी प्रधाना बना, अग्रमहिषीके पदपर अभिषिक्त किया। उसने थोड़े ही दिनोंमें सुवर्ण-वर्ण पुत्र प्रसव किया।···। राजाने···विडूडभ नाम रक्खा, और (उसे) छोटी उमरमें ही···सेनापतिका पद दिया।···

सोलह वर्षकी अवस्थामें (विडूडभ)···पितासे कहकर बड़े लोग-बागके साथ निकला।···। शाक्य विडूडभके आगमनको जानकर,···(विडूडभसे) छोटी उमरके बालकोंको देहात भेज, उसके कपिलपुरमें पहुँचनेपर, संस्थागारमें एकत्रित हुए। कुमार वहाँ जाकर खड़ा हुआ। तब उसे—'तात ! यह तेरा मातामह है, यह मातुल है,' बोले। उसने उन सबकी वन्दना करते, घूमते हुये, एकको भी अपनी वन्दना करते न देख, पूछा—'क्या है, एक भी मुझे वन्दना नहीं करता'। 'तुमसे छोटे कुमार देहात गये हुये हैं'—(कह) शाक्योंने बहुत सत्कार किया। वह कुछ दिन बासकर बड़े परिवारके साथ निकला। तब एक दासी संस्थागारमें उसके बैठनेके फलक (=तख्त)को दूध-पानीसे धोती—'यह वासभ-खत्तिया

"अच्छा देव !"…

दासीके पुत्रके बैठनेका फलक है'—कह निन्दा कर रही थी। (विडूडभका) एक आदमी अपना हथियार भूल गया, वह उसे लेनेके लिये लौटा। उसे लेते समय विडूडभ-कुमारकी निन्दाके ये शब्द सुन, उससे यह बात पूछकर, (उसने)…सेनामें आकर, कह दिया—'वासभ-खत्तिया महानाम शाक्यकी दासीसे उत्पन्न हुई है'। बड़ा कोलाहल मचा। उसे सुनकर (विडूडभने) चित्तमें ठान लिया,—'यह मेरे बैठनेके तख्तको क्षीरोदकसे धोते हैं, मैं राज-गद्दीपर बैठ उनके गलेका रक्त ले अपने तख्तको धुलवाऊँगा'। उसके श्रावस्ती जानेपर अमात्योंने यह बात राजासे कही। राजाने…शाक्योंसे क्रुद्ध हो वासभ-खत्तिया, विडूडभ, दोनों माता-पुत्रको दिया सामान छीनकर, (उन्हें) दास-दासीके योग्य स्थान दिलवाया। कुछ दिन बाद शास्ता राज-महलमें जाकर बैठे। राजाने आकर वन्दना कर…(सब बात) कह दिया। शास्ताने कहा— 'महाराज! शाक्योंने अयुक्त किया…। महाराज! मैं तुमसे कहता हूँ—वासभ-खत्तिया राज-दुहिता है, क्षत्रिय राजाके गेहमें उसने अभिषेक पाया है। विडूडभ भी क्षत्रिय राजासे ही उत्पन्न हुआ है। माताका गोत्र क्या करेगा, (पिताका गोत्र) काफी (=प्रमाण) है। …। सुनकर (राजाने)…संतुष्ट हो फिरसे माता-पिताको (उनका) प्रकृत परिहार (=सम्मान) दे दिया।

बंधुल सेनापतिकी भार्या…मल्लिकाको देरतक संतान न हुई।…(फिर) गर्भ होनेपर…'मुझे दोहद (=गर्भिणीकी किसी चीजकी इच्छा) उत्पन्न हुआ है'—कहा। 'क्या दोहद है?' 'वैशाली नगरमें गण (=प्रजातंत्र)-राज-कुलकी अभिषेक-पुष्करिणीमें उतरकर नहाकर पानी पीना चाहती हूँ, स्वामी!' बंधुल 'अच्छा कह'…'सहस्र (—मनुष्य)-बल (-से नमने)वाला धनुष ले, उसे रथपर चढ़ा श्रावस्तीसे निकला। रथ हाँकते महाली लिच्छविको दिये द्वारसे वैशालीमें प्रविष्ट हुआ।…। पुष्करिणीके भीतर और बाहर जबर्दस्त पहरा था, ऊपर लोहेका जाल बिछा हुआ था, पंछीके भी जानेका स्थान न था। बंधुल सेनापतिने रथसे उतरकर बेंतसे पहरेवालोंको पीटकर भगा, लोहजालको फाड़कर, पुष्करिणीके भीतर भार्याको नहलाया, और स्वयं भी नहा, फिर उसी रथपर चढ़, नगरसे निकलकर, आनेके रास्तेसे ही चल दिया। पहरेवालोंने लिच्छवियोंसे कहा। लिच्छवी राजा क्रुद्ध होकर पाँचसौ रथोंपर आरूढ़ हो—'बंधुलमल्लको पकड़ेंगे'—(कह) निकले। (लोगोंने) यह समाचार महालीसे कहा। महालीने कहा—'मत जाओ, यह तुम सबको मार डालेगा'। किंतु उन्होंने कहा—'हम जायेंगे ही'…वह सभी मारे गये! बंधुल मल्लिकाको लेकर श्रावस्ती गया। उसने सोलह बार जुड़वे पुत्र जने। वह सभी शूर बलवान् हुये, सभी विद्या (=शिल्प) में निष्णात थे।…एक दिन मनुष्योंने बंधुलको आते देखकर बड़ी दोहाई दे,…न्यायाधीशोंके रिश्वत लेकर फैसला करनेकी बात कही। उसने अदालतमें जा उस झगड़ेका फैसलाकर, स्वामी ही को स्वामी बनाया। लोगोंने बड़े जोरसे 'साधुवाद' दिया। राजाने…पूछकर, उस बातको सुन संतुष्ट हो उन सभी अमात्योंको हटा, बंधुलको ही विनिश्चय (=न्यायविभाग) दे दिया। वह तबसे ठीक ठीक न्याय करने लगा। पुराने न्यायाधीशों (=विनिश्चयिकों)ने रिश्वत (=लंच) न पानेसे…'बंधुल राज्य ले लेना चाहता है'' (कहकर) राजकुलमें फूट

"देव ! सुन्दर सुन्दर यान जुत गये, अब जिसका देव काल समझते हों ।"[1]

डाल दी । राजा उनकी बात मानकर, अपने मनको न रोक-सका । 'इसको यहीं मारनेसे बड़ी निन्दा होगी'—सोच,…'सीमान्तमें बलवा हो गया, अपने पुत्रोंके साथ जाकर बलवाइयों (= चोरे)को पकड़ो' कहके भेज दिया ।…लौटते वक्त…नगरसे अविदूरस्थानमें (राजाके भेजे) योधाओंने पुत्रके साथ (बंधुलमल्ल)का शिर काट लिया ।…

…(पीछे) राजाके चर पुरुषोंने राजाको इनके (=बंधुल और उसके पुत्रोंके) निर्दोष होनेकी बात कही। राजाने संविग्न हो…उसके घर जा, मल्लिका और उसकी बहुओंसे क्षमा माँगी ।…(मल्लिका) कुसीनारामें अपने कुलघरको चली गई। राजाने बंधुलमल्लके भांजे दीर्घ-कारायणको सेनापतिका पद दिया । वह 'इसने मेरे मामाको मारा है' (सोच) मौका ढूँढ रहा था। राजा भी निरपराध बंधुलके मारे जानेके समयसे ही खिन्न हो न चैन पाता था, न राज्य-सुख ही अनुभव करता था । उस समय शास्ता शाक्योंके उलुम्प नामक निगम (=कस्बे) में विहार करते थे । राजा वहां जा, आरामके अविदूर छावनी (=स्कंधावार) डाल, थोड़ेसे परिवारके साथ विहारमें जा, पांच राज-ककुध-भांड (=छत्र, व्यजन, उष्णीष, खड्ग, और पादुका) दीर्घकारायणको दे, अकेलाही गंध-कुटीमें गया । उसके गंधकुटीमें जातेही कारायण उन राज-ककुध-भाण्डोंको ले विडूडभको राजा बना, राजाके लिए एक घोड़ा और एक सेविका छोड़ श्रावस्ती चला गया । राजा ने शास्ताके साथ प्रिय-कथा कह, निकल-कर, सेनाको न देख, स्त्रीसे पूछा । सब बात सुन, भांजे (=अजातशत्रु) को लेकर विडूडभको पकड़नेकी बात सोच, राजगृह नगरको जाते, संध्याकालमें नगरद्वारके बन्द हो जानेपर, एक (धर्म–)-शालामें ठहरा । धूप-हवामें थका (होनेसे)…रातको वहीं मर गया ।…भोरको "कोसलनरेन्द्र अनाथ होगये," कह चिल्लाती उस स्त्रीके शब्दको सुनकर, (लोगोंने) राजाको सूचित किया । उसने बड़े सत्कारसे मामा की शरीर-क्रिया की ।

विडूडभ भी राज्यप्राप्तकर उस वैरको स्मरणकर सभी शाक्योंके मारनेके लिये बड़ी सेना के साथ निकला । उस दिन भगवान्…कपिलवस्तुके पास जा एक कबरी छायावाले वृक्षके नीचे बैठे थे । वहां (पास हीमें) विडूडभकी राज्यसीमामें बड़ी घनी छायावाला बर्गदका वृक्ष था । विडूडभने शास्ताको देख, जा वन्दनाकर कहा—

'भन्ते ! ऐसे गर्मीके समय इस कबरी-छायावाले वृक्षके नीचे बैठे हैं ? इस घनी छायावाले बर्गदके नीचे बैठें ।…

'ठीक है महाराज ! ज्ञातकों (=भाई-बन्दों) की छाया ठंडी होती है ।' कहनेपर—'शास्ता ज्ञातकोंके बचानेके लिये आये हैं'—सोच, शास्ताको वन्दनाकर, लौट गया ।…। राजा दूसरी बारभी…उसी प्रकार शास्ताको देखकर लौट गया । तीसरीबार भी…। चौथी बार… शास्ता न गये । विडूडभ शाक्योंके मारनेके लिये बड़ी सेनाके साथ निकला…।…(और) बोला—'जो कहें हम शाक्य हैं, उनको मारो, किन्तु मेरे नाना महानामके पास खड़े हुओंको जीवन-दान दो ।' शाक्यों (में) …कोई मुंहमें तिनका दबाकर खड़े हो गये, कोई कोई नल (=नरकट) पकड़कर खड़े हो गये । 'तुम शाक्य हो' पूछने पर …तिनका दबाये हुये बोले—'शाक नहीं नल है' । उनमेंसे महानामके पास खड़े हुये जान बचा पाये । उनमें

एक समय राजा प्रसेनजित्० भद्र (=सुन्दर) यानपर आरूढ हो, भद्र भद्र यानोंके साथ, बड़े राजसी ठाटसे नगरकसे निकल कर, जहाँ आराम था, वहाँ गया। जितनी यानकी भूमि थी, उतना यानसे जा, यानसे उतर पैदलही आराममें प्रविष्ट हुआ। राजा प्रसेनजित्‌ने टहलते हुये आराममें शब्द-रहित, घोष-रहित, निर्जन,…ध्यान-योग्य मनोहर वृक्ष-मूलोंको देखा। देखकर भगवान्‌की ही स्मृति उत्पन्न हुई—यह वैसेही ०मनोहर वृक्षमूल हैं, जहाँ पर हम भगवान् ०सम्यक् संबुद्धकी उपासना (= सत्संग) करते थे। तब राजा ०ने दीर्घ कारायणको पूछा—

"सौम्य कारायण! यह ०मनोहर वृक्षमूल हैं, जहाँपर०। सौम्य कारायण! इस समय वह भगवान् ०कहाँ विहरते हैं?"

"महाराज! शाक्योंका मेतलूप नामक निगम (=कस्बा) है, वह भगवान्० वहाँ पर विहर रहे हैं।"

"सौम्य कारायण! नगरकसे कितनी दूरपर शाक्योंका यह मेतलूप निगम है?"

"महाराज! दूर नहीं, तीन योजन है। बाकी बचे दिनमें पहुँचा जा सकता है।"

"तो सौम्य कारायण! जुड़वा भद्रयानों को, हम भगवान्०के दर्शनके लिये वहाँ चलेंगे।" "अच्छा देव!"…

…तब राजा प्रसेनजित् सुन्दर यानपर आरूढ हो० नगरसे निकलकर,…उसी बचे दिनमें शाक्योंके निगम मेतलूपमें पहुँच जहाँ आराम था, वहाँ चला। जितनी यानकी भूमि थी, उतनी यानसे जा, यानसे उतर कर पैदल ही आराममें प्रविष्ट हुआ।

उस समय बहुतसे भिक्षु खुली जगहमें टहल रहे थे०। राजा प्रसेनजित्‌ने वहीं खड्ग और उष्णीष दीर्घ करायणको दे दिया। दीर्घकारायणने सोचा—"मुझे राजा यहीं, ठहरा रहा है; इसलिये मुझे यहीं खड़ा रहना होगा।" तब राजा० जहाँ वह द्वारबंद विहार था० गया। भगवान्‌ने दर्वाजा खोल दिया। राजा० विहार (= गंधकुटी) में प्रविष्ट हो, भगवान्‌के चरणों-में शिरसे पड़कर'०।

"क्या है महाराज! क्या बात देखकर महाराज! इस शरीरमें इतना गौरव दिखलाते हो, विचित्र उपहार (= संमान) प्रदर्शन कर रहे हो?"

'भन्ते! भगवान्‌में मेरा धर्म अन्वय (= धर्म-संबंध) है—भगवान् सम्यक् संबुद्ध हैं, भगवान्‌का धर्म स्वाख्यात है, संघ सुमार्ग पर आरूढ है। भन्ते! किन्हीं किन्हीं श्रमण-ब्राह्मणोंको मैं स्वल्प कालिक (= पर्यंतक) ब्रह्मचर्य पालन करते देखता हूँ—दशवर्ष, बीस

तिनका दबाकर रखे पीछे तृण-शास्य कहलाये, नल पकड़कर रहे नल-शास्य कहलाये। बाकी दूध पीनेवाले बच्चों तकको बिना-छोड़े मरवाकर, खूनकी नदी बहवा (विडूडभने) उनके गलेके खूनमें फलकको धुलवाया। इस प्रकार शाक्यवंशको विडूडभने वरिहत किया…। रातके समय उसने अचिरवती नदीके तटपर पहुँच छावनी डाली। कोई कोई नदीके भीतर बालुका-पुलिन पर लेटे, कोई कोई बाहर स्थलपर।…उसी समय मेघने उठकर घना औला बरसाया; और नदीमें आई बाढ़ने सेना-सहित उसे समुद्रमें पहुँचा दिया।…''

१. देखो पृष्ठ ४४०।

वर्ष, तीस वर्ष, चालीस वर्षभी। वह दूसरे समय सु-स्नात, सु-विलिप्त, केश-श्मश्रु बनवा (= कल्पित कर) पाँच कामगुणोंसे समर्पित = सम्-अंगीभूत हो, विचरण करते हैं। भन्ते! भिक्षुओंको मैं देखता हूँ, जीवनभर···परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य पालन करते हैं। भन्ते! यहाँसे बाहर दूसरा इतना परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य नहीं देखता। भन्ते! यह भी (कारण है) कि भगवान् मुझे धर्म-दर्शन (= धर्म-अन्वय) होता है,—'भगवान् सम्यक् संबुद्ध हैं, भगवान्का धर्म स्वाख्यात है, संघ सु-प्रतिपन्न (= सुमार्गारूढ) है।

"और फिर भन्ते! राजाभी राजाओंसे विवाद करते हैं, क्षत्रिय क्षत्रियके साथ विवाद करते हैं, ब्राह्मणभी०, गृहपति (= वैश्य) भी०, माताभी पुत्रके साथ०, पुत्रभी माताके साथ०, पिता भी पुत्रके साथ०, पुत्र भी पिताके साथ०, भाई भी भाईके साथ०, भाई भी बहिनके साथ०, बहिन भी भाईके साथ०, मित्र भी मित्रके साथ०। किन्तु यहाँ भन्ते! मैं भिक्षुओंको समग्र (= एकराय), संमोदमान (= एक दूसरेसे मुदित), विवाद-रहित, दूध-जल-बने, एक दूसरेको प्रिय-चक्षुसे देखता विहार करता देखता हूँ। भन्ते! यहाँसे बाहर मैं (कहीं) ऐसी एकराय परिषद् नहीं देखता। यह भी भन्ते!०।

"और फिर भन्ते! मैं (एक) आरामसे (दूसरे) आराममें, (एक) उद्यानसे (दूसरे) उद्यानमें, टहलता हूँ, विचरता हूँ; वहाँ मैं किन्हीं किन्हीं श्रमण ब्राह्मणोंको कृश, रूक्ष, दुर्वर्ण, पीले-पीले, नाड़ी-बँधे गात्रवाले (देखता हूँ); मानों लोगोंके दर्शन करनेसे आँखोंको बंद कर रहे हैं। तब भन्ते! मुझे ऐसा होता है—'निश्चय यह आयुष्मान् या तो बेमन (= अन्-अभिरत) हो ब्रह्मचर्य कर रहे हैं, या इन्होंने कोई छिपा हुआ पापकर्म किया है, जिससे कि यह आयुष्मान् कृश०। उनके पास जाकर मैं ऐसे पूछता हूँ—'आयुष्मानो! तुम कृश०?' वह मुझे कहते हैं—'महाराज! हमें बंधुक-रोग (= कुल-रोग) है।' किन्तु भन्ते! मैं यहां भिक्षुओंको हृष्ट = प्रहृष्ट = उदग्र, अभिरत = प्रसन्न-इन्द्रिय उत्सुकता-रहित, रोमांच-रहित, ···मृदु-चित्तसे विहार करते देखता हूँ। यह भी भन्ते!०।

"और फिर भन्ते! मैं मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा हूँ, मारने योग्यको मरवा सकता हूँ,···निर्वासन योग्यको निर्वासन कर सकता हूँ। ऐसा होते भी भन्ते! मेरे (राज-) कार्यमें बैठे वक्त, (लोग) बीच बीचमें बात डाल देते हैं। उनको मैं (कहता हूँ)—'मैं (काम करने) नहीं पाता, आप लोग कार्य करनेके लिये बैठे वक्त बीच बीचमें बात मत डालें; बात समाप्त हो जाने तक प्रतीक्षा करें।' तो (भी)···बीच बीचमें बात डाल ही देते हैं। किंतु यहां भन्ते! मैं भिक्षुओंको देखता हूँ, जिस समय भगवान् अनेक शतकी परिषद्को धर्म-उपदेश करते हैं; उस समय भगवान्के श्रावकोंके थूकने खाँसनेका भी शब्द नहीं होता। भन्ते! पहिले एक समय भगवान् अनेक शत परिषद्को धर्म-उपदेश कर रहे थे, उस समय भगवान्के एक श्रावक (= शिष्य) ने खाँसा। तब उसे एक सब्रह्मचारीने घुटने को दबाकर इशारा किया—आयुष्मान् निःशब्द हों, आयुष्मान् शब्द मत करें, शास्ता भगवान् हमें धर्म-उपदेश कर रहे हैं। तब मुझे ऐसा हुआ—'आश्चर्य है जी! अद्भुत है जी!! जो बिना दंडके ही, बिना शस्त्रके ही, इस प्रकारकी विनय-युक्त (= विनीत) परिषद् !!!' यहांसे बाहर भन्ते! मैं दूसरी इस प्रकारकी सु-विनीत परिषद् नहीं देखता। यह भी०।

"और फिर भन्ते! मैं किन्हीं किन्हीं निपुण, कृतपरप्रवाद (=प्रौढ़ शास्त्रार्थी) बाल-वेधी क्षत्रिय-पंडितोंको देखता हूँ; (जो) मानो (अपनी) प्रज्ञा-गत (युक्तियोंसे) (दूसरेके) दृष्टि-गत (=मतविषयक बातों) को टुकड़े टुकड़े करे डालते हैं। वह सुनते हैं—'श्रमण गौतम अमुक ग्राम या निगममें आयेगा'। वह प्रश्न तय्यार करते हैं—इस प्रश्नको हम श्रमण गौतमके पास जाकर पूछेंगे; ऐसा पूछनेपर यदि ऐसा उत्तर देगा, तो हम इस प्रकार उससे वाद रोपेंगे। वह सुनते हैं—'श्रमण गौतम अमुक ग्राम या निगममें आगया'। वह जहाँ भगवान् (होते हैं) वहाँ जाते हैं। वह भगवान्की धार्मिक-कथा द्वारा संदर्शित हो, प्रेरित हो, समुत्तेजित हो, संप्रहर्षित हो, भगवान्से प्रश्न भी नहीं पूछते, वाद कहाँसे रोपेंगे? बल्कि भगवान्के श्रावक ही बन जाते हैं। यह भी०।

"और फिर भन्ते! मैं किन्हीं किन्हीं० ब्राह्मण पंडितों०।"

"०गृहपति पंडितों०।"

"०श्रमण पंडितों०। भगवान्से प्रश्न भी नहीं पूछते, वाद कहाँसे रोपेंगे; बल्कि भगवान्से ही घरसे बेघर हो प्रव्रज्या माँगते हैं। उन्हें भगवान् प्रव्रजित करते हैं। वह इस प्रकार प्रव्रजित हो एकाकी० आत्म-संयमी हो विहरते, जल्दी ही जिसके लिये कुलपुत्र ०प्रव्रजित होते हैं, उस अनुत्तर (=सर्वोत्तम) ब्रह्मचर्य-फलको इसी जन्ममें स्वयं अभिज्ञानकर, साक्षात्कारकर, प्राप्तकर विहरते हैं। वह ऐसा कहते हैं—हम नष्ट थे, हम प्र-नष्ट थे; हम पहिले अ-श्रमण होते ही 'श्रमण हैं' का दावा करते थे; अ-ब्राह्मण होते 'ब्राह्मण हैं' का दावा करते थे। अर्हत् न होते 'अर्हत् हैं' का दावा करते थे। अब हैं हम श्रमण,० ब्राह्मण, ०अर्हत्। यह भी०।

"और फिर भन्ते! यह ऋषिदत्त और पुराण स्थपति (=फीलवान्) मेरे ही (भोजनसे) भोजनवाले, मेरे ही (यानसे) यानवाले हैं, मैं ही उनके जीवनका प्रदाता, उनके यशका प्रदाता हूँ; तो भी (यह) मेरा उतना सन्मान नहीं करते, जितना कि भगवान्का। पहिले एक बार भन्ते! मैं चढ़ाईके लिये जाता था। ऋषिदत्त और पुराण स्थपतिने खोजकर एक! भीड़वाले आवसथ (=सराय)में वास किया। तब भन्ते! यह ऋषिदत्त और पुराण बहुत रात धर्म-कथामें बिता, जिस दिशामें भगवान्के होनेको सुना था, उधर शिरकर, मुझे पैरकी ओर करके लेट गये। तब मुझे ऐसा हुआ—'आश्चर्य है जी! अद्भुत है जी!! यह ऋषिदत्त और पुराण स्थपति मेरे ही भोजनसे भोजनवाले०। यह आयुष्मान् उन भगवान्के शासनमें (=श्रद्धालु) हो, पहिलेसे अवश्य कोई विशेष देखते होंगे। यह भी०।

"और फिर भन्ते! भगवान् भी क्षत्रिय हैं, मैं भी क्षत्रिय हूँ, भगवान् भी कोसलक (=कोसलवासी, कोसल-गोत्रज) हैं, मैं भी कोसलक हूँ। भगवान् भी अस्सी वर्षके, मैं भी अस्सी वर्षका। भन्ते! जो भगवान् भी क्षत्रिय०, इससे भी भन्ते! मुझे योग्य ही है, भगवान्का परम सन्मान करना, विचित्र गौरव प्रदर्शित करना। हन्त! भन्ते! अब हम जावेंगे, हम बहुकृत्य बहु-करणीय हैं।"

"महाराज! जिसका तुम काल समझते हो (वैसा करो)।"

तब राजा प्रसेन-जित्० आसनसे उठ, भगवान्‌को अभिवादनकर, प्रदक्षिणा कर चला गया।

राजा० के जानेके थोड़ीही देर भगवान्‌ने भिक्षुओंको कहा—

"भिक्षुओ! यह राजा प्रसेनजित्० धर्म-चैत्योंका भाषणकर आसनसे उठकर चला गया। भिक्षुओ! धर्मचैत्योंको सीखो, ०धर्मचैत्योंको पूरा करो, ०धर्मचैत्योंको धारण करो। भिक्षुओ! धर्म-चैत्य सार्थक और आदि (=शुद्ध) ब्रह्मचर्यके हैं।"

भगवान्‌ने यह कहा। सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान्‌के भाषणका अभिनंदन किया।

× × ×

(७)

सामगाम-सुत्त (ई. पू. ४८५)।

ऐसा[1] मैंने सुना—एक समय भगवान् शाक्य (देश) में, सामगाम में विहार करते थे।

उस समय निगंठ नाथपुत्त (=जैन तीर्थंङ्कर महावीर) अभी अभी पावामें मरे[2] थे। उनके मरने पर निगंठ (=जैन साधु) लोग दो भाग हो, भंडन=कलह=विवाद करते, एक दूसरेको मुखरूपी शक्तिसे छेदते विहर रहे थे—'तू इस धर्म-विनय (=धर्म) को नहीं जानता, मैं इस धर्म-विनयको जानता हूं'। तू क्या इस धर्म-विनयको जानेगा, तू मिथ्यारूढ़ है, मैं सत्यारूढ़ हूं'। 'मेरा (कथन अर्थ-) सहित है, तेरा अ-सहित है'। 'तू पूर्व बोलने (की बात) को पीछे बोला; पीछे बोलने (की बात) को पहिले बोला।' 'तेरा (वाद) विना-विचारका उलटा है'। 'तूने वाद रोपा, तू निग्रह-स्थानमें आ गया'। 'जा वादसे छूटनेके लिये फिरता फिर'। 'यदि सकता है तो समेट'। नाथ-पुत्तीय निगंठोंमें मानो युद्ध (=वध) ही हो रहा था।

निगंठके श्रावक (=शिष्य) जो गृही श्वेत वस्त्रधारी (थे), वह भी नाथ-पुत्तीय निगंठोंमें (वैसेही) निर्विण्ण=विरक्त=प्रतिवाण-रूप थे, जैसे कि (नाथ-पुत्तके) दुर्-आख्यात (=ठीकसे न कहे गये), दुष्-प्रवेदित (=ठीकसे न साक्षात्कार किये गये), अनैर्याणिक (=पार न लगाने

---

१. अ. क. "राजगृह जाते हुये रास्तेमें कु-अन्न भोजन किया, और बहुत पानी पिया। सुकुमार स्वभाव होनेसे भोजन अच्छी तरह नहीं पचा। वह राजगृहके द्वारोंके बंद होजानेपर संध्या (=विकाल)को वहाँ पहुँचा।...। नगरके बाहर (धर्म-)शालामें लेटा। उसे रातके समय दस्त (=बुद्धान) लगने शुरू हुये। कुछ बार वह बाहर गया। फिर पैरसे चलनेमें असमर्थ हो, उस स्त्रीके अंकमें पड़कर बड़े भोर ही मर गया।...। राजा (अजातशत्रु)ने...विडूडभके निग्रहके लिये भेरी बजाकर सेना जमा की...। अमात्योंने पैरोंपर पड़कर...रोका...।"

२. म. नि. ३ : १ : ४।

३. अ. क. "यह नात-पुत्त तो नालन्दावासी था, वह कैसे और क्यों पावामें मरा? सत्य लाभी उपालि गृहपतिके दश गाथाओंसे भाषित बुद्ध-गुणोंको सुनकर, उसने गर्म लून फेंक दिया। तब अस्वस्थही उसे पावा ले गये। वह वहाँ मरा।"

वाले), अन्-उपशम-संवर्तनिक (=न-शांति-गामी); अ-सम्यक्-संबुद्ध-प्रवेदित (=किसी बुद्धसे न जाने गये), प्रतिष्ठा (=नींव)-रहित=भिन्न-स्तूप, आश्रयरहित धर्म-विनयमें (थे)।

तब [1]चुन्द समणुद्देस पावामें वर्षावास कर, जहाँ सामगाम था, जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् आनन्दको अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे चुन्द श्रमणोद्देशने आयुष्मान् आनन्दको कहा—

"भन्ते! निगंठ नाथपुत्त अभी अभी पावामें मरे हैं। उसके मरनेपर॰ नाथ-पुत्रीय निगंठोंमें मानों युद्ध ही हो रहा है। ॰आश्रय-रहित धर्म-विनयमें (थे)।"

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् आनन्दने चुन्द श्रमणोद्देशको कहा—

"आवुस चुन्द! भगवान्के दर्शनके लिये यह बात भेंट रूप है। आओ आवुस चुन्द! जहाँ भगवान् हैं, वहाँ चलें। चलकर यह बात भगवान्को कहें।" "अच्छा भन्ते!"……

तब आयुष्मान् आनन्द और चुन्द श्रमणोद्देश जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् आनन्दने भगवान्को कहा—

"भन्ते! यह चुन्द समणुद्देस ऐसा कह रहे हैं—'भन्ते! निगंठ नाथपुत्त अभी अभी पावामें मरे हैं॰।' तब भन्ते! मुझे ऐसा होता है, भगवान्के बाद भी (कहीं) संघमें ऐसा ही विवाद मत उत्पन्न हो। वह विवाद बहुतजनोंके अहितके लिये, बहुत जनोंके असुखके लिये, बहुत जनोंके अनर्थके लिये, देव-मनुष्योंके अहित और दुःखके लिये (होगा)।"

"तो क्या मानते हो आनन्द! मैंने साक्षात्कार कर जिन धर्मोंका उपदेश किया, जैसे कि—(१) चार स्मृति प्रस्थान, (२) चार सम्यक् प्रधान, (३) चार ऋद्धिपाद, (४) पाँच इन्द्रियाँ, (५) पाँच बल, (६) सात बोध्यंग, (७) आर्य अष्टांगिक मार्ग। आनन्द! क्या इन धर्मोंमें दो भिक्षुओंका भी अनेक मत (दीखता) है?"

"भन्ते! भगवान्ने जो यह धर्म साक्षात्कारकर उपदेश किये हैं, जैसे कि—(१) चार स्मृति-प्रस्थान॰। इन धर्मोंमें भन्ते! मैं दो भिक्षुओंका भी अनेक मत नहीं देखता। लेकिन भन्ते! जो पुद्गल भगवान्के आश्रयसे विहरते हैं, वह भगवान्के न रहनेके बाद, संघमें आजीव (=जीविका)के विषयमें, प्रातिमोक्ष (=भिक्षु नियम)के विषयमें विवाद पैदा कर सकते हैं, वह विवाद बहुत जनोंके अहितके लिए, बहुत जनोंके अ-सुखके लिये, बहुत जनोंके अनर्थ=अहितके लिये, देव-मनुष्योंके॰ दुःखके लिये होगा।"

"आनन्द! जो यह आजीवके विषयमें या प्रातिमोक्षके विषयमें विवाद है, वह अल्प-मात्रक (=छोटा) है। मार्ग या प्रतिपद्के विषयमें यदि संघमें विवाद…उत्पन्न हो, वह विवाद ॰अहितके लिये॰। आनन्द! विवादके यह छ मूल हैं। कौनसे छ? आनन्द! भिक्षु (१) क्रोधी, पाखंडी (=उपनाही) होता है। जो भिक्षु आनन्द! क्रोधी उपनाही होते

---

१. अ. क. "यह स्थविर धर्मसेनापति (=सारिपुत्र)के छोटे भाई थे। उनको उप-सम्पन्न न होनेके समय भिक्षु चुन्द समणुद्देस कहा करते थे, स्थविर हो जानेपर भी वही कहते रहे।"

है, वह शास्ता (= गुरु)में गौरव-रहित, आश्रय रहित हो विहरता है, धर्ममें भी०, संघमें भी०, शिक्षा (= भिक्षु-नियम)में त्रुटि करनेवाला होता है, वही संघमें विवाद पैदा करता है। वह विवाद बहुतजनोंके अहितके लिये० होता है। इसलिये आनन्द ! इस प्रकारके विवाद-मूलको यदि तुम अपनेमें या दूसरेमें देखना, तो आनन्द ! तुम इस पापी विवाद-मूलके विनाशके लिये प्रयत्न करना। ०यदि ०देखना, तो आनन्द ! तुम इस पापी विवाद-मूलको, भविष्यमें न होने देनेके लिये उपाय करना, इस प्रकार इस पापी विवाद-मूलकी भविष्यमें अनुत्पत्ति होगी। (२) और फिर आनन्द ! भिक्षु, मर्षी, पलासी होता है, जो भिक्षु आनन्द ! मर्षी०। (३) ईर्ष्यालु, मत्सरी०। (४) शठ, मायावी०। (५) ०पापेच्छु (= बद्-नीयत), मिथ्या-दृष्टि०। (६) दृष्टि-परामर्षी, आधान-ग्राही०। आनन्द ! यदि अपनेमें या दूसरेमें इस प्रकारके विवाद-मूलको देखना, वहाँ आनन्द ! तुम इस पापी विवाद-मूलके विनाशके लिये प्रयत्न करना, ०इस पापी विवाद-मूलकी भविष्यमें अनुत्पत्तिके लिये उपाय करना; इस प्रकार इस पापी (= दुष्ट) विवाद-मूलका प्रहाण (=विनाश) होता है; इस प्रकार ०इस पापी विवाद-मूलकी भविष्यमें अनुत्पत्ति होती है। आनन्द ! यह छ विवाद मूल हैं।

"आनन्द ! यह चार अधिकरण हैं। कौनसे चार ?[1] (१) विवाद-अधिकरण, (२) अनुवाद-अधिकरण, (३) आपत्ति-अधिकरण, (४) कृत्य-अधिकरण।

"आनन्द ! यह सात अधिकरण-समथ है, जिन्हें तब तब (=समय-समय पर) उत्पन्न हुये अधिकरणों ० (झगड़ों) के शमथ = उपशम (= शांति) के लिये देना चाहिये, (१) संमुख विनय देना चाहिये, (२) स्मृति-विनय ०, (३) अ-मूढ़-विनय ०। (४) प्रतिज्ञात-करण, (५) [1]यद्भूयसिक, (६) तत्पापीयसिक, (७) तिणवत्थारक।"

"आनन्द ! संमुख विनय कैसे होता है?···आनन्द ! भिक्षु विवाद करते हैं—धर्म है या अधर्म, विनय है या अविनय। आनन्द ! उन सभी भिक्षुओंको एक जगह एकत्रित होना चाहिये। एकत्रित हो धर्म (रूपी) रस्सीका (ज्ञानसे) परीक्षण करना चाहिये, जैसे वह शांत हो, वैसे उस अधिकरण (= झगड़े)को शांत करना चाहिये। इस प्रकार आनन्द ! संमुख-विनय होता है, इस प्रकार संमुख-विनयसे भी किन्हीं किन्हीं अधिकरणोंका शमन होता है।

"कैसे आनन्द ! स्मृति-विनय होता है ? यहाँ आनन्द ! भिक्षु भिक्षुपर पाराजिका या पाराजिका-समान (=[1]सामन्तक) आपत्ति (= दोष)का आरोप करते हैं—'स्मरण करो आवुस ! तुम पाराजिका या पाराजिका-समान, ऐसी बड़ी (=गुरुक) आपत्तिसे आपन्न हुये। वह ऐसा उत्तर देता है—आवुस ! मुझे याद (= स्मृति) नहीं कि मैं ०ऐसी गुरुक-आपत्तिसे आपन्न हूँ। उस भिक्षुको आनन्द ! स्मृति-विनय देना चाहिये। इस प्रकार

1. चुल्लवग्ग. ४ (समथ खंधक) "··· क्या है विवाद-अधिकरण ?···भिक्षु विवाद करते हैं—धर्म है या अधर्म, विनय है या अविनय; तथागतका भाषित···है या अभाषित···, तथागतने ऐसा आचरण किया, या···नहीं; तथागतने प्रज्ञप्त किया, या···नहीं; आपत्ति है या अनापत्ति (अ-दोष); लघु आपत्ति है या गुरु आपत्ति; स-अवशेष (= बाकी रखकर)

आनन्द ! स्मृति-विनय होता है। इस स्मृति विनयसे भी किन्हीं किन्हीं झगड़ोंका निपटारा होता है।

आपत्ति है या अन्-अवशेष आपत्ति; दुट्ठुल्ल आपत्ति है, या अदुट्ठुल्ल आपत्ति। जो यहाँ भंडन=कलह=विग्रह=विवाद, नानावाद, अन्यथावाद है···यही विवादाधिकरण कहा जाता है। क्या है अनुवाद अधिकरण ?···भिक्षु भिक्षुको शील-विपत्ति (=शीलसंबंधी दोष) से, या आचार-विपत्तिसे, या दृष्टि(=सिद्धांत)-विपत्तिसे या आजीव-विपत्तिसे, अनु-वाद (=दोषारोप) करते हैं।···अनुवाद=अनु-वदना=अनुल्लपना···।···क्या है आपत्ति-अधिकरण ? जो संघका कृत्य करणीय (है, जैसे, संघका) अवलोकन-कर्म, ज्ञप्ति (=संघको सूचना)-कर्म, ज्ञप्ति द्वितीयकर्म, ज्ञप्ति-चतुर्थकर्म—यह कृत्याधिकरण कहा जाता है। २. चुल्लवग्ग (४)—"अनुज्ञा करता हूँ भिक्षुओ ! इस प्रकारके अधिकरणका यद्भूयसिकसे उपशमन करना। पाँच अङ्गों (=गुणों)से युक्त भिक्षुको शलाका (=वोटकी शलाका जो बैलटकी जगह व्यवहृत होती थी)-ग्राहापक (=शलाका बाँटनेवाला) मानना चाहिये—(१) जो अपनी रुचिके रास्ते न जाये, (२) न द्वेषके रास्ते जाये, (३) न मोहके रास्ते जाये, (४) न भयके रास्ते जाये (५) न (पहिलेसे) पकड़े रास्ते जाय।···। यद्भूयसिक क्या है ? (यह) जो बहुमतके अनुसार (=यद्भूयसिक) कर्मका करना,··· (कर्मका) स्वीकार करना, इस प्रकार झगड़ा शांत हो जाय, फिर (वादी) उसका उत्कोटन (=अमान्य, विरोध) करे, तो उसे उत्कोटन-प्रायश्चित्त (करना होगा); छन्द-दायक (=वोटर, मतदाता) यदि असंतोष प्रकट करे (=ख्रीयति), तो ख्रीयनक-प्रायश्चित्त।···। 'अनुज्ञा करता हूँ, भिक्षुओ !···तीन प्रकारके शलाका-ग्रहण (=Voting)को—(१) गूढ़क, (२) स-कर्ण-जल्पक, और (३) विवृतक। भिक्षुओ ! गूढ़ शलाका ग्राह कैसे होता है ?। उस शलाकाग्राहापक भिक्षुको शलाकायें रङ्गीन, बेरङ्गीन बनाकर एक एक भिक्षुके पास जाकर यह कहना चाहिये—'यह ऐसे पक्षवालेकी शलाका है, यह ऐसे पक्षकी०, जिसे चाहो ले लो।' (शलाकायें) ग्रहणकर लेनेपर, बोलना चाहिये—'किसीको मत दिखलाओ।' यदि जाने कि अधर्म-वादी (=उलटा लेनेवाले) अधिक हैं, तो दुर्गृह (=ठीकसे न ग्रहण) है; (सोच) लौटा लेना चाहिये। यदि जाने कि धर्म-वादी अधिक हैं, तो सुग्रह (=ठीकसे ग्रहण) है, बोलना चाहिये। इस प्रकार भिक्षुओ ! गूढ़क शलाका-ग्राह होता है। कैसे भिक्षुओ ! स-कर्ण-जल्पक शलाका-ग्राह होता है ? शलाका-ग्राहापक भिक्षुको आ के एक एक भिक्षुके कानके पास कहना चाहिये—'यह ऐसे पक्षकी शलाका है, ऐसे पक्षकी शलाका है, जिसे चाहो ले लो।' ले लेनेपर बोलना चाहिये—'किसीको मत बतलाओ।' यदि जाने कि अधर्मवादी (=उलटालेनेवाले) अधिक हैं तो 'दुर्ग्रह है' (सोच) शलाका) लौटा लेनी चाहिये।···भिक्षुओ ! विवृतक शलाका-ग्राह कैसे होता है ? यदि जाने धर्म-वादी बहुत हैं, तो विश्वास पूर्वक विवृत (=खुली शलाका) ग्रहण करानी चाहिये।

१. अ. क. "यहाँ पाराजिका-आपत्ति-स्कन्ध, संघादिसेस०, थुल्ल-अच्चय०, प्रतिदेश-नीय०, दुक्कट०, दुर्भाषित आपत्ति-स्कंध, इनमें पूर्व-पूर्ववालेके दोषवाले···भारतर होते हैं।"

"आनन्द ! अमूढ़-विनय कैसे होता है ? यहाँ आनन्द ! भिक्षु भिक्षुपर० गुरुक-आपत्तिका आरोप करता है ! वह ऐसा उत्तर देता है—'आवुस ! मुझे स्मरण नहीं, कि मैं० आपत्तिसे आपन्न हूँ । तब वह छोड़ते हुये को लपेटता है—'तो आयुष्मान् ! अच्छी तरह बूझो, क्या तुम स्मरण करते हो, कि तुम० ऐसी ऐसी गुरुक आपत्तिसे आपन्न हुये ?' वह ऐसा उत्तर देवे—'मैं आवुस ! पागल हो गया था, मति-भ्रम (हो गया था), उन्मत्त हो मैंने बहुतसा श्रमण-विरुद्ध आचरण किया, भाषण किया; मुझे वह स्मरण नहीं होता । मूढ़ (=बेहोश) हो, मैंने वह किया । उस भिक्षुको आनन्द ! अमूढ़-विनय देना चाहिये । इस अमूढ़-विनयसे भी किन्हीं किन्हीं झगड़ोंका निपटारा होता है ।

"आनन्द ! प्रतिज्ञात-करण कैसे होता है ?" आनन्द ! भिक्षु आरोप करनेपर या आरोप न करने पर भी आपत्ति (=दोष) को स्मरण करता है, खोलता है। उस भिक्षुको (अपनेसे) वृद्धतर भिक्षुके पास जाकर, चीवरको एक (बायें) कंधेपर करके, पादवंदनाकर, उकड़ूँ बैठ हाथ जोड़, ऐसा कहना चाहिये—भन्ते ! मैं इस नामकी आपत्तिसे आपन्न हुआ हूँ, उसकी मैं प्रतिदेशना (=निवेदन) करता हूँ' । वह (दूसरा भिक्षु) ऐसा कहे—'देखते हो (उस दोषको) ?, 'देखता हूँ' । 'आगेसे (इन्द्रिय-) रक्षा करना' । 'रक्षा करूँगा' । इस प्रकार आनन्द ! प्रतिज्ञात-करण (= स्वीकार = Confesson) होता ।०।

"आनन्द ! यद्भूयसिक कैसे होता है ? आनन्द ! यदि वह भिक्षु उस अधिकरणको उस आवास (= मठ)में शांत न कर सकें । तो आनन्द ! उन सभी भिक्षुओंको, जिस आवास में अधिक भिक्षु हैं, उसमें जाना चाहिये । वहां सबको एक जगह एकत्रित होना चाहिये । एकत्रित हो धर्म-नेत्री (= धर्मरूपी रस्सी)का समनुमार्जन (= परीक्षण) करना चाहिये । धर्म-नेत्रीका समनुमार्जन कर ० ।

"आनन्द ! तत्पापीयसिका (=तस्स पापीयसिका) कैसे होती है ? यहां आनन्द ! भिक्षु भिक्षुको०ऐसी गुरुक-आपत्ति आरोप करते हैं—'आयुष्मान् स्मरण करो० तुम ऐसी गुरुक-आपत्ति आपन्न हुये ?" वह ऐसा उत्तर देता है—'आवुस ! मुझे स्मरण नहीं, कि मैं० ऐसी गुरुक-आपत्तिसे आपन्न हुआ ।' उसको छोड़ते हुयेको वह लपेटता है—'आयुष्मान् अच्छी तरह बूझो—क्या तुम्हें स्मरण है, कि तुम ०ऐसी गुरुक आपत्तिसे आपन्नहुये ?' वह ऐसा उत्तर दे—'आवुस ! मैं स्मरण नहीं करता, कि मैं,०ऐसी गुरुक आपत्तिसे आपन्न हुआ । स्मरण करता हूँ आवुस ! कि मैं इस प्रकारकी छोटी (=अल्पमात्रक) आपत्तिसे आपन्न हुआ ।' खोलते हुये उसको वह फिर लपेटता है—'आयुष्मान् अच्छी तरह बूझो० ?' वह ऐसा उत्तर दे—'आवुस ! मैं इस प्रकार की (= अमुक)छोटी आपत्ति आपन्न हुआ, बिना पूछेही स्वीकार करता हूँ; तो क्या मैं ०ऐसी गुरुक आपत्ति आपन्न हो पूछनेपर न स्वीकार करूंगा ?' वह ऐसा कहता है—'आवुस ! तुम इस छोटी आपत्तिको भी बिना पूछे नहीं स्वीकार करते, तो क्या तुम०ऐसी गुरुक-आपत्ति आपन्नहो पूछनेपर स्वीकार करोगे ? तो आयुष्मान् ! अच्छी तरह बूझो०' । वह यदि बोले—'आवुस ! स्मरण करता हूँ, मैं ०ऐसी गुरुक-आपत्ति आपन्न हुआ हूँ । दव (= सहसा) से, रव(= प्रमाद) से मैंने वह कहा—'मैं स्मरण नहीं करता, कि मैं ०ऐसी' ।

इस प्रकार आनन्द ! 'तस्स पापीयसिका' (=उसकी और भी कड़ी आपत्ति)होती है। ऐसे भी यहाँ किन्हीं किन्हीं अधिकरणोंका निपटारा होता है।

"आनन्द ! 'तिण-वत्थारक' कैसे होता है ? आनन्द ! यहाँ भंडन=कलह=विवादमें युक्त हो विहरते(समय), भिक्षु बहुतसे श्रमण-विरुद्ध आचरण, भाषण, किये होते हैं। उन सभी भिक्षुओं को एकत्र ही एकत्रित होना चाहिये। एकत्र हो एक पक्षवालोंमेंसे चतुर भिक्षुको आसन से उठकर चीवरको एक कंधेपर कर हाथजोड़ संघको ज्ञापित करना चाहिये—

'भन्ते ! संघ सुने, भंडन = कलह = विवादमें युक्तहो विहरते (समय) हमने बहुतसे श्रमण-विरुद्ध आचरण···किये हैं, यदि संघ उचित समझे, तो जो इन आयुष्मानोंका दोष है और जो मेरा दोष है, इन आयुष्मानोंके लिये भी और अपने लियेभी, मैं तिणवत्थारक (=घाससे ढाँकना जैसा)में बयान करूँ, (लेकिन) स्थूल-वद्य (= बड़ा दोष), गृही-प्रतिसंयुक्त (=गृहस्थ-संबंधी) छोड़कर। तब (दूसरे) पक्षवालोंमेंसे चतुर भिक्षुको आसनसे उठकर०।०। इस प्रकार आनन्द ! तिणवत्थारक (= तृणसे ढाँकने जैसा)होता है।

"आनन्द ! यह छ धर्म सारणीय प्रिय-करण, गुरु-करण हैं; संग्रह, अ-विवाद, सामग्री (=एकता) =एकीभावके लिये हैं। कौनसे छ ? (१) आनन्द ! भिक्षुका सब्रह्मचारियोंमें, गुप्त भी प्रकट भी, मैत्रीभाव-युक्त कायिक कर्म हो; यह भी धर्म सारणीय०। (२) और फिर आनन्द ! ०मैत्रीभाव-युक्त वाचिक कर्म०। (३)०मैत्रीभावयुक्त मानस कर्म०। (४) और फिर आनन्द ! जो कुछ भिक्षुको धार्मिक लाभ, धर्मसे लब्ध होते हैं, अन्तमें पात्र चुपड़ने मात्र भी; वैसे लाभोंको बिना बाँटे उपभोग न करनेवाला हो, शीलवान् स-ब्रह्मचारियोंके साथ सह-भोगी हो; यह भी धर्म०। (५) और फिर आनन्द ! जो वह शील (= आचार) कि अखंड=अ-छिद्र, अ-शबल = अ-कल्मष, सेवनीय, पंडितोंसे प्रशंसित, अ-निंदित, समाधि-सहायक हैं, वैसे शीलोंमें शील-श्रमण-भावयुक्त हो, गुप्त भी और प्रकट भी सब्रह्मचारियोंके साथ विहार करता हो; यह भी धर्म०। (६) और फिर आनन्द ! जो यह दृष्टि (= सिद्धान्त) आर्य है, नैर्याणिक =उसके (अनुसार) करनेवालेको दुःख-क्षयको लेजाती है, वैसी दृष्टिसे दृष्टि-श्रमण-भाव (= विचारोंके श्रमण-पन)में युक्त हो; गुप्त भी, और प्रकट भी सब्रह्मचारियों के साथ विहार करता हो; यह भी धर्म०। आनन्द ! यह छ धर्म सारणीय० हैं।

भगवान्‌ने यह कहा; संतुष्ट हो आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌के भाषणका अभिनन्दन किया।

(८)

संगीति-परियाय-सुत्त (ई० पू० ४८५)

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय पाँचसौ भिक्षुओंके महाभिक्षु-संघके साथ भगवान् मल्ल (देश)में चारिका करते, जहाँ 'पावा' नामक मल्लोंका नगर है, वहाँ पहुँचे। वहाँ पावामें भगवान् चुन्द कर्मार-पुत्रके आम्रवनमें विहार करते थे।

उस समय पावा-वासी मल्लोंका ऊँचा, नया, संस्थागार (= प्रजा-

1. दी. नि. ३ : १० । २. सठियाँव (जिला देवरिया)।

भवन) अभी-अभी बना था; (जहाँ अभी) किसी श्रमण या ब्राह्मण या किसी मनुष्य ने वास नहीं किया था। पावा-वासी मल्लोंने सुना—'भगवान्० मल्लमें चारिका करते पावामें पहुँचे हैं, और पावामें चुंद कर्मार (=सोनार)-पुत्रके आम्रवनमें विहार करते हैं।' तब पावावासी मल्ल जहाँ भगवान् थे, वहाँ पहुँचे। पहुँचकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे पावावासी मल्लोंने भगवान्को कहा—

"भन्ते! यहाँ पावा-वासी मल्लोंका ऊँचा (उब्भतक) नया संस्थागार, किसी भी श्रमण या ब्राह्मण या किसी भी मनुष्यसे न बसा, अभी ही बना है। भन्ते! भगवान् उसको प्रथम परिभोग करें। भगवान्के पहिले परिभोग कर लेनेपर, पीछे पावा-वासी मल्ल परिभोग करेंगे, वह पावा-वासी मल्लोंके लिये दीर्घरात्र (=चिरकाल)तक हित-सुखके लिये होगा।"

भगवान्ने मौन रह स्वीकार किया।

तब पावाके मल्ल भगवान्की स्वीकृति जान, आसनसे उठकर भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर, जहां संस्थागार था, वहां गये। जाकर संस्थागारमें सब ओर फर्श बिछा, आसनोंको स्थापितकर, पानीके मटके रख, तेलके दीपक आरोपित कर, जहाँ भगवान् थे, वहां गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर० एक ओर खड़े हो...बोले—

"भन्ते! संस्थागार सब ओर बिछा हुआ है, आसन स्थापित किये हुये हैं, पानीके मटके रक्खे हुये हैं, तेल-प्रदीप रखे हुये हैं। भन्ते! अब भगवान् जिसका काल समझें (वैसा करें)।"

तब भगवान् पहिनकर पात्र-चीवर ले भिक्षु-संघके साथ जहां संस्थागार था, वहां गये। जाकर पैर पखार, संस्थागारमें प्रवेशकर पूर्वकी ओर मुँहकर, पश्चिमकी भीतके सहारे भगवान्को आगे कर बैठे। पावा-वासी मल्लभी पैर पखार, संस्थागारमें प्रवेशकर पश्चिम की ओर मुँहकर, पूर्वकी भीतके सहारे भगवान्को सामने करके बैठे। तब भगवान्ने पावा-वासी मल्लोंको बहुत राततक धार्मिक कथासे संदर्शित = समादपित, समुत्तेजित, संप्रहंसित कर विसर्जित किया—

"वासिष्ठो! रात तुम्हारी बीत गई, अब तुम जिसका काल समझो (वैसा करो)।"

"अच्छा भन्ते!"...पावा-वासी मल्ल आसनसे उठ भगवान्को अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर चले गये।"

तब मल्लोंके जानेके थोड़ीही देर बाद, भगवान्ने शांत (= तुष्णीभूत) भिक्षु-संघको देख, आयुष्मान् सारिपुत्रको आमंत्रित किया—

"सारिपुत्र! भिक्षु संघ स्त्यान-मृद्ध-रहित है। सारिपुत्र! भिक्षुओंको धर्म-कथा कहो; मेरी पीठ [1]अगिया रही है, सो मैं लम्बा पड़ूँगा।"

आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्को "अच्छा भन्ते!" कह उत्तर दिया। तब भगवान्ने चौपेती संघाटी बिछवा, दाहिनी करवटसे, पैरपर पैर रख, स्मृति-संप्रजन्यके साथ, उत्थान-संज्ञा मनमें कर, सिंह-शय्या लगाई। उस समय निगंठ नात-पुत्त अभी अभी पावामें

१. अ. क. "क्यों अगियाती थी? भगवान्के छ वर्षतक महातपस्या करते समय शरीरको बड़ा दुःख हुआ। पीछे बुढ़ापेमें उनके पीठमें वात(-रोग) उत्पन्न हुआ।"

काल किये थे। उनके काल करनेसे निगंठ फूटकर दो भाग हो, भंडन = कलह = विवादमें पड़े, एक दूसरेको मुख (रूपी) शक्तिसे बींधते हुये विहर रहे थे०। मानो नात-पुत्तिय निगंठोंमें वध युद्ध (= वध) ही चल रहा था। जो भी निगंठ नातपुत्तके श्वेत वस्त्रधारी गृहस्थ श्रावक थे०।

आयुष्मान् सारिपुत्रने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"आवुसो! निगंठ नात-पुत्तने पावामें अभी अभी काल किया है। उनके काल करनेसे ०निगंठ फूटकर दो भागमें हो, भंडन=कलह=विवाद करते, एक दूसरेको मुख-शक्तिसे छेदते विहर रहे हैं—'तू इस धर्म-विनयको नहीं जानता०। निगंठ नातपुत्तके जो श्वेतवस्त्र-धारी गृही श्रावक हैं, वह भी नातपुत्तिय निगंठोंमें (वैसेही) निर्विण्ण=विरक्त = प्रति-वाण रूप हैं, जैसेकि वह (नातपुत्तके) दुराख्यात, दुष्प्रवेदित, अ-नैर्याणिक, अन्-उपशम-संवर्तनिक, अ-सम्यक्-संबुद्ध-प्रवेदित, प्रतिष्ठा-रहित, आश्रय-रहित धर्म-विनयमें। किंतु आवुसो! हमारे भगवान्‌का यह धर्म सु-आख्यात (= ठीकसे कहा गया), सु-प्रवेदित (= ठीकसे साक्षात्कार किया गया), नैर्याणिक (= दुःखसे पार करने वाला), उपशम-संवर्तनिक (=शांति-प्रापक), सम्यक्-संबुद्ध-प्रवेदित (=पूर्ण ज्ञानीद्वारा जाना गया), है। यहाँ सबको ही अ-विरुद्ध वचनवाला होना चाहिये। विवाद नहीं करना चाहिये; जिससे कि यह ब्रह्मचर्य अध्वनिक=(चिर-स्थायी) हो, और यह बहुजन-सुखार्थ लोकके अनुकम्पाके लिये, देव-मनुष्योंके अर्थ = हित = सुखके लिये हो। आवुसो! कैसे हमारे भगवान्‌का धर्म० देव-मनुष्योंके अर्थ = हित=सुखके लिए होगा?

१. आवुसो! उन भगवान् जाननहार, देखनहार, अर्हत्, सम्यक् संबुद्धने 'एक' धर्म ठीकसे बतलाया है। उसमें सबको ही अविरोध-वचनवाला होना चाहिये, विवाद न करना चाहिये; जिससे कि यह ब्रह्मचर्य अध्वनिक = (चिरस्थायी) हो०। कौन-सा एक धर्म? सब प्राणी आहार पर स्थित (= निर्भर) हैं। आवुसो! उन भगवान्‌ने० यह एक धर्म यथार्थ बतलाया। इसमें सबको ही०।

२. "आवुसो! उन भगवान्‌०ने 'दो' धर्म यथार्थ कहे हैं।०। कौनसे दो? नाम और रूप। अविद्या और भव (=आवागमनकी)-तृष्णा। भव (= नित्यता-) दृष्टि और विभव (=उच्छेद-) दृष्टि। अह्रीकता (=लज्जाराहित्य), और अन्-अवत्राप्य (=भयराहित्य)। ह्री (= लज्जा) और अवत्रपा (=भय)। दुर्वचनता और पाप(=बुरेकी)-मित्रता। सुवचनता और कल्याण(=सु)-मित्रता। आपत्ति (=दोष)-कुशलता (= चतुराई), और आपत्ति-व्युत्थान (=हटना)-कुशलता। समापत्ति (=ध्यान)कुशलता, और समापत्ति-व्युत्थान-कुशलता। 'धातु-कुशलता, और 'मनसिकार-कुशलता। 'आयतन-कुशलता, और 'प्रतीत्य-समुत्पाद-कुशलता। स्थान (=कारण)-कुशलता, और अ-स्थान कुशलता। आर्जव (= सीधापन) और मार्दव (=कोमलता)। क्षांति (=क्षमा) और सौरत्य (=आचार-

---

१. अ. क. "धातु अठारह हैं—चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मन, रूप, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य, धर्म, चक्षुर्विज्ञान, श्रोत्र-विज्ञान, घ्राण-विज्ञान, जिह्वाविज्ञान, कायविज्ञान, मनोविज्ञान।" २. 'उन धातुओंको मनमें आननेकी निपुणता'। ३. 'आयतन बारह हैं—चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मन, रूप, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य, धर्म।' ४. देखो पृष्ठ १२०।

युक्तता)। साखिल्य (=मधुर-वचनता) और प्रति-संस्तार (=वस्तु या धर्मका छिद्र-पिधान)। अविहिंसा (=अहिंसा) और शौचेय (=मैत्रीभावना)। मुषित-स्मृतिता (=स्मृति-लोप) और अ-संप्रजन्य (=अविद्या)। स्मृति और संप्रजन्य (=ज्ञान, विद्या)। इन्द्रिय अगुप्त-द्वारता (=अ-जितेंद्रियता), और भोजनमें-अ-मात्रज्ञता (भोजनमें अपने लिये मात्रा न जानना)। इन्द्रिय-गुप्त-द्वारता और भोजन-मात्रज्ञता। प्रतिसंख्यान (=अकंपन-ज्ञान)-बल और भावना-बल। स्मृति-बल और समाधि-बल। शमथ (=समाधि) और विपश्यना (=प्रज्ञा)। शमथ-निमित्त और विपश्यना-निमित्त। प्रग्रह (= चित्त-निग्रह) और अ-विक्षेप। शील-विपत्ति (=आचारदोष), और दृष्टि-विपत्ति (=सिद्धांत-दोष)। शील-सम्पदा (= आचारकी संपूर्णता) और दृष्टि-विशुद्धि कहते हैं सम्यक्दृष्टिके निरंतर अभ्यास (=प्रधान)को। संवेग कहते हैं संवेजनीय (=उद्वेगकरनेवाले) स्थानोंमें संविग्न (-चित्तता) का कारण-पूर्वक निरंतर अभ्यास। कुशल (=उत्तम) धर्मोंमें अ-संतुष्टिता, और प्रधान (=निरंतर अभ्यास) में अ-प्रतिवानिता (=निरालसता)। विद्या (=तीन विद्याओं) से विमुक्ति (= आस्रवोंमें चित्तकी विमुक्ति), और निर्वाण। आवुसो ! उन भगवान्०ने इन दो (= जोड़े) धर्मोंको ठीकसे कहा है०।

३. "आवुसो ! उन भगवान् ० ने यह तीन धर्म यथार्थ कहे हैं ०।"
कौन से तीन ? तीन अकुशल-मूल (=बुराइयोंकी जड़) हैं। कौन से तीन ० ?
लोभ अकुशल-मूल, द्वेष अकुशल-मूल, मोह अकुशल मूल।
तीन कुशल-मूल हैं—अलोभ ०, और अ-द्वेष ० और अ-मोह-अकुशलमूल।
तीन दुश्चरित हैं—काय-दुश्चरित, वचन-दुश्चरित और मन-दुश्चरित।
तीन सुचरित हैं—काय-सुचरित, वचन-सुचरित, और मन-सुचरित।
तीन अकुशल (= बुरे) वितर्क—काम-वितर्क, व्यापाद (=द्रोह) ० विहिंसा ०।
तीन कुशल (= अच्छे)-वितर्क—नेक्खम्म (=निष्कामता)०, अ-व्यापाद०, अ-विहिंसा०।
तीन अकुशल-संकल्प (= वितर्क)—काम ०, व्यापाद ०, विहिंसा ०।
तीन कुशल संकल्प—नेक्खम्म ०, अव्यापाद ० अविहिंसा ०।
तीन अकुशल संज्ञायें—काम ०, व्यापाद ०, विहिंसा ०।
तीन कुशल संज्ञायें—नेक्खम्म ०, अव्यापाद० अ-विहिंसा ०।
तीन अकुशल धातु (= तर्क-वितर्क)—काम०, व्यापाद०, विहिंसा०।
तीन कुशल धातु—निष्कामता ०, अव्यापाद ०, अ-विहिंसा ०।
दूसरे भी तीन धातु (= लोक)—कामधातु, रूप-धातु, अ-रूप-धातु।
दूसरे भी तीन धातु (= चित्त)—हीन-धातु, मध्यम-धातु, प्रणीत-धातु।
तीन तृष्णायें—काम ०, भव (= आवागमन)०, विभव ०।
दूसरी भी तीन तृष्णायें—काम०, रूप०, अ-रूप ०।
दूसरी भी तीन तृष्णायें—रूप०, अरूप०, निरोध ०।
तीन संयोजन (= बंधन)—सत्काय-दृष्टि, विचिकित्सा (= संदेह), शीलव्रत-परामर्श।
तीन आस्रव (= चित्तमल)—काम०, भव०, अविद्या ०।

तीन भव (=आवागमन)—काम,(-धातुमें) ०, रूप ०, अरूप ०।
तीन एषणायें (=राग)—काम०, भव०, ब्रह्मचर्य ०।
तीन विध (=प्रकार)—मैं सर्वोत्तम हूँ, मैं समान हूँ, मैं हीन हूँ।
तीन अध्व (=काल)—अतीत (=भूत) ०, अनागत (=भविष्य) ०, प्रत्युत्पन्न (=वर्तमान) ०।
तीन अन्त—सत्काय ०, सत्काय-समुदय (=उत्पत्ति) ०, सत्काय-निरोध ०।
तीन वेदनायें (=अनुभव)—सुखा०, दुःखा०, अदुःख-असुखा ०।
तीन दुःखता—दुःख-दुःखता, संस्कार०, विपरिणाम ०।
तीन राशियाँ—मिथ्यात्व-नियत ०, सम्यक्त्व-नियत, अ-नियत ०।
तीन कांक्षायें—अतीतकालको लेकर कांक्षा = विचिकित्सा करता है, नहीं छूटता, नहीं प्रसन्न होता है। अनागत कालको लेकर०। प्रत्युत्पन्न कालको ०।

तीन तथागतके अरक्षणीय—आवुसो ! तथागतका कायिक आचरण परिशुद्ध है, तथागतको काय-दुश्चरित नहीं है, जिसको कि तथागत आरक्षा (=गोपन) करें—'मत दूसरा कोई इसे जान ले'। आवुसो ! तथागतका वाचिक आचार परिशुद्ध है ०। ० तथागतका मानसिक आचार परिशुद्ध है ०।
तीन किंचन (=प्रतिबंध)—राग ०, द्वेष ०, मोह ०।
तीन अग्नियाँ—राग ०, द्वेष ०, मोह ०।
और भी तीन अग्नियाँ—आहवनीय ०, गार्हपत्य ०, दक्षिण ०।
तीन प्रकारसे रूपोंका संग्रह—सनिदर्शन (=रूप-विज्ञान-सहित दर्शन) स-प्रतिघ (=स-पीडाकर) रूप, अ-निदर्शन सप्रतिघ ०।

तीन संस्कार—पुण्य-अभिसंस्कार, अ-पुण्य-अभिसंस्कार, आनिञ्ज (=आनेञ्ज) अभिसंस्कार।
तीन पुद्गल (=पुरुष)—शैक्ष्य (=अमुक्त)०, अ-शैक्ष्य (=मुक्त)०, न-शैक्ष्य न-अ-शैक्ष्य०।
तीन स्थविर (=वृद्ध)—जाति (=जन्मसे)०, धर्म०, सम्मति-स्थविर।
तीन पुण्य-क्रियावस्तु—दानमय पुण्यक्रिया वस्तु, शीलमय०, भावनामय०।
तीन चोदनार्थ (=चोदना)-वस्तु—देखे (दोष)से, सुने (दोष)से, शंका किये (दोष)से।
तीन काम (=भोगोंकी)-उपपत्ति (=उत्पत्ति, प्राप्ति)—आवुसो ! कुछ प्राणी वर्तमान काम उपपत्तिवाले हैं; वह वर्तमान कामोंके वशवर्ती होते हैं, जैसेकि मनुष्य, कुछ देवता, और कुछ विनिपातिक (=भयप्रयोनिवाले); यह प्रथम काम-उपपत्ति है। आवुसो ! कुछ प्राणी निर्मितकाम हैं, वह (स्वयं अपने लिये) निर्माणकर कामोंके वशवर्ती होते हैं; जैसे कि निर्माण-रति-देव लोग; यह दूसरी काम-उपपत्ति है। आवुसो ! कुछ प्राणी पर-निर्मित-काम हैं, वह दूसरोंके निर्मित कामोंके वश-वर्ती होते हैं, जैसे कि पर-निर्मित-वशवर्ती देव लोग। यह तीसरी काम-उपपत्ति है।
तीन सुख-उपपत्तियाँ—आवुसो ! कुछ प्राणी सुख उत्पन्न कर सुख पूर्वक विहरते हैं, जैसे कि ब्रह्मकायिक देव लोग। यह प्रथम सुख-उपपत्ति है। आवुसो ! कुछ प्राणी सुखसे अभिष्यन्न=परिष्यन्न = परिपूर्ण = परिस्फुट हैं। वह कभी कभी उदान (=प्रीति-

सते निकला वाक्य) कहते हैं—'अहो सुख!' 'अहो सुख !!' जैसेकि आभास्वर देव०। आवुसो ! कुछ प्राणी सुखसे० परिपूर्ण०, हैं, वह उत्तम (सुखमें) संतुष्ट हो चित्त-सुखको अनुभव करते हैं, जैसे शुभ-कृत्स्न देव लोग। यह तीसरी सुख-उपपत्ति है।

तीन प्रज्ञायें—शैक्ष्य (=अमुक्त-पुरुषकी)-प्रज्ञा, अ-शैक्ष्य०, नशैक्ष्य-न-अशैक्ष्य-प्रज्ञा।

और भी तीन प्रज्ञायें—चिन्ता-मयी प्रज्ञा, श्रुतमयी०, भावनामयी०।

तीन आयुध—श्रुत (पढ़ा)०, प्रविवेक (=विवेक)०; प्रज्ञाविवेक०।

तीन इन्द्रियाँ—अन्-आज्ञातं-आज्ञास्यामि (=न जानेको जानूँगा)-इन्द्रिय, आज्ञा०, आज्ञातावी (= अर्हत्-ज्ञान)०।

तीन चक्षु (=नेत्र)—मांसचक्षु, दिव्यचक्षु, प्रज्ञाचक्षु।

तीन शिक्षायें—अधिशील(=शीलविषयक)-शिक्षा, अधि-चित्त (=चित्तविषयक)०, अधि-प्रज्ञ (=प्रज्ञाविषयक)०।

तीन भावनायें—काय-भावना, चित्त-भावना, प्रज्ञा-भावना।

तीन अनुत्तरीय (= उत्तम, श्रेष्ठ)—दर्शन(= विपश्यना, साक्षात्कार)-अनुत्तरीय, प्रतिपद् (= मार्ग)०, विमुक्ति (= अर्हत्व, निर्वाण) अनुत्तरीय।

तीन समाधि—स-वितर्क-सविचार-समाधि, अवितर्क-विचार-मात्र-समाधि, अवितर्क-अविचार-समाधि।

और भी तीन समाधि—शून्यता-समाधि, अ निमित्त०, अ-प्रणिहित-समाधि।

तीन शौचेय (= पवित्रता)—काय०, वाक्०, मन-शौचेय।

तीन मौनेय (= मौन)—काय०, वाक्०, मन-मौनेय।

तीन कौशल्य—आय०, अपाय (=विनाश)०, उपाय-कौशल्य।

तीन मद—आरोग्य-मद, यौवनमद जाति-मद।

तीन आधिपत्य (स्वामित्व)—आत्माधिपत्य, लोक०, धर्म०।

तीन कथावस्तु (= कथा विषय)—अतीत कालको ले कथा कहे, 'अतीतकाल ऐसा था'। अनागत कालको ले कथा कहे—'अनागतकाल ऐसा होगा'। अबके प्रत्युत्पन्नकालको ले कथा कहे—'इस समय प्रत्युत्पन्न काल ऐसा है'।

तीन विद्या—पूर्व-निवास-अनुस्मृतिज्ञान विद्या (=पूर्वजन्म-स्मरण०), प्राणियोंके च्युति (=मृत्यु)-उत्पाद (=जन्म) का ज्ञान०, आस्रवोंके क्षयका ज्ञान०।

तीन विहार—दिव्य-विहार, ब्रह्म विहार, आर्य-विहार।

तीन प्रातिहार्य (= चमत्कार)—ऋद्धि०, आदेशना०, अनुशासनी-प्रातिहार्य। यह आवुसो ! उन भगवान्०।

"आवुसो ! उन भगवान्० ने (यह) चार धर्म यथार्थ कहे हैं०। कौनसे चार ?

चार[1] स्मृतिप्रस्थान—आवुसो ! भिक्षु कायामें० कायानुपश्यी विहरता है। वेदनाओंमें०। लोकमें०। धर्ममें० धर्मानुपश्यी०।

चार सम्यक् प्रधान—भिक्षु अनुत्पन्न पापक (= बुरे) = अकुशल धर्मोंकी अनुत्पत्तिके लिये

---

1. देखो सतिपट्ठान-सुत्त पृष्ठ ११०।

रुचि उत्पन्न करता है, परिश्रम करता है, प्रयत्न करता है, चित्तको निग्रह = प्रधारन करता है। (२) उत्पन्न पापक=अकुशल धर्मोंके विनाशके लिये०। अनुत्पन्न कुशल धर्मोंकी उत्पत्तिके लिये०। उत्पन्न कुशल धर्मोंकी स्थिति, अ-विनाश, वृद्धि विपुलता, भावनासे पूर्ति करनेके लिये०।

चार ऋद्धिपाद—आवुसो! भिक्षु (१) छन्द(=रुचिसे उत्पन्न)-समाधि (के) प्रधान संस्कार से युक्त ऋद्धिपादकी भावना करता है। (२) चित्त-समाधि-प्रधान-संस्कारसे०। (३) वीर्य(=प्रयत्न)-समाधि-प्रधान-संस्कार०। (४) विमर्श-समाधि प्रधान-संस्कार०।

चार ध्यान—आवुसो! भिक्षु (१) [1]प्रथमध्यानको प्राप्त हो विहरता है। (२)० द्वितीय-ध्यान०। (३) ०तृतीय-ध्यान०। (४) चतुर्थ-ध्यान०।

चार समाधि-भावना—(१) आवुसो! (ऐसी) समाधि-भावना है, जो भावित होनेपर वृद्धि-प्राप्त होनेपर, इसी जन्ममें सुख-विहारके लिये होती है। (२) आवुसो! (ऐसी) समाधि-भावना है, जो भावित होनेपर, वृद्धि-प्राप्त होनेपर, ज्ञान-दर्शन (=साक्षात्कार)के लाभके लिये होती है। (३) आवुसो! ०स्मृति, सम्प्रजन्यके लिये होती है। (४) ०आस्रवोंके क्षयके लिये होती है। आवुसो! कौनसी समाधि-भावना है, जो भावित होनेपर, बहुली-कृत (=वृद्धि-प्राप्त) होनेपर इसी जन्ममें सुख-विहारके लिये होती है? आवुसो! भिक्षु ०प्रथम ध्यान०, ०द्वितीय ध्यान०, ०तृतीय ध्यान०, ०चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। आवुसो! यह समाधि-भावना भावित होने-पर०। आवुसो! कौनसी ०जो भावित होनेपर० ज्ञान-दर्शनके लाभके लिये होती है? आवुसो! भिक्षु आलोक (=प्रकाश)-संज्ञा (=ज्ञान) मनमें करता है, दिन-संज्ञाका अधिष्ठान (=दृढ़-विचार) करता है—'जैसे दिन वैसी रात, जैसी रात वैसा दिन'। इस प्रकार खुले, बन्धन-रहित, मन से प्रभा-सहित चित्तकी भावना करता है। आवुसो! यह समाधि-भावना भावित होनेपर०। आवुसो! कौनसी ०जो ०स्मृति, संप्रजन्य के लिये होती है? आवुसो! भिक्षुको विदित (=ज्ञानमें आई) वेदना (=अनुभव) उत्पन्न होती हैं, विदित (ही) ठहरती हैं, विदित (ही) अस्तको प्राप्त होती हैं। विदित संज्ञा उत्पन्न होती है, ०ठहरती०, ०अस्त होती है। विदित वितर्क उत्पन्न०, ठहरते०, ०अस्त होते हैं। आवुसो! यह समाधि-भावना० स्मृति-संप्रजन्यके लिये होती है। आवुसो! कौनसी है ०जो आस्रव-क्षयके लिये होती है? आवुसो! भिक्षु पाँच उपादान-स्कंधोंमें उदय (=देखनेवाला) हो विहरता है—'ऐसा रूप है, ऐसा रूपका समुदय (=उत्पत्ति), ऐसा रूपका अस्तंगमन (=अस्त होना); ऐसी वेदना है०, ऐसी संज्ञा०, ०संस्कार०, ०विज्ञान०। यह आवुसो०।

चार अप्रमाण्य (=अ-सीम)—यहाँ आवुसो! भिक्षु (१) मैत्रीयुक्त चित्तसे०[2] विहरता है०। (२) करुणा-युक्त०। (३) ०मुदिता-युक्त०। (४) ०उपेक्षा-युक्त०।

चार आरूप्य (=रूप-रहित-ता)—आवुसो! (१) रूप संज्ञाओंके सर्वथा अतिक्रमणसे,

१. पृष्ठ १६१। २. पृष्ठ १९४।

प्रतिघ (=प्रतिहिंसा) संज्ञाके अस्त होनेसे, नानात्व (=नानापन)-संज्ञाके मनमें न करनेसे, 'आकाश अनन्त है' इस आकाश-आनन्त्य (= आकाशकी अनन्तता)-आयतन (=स्थान) को प्राप्त हो विहार करता है। आकाशानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमण करनेसे 'विज्ञान अनन्त है' इस, विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो, विहार करता है। विज्ञानानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमण करनेसे, 'कुछ नहीं (=नत्थि किंचि)' इस आकिंचन्य-आयतनको प्राप्त हो, विहार करता है। आकिंचन्यायतनके सर्वथा अतिक्रमण करनेसे, नैवसंज्ञा (=न होश ही है)-न-असंज्ञा-आयतनको प्राप्त हो विहार करता है।

चार अपाश्रयण (=अवलंबन)—आवुसो ! भिक्षु (१) संख्यान (=ज्ञान) कर किसीको सेवन करता है। (२) संख्यानकर किसी (=एक) को स्वीकार करता है। (३) संख्यान कर किसीको परिवर्जन (=अस्वीकार) करता है। (४) संख्यान कर किसीको हटाता है (=विनोदेति)।

चार आर्य-वंश—आवुसो ! भिक्षु (१) जैसे तैसे चीवरसे सन्तुष्ट होता है। जैसे तैसे चीवरसे संतुष्ट होनेका प्रशंसक होता है। चीवरके लिये अनुचित अन्वेषण नहीं करता। चीवरको न पाकर दुःखित नहीं होता, चीवरको पाकर अलोभी, अलिप्त (= अमूर्छित), अनासक्त, दुष्परिणाम-दर्शी = निःसरणप्रज्ञावाला हो, परिभोग (= उपभोग) करता है। (अपने) उस जिस तिस चीवरके सन्तोषसे, अपनेको बड़ा नहीं मानता, दूसरे को नीच नहीं समझता। जो कि वह दक्ष, निरालस, संप्रज्ञान (= जाननेवाला) प्रतिस्मृत (= याद रखनेवाला) होता है। यह कहा जाता है, आवुसो ! भिक्षु पुराने अग्रण्य (=सर्वोत्तम) आर्य-वंशमें स्थित है। (२) और फिर आवुसो ! भिक्षु जैसे तैसे पिंडपात (=भिक्षा) से सन्तुष्ट होता है०। (३) ०जैसे तैसे शयनासन (= निवास) से०। (४) और फिर आवुसो ! प्रहाण (= त्याग) में रमण करनेवाला, प्रहाण-रत होता है। भावनाराम=भावनारत होता है। उस प्रहाणारामतासे प्रहाण-रतिसे, भावना-रामतासे भावना-रतिसे न अपने को बड़ा मानता है, न दूसरेको नीच मानता है०।

चार प्रधान (अभ्यास, योग)—संवर (= संयम)-प्रधान, प्रहाण०, भावना०, अनुरक्षण-प्रधान। आवुसो ! संवर-प्रधान कौन है ? आवुसो ! भिक्षु चक्षु (= आँख)से रूप देख निमित्त (=रंग आकार आदि)-ग्राही नहीं होता, अनुव्यंजन-ग्राही नहीं होता। जिसमें कि चक्षु-इन्द्रिय-अधिकरणको अ-संवृत (अ-रक्षित) रख विहरते समय अभिध्या (=लोभ), दौर्मनस्य, पापक, अ-कुशल-धर्म उसे मलिन न करें, इसके लिये संवर (संयम, रक्षा) के लिये यत्न करता है। चक्षु-इन्द्रियकी रक्षा करता है। चक्षु-इन्द्रियमें संयम-शील होता है। श्रोत्रसे शब्द सुनकर०। घ्राणसे गंध सूँघकर०। जिह्वासे रस चखकर०। काय (=त्वक्) से स्पर्श छूकर०। मनसे धर्मको जानकर०। यह कहा जाता है, आवुसो ! संवर-प्रधान। क्या है, आवुसो ! प्रहाण-प्रधान ? आवुसो ! भिक्षु उत्पन्न काम-वितर्कको नहीं पसन्द करता,

अस्वीकार (=प्रहाण) करता है, हटाता है, अन्त करता है, नाशको पहुँचाता है। उत्पन्न व्यापाद (=द्रोह)-वितर्कको०। उत्पन्न विहिंसा-वितर्कको०। तब तब उत्पन्न हुये, पापक अकुशल धर्मोंको०। आवुसो ! यह प्रहाण-प्रधान कहा जाता है। क्या है आवुसो ! भावना-प्रधान ? आवुसो ! भिक्षु विवेक-निःश्रित (=आश्रित), विराग निःश्रित निरोध-निःश्रित व्यवसर्ग (=त्याग)-परिणामवाले [1]स्मृति-संबोध्यंगकी भावना करता है, धर्मविचय-संबोध्यंगकी भावना करता है। ०वीर्य-संबोध्यंग०। ०प्रीति सं०। ०प्रश्रब्धि-संबोध्यंग०। ०समाधि संबोध्यंग०। उपेक्षा संबोध्यंग०। यह कहा जाता है, आवुसो ! भावना-प्रधान। क्या है, आवुसो ! अनुरक्षण-प्रधान ? आवुसो ! भिक्षु उत्पन्न हुये अस्थिक-संज्ञा, पुलवक-संज्ञा, विनीलक-संज्ञा, विच्छिद्रकसंज्ञा, उद्धुमातक संज्ञा (रूपी) उत्तम (=भद्रक) समाधि-निमित्तोंकी रक्षा करता है। यह आवुसो ! अनुरक्षण-प्रधान है।

चार ज्ञान—धर्म-विषयक-ज्ञान, अन्वय-ज्ञान, परिच्छेद-ज्ञान, संमति-ज्ञान।

और भी चार ज्ञान—दुःख-ज्ञान, दुःखसमुदय-ज्ञान, दुःख-निरोध-ज्ञान, दुःख निरोध-गामिनी प्रतिपद् का ज्ञान।

चार स्रोतआपत्तिके अंग—सत्पुरुष-सेवन, सद्धर्म-श्रवण, योनिशःमनसिकार (=कार्य-कारण-पूर्वक विचार)। धर्मानुधर्म-प्रतिपत्ति।

चार स्रोत-आपन्न के अंग—आवुसो ! आर्य-श्रावक (१) बुद्धमें अत्यन्त प्रसाद (=श्रद्धा) से प्रसन्न होता है—यह भगवान् अर्हत्[1]०। (२) धर्ममें अत्यंत प्रसादसे प्रसन्न होता है०। (३) संघमें०। (४) अ-खंड-अछिद्र, अ-शबल =अ-कल्मष, सेव्य = विज्ञ-प्रशंसित अपरामृष्ट (=अनिंदित), समाधि गामी आर्य-कमनीय (=कांत) शीलोंसे युक्त होता है।

चार श्रामण्य (=भिक्षुपनके) फल—स्रोतआपत्ति-फल, सकृदागामी-फल, अनागामि-फल, अर्हत्व-फल।

चार धातु (=महाभूत)—पृथिवी-धातु, आपधातु, तेज धातु, वायु-धातु।

चार आहार—(१) औदारिक (=स्थूल) या सूक्ष्म कवलीकार आहार। (२) स्पर्श···। (३) मन-संचेतना···। (४) विज्ञान···।

चार विज्ञान (=चेतन, जीव)-स्थितियाँ—(१) आवुसो ! रूप प्राप्त कर ठहरते, रूपमें रमण करते, रूपमें प्रतिष्ठित हो, विज्ञान स्थित होता है, नन्दी (=तृष्णा) के सेवनसे वृद्धि=विरूढताको प्राप्त होता है। (२) वेदना प्राप्तकर०। (३) संज्ञा प्राप्तकर०। (४) संस्कार प्राप्तकर०।

चार अगति-गमन—छन्द (=स्वेच्छा) गति जाता है। द्वेष-गति०, ०मोह-गति०, भय-गति०।

चार तृष्णा-उत्पाद (=उत्पत्ति)—(१) आवुसो ! भिक्षुको चीवरके लिये तृष्णा उत्पन्न होती है। (२) ०पिंडपातके लिये०। (३) ०शयनासन (=निवास)०। (४) अमुक भव-अभव (=भवाभव) के लिये०।

1, पृष्ठ ३०३।

चार प्रतिपद् (= मार्ग)—(१) दुःखवाली प्रतिपद् और देरसे ज्ञान। (२) दुःखवाली प्रतिपद् और क्षिप्र (= जल्दी) ज्ञान। (३) सुखवाली (= सहज) प्रतिपद् और देरसे ज्ञान। (४) सुखवाली प्रतिपद् और जल्दी ज्ञान।

और भी चार प्रतिपद्—अ-क्षमा-प्रतिपद। क्षमाप्रतिपद्। दमकी प्रतिपद्। शमकी०।

चार धर्म-पद—अन्-अभिध्या-धर्मपद। अ-व्यापाद०। सम्यक्-स्मृति०। सम्यक् ०समाधि।

चार धर्म-समादान—(१) आवुसो! वैसा धर्म-समादान (= स्वीकार), जो वर्तमानमें भी दुःख-मय, भविष्यमें भी दुःख-विपाकमय (२)० वर्तमानमें दुःख-मय, भविष्यमें सुख-विपाकी। (३)० वर्तमानमें सुख-मय, भविष्यमें दुःख-विपाकी। (४)० वर्तमानमें सुख मय, और भविष्यमें सुख-विपाकी।

चार धर्म-स्कन्ध—शील-स्कन्ध (= आचार-समूह) समाधि-स्कन्ध। प्रज्ञा-स्कन्ध। विमुक्ति-स्कन्ध।

चार बल—वीर्य-बल। स्मृतिबल। समाधि-बल। प्रज्ञाबल।

चार अधिष्ठान (= संकल्प)—प्रज्ञा०। सत्य०। त्याग०। उपशम अधिष्ठान।

चार प्रश्न-व्याकरण (= सवालका जवाब)—एकांश-(=है या नहीं एकमें)-व्याकरण करने लायक प्रश्न। प्रतिपृच्छा (= सवालके रूपमें) व्याकरणीय प्रश्न। विभज्य (= एक अंश हाँ भी, दूसरा अंश नहीं भी करके) व्याकरणीय-प्रश्न। स्थापनीय (= न उत्तर देने लायक) प्रश्न।

चार कर्म—आवुसो! कृष्ण (= काला, बुरा) कर्म और कृष्ण-विपाक (= बुरे परिणाम वाला)। (२) ०शुक्लकर्म शुक्ल-विपाक। (३) शुक्ल-कृष्ण-कर्म, शुक्ल-कृष्ण-विपाक। (४) ०अकृष्ण-अ-शुक्लकर्म, अकृष्ण-अशुक्ल-विपाक।

चार साक्षात्करणीय धर्म—(१) पूर्व-निवास (=पूर्व-जन्म)स्मृति से साक्षात्करणीय। (२) प्राणियोंका जन्म-मरण (=च्युति-उत्पाद), चक्षुसे साक्षात्करणीय। (३) आठ विमोक्ष, कायासे०। (४) आस्रवोंका क्षय, प्रज्ञासे०।

चार ओघ (= बाढ़)—काम-ओघ। भव० (= जन्म)०। दृष्टि (मतवाद)०। अविद्या०।

चार योग (= मिलाना)—काम-योग। भव०। दृष्टि०। अविद्या०।

चार विसंयोग (= वियोग)—काम-योग-विसंयोग। भवयोग०। दृष्टियोग०। अविद्यायोग०।

चार ग्रन्थ—अभिध्या (= लोभ) काय-गंथ। व्यापाद (= द्रोह) कायगंथ। शील-व्रत-परामर्श०। 'यही सच है' पक्षपात०।

चार उपादान—काम उपादान। दृष्टि०। शील-व्रत-परामर्श०। आत्म-वाद०।

चार योनि—अंडजयोनि। जरायुज योनि। संस्वेदज०। औपपातिक (= अयोनिज)०।

चार गर्भ-अवक्रान्ति (= गर्भधारण)—(१) आवुसो! कोई कोई (प्राणी) ज्ञान (= होश) बिना माताकी कोखमें आता है, ज्ञान-बिना मातृ-कुक्षिमें ठहरता है, ज्ञानबिना मातृ कुक्षिसे निकलता है; यह पहिली गर्भावक्रान्ति है। (२) और फिर आवुसो! कोई कोई ज्ञान-सहित मातृ-कुक्षिमें आता है, ज्ञान-बिना० ठहरता है, ज्ञान-बिना० निकलता है०। (३) ०ज्ञान-सहित० आता है, ज्ञान-सहित० ठहरता है, ज्ञान-बिना०

निकलता है० । (४)० ज्ञान-सहित० आता है, ज्ञान-सहित० ठहरता है, ज्ञान-सहित० निकलता है० ।

चार आत्म-भाव प्रतिलाभ (= शरीर-धारण)—(१) आवुसो ! (यह) आत्म-भाव-प्रतिलाभ, जिस आत्म-भाव-प्रतिलाभमें आत्म-संचेतना (अपनेको जानना)ही पाता (=कमति), है, पर-संचेतना नहीं पाता । (२)० पर ही संचेतनाको पाता है, आत्म संचेतनाको नहीं । (३)०आत्म-संचेतना भी०, पर-संचेतनाभी० (४)० । न आत्म-संचेतना० न पर-संचेतना० ।

चार दक्षिणा-विशुद्धि (= दानशुद्धि)—(१) आवुसो ! दक्षिणा (=दान) दायकसे शुद्ध किन्तु प्रतिग्राहकसे नहीं० । (२) ०प्रतिग्राहकसे शुद्ध०, किन्तु दायकसे नहीं । (३) ०न दायकसे०, न प्रतिग्राहकसे० । (४) ०दायकसे भी०, प्रतिग्राहकसे भी० ।

चार[1] संग्रह-वस्तु—दान, पेयावर्ज (= सेवा), अर्थ-चर्या, समानात्मता ।

चार अनार्य-व्यवहार—मृषावाद (=झूठ), पिशुन-वचन (=चुगली), संप्रलाप (= बकवाद), परुष-वचन ।

चार आर्य-व्यवहार—मृषा-वाद-विरतता, पिशुन-वचन-विरतता, संप्रलाप-विरतता, परुष-वचन-विरतता ।

चार अनार्य-व्यवहार—अदृष्टमें दृष्ट-वादी बनना, अ-श्रुतमें श्रुत-वादिता, अ-स्मृतमें स्मृत-वादिता, अ-विज्ञातमें विज्ञात-वादिता ।

और भी चार अनार्य-व्यवहार—दृष्टमें अदृष्ट-वादिता, श्रुतमें अश्रुत-वादिता । स्मृतमें अस्मृत-वादिता, विज्ञातमें अ-विज्ञात-वादिता ।

और भी चार आर्य व्यवहार—दृष्टमें दृष्टवादिता, श्रुतमें श्रुत वादिता, स्मृतमें स्मृत-वादिता, विज्ञातमें विज्ञात-वादिता ।

चार पुद्गल (=पुरुष)—(१) आवुसो ! कोई कोई पुद्गल आत्मं-तप, अपनेको संताप देनेमें लगा होता है । (२) कोई कोई पुद्गल परन्तप, पर (=दूसरे) को संताप देनेमें लगा होता है । (३) ०आत्मं तप० भी० होता है, परन्तप, भी० । (४)० न आत्मं-तप०, न परन्तप०; वह अनात्मंतप अपरंतप हो इसी जन्ममें शोकरहित, मुक्त, शीतल-भूत, सुखानुभवी ब्रह्मभूत आत्माके साथ विहार करता है ।

और भी चार पुद्गल—(१) आवुसो ! कोई कोई पुद्गल आत्म-हितमें लगा होता है, परहितमें नहीं । (२) ०परहितमें लगा होता है, आत्महितमें नहीं । (३)० न आत्म-हितमें लगा होता है, न परहितमें । (४) ०आत्महितमें भी लगा होता है, पर-हितमें भी० ।

और भी चार पुद्गल—(१) तम तम-परायण । (२) तम ज्योति-परायण । (३) ज्योति तम-परायण (४) ज्योति ज्योति-परायण ।

और भी चार पुद्गल—(१) श्रमण अचल । (२) श्रमण पद्म (=रक्त कमल) । (३) श्रमण-पुंडरीक (=श्वेतकमल) । (४) श्रमणोंमें श्रमण सुकुमार ।

यह आवुसो ! उन भगवान्० ।

---

१. देखो दायक-सुत्त पृष्ठ २४२ ।

"आवुसो! उन भगवान्० ने पाँच धर्म यथार्थ कहे हैं०। कौनसे पाँच?—

पांच स्कंध—रूप०, वेदना०, संज्ञा, संस्कार०, विज्ञान-स्कन्ध।

पाँच उपादान-स्कन्ध—रूप-उपादान स्कन्ध, वेदना०, संज्ञा०, संस्कार०, विज्ञान।

पाँच काम गुण—(१) चक्षुसे विज्ञेय इष्ट=कान्त=मनाप, प्रिय-रूप, काम सहित रंजनीय (=चित्तको रंजन करनेवाले) रूप। (२) श्रोत्र-विज्ञेय० शब्द। (३) घ्राण-विज्ञेय० गन्ध। (४) जिह्वा-विज्ञेय० रस। (५) काय-विज्ञेय० स्पर्श।

पाँच गति—निरय (=नर्क), तिर्यक् (=पशु, पक्षी आदि) योनि, प्रेत्य-विषय (=भूत प्रेत आदि)। मनुष्य। देव।

पाँच मात्सर्य (=हसद)=आवासमात्सर्य, कुल०, लाभ, वर्ण०, धर्म०।

पाँच नीवरण—कामच्छन्द (=काम-राग)०। व्यापाद०। स्त्यान मृद्ध०। औद्धत्य-कौकृत्य०। विचिकित्सा०।

पाँच अवर [1]भागीय संयोजन—सत्काय-दृष्टि, विचिकित्सा, शील-व्रत-परामर्श, कामच्छन्द, व्यापाद।

पांच ऊर्ध्व-भागीय संयोजन—रूप-राग, अरूप-राग, मान, औद्धत्य, अविद्या।

पाँच [2]शिक्षापद—प्राणातिपात (=प्राण बध)-विरति, अदत्तादान-विरति, काम-मिथ्याचार-विरति, मृषावाद-विरति, सुरा-मेरय-मद्य-प्रमादस्थान विरति।

पाँच अभव्य (=अयोग्य) स्थान—(१) आवुसो! क्षीणास्रव (=अर्हत्) भिक्षु जानकर प्राण-हिंसा करनेके अयोग्य है। (२) अदत्तादान (=चोरी)=स्तेय करने के अयोग्य है। (३)० मैथुन-धर्म सेवन करनेके अयोग्य है। (४) ०जानकर मृषावाद (=झूठ बोलने) के०। (५) ०सन्निधि कारक हो (=जमाकर) कामोंको भोगकरनेके०, जैसा कि पहिले गृहस्थ होते वक्त था।

पाँच व्यसन (आसक्ति)—ज्ञातिव्यसन, भोग०, रोग० शील०, दृष्टि०। आवुसो! प्राणी ज्ञातिव्यसनके कारण या भोगव्यसनके कारण, या रोगव्यसनके कारण, काया छोड़ मरनेके बाद अपाय···दुर्गति···विनिपात, निरय (=नर्क को) प्राप्त होते हैं। आवुसो! शीलव्यसनके कारण या दृष्टिव्यसनके कारण प्राणी०।

पाँच सम्पद् (=योग)—ज्ञाति-सम्पद्, भोग०, आरोग्य०, शील०, दृष्टि०। आवुसो! प्राणी ज्ञाति-सम्पद्के कारण०, भोग-सम्पद्०, आरोग्य-सम्पद्के कारण काया छोड़ मरनेके बाद सुगति···स्वर्गलोकमें नहीं उत्पन्न होते। आवुसो! शीलसम्पद्के कारण या दृष्टिसंपद्के कारण प्राणी०।

पाँच आदिनव (=दुष्परिणाम) हैं, दुःशील (पुरुष) को शील-विपत्ति (=आचार-दोष) के कारण—(१) आवुसो! शील-विपन्न=दुःशील (=दुराचारी) प्रमादमें पड़ी भोग हानिको प्राप्त होता है, शील-विपन्न दुःशीलके लिये यह प्रथम दुष्परिणाम है। (२) और फिर आवुसो! शील-विपन्न=दुःशीलके लिये बुरे निन्दा-वाक्य उत्पन्न होते हैं, यह दूसरा दुष्परिणाम है। (३) और फिर आवुसो! शील-विपन्न=दुःशील, चाहे क्षत्रिय-परिषद्, चाहे ब्राह्मण-परिषद्, चाहे गृहपति-परिषद्, चाहे

श्रमण-परिषद्, चाहे जिस परिषद् (=सभा)में जाता है, अ-विशारद होकर, मूक होकर, जाता है। यह तीसरा०। (४) और फिर आवुसो! शील-विपन्न=दुःशील, संमूढ़ (=मोहप्राप्त) होकर काल करता है, यह चौथा०। (५) और फिर आवुसो! शील-विपन्न काया छोड़ मरनेके बाद, अपाय=दुर्गति=विनिपात, निरय (=नर्क) में उत्पन्न होता है, यह पाँचवाँ०।

पाँच गुण (=आनृशंस्य) हैं शीलवान्‌के शील-सम्पदासे—[१] आवुसो! शील-सम्पन्न शीलवान् को अप्रमादके कारण, बड़ी भोग-राशिकी प्राप्त होती है; शीलवान्‌की शील-संपदामें यह प्रथम गुण है। [२] ०सुन्दर कीर्ति शब्द उत्पन्न होते हैं०। [३] ०जिस जिस परिषद्‌में जाता है, विशारद होकर, अ-मूक होकर जाता है०। [४] ०अ-संमूढ़ हो काल करता है०। [५] ०काया छोड़ मरनेके बाद सुगति=स्वर्गलोकमें उत्पन्न होता है०।

पाँच धर्मोंको अपनेमें स्थापितकर आवुसो!…आरोपी [=दूसरेपर दोषारोप करनेवाले] भिक्षुको दूसरेपर आरोप करना चाहिये—[१] कालसे कहूँगा, अकालसे नहीं। [२] भूत [=यथार्थ]से कहूँगा, अभूतसे नहीं। (३) मधुरसे कहूँगा, कटुसे नहीं [४] अर्थ-संहित [=स-प्रयोजन]से कहूँगा, अनर्थ संहितसे नहीं। [५] मैत्री भावसे कहूँगा, द्रोह-चित्तसे नहीं।…।

पाँच प्रधानीय [=प्रधानके] अंग—[१] यहाँ आवुसो! भिक्षु श्रद्धालु होता है, तथागतकी बोधि (=परमज्ञान)पर श्रद्धा रखता है—ऐसे वह भगवान् अर्हत्, सम्यक् संबुद्ध०। आबाधा (=रोग)-रहित (रोग-) आतंक-रहित होता है। न बहुत शीतल, न बहुत उष्ण, सम-विपाकवाली, प्रधान (=योगाभ्यास)के योग्य ग्रहणी (=पाचनशक्ति)से युक्त होता है। (३) शास्ताके पास, या विज्ञोंके पास, या स-ब्रह्मचारियोंके पास अपनेको यथाभूत (=जैसा है वैसा) प्रकट कर, अशठ=अ-मायावी होता है। (४) अकुशल धर्मोंके विनाशके लिये, कुशल धर्मोंकी प्राप्तिके लिये, आरब्ध वीर्य (उद्योग-शील) हो विहरता है; कुशल धर्मोंमें स्थाम-वान्=दृढ़ पराक्रम=धुरा (कंधेसे) न फेंकनेवाला (होता है)। (५) निर्वेधिक (=अन्तस्तल तक पहुँचनेवाली), सम्यक् दुःख-क्षयकी ओर ले जानेवाली, उदय-अस्त-गामिनी, आर्य प्रज्ञासे संयुक्त, प्रज्ञावान् होता है।

पाँच अनागामी—अन्तरापरिनिर्वायी, उपहत्य-परिनिर्वायी, असंस्कार०, स-संस्कार०, ऊर्ध्व-स्रोत०, अकनिष्ठ-गामी।

पाँच चेतोखिल (=चित्तके काँटे)—(१) आवुसो! भिक्षु शास्ता (=धर्मोपदेष्टा)में कांक्षा =विचिकित्सा (संदेह) करता है, (=संदेह)-युक्त नहीं होता, प्रसन्न नहीं होता। उसका चित्त उद्योगके लिये, अनुयोगके लिये, सातत्य (=निरन्तर लगन)के लिये, प्रधानके लिये नहीं झुकता; जो यह इसका चित्त० नहीं झुकता; यह प्रथम चेतो-खिल (चित्त-कील) है। (२) और फिर आवुसो! भिक्षु धर्ममें कांक्षा=विचिकित्सा करता है०। (३) ०संघमें कांक्षा=विचिकित्सा करता है०। (४)

सब्रह्मचारियोंमें दुष्ट-चित्त, असन्तुष्ट-मन, कील-प्रमान, (४)...०कुपित होता है; जो यह आवुसो ! भिक्षु सब्रह्मचारियोंमें ०कुपित होता है; (इसलिये) उसका चित्त ०प्रधान के लिये नहीं झुकता, यह पाँचवाँ चेतो-खिल है ।

पाँच चित्त-विनिबन्ध—(१) आवुसो ! भिक्षु कामों (=कामवासनाओं) में अवीतराग अ-वीत-छन्द, अविगत-प्रेम अविगत-पिपासा, अविगत-परिदाह अविगत-तृष्णा (= तृष्णा-रहित नहीं) होता; उसका चित्त ०प्रधानके लिये नहीं झुकता । जो उसका चित्त० नहीं झुकता, यह प्रथम चित्त-विनिबन्ध है। (२) और आवुसो ! कायामें ०अविगत-तृष्णा होता० । (३) रूपमें अ-वीत-राग० होता है० । (४) और फिर आवुसो ! भिक्षु यथेच्छ पेटभर खाकर, शय्या-सुख, स्पर्श-सुख, मृद्ध (=आलस्य) सुख लेते विहरता है० । (५) और फिर आवुसो ! भिक्षु किसी एक देव-निकाय (=देव-लोक) की इच्छासे ब्रह्मचर्य-पालन करता है—'इस शील, व्रत, तप, ब्रह्मचर्यसे मैं (अमुक) देव'''होऊँगा' । जो आवुसो ! यह भिक्षु किसी एक देव-निकायकी इच्छासे ब्रह्मचर्य-पालन करता है०; उसका चित्त ०प्रधानके लिये नहीं झुकता;०; यह पाँचवाँ चित्त-विनिबंध है ।

पाँच इन्द्रिय—चक्षु-इन्द्रिय, श्रोत्र०, घ्राण०, जिह्वा०, काया (=त्वक्)० ।

और भी पाँच इन्द्रिय—सुख-इन्द्रिय, दुःख०, सौमनस्य०, दौर्मनस्य०, उपेक्षा० ।

और भी पाँच इन्द्रिय—श्रद्धा इन्द्रिय, वीर्य०, स्मृति०, समाधि, प्रज्ञा० ।

पाँच निःसरणीय-धातु—(१) आवुसो ! भिक्षुको काममें मन करते, काममें चित्त नहीं दौड़ता, प्रसन्न नहीं होता, स्थित नहीं होता, विमुक्त नहीं होता । किन्तु, नैष्काम्यको मनमें करते चित्त दौड़ता, प्रसन्न होता, स्थित होता, विमुक्त होता है । उसका वह चित्त सुगत, सुभावित, सु-उत्थित, सु-विमुक्त, कामोंसे वियुक्त होता है; और कामोंके कारण जो आस्रव, विघात, परिदाह (=जलन) उत्पन्न होते हैं, उनसे, वह मुक्त है; उस वेदना को वह नहीं झेलता; यह कामों का निःसरण कहा गया है । (२) और फिर आवुसो ! भिक्षुको व्यापाद (= द्रोह) मनमें करते व्यापादमें चित्त नहीं दौड़ता०; किन्तु अव्यापाद (= अद्रोह) को मनमें करते०; यह व्यापादका निस्सरण कहा गया है । (३) ०भिक्षुको विहिंसा (=हिंसा) मनमें करते०; किन्तु, अ-विहिंसाको मनमें करते०; यह विहिंसा-निस्सरण कहा गया है । (४) ०रूपोंको मनमें करते०; किन्तु अ-रूपको मनमें करते०; यह रूपोंका निस्सरण कहा गया है । (५) और फिर आवुसो ! भिक्षुको सत्काय मनमें करते०; किन्तु, सत्काय-निरोधको मनमें करते०; यह सत्कायका निस्सरण कहा गया है ।

पाँच विमुक्ति-आयतन—(१) आवुसो ! भिक्षुको शास्ता (= गुरु) या दूसरा कोई पूज्य (=गुरु-स्थानीय) स-ब्रह्मचारी धर्म उपदेश करता है; जैसे जैसे आवुसो ! भिक्षुको शास्ता या दूसरा कोई गुरु-स्थानीय स-ब्रह्मचारी धर्म उपदेश करता है, वैसे वैसे वह उस धर्ममें, अर्थ समझता है, धर्म समझता है; अर्थ-संवेदी (=मतलब समझनेवाला) धर्म-प्रतिसंवेदी हो, उसको प्रमोद (=प्रामोद्य) होता है; प्रमुदित (पुरुष) को प्रीति

पैदा होती है; प्रीतिमान्‌की काया प्रश्रब्ध (=स्थिर) होती है; प्रश्रब्ध-काय (पुरुष) सुखको अनुभव करता है; सुखीका चित्त एकाग्र होता है। यह प्रथम विमुक्त्यायतन है। (२) और फिर आवुसो! भिक्षुको न शास्ता धर्म उपदेश करता है, न दूसरा कोई गुरुस्थानीय सब्रह्मचारी; बल्कि यथा-श्रुत (=सुनेके अनुसार), यथा-पर्याप्त (=धर्म-शास्त्रके अनुसार) (जैसे-जैसे) दूसरोंको धर्म-उपदेश करता है०। (३)० बल्कि यथाश्रुत, यथा-पर्याप्त धर्मको विस्तारसे स्वाध्याय करता है०। (४)० बल्कि यथाश्रुत यथा-पर्याप्त धर्मको चित्तसे अनु-वितर्क करता है, अनुविचार करता है, मनसे सोचता है०। (५) ०बल्कि उसको कोई एक समाधि-निमित्त, सुगृहीत = सुमनसीकृत = सु-उपधारित (=अच्छी तरह समझा), (और) प्रज्ञासे सु-प्रतिविद्ध (=मूलतक जाना) होता है; जैसे जैसे आवुसो! भिक्षुको कोई एक समाधि-निमित्त०।

पांच विमुक्ति-परिपाचनीय संज्ञा—अनित्य-संज्ञा, अनित्यमें दुःख-संज्ञा, दुःखमें अनात्म-संज्ञा, प्रहाण-संज्ञा, विराग-संज्ञा।

यह आवुसो! उन भगवान्० ने०।

"आवुसो! उन भगवान्० ने छ धर्म यथार्थ कहे हैं०। कौनसे छ?

छ संचेतना-काय—रूप-संचेतना, शब्द०, गन्ध०, रस०, स्प्रष्टव्य०, धर्म०।

छ तृष्णा-काय—रूप-तृष्णा, शब्द०, गन्ध०, रस०, स्प्रष्टव्य०, धर्म-तृष्णा।

छ अ-गौरव—(१) यहाँ आवुसो! भिक्षु शास्तामें अ-गौरव (=सत्कार-रहित), अ-प्रतिश्रय (=आश्रय-रहित) हो विहरता है। (२) धर्ममें अगौरव०। (३) संघमें अगौरव०। (४) शिक्षामें अगौरव०। (५) अप्रमादमें अ-गौरव०। (६) स्वागत (=प्रति-संस्तार)में अगौरव०।……

छ शुद्धावास (=देवलोक विशेष)—अविह, अतप्प (=अताप्य), सुदस्स (=सुदर्श), सुदस्सी (=सुदर्शी), अकनिष्ठ।

छ अध्यात्म (=शरीर में) आयतन—चक्षु-आयतन, श्रोत्र०, घ्राण०, जिह्वा०, काय०, मन-आयतन।

छ बाह्य आयतन—रूप आयतन, शब्द, गन्ध०, रस०, स्प्रष्टव्य (=स्पर्श)०, धर्म-आयतन।

छ विज्ञान काय (=समुदाय)—चक्षु-विज्ञान, श्रोत्र०, घ्राण०, जिह्वा०, काय०, मनो-विज्ञान०।

छ स्पर्श-काय—चक्षु-संस्पर्श, श्रोत्र०, घ्राण०, जिह्वा०, काय०, मनः-संस्पर्श।

छ वेदना-काय—चक्षु-संस्पर्शज वेदना, श्रोत्र-संस्पर्शज०, घ्राणसंस्पर्शज०, जिह्वा-संस्पर्शज०, काय संस्पर्शज, मन-संस्पर्शज वेदना।

छ संज्ञा-काय—रूप-संज्ञा, शब्द०, गन्ध०, रस०, स्प्रष्टव्य० धर्म०,।

छ गौरव—(१) ० शास्तामें सगौरव, सप्रतिश्रय हो विहरता है; (२) धर्ममें०, (३) संघमें०, (४) शिक्षामें०, (५) अप्रमादमें०, (६) प्रतिसंस्तारमें०।

छ सौमनस्य-उप-विचार—(१) चक्षुसे रूप देखकर सौमनस्य (=प्रसन्नता) स्थानीय रूपोंका उपविचार (=विचार) करता है। (२) श्रोत्रसे शब्द सुनकर०। (३) घ्राणसे गन्ध

सूंघकर० । (४) जिह्वासे रस चखकर० । (५) कायासे स्प्रष्टव्य छू कर० । (६) मन से धर्म जानकर ० ।

छ दौर्मनस्य उप-विचार—(१) चक्षुसे रूप देखकर दौर्मनस्य (=अप्रसन्नता)-स्थानीय रूपों का उपविचार करता है। (२) श्रोत्रसे शब्द ० । (३) घ्राणसे गन्ध ० । (४) जिह्वा से रस ० । (५) कायासे स्प्रष्टव्य छूकर ० । (६) मनसे धर्म० ।

छ उपेक्षा-उपविचार—(१) चक्षुसे रूपको देखकर उपेक्षा-स्थानीय रूपोंका उपविचार करता है। (२) श्रोत्रसे शब्द ० । (३) घ्राणसे गन्ध ० । (४) जिह्वासे रस ० । (५) काया से स्प्रष्टव्य ० । (६) मनसे धर्म ० ।

छ साराणीय धर्म—(१) यहाँ आवुसो ! भिक्षुको सब्रह्मचारियोंमें गुप्त या प्रकट मैत्रीभाव युक्त कायिक कर्म उपस्थित होता है; यह भी धर्म साराणीय = प्रियकरण = गुरुकरण है; संग्रह; अ-विवाद, एकताके लिये है। (२) और फिर आवुसो ! भिक्षुको ० मैत्री-भाव-युक्त वाचिक-कर्म उपस्थित होता है ०। (३) ० मैत्रीभाव-युक्त मानस-कर्म ०। (४) भिक्षुके जो धार्मिक धर्म-लब्ध लाभ हैं—अन्ततः पात्रमें चुपड़ने मात्रभी; उस प्रकारके लाभोंको बांटकर खानेवाला होता है; शीलवान् स-ब्रह्म-चारियों सहित भोगनेवाला होता है; यह भी ०। (५) ० जो अखंड=अ-छिद्र, अ-शबल=अ-कल्मष, रुचित (=भुजिस्स), विज्ञ-प्रशंसित, अ-परामृष्ट (= अनिंदित), समाधि-गामी शील हैं; वैसे शीलोंमें स-ब्रह्मचारियोंके साथ गुप्त और प्रकट शील-श्रामण्यको प्राप्त हो विहरता है, यह भी ०। (६) ० जो यह आर्य नैर्याणिक दृष्टि है; (जो कि) वैसा करनेवालेको अच्छी प्रकार दुःख-क्षयकी ओर ले जाती है, वैसी दृष्टिसे स-ब्रह्मचारियोंके साथ गुप्त और प्रकट दृष्टि-श्रामण्यको प्राप्त हो विहरता है; यह भी ०।

छ विवाद-मूल—(१) यहां आवुसो ! भिक्षु क्रोधी, उपनाही (=पाखंडी) होता है, जो वह आवुसो ! भिक्षु क्रोधी उपनाही होता है, वह शास्तामें भी अगौरव=अप्र-तिश्रय हो विहरता है, धर्ममें भी०, संघमेंभी०, शिक्षा (=भिक्षु-नियम) को भी पूरा करनेवाला नहीं होता है। आवुसो ! जो वह भिक्षु शास्तामें भी अगौरव होता है, वह संघमें विवाद उत्पन्न करता है; जो विवाद कि बहुत लोगोंके अहितके लिये = बहुजनके असुखके लिये, देव-मनुष्योंके अनर्थ, अहित, दुःखके लिये होता है। आवुसो ! यदि तुम इस प्रकारके विवाद-मूलको अपनेमें या बाहर देखना, (तो) वहां आवुसो। तुम उस दुष्ट विवाद-मूलके नाशके लिये प्रयत्न करना। यदि आवुसो ! तुम इस प्रकारके विवाद-मूलको अपनेमें या बाहर न देखना, जो तुम उस दुष्ट विवाद-मूलके भविष्यमें न उत्पन्न होने देनेके लिये उपाय करना। इस प्रकार इस दुष्ट (= पापक) विवाद-मूलका प्रहाण होता है, इस प्रकार इस दुष्ट विवाद-मूलकी भविष्यमें उत्पत्ति नहीं होती। (२) और फिर आवुसो ! भिक्षु म्रक्षी, पलासी (=पर्यासी), होता है (३) ईर्षालु, मत्सरी होता है०। [४] शठ, मायावी होता है०। [५]

पापेच्छु, मिथ्यादृष्टि होता है०। [६] संदृष्टि-परामर्शी, आधान-ग्राही, दुःप्रति-निस्सर्गी होता है०।

छ धातु—पृथिवी-धातु, आप०, तेज०, वायु, आकाश०, विज्ञान०।

छ निस्सरणीय-धातु—(१) आवुसो ! भिक्षु ऐसा बोले—'मैंने मैत्री चित्त-विमुक्तिको, भावित, बहुलीकृत (=बढ़ाई), यानीकृत, वस्तु-कृत, अनुष्ठित, परिचित, सु-समारब्ध किया; किन्तु व्यापाद (= द्रोह) मेरे चित्तको पकड़कर ठहरा हुआ है' उसको ऐसा कहना चाहिये—आयुष्मान् ऐसा मत कहें, भगवान्‌की निन्दा (=अभ्याख्यान) मत करें, भगवान्‌का अभ्याख्यान करना अच्छा नहीं है। भगवान् ऐसा नहीं कहते। आवुसो ! यह मुमकिन नहीं, इसका अवकाश नहीं कि मैत्री चित्त विमुक्ति० सु-समारब्धकी गई हो; और तो भी व्यापाद उसके चित्तको पकड़कर ठहरा रहे। यह संभव नहीं। आवुसो ! मैत्री चित्त-विमुक्ति व्यापादका निस्सरण है। (२) यदि आवुसो ! भिक्षु ऐसा बोले—'मैंने करुणा चित्त-विमुक्तिको भावित० किया, तो भी विहिंसा मेरे चित्तको पकड़कर ठहरी हुई है'।०। (३) आवुसो ! यदि भिक्षु ऐसा बोले—'मैंने मुदिता चित्त विमुक्तिको भावित० किया, तो भी अ-रति (= चित्त न लगना) मेरे चित्तको पकड़कर ठहरी हुई है'।०। (४)० उपेक्षा चित्त-विमुक्तिको भावित० किया, तो भी राग मेरे चित्तको पकड़े हुये है;०। (५) अनिमित्ता चित्त-विमुक्तिको भावित० किया; तो भी यह निमित्तानुसारी विज्ञान मुझे होता है'।०। (६)० 'अस्मि (=मैं हूँ) मेरा चलागया, 'यह मैं हूँ' नहीं देखता; तो भी विचिकित्सा (= संदेह) वाद-विवाद-रूपी शल्य चित्तको पकड़े ही हुये है०।'

छ अनुत्तरीय—दर्शन०, श्रवण०, लाभ०, शिक्षा०, परिचर्या०, अनुस्मृति०।

छ अनुस्मृति-स्थान—बुद्ध-अनुस्मृति, धर्म०, संघ०, शील०, त्याग०, देवता-अनुस्मृति।

छ सातत्य-विहार—[१] आवुसो ! भिक्षु चक्षुसे रूपको देखकर न सुमन होता है, न दुर्मन होता है। स्मरण करते, जानते उपेक्षक हो विहार करता है। [२] श्रोत्रसे शब्द सुनकर०। (३) घ्राणसे गंध सूँघकर० (४) जिह्वासे रस चखकर०। (५) कायासे स्प्रष्टव्य छूकर०। (६) मनसे धर्मको जानकर०।

छ अभिजाति (= जाति, जन्म)—(१) यहाँ आवुसो ! कोई कोई कृष्ण-अभिजातिक (= नीच कुलमें पैदा) हो, कृष्ण (= काले=बुरे) धर्म करता है। (२) ०कृष्णाभिजातिक हो शुक्ल-धर्म करता है। (३) ०कृष्णाभिजातिक हो अ-कृष्ण-अशुक्ल निर्वाणको पैदा करता है। (४) ०शुक्लाभिजातिक (=ऊँचे कुलमें उत्पन्न) हो शुक्ल धर्म (=पुण्य) करता है। (५) शुक्ल-अभिजातिक हो, कृष्ण धर्म (=पाप) करता है। (६) ०शुक्लाभिजातिक हो अकृष्ण-अशुक्ल निर्वाणको पैदा करता।

छ निर्वेध भागिय संज्ञा—(१) अनित्य संज्ञा। (२) अनित्यमें दुःखसंज्ञा। (३) दुःखमें अनात्म-संज्ञा। (४) प्रहाण-संज्ञा। (५) विराग-संज्ञा। (६) निरोध संज्ञा। आवुसो ! यह भगवान्‌ने कहे०।

"आवुसो ! उन भगवान्‌ने (यह) सात धर्म यथार्थ कहे हैं०।

सात आर्य-धन—श्रद्धा-धन, शील०, ह्री (=लज्जा)०, अपत्रपा (=संकोच)०, श्रुत०, त्याग०, प्रज्ञा०।

सात बोध्यंग—स्मृति-संबोध्यंग, धर्म-विचय०, वीर्य०, प्रीति०, प्रश्रब्धि०, समाधि०, उपेक्षा०,।

सात समाधि-परिष्कार—सम्यक्-दृष्टि, सम्यक्-संकल्प, सम्यक्-वाक्, सम्यक्-कर्मान्त, सम्यक्-आजीव, सम्यक्-व्यायाम, सम्यक्-स्मृति।

सात अ-सद्धर्म—भिक्षु अ-श्रद्ध होता है, अ-ह्रीक (=निर्लज्ज)०, अन्-अपत्रपी (=अपत्रपा रहित)०, अल्पश्रुत०, कुसीत (=आलसी)०, मूढ़-स्मृति०, दुष्प्रज्ञ०।

सात सद्धर्म—श्रद्धालु होता है, ह्रीमान्०, अपत्रपी०, बहुश्रुत०। आरब्ध-वीर्य (=निरालसी), उपस्थित-स्मृति०, प्रज्ञावान्०।

सात सत्पुरुष-धर्म—...धर्मज्ञ०, अर्थज्ञ०, आत्मज्ञ०, मात्रज्ञ०; कालज्ञ०, परिषद्-ज्ञ०, पुद्गलज्ञ०।

सात [1]निर्दश-वस्तु—(१) आवुसो! भिक्षु शिक्षा (=भिक्षु-नियम) ग्रहण करनेमें तीव्र-छन्द (=बहुत अनुरागवाला) होता है, भविष्यमें भी शिक्षा ग्रहण करनेमें प्रेम रहित नहीं होता। (२) धर्म-निशांति (=[2]विपश्यना)में तीव्र-छन्द होता है, भविष्यमें भी धर्म-निशांतिमें प्रेम-रहित नहीं होता। (३) इच्छा-विनय (=तृष्णा-त्याग) में ०। (४) प्रतिसल्लयन (=एकांतवास)में ०। (५) वीर्यारम्भ (=उद्योग) में ०। (६) स्मृतिके निष्पाक (=परिपाक)में ०। (७) दृष्टि-प्रतिवेध (=सन्मार्ग-दर्शन)में ०।

सात संज्ञा—अनित्य-संज्ञा, अनात्म०, अशुभ०, आदीनव०, प्रहाण०, विराग०, निरोध०।

सात बल—श्रद्धाबल, वीर्य०, स्मृति०, समाधि०, प्रज्ञा०, ह्री०, अपत्राप्य०।

सात विज्ञान-स्थिति—(१) आवुसो! (कोई कोई) सत्व (=प्राणी) नानाकाय नानासंज्ञा (=नाम)वाले हैं; जैसेकि मनुष्य, कोई कोई देव, कोई कोई विनिपातिक (=पाप-योनि); यह प्रथम विज्ञान-स्थिति है। (२) ०नाना-काय किन्तु एक-संज्ञावाले; जैसेकि प्रथम उत्पन्न ब्रह्मकायिक देव०। (३) ०एक-काया नाना-संज्ञावाले, जैसे कि आभास्वर देवता०। (४)० एक-काया एक-संज्ञावाले, जैसे कि शुभकृत्स्न देवता०।

---

१. अ. क. "तैर्थिक लोग दश वर्षके समयमें मरे निगंठ (=जैन साधु)को निर्दश कहते हैं। वह (मरा निगंठ) फिर दश वर्ष तक नहीं होता।...। इसी प्रकार बीस वर्ष आदि कालमें मरेको निर्विंश, निस्त्रिंश, निश्चत्वारिंश, निष्पंचाश कहते हैं। आयुष्मान् आनन्दने, ग्राममें विचरण करते इस बातको सुनकर विहारमें जा भगवान्से कहा। भगवान्ने कहा—'आनन्द! यह तैर्थिकोंका ही वचन नहीं है; मेरे शासनमें भी यह क्षीणास्रवों को कहा जाता है। क्षीणास्रव (=अर्हत्, मुक्त) दश वर्षके समय परिनिर्वाण प्राप्त हो फिर दश-वर्ष नहीं होता, सिर्फ दश वर्ष ही नहीं नव वर्ष... एक वर्ष...एक मासका भी, एक दिनका भी, एक मुहूर्तका भी नहीं होता। किसलिये? (पुनः) जन्मके न होनेसे......।"

(=ख्याल)के मनमें न करनेसे, 'आकाश अनन्त है' इस आकाश-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है० (५) सर्वथा आकाशानन्त्यायतनको अतिक्रमण कर, 'विज्ञान अनन्त है' इस विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है०। (६) सर्वथा विज्ञानानन्त्यायतनको अतिक्रमण कर, 'किंचित् (=कुछ भी) नहीं' इस आकिंचन्य-आयतन को प्राप्तहो विहरता है०। (७) सर्वथा आकिंचन्यायतनको अतिक्रमणकर 'नहीं संज्ञा है, न असंज्ञा' इस नैवसंज्ञा नअसंज्ञा-आयतन को०। (८) सर्वथा 'नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतनको अतिक्रमण कर, संज्ञा-वेदयितनिरोध (=जहाँ होशका ख्याल ही लुप्त हो जाता है) को प्राप्त हो विहरता है।

आवुसो! उन भगवान्०ने० यह।

"आवुसो! उन भगवान्०ने यह नव धर्म यथार्थ कहे हैं०।

नव आघात-वस्तु—(१) 'मेरा अनर्थ (=बिगाड़) किया', इसलिये आघात (=बदला) रखता है। (२) 'मेरा अनर्थ कर रहा है०। (३) मेरा अनर्थ 'करेगा०। (४) मेरे प्रिय=मनापका अनर्थ किया०। (५) ०० अनर्थ करता है०। (६) ०० अनर्थ करेगा०। (७) मेरे अ-प्रिय-अमनापके अर्थ (=प्रयोजन)को किया०। (८) ० करता है०। (९) ० करेगा०।

नव आघात-प्रतिविनय (=हटाना)—(१) 'मेरा अनर्थ किया तो (बदलेमें अनर्थ करनेमें मुझे) क्या मिलनेवाला है' इससे आघातको हटाता है। (२) 'मेरा अनर्थ करता है, तो क्या मिलनेवाला है' इससे०। (३) ०करेगा०। (४) मेरे प्रिय-मनापका अनर्थ किया, तो क्या मिलनेवाला है'०। (५) अनर्थ करता है०। (६) ० अनर्थ करेगा०। (७) मेरे अप्रिय=अमनापके अर्थको किया है०। (८) ०करता है०। (९) ०करेगा०।

नव सत्वावास[1](=जीवलोक)—(१) आवुसो! कोई सत्व नानाकाय (=शरीर) और नाना संज्ञा (=नाम) हैं, जैसे कि मनुष्य, कोई कोई देव, कोई कोई विनिपातिक (=पापयोनि), यह प्रथम सत्वावास है। (२) ०नाना-काय एक संज्ञावाले, जैसे प्रथम उत्पन्न ब्रह्मकायिक देव। (३) ०एककाया नाना-संज्ञावाले, जैसे आभास्वर देवलोग। (४)० एक-काया एक-संज्ञा वाले, जैसे शुभ-कृत्स्न देवलोग। (५)० संज्ञा-रहित, प्रतिसंवेदन (=होश)-रहित, जैसे कि असंज्ञी० सत्व देवलोग। (६)० रूप-संज्ञाको सर्वथा अतिक्रमण कर, प्रतिघ-संज्ञा (=प्रतिहिंसाके ख्याल)के अस्त होने नानापनकी संज्ञाको मनमें न करनेसे, 'आकाश अनन्त है' इस आकाश-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हैं०। (७)० आकाशानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमण कर, 'विज्ञान अनन्त है' इस विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त है०। (८) विज्ञानानंत्यायतनको सर्वथा अतिक्रमण कर 'किंचित् नहीं' इस अकिंचन्य-आयतनको प्राप्त हैं०। (९) आवुसो! ऐसे सत्व हैं, (जोकि) अकिंचन्यायतनको सर्वथा अतिक्रमण कर, नैव-संज्ञा-नासंज्ञा (=न होश न बेहोश)-आयतनको प्राप्त हैं, यह नवम सत्वावास है।

१. सात विज्ञान-स्थिति ४६९।

नव अक्षण=अ-समय (है) ब्रह्मचर्य-वासके लिए—(१) आवुसो ! लोकमें तथागत अर्हत् सम्यक् संबुद्ध उत्पन्न होते हैं, और उपशम=परिनिर्वाणके लिए, संबोधिगामी, सुगत (=सुन्दर गतिको प्राप्त=बुद्ध) द्वारा प्रवेदित (=साक्षात्कार किये) धर्म का उपदेश करते हैं, (उस समय) यह पुद्गल (=पुरुष) निरय (=नर्क) में उत्पन्न रहता है, यह प्रथम अक्षण० है। (२) ०और फिर यह तिर्यक्-योनि (=पशु पक्षी आदि) में उत्पन्न रहता है०। (३) ०प्रेत्य-विषय (=प्रेत-योनि) में उत्पन्न हुआ होता है०। (४) ० असुर-काय (=असुर-समुदाय) ०। (५) दीर्घायु देव-निकाय (=देव-समुदाय) में ०। (६) ० प्रत्यन्त (=मध्यदेशके बाहरके) देशोंमें अ-पंडित म्लेच्छोंमें उत्पन्न हुआ होता है, जहाँपर कि भिक्षुओंकी गति(=जाना) नहीं, न भिक्षुणियोंकी, न उपासकोंकी, न उपासिकाओंकी ०। (७) ० मध्यदेश (=मज्झिमजनपद) में उत्पन्न होता है, किन्तु वह मिथ्यादृष्टि (=उल्टी मत)=(विपरीत दर्शनवाला) है—दान दिया (कुछ) नहीं है, यज्ञ किया०, हवन किया०, सुकृत दुष्कृत कर्मोंका फल=विपाक नहीं; यह लोक नहीं, परलोक नहीं, माता नहीं, पिता नहीं, औपपातिक (=अयोनिज) सत्त्व नहीं, लोकमें सम्यग्-गत (=ठीक रास्ते पर)=सम्यक्-प्रतिपन्न श्रमण ब्राह्मण नहीं, जो कि इस लोक और परलोकको स्वयं साक्षात्कर, अनुभवकर, जाने०। (८) ०मध्य-देशमें होता है, किन्तु वह है, दुष्प्रज्ञ, जड=एड-मूक (=भेंड़सा गूँगा), सुभाषित दुर्भाषितके अर्थको जाननेमें असमर्थ, यह आठवाँ अक्षण है। (९) ० मध्य-देशमें उत्पन्न होता है, और वह प्रज्ञावान्, अजड=अनेड-मूक होता है, सुभाषित दुर्भाषितके अर्थको जाननेमें समर्थ होता है ०।

नव अनुपूर्व (=क्रमशः)-विहार—(१) आवुसो ! भिक्षु काम और अकुशल धर्मोंसे अलग हो, वितर्क-विचार सहित विवेकज प्रीति सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। (२) ० द्वितीय ध्यान ०। (३) ० तृतीय ध्यान ०। (४) ० चतुर्थ ध्यान०। (५) ० आकाशानन्त्यायतनको प्राप्त हो विहरता है। (६) ० विज्ञानानन्त्यायतन०। (७) ० आकिंचन्यायतन ०। (८) ० नैवसंज्ञानासंज्ञायतन ०। (९) ० संज्ञा वेदित निरोध०।

नव अनुपूर्व-निरोध—(१) प्रथम ध्यान प्राप्तकी काम-संज्ञा (=कामोपभोगका ख्याल) निरुद्ध (=लुप्त) होती है। (२) द्वितीय ध्यानवालेका वितर्क-विचार निरुद्ध होता है। (३) तृतीय ध्यानवालेकी प्रीति निरुद्ध होती है (४) चतुर्थ ध्यान-प्राप्त का आश्वास प्रश्वास (=साँस लेना) निरुद्ध होता है। (५) आकाशानन्त्यायतन प्राप्तकी रूप-संज्ञा निरुद्ध होती है। (६) विज्ञानानन्त्यायतन-प्राप्तकी आकाशानन्त्यायतन-संज्ञा०। (७) आकिंचन्यायतन-प्राप्तकी विज्ञानानन्त्यायतन संज्ञा०। (८) नैवसंज्ञानासंज्ञायतन प्राप्तकी आकिंचन्यायतन संज्ञा ०। (९) संज्ञा-वेदित निरोध-प्राप्तकी संज्ञा (=होश) और वेदना (=अनुभव) निरुद्ध होती है।

आवुसो ! उन भगवान्० ने यह० ।

"आवुसो ! उन भगवान्० ने दस धर्म यथार्थ कहें० । कौनसे दस ?—

दस नाथ-करण धर्म—(१) आवुसो ! भिक्षु शीलवान्, प्रातिमोक्ष (= भिक्षुनियम)-संवर (= कवच) से संवृत (= आच्छादित) होता है। थोड़ी सी बुराइयों (= वद्य) में भी भय-दर्शी, आचार-गोचर-युक्त हो विहरता है, (शिक्षापदोंको) ग्रहणकर शिक्षापदों को सीखता है। जो यह आवुसो ! भिक्षु शीलवान्०, यह भी धर्म नाथ-करण (=न अनाथ करनेवाला) है। (२) ०भिक्षु बहु-श्रुत, श्रुत-धर, श्रुत-संचय-वान् होता है। जो वह धर्म आदिकल्याण, मध्यकल्याण, पर्यवसान-कल्याण, सार्थक = सव्यंजन हैं, (जिसे) केवल, परिपूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य कहते हैं। वैसे धर्म, (भिक्षु) को बहुत सुने, ग्रहण किये, वाणीसे परिचित, मनसे अनुपेक्षित दृष्टिसे सुप्रतिविद्ध (=अंतस्तल तक देखे) होते हैं; यह भी धर्म नाथ-करण होता है। (३) ०भिक्षु कल्याण-मित्र= कल्याण-सहाय = कल्याण-संप्रवंक होता है। जो यह भिक्षु कल्याण मित्र० होता है, यह भी०। (४) ०भिक्षु सुवच, सौवचस्य (= मधुर-भाषिता) वाले धर्मोंसे युक्त होता है। अनुशासनी (=धर्म-उपदेश) में प्रदक्षिणग्राही=समर्थ (=क्षम) (होता है) यह भी०। (५) ० भिक्षु ब्रह्मचारियोंके जो नाना प्रकारके कर्तव्य होते हैं, उनमें दक्ष = आलस्यरहित होता है, उनमें उपाय=विमर्शसे युक्त, करनेमें समर्थ= विधानमें समर्थ, होता है। ० यह भी ०। (६) ० भिक्षु अभिधर्म (=सूत्रमें), अभि-विनय (=भिक्षु-नियमोंमें) धर्म-काम (=धर्मेच्छु), प्रिय-समुदाहार (=दूसरे के उपदेशको सत्कारपूर्वक सुननेवाला, स्वयं उपदेश करनेमें उत्साही), बड़ा प्रमुदित होता है, ०यह भी०। (७) भिक्षु जैसे तैसे चीवर, पिंडपात, शयनासन, ग्लान-प्रत्यय-भैषज्य-परिष्कारसे संतुष्ट होता है०। (८) ०भिक्षु अकुशल-धर्मोंके विनाशके लिए, कुशल-धर्मोंकी प्राप्तिके लिए उद्योगी (=आरब्ध-वीर्य) स्थामवान् = दृढ़पराक्रम होता है। कुशल-धर्मोंमें अनिक्षिप्त-धुर (=भगोड़ा नहीं) होता०। (९) ०भिक्षु स्मृतिमान्, अत्युत्तम स्मृति-परिपाक से युक्त होता है; बहुत पुराने किये, बहुत पुराने भाषण करेको भी स्मरण करनेवाला, अनुस्मरण करनेवाला होता है०। (१०) ०भिक्षु प्रज्ञावान् उदय-अस्त गामिनी, आर्य, निर्वेधिक (=अंतरतल तक पहुँचनेवाली), सम्यक्-दुःख-क्षय-गामिनी प्रज्ञासे युक्त होता है०।

दस कृत्स्नायतन—(१) एक (पुरुष) ऊपर नीचे टेढ़े अद्वितीय (=एक मात्र) अप्रमाण (=अतिमहान्) पृथिवी-कृत्स्न (=सब पृथिवी) जानता है। (२) ०आप-कृत्स्न०। (३) ०तेजः-कृत्स्न०। (४) ०वायु-कृत्स्न०। (५) ०नील-कृत्स्न०। (६) ०पीत-कृत्स्न०। (७) ०लोहित-कृत्स्न०। (८) ०अवदात-कृत्स्न०। (९) ०आकाश-कृत्स्न। (१०) ०विज्ञान-कृत्स्न०।

दस अकुशल-कर्म-पथ (= दुष्कर्म)—(१) प्राणातिपात (= हिंसा)। (२) अदत्तादान (= चोरी)। (३) काम-मिथ्याचार (= व्यभिचार)। (४) मृषावाद (= झूठ)। (५) पिशुन-वचन (= चुगली)। (६) परुष-वचन (= कटुवचन)। (७) संप्रलाप

(=बकवास) । (८) अभिध्या (=लोभ) । (९) व्यापाद (=द्रोह) । (१०) मिथ्या-दृष्टि (=उल्टा मत) ।

दस कुशल-कर्म-पथ (=सुकर्म)—(१) प्राणातिपात-विरति । (२) अदत्तादान-विरति । (३) काम-मिथ्याचार-विरति । (४) मृषावाद-विरति । (५) पिशुनवचन-विरति । (६) परुष-वचन-विरति । (७) संप्रलाप-विरति । (८) अन्-अभिध्या । (९) अव्यापाद । (१०) सम्यग्-दृष्टि ।

दस आर्य वास—(१) आवुसो ! भिक्षु पाँच अंगों (=बातों) से हीन (=पञ्चाङ्ग-विप्रहीण) होता है । (२) छ अंगोंसे युक्त (=षडंग-युक्त) होता है । (३) एक आरक्षा वाला होता है । (४) अपश्रयण (=आश्रय) वाला होता है । (५) पनुन्न पच्चेक-सच्च होता है । (६) समवय सट्ठेसन । (७) अन्-आविल (=अमलिन)-संकल्प० । (८) प्रश्रब्ध-काय-संस्कार० । (९) सुविमुक्त-चित्त० । (१०) सुविमुक्त-प्रज्ञ० । (१) आवुसो ! भिक्षु पाँच अंगोंसे हीन कैसे होता है ? यहाँ आवुसो ! भिक्षुका कामच्छन्द (=काम-राग) प्रहीण (=नष्ट) होता है, व्यापाद प्रहीण०, स्त्यान-मृद्ध०, औद्धत्य-कौकृत्य०, विचिकित्सा० । इस प्रकार आवुसो ! भिक्षु पञ्चाङ्ग-विप्रहीण होता है । (२) कैसे आवुसो भिक्षु षडंग-युक्त होता है ? आवुसो ! भिक्षु चक्षुसे रूपको देख न सु-मन होता है, न दुर्मन; स्मृति-संप्रजन्य-युक्त उपेक्षक हो विहरता है । श्रोत्रसे शब्द सुनकर० । घ्राणसे गंध सूँघकर० । जिह्वासे रस चखकर०, कायसे स्प्रष्टव्य छूकर०, मनसे धर्म जानकर० ० । (३) आवुसो ! एकारक्ष कैसे होता है ? आवुसो ! भिक्षु स्मृतिकी रक्षासे युक्त होता है । (४) आवुसो ! भिक्षु कैसे चतुरापश्रयण होता है ? आवुसो ! भिक्षु संख्यानकर (=समझकर) एकको सेवन करता है, संख्यानकर एकको स्वीकार करता है, संख्यानकर एकको हटाता है, संख्यानकर एकको वर्जित करता है, ० । (५) आवुसो ! भिक्षु कैसे पनुन्न-पच्चेक-सच्च होता है ? आवुसो ! जो वह पृथक् (=अलग) श्रमण-ब्राह्मणोंके पृथक् (=अलग) प्रत्येक (=एक एक) सत्य (=सिद्धांत) होते हैं, वह सभी (उसके) पनुन्न=त्यक्त=वान्त=मुक्त=प्रहीण, प्रतिप्रस्रब्ध (=शमित) होते हैं ० । (६) आवुसो ! कैसे 'समवयसट्ठेसन, (=सम्यक् विसृष्टैषण) होता है ? आवुसो ! भिक्षुकी काम-एषणा प्रहीण (=नष्ट) होती है, भव-एषणा०, ब्रह्मचर्य-एषणा प्रशमित होती है, ० । (७) आवुसो ! भिक्षु कैसे अनाविल-संकल्प होता है ? आवुसो ! भिक्षुका काम-संकल्प प्रहीण होता है, व्यापाद-संकल्प०, हिंसा-संकल्प० । इस प्रकार आवुसो ! भिक्षु अनाविल (=निर्मल) संकल्प०, होता है । (८) आवुसो ! भिक्षु कैसे प्रश्रब्ध-काय होता है ? ०भिक्षु०[1] चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है,० । (९) आवुसो ! भिक्षु कैसे विमुक्त-चित्त होता है ? आवुसो ! भिक्षुका चित्त रागसे विमुक्त होता है, ०द्वेषसे विमुक्त होता है, ०मोहसे विमुक्त होता है, इस प्रकार० । (१०) कैसे ० सुविमुक्ति-प्रज्ञ होता है ? आवुसो ! भिक्षु जानता है—'मेरा राग प्रहीण हो गया,

१. देखो पृष्ठ १६५ ।

उच्छिन्न-मूल=मस्तकच्छिन्न-तालकी तरह, अभाव-प्राप्त, भविष्यमें उत्पन्न होनेके अयोग्य, हो गया है।' ०मेरा द्वेष० ।०मेरा मोह० । ० ।

दश अशैक्ष्य (=अर्हत्)-धर्म—(१) अशैक्ष्य सम्यक्-दृष्टि । (२) ०सम्यक्-संकल्प । (३) ०सम्यक्-वाक् । (४) ०सम्यक्-कर्मान्त । (५) ०सम्यक्-आजीव । (६) सम्यक्-०व्यायाम । (७) ०सम्यक्-स्मृति । (८) ०सम्यक्-समाधि । (९) ०सम्यक्-ज्ञान । (१०) अशैक्ष्य सम्यक्-विमुक्ति ।

"आवुसो ! उन भगवान्० ने० ।"

तब भगवान्‌ने उठकर आयुष्मान् सारिपुत्रको आमंत्रित किया—

"साधु, साधु, सारिपुत्र ! सारिपुत्र, तूने भिक्षुओंको अच्छा सङ्गीति-पर्याय (= एकता का ढंग) उपदेश किया ।"

आयुष्मान् सारिपुत्रने (जो) यह कहा, शास्ता (=बुद्ध) इसमें सहमत हुये । सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने (भी) आयुष्मान् सारिपुत्रके भाषणका अभिनन्दन किया ।

× × ×

(९)

चुन्द-सुत्त । सारिपुत्रमोग्गलान-परिनिर्वाण । उक्काचेल-सुत्त । (ई.पू.४८५-८४

'ऐसा' मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ-पिंडकके आराम जेत-वनमें विहार करते थे ।

उस समय आयुष्मान् सारिपुत्र मगधमें 'नालक-ग्राममें रोग-ग्रस्त = दुःखित सख्त बीमार हो विहार करते थे ।

---

१. चौआलीसवां वर्षावास (४८५ ई. पू.) को भगवान्‌ने श्रावस्ती (पूर्वाराम) में बिताया, पैंतालीसवां (४८४ ई. पू.) श्रावस्ती (जेतवन) में । २. सं. नि. ४५:२:३. ।

२. अ.क.'भगवान्‌ने क्रमशः श्रावस्ती जा, जेतवनमें प्रवेश किया ।···'माताको मिथ्या-दर्शन (= झूठे मत)से छुड़ाकर, जन्म लेनेके कोठे (= ओवरक)में ही परिनिर्वाण प्राप्त करूंगा' यह निश्चयकर (सारिपुत्रने) चुन्द स्थविरसे कहा—आवुस चुन्द ! हमारे पाँच सौ भिक्षुओंको सूचित करो—'आवुसो ! पात्रचीवर ग्रहण करो, धर्म-सेनापति नालकग्राम (नालन्दा) जाना चाहते हैं' । स्थविरने ऐसाही किया । भिक्षु शयनासन संभाल पात्रचीवर ले स्थविरके सामने गये ।

स्थविर (सारिपुत्र)ने शयनासन संभाल ,दिवास्थान (= दिनके विश्रामके स्थान) को साफ कर दिवास्थानके द्वारपर खड़े हो, दिवास्थानकी ओर अवलोकन करके कहा—'यह अन्तिम (=पश्चिम) दर्शन है, । फिर आना नहीं है ।' (फिर) पाँचसौ भिक्षुओंके साथ भगवान्‌के पास जा वन्दनाकर भगवान्‌से बोले—

"भन्ते ! भगवान् अनुज्ञा दें, सुगत अनुज्ञा दें, मेरा परिनिर्वाण-काल है, आयु-संस्कार (=जीवन) खतम हो चुका ।"

···"कहाँ परिनिर्वाण करोगे ?"···

नेय उपरेवत गाँवसे बाहर जाते वक्त स्थविरको देखकर, पास आ वन्दना कर खड़ा हुआ। स्थविरने उसे कहा—"घरमें तुम्हारी अय्यका (=नानी) है?"

"भन्ते! है"

"जाओ, हमारे यहाँ आनेकी बात कहो। किसलिये आये पूछनेपर—'आज एक रात गाँवके भीतर वसेंगे।'जन्म-गृह (=जातोवरक)को साफ करो, और पाँच सौ भिक्षुओंके रहने का स्थान ठीक करो।"

उसने जाकर—"नानी! मेरे मामा आये हैं।"…

"इस समय कहाँ हैं?" "ग्राम द्वारपर।"

"अकेलेही, या और भी कोई है?" "पांचसौ भिक्षु हैं।"

"किस कारण से आये?"

उसने वह (सब) हाल कह सुनाया। ब्राह्मणी ने—'इतनोंके लिये क्यों वासस्थान साफ करा रहे हैं? जवानीमें प्रव्रजित हो, अब बुढ़ापेमें क्या गृहस्थ होना चाहते हैं?'— सोचते जन्म-घरको साफ करवा, पाँचसौके वसनेका स्थान बनवा, मशाल (=दंड-दीपिका) जलवाकर, स्थविरके लिये आदमी भेजा। स्थविर, भिक्षुओंके साथ प्रसाद (=कोठे) पर चढ़ जन्मघरमें जा के बैठे। बैठकर, भिक्षुओंको उनके आसनपर भेज दिया। उनके जाने मात्रसेही स्थविरको खून गिरनेकी सख्त बीमारी उत्पन्न हुई; मरणान्तक पीड़ा होने लगी। ब्राह्मणी—'पुत्रकी बात मुझे अच्छी नहीं लगती'—(सोच), अपने वास-गृहके द्वारपर खड़ी रही।

चारों महाराजा (देवता) 'धर्म-सेनापति कहाँ विहरते हैं' खोजते खोजते—'नालक-ग्राममें जन्मघरमें परिनिर्वाण-मंचपर पड़े हैं, अन्तिम दर्शनके लिये चलें (सोच) आकर वंदना कर खड़े हुये। (स्थविरने पूछा-) "तुम कौन हो?" "महाराजा, भन्ते!" "किसलिये आये?" "रोगी-सेवा होगी (तो) करेंगे।" "हो गया यह रोगी-सुश्रूषक है, तुमलोग जाओ"—कह कर भेज दिया। उनके जानेके बाद उसी प्रकारसे देवताओंका इन्द्र (=राजा) शक (आया)। उसके जानेपर महाब्रह्मा आये। उनको भी स्थविरने भेज दिया। ब्राह्मणी देवताओंके गमन आगमनको देखकर—'यह कौन मेरे पुत्रको वन्दना कर कर, जा रहे हैं' (सोचती), स्थविरके कमरेके द्वारपर जाकर—'तात चुन्द! क्या बात है?' पूछा। उन्होंने यह बात कह दी और (स्थविर से) कहा—"भन्ते, महा-उपासिका आई है"। "अ-समयमें किसलिये आई है?" "तात! तुम्हें देखनेके लिये" कहकर—'तात! पहिले कौन आये थे?' पूछा। "उपासिके! चारों महाराजा" "तात! तुम चारों महाराजोंसे भी बड़े हो?" "उपासिके! यह हमारे माली जैसे हैं…?" "तात! उनके जानेके बाद कौन आया?" "देवोंका इन्द्र शक"…"उसके जानेपर तात! प्रकाश करने से कौन कौन आये?" "उपासिके! यह तुम्हारे (ब्राह्मणोंके) भगवान्, शास्ता महाब्रह्मा थे"। "तात! तुम मेरे भगवान् महाब्रह्मासे भी बड़ कर हो?" "हाँ उपासिके!…"

तब ब्राह्मणीको—'मेरे पुत्रकी ऐसी सामर्थ्य है, तो मेरे पुत्रके भगवान् शास्ताकी कैसी सामर्थ्य होगी?'—सोचते समय, एकदम पाँच प्रकार (=वर्ण) की प्रीति उत्पन्न हो

सकल शरीरमें व्याप्त हो गई। स्थविरने 'मेरी माताको प्रीति=सौमनस्य उत्पन्न हो गया, अब यह धर्म-उपदेशका काल है'—सोचकर—"क्या सोच रही है, महाउपासिके!"—पूछा। उसने कहा—"तात! यह सोच रही हूँ—'मेरे पुत्रमें यह गुण है, तो उसके शास्तामें कैसा गुण होगा?" "महाउपासिके! मेरे शास्ताके...समान, शील, समाधि, प्रज्ञा, विमुक्ति-ज्ञान-दर्शनमें कोई नहीं है।" (और)...विस्तार करके...धर्म-देशना की। ब्राह्मणीने प्रिय-पुत्रकी धर्म-देशनाके अन्तमें स्रोत-आपत्तिफलमें स्थित हो, पुत्र से कहा—"तात उपतिष्य! तुमने क्यों ऐसा किया? ऐसा अमृत मुझे इतने समय तक नहीं दिया?" स्थविरने—'मैंने अब माता रूपसारी ब्राह्मणीको पोसनेका दाम चुका दिया, इतनेसे (यह) निर्वाह कर लेगी'—सोचकर, "जा महाउपासिके!" (कह), ब्राह्मणीको भेजकर "चुन्द! क्या समय है?" "भन्ते! बड़े भोरकी वेला है।" "भिक्षु-संघको जमा करो।" "भन्ते! भिक्षु-संघ जमा है।" "चुन्द! मुझे उठाकर बैठाओ?" उठाकर बैठा दिया।

स्थविरने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"आवुसो! तुम्हें मेरे साथ विचरते चौवालीस वर्ष हो गये, जो कोई मेरा कायिक वाचिक (कर्म) तुम्हें अरुचिकर हुआ हो, आवुसो! उसे क्षमा करो।"

"भन्ते! इतने समय तक आपको छायाकी भाँति बिना छोड़े विचरते, हमने अरुचिकर (बुरा) कुछ भी नहीं देखा। किंतु, आप हमारे (दोषोंको) क्षमा करें।"

तब स्थविर महाचीवरको खींचकर मुखको ढाँक, दाहिनी करवट लेटे। शास्ताकी भाँति क्रमसे नव समापत्तियों (=ध्यानों) में अनुलोम-प्रतिलोमसे पहुँचकर, फिर प्रथम-ध्यानसे लेकर चतुर्थ-ध्यान पर्यन्त ध्यान लगाया। उस (चतुर्थ-ध्यान) से उठनेके बाद ही ...(वह) निर्वाणको...प्राप्त हुये। उपासिका 'मेरा पुत्र क्यों कुछ नहीं बोलता है'—सोच, पीठ पाद मलकर 'परिनिर्वाण प्राप्त हो गये' जान चिल्ला उठी, पैरोंमें गिरके—'तात! पहिले हमने तुम्हारे गुणोंको नहीं जाना...'कह रोने लगी।

...तब शक्रने महामंडप बनवा, मंडपके बीचमें महाकूटागारको स्थापितकर, (उसमें शरीर रख), बड़ा उत्सव किया। (उस समय) देवोंके भीतर मनुष्य, मनुष्योंके भीतर देवता (भीड़ लगा रहे) थे।...उनमें यह उपासिका भी घूम रही थी। भीड़ होनेके कारण एक ओर न हट सकनेसे मनुष्योंके बीचमें गिर पड़ी। मनुष्य उसे न देख कुचलते चले गये। वह वहीं मरकर त्रायस्त्रिंश (देव) भवनके कनक-विमानमें आकर पैदा हुई...।

लोगोंने सप्ताहभर उत्सव मना, सब गंधोंसे चिता चिनवाई।...। स्थविरके शरीरको चितापर रख, खसके पूलोंसे जलवा दिया। दाह-स्थानमें रात भर धर्म-उपदेश होता रहा। अनुरुद्ध स्थविरने गंधोदकसे स्थविरकी चिता बुझाई। चुन्द स्थविर धातुओं (=अस्थियों) को परिस्रावण (छन्ना) में रख,—'अब मैं यहाँ नहीं रह सकता, अपने बड़े भाई धर्म-सेनापति सारिपुत्र स्थविरके परिनिर्वाण होनेकी बात सम्यक्-संबुद्धको कहूँ'—(सोच) धातु-परिस्रावण और स्थविरके पात्र-चीवरको लेकर श्रावस्ती चले। एक स्थानमें दो रात भी न बसकर,...श्रावस्ती पहुँच गये। (उधर) यहीं उनके उपाध्याय धर्म-भंडारी आयुष्मान् आनन्द थे, वहीं गये।...जेतवन महाविहारकी पुष्करिणीमें नहाकर

चुन्द श्रमणोद्देश आयुष्मान् सारिपुत्रके पात्र-चीवरको ले जहां श्रावस्ती, अनाथ-पिंडकका आराम जेतवन था, जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहां गये। जाकर आयुष्मान् आनन्दको अभिवादन कर बोले—

"भन्ते! आयुष्मान् सारिपुत्र परिनिर्वृत (=निर्वाण-प्राप्त) हो गये, यह उनका पात्र-चीवर है, यह उनका धातु-परिस्रावण है।"

"आयुस चुन्द! यह कथा (=बात) रूपी भेंट है, चलो चलें, आयुस चुन्द! जहाँ भगवान् हैं,...चलकर भगवान्‌को यह बात कहें।"

"अच्छा भन्ते!"...

तब आयुष्मान् आनन्द और चुन्द श्रमणोद्देश जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये; जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌को कहा—

..."मेरे उपाध्याय धर्म-भाण्डागारिक जेठे भाई स्थविरके बड़े मित्र हैं, पहिले उनके पास जाके...(फिर) शास्ताके पास जाऊँगा'...(सोचकर वहाँ गये)। (वहाँसे)...भगवान्‌के दर्शनके लिये...। एक एकको दिखलाकर—"यह उन (=सारिपुत्र) का पात्रचीवर है, और यह धतु-परिस्रावण है" कहा।

शास्ताने हाथ फैला धातु-परिस्रावणको ले हथेलीपर रख, भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ! जिस भिक्षुने पहिले (एक) दिन अनेकसौ प्रातिहार्य करके निर्वाण होनेके लिये अनुज्ञा माँगी, उसकी ही यह आज शंख-वर्ण-समान धातुयें (=हड्डियाँ) दिखाई पड़ रही हैं। भिक्षुओ! सौ हजार कल्पसे अधिक समयतक पारमिता (=दान आदि) पूर्णकिया हुआ यह भिक्षु था। मेरे प्रवर्तित (=घुमाये) धर्म-चक्र (=धर्मके चक्के) को अनु-प्रवर्तन करनेवाला, यह भिक्षु था।...।महाप्रज्ञावान् यह भिक्षु था।...। अल्पेच्छ (=त्यागी) यह भिक्षु था। यह संतुष्ट प्रविविक्त (=एकान्तप्रेमी) था,=असंसृष्ट था, उद्योगी, पाप-निंदक यह भिक्षु था। प्राप्त-महान्-संपत्तियोंको पाँच सौ जन्मों (तक) छोड़कर, यह भिक्षु प्रव्रजित होता रहा।...। देखो भिक्षुओ! महाप्रज्ञकी धातुओंको...।—

जो पाँच सौ जन्मों तक मनोरम भोगोंको छोड़ प्रव्रजित होता रहा। उस वीत-राग जितेन्द्रिय, निर्वाण-प्राप्त सारिपुत्रकी वन्दना करो ॥ १ ॥

क्षान्ति(=क्षमा)-बलमें पृथ्वीके समान (वह) कुपित नहीं होता था, न इच्छाओंके वशवर्ती होता था, (वह) अनुकम्पक, कारुणिक निर्वाणको गया; निर्वाणप्राप्त सारिपुत्रकी वन्दना करो ॥ २ ॥

जैसे चाण्डाल-पुत्र नगरमें प्रविष्ट हो, मन नीचा किये, कपाल हाथमें लिये, विचरता है, ऐसेही यह सारिपुत्र विचरता था; निर्वाणप्राप्त० ॥ ३ ॥

जैसे टूटे सींगों वाला साँड, नगरके भीतर विना किसीको मारते विचरता है। वैसेही यह सारिपुत्र विचरता था, निर्वाण-प्राप्त० ॥ ४ ॥

इस प्रकार भगवान्‌ने...स्थविरके गुणको वर्णन किया। जैसे जैसे भगवान् स्थविरके गुणको वर्णन करते थे, वैसे वैसे आनन्द अपनेको संभाल न सकते थे।

सकल शरीरमें व्याप्त हो गई। स्थविरने 'मेरी माताको प्रीति=सौमनस्य उत्पन्न हो गया, अब यह धर्म-उपदेशका काल है'—सोचकर—"क्या सोच रही है, महाउपासिके!"—पूछा। उसने कहा—"तात! यह सोच रही हूँ—'मेरे पुत्रमें यह गुण है, तो उसके शास्तामें कैसा गुण होगा?" "महाउपासिके! मेरे शास्ताके···समान, शील, समाधि, प्रज्ञा, विमुक्ति-ज्ञान-दर्शनमें कोई नहीं है।" (और)···विस्तार करके···धर्म-देशना की। ब्राह्मणीने प्रिय-पुत्रकी धर्म-देशनाके अन्तमें स्रोत-आपत्तिफलमें स्थित हो, पुत्र से कहा—"तात उपतिष्य! तुमने क्यों ऐसा किया? ऐसा अमृत मुझे इतने समय तक नहीं दिया?" स्थविरने—"मैंने अब माता रूपसारी ब्राह्मणीको पोसनेका दाम चुका दिया, इतनेसे (यह) निर्वाह कर लेगी'—सोचकर, "जा महाउपासिके!" (कह), ब्राह्मणीको भेजकर "चुन्द! क्या समय है?" "भन्ते! बड़े भोरकी वेला है" "भिक्षु-संघको जमा करो।" "भन्ते! भिक्षु-संघ जमा है।" "चुन्द! मुझे उठाकर बैठाओ?" उठाकर बैठा दिया।

स्थविरने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"आवुसो! तुम्हें मेरे साथ विचरते चौवालीस वर्ष हो गये, जो कोई मेरा कायिक वाचिक (कर्म) तुम्हें अरुचिकर हुआ हो, आवुसो! उसे क्षमा करो।"

"भन्ते! इतने समय तक आपको छायाकी भाँति बिना छोड़े विचरते, हमने अरुचिकर (बुरा) कुछ भी नहीं देखा। किंतु, आप हमारे (दोषोंको) क्षमा करें।"

तब स्थविर महाचीवरको खींचकर मुखको ढाँक, दाहिनी करवट लेटे। शास्ताकी भाँति क्रमसे नव समापत्तियों (=ध्यानों) में अनुलोम-प्रतिलोमसे पहुँचकर, फिर प्रथम-ध्यानसे लेकर चतुर्थ-ध्यान पर्यन्त ध्यान लगाया। उस (चतुर्थ-ध्यान) से उठनेके बाद ही ···(वह) निर्वाणको···प्राप्त हुये। उपासिका 'मेरा पुत्र क्यों कुछ नहीं बोलता है'—सोच, पीठ पाद मलकर 'परिनिर्वाण प्राप्त हो गये' जान चिल्ला उठी, पैरोंमें गिरके—'तात! पहिले हमने तुम्हारे गुणोंको नहीं जाना···'कह रोने लगी।

···तब शास्ताका महामंडप बनवा, मंडपके बीचमें महाकूटागारको स्थापितकर, (उसमें शरीर रख), बड़ा उत्सव किया। (उस समय) देवोंके भीतर मनुष्य, मनुष्योंके भीतर देवता (खड़े हुए) थे।···उनमें एक उपासिका भी पूजा रही थी। भीड़ होनेके कारण एक ओर न हट सकनेसे मनुष्योंके बीचमें गिर पड़ी। मनुष्य उसे न देख कुचलते चले गये। वह वहीं मरकर त्रायस्त्रिंश (देव) भवनके कनक-विमानमें जाकर पैदा हुई···।

लोगोंने सप्ताहभर उत्सव मना, सब गंधोंसे चिता चिनवाई।···। स्थविरके शरीरको चितामें रख, खसके पूलोंसे छिपवा दिया। दाह-स्थानमें सब रात धर्म उपदेश होता रहा। आयुष्मान् अनुरुद्ध स्थविरने गन्धोदकसे चिताको बुझाई। चुन्द स्थविर धातुओं (=अस्थियों) को परिस्रावण (छन्ना) में रख,—'अब मैं यहाँ नहीं ठहर सकता, अपने ज्येष्ठ भ्राता धर्मसेनापति सारिपुत्र स्थविरके परिनिर्वाण होनेकी बात सम्यक्-संबुद्धको कहूँ—(सोच) धातु-परिस्रावण और स्थविरके पात्र-चीवरको लेकर श्रावस्ती चले। एक स्थानमें दो रात भी न बसकर, ···श्रावस्ती पहुँच गये। (जाकर) जहाँ उनके उपाध्याय धर्मभंडागारिक आयुष्मान् आनंद थे, वहाँ गये।···जेतवन महाविहारकी पुष्करिणीमें नहाकर

चुन्द श्रमणोद्देश आयुष्मान् सारिपुत्रके पात्र-चीवरको ले जहां श्रावस्ती, अनाथ-पिंडकका आराम जेतवन था, जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहां गये। जाकर आयुष्मान् आनन्दको अभिवादन कर बोले—

"भन्ते! आयुष्मान् सारिपुत्र परिनिर्वृत्त (=निर्वाण-प्राप्त) हो गये, यह उनका पात्र-चीवर है, यह उनका धातु-परिस्रावण है।"

"आवुस चुन्द! यह कथा (=बात) रूपी भेंट है, चलो चलें, आवुस चुन्द! जहाँ भगवान् हैं,...चलकर भगवान्‌को यह बात कहें।"

"अच्छा भन्ते!"...

तब आयुष्मान् आनन्द और चुन्द श्रमणोद्देश जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये; जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌को कहा—

..."मेरे उपाध्याय धर्म-भाण्डागारिक जेठे भाई स्थविरके बड़े मित्र हैं, पहिले उनके पास जाके...(फिर) शास्ताके पास जाऊँगा'...(सोचकर वहाँ गये)। (वहाँसे)...भगवान्‌के दर्शनके लिये...। एक एकको दिखलाकर—"यह उन (=सारिपुत्र) का पात्रचीवर है, और यह धतु-परिस्रावण है" कहा।

शास्ताने हाथ फैला धातु-परिस्रावणको ले हथेलीपर रख, भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ! जिस भिक्षुने पहिले (एक) दिन अनेकसौ प्रातिहार्य करके निर्वाण होनेके लिये अनुज्ञा माँगी, उसकी ही यह आज शंख-वर्ण-समान धातुयें (=हड्डियाँ) दिखाई पड़ रही हैं। भिक्षुओ! सौ हजार कल्पसे अधिक समयतक पारमिता (=दान आदि) पूर्णकिया हुआ यह भिक्षु था। मेरे प्रवर्तित (=घुमाये) धर्म-चक्र (=धर्मके चक्के) को अनु-प्रवर्तन करनेवाला, यह भिक्षु था।...।महाप्रज्ञावान् यह भिक्षु था।...। अल्पेच्छ (=त्यागी) यह भिक्षु था। यह संतुष्ट प्रविविक्त (=एकान्तप्रेमी) था,=असंसृष्ट था, उद्योगी, पाप-निंदक यह भिक्षु था। प्राप्त-महान्-संपत्तियोंको पाँच सौ जन्मों (तक) छोड़कर, यह भिक्षु प्रव्रजित होता रहा।...। *देखो भिक्षुओ! महाप्रज्ञकी धातुओंको*...।—

जो पाँच सौ जन्मों तक मनोरम भोगोंको छोड़ प्रव्रजित होता रहा। उस वीत-राग जितेन्द्रिय, निर्वाण-प्राप्त सारिपुत्रकी वन्दना करो॥ १॥

क्षान्ति(=क्षमा)-बलमें पृथ्वीके समान (वह) कुपित नहीं होता था, न इच्छाओंके परवर्ती होता था, (वह) अनुकम्पक, कारुणिक निर्वाणको गया; निर्वाणप्राप्त सारिपुत्रकी वन्दना करो॥ २॥

जैसे चाण्डाल-पुत्र नगरमें प्रविष्ट हो, मन नीचा किये, कपाल हाथमें लिये, विचरता है, ऐसेही यह सारिपुत्र विचरता था; निर्वाणप्राप्त०॥ ३॥

जैसे टूटे सींगों वाला साँड, नगरके भीतर बिना किसीको मारते विचरता है। वैसेही यह सारिपुत्र विचरता था, निर्वाण-प्राप्त०॥ ४॥

इस प्रकार भगवान्‌ने...स्थविरके गुणको वर्णन किया। जैसे जैसे भगवान् स्थविरके गुणको वर्णन करते थे, वैसे वैसे आनन्द अपनेको संभाल न सकते थे।

"भन्ते ! यह चुन्द श्रमणोद्देश ऐसा कह रहा है—"भन्ते ! आयुष्मान् सारिपुत्र परिनिर्वृत हो गये, यह उनका पात्र-चीवर है । भन्ते ! 'आयुष्मान् सारिपुत्र परिनिर्वृत हो गये" सुनकर मेरा शरीर ढीला पड़ गया (=मधुरकजातो), मुझे दिशायें नहीं सूझतीं, बात भी नहीं सूझ पड़ती ।

"आनन्द ! क्या सारिपुत्र शील-स्कन्धको लेकर परिनिर्वृत हुये, या समाधि-स्कन्धको लेकर ०, या प्रज्ञा-स्कन्धको ०, या विमुक्ति-स्कन्धको लेकर या विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन-स्कन्धको ले परिनिर्वृत हुये ?"

"भन्ते ! आयुष्मान् सारिपुत्र न शीलस्कन्धको लेकर परिनिर्वृत हुये ० न विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन-स्कन्धको लेकर परिनिर्वृत हुये । लेकिन भन्ते ! आयुष्मान् सारिपुत्र मेरे अववादक (=उपदेशक), ज्ञात-अज्ञात-वस्तुओंके विज्ञापक (=बतलानेवाले), संदर्शक=प्रेरक, समुत्तेजक, संप्रहर्षक थे । धर्मदेशनाके अभिलाषी सब्रह्मचारियोंके अनुग्राहक थे । वह आयुष्मान् सारिपुत्रका धर्म (=स्वभाव) था । इस धर्म-ओजको=धर्मानुग्रहको हम स्मरण करते हैं ।"

"क्यों आनन्द ! मैंने तुम्हें पहिले नहीं कह दिया है—'सभी प्रियों=मनापोंसे नाना-भाव (=जुदाई)=विनाभाव=अन्यथाभाव (होता है), यह आनन्द ! कहाँ मिलेगा । जो कुछ उत्पन्न है=हुआ है=संस्कृत है, वह सब नाश होनेवाला है । 'हाय वह न नाश हो' यह संभव नहीं है । इस प्रकार आनन्द ! महाभिक्षु-संघके रहनेपर भी सारवान् सारिपुत्र परिनिर्वृत हो गया । आनन्द ! यह अब कहाँ मिलनेवाला है । जो कुछ उत्पन्न (=जात) है=हुआ है (=भूत) संस्कृत है, वह सब नाश होनेवाला है । 'हाय वह न नाश हो' यह संभव नहीं है । इसलिये आनन्द ! आत्म-दीप (=अपने अपना मार्ग-प्रदर्शक, दीपक)=आत्म-शरण (=स्वावलम्बी) अन्-अन्य-शरण (=अपरावलम्बी) होकर विहरो, धर्म-दीप=धर्म-शरण=(=स्वावलम्बी) अन्-अन्य-शरण (=अपरावलम्बी) होकर विहरो, धर्म-दीप=धर्म-शरण=अन्-अन्यशरण होकर (विहरो) । आनन्द ! कैसे भिक्षु आत्म-शरण० होता है ? आनन्द ! यहाँ भिक्षु कायामें कायानुपश्यी हो० विहरता है । वेदनाओंमें० । चित्तमें० । धर्मोंमें० । इस प्रकार आनन्द ! भिक्षु० आत्म-शरण ० होता है । आनन्द ! जो कोई इस वक्त या मेरे न रहने (=बाद) के बाद० आत्मशरण० हो विहार करेंगे, (सब इसी तरह)० ।"[1]

मोग्गलानका परिनिर्वाण (ई. पू. ४८४) ।

'एक समय तैर्थिक लोग एकत्रित हो सलाह करने लगे—'जानते हो आवुसो ! किस कारण से, किसलिये, श्रमण-गौतमका बहुत लाभ-सत्कार हो गया है ?'⋯'एक महामौद्गल्यायनके कारण हुआ है । वह देवलोकमें जाकर देवताओंके कामको पूछकर, आकर मनुष्योंको कहता है... नर्कमें उत्पन्न हुओंके भी कर्मको पूछकर आकर मनुष्यों, को कहता है...। मनुष्य उसकी बात को सुनकर बड़ा लाभ-सत्कार प्रदान करते हैं । यदि इसे मार सकें, तो वह लाभ-सत्कार हमें

1. धम्मपद अ., क. १०७ ।

होने लगेगा...।' तब (उन्होंने) अपने सेवकोंको कहकर एक हजार कार्षापण पाकर, मनुष्य-मारनेवाले गुंडोंको बुलवाकर—'महामौद्गल्यायन स्थविर काल-शिलामें वास करता है, वहाँ जाकर उसे मारो' (कह) उन्हें कार्षापण दे दिये। गुंडों (=चोरों)ने धनके लोभसे उसे स्वीकार कर, स्थविरको मारनेके लिये जाकर, उनके वास-स्थानको घेर लिया। स्थविर उनके घेरनेकी बात जानकर कुञ्जीके छिद्रसे (बाहर) निकल गये। उन्होंने स्थविरको न देख, फिर दूसरे दिन जाकर घेरा। स्थविर जानकर छत फोड़कर आकाशमें चले गये। इसप्रकार वह न प्रथम मास में न दूसरे मासमेंही स्थविरको पकड़ सके। अन्तिम मास प्राप्त होनेपर, स्थविर अपने किये कर्मका परिणाम जानकर स्थानसे नहीं हटे। घातकोंने जानकर स्थविरको पकड़कर उनकी हड्डीको तंडुल-कण जैसा करके मार डाला। तब उन्हें मरा जानकर एक झाड़ीके पीछे डालकर चले गये। स्थविरने 'शास्ता को देखकर ही मरूँगा' (सोच), शरीरको ध्यानरूपी वेष्टनसे वेष्टितकर, स्थिरकर, आकाश-मार्गसे शास्ताके पास जा, शास्ताको वंदनाकर "भन्ते! परिनिर्वृत होऊँगा"—कहा।

"परिनिर्वृत होओगे, मौद्गल्यायन!" "भन्ते हाँ"।

"कहाँ जाकर?" "भन्ते! काल-शिला-प्रदेशमें।"

(मौद्गल्यायन) ...शास्ताको वंदनाकर काल-शिला जा परिनिर्वृत हुए!...

उक्काचेल-सुत्त

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान्, सारिपुत्र मौद्गल्यायनके परिनिर्वाणके थोड़ी ही देर बाद बड़े भारी भिक्षु-संघके साथ, वज्जी (देश) में गंगा नदीके तीरपर उक्काचेल (=उल्काचेल) में विहार करते थे।

उस समय भगवान् भिक्षु-संघके साथ खुली जगहमें बैठे हुए थे। तब भगवान्ने भिक्षु-संघको मौन देखकर भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ! मुझे यह परिषद् शून्य सी जान पड़ती है। सारिपुत्र मौद्गल्यायनके परिनिर्वाण[2] न हुए समय, भिक्षुओ! मुझे यह परिषद् अ-शून्य मालूम होती थी। जिस दिशामें सारिपुत्र मौद्गल्यायन विहरते थे, वह दिशा अपेक्षा-रहित (=औरकी अपेक्षा न करनेवाली) होती थी। भिक्षुओ! अतीतकालमें भी जो कोई अर्हत् सम्यक् संबुद्ध हुए, उन भगवानोंकी भी इतनी ही उत्तम (=अग्र) श्रावकोंकी जोड़ी थी, जैसे कि मेरे सारिपुत्र मौद्गल्यायन। जो भी भिक्षुओ! भविष्य काल में अर्हत् सम्यक् संबुद्ध होंगे; उन भगवानों की भी इतनी ही उत्तम (=परम) श्रावकोंकी जोड़ी होगी, जैसे कि मेरे सारिपुत्र मौद्गल्यायन। आश्चर्य है भिक्षुओ! श्रावकोंको! अद्भुत है भिक्षुओ! श्रावकोंको, जो शास्ता (=गुरु) के शासन-कर

---

१. सं. नि. ४५ : २ : ४। २. अ. क. "धर्मसेनापति(=सारिपुत्र) कार्तिकमासकी पूर्णिमाको परिनिर्वृत्त हुये; महामौद्गल्यायन उससे १५ दिन बाद कृष्णपक्षके उपोसथ (अमावास्या) को। शास्ता दोनों अग्रश्रावकोंके परिनिर्वाण हो जानेपर, महाभिक्षु-संघके साथ महामंडलमें चारिका करते, क्रमशः उक्काचेल-नगर (= हाजीपुर, ज़िला-मुजफ्फरपुर ?) को प्राप्त हो वहाँ पिंडचारकर गंगाकी...रेतीमें विहार कर रहे थे।"

आनन्द ! जब तक कि ०। (५) क्या सुना है—जो वह कुल-स्त्रियाँ हैं, कुल-कुमारियाँ हैं, उन्हें (वह) छीनकर, जबर्दस्ती नहीं बसाते ?" "भन्ते सुना है०।"

"आनन्द ! ० जब तक० । (६) क्या ० सुना है—वज्जियोंके (नगरके) भीतर या बाहरके जो चैत्य (= चौरा = देव-स्थान) हैं, उनका सत्कार करते हैं, ० पूजते हैं। उनके लिये पहिले किये गये दानको, पहिलेकी गई धर्मानुसार बलि (= वृत्ति)को, लोप नहीं करते ?"

"भन्ते ! सुना है ०।"

"जब तक ०। (७) क्या सुना है,—वज्जिलोग अर्हतों (= पूज्यों)की अच्छी तरह धार्मिक (= धर्मानुसार) रक्षा = आवरण, = गुप्ति करते हैं। किसलिये ? भविष्यके अर्हत् राज्यमें आवें, आये अर्हत् राज्यमें सुखसे विहार करें।" "सुना है भन्ते ! ०।"

"जब तक ०।"

तब भगवान्‌ने ०वर्षकार ब्राह्मणको आमंत्रित किया—

"*ब्राह्मण ! एक समय मैं वैशालीमें सारन्दद-चैत्यमें विहार करता था। वहाँ मैंने* वज्जियोंको यह सात अपरिहाणीय-धर्म (= अ-पतनके नियम) कहे। जबतक ब्राह्मण ! यह सात अपरिहाणीय धर्म वज्जियोंमें रहेंगे, इन सात अपरिहाणीय-धर्मोंमें वज्जी (लोग) दिखलाई पड़ेंगे; (तबतक) ब्राह्मण ! वज्जियोंकी वृद्धि ही समझना, परिहानि नहीं।'

ऐसा कहने पर ०वर्षकार ब्राह्मण भगवान्‌को बोला—

"हे गौतम ! एकभी अपरिहाणीय-धर्मसे वज्जियोंकी वृद्धि ही समझनी होगी, सात अ-परिहाणीय धर्मोंकी तो बातही क्या ? हे गौतम ! राजा० को उपलाप (= रिश्वत देना), या आपसमें फूटको छोड़, युद्ध करना ठीक नहीं। हन्त ! हे गौतम ! अब हम जाते हैं, हम बहुत-कृत्य = बहु-करणीय (= बहुतकाम वाले) हैं ०।"

"*ब्राह्मण ! जिसका तू काल समझता है ०।*"

तब मगध-महामात्य वर्षकार ब्राह्मण भगवान्‌के भाषणको अभिनन्दनकर, अनुमोदनकर आसनसे उठकर, चला गया। तब भगवान्‌ने ०वर्षकार ब्राह्मणके जानेके थोड़ीही देर बाद आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

---

१. अ. क. "राजाके पास गया। राजाने उससे पूछा—'आचार्य ! भगवान्‌ने क्या कहा ?' उसने कहा—'भो ! श्रमण० के कथनसे तो वज्जियोंको किसी प्रकार भी लिया नहीं जा सकता। हाँ, उपलापन और आपसमें फूट होनेसे लिया जा सकता है'। तब राजाने कहा—'उपलापनसे हमारे हाथी घोड़े नष्ट होंगे, भेद (= फूट)से ही पकड़ना चाहिये। (फिर) क्या करेंगे ?'

"तो महाराज ! वज्जियोंको लेकर तुम परिषद्‌में बात उठाओ। तब मैं—'महाराज ! तुम्हें उनसे क्या है ? अपनी कृषि, वाणिज्य करके यह राजा (=वज्जिगणके सामन्त) जीयें'—कहकर चला जाऊँगा। तब तुम बोलना—'क्यों जी ! यह ब्राह्मण वज्जियोंके सम्बन्धमें होती बातको रोकता है'। उसी दिन मैं उन (वज्जियों)के लिये भेंट (उपहार) भेजूँगा, उसे भी पकड़कर मेरे ऊपर दोषारोपण कर, बंधन, ताड़न आदि न कर, मुझे मुण्डन

"जाओ आनन्द ! तुम जितने भिक्षु राजगृहके आसपास विहरते हैं; उन सबको उपस्थानशालामें एकत्रित करो।"

"अच्छा भन्ते !"..."भन्ते ! भिक्षुसंघको एकत्रित कर दिया, अब भगवान् जिसका समय समझें।

तब भगवान् आसनसे उठकर जहाँ उपस्थानशाला थी,—वहाँ जा, बिछे आसनपर

करा मुझे नगरसे निकाल देना। तब मैं कहूँगा—मैंने तेरा नगर (=प्राकार) और परिखा (=खाईं) बनवाई है; मैं दुर्बल...तथा गंभीर स्थानोंको जानता हूँ, अब जल्दी (तुझे) सीधा करूँगा'। ऐसा सुनकर बोलना—'तुम जाओ'।

"राजाने सब (वैसा ही) किया। लिच्छिवियोंने उसके निकालने (=निष्क्रमण)को सुनकर कहा—'ब्राह्मण मायावी (=शठ) है, उसे गंगा न उतरने दो।' तब किन्हीं किन्हीं के 'हमारे लिए कहनेसे तो वह (राजा) ऐसा करता है' कहनेपर—'तो भणे ! आने दो'। उसने आकर लिच्छिवियों द्वारा—'किसलिए आये ?' पूछे जानेपर (सब) हाल कह दिया। लिच्छिवियोंने—'थोड़ीसी बातके लिए इतना भारी दंड करना युक्त नहीं था' कहकर—'यहाँ तुम्हारा क्या पद (=स्थानांतर) था'—पूछा। 'मैं विनिश्चय-महामात्य था'—(कहनेपर)—'यहाँ भी (तुम्हारा) वही पद रहे'—कहा। वह सुंदर तौरसे विनिश्चय (=इन्साफ) करता था। राजकुमार उसके पास विद्या (=शिल्प) ग्रहण करते थे। अपने गुणों से प्रतिष्ठित हो जानेपर उसने एक दिन एक लिच्छिविको एक ओर ले जाकर—'खेत (=केदार = क्यारी) जोतते हैं' ? 'हाँ, जोतते हैं'। 'दो बैल जोतकर' ? 'हाँ, दो बैल जोतकर'— कहकर लौट आया। तब उसको दूसरेने—'आचार्य ! (उसने) क्या कहा ?'—पूछनेपर, उसने कह दिया। (तब) 'मेरा विश्वास न कर, यह ठीक-ठीक नहीं बतलाता' (सोच) उसने बिगाड़ कर लिया। ब्राह्मण दूसरे दिन भी एक लिच्छविको एक ओर ले जाकर 'किस व्यंजन (= तेमन=तरकारी) से भोजन किया' पूछकर, लौटनेपर, उससे भी दूसरे ने पूछकर, न विश्वासकर वैसेही बिगाड़ कर लिया। ब्राह्मण किसी दूसरे दिन एक लिच्छविको एकांतमें ले जाकर—'बड़े गरीब हो न ?'—पूछा। 'किसने ऐसा कहा ?' 'अमुक लिच्छवि ने।' दूसरेको भी एक ओर ले जाकर—'तुम कायर हो क्या ?' 'किसने ऐसा कहा' 'अमुक लिच्छवीने'। इस प्रकार दूसरेके न कहे हुएको कहते तीन वर्ष (४८२–८० ई. पू.) में उन राजाओंमें परस्पर ऐसी फूट डाल दी, कि दो एक रास्तेसे भी न जाते थे। वैसा करके जमा होनेका नगारा (=सन्निपात-भेरी) बजवाया।

लिच्छवी—'मालिक (= ईश्वर) लोग जमा हों'— कहकर नहीं जमा हुए। तब उस ब्राह्मणने राजाको जल्दी आनेके लिए खबर (=शासन) भेजी। राजा सुनकर सैनिक नगारा (= बलभेरी) बजाके निकला। वैशालीवालोंने सुनकर भेरी बजवाई—'(आओ चलें) राजा को गंगा न उतरने दें'। उसको भी सुनकर 'देव-राज लोग जायें' आदि कहकर लोग नहीं जमा हुए। (तब) भेरी बजवाई—'नगरमें घुसने न दें, (नगर०) द्वार बन्द करके रहें'। एक भी नहीं जमा हुआ। (राजा अजात-शत्रु) खुले द्वारोंसे ही घुसकर, सबको तबाहकर (=अनय-व्यसनं पापेत्वा) चला गया।

थे। बैठकर भगवान्‌ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—"भिक्षुओ ! तुम्हें सात अपरि-हाणीय-धर्म उपदेश करता हूँ, उन्हें सुनो कहता हूँ।"

..."अच्छा भन्ते !"

(१) भिक्षुओ ! जब तक भिक्षु बार बार (=अभिक्खं) इकट्ठा होनेवाले=सन्निपात-बहुल रहेंगे; (तब तक) भिक्षुओ ! भिक्षुओंकी वृद्धि समझना, हानि नहीं। (२) जब तक भिक्षुओ ! भिक्षु एक हो बैठक करेंगे, एक हो उत्थान करेंगे, एक हो संघके करणीय (कामों) को करेंगे; (तब तक) भिक्षुओ ! भिक्षुओंकी वृद्धिही समझना, हानि नहीं। (३) जब तक ०अप्रज्ञप्तों (=अविहितों) को प्रज्ञप्त नहीं करेंगे, प्रज्ञप्तका उच्छेद नहीं करेंगे; प्रज्ञप्त शिक्षा-पदों (=विहित भिक्षु-नियमों)के अनुसार बर्तेंगे०। (४) जब तक० जो वह रत्तञ्ञू (=धर्मानुरागी) चिरप्रव्रजित संघके पिता, संघके नायक, स्थविर भिक्षु हैं, उनका सत्कार करेंगे, गुरुकार करेंगे, मानेंगे, पूजेंगे, उन (की बात) को सुनने योग्य मानेंगे०। (५) जब तक पुनः पुनः उत्पन्न होनेवाली तृष्णाके वशमें नहीं पड़ेंगे ०। (६) जब तक ० भिक्षु, आरण्यक-शयनासन (=वनकी कुटियों) की इच्छावाले रहेंगे ०। (७) जब तक भिक्षुओ ! हर एक भिक्षु यह याद रक्खेगा, कि अनागत (=भविष्य)में सुन्दर ब्रह्मचारी आवें, आये हुए (=आगत) सुन्दर ब्रह्मचारी सुखसे विहरें; (तब तक) ०। भिक्षुओ ! जब तक यह सात अ-परिहाणीय धर्म (भिक्षुओंमें) रहेंगे; (जब तक) भिक्षु इन सात अ-परिहाणीय धर्मोंमें दिखाई देंगे; (तब तक) ०।

"भिक्षुओ ! और भी सात अ-परिहाणीय धर्मोंको कहता हूँ। उसे सुनो०।..." (१) भिक्षुओ ! जबतक भिक्षु (सारे दिन चीवर आदिके) काममें लगे रहने वाले (=कम्माराम)=कर्मरत=कर्मारामता-युक्त नहीं होंगे। (तबतक)०। (२) जबतक भिक्षु बकवादमें लगे रहने वाले (=भस्साराम), =भस्सरत=भस्सारामता-युक्त नहीं होंगे। (३) ० निद्राराम=निद्रा-रत=निद्रारामता-युक्त नहीं होंगे०। (४) संगणिकाराम (=भीड़को पसन्द करनेवाले)=संगणिक-रत=संगणिकारामता-युक्त नहीं होंगे०। (५)० पापेच्छ (=बदनीयत)=पाप इच्छाओंके वशमें नहीं होंगे०। (६)० पाप-मित्र (=बुरे मित्रोंवाले),=पाप सहाय, पापकी ओर झुकनेवाले न होंगे०। (७)० थोड़ेसे विशेष (=योग-साधन)को पाकर बीचमें न छोड़ देंगे०। ०।

"भिक्षुओ ! और भी सात अ-परिहाणीय धर्मोंको कहता हूँ ।०। (१) भिक्षुओ ! जबतक भिक्षु श्रद्धालु होंगे०। (२)० (पापसे) लज्जाशील (=ह्रीमान्) होंगे०। (३)० (पापसे) भय खानेवाले (=अवत्रपी) होंगे०। (४) ०बहुश्रुत० (५)० उद्योगी (=आरब्ध-वीर्य) ०। (६)० याद रखनेवाले (=उपस्थित स्मृति)०। (७)० प्रज्ञावान् होंगे०। ०।

"भिक्षुओ ! और भी सात अ-परिहाणीय धर्मोंको ०। (१) भिक्षुओ ! जबतक भिक्षु स्मृति-संबोध्यंगकी भावना करेंगे०। (२)० धर्म-विचय संबोध्यंगकी०। (३)० वीर्य-सं०। (४) प्रीति-सं० (५)० प्रश्रब्धि-सं० (६)० समाधि-सं०। (७)० उपेक्षा-संबोध्यंगकी ।०।०।

"भिक्षुओ ! और भी सात अपरिहाणीय धर्मोंको कहता हूँ।..." (१) भिक्षुओ ! जबतक भिक्षु अनित्य-संज्ञाकी भावना करेंगे० (२)० अनात्म-संज्ञा०। (३) ०अशुभ-संज्ञा०।

(४) ०आदिनव (= दुष्परिणाम)-संज्ञा० । (५) प्रहाण-(= त्याग)० । (६) ०विरागसंज्ञा० (७) ०निरोधसंज्ञा० ।०।

"भिक्षुओ ! और भी छ अ परिहाणीय धर्मोंको कहता हूँ० ।···(१) जबतक भिक्षु-सब्रह्मचारियों (= गुरुभाइयों)में गुप्त और प्रकट, मैत्रीपूर्ण कायिक कर्म उपस्थित रखेंगे० । (२) ०मैत्रीपूर्ण वाचिक-कर्म उपस्थित रखेंगे । (४) ०जबतक भिक्षु धार्मिक, धर्मसे प्राप्त जो लाभ हैं—अन्तमें पात्रमें चुपड़ने मात्र भी—वैसे लाभोंको (भी) शीलवान् स-ब्रह्मचारी भिक्षुओंमें बाँटकर भोग करनेवाले होंगे० (५) ०जबतक भिक्षु जो वह असंड=अ-छिद्र, अ-कल्मष=भुजिस्स, विद्वानोंसे प्रशंसित, अ-निंदित, समाधिकी ओर (ले) जाने वाले, शील हैं, वैसे शीलोंसे शील-श्रामण्य-युक्त हो सब्रह्मचारियोंके साथ गुप्तभी प्रकट भी विहरेंगे० । (६) जो वह आर्य (=उत्तम), नैर्याणिक (=पार करानेवाली), वैसा करनेवालेको अच्छी प्रकार दुःखक्षयकी ओर लेजानेवाली दृष्टि है, वैसी दृष्टिसे दृष्टि-श्रामण्य-युक्त हो, सब्रह्मचारियों के साथ गुप्त भी प्रकट भी विहरेंगे० । भिक्षुओ ! जबतक यह छ अ-परिहाणीय धर्म० ।

वहाँ राजगृहमें गृध्रकूट-पर्वतपर विहार करते हुये भगवान् बहुत करके भिक्षुओंको यही धर्मकथा कहते थे—ऐसा शील है, ऐसी समाधि है, ऐसी प्रज्ञा है । शीलसे परिभावित समाधि महा फलवाली = महा-आनृशंसवाली होती है । समाधिसे परिभावित प्रज्ञा महाफल-वाली=महानृशंसवाली होती है । प्रज्ञासे परिभावित चित्त अच्छी तरह [१]आस्रवों,—कामास्रव भवास्रव, दृष्टि-आस्रव से मुक्त होता है ।

(अम्ब-लट्ठिकामें) ।

तब भगवान्ने राजगृहमें इच्छानुसार विहारकर आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

"चलो आनन्द ! जहाँ [२]अम्बलट्ठिका हैं, वहां चलें ।"

"अच्छा, भन्ते !"···

भगवान् महान् भिक्षु-संघके साथ जहां अम्बलट्ठिका थी, वहां पहुचे । वहाँ भगवान् अम्बलट्ठिकामें राजागारकमें विहार करते थे । वहां राजागारकमें भी भगवान् भिक्षुओंको बहुत करके यही धर्म-कथा कहते थे—० ।

भगवान्ने अम्बलट्ठिकामें यथेच्छ विहार करके आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

"चलो आनन्द ! जहां नालन्दा है, वहां चलें ।"

"अच्छा भन्ते !"···

वहांसे भिक्षु-संघके साथ तब भगवान् जहां नालन्दा थी, वहां पहुँचे । वहां भगवान् [३]नालन्दामें प्रावारिक-आम्रवनमें विहार करते थे । तब आयुष्मान् [४]सारिपुत्र जहां भगवान्

---

१. देखो आस्रव । २. वर्तमान सिलाव (?) जि. पटना । ३. मिलाओ सं. नि. ४५: २:२ । ४. सारिपुत्रका निर्वाण पहिले ही हो चुकनेसे, यह पाठ भाणकोंके प्रमादसे यहां आया मालूम होता है ।

थे वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्‌को कहा—

"भन्ते! मैं ऐसा प्रसन्न (=विश्वासवाला) हूँ—'संबोधि (=परम ज्ञान) में भगवान्‌से बढ़कर, या भूयस्तर कोई दूसरा श्रमण ब्राह्मण न हुआ, न होगा, न इस समय है'।"

"सारिपुत्र! तूने यह बहुत उदार (=बड़ी) =आर्षभी वाणी कही: एकांश सिंहनाद ...किया—'मैं प्रसन्न हूँ०।' सारिपुत्र! जो वह अतीतकालमें अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध हुये, क्या (तूने) उन सब भगवानोंको (अपने) चित्तसे जान लिया, कि वह भगवान् ऐसे शील वाले, ऐसी प्रज्ञा वाले, ऐसे विहार वाले, ऐसी विमुक्ति वाले थे?"

"नहीं भन्ते!

"सारिपुत्र! जो वह भविष्यकालमें अर्हत् सम्यक् संबुद्ध होंगे, क्या उन सब भगवानों को चित्तसे जान लिया०?" "नहीं भन्ते!"

"सारिपुत्र! इस समय मैं अर्हत् सम्यक् संबुद्ध हूँ, क्या चित्तसे जान लिया, (कि मैं) ऐसी प्रज्ञावाला० हूँ?" "नहीं भन्ते!"

"(जब) सारिपुत्र! तेरा अतीत, अनागत (=भविष्य), प्रत्युत्पन्न (=वर्तमान) अर्हत् सम्यक्-संबुद्धों के विषयमें चेतः-परिज्ञान (=पर-चित्तज्ञान) नहीं है; तो सारिपुत्र! तूने क्यों यह बहुत उदार आर्षभी वाणी कही०?"

"भन्ते! अतीत-अनागत-प्रत्युत्पन्न अर्हत् सम्यक् संबुद्धोंमें मुझे चेतः-परिज्ञान नहीं है; किंतु (मुझको) धर्म-अन्वय (=धर्म-समानता) विदित है। जैसे कि भन्ते! राजा का सीमान्त-नगर दृढ़ नींववाला, दृढ़-प्राकारवाला, एक द्वारवाला हो। वहाँ अज्ञातों (=अपरिचितों)को निवारण करनेवाला, ज्ञातों (=परिचितों)को प्रवेश करानेवाला पंडित-व्यक्त, मेधावी द्वारपाल हो। वहाँ नगरके चारों ओर, अनुपर्याय (=बारी बारीसे) मार्गपर घूमते हुये (मनुष्य), प्राकारमें अन्ततः बिल्लीके निकलने भर भी संधि=विवर न पावे। उसको ऐसा हो—'जो कोई बड़े बड़े प्राणी इस नगर में प्रवेश करते हैं; सभी इसी द्वारसे०।' ऐसेही भन्ते! मैंने धर्म-अन्वय जान लिया—"जो वह अतीतकालमें अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध हुये, वह सब भगवान् भी चित्तके उपक्लेश (=मल), प्रज्ञाको दुर्बल करनेवाले, पाँचों नीवरणोंको छोड़, चारों स्मृति-प्रस्थानोंमें चित्तको सुप्रतिष्ठित कर, सात बोध्यंगोंको यथार्थसे भावना कर, सर्वश्रेष्ठ (=अनुत्तर) सम्यक् संबोधि(=परमज्ञान)को अभिसंबोधन किये थे (=जाना था)। और भन्ते! भविष्यमें भी जो अर्हत् सम्यक्संबुद्ध होंगे, वह सब भी भगवान्०। भन्ते! इस समय भगवान् अर्हत् सम्यक् संबुद्धने भी चित्तके उपक्लेश०।"

वहाँ नालन्दामें प्रावारिक आम्रवनमें विहार करते, भगवान् भिक्षुओंको बहुत करके यही कहते थे०।

(पाटलि-ग्राम में)।

तब भगवान्‌ने नालन्दामें इच्छानुसार विहार कर, आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

१. पृष्ठ ११६। २. पृष्ठ ११५

"आनन्द ! चलो, जहाँ पाटलिग्राम है, वहाँ चलें।"

"भन्ते ! अच्छा"

तब...भिक्षुसंघके साथ भगवान् जहाँ पाटलिग्राम था, वहाँ गये।...उपासकोंने सुना कि भगवान् पाटलिग्राम आये हैं। तब...उपासक जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुये...उपासकोंने भगवान्‌को यह कहा—

"भन्ते ! भगवान् हमारे आवसथागार[1] (=अतिथिशाला) को स्वीकार करें।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया।

तब...उपासक भगवान्‌की स्वीकृतिको जान आसनसे उठ, भगवान्‌को अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर जहाँ आवसथागार था, वहाँ गये०। तब भगवान् सायंकालको पहिन-कर पात्र चीवर ले भिक्षुसंघके साथ[2] ०आवसथागारमें प्रविष्ट हो बीचके खम्भेके पास पूर्वा-भिमुख बैठे०। तब भगवान्‌ने...उपासकोंको आमंत्रित किया—

"गृहपतियो ! दुराचारसे दुःशील (=दुराचारी) के यह पाँच दुष्परिणाम हैं। कौनसे पांच ? ०[3]।"

तब भगवान्‌ने बहुत रात तक...उपासकोंको धार्मिक-कथासे संदर्शित...समुत्तेजित-कर...उद्योजित किया—

"गृहपतियो, रात क्षीण हो गई, जिसका तुम समय समझते हो (वैसा करो)।"

"अच्छा भन्ते !"...पाटलिग्राम-वासी...उपासक...आसनसे उठकर भगवान्‌को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चले गये। तब पाटलिग्रामिक उपासकोंके चले जानेके थोड़ी ही देर बाद भगवान् शून्य-आगारमें चले गये।

उस समय सुनीध (=सुनीथ) और वर्षकार मगधके महामात्य पाटलिग्राममें वज्जियोंको रोकनेके लिये नगर बसाते थे ...। भगवान्‌ने रातके प्रत्यूष-समय (=भिन-सार) को उठकर आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

"आनन्द ! पाटलिग्राममें कौन नगर बना रहा है ?"

"भन्ते ! सुनीध और वर्षकार मगध-महामात्य, वज्जियोंके रोकनेके लिये नगर बसा रहे हैं।"

---

१. उदान अ. क. ८: ६ "भगवान् कब पाटलिग्राममें गये ? श्रावस्तीमें धर्म-सेनापति (=सारिपुत्र) का चैत्य बनवा, वहाँसे निकलकर राजगृहमें वास करते, वहाँ आयु-ष्मान् महामौद्गल्यायनका चैत्य बनवाकर, वहाँसे निकलकर अंबलट्ठिकामें वासकर; अ-त्वरित चारिकासे जनपद-चारिका करते; यहाँ वहाँ एक रात वास करते, लोकानुग्रह करते, क्रमशः पाटलिग्राम पहुँचे।...। पाटलिग्राममें अजातशत्रु और लिच्छवि राजाओंके आदमी समय समय पर, आकर घरके मालिकोंको घरसे निकालकर, मास भी आधा मास भी बस रहते थे। इससे पाटलिग्राम-वासियोंने नित्य पीड़ित हो—'उनके आनेपर यह (हमारा) वास-स्थान होगा'—(सोचकर)...नगरके बीचमें महाशाला बनवाई। उसीका नाम था 'आव-सथागार'। यह उसी दिन समाप्त हुआ था। २. देखो पृष्ठ ४५३। ३ देखो पृष्ठ ४६४।

"आनन्द! मैंने त्रयस्त्रिंशके देवताओंके साथ संमन्त्रणा करके मगधके महामात्य सुनीध, वर्षकार, वज्जियोंके रोकनेके लिये नगर बना रहे हैं। आनन्द! मैंने दिव्य अमानुष नेत्रसे देखा—बहु-सहस्र देवता यहाँ पाटलिग्राममें वास्तु (= घर, निवास) ग्रहण कर रहे हैं। जिस प्रदेशमें महाशक्ति-शाली (= महेशाख्य) देवता वास-ग्रहण कर रहे हैं, वहाँ महाशक्ति-शाली राजाओं और राज-महामात्योंका चित्त, घर बनानेको करेगा। जिस प्रदेशमें मध्यम देवता वास ग्रहण कर रहे हैं, वहाँ मध्यम राजाओं और राज-महामात्योंका चित्त घर बनानेको करेगा। जिस प्रदेशमें नीच देवता०, वहाँ नीच राजाओं०। आनन्द! जितने (भी) आर्य-आयतन (= आर्योंके निवास) हैं, जितने (भी) वणिक्-पथ (= व्यापार-मार्ग) हैं, (उनमें) यह पाटलिपुत्र पुट-भेदन (= मालकी गाँठ जहाँ तोड़ी जाय) अग्र (= प्रधान)-नगर होगा। पाटलिपुत्रके तीन अन्तराय (= विघ्न) होंगे: आग, पानी और आपसकी फूट।"

तब मगध-महामात्य सुनीध और वर्षकार जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये; जाकर भगवान्के साथ संमोदनकर···एक ओर खड़े ····· भगवान्को बोले—

"भिक्षु-संघके साथ आप गौतम हमारा आजका भात स्वीकार करें।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया।

तब० सुनीध वर्षकारने भगवान्की स्वीकृति जानकर, जहाँ उनका आवसथ (= डेरा) था, वहाँ गये। जाकर अपने आवसथमें उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा (उन्होंने) भगवान्को समयकी सूचना दी···।

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर, पात्र चीवर ले भिक्षु-संघके साथ जहाँ मगध-महामात्य सुनीध, और वर्षकारका आवसथ था, वहाँ गये; जाकर बिछे आसनपर बैठे। तब सुनीध, वर्षकारने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्यसे संतर्पित-संप्रवारित किया। तब० सुनीध वर्षकार, भगवान्के भोजनकर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, दूसरा नीचा आसन लेकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुये मगध-महामात्य सुनीध, वर्षकारको भगवान्ने इन गाथाओंसे (दान०) अनुमोदन किया—

"जिस प्रदेश (में) पंडित पुरुष, शीलवान्, संयमी,
ब्रह्मचारियोंको भोजन कराकर वास करता है ॥ १ ॥
वहाँ जो देवता हैं, उन्हें दक्षिणा (= दान-भाग) देनी चाहिये।
वह देवता पूजित हो पूजा करते हैं, मानित हो मानते हैं ॥ २ ॥
तब (वह) औरस पुत्रकी भाँति इसपर अनुकम्पा करते हैं।
देवताओंसे अनुकम्पित हो पुरुष सदा मंगल देखता है ॥ ३ ॥

तब भगवान्, सुनीध और वर्षकारको इन गाथाओंसे अनुमोदन कर, आसनसे उठ-कर चले गये।

उस समय० सुनीध, वर्षकार भगवान्के पीछे पीछे चल रहे थे—"श्रमण गौतम आज जिस द्वारसे निकलेंगे, वह गौतम-द्वार···होगा। जिस घाट (= तीर्थ) से गंगानदी पार होंगे, वह गौतम-तीर्थ···होगा। तब भगवान्, जिस द्वारसे निकले, वह गौतम-द्वार ··· हुआ। भगवान् जहाँ गंगा-नदी है, वहाँ गये। उस समय गंगा कगारों बराबर भरी, काकपेय

बैठे कौवेके पीने योग्य थी। कोई आदमी नाव खोजते थे, कोई० बेड़ा (=उलुम्प) खोजते थे, कोई० बेड़ा (=कुल्ल) बाँधते थे। तब भगवान्, जैसे कि बलवान् पुरुष समेटी बाँहको (सहजही) फैला दे, फैलाई बाँहको समेट ले, ऐसेही भिक्षुसंघके साथ गंगा नदीके इस पारसे अंतर्धान हो, परले तीरपर जा खड़े हुए। भगवान्ने उन मनुष्योंको देखा, कोई कोई नाव खोज रहे थे०। तब भगवान्ने इस अर्थको जानकर, उसी समय यह उदान कहा—

"(पंडित) छोटे जलाशयों (=पल्वलों) को छोड़ समुद्र और नदियोंको सेतुसे तरते हैं। (जबतक) लोग कुल्ल बाँधते रहते हैं, (तबतक) मेधावी जन तर गये रहते हैं।"

(कोटिग्राममें)।

तब भगवान्ने आयुष्मान् आनंदको आमंत्रित किया—

"आओ आनंद! जहाँ कोटिग्राम है, वहाँ चलें।" "अच्छा भन्ते!"

तब भगवान् महाभिक्षु-संघके साथ जहाँ कोटिग्राम था, वहाँ गये। वहाँ भगवान् कोटि-ग्राममें विहार करते थे। भगवान्ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

'भिक्षुओ! चारों आर्य-सत्योंके अनुबोध (=बोध)=प्रतिवेध न होने से इस प्रकार दीर्घकालसे (यह) दौड़ना=संसरण (=आवागमन) 'मेरा और तुम्हारा' होरहा है। कौनसे चारों? भिक्षुओ! दुःख आर्य-सत्यके बोध=प्रतिबोध न होनेसे०। दुःखनिरोध०। दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपद्०। भिक्षुओ! सो इस दुःख आर्य-सत्यको अनुबोध=प्रतिबोध किया०, (तो) भवतृष्णा उच्छिन्न होगई, भवनेत्री (=तृष्णा) क्षीण हो गई"—

भगवान्ने यह कहा।...

वहाँ कोटिग्राममें विहार करते भी भगवान्, भिक्षुओंको बहुत करके यही धर्मकथा कहते थे०।[1]

(नादिकामें)।

तब भगवान्ने कोटिग्राममें इच्छानुसार विहारकर, आयुष्मान् आनंदको आमंत्रित किया—

"आओ आनंद! जहाँ नादिका[2] (=नातिका) है, वहाँ चलें।"

"अच्छा भन्ते!"

तब भगवान् महान् भिक्षुसंघके साथ जहाँ नादिका है, वहाँ गये। वहाँ नादिकामें भगवान् गिंजकावसथमें विहार करते थे...। वहाँ नादिकामें विहार करते भी भगवान्ने भिक्षुओंको यही धर्मकथा०।

(वैशालीमें)।

०तब भगवान् महाभिक्षु-संघके साथ जहाँ वैशाली थी, वहाँ गये। वहाँ वैशालीमें अम्बपाली वनमें विहार करते थे। वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

---

१. देखो पृष्ठ ११९-२०।

२. "एक ज्ञातृयों (=ञाति=ज्ञातृ=ज्ञातर=जातर=जतरिया=जथरिया=जैथरिया) के गाँवमें।" नादिका=ज्ञातृका=नत्तिका=लत्तिका=रत्तिका=रत्ती, जिसके नामसे वर्तमान रत्ती परगना (जि. मुजफ्फरपुर) है।

भिक्षुओ! स्मृति और संप्रजन्यके साथ विहार करो, यही हमारा अनुशासन है।…"

अम्बपाली गणिकाने सुना—भगवान् वैशालीमें आ गये हैं; और वैशालीमें मेरे आम्रवनमें विहार करते हैं। अम्बपाली गणिका सुंदर-सुंदर (=भद्र) यानोंको जुड़वाकर, सुंदर यानपर चढ़, सुंदर यानोंके साथ वैशालीसे निकली। और जहाँ उसका आराम था, वहाँ चली। जितनी यानकी भूमि थी, उतनी यानसे जाकर, यानसे उतर पैदल ही जहाँ भगवान् थे, वहाँ गई। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गई। एक ओर बैठी अम्बपाली गणिकाको भगवान्ने धार्मिक कथासे संदर्शित समुत्तेजित…किया। तब अम्बपाली गणिका भगवान्को यह बोली—

"भन्ते! भिक्षु संघके साथ भगवान् मेरा कलका भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया।

तब अम्बपाली गणिका भगवान्की स्वीकृतिको जान, आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणा कर चली गई।

वैशालीके लिच्छवियोंने सुना—'भगवान् वैशालीमें आये हैं।' तब वह लिच्छवी० सुंदर यानोंपर आरूढ़ हो० वैशालीसे निकले। उनमें कोई कोई लिच्छवि नीले=नील-वर्ण नील वस्त्र नील-अलंकार-वाले थे। कोई-कोई लिच्छवि पीले=पीतवर्ण० थे। ०लोहित (=लाल)०।० अवदात (=सफेद)०। अम्बपाली गणिकाने तरुण तरुण लिच्छवियोंके धुरोंसे धुरा, चक्कोंसे चक्का, जूयोंसे जूआ टकराया। उन लिच्छवियोंने अम्बपाली गणिकाको कहा—

"जे! अम्बपाली! क्यों तरुण-तरुण (=दहर) लिच्छवियोंके धुरोंसे धुरा टकराती है।०"

"आर्यपुत्रो! क्योंकि मैंने भिक्षुसंघके साथ भगवान्को कलके भोजनके लिए निमंत्रित किया है।"

"जे अम्बपाली! सौ हजारसे भी इस भात (=भोजन) को (हमें करनेके लिए) दे दे।"

"भन्ते ! भिक्षु-संघके साथ भगवान् हमारा कलका भोजन स्वीकार करें।"

"लिच्छवियो ! कल तो स्वीकार कर लिया है, मैंने अम्बपाली-गणिकाका भोजन।"

तब उन लिच्छवियोंने अंगुलियाँ फोड़ीं—

"अरे ! हमें अम्बिकाने जीत लिया। अरे ! हमें अम्बिकाने वंचित कर दिया।"

तब वह लिच्छवी भगवान्‌के भाषणको अभिनन्दितकर अनुमोदितकर, आसनसे उठकर भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणा कर चले गये।

अम्बपाली गणिकाने उस रातके बीतनेपर, अपने आराममें उत्तम खाद्य-भोज्य तय्यार कर, भगवान्‌को समय सूचित किया...। भगवान् पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्र चीवरले भिक्षु-संघके साथ जहाँ अम्बपालीका परोसनेका स्थान था, वहाँ गये। जाकर प्रज्ञप्त (=बिछे) आसनपर बैठे। तब अम्बपाली गणिकाने बुद्ध-प्रमुख भिक्षुसंघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्य द्वारा संतर्पित = संप्रवारित किया। तब अम्बपाली गणिका भगवान्‌के भोजनकर० लेने पर, एक नीचा आसन लेकर एक ओर बैठी। एक ओर बैठी अम्बपाली गणिका भगवान्‌को बोली—

"भन्ते ! मैं इस आरामको बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको देती हूँ।"

भगवान्‌ने आरामको स्वीकार किया। तब भगवान् अम्बपाली०को धार्मिक कथासे० समुत्तेजित०कर, आसनसे उठकर चले गये।

वहाँ वैशालीमें विहार करते भी भगवान् भिक्षुओंको बहुत करके यही धर्म-कथा कहते थे ०।

(वेलुव-ग्राम में)।

०तब भगवान् महाभिक्षुसंघके साथ जहाँ वेलुव-गामक (=वेणु ग्राम) था, वहाँ गये। वहाँ भगवान् वेलुव-गामकमें विहरते थे। भगवान्‌ने वहाँ भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"जाओ भिक्षुओ ! तुम वैशालीके चारों ओर मित्र परिचित" देखकर वर्षावास करो। मैं यहीं वेलुवगाममें वर्षावास करूँगा।"

"अच्छा भन्ते !" ..

वर्षावासमें भगवान्‌को कड़ी बीमारी उत्पन्न हुई, भारी मरणांतक पीड़ा होने लगी। उसे भगवान्‌ने स्मृति-संप्रजन्यके साथ बिना दुःख करते, स्वीकार(=सहन) किया। उस समय भगवान्‌को ऐसा हुआ—'मेरे लिये यह उचित नहीं, कि मैं उपस्थाकों (=सेवकों)को बिना पूछे, भिक्षुसंघको बिना अवलोकन किये, परिनिर्वाण करूँ। क्यों न मैं इस आबाधा(=व्याधि)को हटाकर, जीवन-संस्कारका अधिष्ठाता बन, विहार करूँ'। भगवान् उस व्याधिको वीर्य (=मनोबल)से हटाकर जीवन-संस्कार (प्राण-शक्ति)के अधिष्ठता बन, विहार करने लगे। तब भगवान्‌की वह बीमारी शांत होगई।

भगवान् बीमारीसे उठ, रोगसे अभी अभी मुक्त हो, विहारसे (बाहर) निकल कर

१. मिलाओ सं. नि. ४५ : १ : ९।

विहारकी छायामें बिछे आसनपर बैठे। तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌को यह कहा—

"भन्ते! भगवान्‌को सुखी देखा! भन्ते! मैंने भगवान्‌को अच्छा हुआ देखा! भन्ते! मेरा शरीर शून्य हो गया था। मुझे दिशायें भी सूझ न पड़ती थीं। भगवान्‌की बीमारीसे (मुझे) धर्म (=बात) भी नहीं भान होते थे। भन्ते! कुछ आश्वासन मात्र रह गया था—भगवान् तबतक परिनिर्वाण नहीं करेंगे; जब तक भिक्षु-संघको कुछ कह न लेंगे।"

"आनन्द! भिक्षु-संघ क्या चाहता है? आनन्द! मैंने न-अन्दर न-बाहर करके धर्म-उपदेश कर दिये। आनन्द! धर्मोंमें तथागतको (कोई) आचार्य-मुष्टि (=रहस्य) नहीं है। आनन्द! जिसको ऐसा हो कि मैं भिक्षु-संघको धारण करता हूँ, भिक्षु-संघ मेरे उद्देश्यसे है, वह जरूर आनन्द! भिक्षु-संघके लिये कुछ कहे। आनन्द! तथागतको ऐसा नहीं है...। आनन्द! तथागत भिक्षु-संघके लिये क्या कहेंगे? आनन्द! मैं जीर्ण=वृद्ध=महल्लक=अध्वगत=वयःप्राप्त हूँ। अस्सी वर्षकी मेरी उम्र है। आनन्द! जैसे जीर्ण-शकट बाँध-बूँधकर चलता है, ऐसे ही आनन्द! मानों तथागतका शरीर बाँध-बूँधकर चल रहा है। आनन्द! जिस समय तथागत सारे निमित्तोंके मनमें न करनेसे, किन्हीं-किन्हीं वेदनाओंके निरुद्ध होनेसे, निमित्त-रहित चित्तकी समाधि (=एकाग्रता) को प्राप्त हो विहरते हैं, उस समय...तथागतका शरीर अच्छा (=फासुकर) होता है। इसलिये आनन्द! आत्मदीप आत्मशरण=अनन्य-शरण, धर्मदीप=धर्म-शरण=अनन्य-शरण हो विहरो।[१]...।"

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले वैशालीमें पिंडके लिये प्रविष्ट हुए। वैशालीमें पिंडचार कर, भोजनोपरान्त...आयुष्मान् आनन्दको बोले—

"आनन्द! आसनी उठाओ, जहाँ चापाल-चैत्य है, वहाँ दिनके विहारके लिये चलेंगे।"

बाद तथागत परिनिर्वाण प्राप्त होंगे।...। आओ आनन्द! जहाँ महावन कूटागारशाला है, वहाँ चलें।"

"अच्छा भन्ते!"

भगवान् आयुष्मान् आनन्दके साथ जहाँ महावन कूटागार-शाला थी, वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् आनन्दको बोले—"आनन्द! जाओ वैशालीके पास जितने भिक्षु विहार करते हैं, उन सबको उपस्थानशालामें एकत्रित करो।"...

तब भगवान् जहाँ उपस्थान-शाला थी वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठे। बैठकर भगवान्ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"इसलिये भिक्षुओ! मैंने जो धर्म-उपदेश किया है, उसे तुम अच्छी तौरसे सीखकर सेवन करना, भावना करना, बढ़ाना; जिसमें यह ब्रह्मचर्य अध्वनीय=चिरस्थायी हो; यह (ब्रह्मचर्य) बहुजन-हितार्थ बहुजन-सुखार्थ, लोकानुकंपार्थ, देव-मनुष्योंके अर्थ, हित, सुखके लिये हो। भिक्षुओ! मैंने वह कौनसे धर्म, अभिज्ञात कर, उपदेश किये हैं, जिन्हें अच्छी तरह सीखकर० ? जैसे कि (१) चार स्मृति-प्रस्थान, (२) चार सम्यक्-प्रधान, (३) चार ऋद्धिपाद, (४) पाँच इंद्रिय, (६) पाँचबल, (७) सात बोध्यंग, (८) आर्य अष्टांगिक-मार्ग। ...। हन्त! भिक्षुओ! तुम्हें कहता हूँ—संस्कार (=कृतवस्तु) नाश होनेवाले (=वयधम्मा) हैं, प्रमादरहित हो सम्पादन करो। अचिरकालमें ही तथागतका परिनिर्वाण होगा। आजसे तीनमास बाद तथागत परिनिर्वाण पायेंगे।"

(कुसीनाराकी ओर ४८३ ई. पू.)

तब भगवान् पूर्वाह्न समय पहिन कर पात्र चीवरले वैशालीमें पिंडचार कर, भोजनोपरान्त नागावलोकन (=हाथीकी तरह सारे शरीरको घुमाकर दृष्टिपात) से वैशालीको देख कर, आयुष्मान् आनन्दको कहा—

"आनन्द! तथागतका यह अन्तिम वैशाली-दर्शन होगा। आओ आनन्द! जहाँ भण्डग्राम है वहाँ चलें।

"अच्छा भन्ते!"...

तब महा भिक्षुसंघके साथ भगवान् जहाँ भंडग्राम था, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् भण्डग्राममें विहार करते थे।...। वहाँ भंडग्राममें विहार करते भी भगवान्०।

०जहाँ अम्बगाम (=आम्रग्राम)०। ०जहाँ जम्बूग्राम (=जम्बुग्राम)०। ०जहाँ भोगनगर०।

(भोगनगरमें)।

वहाँ भोगनगरमें भगवान् आनन्द-चैत्यमें विहार करते थे। वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ! चार महाप्रदेश तुम्हें उपदेश करता हूँ, उन्हें सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, भाषण करता हूँ।" "भन्ते! अच्छा!"

...(१) भिक्षुओ! यदि (कोई) भिक्षु ऐसा कहे—आवुसो! मैंने इसे भगवान्के मुखसे सुना, मुखसे ग्रहण किया है, यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ताका शासन है।

भिक्षुओ ! उस भिक्षुके भाषणको न अभिनन्दन करना, न निन्दा करना। अभिनन्दन न कर निन्दा न कर; उन पद-व्यंजनोंको अच्छी तरह सीखकर, सूत्रसे तुलना करना, विनयमें देखना। यदि वह सूत्रमें तुलना करने पर, विनयमें देखने पर, न सूत्रमें उतरते हैं, न विनयमें दिखाई पड़ते हैं; तो विश्वास करना कि अवश्य यह भगवान्‌का वचन नहीं है, इस भिक्षुका ही दुर्गृहीत है। ऐसा (होनेपर) भिक्षुओ ! उसको छोड़ देना। यदि वह सूत्रसे तुलना करनेपर, विनयके देखनेपर, सूत्रमें भी उतरता है, विनयमें भी दिखाई देता है; तो विश्वास करना कि अवश्य यह भगवान्‌का वचन है; इस भिक्षुका यह सुगृहीत है। भिक्षुओ ! इसे प्रथम महापदेश धारण करना।

"(२) भिक्षुओ ! यदि (कोई) भिक्षु ऐसा कहे—आवुसो ! अमुक आवासमें स्थविर-युक्त=प्रमुख-युक्त संघ विहार करता है। वह उस संघके मुखसे सुना, मुखसे ग्रहण किया। यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ताका शासन है। ०। तो विश्वास करना, कि अवश्य उन भगवान्‌का वचन है, इसे संघने सुगृहीत किया। भिक्षुओ ! यह दूसरा महापदेश धारण करना।

"(३) ० भिक्षु ऐसा कहे—'आवुसो ! अमुक आवासमें बहुतसे बहुश्रुत, आगत-आगम (=आगमज्ञ) धर्म-धर, विनय-धर, मातृका-धर, स्थविर भिक्षु विहार करते हैं। यह उन स्थविरोंके मुखसे सुना, मुखसे ग्रहण किया। यह धर्म है। ०। ०।

"(४) भिक्षुओ ! (यदि) भिक्षु ऐसा कहे— अमुक आवासमें एक बहुश्रुत० स्थविर भिक्षु विहार करता है। यह मैंने उस स्थविरके मुखसे सुना है, मुखसे ग्रहण किया है। यह धर्म है, यह यह विनय०। भिक्षुओ ! इसे चतुर्थ महापदेश धारण करना। भिक्षुओ ! इन चार महापदेशोंको धारण करना।"

वहाँ भोग-नगरमें विहार करते भी भगवान् भिक्षुओंको बहुत करके यही धर्म-कथा कहते थे०।

(पावामें)।

०तब भगवान्, महाभिक्षु-संघके साथ जहाँ पावा थी, वहाँ गये। वहाँ पावामें भगवान् चुन्द कर्मार (=सोनार)-पुत्रके आम्रवनमें विहार करते थे।

चुन्द कर्मार-पुत्रने सुना—भगवान् पावामें आये हैं, पावामें मेरे आम्रवनमें विहार करते हैं। तब चुन्द कर्मार-पुत्र जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे चुन्द कर्मार-पुत्रको भगवान्‌ने धार्मिक कथासे ०समुत्तेजित० किया। तब चुन्दने भगवान्‌की धार्मिक कथासे ०समुत्तेजित० हो भगवान्‌को यह कहा—

"भन्ते ! भिक्षु-संघके साथ भगवान् मेरा कलका भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया।

तब चुन्द कर्मार-पुत्रने उस रातके बीतनेपर अपने घरमें उत्तम खाद्य भोज्य (और) बहुत सा [1]सूकर-मार्दव (=सूकर मद्दव) तैयार करवा, भगवान्‌को कालकी सूचना दी—। तब

१. किन्हींके मतसे ८।५। ३. अ. क. "न बहुत तरुण न बहुत बूढ़े (=जीर्ण) एक (वर्ष) के सूअरका मांस, वह मृदु भी, स्निग्ध भी होता है।" कोई कोई कहते

भगवान् पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्र-चीवर ले भिक्षु-संघके साथ, जहाँ चुन्द कर्मार-पुत्रका घर था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठे।...। (भोजनकर)...एक ओर बैठे चुन्द कर्मार-पुत्रको भगवान् धार्मिक कथासे ०समुत्तेजित० कर आसनसे उठकर चल दिये।

तब चुन्द कर्मार-पुत्रका भात (=भोजन) खाकर भगवान्को खून गिरनेकी, कड़ी बीमारी उत्पन्न हुई, मरणांतक सख्त पीड़ा होने लगी। उसे भगवान्ने स्मृति-संप्रजन्ययुक्त हो, बिना दुःखित हुए, स्वीकार (=सहन) किया। तब भगवान्ने आयुष्मान् आनंदको आमंत्रित किया—

"आओ आनन्द! जहाँ कुसीनारा[1] है, वहाँ चलें।" "अच्छा भन्ते।"

तब भगवान् मार्गसे हटकर एक वृक्षके नीचे गये। जाकर आयुष्मान् आनंदको कहा—

"आनंद! मेरे लिए चौपेती संघाटी बिछा दे, मैं थक गया हूँ, बैठूँगा।"

"अच्छा भन्ते!"...आयुष्मान् आनंदने चौपेती संघाटी बिछा दी, भगवान् बिछे आसनपर बैठे।...। उस समय आलार कालामका शिष्य पुक्कुस मल्ल-पुत्र कुसीनारा और पावाके बीच रास्तेमें जा रहा था। पुक्कुस मल्ल-पुत्रने भगवान्को एक वृक्षके नीचे बैठे देखा। देखकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ...जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। पुक्कुसने० भगवान्को कहा—

'आश्चर्य भन्ते! अद्भुत भन्ते! प्रव्रजित (लोग) शांततर विहारसे विहरते हैं...। ...।" आजसे भन्ते! मुझे अंजलिबद्ध शरणागत उपासक धारण करें।"...

तब पुक्कुस० भगवान्के धार्मिक-कथासे० समुत्तेजित० हो, आसनसे उठकर, भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया।...

(भगवान्ने आनन्दको कहा)—

"आज आनन्द, रातके पिछले पहर (=याम) कुशीनाराके [2]उपवत्तन शाल-वनमें जोड़े शाल (साखू) वृक्षोंके बीच तथागत निर्वाणको प्राप्त होंगे। आओ आनन्द! जहाँ ककुत्था (=ककुत्सा) नदी है, वहाँ चलें।"

"अच्छा भन्ते!"...

तब महाभिक्षु-संघके साथ भगवान् जहाँ ककुत्था नदी थी, वहाँ गये। जाकर ककुत्था नदीको अवगाहन कर, स्नानकर, पानकर, उतरकर, जहाँ [3]अम्बवन (=आम्रवन) था, वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् चुन्दकको बोले—

है—नर्म चावल (=ओदन) को पाँच गोरससे जूस पकानेके विधानका नाम है, जैसे गोपान (=गवपान) पाकका नाम है। कोई कहते हैं—सूकर-मार्दव नामक रसायन-विधि है, वह रसायन-शास्त्रमें आती है। उसे चुन्दने भगवान्का परिनिर्वाण न हो, इसके लिये तैयार कराया था।"

१. उदान अ. क. (८ : ५) पावासे कुसीनारा ६ गव्यूति (३ योजन) है। इस बीचमें पच्चीस पच्चीस स्थानोंमें बैठ कर, बड़ी हिम्मत करके आते हुये (मध्याह्नमें चलके) सूर्यास्त-समय भगवान् कुसीनारा पहुँचे।"

२. कुसीनगर, जिला—देवरिया। ३. अ. क. "उसी नदीके तीर आम्रवन।"

धम्म) उत्पन्न है;···इस प्रकार मैं श्रमण गौतममें प्रसन्न (=श्रद्धावान्) हूँ। श्रमण गौतम मुझे वैसा, धर्म उपदेश कर सकते हैं; जिससे मेरा यह संशय हट जाये।'

तब सुभद्र परिव्राजक जहाँ उपवत्तन मल्लोंका शाल-वन था, जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् आनन्दको बोला—

"हे आनन्द! मैंने वृद्ध महल्लक ० परिव्राजकोंको यह कहते सुना है०। सो मैं ···श्रमण गौतमका दर्शन पाऊँ?"

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् आनन्दने सुभद्र परिव्राजकको कहा—

"नहीं आवुस! सुभद्र! तथागतको तकलीफ मत दो। भगवान् थके हुये हैं।"

दूसरी बार भी सुभद्र परिव्राजकने० ।०। तीसरी बार भी० ।०।

भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दका सुभद्र परिव्राजकके साथका कथा-संलाप सुन लिया। तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दको कहा—

"नहीं आनन्द! मत सुभद्रको मना करो। सुभद्रको तथागतका दर्शन पाने दो। जो कुछ सुभद्र पूछेगा, वह आज्ञा (=परम-ज्ञान) की चाहसे ही पूछेगा; तकलीफ देनेकी चाहसे नहीं। पूछनेपर जो मैं उसे कहूँगा, उसे वह जल्दी ही जान लेगा।"

तब आयुष्मान् आनन्दने सुभद्र परिव्राजकको कहा—

"जाओ आवुस सुभद्र! भगवान् तुम्हें आज्ञा देते हैं।"

तब सुभद्र परिव्राजक जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्के साथ संमोदनकर···एक ओर बैठा। एक ओर बैठे ··बोला।

"हे गौतम! जो श्रमण ब्राह्मण संघी = गणी = गणाचार्य, प्रसिद्ध यशस्वी तीर्थंकर, बहुत लोगों द्वारा उत्तम माने जानेवाले हैं, जैसे कि—पूर्ण काश्यप, मक्खलि गोसाल, अजित केशकम्बल, पकुध कच्चायन, संजय बेलट्ठिपुत्त, निगंठ नाथपुत्त। (क्या) वह सभी अपने दावा (=प्रतिज्ञा) को (वैसा) जानते, (या) सभी (वैसा) नहीं जानते; (या) कोई कोई वैसा जानते, कोई कोई वैसा नहीं जानते!।···।"

"'नहीं सुभद्र! जाने दो—'वह सभी अपने दावाको०। सुभद्र! तुम्हें धर्म० उपदेश करता हूँ; उसे सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, भाषण करता हूँ।"

"अच्छा भन्ते!" सुभद्र परिव्राजकने भगवान्को कहा। भगवान्ने यह कहा—

"सुभद्र! जिस धर्म-विनयमें आर्य अष्टांगिक मार्ग उपलब्ध नहीं होता, वहाँ (प्रथम) श्रमण (स्रोत आपन्न) भी उपलब्ध नहीं होता; द्वितीय श्रमण (=सकृदागामी) भी उपलब्ध नहीं होता; तृतीय श्रमण (=अनागामी) भी उपलब्ध नहीं होता; चतुर्थ श्रमण (=अर्हत्) भी उपलब्ध नहीं होता। सुभद्र! जिस धर्म-विनयमें आर्य-अष्टांगिक-मार्ग उपलब्ध होता है, वहाँ श्रमण भी होता है०। सुभद्र! इस धर्म-विनयमें आर्य अष्टांगिक-मार्ग उपलब्ध होता है; सुभद्र! यहाँ श्रमण० भी, यहाँ ० द्वितीय श्रमण भी, यहाँ ० तृतीय

१. अ. क. "पहिले पहरमें मल्लोंको धर्म-देशनाकर, बिचले पहर सुभद्रको, पिछले पहर भिक्षु-संघको उपदेश दे बहुत भोरे ही परिनिर्वाण···।"

श्रमण भी, यहाँ ० चतुर्थ श्रमण भी है। दूसरे वाद (=मत) श्रमणोंसे शून्य हैं। सुभद्र! यहाँ (यदि) भिक्षु ठीकसे विहार करें (तो) लोक अर्हतोंसे शून्य न होवे।"

"सुभद्र! उन्तीस वर्षकी अवस्थामें कुशल (=मंगल) का खोजी हो, मैं प्रव्रजित हुआ। सुभद्र! जब मैं प्रव्रजित हुआ तबसे इक्यावन वर्ष हुये। न्याय-धर्म (=आर्य-धर्म=सत्य-धर्म) के एक देशको भी देखनेवाला यहाँसे बाहर कोई नहीं है ॥ १, २ ॥...।"

ऐसा कहनेपर सुभद्र परिव्राजकने भगवान्‌को कहा—

"आश्चर्य भन्ते! अद्भुत भन्ते! ० मैं भगवान्‌की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी। भन्ते! मुझे भगवान्‌के पाससे प्रव्रज्या मिले, उपसंपदा मिले।"

"सुभद्र! जो कोई भूतपूर्व अन्य-तैर्थिक (=दूसरे पंथका) इस धर्म...में प्रव्रज्या... उपसंपदा चाहता है। वह चार मास परिवास (=परीक्षार्थ वास) करता है। चार मासके बाद, आरब्ध-चित्त भिक्षु प्रव्रजित करते हैं, भिक्षु होनेके लिये उपसंपन्न करते हैं।"...

"भन्ते! यदि भूत-पूर्व अन्य-तैर्थिक इस धर्म-विनयमें प्रव्रज्या ० उपसंपदा चाहने-पर, चार मास परिवास करता है०। तो भन्ते! मैं चार वर्ष परिवास करूँगा। चार वर्षोंके बाद आरब्ध चित्त भिक्षु मुझे प्रव्रजित करें।"

तब भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दको कहा—"तो आनन्द! सुभद्रको प्रव्रजित करो।"

"अच्छा भन्ते!"...

तब सुभद्र परिव्राजकको आयुष्मान् आनंदने कहा—

"आवुस!...लाभ है तुम्हें, सुलाभ हुआ तुम्हें; जो यहाँ शास्ताके संमुख, अंतेवासी (=शिष्य) के अभिषेकसे अभिषिक्त हुये।"

सुभद्र परिव्राजकने भगवान्‌के पास प्रव्रज्या पाई, उपसंपदा पाई। उपसंपन्न होनेके अचिरहीमें आयुष्मान् सुभद्र...आत्मसंयमी हो विहार करते जल्दीही जिसके लिए कुलपुत्र० प्रव्रजित होते हैं; उस अनुत्तर ब्रह्मचर्य फलको इसी जन्ममें स्वयं जानकर, साक्षात्कार कर, प्राप्तकर विहरने लगे।०। सुभद्र अर्हतोंमेंसे एक हुए। वह भगवान्‌के अंतिम...शिष्य हुए।

तब भगवान्‌ने आयुष्मान् आनंदको कहा—

"आनंद! शायद तुमको ऐसा हो—(१) अतीत-शास्ता (=चले गये गुरु) का (यह) प्रवचन (=उपदेश) है, (अब) हमारा शास्ता नहीं है। आनंद! इसे ऐसा मत देखना। मैंने जो धर्म और विनय उपदेश किये हैं, प्रज्ञप्त (=विहित) किये हैं; मेरे बाद वही तुम्हारा शास्ता (=गुरु) है।—(२) आनंद! जैसे आजकल भिक्षु एक दूसरेको 'आवुस' कहकर पुकारते हैं, मेरे बाद ऐसा कहकर न पुकारें। आनंद! स्थविरतर (=उपसंपदा प्रव्रज्यामें अधिक दिनका) भिक्षु नवक-तर (=अपनेसे कम समयके) भिक्षुको नामसे, या गोत्रसे, या 'आवुस' कहकर पुकारें। नवकतर भिक्षु स्थविरतरको 'भन्ते' या 'आयुष्मान्' कहकर पुकारें। (३) इच्छा होनेपर संघ मेरे बाद क्षुद्र-अनुक्षुद्र (=छोटे छोटे) शिक्षापदों (=भिक्षुनियमों) को छोड़ दे। (४) आनंद! मेरे बाद छन्न भिक्षुको ब्रह्मदंड करना चाहिये।"

"भन्ते ! ब्रह्मदंड क्या है ?"

"आनंद ! छन्न, भिक्षुओंको जो चाहे सो कहे, भिक्षुओंको उससे न बोलना चाहिये, न उपदेश = अनुशासन करना चाहिए।"

तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

'भिक्षुओ ! (यदि) बुद्ध, धर्म, संघमें एक भिक्षुको भी कुछ शंका हो, (तो) पूछ ले। भिक्षुओ ! पीछे अफसोस मत करना—'शास्ता हमारे सम्मुख थे, (किंतु)हम भगवान्‌के सामने कुछ न पूछ सके।"

ऐसा कहनेपर वह भिक्षु चुप रहे। दूसरी बार भी भगवान्० ।०। तीसरी बार भी० । ० ।···

तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"हन्त भिक्षुओ ! अब तुम्हें कहता हूँ—"संस्कार (=कृतवस्तु) व्यय-धर्मा (=नाशवान्) हैं; अप्रमादके साथ (=आलस न कर) (जीवनके लक्ष्यको) संपादन करो।"—यह तथागतका अन्तिम वचन है।

तब भगवान् प्रथम ध्यानको प्राप्त हुये। प्रथम ध्यानसे उठकर द्वितीय ध्यानको प्राप्त हुये।०तृतीयध्यानको०।०चतुर्थध्यानको०।०आकाशानन्त्यायतनको०।०विज्ञानानन्त्यायतनको०। ०आकिंचन्यायतनको०। ०नैव-संज्ञानासंज्ञायतनको०। ०संज्ञावेदयितनिरोधको प्राप्त हुए। तब आयुष्मान् आनन्दने आयुष्मान् अनुरुद्धको कहा—"भन्ते ! अनुरुद्ध ! क्या भगवान् परिनिर्वृत्त हो गये ?'

"आवुस आनन्द ! भगवान् परिनिर्वृत नहीं हुये। संज्ञावेदयितनिरोधको प्राप्त हुये हैं।"

तब भगवान् संज्ञावेदयितनिरोध-समापत्ति (=चार ध्यानोंके ऊपरकी समाधि) से उठकर नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतनको प्राप्त हुये। ०। द्वितीय ध्यानसे उठकर प्रथम ध्यानको प्राप्त हुये। प्रथम ध्यानसे उठकर द्वितीय ध्यानको प्राप्त हुए। ०। चतुर्थ ध्यानसे उठनेके अनंतर भगवान् परिनिर्वाणको प्राप्त हुये।···

भगवान्‌के परिनिर्वाण हो जानेपर, जो वह अवीत-राग (=अ-विरागी) भिक्षु थे, (उनमें) कोई बाँह पकड़कर क्रन्दन करते थे; कटे पेड़के सदृश गिरते थे, (धरतीपर) लोटते थे—'भगवान् बहुत जल्दी परिनिर्वृत हो गये०। किन्तु जो वीत-राग भिक्षु थे, वह स्मृति-संप्रजन्यके साथ स्वीकार (=सहन) करते थे—'संस्कार अनित्य हैं, वह कहाँ मिलेगा ?'

तब आयुष्मान् अनुरुद्ध ने भिक्षुओं को कहा—

"नहीं आवुसो ! शोक मत करो, रोदन मत करो। भगवान्‌ने तो आवुसो ! यह पहिले ही कह दिया है—'सभी प्रियों०से जुदाई० होनी है०।"

आयुष्मान् अनुरुद्ध और आयुष्मान् आनन्दने बाकी रात धर्म-कथामें बिताई। तब आयुष्मान् अनुरुद्धने आयुष्मान् आनन्दको कहा —

"जाओ ! आवुस आनन्द ! कुसीनारामें जाकर, कुसीनाराके मल्लोंको कहो—'वासिष्ठो ! भगवान् परिनिर्वृत हो गये। अब जिसका तुम काल समझो (वह करो)।"

"अच्छा भन्ते !" कह आयुष्मान् आनन्द पहिनकर पात्र-चीवर ले अकेले सीनारामें प्रविष्ट हुये । उस समय किसी कामसे कुसीनाराके मल्ल, संस्थागार (=गणराज्य मा-भवनमें) जमा थे । तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ मल्लोंका संस्थागार था, वहाँ गये । कर कुसीनाराके मल्लोंको बोले—

"वाशिष्ठो ! भगवान् परिनिर्वृत्त होगये, अब जिसका तुम काल समझो (वैसा रो) ।"

आयुष्मान् आनन्दसे यह सुनकर मल्ल, मल्ल-पुत्र, मल्ल-वधुयें, मल्ल-भार्यायें दुःखित ० कोई केशोंको बिखेरकर क्रन्दन करती थीं०[1] ।

तब कुसीनाराके मल्लोंने पुरुषोंको आज्ञा दी—

"तो भणे ! कुसीनाराकी सभी गंध-माला और सभी बाजोंको जमा करो ।"

तब कुसीनाराके मल्लोंने सभी गंध माला सभी बाजों, और पाँच हजार थान(=दुस्स)-ोंको लेकर जहाँ [2]उपवत्तन० था, जहाँ भगवान्का शरीर था, वहाँ गये । जाकर भगवान्के रीरको नृत्य, गीत, वाद्य, माला, गंधसे सत्कार करते,=गुरुकार करते,=मानते=पूजते कपड़ेका तान(=चँदवा) करते, मंडप बनाते उन्होंने उस दिनको बिता दिया । तब कुसीनाराके मल्लों । हुआ—'भगवान्के शरीरके दाह करनेको आज बहुत विकाल हो गया । अब कल भगवान्के रीरका दाह करेंगे ।' तब कुसीनाराके मल्लोंने भगवान्के शरीरको नृत्य, गीत, वाद्य, ला, गंधसे सत्कार करते=गुरुकार करते=मानते=पूजते, चँदवा तानते, मंडप बनाते सरा दिन भी बिता दिया । तीसरा दिन भी० । ०चौथा दिन भी० । ०पाँचवाँ दिन भी० । ठाँ दिन भी० । तब सातवें दिन कुसीनाराके मल्लोंको यह हुआ—'हम भगवान्के शरीरको त्य० गंधसे सत्कार करते नगरके दक्षिणसे ले जाकर बाहरसे बाहर नगरके दक्षिण भगवान्के रीरका दाह करें । उस समय मल्लोंके आठ प्रमुख (=मुखिया) शिरसे नहाकर, नये वस्त्र हिन, भगवान्के शरीरको उठाना चाहते थे; लेकिन वह नहीं उठा सके । तब कुसीनाराके ल्लोंने आयुष्मान् अनुरुद्धसे पूछा—

"भन्ते ! अनुरुद्ध ! क्या हेतु है=क्या कारण है; जो कि हम आठ मल्ल-प्रमुख ०नहीं ठा सकते ?"

"वाशिष्ठो ! तुम्हारा अभिप्राय दूसरा है, और देवताओंका अभिप्राय दूसरा है ।"

"भन्ते ! देवताओंका अभिप्राय क्या है ?"

"वाशिष्ठो ! तुम्हारा अभिप्राय है, हम भगवान्के शरीरको नृत्य०से सत्कार करते० गरके दक्षिण दक्षिण ले जाकर, बाहरसे बाहर नगरके दक्षिण, भगवान्के शरीरका दाह करें । वताओंका अभिप्राय है—हम भगवान्के शरीरको दिव्य नृत्य०से सत्कार करते० नगरके त्तर उत्तर ले जाकर, उत्तर-द्वारसे नगरमें ०प्रवेशकर, नगरके बीचसे ले जा, पूर्व द्वारसे कल, नगरके पूर्व ओर (जहाँ) [3]मुकुट-बंधन नामक मल्लोंका चैत्य (=देवस्थान) , वहाँ भगवान्के शरीरका दाह करें ।"

---

1. देखो पृष्ठ ४६४ । 2. वर्तमान माथा-कुँवर, कसया (जि. देवरिया) ।
3. रामाभार (कसया) का स्तूप ।

"भन्ते ! जैसा देवताओंका अभिप्राय है—वैसा ही हो ।"

उस समय कुसीनारामें जाँघभर मन्दारव (=एक दिव्य पुष्प)·पुष्प बरसे हुए थे । तब देवताओं और कुसीनाराके मल्लोंने भगवान्‌के शरीरको दिव्य और मनुष्य नृत्य०के साथ सत्कार करते० नगरसे उत्तर उत्तरसे ले जाकर ०(जहाँ) मुकुट-बंधन नामक मल्लोंका चैत्य था, वहाँ भगवान्‌का शरीर रक्खा । तब कुसीनाराके मल्लोंने आयुष्मान् आनन्दको कहा—

"भन्ते आनन्द ! हम तथागतके शरीरको कैसे करें ?"

"वाशिष्टो ! जैसा चक्रवर्ती राजाके शरीरको करते हैं, वैसे ही तथागतके शरीरको करना चाहिये ।"

"भन्ते ! कैसे चक्रवर्ती राजाके शरीरको करते हैं ।"

"वाशिष्टो ! चक्रवर्ती राजाके शरीरको नये कपड़ेसे लपेटते हैं० । (दाहकर) बड़े चौरस्ते पर तथागतका स्तूप बनवाना चाहिये ।..."

तब कुसीनाराके मल्लोंने पुरुषोंको आज्ञा दी—

"तो भणे ! मल्लोंका धुना कपड़ा जमा करो ।"

तब कुसीनाराके मल्लोंने भगवान्‌के शरीरको नये वस्त्रसे वेष्टित किया० सब गंधोंकी चिता बना, भगवान्‌के शरीरको चिता पर रखा ।

उस समय पांचसौ भिक्षुओंके महाभिक्षुसंघके साथ आयुष्मान् महाकाश्यप पावा और कुसीनाराके बीचमें, रास्तेपर जा रहे थे । तब आयुष्मान् महाकाश्यप मार्गसे हटकर एक वृक्षके नीचे बैठे । उस समय एक आजीवक कुसीनारासे मंदार का पुष्प ले पावाके रास्तेपर जा रहा था । आयुष्मान् महाकाश्यपने उस आजीवक को दूरसे जाते देखा । देखकर उस आजीवकको यह कहा—

"आवुस ! क्या हमारे शास्ताको भी जानते हो ?"

"हाँ, आवुस ! जानता हूँ; श्रमण गौतमको परिनिर्वृत हुये आज एक सप्ताह होगया; मैंने यह मंदार-पुष्प वहींसे पाया ।"

यह सुन वहाँ जो अवीतराग भिक्षु थे, (उनमें) कोई कोई बाँह पकड़कर रोते० । उस समय सुभद्र नामक (एक) वृद्ध-प्रव्रजित (= बुढ़ापेमें साधु हुआ) उस परिषद्‌में बैठा था । तब वृद्ध-प्रव्रजित सुभद्रने उन भिक्षुओंको यह कहा—

"मत आवुसो ! मत शोक करो, मत रोओ । हम सुमुक्त होगये । उस महाश्रमण से पीड़ित रहा करते थे—'यह तुम्हें विहित है, यह तुम्हें विहित नहीं है ।' अब हम जो चाहेंगे, सो करेंगे, जो नहीं चाहेंगे, सो नहीं करेंगे ।"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"आवुसो ! मत सोचो, मत रोओ । आवुसो ! भगवान्‌ने तो यह पहिले ही कह दिया है—सभी प्रियों=मनापोंसे जुदाई० होनी है, सो यह आवुसो ! कहाँ मिलनेवाला है ? जो जात (= उत्पन्न) = भूत ० है, वह नाश होनेवाला है । 'हाय ! वह नाश मत हो'—यह सम्भव नहीं ।"

मल्लोंने भी०। (९) द्रोण ब्राह्मणने भी कुम्भका०। (१०) पिप्पलीवनके मौर्योंने भी अंगारोंका०।

इस प्रकार आठ शरीर (=अस्थि) के स्तूप और एक कुम्भ-स्तूप पूर्वकाल (=मूलपाठ) में थे।

"चक्षु-मान् (=बुद्ध) का शरीर (=अस्थि) आठ द्रोण था। (जिसमेंसे) सात द्रोण जम्बूद्वीपमें पूजित होते हैं। (और) पुरुषोत्तमका एक द्रोण राम-ग्राममें नागोंसे पूजा जाता है ॥१॥

एक दाढ़ (=दाढा) स्वर्ग-लोकमें पूजित है, और एक गंधारपुरमें पूजी जाती है। एक कलिंग-राजाके देशमें है; और एकको नागराज पूजते हैं ॥२॥

उस स्थानके अस्सी हाथ गहरा हो जानेपर, नीचे लोहेका पत्तर बिछाकर, वहाँ 'थूपाराम' के चैत्य-घरके बराबरका ताँबे (=ताम्र-लोह) का घर बनवा, आठ आठ हरिचंदन आदिके करंडों (=पिटारी) और स्तूपोंको बनवाया। तब भगवान्‌की धातुको हरिचंदनके करण्ड (=पेटारी, डिब्बा) में रखवा, उस…को दूसरे हरिचंदनके करण्डोंमें, उसे भी दूसरोंमें, इस प्रकार आठ हरिचंदनके करण्डोंमें एकमें एक रखकर,…,…आठ हरिचन्दन-स्तूपोंमें,… आठ लोहित (=लाल)-चन्दनके स्तूपोंमें,…(उन्हें) आठ (हाथी-)दाँत-करण्डमें, आठ दाँत-करण्डोंको आठ दन्तस्तूपोंमें,…सर्वरत्न-करण्डोंमें,…सर्वरत्न-स्तूपोंमें,…आठ सुवर्ण-करण्डोंमें,…आठ सुवर्ण-स्तूपोंमें,… आठ रजत (=चाँदी)-करण्डोंमें,… आठ रजत-स्तूपोंमें, … आठ मणि-करण्डोंमें,…आठ मणि-स्तूपोंमें,… लोहिताङ्क-करण्डोंमें, =लोहिताङ्क (=पद्मराग-मणि) स्तूपोंमें,…मसार-गल्ल (=कबर-मणि) करण्डोंमें, मसारगल्ल-स्तूपोंमें,…आठ स्फटिक-करण्डोंमें,…आठ स्फटिक-स्तूपोंमें रखकर, सबसे ऊपर थूपारामके चैत्यके बराबरका स्फटिक चैत्य बनवाया। उसके ऊपर सर्वरत्नमय गेह बनवाया। उसके ऊपर सुवर्णमय,… रजतमय, उसके ऊपर ताम्रलोह (=ताँबा)-मय गेह बनवाया। वहाँ सर्वरत्नमय बालुका बिखेरकर, जलज स्थलज सहस्रों पुष्पोंको बिखेरकर, साढ़े पाँच सौ जातक, अस्सी महास्थविर, शुद्धोदन महाराज, महामायादेवी, (सिद्धार्थके) साथ उत्पन्न हुये सात—सभी (की मूर्तियों) को सुवर्णमय बनवाया। पाँच-सौ सुवर्ण-रजतमय घट स्थापित किये; पाँच-सौ सुवर्ण-ध्वज चढ़ाये; पाँच-सौ सुवर्ण-दीप, पाँच-सौ रजत-दीप बनवाकर सुगंध-तैल भरकर, उनमें दुकूल (=बहुमूल्य वस्त्र) की बत्तियाँ डलवाईं। तब आयुष्मान् महाकाश्यपने—'माला मत सूखें, गंध न नष्ट हों, प्रदीप न बुझें'—यह अधिष्ठान (=दिव्य संकल्प) करके सुवर्ण-पत्र पर अक्षर खुदवाये—

"भविष्यमें पियदास (?=पियदस्सी=प्रियदर्शी) नामक कुमार छत्र धारणकर अशोक धर्मराजा होगा। वह इन धातुओंको फैलायेगा।"

राजाने सब गन्धोंसे पूजाकर आदिसे ही (एक एक) द्वारको बंदकर, जंजीरमें कुंजी दे (=कुंचिकमुद्दिकं पिधाय), वहाँ बड़ी मणियोंकी राशि स्थापित की—"भविष्यमें

(११)

([1]प्रथम-संगीति ई. पू. ४८३)

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने भिक्षुओंको संबोधित किया। आवुसो ! एक समय मैं [2]पाँचसौ भिक्षुओंके साथ पावा और कुसीनाराके बीच रास्तेमें था। तब आवुसो ! मार्गसे हटकर मैं एक वृक्षके नीचे बैठा। उस समय एक आजीवक कुसीनारासे मंदारका पुष्प लेकर पावाके रास्तेमें जारहा था। आवुसो ! मैंने दूरसे ही आजीवकको आते देखा। देखकर उस आजीवकको यह कहा—"आवुस ! हमारे शास्ताको जानते हो ?"

"हाँ आवुसो ! जानता हूँ, आज सप्ताह हुआ, श्रमण गौतम परिनिर्वाणको प्राप्त हुये। मैंने यह मन्दारपुष्प वहींसे लिया है।" आवुसो ! वहाँ जो भिक्षु अवीत-राग (= वैराग्यवाले नहीं) थे; (उनमें) कोई-कोई बाँह पकड़कर रोते थे' ०।

'उस समय आवुसो ! सुभद्र[3] ०वृद्ध-प्रव्रजितने० कहा—०जो नहीं चाहेंगे उसे न करेंगे'। 'अच्छा आवुसो ! हम धर्म (सूत्रपिटक) और विनय(पिटक)का संगान (= साथ पाठ) करें, सामने अधर्म प्रकट हो रहा है, धर्म हटाया जारहा है, अविनय प्रकट हो रहा है, विनय हटाया जा रहा है। अधर्मवादी बलवान् हो रहे हैं, ०धर्मवादी दुर्बल हो रहे हैं, ०विनयवादी हीन हो रहे हैं।"

'तो भन्ते ! (आप) स्थविर भिक्षुओंको चुनें।" तब आयुष्मान् महाकाश्यपने एक कम पाँचसौ अर्हत् चुने। भिक्षुओंने आयुष्मान् महाकाश्यपको यह कहा—

"भन्ते ! यह आनन्द यद्यपि शैक्ष्य (अन्-अर्हत्) हैं, (तो भी) छन्द (= राग) द्वेष, मोह, भय, अगति (=बुरे मार्ग)पर जानेके अयोग्य हैं। इन्होंने भगवान्के पास बहुत धर्म (=सूत्र) और विनय प्राप्त किया है; इसलिये भन्ते ! स्थविर आयुष्मान्को भी चुन लें।"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् आनन्दको भी चुन लिया। तब स्थविर

(होनेवाले) दरिद्र राजा मणियोंको ग्रहणकर धातुओंकी पूजा करें"—अक्षर खुदवा दिये। शक्र देवराजने विश्वकर्माको बुलाकर—"तात ! अजातशत्रुने धातुनिधान कर दिया, वहाँ पहरा नियुक्त करो"—कह भेजा। उसने आकर वाल-संघाट-यंत्र लगा दिया। (जिससे) उस धातु गर्भ (=धातुके चहबच्चे)में काष्ठकी मूर्तियाँ स्फटिकके वर्णके खड्गोंको लेकर पवन-वेगसे घूमती थीं। यंत्रमें जोड़कर एक ही आनीमें बाँधकर; चारों ओर गृहोंके रहनेके स्थानकी भाँति शिला-परिक्षेप करवा, ऊपर एक (शिला)से बंदकरवा मिट्टी डलवा भूमि समतलकर, उसके ऊपर पाषाण-स्तूप स्थापित करवा दिया।

इस प्रकार धातु-निधान समाप्त हो जानेपर, स्थविर आयुभर रहकर निर्वाणको चले गये, राजा भी कर्मानुसार गया, वह मनुष्य भी मर गये।

पीछे पियदास (? पियदस्सी) नामक कुमारने, छत्र धारणकर अशोक नामक धर्म-राजा हो, उन धातुओंको लेकर जंबूद्वीपमें फैलाया।..."

१. विनयपिटक चुल्लवग्ग ११। २. देखो पृष्ठ ५०६। ३. पृष्ठ ५०८।

भिक्षुओंको यह हुआ—'कहाँ धर्म और विनयका संगायन करें ?' तब स्थविर भिक्षुओंको यह हुआ—

"राजगृह महागोचर (=समीपमें बहुत बस्तीवाला) बहुत शयनासन (=वासस्थान)-वाला है, क्यों न राजगृहमें वर्षावास करते हम धर्म और विनयका संगायन करें। (लेकिन) दूसरे भिक्षु राजगृह मत जायें'। तब आयुष्मान् महाकाश्यपने संघको ज्ञापित किया—

"आवुसो ! संघ सुने, यदि संघको पसंद है, तो संघ इन पाँचसौ भिक्षुओंको राजगृहमें वर्षावास करते धर्म और विनय संगायन करनेकी संमति दे और दूसरे भिक्षुओंको राजगृहमें न बसनेकी।' यह ज्ञप्ति(=सूचना) है। "भन्ते ! संघ सुने, यदि संघको पसंद है०।' जिस आयुष्मान्‌को इन पाँचसौ भिक्षुओंका, ०संगायन करना, और दूसरे भिक्षुओंका राजगृहमें वर्षावास न करना पसंद हो, वह चुप रहे; जिसको नहीं पसंद हो, वह बोले। दूसरी बार भी०। तीसरी बार भी०। 'संघ इन पाँचसौ भिक्षुओंके० तथा दूसरे भिक्षुओंके राजगृहमें वास न करनेसे सहमत है, संघको पसंद है, इसलिये चुप है'—यह धारण करता हूँ।"

तब स्थविर भिक्षु धर्म और विनयके संगायन करनेके लिये राजगृह गये। तब स्थविर भिक्षुओंको हुआ—

'आवुसो ! भगवान्‌ने टूटे फूटेकी मरम्मत करनेको कहा है। अच्छा आवुसो ! हम प्रथम मासमें टूटे-फूटेकी मरम्मत करें, दूसरे मासमें एकत्रित हो धर्म और विनयका संगायन करें।' तब स्थविर भिक्षुओंने प्रथम मासमें टूटे फूटेकी मरम्मत की।

आयुष्मान् आनन्दने—'बैठक (=सन्निपात) होगी, यह मेरे लिये उचित नहीं, कि मैं शैक्ष्य (अन्-अर्हत्) रहते ही बैठकमें जाऊँ' (सोच) बहुत रात तक काय-स्मृतिमें बिताकर, रातके भिनसारको लेटनेकी इच्छासे शरीरको फैलाया, भूमिसे पैर उठ गये, और सिर तकियेपर न पहुँच सका। इसी बीचमें चित्त आस्रवों (=चित्तमलों)से अलग हो, मुक्त होगया। तब आयुष्मान् आनन्द अर्हत् होकर ही बैठकमें गये।

आयुष्मान् महाकाश्यपने संघको ज्ञापित किया—

"आवुसो ! संघ सुने, यदि संघको पसन्द है, तो मैं उपालीसे विनय पूछूँ ?"

आयुष्मान् उपालीने भी संघको ज्ञापित किया—

"भन्ते संघ ! सुने यदि संघको पसन्द है, तो मैं आयुष्मान् महाकाश्यपसे पूछे गये विनयका उत्तर दूँ ?"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् उपालीसे कहा—

"आवुस ! उपाली ! 'प्रथम-पाराजिका कहाँ प्रज्ञप्त की गई ?" "राजगृहमें भन्ते !"

"किसको लेकर ?" "सुदिन्न कलन्द-पुत्तको लेकर"

"किस बातमें ?" "मैथुन-धर्ममें।"

---

१. उस संघमें सभी महाकाश्यपसे छोटे भिक्षु थे, इसलिये 'आवुस' कहा गया। २. यहाँ उस संघमें महाकाश्यप उपालीसे बड़े थे, इसलिये 'भन्ते !' कहा। ३. देखो पृष्ठ १६६।

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् उपालीको प्रथम पाराजिकाकी वस्तु (=कथा) भी पूछी, निदान (=कारण) भी पूछा, पुद्गल (=व्यक्ति) भी पूछा, प्रज्ञप्ति (=विधान) भी पूछी, अनु-प्रज्ञप्ति (=संबोधन) भी पूछी, आपत्ति (=दोष-दंड) भी पूछी, अन्-आपत्ति भी पूछी।

"आवुस उपाली! [1]द्वितीय-पाराजिका कहाँ प्रज्ञापित हुई?" "राजगृहमें, भन्ते!"

"किसको लेकर?" "धनिय कुंभकार-पुत्तको।"

"किस वस्तुमें?" "अदत्तादान (चोरी) में।"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् उपालीको द्वितीय पाराजिकाकी वस्तु (=बात, विषय) भी पूछी, निदान भी० अनापत्ति भी पूछी।—

"आवुस उपाली! [2]तृतीय पाराजिका कहाँ प्रज्ञापित हुई?" "वैशालीमें, भन्ते।"

"किसको लेकर?" "बहुतसे भिक्षुओंको लेकर।"

"किस वस्तुमें?"

"मनुष्य-विग्रह (=नर-हत्या) के विषयमें।"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने०।—

"आवुस उपाली! [3]चतुर्थ-पाराजिका कहाँ प्रज्ञापित हुई?" "वैशालीमें भन्ते!"

"किसको लेकर?" "वग्गुमुदा-तीरवासी भिक्षुओंको लेकर।"

"किस वस्तुमें?" "उत्तर-मनुष्य-धर्म (= दिव्य-शक्ति) में।"

तब आयुष्मान् काश्यपने०। इसी प्रकारसे दोनों (भिक्षु, भिक्षुणी) के विनयोंको पूछा। आयुष्मान् उपाली पूछेका उत्तर देते थे।

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने संघको ज्ञापित किया—

"आवुसो! संघ मुझे सुने। यदि संघको पसन्द हो, तो मैं आयुष्मान् आनन्दसे धर्म (=सूत्र) पूछूँ?"

तब आयुष्मान् आनन्दने संघको ज्ञापित किया—

"भन्ते! संघ मुझे सुने। यदि संघको पसन्द हो, तो मैं आयुष्मान् महाकाश्यपसे पूछे गये धर्मका उत्तर दूँ?"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् आनन्दको कहा—

"आवुस आनन्द! 'ब्रह्मजाल' (सूत्र) को कहाँ भाषित किया?"

"राजगृह और नालन्दाके बीचमें, अम्बलट्ठिकाके राजागारमें।"

"किसको लेकर?"

"सुप्रिय परिव्राजक और ब्रह्मदत्त माणवकको लेकर।"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने 'ब्रह्मजाल' के निदानको भी पूछा, पुद्गलको भी पूछा—

"आवुस आनन्द![4] 'सामञ्ञ (=श्रामण्य) फल' को कहाँ भाषित किया?"

"भन्ते! राजगृहमें जीवकम्ब-वनमें।"

---

१. देखो पृष्ठ २८८। २. देखो पृष्ठ २९८।

३. देखो पृष्ठ २९९। ४. देखो पृष्ठ ४२९।

"किसके साथ ?"

"अजातशत्रु वैदेहिपुत्रके साथ ।"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने 'श्रामण्य-फल'-सुत्तके निदानको भी पूछा, पुद्गलको भी पूछा । इसी प्रकारसे (दीघनिकाय आदि) पाँचों निकायोंको पूछा; पूछे पूछेका आयुष्मान् आनन्दने उत्तर दिया—

तब आयुष्मान् आनन्दने स्थविर-भिक्षुओंको कहा—

"भन्ते ! भगवान्ने परिनिर्वाणके समय ऐसा कहा था—'आनन्द ! इच्छा होनेपर संघ मेरे न रहनेके बाद, क्षुद्र-अनुक्षुद्र (=छोटे छोटे) शिक्षापदों (=भिक्षु-नियमों)को हटा दे ।'"

"आवुस आनन्द ! "तूने भगवान्को पूछा ?'—'भन्ते ! किन क्षुद्र-अनुक्षुद्र शिक्षापदों को ?'"

"भन्ते ! मैंने भगवान्को नहीं पूछा० ।"

किन्हीं किन्हीं स्थविरोंने कहा—चार पाराजिकाओंको छोड़कर बाकी शिक्षापद क्षुद्र-अनुक्षुद्र हैं । किन्हीं किन्हीं स्थविरोंने कहा—चार पाराजिकायें, और तेरह संघादिसेसोंको छोड़कर, बाकी० । ०चार पाराजिकायें, और तेरह संघादिसेसों, और दो अनियतोंको छोड़कर बाकी० । ०पाराजिका० संघादिसेस० अनियत और तीस नैसर्गिक-प्रायश्चित्तिकोंको छोड़कर० । ०पाराजिका० संघादिसेस० अनियत० नैसर्गिक प्रायश्चित्तिक और बानबे प्रायश्चित्तिकोंको छोड़कर० । ०० और चार प्रतिदेशनीयोंको छोड़कर० ।

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने संघको ज्ञापित किया—

"आवुसो ! संघ मुझे सुने । हमारे शिक्षापद गृही-गत भी हैं (=गृहस्थ भी जानते हैं)—"यह तुम शाक्यपुत्रीय श्रमणोंको विहित (=कल्प्य) है, यह नहीं विहित है ।" यदि हम क्षुद्र-अनुक्षुद्र शिक्षापदोंको हटावेंगे, तो कहनेवाले होंगे—'श्रमण गौतमने धूमके काल तक ऐसा शिक्षापद प्रज्ञप्त किया, जबतक इनका शास्ता रहा, तब तक यह शिक्षापद पालते रहे, जब इनका शास्ता परिनिर्वृत होगया; तब यह शिक्षापदोंको नहीं पालते ।' यदि संघको पसंद हो तो संघ अ-प्रज्ञप्त (=अविहित) को न प्रज्ञापन (=विधान) करे, प्रज्ञप्तका न छेदन करे । प्रज्ञप्तिके अनुसार शिक्षापदोंमें बर्ते'—यह ज्ञप्ति (=सूचना) है—'आवुसो ! संघ सुने० प्रज्ञप्तिके अनुसार शिक्षापदोंमें बर्ते । जिस आयुष्मान्को अ-प्रज्ञप्त न प्रज्ञापन, प्रज्ञप्तका न छेदन, प्रज्ञप्तिके अनुसार शिक्षापदोंको ग्रहण कर बर्तना पसन्द हो, वह चुप रहे, जिसको नहीं पसन्द हो वह बोले । संघ न अप्रज्ञप्तको प्रज्ञापन करता है, न प्रज्ञप्तका छेदन करता है० । प्रज्ञप्तिके अनुसारही शिक्षापदोंमें ग्रहण कर बर्तता है—(यह) संघको पसन्द है, इसलिये मौन है—ऐसा धारण करता हूँ ।"

तब स्थविर भिक्षुओंने आयुष्मान् आनन्दको कहा—

"आवुस आनन्द ! यह तूने बुरा किया (=दुक्कट), जो भगवान्को नहीं पूछा—'भन्ते ! कौनसे हैं वह क्षुद्र-अनुक्षुद्र शिक्षापद ।' अतः अब तू दुक्कटकी देशना कर' ।"

"भन्ते ! मैंने याद न होनेसे भगवान्को नहीं पूछा—'भन्ते ! कौनसे हैं० । इसे मैं

दुष्कृत नहीं समझता। किन्तु आयुष्मानोंके ख्यालसे देशना (=क्षमा-प्रार्थना) करता हूँ।"

"यह भी आवुस आनन्द! तेरा दुष्कृत है, जो तूने भगवान्‌की वर्षाशाटी (=वर्षा ऋतुमें नहानेके कपड़े)को (पैरसे) अक्रमण कर लिया, इस दुष्कृतकी देशना कर।"

"भन्ते! मैंने अगौरवके ख्यालसे भगवान्‌की लुङ्गीको अक्रमण कर नहीं लिया, इसे मैं दुष्कृत नहीं समझता; किन्तु आयुष्मानोंके ख्यालसे देशना (=क्षमा-प्रार्थना) करता हूँ०।"

"यह भी आवुस आनन्द! तेरा दुष्कृत है, जो तूने भगवान्‌के शरीरको स्त्रीसे प्रथम वंदना करवाया, रोती हुई उन स्त्रियोंके आंसुओंसे भगवान्‌का शरीर लिप्त होगया, इस दुष्कृतकी देशना कर।"

"भन्ते! यह वि(=अति)-कालमें न हो—इस (ख्याल)से मैंने भगवान्‌के शरीरको प्रथम स्त्रीसे वन्दना करवाया, मैं उसे दुष्कृत नहीं समझता०।

"यह भी आवुस आनन्द! तेरा दुष्कृत है, जो तूने भगवान्‌के उदार निमित्त करनेपर भगवान्‌के उदार (=ओलारिक) अवभास करनेपर, भगवान्‌से नहीं प्रार्थना की—'भन्ते! बहुजन-हितार्थ बहुजन-सुखार्थ, लोकानुकंपार्थ, देव-मनुष्योंके अर्थ = हित = सुखके लिये भगवान् कल्प भर ठहरें, सुगत कल्प भर ठहरें।' इस दुष्कृतकी देशना कर।"

"मैंने भन्ते! मारसे परि-उत्थित-चित (=भ्रममें पड़ा) होनेसे, भगवान्‌से प्रार्थना नहीं की०। इसमें दुष्कृत नहीं समझता ०।"

"यह भी आवुस आनन्द! तेरा दुष्कृत है, जो तूने तथागत के बतलाये धर्म- (=धर्म-विनय)में स्त्रियोंकी प्रव्रज्याके लिये उत्सुकता पैदा की। इस दुष्कृतकी देशना कर'।"

"भन्ते! मैंने—'यह महाप्रजापती गौतमी[1] भगवान्‌की मौसी, आपादिका' पोषिका, क्षीरदायिका है, जननीके मरनेपर स्तन पिलाया' (ख्याल कर) तथागत-प्रवेदित धर्ममें स्त्रियोंकी प्रव्रज्याके लिये उत्सुकता पैदा की। मैं इसे दुष्कृत नहीं समझता, किन्तु ०।"

उस समय पांचसौ भिक्षुओंके महाभिक्षु-संघके साथ आयुष्मान् पुराण दक्षिणागिरिमें चारिका कर रहे थे। आयुष्मान् पुराण स्थविर-भिक्षुओंके धर्म और विनयके संगायन समाप्त होजानेपर, दक्षिणागिरिमें इच्छानुसार विहर कर, जहाँ राजगृहमें कलंदक-निवापका वेणुवन था, जहाँ पर स्थविर भिक्षु थे, वहाँ गये। जाकर स्थविर भिक्षुओंके साथ प्रतिसंमोदन कर, एक ओर बैठे। एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् पुराणको स्थविर भिक्षुओंने कहा—

'आवुस पुराण! स्थविरोंने धर्म और विनयका[1] संगायन किया है। आओ तुम (भी) संगीतिको मानो।"

"आवुस! स्थविरोंने धर्म और विनयको सुंदर तौरसे संगायन किया है; तो भी जैसा मैंने भगवान्‌के मुँहसे सुना है, मुखसे ग्रहण किया है, वैसा ही मैं धारण करूँगा।"

तब आयुष्मान् आनन्दने स्थविर-भिक्षुओंको यह कहा—

"भन्ते! भगवान्‌ने परिनिर्वाणके समय० यह कहा—'आनन्द! मेरे न रहनेके बाद संघ छन्न (=छंदक)को ब्रह्मदंडकी आज्ञा दे।"

"आवुस! पूछा तुमने ब्रह्मदंड क्या है?"

---

1. पृष्ठ ७२।

"भन्ते ! मैंने पूछा०।—'आनन्द ! छन्न भिक्षु जैसा चाहे वैसा बोले; भिक्षु उसको न बोलें, न उपदेश करें, न अनुशासन करें।'"

"तो आवुस आनन्द ! तुम्हीं छन्न भिक्षुको ब्रह्मदंडकी आज्ञा दे।"

"भन्ते ! मैं छन्नको ब्रह्मदंडकी आज्ञा करूँगा, लेकिन वह भिक्षु चंड परुष (=कटु-भाषी) है।"

"तो आवुस आनन्द ! तुम बहुतसे भिक्षुओंके साथ जाओ।"

"अच्छा भन्ते !"...कहकर आयुष्मान् आनन्द पाँचसौ भिक्षुओंके महाभिक्षुसंघके साथ नावपर कौशाम्बी गये। नावसे उतर कर राजा उदयनके उद्यानके समीप एक वृक्षके नीचे बैठे। उस समय राजा उदयन रनिवास (=अवरोध) के साथ बागकी सैर कर रहा था। राजा उदयनके अवरोधने सुना—हमारे आचार्य आर्य आनन्द उद्यानके समीप एक पेड़के नीचे बैठे हैं। तब अवरोधने राजा उदयनको कहा—

"देव ! हमारे आचार्य आर्य आनन्द उद्यानके समीप एक पेड़के नीचे बैठे हैं, देव ! हम आर्य आनन्दका दर्शन करना चाहती हैं।"

"तो तुम श्रमण आनन्दका दर्शन करो।"

तब...अवरोध जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ...जाकर अभिवादनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे हुये...रनिवासको आयुष्मान् आनन्दने धार्मिक कथासे संदर्शित=प्रेरित =समुत्तेजित, संप्रहर्षित किया। तब राजा उदयनके अवरोधने आयुष्मान् आनन्दको पाँचसौ चादरें (=उत्तरासंग) प्रदान कीं। तब अवरोध आयुष्मान् आनन्दके भाषणको अभिनंदित कर अनुमोदित कर, आसनसे उठ आयुष्मान् आनन्दको अभिवादन कर, प्रदक्षिणाकर, जहाँ राजा उदयन था वहाँ चला गया। राजा उदयनने दूरसे ही अवरोधको आते देखा, देखकर अवरोधको कहा—

"क्या तुमने श्रमण आनन्दका दर्शन किया ?" "दर्शन किया देव ! हमने...आनन्दका।"

"क्या तुमने श्रमण आनन्दको कुछ दिया ?" "देव ! हमने पाँच सौ...चादरें दीं।"

राजा उदयन हैरान होता था, खिन्न होता था=विपाचित होता था—'क्यों श्रमण आनन्दने इतने अधिक चीवरोंको लिया, क्या श्रमण आनन्द कपड़ेका व्यापार (=दुस्स-वणिज्ज) करेगा, या दूकान खोलेगा।' तब राजा उदयन जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गया, जाकर आयुष्मान् आनन्दके साथ सम्मोदन कर...एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे राजा उदयनने आयुष्मान् आनन्दको यह कहा—

"हे आनन्द ! क्या हमारा अवरोध यहाँ आया था ?" "आया था महाराज ! यहाँ तेरा अवरोध।"

"क्या आप आनन्दको कुछ दिया ?" "महाराज ! पाँच सौ चादरें दीं।"

"आप आनन्द ! इतने अधिक चीवर क्या करेंगे ?" "महाराज ! जो फटे चीवरवाले भिक्षु हैं, उन्हें बाँटेंगे।"

"और...जो वह पुराने चीवर हैं, उन्हें क्या करेंगे ?" "...महाराज ! उनकी चादर बनायेंगे।"

"...जो वह पुराने बिछौनेकी चादरें हैं, उन्हें क्या करेंगे ?" "...उनसे गद्देका गिलाफ बनायेंगे।"

"...जो वह पुराने गद्देके गिलाफ हैं, उन्हें क्या करेंगे ?" "...उनका महाराज ! फर्श बनावेंगे।"

"...जो वह पुराने फर्श हैं, उनका क्या करेंगे ?" "...उनका महाराज ! पायंदाज बनावेंगे।"

"...जो वह पुराने पयंदाज़ हैं, उनका क्या करेंगे ?" "...उनका महाराज ! झाड़न बनावेंगे।"

"...जो वह पुराने झाड़न हैं० ?" "...उनको...कूटकर, कीचड़के साथ मर्दनकर पलस्तर करेंगे।"

तब राजा उदयनने—'यह सभी शाक्यपुत्रीय श्रमण कार्यकारणसे काम करते हैं, व्यर्थ नहीं जाने देते'—(कह), आयुष्मान् आनन्दको पाँच-सौ और चादरें प्रदान कीं। यह आयुष्मान् आनन्दको एक हजार चीवरोंकी प्रथम चीवर-भिक्षा प्राप्त हुई।

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ घोषितराम था, वहाँ गये, जाकर बिछे आसनपर बैठे। आयुष्मान् छन्न जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गये, जाकर आयुष्मान् आनन्दको अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् छन्नको आयुष्मान् आनन्दने कहा—

"आवुस ! छन्न ! संघने तुम्हें, ब्रह्मदंडकी आज्ञा दी है।"

"क्या है भन्ते आनन्द ! ब्रह्मदंड ?"

"तुम आवुस छन्न ! भिक्षुओंको जो चाहना सो बोलना, किंतु भिक्षुओंको तुमसे नहीं बोलना होगा, नहीं अनुशासन करना होगा।"

"भन्ते आनन्द ! मैं तो इतनेसे मारा गया, जो कि भिक्षुओंको मुझसे नहीं बोलना होगा०।"—(कह छन्न) वहीं मूर्छित होकर गिर पड़े। तब आयुष्मान् छन्न ब्रह्मदण्डसे पीड़ित, पीड़ित जुगुप्सित हो, एकाकी, निस्संग, अप्रमत्त, उद्योगी, आत्मसंयमी हो, विहार करते जल्दी ही जिसके लिये कुलपुत्र...प्रव्रजित होते हैं; उस सर्वोत्तम ब्रह्मचर्य-फलको इसी जन्ममें स्वयं जानकर=साक्षात्कारकर=प्राप्तकर विहरने लगे, और आयुष्मान् छन्न अर्हतोंमें एक हुये।"

तब आयुष्मान् छन्न अर्हत्-पदको प्राप्त हो जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गये, जाकर आयुष्मान् आनन्दको बोले—

"भन्ते आनन्द ! अब मुझसे ब्रह्मदंड हटा लें।"

"आवुस छन्न ! जिस समय तूने अर्हत्व साक्षात्कार किया, उसी समय ब्रह्म-दंड हट गया।"

इस विनय-संगीतिमें पाँचसौ भिक्षु—न कम न बेशी थे। इसलिये यह विनय-संगीति 'पंच-शतिका' कही जाती है।

\+ + + +

'सुत्तपिटकमें पाँच निकाय हैं…—(१) दीघ-निकाय (२) मज्झिम-निकाय, (३) संयुत्त-निकाय (४) अंगुत्तर-निकाय, और (५) खुद्दक-निकाय।…। (१) दीघ-निकायमें ब्रह्मजाल आदि ३४ सूत्र और तीन वर्ग हैं।…। सूत्रोंके दीर्घ (= लम्बे) होनेके कारण… दीघ-निकाय कहा जाता है।…ऐसेही औरोंको भी समझना चाहिये।…। (२) मज्झिम-निकायमें मध्यम परिमाणके पंद्रह वर्ग और 'मूल-परियाय' आदि एकसौ तिरपन सूत्र हैं।…। (३) संयुत्त निकायमें 'देवता-संयुत्त' आदि (५४ संयुत्त) और 'ओघ-तरण' आदि सात हजार सात सौ बासठ सूत्र हैं…। (४)… अंगुत्तर निकायमें (ग्यारह निपात और) 'चित्त-परियादान' आदि नौहजार पाँचसौ सत्तावन सूत्र हैं।…।

दीघ-निकाय आदि चार निकायोंको छोड़कर बाकी बुद्ध-वचन खुद्दक (निकाय) कहा जाता है।…। यह सभी बुद्ध-वचन हैं—

बुद्धसे ८२ हजार (श्लोक-प्रमाण वचन) ग्रहीत हुये हैं, और भिक्षुओंसे दो हजार। यह चौरासीहजार मेरे धर्म हैं; जिन्हें कि मैंने प्रवर्तित किया।…।

× × ×

द्वितीय-संगीति (ई. पू. ३८३)

'उस समय भगवान्के परिनिर्वाणके सौ वर्ष बीतनेपर, वैशाली-निवासी वज्जि-पुत्तक (= वृजि-पुत्र) भिक्षु दस वस्तुओंका प्रचार करते थे—

"भिक्षुओ! (१) शृंगि-लवण-कल्प विहित है। (२) द्वि-अंगुल-कल्प०। (३) ग्रामान्तर-कल्प०। (४) आवास-कल्प०। (५) अनुमति-कल्प०। (६) आचीर्ण-कल्प०। (७) अमथित-कल्प०। (८) जलोगीपान०। (९) अदशक०। (१०) जातरूप-रजत०।"

उस समय आयुष्मान् यश काकण्डक-पुत्र वज्जीमें चारिका करते जहाँ वैशाली थी, वहाँ पहुँचे। आयुष्मान् यश० वैशालीमें महावनकी कूटागार-शालामें विहार करते थे। उस समय वैशालीके वज्जि-पुत्तक भिक्षु उपोसथके दिन काँसेकी थालीको पानीसे भर भिक्षु-संघके बीचमें रखकर, आने जाने वाले वैशालीके उपासकोंको कहते थे—

"आवुसो! संघको कार्षापण दो, अधेला (= अर्द्ध-कार्षापण) भी, पावली (= पाद कार्षापण) दो, मासक (= मासक रूप) भी दो। संघको परिष्कार (= सामान) का काम होगा।"

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् यश० ने वैशालीके उपासकोंको कहा—"मत आवुसो! संघको कार्षापण (= पैसा) ० दो, शाक्यपुत्रीय श्रमणोंको जातरूप (= सोना) रजत (= चाँदी) विहित नहीं है, शाक्यपुत्रीय श्रमण जातरूप रजत उपभोग नहीं करते, जातरूप-रजत स्वीकार नहीं करते। शाक्यपुत्रीय श्रमण जातरूप-रजत त्यागे हुये हैं।…। आयु-

१. पाराजिका (समन्तपासादिका विनय अट्ठकथा) बाहिरनिदान।
२. चुल्लवग्ग (विनय पिटक) १२।

ष्मान् यश०के ऐसा कहनेपर भी ०उपासकोंने संघको कार्षापण० दिया ही। तब वैशालिक वज्जि-पुत्तक भिक्षुओंने आयुष्मान् यश काकण्ड-पुत्तको कहा—

"आवुस यश ! यह हिरण्यका भाग तुम्हारा है।"

"आवुसो ! मेरा हिरण्यका भाग नहीं, मैं हिरण्यको उपभोग नहीं करता।"

तब वैशालिक वज्जि-पुत्तक भिक्षुओंने...'यह यश काकण्डपुत्त, श्रद्धालु प्रसन्न उपासकोंको निन्दता है, फटकारता है, अ-प्रसन्न करता है; अच्छा हम इसका प्रतिसारणीय कर्म करें।' उन्होंने उनका प्रतिसारणीय कर्म किया। तब आयुष्मान् यश० ने वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओंको कहा—

"आवुसो ! भगवान्ने आज्ञा दी है कि प्रतिसारणीय कर्म किये गये भिक्षुको, अनुदूत देना चाहिये। आवुसो ! मुझे (एक) अनुदूत भिक्षु दो।"

तब वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओंने सलाहकर यश०को एक अनुदूत (=साथ जानेवाला) दिया। तब आयुष्मान् यश०ने अनुदूत भिक्षुके साथ वैशालीमें प्रविष्ट हो, वैशालिक उपासकोंको कहा—

"आयुष्मानो ! मैं श्रद्धालु, प्रसन्न, उपासकोंको निन्दता हूँ, फटकारता हूँ, अप्रसन्न करता हूँ, जो कि मैं अधर्मको अधर्म कहता हूँ, धर्मको धर्म कहता हूँ, अविनयको अविनय कहता हूँ, विनयको विनय कहता हूँ ? आवुसो ! एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ-पिंडकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। वहाँ आवुसो ! भगवान्ने भिक्षुओंको आमंत्रित, किया—'भिक्षुओ ! चंद्र-सूर्यको चार उपक्लेश (= मल) हैं, जिन उपक्लेशोंसे उपक्लिष्ट (मलिन) होनेपर, चंद्र-सूर्य न तपते हैं = न भासते हैं, न प्रकाशते हैं। कौनसे चार ? भिक्षुओ ! बादल, चंद्र-सूर्यका उपक्लेश है, जिस उपक्लेशसे०। भिक्षुओ ! महिका (= कुहरा)०। धूमरज (=धूमकण)०। राहु असुरेन्द्र (=ग्रहण)०। इसी प्रकार भिक्षुओ ! श्रमण ब्राह्मणके भी चार उपक्लेश हैं, जिन उपक्लेशोंसे उपक्लिष्ट हो श्रमण ब्राह्मण नहीं तपते०। कौनसे चार ? भिक्षुओ ! (१) कोई कोई श्रमण ब्राह्मण सुरा पीते हैं, मेरय (=कच्ची शराब) पीते हैं, सुरा-मेरय-पानसे विरत नहीं होते। भिक्षुओ ! यह प्रथम० उपक्लेश है०। (२) भिक्षुओ ! कोई कोई श्रमण ब्राह्मण मैथुनधर्म सेवन करते हैं, मैथुन-धर्मसे विरत नहीं होते। ०यह दूसरा०। (३) ०जातरूप-रजत उपभोग करते हैं, जातरूप-रजतके ग्रहणसे विरत नहीं होते०। (४) ०मिथ्या आजीविका करते हैं, मिथ्या-आजीवसे विरत नहीं होते०। भिक्षुओ ! यह चार श्रमणोंके उपक्लेश हैं०।'''।

"ऐसा कहनेवाला मैं श्रद्धालु, प्रसन्न आयुष्मान उपासकोंको निन्दता हूँ० ? सो मैं अधर्मको अधर्म कहता हूँ०। एक समय आवुसो ! भगवान् राजगृहमें कलन्दक-निवापके वेणुवनमें विहार करते थे। उस समय आवुसो ! राजान्तःपुर (=राज-दर्बार)में राज-सभामें एकत्रित हुओंमें यह बात उठी—'शाक्यपुत्रीय श्रमण सोना-चाँदी (=जातरूप-रजत) उपभोग करते हैं, स्वीकार करते हैं।' उस समय मणिचूडक ग्रामणी उस परिषद्में बैठा था। तब मणिचूडक ग्रामणीने उस परिषद्को कहा—'मत आर्यो ! ऐसा कहो, शाक्यपुत्रीय श्रमणों को जातरूप-रजित नहीं कल्पित (=विहित, हलाल) है,०। यह मणि-सुवर्ण त्यागे हुए हैं, शाक्यपुत्रीय श्रमण, जातरूप रजत छोड़े हुए हैं०।' आवुसो ! मणिचूडक ग्रामणी उस परि-

परिषद्को समझा सका। तब आवुसो! मणिचूडक ग्रामणी उस परिषद्को समझाकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर''' एक ओर बैठ''' भगवान्‌से यह बोला—

'भन्ते! राजान्तःपुरमें राजसभामें० बात उठी ०। मैं उस परिषद्‌को समझा सका। क्या भन्ते! ऐसा कहते हुये मैं भगवान्‌के कथितका ही कहनेवाला होता हूँ? असत्यसे भगवान् का अभ्याख्यान (=निन्दा) तो नहीं करता? धर्मानुसार कथित कोई धर्म-वाद निन्दित तो नहीं होता?'

"निश्चय ग्रामणी! ऐसा कहनेसे तू मेरे कथितका कहनेवाला है ०, कोई धर्मवाद निन्दित नहीं होता। ग्रामणी! शाक्यपुत्रीय श्रमणोंको जातरूप-रजत विहित नहीं है ०। ग्रामणी! जिसको जातरूप-रजत कल्पित (विहित) है, उसे पाँच काम-गुणभी कल्पित हैं, जिसको पाँच काम-गुण (=काम-भोग) कल्पित हैं, ग्रामणी! तुम उसको बिल्कुलही अ-श्रमण-धर्मी, अ-शाक्यपुत्रीय-धर्मी समझना। और मैं ग्रामणी! ऐसा कहता हूँ, तिनका चाहनेवाले (=तृणार्थी) को तृण खोजना होता है, शकटार्थीको शकट ०, पुरुषार्थीको पुरुष ०। किन्तु ग्रामणी! किसी प्रकारभी मैं जातरूप-रजतको स्वादितव्य, पर्येषितव्य (=अन्वेषणीय) नहीं मानता।' ऐसा कहनेवाला मैं ० आयुष्मान् उपासकोंको निन्दता हूँ ०।"

"आवुसो! एक समय उसी राजगृहमें भगवान्‌ने आयुष्मान उपनन्द शाक्यपुत्रको लेकर, जातरूप-रजतका निषेध किया, और शिक्षापद (=भिक्षु-नियम) बनाया। ऐसा कहनेवाला मैं ०।"

ऐसा कहनेपर वैशालीके उपासकोंने आयुष्मान् यश काकंडपुत्रको कहा—

"भन्ते! एक आर्य यश० ही शाक्यपुत्रीय श्रमण हैं, यह सभी, अ-श्रमण हैं, अशाक्य-पुत्रीय हैं। आर्य यश ० वैशालीमें वास करें। हम आर्य यश०के चीवर, पिंडपात, शयनासन ग्लान-प्रत्यय भैषज्य परिष्कारोंका प्रबन्ध करेंगे।"

तब आयुष्मान् यश० वैशालीके उपासकोंको समझाकर, अनुदूत भिक्षुके साथ आराममें गये। तब वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओंने अनुदूत भिक्षुको पूछा—

"आवुस! क्या यश काकण्डपुत्तने वैशालिक उपासकोंसे क्षमा माँगी?"

"आवुसो! उपासकोंने हमारी निन्दा की—एक आर्य यश० ही श्रमण हैं, शाक्य-पुत्रीय हैं, हम सभी अश्रमण, अशाक्य-पुत्रीय बना दिये गये।"

तब वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओंने (विचारा)—'आवुसो! यह यश काकण्डपुत्त हमारी असम्मत (बात) को गृहस्थोंमें प्रकाशित करता है; अच्छा तो हम इसका उत्क्षेपणीय कर्म करें।' वह उसका उत्क्षेपणीय-कर्म करनेके लिये एकत्रित हुये। तब आयुष्मान् यश आकाशमें होकर, कौशाम्बी जा खड़े हुये।

तब आयुष्मान् यश काकण्ड-पुत्तने पावावासी और अवन्ती-दक्षिणापथवासी भिक्षुओंके पास दूत भेजा—'आयुष्मानो! आओ, इस झगड़ेको लिओ, सामने अधर्म प्रकट हो रहा है, धर्म हटाया जा रहा है, अविनय प्रकट हो रहा है०, ०'

1, देखो पृष्ठ ५०६ (I)।

उस समय आयुष्मान् संभूत साणवासी अहोगंग-पर्वतपर वास करते थे। तब आयुष्मान् यश० जहाँ अहोगंग-पर्वत था, जहाँ आ०संभूत थे, वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् संभूत साणवासीको अभिवादनकर···एक ओर बैठ आयुष्मान् संभूत साणवासीको बोले—

"भन्ते! यह वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षु वैशालीमें दश वस्तुओंका प्रचार कर रहे हैं०। अच्छा हो भन्ते! हम इस झगड़े (=अधिकरण)को मिटावें०।"

"अच्छा आवुस!"···

तब साठ पावावासी भिक्षु—सभी आरण्यक, सभी पिंडपातिक, सभी पाँसुकूलिक, सभी त्रिचीवरिक, सभी अर्हत्, अहोगंग-पर्वत पर एकत्रित हुये। अवन्ती-दक्षिणापथके अट्ठासी भिक्षु—कोई आरण्यक, कोई पिंडपातिक, कोई पांसुकूलिक, कोई त्रिचीवरिक, सभी अर्हत्, अहोगंग-पर्वतपर एकत्रित हुये। तब मंत्रणा करते हुये स्थविर भिक्षुओंको यह हुआ—'यह झगड़ा (=अधिकरण) कठिन और भारी है; हम कैसे (ऐसा) पक्ष (=सहायक) पावें, जिससे कि हम इस अधिकरणमें अधिक बलवान् होवें।

उस समय बहुश्रुत, आगतागम, धर्मधर, विनयधर, मात्रिकाधर (=अभिधर्मज्ञ), पंडित, व्यक्त, मेधावी, लज्जी, कौकृत्यक (=संकोची), शिक्षाकाम आयुष्मान् रेवत [1]सोरेय्यमें वास करते थे,—'यदि हम आयुष्मान् रेवतको पक्षमें पावें, तो हम···इस अधिकरणमें अधिक बलवान् होंगे।' आयुष्मान् रेवतने अमानुष, विशुद्ध, दिव्य श्रोत्र-धातुसे स्थविर भिक्षुओंकी मंत्रणा सुनली। सुनकर उन्हें ऐसा हुआ—'यह अधिकरण कठिन और भारी है, मेरे लिये अच्छा नहीं कि मैं ऐसे अधिकरण (=विवाद) में न फँसूँ; अब यह भिक्षु आवेंगे, उनसे घिरा मैं सुखसे नहीं जासकूँगा, क्यों न मैं आगे ही जाऊँ।' तब आयुष्मान् रेवत सोरेय्यसे संकाश्य गये। स्थविर भिक्षुओंने सोरेय्य जाकर पूछा—'आयुष्मान् रेवत कहाँ है?' उन्होंने कहा—'आयुष्मान् रेवत संकाश्य गये।' तब आयुष्मान् रेवत संकाश्यसे कन्नकुज्ज (=कान्यकुब्ज, कन्नौज) गये। स्थविर भिक्षुओंने संकाश्य जाकर पूछा—'आयुष्मान् रेवत कहाँ हैं?' उन्होंने कहा—'आयुष्मान् रेवत कान्यकुब्ज गये।' आयुष्मान् रेवत कान्यकुब्जसे उदुम्बर गये।०। ०उदुम्बरसे अग्गलपुर गये।०। ०अग्गलपुरसे [2]सहजाति गये।०। तब स्थविर भिक्षु आयुष्मान् रेवतसे सहजातिमें जा मिले।

आयुष्मान् संभूत साणवासीने आयुष्मान् यश०को कहा—"आवुस यश! यह आयुष्मान् रेवत बहुश्रुत० शिक्षाकामी हैं। यदि हम आयुष्मान् रेवतको प्रश्न पूछें, तो आयुष्मान् रेवत एकही प्रश्नमें सारी रात बिता सकते हैं। अब आयुष्मान् रेवत अन्तेवासी स्वरभाणक (=स्वरसहित सूत्रोंको पढ़नेवाले) भिक्षुको (सस्वर पाठके लिये) कहेंगे। स्वर-भणन समाप्त होनेपर, आयुष्मान् रेवतके पास जाकर इन दश वस्तुओंको पूछो।"

"अच्छा भन्ते!"

तब आयुष्मान् रेवतने अन्तेवासी (=शिष्य) स्वरभाणक भिक्षुको आज्ञा (=अध्येषणा) दी। तब आयुष्मान् यश उस भिक्षुके स्वरभाणन समाप्त होने पर, जहाँ आयुष्मान्

१. सोरों (जिला, एटा)। २. भीटा, जि. इलाहाबाद।

रेवत थे, वहाँ गये। जाकर० रेवतको अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठ आयुष्मान् यश० ने आयुष्मान् रेवतको कहा—

(१) "भन्ते ! शृंगि-लवण-कल्प विहित है ?"

"क्या है आवुस ! यह शृंगि-लवण कल्प ?"

"भन्ते ! (क्या इस विचारसे) सींगमें नमक रखकर पास रखना जा सकता है, कि जहाँ अलोना होगा, लेकर खायेंगे ? क्या यह विहित है ?" "आवुस ! नहीं विहित है"।

(२) "भन्ते ! द्व्यंगुल-कल्प विहित है ?" "क्या है आवुस ! द्व्यंगुल-कल्प ?"

"भन्ते ! (दोपहरको) दो अंगुल छायाके बीतकर भी विकालमें भोजन करना क्या विहित है ?" "आवुस नहीं विहित है।"

(३) "भन्ते ! क्या ग्रामान्तर-कल्प विहित है ?" "क्या है आवुस ! ग्रामान्तर-कल्प ?"

"भन्ते ! भोजन कर चुकनेपर, छक लेनेपर गाँवके भीतर भोजन करने जाया जा सकता है ?" "आवुस ! नहीं…है।"

(४) "भन्ते ! क्या आवास कल्प विहित है ?" "क्या है आवुस ! आवास-कल्प ?"
"भन्ते ! 'एक सीमाके भीतर बहुतसे आवासोंमें उपोसथको करना' क्या विहित है ?"
"आवुस ! नहीं विहित है।"

(५) "भन्ते ! क्या अनुमति-कल्प विहित है ?" "क्या है आवुस ! अनुमति-कल्प ?"
"भन्ते ! (एक) वर्गके संघका (विनय-) कर्म करना, 'यह ख्याल करके, कि जो भिक्षु (पीछे) आयेंगे, उनको स्वीकृति दे देंगे, क्या यह विहित है ?"
"आवुस ! नहीं विहित है।"

(६) "भन्ते ! क्या आचीर्ण-कल्प विहित है ?" "क्या है आवुस ! आचीर्ण-कल्प ?"
"भन्ते ! 'यह मेरे उपाध्यायने आचरण किया है, यह मेरे आचार्यने आचरण किया है' (ऐसा समझकर) किसी बातका आचरण करना, क्या विहित है ?"
"आवुस ! कोई कोई आचीर्ण-कल्प विहित है, कोई कोई" अविहित है।"

(७) "भन्ते ! अमथित-कल्प विहित है ? "क्या है आवुस ! अमथित-कल्प ?"
"भन्ते ! जो दूध दूध-पनको छोड़ चुका है, दहीपनको नहीं प्राप्त हुआ है, उसे भोजन कर चुकनेपर, छक लेनेपर, अधिक पीना क्या विहित है ?" "आवुस ! नहीं विहित है।"

(८) "भन्ते ! जलोगी-पान विहित है ?" "क्या है आवुस ! जलोगी ?"
"भन्ते ! जो सुरा अभी सुराई नहीं गई है, जो सुरापनको अभी प्राप्त नहीं हुई है; उसका पीना क्या विहित है ?" "आवुस ! विहित नहीं है।"

(९) "भन्ते ! अदशक निषीदन (=बिना किनारीका आसन) विहित है ?"
"आवुस ! नहीं विहित है।"

(१०) "भन्ते ! जातरूप-रजत (=सोना चाँदी) विहित है ?" "आवुस ! नहीं विहित है।"

"भन्ते वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षु वैशालीमें इन दस वस्तुओंका प्रचार करते हैं। अच्छा हो भन्ते ! इस दस अधिकरणको मिटावें०।

"अच्छा आवुस !" (कह) आयुष्मान् रेवतने आयुष्मान् यश०को उत्तर दिया ।

वैशालीके वज्जिपुत्तक भिक्षुओंने सुना, यश काकण्डपुत्त, इस अधिकरणको मिटाने के लिये पक्ष ढूँढ रहा है । तब वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओंको यह हुआ—'यह अधिकरण कठिन है, भारी है; कैसा पक्ष पावें, कि इस अधिकरणमें हम अधिक बलवान् हों ।' तब वैशालिक-वज्जिपुत्तक भिक्षुओंको यह हुआ—'यह आयुष्मान् रेवत बहुश्रुत० हैं; यदि हम आयुष्मान् रेवतको पक्ष (में) पावें, तो हम इस अधिकरणमें अधिक बलवान् हो सकेंगे ।

तब वैशालीवासी वज्जिपुत्तक भिक्षुओंने श्रमणोंके योग्य बहुत सा परिष्कार (=सामान) सम्पादित किया—पात्र भी, चीवर भी, निषीदन (=आसन, बिछौना) भी, सूचीघर (=सूईका घर) भी, कायबंधन (=कमर-बंद) भी, परिस्रावण (=जलछक्का) भी, धर्मकरक (=गड़वा) भी । तब ०वज्जिपुत्तक भिक्षु उन श्रमण-योग्य परिष्कारोंको लेकर नावसे सहजातिको दौड़े । नावसे उतरकर एक वृक्षके नीचे भोजनसे निपटने लगे ।

तब एकान्तमें स्थित, ध्यानमें बैठे आयुष्मान् साढ़के चित्तमें इस प्रकारका वितर्क उत्पन्न हुआ—'कौन भिक्षु धर्मवादी हैं ? पावेयक (=पश्चि. वाले) या प्राचीनक (=पूर्व-वाले) ?' तब धर्म और विनयकी प्रत्यवेक्षासे आयुष्मान् साढ़को ऐसा हुआ—

"प्राचीनक भिक्षु अधर्मवादी हैं, पावेयक भिक्षु धर्मवादी हैं ।"...।

तब वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षु उस श्रमण-परिष्कारको लेकर, जहाँ आयुष्मान् रेवत थे, वहाँ...जाकर आयुष्मान् रेवतको बोले—

"भन्ते ! स्थविर श्रमण-परिष्कार ग्रहण करें—पात्र भी० ।"

"नहीं आवुसो ! मेरे पात्र-चीवर पूरे हैं ।"...

उस समय बीस वर्षका उत्तर नामक भिक्षु, आयुष्मान् रेवतका उपस्थाक (=सेवक) था । तब ०वज्जिपुत्तक भिक्षु, जहाँ आयुष्मान् उत्तर थे, वहाँ गये, जाकर आयुष्मान् उत्तरको बोले—

"आयुष्मान् उत्तर श्रमण-परिष्कार ग्रहण करें—पात्र भी० ।"

"नहीं आवुसो ! मेरे पात्रचीवर पूरे हैं ।"

"आवुस उत्तर ! लोग भगवान्‌के पास श्रमण-परिष्कार ले आया करते थे, यदि भगवान् ग्रहण करते थे, तो उससे वह सन्तुष्ट होते थे; यदि भगवान् नहीं ग्रहण करते थे, तो आयुष्मान् आनन्दके पास ले जाते थे—'भन्ते ! स्थविर श्रमण-परिष्कार ग्रहण करें, जैसे भगवान्‌ने ग्रहण किया, वैसा ही (आपका ग्रहण) होगा ।' आयुष्मान् उत्तर श्रमण-परिष्कार ग्रहण करें, वह स्थविर (=रेवत) के ग्रहण करने जैसा ही होगा ।"

तब आयुष्मान् उत्तरने ०वज्जिपुत्तक भिक्षुओंसे दबाये जानेपर एक चीवर ग्रहण किया—

"कहो, आवुसो ! क्या काम है, कहो ?"

"आयुष्मान् उत्तर स्थविरको इतना ही कहें—'भन्ते ! स्थविर (आप) संघके बीचमें इतना ही कह दें—प्राचीन (=पूर्वीय) देशों (=जनपदों) में बुद्ध भगवान् उत्पन्न

होते हैं, प्राचीनक (=पूर्वीय) भिक्षु धर्मवादी हैं, पावेयक भिक्षु अधर्मवादी हैं।"

"अच्छा आवुसो !" कह... आयुष्मान् उत्तर जहाँ आयुष्मान् रेवत थे, वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् रेवतको बोले—

"भन्ते ! (आप) स्थविर, संघके बीचमें इतना ही कह दें—प्राचीन देशोंमें बुद्ध भगवान् उत्पन्न होते हैं, प्राचीनक भिक्षु धर्मवादी हैं, पावेयक भिक्षु अधर्म-वादी हैं।"

"भिक्षु ! तू मुझे अधर्ममें नियोजित कर रहा है" (कहकर) स्थविरने आयुष्मान् उत्तरको हटा दिया। तब *वज्जिपुत्तकोंने आयुष्मान् उत्तरको कहा—

"आवुस उत्तर ! स्थविरने क्या कहा ?"

"आवुस ! हमने बुरा किया। 'भिक्षु ! तू मुझे अधर्ममें नियोजित कर रहा है'—(कहकर) स्थविरने मुझे हटा दिया।"

"आवुस ! क्या तुम वृद्ध, बीस-वर्ष (के भिक्षु) नहीं हो ?" "हूँ आवुस !"

"तो हम (तुम्हें अपना) बड़ा मानकर ग्रहण करते हैं।"

उस अधिकरणका निर्णय करनेकी इच्छासे संघ एकत्रित हुआ। तब आयुष्मान् रेवतने संघको ज्ञापित किया—

"आवुस ! संघ मुझे सुने—यदि हम इस अधिकरण (=विवाद) को यहाँ शमन करेंगे, तो शायद मूलदायक (=प्रतिवादी) भिक्षु कर्म (=न्याय) के लिये उत्कोटन (=अमान्य) करेंगे। यदि संघको पसन्द हो, तो जहाँ यह विवाद उत्पन्न हुआ है, संघ वहीं इस विवादको शांत करे।" तब स्थविर भिक्षु उस विवादके निर्णयके लिये वैशाली गये।

उस समय पृथिवीपर आ० आनन्दके शिष्य सर्वकामी नामक संघ-स्थविर, उप-संपदा (=भिक्षुदीक्षा) होकर एकसौ बीस वर्षके, वैशालीमें वास करते थे। तब आयुष्मान् रेवतने आ० संभूत साणवासी (=श्मशानवासी, सन-वस्त्र धारी) को कहा—

"आवुस ! जिस विहारमें सर्वकामी स्थविर रहते हैं, मैं वहाँ जाऊँगा, सो तुम समय पर आयुष्मान् सर्वकामीके पास आकर इन दस वस्तुओंको पूछना।" "अच्छा, भन्ते !"

तब आयुष्मान् रेवत, जिस विहारमें आयुष्मान् सर्वकामी रहते थे; उस विहारमें गये। कोठरी (=गर्भ) के भीतर आयुष्मान् सर्वकामीका आसन बिछा हुआ था, कोठरीके बाहर आयुष्मान् रेवतका। तब आयुष्मान् रेवत—'यह स्थविर वृद्ध (होकर भी) नहीं लेट रहे हैं'—(सोचकर) नहीं लेटे। तब आयुष्मान् सर्वकामीने रातके प्रत्यूष (=भिनसार) के समय आयुष्मान् रेवतको यह कहा—

"तुम आजकल किस...विहारसे अधिक विहरते हो ?"

"भन्ते ! मैत्री विहारसे मैं इस समय अधिक विहरता हूँ।"

"कुल्लक विहारसे तुम...इस समय अधिक विहरते हो, यह जो मैत्री है, यही कुल्लक विहार है।"

"भन्ते ! पहिले गृहस्थ होनेके समय भी मैं मैत्री (भावना) करता था, इसलिये

अब भी मैं अधिकतर मैत्री विहारसे विहरता हूँ; यद्यपि मुझे अर्हत्-पद पाये चिर हुआ। भन्ते! स्थविर आजकल किस विहारसे अधिक विहरते हैं।?"

"भुम्म! मैं इस समय अधिकतर शून्यता विहारसे विहरता हूँ।"

"भन्ते! इस समय स्थविर अधिकतर महापुरुष-विहारसे विहरते हैं। भन्ते! यह 'शून्यता' महापुरुष-विहार है।"

"भुम्म! पहिले गृही होनेके समय मैं शून्यता विहारसे विहरा करता था, इसलिये इस समय शून्यता विहारसेही अधिक विहरता हूँ; यद्यपि मुझे अर्हत्त्व पाये चिर हुआ।"

(जब) इस प्रकार स्थविरोंकी आपसमें बात हो रही थी, उस समय आयुष्मान् साणवासी पहुँच गये। तब आयुष्मान् संभूत साणवासी जहाँ आयुष्मान् सर्वकामी थे, वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् सर्वकामीको अभिवादनकर⋯एक ओर बैठ⋯यह बोले—

"भन्ते! यह वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षु वैशालीमें दश वस्तुका प्रचार कर रहे हैं०। स्थविरने (अपने) उपाध्याय (= आनन्द)के चरणमें बहुत धर्म और विनय ग्रहण किया है। स्थविरको धर्म और विनय देखकर कैसा मालूम होता है? कौन धर्मवादी हैं, प्राचीनक भिक्षु, या पावेयक?"

"तूने भी आवुस! उपाध्यायके चरणमें बहुत धर्म और विनय सीखा है। तुझे आवुस! धर्म और विनयको देखकर कैसा मालूम होता है? कौन धर्मवादी हैं, प्राचीनक भिक्षु या पावेयक?"

"भन्ते! मुझे धर्म और विनयको अवलोकन करनेसे ऐसा होता है—'प्राचीनक भिक्षु अधर्मवादी हैं, पावेयक, भिक्षु धर्मवादी हैं।⋯।"

"मुझे भी आवुस! ०ऐसा होता है—प्राचीनक भिक्षु अधर्मवादी हैं, पावेयक धर्मवादी।"⋯।

तब उस विवादके निर्णय करनेके लिये सब एकत्रित हुए। उस अधिकरणके विनिश्चय (=फैसला) करते समय अनर्गल बकवाद उत्पन्न होते थे, एक भी कथनका अर्थ मालूम नहीं पड़ता था। तब आयुष्मान रेवतने संघको ज्ञापित किया—

"भन्ते! संघ मुझे सुने—हमारे इस विवादके निर्णय करते समय अनर्गल बकवाद उत्पन्न होते हैं०। यदि संघको पसन्द हो, तो संघ इस अधिकरणको उद्वाहिका (=कमीटी) से शांत करे।"

चार प्राचीनक भिक्षु और चार पावेयक भिक्षु चुने गये। प्राचीनक भिक्षुओंमें आयुष्मान् सर्वकामी, आयुष्मान् साढ़, आयुष्मान् क्षुद्र शोभित (खुज्ज सोभित) और आयुष्मान् वार्षभ-ग्रामिक (=वासभगामिक)। पावेयक भिक्षुओंमें आयुष्मान् रेवत, आयुष्मान् संभूत साणवासी, आयुष्मान् यश काकंडपुत्त और आयुष्मान् सुमन। तब आयुष्मान् रेवतने संघको ज्ञापित किया—

"भन्ते! संघ मुझे सुने—हमारे इस विवादके निर्णय करते समय अनर्गल बकवाद उत्पन्न होते हैं०। यदि संघको पसन्द हो, तो संघ चार प्राचीनक⋯(और) चार पावेयक भिक्षुओंकी उद्वाहिका इस विवादको शमन करनेके लिये माने।—यह ज्ञप्ति है।—'भन्ते!

संघ मुझे सुने—हमारे इस विवादके निर्णय करते समय० । संघ चार प्राचीनक और चार पावेयक भिक्षुओंकी उद्वाहिकासे इस विवादको शांत करना मानता है । जिस आयुष्मानको चार प्राचीनक०, चार पावेयक भिक्षुओंकी उद्वाहिकासे इस विवादका शांत करना पसन्द है, वह चुप रहे, जिसको नहीं पसन्द है वह बोले ।"' । संघने मान लिया, संघको पसन्द है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं समझता हूँ ।"

उस समय अजित नामक दसवर्षीय[1] भिक्षु-संघका प्रातिमोक्षोद्देशक (=उपोसथके दिन भिक्षु नियमोंकी आवृत्ति करनेवाला) था । संघने आयुष्मान् अजितको ही स्थविर भिक्षुओं का आसन-विज्ञापक (=आसन बिछानेवाला) स्वीकार किया । तब स्थविर भिक्षुओं को यह हुआ—'यह वालुकाराम रमणीय शब्दरहित=घोषरहित है, क्यों न हम वालुकाराममें (ही) इस अधिकरणको शांत करें ।' तब स्थविर भिक्षु उस विवादके निर्णय करनेके लिये वालुकाराम गये । आयुष्मान् रेवतने संघको ज्ञापित किया—

"भन्ते संघ ! मुझे सुने—यदि संघको पसन्द हो, तो मैं आयुष्मान् सर्वकामीको विनय पूछूँ ।"

आयुष्मान् सर्वकामीने संघको ज्ञापित किया—

"आवुस संघ ! मुझे सुने—यदि संघको पसन्द हो, तो मैं आयुष्मान् रेवतद्वारा पूछे विनयको कहूँ ।"

आयुष्मान् रेवतने आयुष्मान् सर्वकामीको कहा—

(१) "भन्ते ! शृंगि-लवण-कल्प विहित है ?" "आवुस ! शृंगि-लवण-कल्प क्या है ?" "भन्ते ! सींगमें० ।"

"आवुस ! विहित नहीं है ।"

"कहाँ निषेध किया है ?" "श्रावस्तीमें, 'सुत्त-विभङ्ग' में ।"

"क्या आपत्ति (=दोष) होती है ?"

"संनिधिकारक (=संग्रहीत वस्तु) के भोजन करनेमें 'प्रायश्चित्तिक' ।"

"भन्ते ! संघ मुझे सुने—यह प्रथम वस्तु संघने निर्णय किया । इस प्रकार यह वस्तु धर्म-विरुद्ध, विनय-विरुद्ध, शास्ताके शासनसे बाहरकी है । यह प्रथम शलाकाको छोड़ता हूँ ।"

(२) "भन्ते ! द्व्यंगुल-कल्प विहित है ?" ०।० "आवुस ! नहीं विहित है ।"

"कहाँ निषिद्ध किया ?" "राजगृहमें, 'सुत्तविभङ्ग' में ।"

"क्या आपत्ति होती है ?" "विकाल भोजन-विषयक 'प्रायश्चित्तिक' की ।"

भन्ते संघ ! मुझे सुने—यह द्वितीय वस्तु संघने निर्णय किया ।०। यह दूसरी "शलाका छोड़ता हूँ ।"

(३) "भन्ते ! 'ग्रामान्तर-कल्प' विहित है ? ०।० "आवुस नहीं विहित है ।"

"कहाँ निषिद्ध किया ?" "श्रावस्तीमें 'सुत्तविभङ्ग' में ।"

"क्या आपत्ति होती है ?" "अतिरिक्त भोजन विषयक 'प्रायश्चित्तिक' ।"

"भन्ते ! संघ मुझे सुने—० ।"

---

१. उपसम्पदा होकर दसवर्षका । २. देखो पृष्ठ ५४१-४३ ।

(४) "भन्ते ! 'आवास-कल्प' विहित है ?"०।० "आवुस ! नहीं विहित है ।"
"कहाँ निषिद्ध किया ?" "राजगृहमें 'उपोसथ-संयुत्त' में ।"
"क्या आपत्ति होती है ?" "विनय (=भिक्षुनियम)के अतिक्रमणसे 'दुष्कृत' ।"
"भन्ते ! संघ मुझे सुने० ।"

(५) "भन्ते ! 'अनुमति-कल्प' विहित है ?"० । ० । "आवुस ! नहीं विहित है ।"
"कहाँ निषेध किया ?" "चाम्पेयक विनय-वस्तुमें ।"
"क्या आपत्ति होती है ?" "विनय-अतिक्रमणसे 'दुष्कृत' ।"
"भन्ते ! संघ मुझे सुने० ।"

(६) "भन्ते ! 'अचीर्ण-कल्प' विहित है ?' ०।०। "आवुस ! कोई कोई आचीर्ण-कल्प विहित है, कोई कोई नहीं ।"
"भन्ते ! संघ मुझे सुने० ।"

(७) "भन्ते ! 'अमथित कल्प' विहित है ?" ०।०। "आवुस ! नहीं विहित है ।"
"कहाँ निषेध किया ?" "श्रावस्तीमें, 'सुत्त-विभंग'में ।"
"क्या आपत्ति···है ?" "अतिरिक्त भोजन करनेमें 'प्रायश्चित्तिक' ।"
"भन्ते ! संघ मुझे सुने० ।"

(८) "भन्ते ! 'जलोगी-पान' विहित है ?" ० । ० । "आवुस ! नहीं विहित है ।"
"कहाँ निषेध किया ?" "कौशाम्बीमें, 'सुत्त-विभङ्ग'में ।"
'क्या आपत्ति होती है ?" "सुरा-मेरय पानमें 'प्रायश्चित्तिक' ।"
"भन्ते ! संघ मुझे सुने० ।"

(९) 'भन्ते ! 'अदसाक-निषीदन' (=बिना किनारीका बिछौना) विहित है ?"
'आवुस ! नहीं विहित है ।"
"कहाँ निषेध किया ?' "श्रावस्तीमें 'सुत्त-विभंगमें ।"
"क्या आपत्ति होती है ?' "छेदन करनेका 'प्रायश्चित्तिक' ।"
"भन्ते ! संघ मुझे सुने० ।"

(१०) "भन्ते ! 'जातरूप-रजत' (=सोना चाँदी) विहित है ?" "आवुस ! नहीं विहित है
"कहाँ निषेध किया ?' "राजगृहमें 'सुत्त-विभंग' में ।"
"क्या आपत्ति···है ?" "जात-रूप-रजत प्रतिग्रहण विषयक 'प्रायश्चित्तिक' ।"

'भन्ते ! संघ मुझे सुने—यह दसवीं वस्तु संघने निर्णय की । इस प्रकार यह वस्तु (=बात) धर्म-विरुद्ध, विनय-विरुद्ध, शास्ताके शासनसे बाहरकी हैं। यह दसवीं शलाका छोड़ता हूँ ।"

"भन्ते ! संघ मुझे सुने—यह दस वस्तु, संघने निर्णय की' । इस प्रकार यह वस्तु धर्म-विरुद्ध, नियम-विरुद्ध, शास्ताके शासनसे बाहरकी है ।"

(सर्वकामी)—"आवुस ! यह विवाद निहत हो गया, शांत, उपशांत, सु-उपशांत हो गया । आवुस ! उन भिक्षुओंकी जानकारीके लिये (महा-) संघके बीचमें भी मुझे इन दस वस्तुओंको पूछना ।"

"हे प्रव्रजित ! हमारे घर गये थे ?" "हाँ ब्राह्मण ! गया था"

"क्या कुछ मिला ?" "हाँ, ब्राह्मण ! मिला।"

उसने घरमें जाकर पूछा—"उस साधुको कुछ दिया ?"

"कुछ नहीं दिया।"

ब्राह्मण दूसरे दिन गृह-द्वार परही बैठा।··· स्थविर दूसरे दिन ब्राह्मणके गृहद्वारपर गये। ब्राह्मणने स्थविरको देखकर कहा—

"तुम हमारे घरमें बार बार आकर भी कुछ न पा, 'मिला है' बोले; (क्या) यह तुम्हारी बात झूठी नहीं है ?"

"ब्राह्मण ! हमने तुम्हारे घर सातवर्ष तक आकर, 'माफ करें' यह वचन मात्रभी न पा, फिर 'माफ करें' यह वचन पाया; इसी बातको लेकर हमने 'मिला है' कहा।

ब्राह्मणने सोचा—'यह वचनमात्रको पाकर 'मिला है' (कहकर) प्रशंसा करते हैं, तो कुछ खाद्य-भोज्य पाकर क्यों न प्रशंसा करेंगे।' (सोच) प्रसन्न हो, अपने लिये बने भातसे कलछीभर और उसके योग्य व्यंजन (=तेमन) दिलवाकर, 'यह भिक्षा तुम सदा पाओगे' कहा।···फिर···स्थविरकी शांतवृत्ति देख प्रसन्न हो, उसने अपने घरमें नित्य भोजन करनेकी प्रार्थना की। स्थविरने स्वीकार कर (लिया)।···

यह माणवक (=ब्राह्मणपुत्र) भी सोलह वर्षकी उम्रमें ही त्रिवेद-पारंगत हो गया।··· अब वह आचार्यके घर जाता था, तो (घरवाले) उसके मंच-पीठको श्वेत वस्त्रसे आच्छादितकर लटका रखते थे। स्थविरने सोचा—'अब माणवकको प्रव्रजित करनेका समय आ गया।···। (एक दिन) घरवालोंने···दूसरा आसन न देखकर (स्थविरकेलिये) माणवकका आसन बिछा दिया। स्थविर आसनपर बैठे। माणवकने भी उसी समय आचार्यके घरसे आकर, स्थविरको अपने आसनपर बैठे देखकर, कुपित···हो कहा—'मेरा आसन श्रमणको किसने दे दिया ?' स्थविरने भोजन समाप्त कर···माणवककी चंडताके लिये कहा—

"क्या तुम माणवक ! कुछ (वेद-) मंत्र जानते हो ?"

"हे प्रव्रजित ! इस समय मेरे मंत्र न जानने पर (दूसरा) कौन जानेगा।"—कह स्थविरको पूछा—"क्या तुम मंत्र जानते हो ?";

"माणवक ? पूछो, पूछकर जान सकते हो ?"

तब माणवकने शिक्षा (=अक्षर-प्रभेद), कल्प, निघंटु, इतिहास-सहित तीनों वेदोंमें जितने जितने कठिन स्थान थे, जिनके मतलबको न अपने जानता था, न उसका आचार्य ही जानता था, उन्हें स्थविरको पूछा। स्थविर वैसे भी तीनों वेदोंमें पारंगत थे, अब तो प्रतिसंवित् प्राप्त भी थे, इसलिये उन्हें उन प्रश्नोंके उत्तर देनेमें कोई कठिनाई न थी। उसी समय उत्तर दे माणवकको बोले—

"माणवक ! तुमने मुझे बहुत पूछा, मैं भी एक प्रश्न पूछता हूँ, क्या तुम मुझे उत्तर दोगे ?"

"हाँ प्रव्रजित ! पूछो, उत्तर दूँगा।"

स्थविरने "चित्त यमक" मेंसे यह प्रश्न पूछा—

"जिसका चित्त उत्पन्न होता है, निरुद्ध नहीं होता, उसका चित्त निरुद्ध होगा, उत्पन्न नहीं होगा; किन्तु जिसका चित्त निरुद्ध होगा, और उत्पन्न नहीं होगा, उसका चित्त उत्पन्न होता है, निरुद्ध नहीं होता।

"हे प्रव्रजित! इस मन्त्रका क्या नाम है?" "माणवक! यह बुद्ध-मंत्र है।"

"क्या इसे मुझे भी दे सकते हो?" "माणवक! हमारी ग्रहण की हुई प्रव्रज्याको ग्रहण करनेसे दे सकते हैं।"

तब माणवकने माता-पिताके पास जाकर कहा—

"यह प्रव्रजित बुद्ध मंत्र जानता है, किन्तु अपने पास न प्रव्रजित हुयेको नहीं देता; मैं इसके पास प्रव्रजित हो मंत्र ग्रहण करूँगा।"

तब उसके माता-पिताने—'…मंत्र…ग्रहणकर फिर लौट आयेगा' ख्यालकर 'पुत्र! ग्रहण करो' (कहकर) आज्ञा दे दी।

स्थविरने युवकको प्रव्रजितकर, पहिले बत्तीस प्रकारके (=योग) बतलाये। यह उनका अभ्यास करते, जल्दी ही स्रोत-आपत्ति फलमें प्रतिष्ठित हो गया। तब स्थविरने सोचा—"श्रामणेर (अब) स्रोतआपत्तिफलमें स्थित है, अब शासनसे लौटने योग्य नहीं है; यदि मैं इसे बढ़ाकर कर्मस्थान कहूँगा, तो अर्हत्वको प्राप्त हो जायेगा, और बुद्ध-वचन ग्रहण करनेमें उत्साह-हीन हो जायेगा; अब चंडवज्जी स्थविरके पास भेजनेका समय है।" तब उसे कहा…

"आओ श्रामणेर! तुम स्थविरके पास जाकर बुद्ध-वचन ग्रहण करो। मेरे वचनसे (उन्हें) राजीखुशी (=आरोग्य) पूछना (और) यह भी कहना—भन्ते! उपाध्यायने मुझे तुम्हारे पास भेजा है। तुम्हारे उपाध्यायका क्या नाम है, पूछनेपर—'भन्ते! सिग्गव स्थविर' कहना। 'मेरा नाम क्या है' पूछनेपर "भन्ते! मेरे उपाध्याय तुम्हारा नाम जानते हैं।"

"अच्छा भन्ते!"…कह तिष्य श्रामणेर… चंडवज्जी स्थविरके पास (गया)…।

"किस लिये आये हो?।" "भन्ते! बुद्ध-वचन ग्रहण करनेके लिये।"

"…ग्रहण करो श्रामणेर!"

…तिष्यने श्रामणेर होते समय ही (२० वर्षकी अवस्था तक) विनय-पिटकको छोड़ अट्ठकथाके साथ सभी बुद्ध-वचनको ग्रहण (=याद करना) कर लिया था। उप-संपदा प्राप्त (=भिक्षुपन) हो वह एक वर्ष न पूरा होते ही त्रिपिटकधर हो गये। आचार्य और उपाध्याय, मोग्गलिपुत्त-तिस्स (=मौद्गलिपुत्र तिष्य) स्थविरके हाथमें सकल बुद्ध-वचनको स्थापितकर आयुभर जीकर निर्वाण-प्राप्त हुये। मोग्गलिपुत्त तिस्स स्थविरने भी पीछे कर्मस्थान बढ़ाकर, अर्हत्-पद प्राप्त हो, बहुतोंको धर्म और विनय पढ़ाया।

उस समय बिन्दुसार राजाके एक सौ पुत्र थे। अपने और अपने सहोदर तिष्य-कुमारको छोड़ (बिन्दुसार-पुत्र) अशोकने उन सबको (ई. पू. २६९ में) मार डाला।

१. अभिधम्म-पिटकके यमक प्रकरणमें।

मारकर चार वर्ष तक बिना अभिषेकके ही राज्य करके, चार वर्षोंके बाद, तथागतके निर्वाणके बाद २१८ वें (ई. पू. २६५) वर्षमें सारे जम्बूद्वीपका एक-छत्र राज्याभिषेक पाया।...। राजाने अभिषेकको प्राप्त हो तीन वर्ष ही तक बाह्य-पाषण्ड (= दूसरे मत) को ग्रहण किया। चौथे वर्ष (ई. पू. २६१) वह बुद्ध-धर्ममें प्रसन्न (= श्रद्धावान्) हुआ। उसका पिता बिन्दुसार ब्राह्मण-भक्त था।...

इस प्रकार समय बीतते बीतते एक दिन राजाने सिंहपञ्जर (=खिड़की) में खड़े, दान्त, गुप्त, शान्तेन्द्रिय, ईर्यापथयुक्त[1] न्यग्रोध श्रामणेरको राज-आँगनसे जाते देखा। यह न्यग्रोध कौन था? बिन्दुसार राजाके ज्येष्ठ-पुत्र सुमन राजकुमारका पुत्र था।...। बिन्दुसार राजाकी दुर्बल-अवस्था (= रोगावस्था) में अशोककुमारने अपने उज्जैनके राज्यको छोड़कर, सारे नगरको अपने हाथमें करके, सुमन राजकुमारको पकड़ लिया। उसी दिन सुमन राजकुमारकी सुमना नामक देवी परिपूर्ण-गर्भा थी। वह अज्ञात वेषमें निकलकर, पासके एक चांडाल-ग्रामकी ओर चल, मुखिया चांडाल (=ज्येष्ठ-चांडाल) के गृहके पास एक बर्गद (=न्यग्रोध) के नीचे...पहुँची।...उसी दिन उसे पुत्र उत्पन्न हुआ।...उस (बालकका भी)...नाम न्यग्रोध रक्खा। ज्येष्ठक-चांडाल देखनेके दिनसे ही उसे अपने स्वामी-की पुत्री समझ, सेवा करने लगा। राजकन्या सात वर्ष तक वहाँ बसी। न्यग्रोध-कुमार भी सात वर्षका हो गया। तब महावरुण स्थविर नामक एक अर्हत्ने...राजकन्याको कहलाकर न्यग्रोध-कुमारको प्रव्रजित किया। कुमार छुरेकी धार (के केशमें लगने) के साथ ही अर्हत्वको प्राप्त हो गया। एक दिन प्रातः ही शरीर-कृत्यसे निवृत्त हो, वह आचार्य-उपाध्यायके व्रत (=सेवा) को पूराकर, पात्र-चीवर ले, माता-उपासिकाके द्वारपर जानेकी (इच्छासे)...निकला। उसकी माताके घरको, दक्षिण-द्वारसे नगरमें प्रविष्ट हो, नगरके बीचसे जाकर, पूर्व-द्वारसे निकलकर जाना होता था। उस समय अशोक धर्मराजा पूर्वकी ओर मुँहकर, सिंहपञ्जरमें टहलता था। उसी समय० न्यग्रोध राज-आँगनमें पहुँचा।...। ...देखनेके साथ ही (अशोकका) श्रामणेरमें चित्त प्रसन्न हो गया...। तब राजाने कहा 'इस श्रामणेरको बुलाओ'।...। श्रामणेर स्वाभाविक चालसे आया। राजाने कहा—

"अपने लायक आसनपर बैठिये।"

उसने इधर उधर देखकर—'कोई दूसरा भिक्षु नहीं है' (जानकर), श्वेत-छत्र-प्रधारित, राज-सिंहासनके पास जाकर, राजाको (भिक्षा-)पात्र देने जैसा आकार दिखलाया। राजा उस आसनके पास जाते देखकर ही सोचने लगा—'आज ही यह श्रामणेर इस घरका स्वामी होगा।' श्रामणेर राजाके हाथमें पात्र दे, आसनपर चढ़कर बैठा। राजाने अपने लिये तय्यार किया सभी खाद्य-खाद्यक, नाना भोजन पास मँगवाया। श्रामणेरने अपने प्रयोजन भर ही ग्रहण किया। भोजन समाप्त हो जानेपर राजाने कहा—

"शास्ता (गुरु)ने तुम्हें जो उपदेश दिया (है), उसे जानते हो?"

"महाराज! एक देशना जानता हूँ।"

"तात! मुझे भी उसे बतलाओ।"

---

1. देखो पृष्ठ ११२।

"अच्छा महाराज !" (कह) राजाके अनुरूप ही 'धम्मपद' के 'अप्पमाद-वग्ग' को···सुनाया।

"अप्रमाद (=आलस्यका अभाव) अमृतपद है, और प्रमाद मृत्युपद।" (यह) सुनते ही राजाने कहा—'तात ! जान गया, पूरा करो।' (दान-) अनुमोदन (·देशना) के अंतमें 'तात ! तुम्हें आठ नित्य भोजन देता हूँ।'—कहा। श्रामणेरने 'महाराज ! मैं यह उपाध्यायको देता हूँ।"

"तात ! यह उपाध्याय कौन है ?" "महाराज ! अच्छा बुरा देखकर जो प्रेरणा करता है, स्मरण कराता है।"

"तात ! और भी आठ नित्य-भोजन देता हूँ।"

"महाराज ! यह आचार्यको देता हूँ।"

"तात ! यह आचार्य कौन है ? "महाराज ! इस शासन (=धर्म) में हो सकने लायक धर्मोंमें जो स्थापित करता है।"

"अच्छा, तात ! तुम्हें और भी आठ देता हूँ।"

"महाराज ! यह भिक्षुसंघको देता हूँ।

"तात ! यह भिक्षु-संघ कौन है ?

"महाराज ! जिसके अवलंबसे मेरे आचार्य, उपाध्याय तथा मेरी प्रव्रज्या और उपसंपदा है।"

"तात ! तुम्हें और भी आठ देता हूँ।"

श्रामणेरने 'साधु (= अच्छा)' कह स्वीकार कर, दूसरे दिन बत्तीस भिक्षुओंको लेकर राजान्तः पुरमें प्रवेशकर, भोजन किया।" । न्यग्रोध···ने परिषद्-सहित राजाको तीन *शरणों, और पाँच शीलोंमें प्रतिष्ठित किया।···। फिर राजाने 'अशोकाराम' नामक महा-*विहार बनवा कर, साठ हजार भिक्षुओंका नित्य-संधान किया। सारे जम्बूद्वीपके चौरासी हजार नगरोंमें चौरासी हजार चैत्योंसे मंडित चौरासी हजार विहार बनवाये···।

(राजाने) अशोकाराम विहार बनवानेका काम लगवाया, संघने इन्द्रगुप्त स्थविरको निरीक्षक नियत किया।···। तीन वर्षोंमें (२५८ ई. पू.) विहारका काम समाप्त हुआ।···। तब···(राजा) सु-अलंकृत हो···नगरसे होते (विहार-प्रतिष्ठाके लिये) विहारमें जा, संघके बीच में खड़ा हुआ।···फिर भिक्षुसंघको पूछा—

"क्या भन्ते ! मैं शासन (=धर्म) का दायाद हूँ या नहीं ?"

तब मोग्गलिपुत्त तिस्स स्थविरने···कहा—

"महाराज ! इतनेसे शासनका दायाद नहीं कहा जाता, बल्कि प्रत्यय-दायक या उप-स्थायक कहा जाता है। महाराज ! जो पृथिवीसे लेकर ब्रह्मलोक तककी प्रत्यय (= भिक्षुओंकी अपेक्षित चार वस्तुयें) राशि भी देवे, वह भी दायाद नहीं कहा जाता।"

"तो भन्ते ! शासनका दायाद कैसे होता है ?"

"महाराज ! जो धनी या गरीब अपने औरस पुत्रको प्रव्रजित कराता है, वह शासन-का दायाद कहा जाता है।"

तब अशोक राजाने···शासनका दायाद होनेकी इच्छासे इधर उधर देखते, पासमें खड़े

महेन्द्रकुमारको देखकर—'यद्यपि मैं तिष्यकुमारके प्रव्रजित हो जानेके बादसे ही, इसे युवराज-पदपर प्रतिष्ठित करना चाहता हूँ, किन्तु युवराजपदसे प्रव्रज्या ही अच्छी है' (सोच) ···कुमारको कहा—

"तात ! प्रव्रजित हो सकते हो ?"···"(हाँ तात !) प्रव्रजित होऊँगा। मुझे प्रव्रजित कर तुम शासनके दायाद बनो।"

इस समय राजपुत्री संघमित्रा भी उसी स्थानमें खड़ी थी। उसका भी पति अग्नि-ब्रह्मा, तिष्यकुमारके साथ प्रव्रजित हो गया था। राजाने उसे देखकर कहा—

"अम्म ! तू भी प्रव्रजित हो सकती है ?" "हाँ तात ! हो सकती हूँ।"

राजाने पुत्रोंकी कामना जानकर भिक्षुसंघको कहा—

"भन्ते ! इन दोनों बच्चोंको प्रव्रजित कर, मुझे शासन-दायाद बनाओ।"

राजाके वचनको स्वीकार संघने कुमारको मोग्गलिपुत्त तिस्स स्थविरके उपाध्यायत्व और महादेव स्थविरके आचार्यत्वमें प्रव्रजित (= श्रामणेर) किया; और मध्यान्तिक (= मज्झन्तिक) स्थविरके आचार्यत्वमें उपसंपन्न (= भिक्षु) किया। उस समय कुमार पूरे बीस वर्षका था। उसी उपसंपदा-मंडलमें उसने प्रतिसंवित्-सहित अर्हत्-पदको पाया। संघमित्रा राजपुत्रीकी आचार्या आयुपाला थेरी, और उपाध्याया धर्मपाला थेरी थी। उस समय संघमित्रा अठारह वर्षकी थी।···। दोनोंके प्रव्रजित होनेके समय राजाका अभिषेक हुये, छ वर्ष हो चुके थे।

महेन्द्र स्थविर उपसंपन्न होनेके बादसे अपने उपाध्यायके पास धर्म और विनयको पूरा करते, दोनों संगीतियोंमें संगृहीत अट्ठकथा-सहित त्रिपिटक···और सभी स्थविर-वाद (= थेरवाद) को तीन वर्षके भीतर (ई. पू. २५५तक) ग्रहणकर, अपने उपाध्यायके एक हजार भिक्षु शिष्योंमें प्रधान हुये। उस समय अशोक धर्मराजके अभिषेकको नव वर्ष हो चुके थे।···

(उस समय) तैर्थिक (= पंथाई) लाभ-सत्कार रहित खाने-ढाँकनेके भी मुहताज हो, *लाभ सत्कारके लिये शासनमें प्रव्रजित हो, अपने अपने मतका···प्रचार करते थे। प्रव्रज्या* न पानेपर अपने ही मुंडनकर काषाय-वस्त्र पहिन, विहारोंमें विचरते, उपोसथमें भी, प्रवारणामें भी, संघकर्ममें भी, गणकर्ममें भी, प्रवृत्त हो जाते थे। भिक्षु उनके साथ उपोसथ नहीं करते थे। तब मोग्गलिपुत्त स्थविरने—'अब यह विवाद (= अधिकरण) उत्पन्न हो गया, थोड़ीही देरमें यह कठिन हो जायेगा; इनके बीचमें वास करते इसे शमन नहीं किया जा सकता'—(सोचकर) महेन्द्र स्थविरको गण (= जमात) सपुर्द कर, स्वयं सुखसे विहरनेकी इच्छासे 'अहोगङ्ग-पर्वतपर[1] चले गये।···उस समय अशोकाराममें सात वर्ष (२३८ ई. पू.) तक उपोसथ नहीं हुआ।···

राजाने एक अमात्यको आज्ञा दी—

"विहारमें जाकर अधिकरण (= विवाद) को शांतकर, उपोसथ करवाओ।"

···तब वह अमात्य विहारमें जाकर भिक्षु-संघको इकट्ठा करके बोला—

---

१. संभवतः हरिद्वारके पासका कोई पर्वत।

"भन्ते ! मुझे राजाने उपोसथ करानेके लिये भेजा है; अब उपोसथ करो ।"

भिक्षुओंने कहा—"हम तैर्थिकोंके साथ उपोसथ नहीं करेंगे ।"

अमात्यने स्थविरासन (=सभापतिके आसन) से लेकर सिर काटना शुरू किया। तिष्य स्थविरने अमात्यको वैसा करते देखा। तिष्य स्थविर ऐसे वैसे नहीं थे। वह राजाके एक मातासे जन्मे भाई तिष्य कुमार थे। राजाने अपना अभिषेक करनेके बाद उन्हें युवराज पदपर स्थापित किया (था)।...। कुमार राजाके अभिषेकके चौथे वर्ष (ई० पू० २६१) प्रव्रजित हुये थे।...वह अमात्यको ऐसा करते देख...स्वयं उसके समीपवाले आसनपर आकर बैठ गये। उसने स्थविरको पहिचानकर शस्त्र छोड़नेमें असमर्थ हो, जाकर राजाको कहा...। राजाने उसी समय बदनमें आगसी जलता (हो) विहारमें जाकर स्थविर भिक्षुओंको पूछा—

"भन्ते ! इस अमात्यने बिना मेरी आज्ञाके ऐसा किया है, यह पाप किसको लगेगा ?"

किन्हीं स्थविरोंने कहा—

"इसने तेरे वचनसे किया, इसलिए पाप तुझेही लगेगा ।"

किन्हींने कहा—"तुम दोनोंको यह पाप है ।"

किन्हींने ऐसा कहा—"महाराज ! क्या तेरे चित्तमें था कि यह जाकर भिक्षुओंको मारे ?"

"नहीं भन्ते ! मैंने शुद्ध मनसे भेजा था, कि भिक्षुसंघ एकमत हो उपोसथ करे ।"

"यदि महाराज ! शुद्ध मनसे (भेजा था) तो तुझे पाप नहीं है, अमात्य (=अफसर) हीको है ।"

राजा दुविधामें पड़कर बोला—

"भन्ते ! है कोई भिक्षु, जो मेरी इस दुविधाको छिन्नकर शासन (=धर्म) को सँभालनेमें समर्थ हो ?

"महाराज ! मोग्गलिपुत्त तिस्स स्थविर हैं, वह तेरी दुविधाको काटकर शासनको सँभाल सकते हैं ।"

राजाने उसी दिन चार धर्म-कथिक (भिक्षुओं) को..., और चार अमात्योंको... (यह कहकर) भेजा—'स्थविरको लेकर आओ ।' उन्होंने जाकर कहा—'राजा बुलाता है ।' स्थविर नहीं आये ।

दूसरी बार राजाने आठ धर्म कथिकों..., और आठ अमात्योंको...भेजा : 'भन्ते ! राजा बुलाता है' कहकर लिवा लाओ । उन्होंने जाकर वैसेही कहा । दूसरी बार भी स्थविर नहीं आये । राजाने स्थविरोंको पूछा—'भन्ते ! मैंने दो बार (आदमी) भेजे, स्थविर क्यों नहीं आते हैं ?'

"महाराज ! 'राजा बुलाता है', कहनेसे नहीं आते । ऐसा कहनेसे आवेंगे—'भन्ते ! शासन (=धर्म) गिर रहा है, शासनके सँभालनेके लिए हमारे सहायक हों ।'

तब राजाने वैसाही कहकर, सोलह धर्मकथिकों..., और सोलह अमात्योंको...भेजा। भिक्षुओंको पूछा—

"भन्ते ! स्थविर महल्लक हैं, या नई उमरके ?" "महल्लक (=बूढ़े) हैं, महाराज !"

"भन्ते ! यान या पालकीमें चढ़ेंगे ?" "महाराज ! नहीं चढ़ेंगे ।"

"भन्ते! स्थविर कहाँ वास करते हैं?" "महाराज! गंगाके ऊपरकी ओर।"

राजाने (नौकरों को) कहा—"तो भणे! नावका बेड़ा बाँधकर, उसपर स्थविरको बैठाकर, दोनों तीरपर पहरा रखवा, स्थविरको ले आओ।" भिक्षुओं और अमात्योंने स्थविर के पास जाकर राजाका संदेश कहा···स्थविर चर्म-खंड (=चमड़ेकी आसनी) लेकर खड़े हो गये। तब राजाने·· 'देव! स्थविर आ गये।' सुनकर गंगातीर पर जा नदीमें उतर, जाँघ भर पानीमें जाकर, स्थविरकी ओर हाथ बढ़ाया। स्थविरने राजाको दाहिने हाथसे पकड़ा। राजाने स्थविरको अपने उद्यानमें लिवा ले जा स्वयंही स्थविरके पैर धो, (तेलसे) मल, पासमें बैठ अपनी दुविधा कही—

"भन्ते! मैंने एक आमात्यको भेजा कि विहारमें जाकर विवादको शांतकर, उपोसथ करवाओ। उसने विहारमें जाकर इतने भिक्षुओंको जानसे मार दिया। इसका पाप किसे होगा?"

"क्या महाराज! तेरे चित्तमें ऐसा था, कि यह विहारमें जाकर भिक्षुओंको मारे?"

"नहीं भन्ते?" "यदि महाराज! तेरे चित्तमें ऐसा नहीं था, तो तुझे पाप नहीं है।"

इस प्रकार स्थविरने राजाको समझाकर, वहीं राजोद्यानमें सात दिन वासकर, राजाको (बुद्ध)-समय (=सिद्धान्त) सिखलाया। राजाने सातवें दिन अशोकाराममें भिक्षु-संघको एकत्रित कर, कनातकी चहारदीवारी घिरवाकर, कनातके भीतर एक एक मतवाले भिक्षुओंको एक एक जगह करवाकर, एक एक भिक्षुसमूहको बुलवाकर पूछा—'सम्यक् संबुद्ध किस वाद (=मत) के माननेवाले थे?"

तब शाश्वतवादियोंने 'शाश्वतवादी' (=नित्यता-वादी) कहा, आत्मानन्तिकोंने आत्मानन्तिक,० अमराविक्षेपिक,०···[1] पहिलेहीसे सिद्धान्त जाननेसे राजाने—'यह भिक्षु नहीं हैं, अन्य तैर्थिक (=दूसरे पंथवाले) हैं' जानकर, उन्हें सफेद कपड़े (=सेतक) देकर, अ-प्रव्रजित कर दिया। यह सभी साठ हजार थे। तब दूसरे भिक्षुओंको बुलाकर पूछा—

"भन्ते! सम्यक् संबुद्ध किस वादको माननेवाले थे?"

"'विभज्यवादी' महाराज!"

ऐसा कहनेपर स्थविरको पूछा—

"भन्ते! सम्यक् सम्बुद्ध 'विभज्यवादी' थे?"

"हाँ, महाराज!"

"भन्ते! अब शासन शुद्ध है, भिक्षु-संघ उपोसथ करे।"—कह, रक्षाका प्रबन्ध कर नगरमें चला गया।

संघने एकत्रित हो उपोसथ किया।···। उस समागममें मोग्गलिपुत्त तिस्स स्थविरने दूसरे वादोंको मर्दन करते हुये "कथावत्थुप्पकरण"[2] भाषण किया। तब (मोग्गलिपुत्त स्थविरने)···भिक्षुओंमेंसे एक हजार त्रिपिटक-निष्णात प्रतिसंवित्-प्राप्त, त्रैविद्य···

---

1. देखो पृष्ठ ४६१ व्याकरण चार प्रश्नोंमें।
2. अभिधर्म-पिटकके सात ग्रन्थोंमें एक।

भिक्षुओंको चुनकर, महाकाश्यप स्थविरकी भाँति, यश स्थविरकी भाँति, धर्म और विनयका सङ्गायन किया। इस प्रकारसे धर्म और विनयका सङ्गायनकर सभी शासन-मलों (=धर्मकी मिलावट) को शोधकर, (ई. पू. २४८में) तृतीय सङ्गीतिको किया।…। यह सङ्गीति नौ मासमें समाप्त हुई।…

× × × ×

(१४)

स्थविर-वाद-परम्परा। विदेशमें धर्म-प्रचार। ताम्रपर्णी-द्वीपमें महेन्द्र। त्रिपिटकका लेख-बद्ध करना। (ई. पू. २६०-१)।

[1]'यह आचार्य परम्परा है।…

(१) बुद्ध, (२) उपाली, (३) दासक, (४) सोणक, (५) सिग्गव, और (६) मोग्गलिपुत्त तिस्स यह विजयी हैं। श्री जंबूद्वीपमें तृतीय संगीति तक इस अटूट परम्परासे विनय आया।…तृतीय संगीतिसे आगे इसे इस (लंका) द्वीपमें महेन्द्र आदि लाये। महेन्द्रसे सीखकर कुछ कालतक अरिष्ट स्थविर आदि द्वारा चला। उनसे उनके ही शिष्योंकी परम्परावाली आचार्य परम्परासे आजतक (विनय) आया।…जैसा कि पुराने (आचार्यों) ने कहा है—

"तब (७) महिन्द, इट्टिय, उत्तिय, संबल, और भद्द…यह…महाप्रज्ञ जंबूद्वीप (=भारत) से यहाँ आये। उन्होंने तम्बपण्णी (—ताम्रपर्णी = लंका) द्वीपमें विनय-पिटक बँचाया (=पढ़ाया), पाँच निकायों (=दीघ आदि) को पढ़ाया, और सात प्रकरणों (=धम्म संगणी आदि सात अभिधर्म-पिटककी पुस्तकों) को भी। तब आर्य…(८) तिस्सदत्त,…(९) काल सुमन,…(१०) दीर्घ स्थविर,…(११) दीर्घ सुमन,…(१२) काल सुमन,…(१३) नाग स्थविर,…(१४) बुद्धरक्षित,…(१५) तिष्य स्थविर,…(१६) देव स्थविर,…(१७) सुमन,…(१८) चूल नाग,…(१९) धर्मपालित,…(२०) रोहण,…(२१) खेम (=क्षेम),…(२२) उपतिष्य,…(२३) पुस्स (=पुष्य) देव,…(२४) सुमन,…(२५) पुष्प,…(२६) महासीव (=शिव),…(२७) उपाली,…(२८) महानाग,…(२९) अभय,…(३०) तिष्य,…(३१) पुष्य,…(३२) चूल अभय,…(३३) तिष्य स्थविर,…(३४) चूल देव,…(३५) शिव स्थविर,…इन महाप्राज्ञ,…विनयज्ञ, मार्ग-कोविदोंने, ताम्रपर्णी द्वीपमें विनय-पिटकको प्रकाशित किया।…

(विदेशमें धर्म-प्रचार।)

…[2]मोग्गलिपुत्त स्थविरने इस तृतीय संगीतिको (समाप्त) कर (ई. पू. २४८ में) सोचा…"कैसे प्रत्यन्त (=सीमान्त) देशोंमें शासन (=धर्म) सुप्रतिष्ठित (=चिर-

१. समन्तपासादिका (आरम्भ)। २. समन्तपासादिका (आरम्भ)।

स्थायी) होगा।" तब उन्होंने उन उन भिक्षुओंपर (इसका) भार देकर उन्हें वहाँ वहाँ भेज दिया।

मध्यांतिक (=मज्झंतिक) स्थविरको कश्मीर और गन्धार[1] राष्ट्रमें भेजा।
महादेव स्थविरको···[2]महिंसकमण्डलमें···।
रक्षित स्थविरको···[3]वनवासीमें।
योनक (=यवनक) धर्मरक्षित स्थविरको [4]अपरान्तमें।
महा-धर्मरक्षित स्थविरको महाराष्ट्रमें।
महारक्षित स्थविरको [5]योनक(= यवनक) लोकमें।
मध्यम (=मज्झिम) स्थविरको हिमवान् (= हिमालय) प्रदेशमें।
सोणक और उत्तर स्थविरोंको [6]सुवर्णभूमिमें।
···महिन्द (=महेन्द्र) स्थविरको इट्ठिय०, उत्तिय०, संबल०, भद्दसाल, (=भद्र शाल)के साथ ताम्रपर्णी-द्वीपमें भेजा।

वह भी उन उन दिशाओंमें जाते (चार दूसरे तथा) स्वयं पाँचवें होकर गये, क्योंकि प्रत्यंत (=सीमान्त) देशोंमें उपसंपदाके लिये पंचवर्गीयगण पर्याप्त होता है।

ताम्रपर्णी (= लंका) द्वीपमें महेन्द्र

···महेन्द्र स्थविरने इट्ठिय आदि स्थविरों, संघमित्राके पुत्र सुमन श्रामणेर, तथा भंडुक उपासकके साथ अशोकारामसे निकल कर, राजगृह नगरको घेरे दक्षिणागिरि देशमें चारिका करते···छ मास बिता दिया। तब क्रमशः माताके निवास-स्थान [7]विदिशा (=वेदिस) नगर पहुँचे। अशोकने कुमार होते वक्त (इस) देश (का शासन) पाकर, उज्जयिनी जाते हुए विदिशा नगरमें पहुँच, देवश्रेष्ठीकी कन्याको ग्रहण किया। उसने उसी दिन (ई. पू. २८०) गर्भ धारण कर उज्जैनमें जाकर पुत्र प्रसव किया। कुमारके चौदहवें वर्षमें राजाने (राज्य-) अभिषेक पाया। उन (महेन्द्र) की माता उस समय पीहरमें वास करती थी।···। स्थविरको आये देख स्थविर-माता देवीने पैरोंको शिरसे वन्दना कर, भिक्षा प्रदानकर, स्थविरको अपने बनवाये वैदिशा-गिरि महाविहारमें वास कराया। स्थविरने उस विहारमें बैठे बैठे सोचा—'हमारा यहाँ का कार्य खतम हो गया, अब ताम्रपर्णी द्वीप जानेका समय है'। तब सोचा—तब तक देवानां-प्रिय तिष्यको मेरे पिताका भेजा (राज्य-) अभिषेक पा लेने दो ···और एक मास और यहीं वास किया।···। ज्येष्ठ···पूर्णिमाके दिन अनुराधपुरकी पूर्व-दिशामें मिश्रक-पर्वत पर (जा) स्थित हुये, जिसको कि आजकल चैत्य-पर्वत भी कहते हैं।

इट्ठिय आदिके साथ आयुष्मान् महेन्द्र स्थविर सम्यक्-संबुद्धके परिनिर्वाणमें २३६वें

---

१. पेशावरके आसपासका प्रांत। २. महेश्वर (इन्दौर-राज्य) से ऊपर का प्रांत, जो कि विन्ध्याचल और सतपुड़ाकी पर्वत-मालाओंके बीचमें पड़ता है। ३. उत्तरी-कनारा जिला (बंबई प्रांत)।

४. नर्मदाके मुहानेसे बंबई तक फैला, पश्चिमीघाटकी पहाड़ियोंके पश्चिमका प्रांत। ५.यूनानी राजाओंके देश—बाह्लीक(बाल्त्रिया),सिरिया, मिश्र, यूनान आदि। ६.पेगू(बर्मा)।

भिक्षुओंको चुनकर, महाकाश्यप स्थविरकी भाँति, यश स्थविरकी भाँति, धर्म और विनयका सङ्गायन किया। इस प्रकारसे धर्म और विनयका सङ्गायनकर सभी शासन-मलों (=धर्मकी मिलावट) को शोधकर, (ई. पू. २४८में) तृतीय सङ्गीतिको किया।...। यह सङ्गीति नौ मासमें समाप्त हुई।...

× × × ×

(१४)

स्थविर-वाद-परम्परा। विदेशमें धर्म-प्रचार। ताम्रपर्णी-द्वीपमें महेन्द्र। त्रिपिटकका लेख-बद्ध करना। (ई. पू. २६०–१)।

'यह आचार्य परम्परा है।...

(१) बुद्ध, (२) उपालि, (३) दासक, (४) सोणक, (५) सिग्गव, और (६) मोग्गलिपुत्त तिस्स यह विजयी हैं। श्री जंबूद्वीपमें तृतीय संगीति तक इस अटूट परम्परासे विनय आया।...तृतीय संगीतिसे आगे इसे इस (लंका) द्वीपमें महेन्द्र आदि लाये। महेन्द्रसे सीखकर कुछ कालतक अरिट्ठ स्थविर आदि द्वारा चला। उनसे उनके ही शिष्योंकी परम्परावाली आचार्य परम्परासे आजतक (विनय) आया।...जैसा कि पुराने (आचार्यों) ने कहा है—

"तब (७) महिन्द, इट्टिय, उत्तिय, संबल, और भद्द...यह...महाप्राज्ञ जंबूद्वीप (=भारत) से यहाँ आये। उन्होंने तम्बपण्णी (=ताम्रपर्णी=लंका) द्वीपमें विनय-पिटक बँचाया (=पढ़ाया), पाँच निकायों (=दीघ आदि) को पढ़ाया, और सात प्रकरणों (=धम्म संगणी आदि सात अभिधर्म-पिटककी पुस्तकों) को भी। तब आर्य...(८) तिष्यदत्त,...(९) काल सुमन,...(१०) दीर्घ स्थविर,...(११) दीर्घ सुमन,...(१२) काल सुमन,...(१३) नाग स्थविर,...(१४) बुद्धरक्षित,...(१५) तिष्य स्थविर,...(१६) देव स्थविर,...(१७) सुमन,...(१८) चूल नाग,...(१९) धर्मपालित,...(२०) रोहण,...(२१) खेम (=क्षेम),...(२२) उपतिष्य,...(२३) फुस्स (=पुष्य) देव,...(२४) सुमन,...(२५) पुष्प,...(२६) महाशीव (=शिव),...(२७) उपालि,...(२८) महानाग,...(२९) अभय,...(३०) तिष्य,...(३१) पुष्य,...(३२) चूल अभय,...(३३) तिष्य स्थविर,...(३४) चूल देव,...(३५) शिव स्थविर,...इन महाप्राज्ञ,...विनयज्ञ, मार्ग-कोविदोंने, ताम्रपर्णी द्वीपमें विनय-पिटकको प्रकाशित किया।...

(विदेशमें धर्म-प्रचार।)

...'मोग्गलिपुत्त स्थविरने इस तृतीय संगीतिको (समाप्त) कर (ई. पू. २४८ में) सोचा...'भविष्य में प्रत्यन्त (=सीमान्त) देशोंमें शासन (=धर्म) सुप्रतिष्ठित (=स्थिर-

१. समन्तपासादिका (आरम्भ)। २. समन्तपासादिका (आरम्भ)।

स्थायी) होगा।" तब उन्होंने उन उन भिक्षुओंपर (इसका) भार देकर उन्हें वहाँ वहाँ भेज दिया।

मध्यांतिक (=मज्झंतिक) स्थविरको कश्मीर और गन्धार[1] राष्ट्रमें भेजा।
महादेव स्थविरको...[2]महिंसकमण्डलमें...।
रक्षित स्थविरको...[3]वनवासीमें।
योनक (=यवनक) धर्मरक्षित स्थविरको [4]अपरान्तमें।
महा-धर्मरक्षित स्थविरको महाराष्ट्रमें।
महारक्षित स्थविरको [5]योनक(=यवनक) लोकमें।
मध्यम (=मज्झिम) स्थविरको हिमवान् (=हिमालय) प्रदेशमें।
सोणक और उत्तर स्थविरोंको [6]सुवर्णभूमिमें।
...महिन्द (=महेन्द्र) स्थविरको इट्ठिय०, उत्तिय०, संबल०, भद्दसाल, (=भद्रशाल)के साथ ताम्रपर्णी-द्वीपमें भेजा।

वह भी उन उन दिशाओंमें जाते (चार दूसरे तथा) स्वयं पाँचवें होकर गये, क्योंकि प्रत्यंत (=सीमान्त) देशोंमें उपसंपदाके लिये पंचवर्गीयगण पर्याप्त होता है।

ताम्रपर्णी (=लंका) द्वीपमें महेन्द्र

...महेन्द्र स्थविरने इट्टिय आदि स्थविरों, संघमित्राके पुत्र सुमन श्रामणेर, तथा भंडुक उपासकके साथ अशोकारामसे निकल कर, राजगृह नगरको घेरे दक्षिणागिरि देशमें चारिका करते...छ मास बिता दिया। तब क्रमशः माताके निवास-स्थान विदिशा (=वेदिस) नगर पहुँचे। अशोकने कुमार होते वक्त (इस) देश (का शासन) पाकर, उज्जयिनी जाते हुए विदिशा नगरमें पहुँच, देवश्रेष्ठीकी कन्याको ग्रहण किया। उसने उसी दिन (ई. पू. २८०) गर्भ धारण कर उज्जैनमें जाकर पुत्र प्रसव किया। कुमारके चौदहवें वर्षमें राजाने (राज्य-) अभिषेक पाया। उन (महेन्द्र) की माता उस समय पीहरमें वास करती थी।...। स्थविरको आये देख स्थविर-माता देवीने पैरोंको शिरसे वन्दना कर, भिक्षा प्रदानकर, स्थविरको अपने बनवाये वैदिश-गिरि महाविहारमें वास कराया। स्थविरने उस विहारमें बैठे बैठे सोचा—'हमारा यहाँ का कार्य खतम हो गया, अब ताम्रपर्णी द्वीप जानेका समय है'। तब सोचा—तब तक देवानांप्रिय तिष्यको मेरे पिताका भेजा (राज्य-) अभिषेक पा लेने दो ...और एक मास और वहीं वास किया।...। ज्येष्ठ...पूर्णिमाके दिन अनुराधपुरकी पूर्व-दिशामें मिश्रक-पर्वत पर (जा) स्थित हुये, जिसको कि आजकल चैत्य-पर्वत भी कहते हैं।

इट्टिय आदिके साथ आयुष्मान् महेन्द्र स्थविर सम्यक्-संबुद्धके परिनिर्वाणसे २३६वें

---

१. पेशावरके आसपासका प्रांत। २. महेश्वर (इन्दौर-राज्य) से ऊपर का प्रांत, जो कि विंध्याचल और सतपुड़ाकी पर्वत-मालाओंके बीचमें पड़ता है। ३. उत्तरी-कनारा जिला (बंबई प्रांत)।

४. नर्मदाके मुहानेसे बंबई तक फैला, पश्चिमीघाटकी पहाड़ियोंके पश्चिमका प्रांत। ५.यूनानी राजाओंके देश—बाह्लीक(बाक्ट्रिया),सिरिया, मिश्र, यूनान आदि। ६.पेगू(बर्मा)।

(=ई. पू. २४७)में द्वीपमें आकर···स्थित हुये···। सम्यक्-संबुद्ध अजात-शत्रुके आठवें वर्ष (= ४८३ ई. पू.)में परिनिर्वाणको प्राप्त हुये। उसी समय सिंहकुमारके पुत्र, ताम्रपर्णी द्वीपके आदिराजा विजयकुमारने इस द्वीपमें आकर मनुष्योंका वास कराया। जम्बूद्वीपमें उदयभद्रके चौदहवें वर्ष (ई. पू. ४४५)में विजयकी मृत्यु हुई। उदयभद्रके पन्द्रहवें वर्ष (ई. पू. ४४४)में पांडु वासुदेवने इस द्वीपमें राज्य पाया। नागदास राजाके बीसवें वर्ष (ई. पू. ४१५)में पांडु वासुदेवने काल किया। उसी वर्ष अभयने इस द्वीपमें राज्य पाया। वहाँ (जम्बूद्वीपमें) शिशुनाग राजाके सत्रहवें वर्ष (ई. पू. ३७४)में यहाँ (लंकामें)। अभय-राजाको (राज्य करते) बीस वर्ष पूरे हो चुके थे। तब अभयके बीसवें वर्षमें, पकुण्डक अभय नामक दामरिक(=द्रविड़)ने राज्य ले लिया। वहाँ काल-अशोकके सोलहवें (ई. पू. ३०७) वर्षमें यहाँ पकुण्डकके सत्रह वर्ष पूर्ण हुये। यह नीचे एक वर्षके साथ अठारह होते हैं। वहाँ चन्द्रगुप्तके चौदहवें (ई. पू. ३०७) वर्षमें यहाँ पकुण्डक-अभय मर गया; (और) मुटसीवने राज्य पाया। वहाँ अशोक धर्मराजाके सत्रहवें (वि. पू. २४८) वर्षमें, यहाँ मुटसीव राजा मर गया; और देवानांप्रिय तिष्यने राज्य पाया।

भगवान्‌के परिनिर्वाण (ई. पू. ४८३) के बाद अजातशत्रुने चौबीस वर्ष (ई. पू. ४५९ तक) राज्य किया, उदय-भद्र सोलह (ई. पू. ४४३तक), अनुरुद्ध और मुण्ड आठ (ई. पू. ४३५ तक), नागदासक चौबीस (ई. पू. ४११ तक) शिशुनाग अठारह (ई.पू. ३९३ तक), उसका ही पुत्र अशोक अट्ठाईस (ई. पू. ३६५ तक), अशोकके पुत्र दस भाई राजा बाईस वर्ष (वि. पू. ३४३ तक) राज्य किये। उनके पीछे नौ नन्द भी बाईस ही (ई. पू. ३२१तक)। चंद्रगुप्त चौबीस वर्ष (ई. पू. २९७), बिन्दुसार अट्ठाईस वर्ष (ई. पू. २६९तक), उनके पीछे अशोकने (ई. पू. २६९ में) राज्य पाया। उनके अभिषेक (ई. पू. २६५)से पहिले चार वर्ष (हो गये थे), अभिषेकसे अठारहवें वर्ष (२४७ ई. पू.)में महेन्द्र स्थविर इस द्वीपमें आ उपस्थित हुये।

उस दिन ताम्रपर्णी द्वीपमें ज्येष्ठ-मूल नक्षत्र (=उत्सव) था। राजा अमात्योंको—'उत्सव (= नक्षत्र) की घोषणा करके क्रीड़ा करो'—कह, चालीस हजार पुरुषोंके साथ नगर से निकलकर, जहाँ [1]मिश्रकपर्वत है, वहाँ शिकार खेलनेके लिये गया। तब उस पर्वतकी अधिवासिनी देवता, राजाको स्थविरका दर्शन करानेकी इच्छासे, रोहित मृगका रूप धारण कर पासहीमें घास-पत्ता खाती सी विचरने लगी। राजाने देखकर—'असावधानको इस समय मारना अच्छा नहीं है'—(सोचकर) ताली पीटी। मृग अम्बस्थल[2] (=आम्रस्थल)के मार्गसे भागने लगा। राजा पीछा करते हुये, अम्बत्थल पर चढ़ गया। मृग भी स्थविरोंके करीब जा अन्तर्धान होगया। महेन्द्र स्थविरने राजाको पासमें आते देखकर,···कहा—

"तिष्य! तिष्य! यहाँ आ"।

राजाने सुनकर सोचा—'इस द्वीपमें पैदा हुआ (कोई) मुझे 'तिष्य' नाम लेकर बोलनेकी हिम्मत करनेवाला नहीं है; यह छिन्न-भिन्न पटधारी मुण्डित-काषाय-वस्त्रधारी मुझे नाम लेकर पुकारता है। यह कौन होगा, मनुष्य है, या अमनुष्य?' स्थविरने कहा—

१. वर्तमान मिहिन्तले (सीलोन)। २. मिहिन्तलेपर एक स्थान, जहाँपर अब भी इस नामका स्तूप है।

"महाराज ! हम धर्मराज (=बुद्ध)के श्रावक श्रमण हैं। तेरेहीपर कृपाकर, जम्बूद्वीप से यहाँ आये हैं ॥"

उस समय अशोक धर्मराज और देवानांप्रियतिष्य अदृष्ट-मित्र थे।.........।सो यह राजा उस दिनसे एकमास पूर्व अशोक राजाके भेजे अभिषेकसे अभिषिक्त हुआ था, वैशाख-पूर्णिमाको उसका अभिषेक किया गया था। उसने हालहीमें खबर सुनी थी। (बुद्ध-)शासनके समाचारको स्मरणकर, (वह) स्थविरके उस वचन...को सुन—"आर्य आ गये!" (जान), उसी समय हथियार रखकर, संमोदन कर...एक ओर बैठ गया।...। वहीं चौवालिस हजार पुरुष आकर उसे घेरकर खड़े हो गये। तब स्थविरने दूसरे छ जनोंको भी दिखलाया। राजाने देखकर पूछा—

"यह कब आये?" "मेरे साथ ही महाराज!"

"इस वक्त जम्बूद्वीपमें और भी इस प्रकारके श्रमण हैं?"

"हैं, महाराज! इस समय जम्बूद्वीप काषायसे जगमगा रहा है।.........

(तब) स्थविरने राजाकी प्रज्ञा, पांडित्यकी परीक्षाके लिये पासके आम्रवृक्षके विषयमें प्रश्न पूछा—

"महाराज! इस वृक्षका नाम क्या है?" "आमका वृक्ष है भन्ते!"

"महाराज! इस आमको छोड़कर और भी आम है या नहीं?"

"भन्ते! और भी बहुतसे आमके वृक्ष हैं।"

"इस आम और उन आमोंको छोड़कर और भी वृक्ष हैं या नहीं?"

"हैं, भन्ते! लेकिन वह आम वृक्ष नहीं (=न-आम्र-वृक्ष) हैं।"

"दूसरे आम, और न-आम्र-वृक्षोंको छोड़कर और भी वृक्ष हैं?"

"भन्ते! यही आम वृक्ष है।"

"साधु, महाराज! तुम पंडित हो।..."

तब स्थविरने—'राजा पंडित है, धर्म समझ सकता है' (सोचकर), "चूल-हत्थि-पदोपम-सुत्त" का उपदेश किया। कथाके अन्तमें चौवालीस हजार आदमियों सहित राजा तीनों शरणोंमें प्रतिष्ठित हुआ।...

उस समय अनुलादेवीने प्रव्रजित होनेकी इच्छासे राजाको कहा। राजाने उसकी बात सुनकर स्थविरको...कहा...।

"महाराज हमें स्त्रियोंको *प्रव्रज्या देना विहित नहीं है। पाटलिपुत्रमें मेरी भगिनी* संघमित्रा थेरी है, उसको बुलाओ।...। महाराज! ऐसा पत्र भेजो, जिसमें संघमित्रा बोधि (=बोधगयाके पीपलकी संतति) को लेकर आये।"...

महाबोधि गङ्गामें नावपर रखकर...विंध्याटवीको पारकर सात दिनोंमें ताम्र-लिप्तिमें[1] पहुँची।...। मार्गशीर्ष मासके प्रथम प्रतिपद्के दिन अशोक धर्मराजाने महाबोधिको उठाकर, गले तक पानीमें जाकर नावपर रख, संघमित्रा थेरीको भी अनुचर सहित नावपर चढ़ा (दिया)...।...सात दिन नागराजोंने पूजाकर फिर नावमें रख दिया। उसी दिन

१. पृष्ठ ११८। तम्-लुक्, जि. मेदिनीपुर (बंगाल)।

साथ जम्बुकोल-पट्टनपर पहुँच गईं।...। तब चौथे दिन महाबोधिको लेकर...अनुराधपुर गये।...। अनुलादेवी (राज-भगिनी) पाँच सौ कन्याओं और पाँच सौ अंतःपुरकी स्त्रियोंके साथ संघमित्रा थेरीके पास प्रव्रजित हुई।...। राजाका भाँजा अरिट्ठ भी पाँचसौ पुरुषोंके साथ स्थविरके पास प्रव्रजित हुआ।...

त्रिपिटकका लेख-बद्ध करना।

(वट्ट-गामनीके शासनकाल ई. पू. २७–१ ई० में) त्रिपिटककी पाली (=पंक्ति) और उसकी अट्ठकथा, जिन्हें पूर्वमें महामति भिक्षु कंठस्थ करके ले आये थे, प्राणियोंकी (स्मृति-) हानि देखकर भिक्षुओंने एकत्रित हो धर्मकी चिरस्थितिके लिये, पुस्तकोंमें लिखाया।[१]

॥ इति ॥

परिशिष्ट ॥१॥

मूल ग्रन्थोंकी सूची

नामानुक्रमणी

शब्दानुक्रमणी ।